॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज की शिष्या

कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराजसिंहजी की महारानी श्रीमती ब्रजकुंवरीजी बांकावती

उपनाम "श्रीब्रजदासी" कृत

श्रीब्रजदासी-भागवत

[श्रीमद्भागवत महापुराण का भाषा-पद्यानुवाद]

(प्रथम खण्ड)

प्रकाशक :

अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ

निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

किशनगढ़ - राजस्थान

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥ ॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी की शिष्या,
कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराजराजेश्वर श्रीराजसिंहजी की महारानी एवं श्रीनागरीदासजी की विमाता

श्रीमती ब्रजकुँवरीजी बांकावती उपनाम 'श्री ब्रजदासीजी' कृत

॥ श्री ब्रजदासी भागवत ॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण भाषा पद्यानुवाद)

❁ प्रथम खंड ❁

(श्रीमद्भागवत - माहात्म्य से अष्टम स्कंध तक)

संरक्षक एवं प्रकाशक

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज
के लोकहितार्थ प्रेरणात्मक मनोरथ से
भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (राज.) के तत्वावधान में
भक्तप्रवर श्री बंकटलाल बाहेती, श्री ब्रजमोहन छापरवाल तथा
श्री प्रकाशचन्द्र बाहेती
के आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित

सम्पादक एवं शोधकर्ता

डॉ. रामप्रसाद शर्मा, एम. ए. पीएच. डी.
श्रीनिम्बार्कभूषण, निवर्तमान हिन्दी विभागाध्यक्ष, किशनगढ़ (राज.)

वि. सं. २०५३ निम्बार्क सं. ५०९१ सन् १९९६ ई.

डी. टी. पी. निर्माता

गणेश ऑफसैट, 26, आदर्श नगर, अजमेर।

मुद्रक

दिशादृष्टि ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर।

मुद्रण व्यवस्थापक

श्री भँवरलाल उपाध्याय

(श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय, श्रीनिम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद की ओर से)

सर्वाधिकार सुरक्षित

अ. भा. जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्यपीठ, श्री निम्बार्कतीर्थ, *सलेमाबाद, जिला - अजमेर (राज.)*

वितरक

(१) अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (राज.)

(२) श्रीजी की बड़ी कुंज, प्रताप बाजार श्रीवृन्दावन धाम (उ. प्र.)

(३) द्वारा - श्री बंकटलाल बाहेती, इचलकरंजी, श्री ब्रजमोहन छापरवाल, सूरत तथा श्री प्रकाशचन्द्र बाहेती, बम्बई

अन्य विवरण - (दो खंडों में प्रकाशित - पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध)

प्रथम संस्करण - एक हजार प्रतियाँ

न्यौछावर - 200

(परामर्श मण्डल)

१. महन्त श्रीहरिवल्लभदास जी शास्त्री, साहित्यदर्शनाचार्य, किशनगढ़ - रेनवाल ।

२. मेवाड़ महामंडलेश्वर श्रीमहन्त श्री मुरली मनोहरशरणजी शास्त्री साहित्य आयुर्वेदाचार्य, अस्थल सूरजपोल, उदयपुर ।

३. महामण्डलेश्वर महंत श्री ब्रजबिहारीशरण 'राजीव' निम्बार्क भूषण प्र. सम्पादक भक्ति भागीरथी एवं महामंत्री निम्बार्क महासभा, अहमदाबाद ।

४. महन्त श्री बालकृष्णशरण जी शास्त्री, साहित्याचार्य लीमड़ी (गुजरात) ।

५. पं. गोविन्ददास सन्त, निम्बार्कभूषण धर्मशास्त्री पुराणतीर्थ द्वैताद्वैतविशारद, अजमेर ।

६. पं. भंवरलाल उपाध्याय, निम्बार्कभूषण व्यवस्थापक निम्बार्क मुद्रणालय, श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ।

७. पं. वासुदेवशरण शास्त्री, निम्बार्कभूषण व्याकरणवेदान्ताचार्य प्राचार्य श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, श्री निम्बार्काचार्य पीठ।

८. पं. दयाशंकर शास्त्री, निम्बार्कभूषण साहित्य पुराणाचार्य काव्यतीर्थ ब्यावर ।

९. डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी निम्बार्क भूषण सप्ताहाचार्य, एम. ए. पी एच. डी. डी. लिट् मथुरा।

१०. पं. खेमराज केशवशरण शास्त्री एम. ए. साहित्याचार्य, प्राचार्य त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)।

११. पं. वैद्यनाथ झा निम्बार्कभूषण व्याकरणवेदांताचार्य, भू. प्राचार्य निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृंदावन।

१२. पं. मुरलीधरजी शास्त्री निम्बार्कभूषण प्रेमसरोवर बरसाना ।

१३. पं. हरिशरणजी शास्त्री, व्याकरणवेदांताचार्य निम्बार्कभूषण, प्राचार्य निम्बार्क संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन ।

१४. पं. सत्यनारायण शास्त्री, निम्बार्कभूषण काव्यतीर्थ अजमेर ।

१५. पं. गंगादत्तजी शास्त्री कथाभट्ट, करौली वाले, जयपुर ।

१६. पं. रसिकमोहनशरण शास्त्री, व्यवस्थापक श्रीजी की बड़ी कुंज, वृन्दावन ।

निकुञ्जविहारी श्रीश्यामाश्याम

वृन्दावन-कलानाथौ हृदयानन्द-वर्द्धनौ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ भजेऽहं कुञ्जगामिनौ॥

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. सम्पादकीय आभार - प्रदर्शन ४

२. श्रीब्रजदासीजी कृत मंगलाचरण ५

३. समर्पण ६

४. अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज की मंगल-कामना ७

५. पुण्यात्माओं के प्रति कृतज्ञता ८ से १०

६. समर्पकों की सद्भावना ११

७. शुद्धि - पत्र १२

८. भूमिका :- श्रीमती ब्रजदासी जी एवं उनकी ब्रजदासी-भागवत - तथा महाकवि नागरीदास एवं उनका सम्प्रदाय-निर्णय १ से १२०

९. विषय-सूची (प्रथम - खंड) (क से ज)

१०. ब्रजदासी - भागवत (भाषा पद्यानुवाद) १-५९६

चित्रावली

मुख पृष्ठ - रसिक - सर्वस्व श्रीयुगलकिशोर

१. संरक्षक एवं प्रकाशक - अनन्तानन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज

२. 'श्री ब्रजदासी - भागवत' प्रकाशन के मूल प्रेरक

३. श्री सनकादिक संसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु, गीतगोविन्दकार श्रीजयदेव समाराधित पीठ में विराजमान भगवान् श्रीराधामाधव

४. सुदर्शन चक्रावतार आद्याचार्य भगवन्निम्बार्काचार्य, रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार जगद्गुरु निम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज, जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर परशुरामसागर वाणीकार श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज, जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज (श्रीब्रजदासी जी के गुरुवर्य्य) ब्रजदासी-भागवत के मूल-अधिष्ठाता।

५. नागरी-कुंज वृंदावन में विराजमान श्रीनागरीदास जी के उपास्य दम्पति श्रीराधाकृष्ण। पीठ में विराजमान म. राजसिंह (नगधरदास) तथा महारानी ब्रजकुँवरी जी बांकावती (श्रीब्रजदासी) के संयुक्त उपास्य युगलस्वरूप श्रीबांकेबिहारीजी तथा उनकी तदनुसार नामांकित चौकियाँ।

६. नागरी-कुंज-वृंदावन का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सम्बंधित स्वामित्व-आलेख, नागरीदास घेरे (वृंदावन) में स्थित श्रीनागरीदास, गोपालकुँवरी तथा बनीठनी सम्बंधित समाधि-स्मारक।

७. श्रीनागरीदास, गोपालकुँवरी तथा बनीठनी के समाधि-स्मारक लेख।

८. श्रीनागरीदास जी कृत 'बिहारी-चन्द्रिका' ग्रंथ का निहालचन्द्र कृत भावचित्र। निम्बार्कीय परम्परानुसार सखी-वेश में प्रात: कालीन प्रभु-आराधना सम्बंधित वृंदावनधाम का मानसिक ध्यान करते हुये नागरीदास जी तथा सेवा-संलग्न उनकी निकुंज-सेविका बनीठनी।

९. निहालचन्द्र कृत विश्वविख्यात चित्राकृति बनीठनी (अनुकृति)

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. सम्पादकीय आभार – प्रदर्शन ४

२. श्रीब्रजदासीजी कृत मंगलाचरण ५

३. समर्पण ६

४. अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज की मंगल-कामना ७

५. पुण्यात्माओं के प्रति कृतज्ञता ८ से १०

६. समर्पकों की सद्भावना ११

७. शुद्धि – पत्र १२

८. भूमिका :- श्रीमती ब्रजदासी जी एवं उनकी ब्रजदासी-भागवत – तथा महाकवि नागरीदास एवं उनका सम्प्रदाय-निर्णय १ से १२०

९. विषय-सूची (प्रथम – खंड) (क से ज)

१०. ब्रजदासी – भागवत (भाषा पद्यानुवाद) १-५९६

चित्रावली

मुख पृष्ठ – रसिक – सर्वस्व श्रीयुगलकिशोर

१. संरक्षक एवं प्रकाशक – अनन्तानन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वर-शरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज

२. 'श्री ब्रजदासी – भागवत' प्रकाशन के मूल प्रेरक

३. श्री सनकादिक संसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभु, गीतगोविन्दकार श्रीजयदेव समाराधित पीठ में विराजमान भगवान् श्रीराधामाधव

४. सुदर्शन चक्रावतार आद्याचार्य भगवन्निम्बार्काचार्य, रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार जगद्गुरु निम्बार्काचार्य-पीठाधीश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज, जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर परशुरामसागर वाणीकार श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज, जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज (श्रीब्रजदासी जी के गुरुवर्य्य) ब्रजदासी-भागवत के मूल-अधिष्ठाता।

५. नागरी-कुंज वृंदावन में विराजमान श्रीनागरीदास जी के उपास्य दम्पति श्रीराधाकृष्ण। पीठ में विराजमान म. राजसिंह (नगधरदास) तथा महारानी ब्रजकुँवरी जी बांकावती (श्रीब्रजदासी) के संयुक्त उपास्य युगलस्वरूप श्रीबांकेबिहारीजी तथा उनकी तदनुसार नामांकित चौकियाँ।

६. नागरी-कुंज-वृंदावन का श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सम्बंधित स्वामित्व-आलेख, नागरीदास घेरे (वृंदावन) में स्थित श्रीनागरीदास, गोपालकुँवरी तथा बनीठनी सम्बंधित समाधि-स्मारक।

७. श्रीनागरीदास, गोपालकुँवरी तथा बनीठनी के समाधि-स्मारक लेख।

८. श्रीनागरीदास जी कृत 'बिहारी-चन्द्रिका' ग्रंथ का निहालचन्द्र कृत भावचित्र। निम्बार्कीय परम्परानुसार सखी-वेश में प्रातः कालीन प्रभु-आराधना सम्बंधित वृंदावनधाम का मानसिक ध्यान करते हुये नागरीदास जी तथा सेवा-संलग्न उनकी निकुंज-सेविका बनीठनी।

. निहालचन्द्र कृत विश्वविख्यात चित्राकृति बनीठनी (अनुकृति)

सम्पादकीय आभार–प्रदर्शन

रसोवैसः श्रुति द्वारा प्रतिपादित आदि-अनादि-एकरस, अद्भुत, सर्वदा-सनातन, सच्चिदानंद-सर्वेश्वर, रसरूप-परब्रह्म-परमानंद-स्वरूप भगवान् श्रीराधाकृष्ण परमदिव्य-सद्गुणालंकृत नित्यनूतन-युगल-लीलाविहारी-दंपति श्रीप्रियाप्रियतम हैं; प्रपन्नतापूर्वक अनन्य - दास्य-भाव से उनके युगलचरणारविन्दों में सहचरी-सेवा-सन्निधि-सुख का परम सौभाग्य प्राप्त होने पर परमाश्रय की अहैतुकी कृपा से ही जीव के पुण्यफलों का उदय होता है; जिससे उसे सर्वकल्याणकारी-सत्कर्मों की सफलता का सुयश सहज में ही सुलभ हो जाता है। मैं दासानुदास आज निरहंतापूर्वक इसी स्वानुभूतिपरक दैन्य-भाव से, ब्रजदासी-भागवत की संपादन-सेवा-सम्पूर्णता के नियामक युगलचरणों की तथा उन्हीं के दिव्य - स्वरूप श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु, श्रीराधामाधव, ब्रजदासी जी के उपास्य युगल-स्वरूप श्री बांकेबिहारी, भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य, पीठ-संस्थापक परमसिद्ध अ. श्रीविभूषित स्वामी जी श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी महाराज की शतशत वंदना करता हूँ। श्रीमद्भागवत रूपी श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्णरूपी श्रीमद्भागवत की परम्परागत वैष्णवी भावनानुसार श्रीमद्भागवत महापुराण के अक्षय-ज्ञान-यज्ञ तथा कथानुष्ठान के आदि अधिष्ठाता एवं नियामक श्रीव्यासदेव, महामुनीश्वर श्रीशुकदेव, परीक्षित, सूत, शौनकादिकों सहित ब्रजदासी भागवत के सूत्राधार अ. श्रीविभूषित श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज तथा उनकी शिष्या मरु-मंदाकिनी भक्तिमती मीराँ सदृश परमसाध्वी ब्रजदासी जी का एवं प्रासांगिक रूप में वर्णित भक्त प्रवर रसिक संत नागरीदास जी का भी बारम्बार नमन करता हूँ। वैष्णव-धर्म की चिरस्मरणीय अत्यंत लोकोपकारी धरोहर के रक्षणार्थ-मनोरथपूर्वक इस 'ब्रजदासी-भागवत' भाषा पद्यानुवाद का दो खंडों में विशालकाय तथा शोधपूर्ण प्रकाशन कराने का सम्पूर्ण श्रेय अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) के वर्तमान पीठाधीश्वर अ. श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री श्रीजी महाराज के पूज्याचार्यचरणों को है; यह उनके लोकविश्रुत अत्यंत ख्यातिमान आचार्यत्व-काल का सर्वोच्च कीर्तिमान है; अतः दासानुदास को ऐसी अक्षय-कृति की संपादन-सेवा का सौभाग्य प्रदान करने वाले मेरे मंत्र-उपदेष्टा इन गुरुवर्य्य के प्रातःस्मरणीय चरणों में मेरा सादर साष्टांग-दंडवत्-प्रणामपूर्वक सतत-नमन है। अतः मैं 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' की पवित्र-भावना से इन सभी के पूज्य चरणों में इस संपादित-प्रकाशित लोकविश्रुत कृति का श्रद्धापूर्वक सविनय समर्पण करता हूँ।

सर्वप्रथम मैं श्रीरामकथा के विश्वविख्यात व्याख्याता युग संत निम्बार्करत्न पूज्य श्री मुरारि बापू द्वारा की गई सतत-मंगलकामना के प्रति उनके चरणों का नमन करता हूँ। उनके करकमलों से अति पावन इस ब्रजदासी-भागवत का विमोचन होना हमारा परम सौभाग्य है जिसके प्रेरक महामंडलेश्वर महन्त श्री ब्रजबिहारीशरण जी 'राजीव' (अहमदाबाद) महामंत्री अ.भा. श्रीनिम्बार्क-महासभा का नाम भी उल्लेखनीय है। निम्बार्क-साम्प्रदायिक महान्तों, महान-संतों, प्रमुख-विद्वानों, शोधकों तथा श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ-व्याख्याताओं, कथा-वाचकों द्वारा व्यक्त सद्भावनाओं से भी मैं अनुगृहीत हुआ हूँ। श्रीमद्भागवत के निम्बार्क-साम्प्रदायिक वयोवृद्ध मर्मज्ञ-विद्वानों तथा कथा-वाचकों से प्राप्त सत्परामर्श के प्रति मैं उनका श्रद्धापूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ। आचार्य चरणों की लोकोपकारिणी इस मनोरथ-सिद्धि हेतु ग्रंथ प्रकाशनार्थ मुक्त-हस्त आर्थिक-सेवा करने वाले महानुभाव बंकटलाल जी बाहेती इचलकरणजी, ब्रजमोहनजी छापरवाल सूरत तथा प्रकाशचन्द्रजी बाहेती बम्बई का भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। भँवरलाल जी उपाध्याय, नवलबिहारीशरण जी व्यास ने मुद्रण-व्यवस्था में तथा राधेश्याम जी शर्मा दिशा-दृष्टि ऑफसेट, सीताराम जी शर्मा श्री गणेश ऑफसेट, सुनील सन्नी डी.टी.पी. ऑपरेटर ने प्रकाशन सम्बधिंत कार्य में तत्परतापूर्वक सक्रिय सहयोग दिया है। गृहस्थ की सर्वविदित विषम परिस्थितियों में भी मेरी इस तपश्चर्या में धर्मपत्नी शकुन्तला शर्मा का सर्वविध समर्पण रहा है। श्री सर्वेश्वर शर्मा, श्रीमती विजया शर्मा एम. ए., कु. विनीता शर्मा, सुबोध शर्मा ने हस्तलिखित पोथो से मुद्रण-प्रति तैयार करने तथा प्रूफ-संशोधन में मुझे अपनी उल्लेखनीय सेवायें दी हैं। किशनगढ़ शैली के चित्रकार श्याम जोशी तथा आत्माराम जी झांमनाणी-मैसर्स प्रताप हैंडीक्राफ्ट वालों ने भी अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। जयपुर प्रवास में सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान करने वाले महेन्द्र जी गार्गिया सुपुत्र स्व. नवल जी गार्गिया को भी धन्यवाद अर्पित करता हूँ। वे सभी महानुभाव एवं शुभचिंतक मित्र जिन्होंने मेरी सफलता के प्रति सद्भावपूर्वक मंगलकामनायें व्यक्त की हैं - वे भी साधुवाद के पात्र हैं। पूर्व पृष्ठांकित परामर्श-मंडल के सभी सदस्यों से प्राप्त सत्परामर्शदायी सहयोग के प्रति मैं उनका भी आभारी हूँ। अनन्त करूणालय सर्वविध-सिद्धि-दाता सर्वशक्तिमान श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु से यही अभ्यर्थना है कि ब्रजदासी-भागवत का यह प्रकाशन अत्यंत लोकप्रिय तथा सर्वजनहितकारी सिद्ध हो। अल्पज्ञता वश त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है अतः श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ तथा रसिक श्रोतागण मुझे उदारतापूर्वक क्षमा करेंगें।

विनीत

सर्वेश्वर-सदन, शिवाजी नगर
मदनगंज-किशनगढ़ (राज.)

युगलचरणारविंदों का गुरुनिष्ठ चंचरीक
डॉ. रामप्रसाद शर्मा (एम. ए. पी एच. डी. श्री निम्बार्कभूषण)
सम्पादक एंव शोध-कर्ता

॥ इति ॥

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः॥

श्रीराम कथा के विश्वविख्यात प्रवक्ता मानस मयूर, युगसन्त,

श्रीनिम्बार्करत्न श्रीमुरारी बापू 'हरिव्यासी'

महुआ (सौराष्ट्र) द्वारा अभिव्यक्त

॥ मंगल-कामना ॥

भगवान् श्रीवेदव्यास की पावनतम दिव्य लेखनी से निर्झरित वाङ्मय-श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीमद्भागवत अष्टादश पुराणों में शीर्षस्थ महापुराण है। इसी महापुराण श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद किशनगढ़ नरेश भक्तशिरोमणि रसिक वर्य्य श्रीनागरीदासजी की राजमाता एवं जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज की परम शिष्या भक्तिमती श्रीबाँकावती (श्रीब्रजदासी) कृत 'श्रीब्रजदासी-भागवत' है। भागवत के प्रत्येक श्लोक का अक्षरशः ब्रजभाषा-पद्यानुवादात्मक २५० वर्ष प्राचीन हस्तलिखित यह महान् भगवत्स्वरूप ग्रन्थ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ के वर्तमान जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज के पुनीत संकल्पानुसार प्रकाशित होकर भावुकजनों के समक्ष प्रस्तुत है। ऐसे अनुपम रसमय श्रीब्रजदासी-भागवत के 'श्रीरामचरितमानस' की भाँति नियमित स्वाध्याय एवं सामूहिक पठन से सभी लाभान्वित होंगे ऐसी सर्वाधिष्ठान भगवान् राधामाधव श्रीसर्वेश्वर प्रभु से मङ्गल - कामना है।

समर्पण

निकुंज-लीन पावन- पुण्यात्मा

श्री रामकरणजी बाहेती

आत्मज स्व. श्री लक्ष्मीनारायणजी बाहेती

तथा

श्री गिरिधरगोपाल एवं कु. माधवी छापरवाल

क्रमशः आत्मज एवं आत्मजा श्री बृजमोहनजी छापरवाल

की

पुण्य – स्मृति में

अखिल भारतीय जगद्गुरू श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरू श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी'

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

के परम पावन कर – कमलों में

सादर साष्टांग दण्डवत् प्रणामपूर्वक

समर्पित

समर्पक (दासानुदास)

(१) बंकटलाल प्रकाशचन्द्र बाहेती

(२) बृजमोहन नटवरगोपाल छापरवाल

श्रीब्रजदासी-भागवत के संरक्षक एवं प्रकाशक

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र-चूड़ामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश,
राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित
जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज
अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद-किशनगढ़ (अजमेर) राजस्थान।

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज की

ॐ मंगल-कामना ॐ

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में भगवान् वेदव्यास कृत अष्टादश विविध पुराणों की महिमा अनुपम है। उन समग्र पुराणों में भी श्रीमद्भागवत महापुराण का जो दिव्य माहात्म्य एवं लोकोत्तर पावन स्वरूप है वस्तुत: वह असमोर्ध्व है, अद्भुत है; अत्यन्त सरस मधुर एवं नानाविध ज्ञान-विज्ञान से प्रपूरित तथा निखिल-भुवनमोहन सर्वान्तरात्मा सर्वाधिष्ठान अखिल रसामृतसिन्धु रस परब्रह्म सर्वेश्वर आनन्दकन्द नन्दनन्दन भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के रसमय पावन चरित से ओतप्रोत हरिभक्ति रस सुधा महार्णवरूप अनिर्वचनीय है। श्रीशुकदेव जैसे वीतराग आप्तकाम पूर्णकाम महात्मा परमप्रवक्ता जिसका विवेचन करने वाले हों एवं अजातशत्रु भगवद्रसपिपासु परमभागवत परीक्षित जैसे महान् सरस उत्कृष्ट श्रोता हो ऐसे भगवद्वाङ्मयरूप श्रीमद्भागवत की दिव्यातिदिव्य महिमा का प्रतिपादन वाणी किंवा लेखनी का माध्यम नहीं है और ऐसी गीर्वाणवाणी में निबद्ध श्रीमद्भागवत का कोई हिन्दी-ब्रजभाषा आदि लोकभाषाओं में उसे उपनिबद्ध करना बिना भगवत्कृपा एवं उत्कृष्ट-वैदुष्य के कथमपि साध्य नहीं। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' यह लोक-विश्रुत प्रसिद्धि सर्वविदित है। किशनगढ़ राज्य के महान् सम्राट् परम-प्रख्यात श्रीसांवतसिंहजी (श्रीनागरीदासजी) महाराज की माताश्री बाँकावतीजी ब्रजकुँवरी (श्रीब्रजदासीजी) जो अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीगीतामृतगंगा वाणीकार श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज की परम शिष्या थीं जिन्होंने श्रीमद्भागवत के अठारह हजार श्लोकों का बीस हजार दोहा-चौपाई आदि विविध छन्दों में ब्रजभाषा-पद्यानुवाद करके विधिवत् प्रस्तुत किया जो सम्पूर्ण विद्वत् समूह के लिए परम विस्मयावह महनीय लोकोत्तर कार्य है। मुख्यत: विश्व की समग्र नारी-जगत् के लिये यह अत्यन्त गौरवास्पद प्रसङ्ग है। किशनगढ़ में तत्कालीन सामरिक विषम-समस्याओं के मध्य विपरीत परिस्थिति में राज-प्रासादों में एकाग्रतापूर्वक स्वस्थ मन से श्रीराजमाता द्वारा ऐसे अनुपम सरस साहित्य का सर्जन अकल्पनीय एवं अनिर्वचनीय महत्वपूर्ण असीम कार्य है। ब्रजदासी-भागवत की परम ललित मंजुल पदावली इतनी मधुरतम है कि भावुक हृदय सर्वेश्वर श्रीराधामाधव की ललितकेलि रससिन्धु में आप्लावित होकर अनन्तानन्द रससुधा का अनवरत पान कर अपने मनुज जीवन को कृतार्थ करता है। वस्तुत: ब्रजदासी-भागवत की रचना ही इतनी विलक्षण है जिसके भावगर्भित परम मञ्जुल गेय पद्यों को रसिक भक्तों का भावुक हृदय तनमनस्क भावातिरेक से पूरित हो कलकण्ठ से संगीत के रूप में प्रस्तुत कर अतिशय रसोल्लास का अनुभव करने लगता है। यथार्थ में यह अनूठी कृति श्रीयुगल कलित केलिरस को प्रदान करने वाली परम चित्ताकर्षक है। ऐसी विमल रसधारा का इस भूतल पर किसी को निमित्त बनाकर प्रवाहित होने में श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की कृपा ही प्रमुख है।

भगवद्-रसिक भावुक भक्तजनों का पावन कर्त्तव्य है ऐसे भगवद् वाङ्मय रूप इस महान् 'ब्रजदासी-भागवत' ग्रन्थ का परिशीलन कर इसका विधिवत् सप्ताह के रूप में प्रवचन-श्रवण-मनन का मङ्गलमय अलभ्य अवसर प्राप्त कर अपने अन्त:करण को रससिक्त करें। वस्तुत: ऐसे पुनीत कर्त्तव्यों में स्वयं को निहित करना अपने मानव जीवन का परम साफल्य है जिसे चरितार्थ करें।

'ब्रजदासी-भागवत' प्रकाशन में इसके सम्पादक, परामर्श-मंडल के सदस्य, व्यवस्थापक, मुद्रक आदि महानुभावों की सतत सेवायें परम श्लाघनीय एवं अनुकरणीय हैं। श्रीरामकथाप्रवक्ता विश्वविख्यात निम्बार्करत्न युगसन्त श्रीमुरारी बापू हरिव्यासी द्वारा 'श्रीब्रजदासी-भागवत' का विमोचन-समारोह भी परम गरिमापूर्ण एवं आदर्शमय है। भक्तवर श्री बंकटलाल जी बाहेती इचलकरणजी, श्रीब्रजमोहन जी छापरवाल सूरत तथा श्रीप्रकाशचन्द्र जी बाहेती बम्बई की प्रकाशन-सेवा भी परम गौरवास्पद है। सर्वनियन्ता सर्वेश्वर श्रीराधामाधव प्रभु से हम ऐसी सतत मङ्गल-कामना करते हैं कि 'ब्रजदासी-भागवत' के श्रवण-पठन से मानव मात्र का परम हित हो।

पुण्यात्माओं के प्रति कृतज्ञता

अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ, श्री निम्बार्क तीर्थ, सलेमाबाद के समीपस्थ ग्राम कड़ेल, पुष्कर क्षेत्र जिला - अजमेर राजस्थान के मूल निवासी भक्त प्रवर स्वनाम धन्य सेठ श्री लक्ष्मीनारायण जी बाहेती तथा उनकी धर्मपरायण पत्नी श्रीमती सुगनी देवी जी की पवित्र कुक्षी से बिहारीलाल, रामकरण, बंकटलाल नामक तीन पुत्रों एवं सरजू देवी, केसर देवी नामा दो पुत्रियों ने जन्म लिया। बिहारीलाल जी बाहेती देवयोग से निस्संतान ही चल गये। शेष भाई बहिनों के परिवार आज अत्यंत प्रतिष्ठित कुशल व्यापारी एवं भागवत - परायण निम्बार्कीय भक्त हैं। स्व. रामकरण जी बाहेती के सुपुत्र प्रकाशचन्द्र जी बाहेती बम्बई में कपड़े के प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं जिनके परिवार में उर्मिला लाहौटी, निर्मला बियाणी, शशिकला क़ाबरा तथा सुधा फोफलिया चार पुत्रियाँ तथा प्रशान्त व प्रीति नामक पौत्र-पौत्री हैं। श्री बंकटलाल जी बाहेती इचलकरणजी में कपड़े के कुशल व्यापारी हैं जिनके परिवार में रमेशचन्द्र जी, कमल जी, नवल जी नामक तीन सुपुत्र तथा वीणा लाहौटी, ललिता बियाणी, लीला भंडारी नामा तीन सुपुत्रियाँ हैं। बहिन श्रीमती सरजूदेवी जी रिड़ निवासी श्री मांगीलाल जी छापरवाल को ब्याही गई थी। भक्त प्रवर श्रीब्रजमोहन जी छापरवाल की आप ही माता श्री हैं। केसरदेवी जी कुचामन निवासी श्री घनश्यामदास जी साबू को ब्याही गई थीं। उल्लेखनीय यह है कि ये सभी परिवार आचार्य श्री द्वारा दीक्षित, आचार्य पीठ के प्रति समर्पित तथा श्री निम्बार्क परम्परानुगत श्री युगल चरणारविंदों के अत्यंत निष्ठावान् - सेवाभावी भावुक भक्त हैं। ऐसे परिवार में मूलाधार-प्रेरणास्त्रोत, अग्रणी - दिशादर्शक तथा शुभकारी समन्वयक पुरुष श्री निकुंज लीन परमभागवत स्व. श्रीरामकरण जी बाहेती ही थे जो पूज्याचार्य श्री चरणों के प्रति अनन्य-निष्ठावान, तन-मन-धन से समर्पित, कर्मठ-सेवाभावी-भक्त थे तथा जिनकी आचार्य पीठ की अपूर्व वर्चस्व-वृद्धि में क्रियात्मक - सदाशयता रही है। युवाकाल की प्रारंभिक अवस्था में समाज-सुधारक बाहेती जी की अकिंचन - साधनहीन तथा अनाथों की सेवा में अत्यंत गहरी रुचि रही थी, इसीलिए आप कर्मठ आर्य समाजी कार्यकर्त्ता बने। तदनन्तर इन्हीं बाहेती जी को वर्तमान श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज से दीक्षा दिलाकर, आचार्य पीठ के संस्थापक अनंत श्री विभूषित ३६ वें जगद्गुरु श्री परशुराम देवाचार्य जी महाराज ''श्रीस्वामी जी महाराज'' के चरणारविंदों की अनन्य श्रद्धा सन्निधि में युगल-स्वरूप श्रीराधामाधव की लीला-माधुर्यपूर्ण-रसोपासना के अमृत सरोवर में आकंठ-निमग्न कराने का पुण्यकारी श्रेय उनकी बहिन भक्तिमति सरजूदेवी जी को है।

श्री निम्बार्काचार्य पीठ की अभिवृद्धि एवं उसके वर्चस्व की लोकविश्रुति कराने में आपके द्वारा संपादित सेवाओं का बड़ा महत्व रहा है। सन् १९७५ ई. में प्रथम बार आचार्यपीठस्थल पर आयोजित अ. भा. विराट सनातन धर्म सम्मेलन के महामंत्री के रूप में आपका दायित्वपूर्ण समन्वयक क्रियान्वयन तथा संयोजन अत्यन्त सफल और प्रशंसनीय रहा है। विश्वविख्यात श्रीरामकथा प्रवक्ता श्रीमुरारी बापू की 'रामकथा' का आचार्यपीठ पर आयोजन कराने में आपकी उपाध्यक्षपदीय महती भूमिका रही है। समागत-विविध- कुंभपर्वों, श्री कृष्णजन्माष्टमी आदि महामहोत्सवों तथा अधिक मासीय-भागवत-कथायज्ञादिक अनुष्ठानों को सफल बनाने में आप सदैव अग्रणी रहे हैं। आचार्यपीठ द्वारा संचालित संस्कृत महाविद्यालयों के लिए आर्थिक अनुदान संग्रह करने में आपकी प्रेरणात्मक सेवायें उल्लेखनीय रही हैं।

'श्री ब्रजदासी भागवत' प्रकाशन के मूल प्रेरक

स्व. श्रीरामकरणजी बाहेती
(स्वर्गवास दिनांक ३.६.९२ ई.)

स्व. श्री गिरधरगोपाल छापरवाल
(स्वर्गवास दिनांक २२.१.९१ ई.)

स्व. कु. माधवी छापरवाल
(स्वर्गवास दिनांक २.१२.९४ ई.)

'श्री ब्रजदासी भागवत' के प्रस्तुत प्रकाशन का मंगलदायी मनोरथ आचार्य श्री के मुखारविंद से कई शुभाशीर्वादात्मक अवसरों पर अभिव्यक्त हो चुका था; तदनुरूप प्रातः स्मरणीय गुरु चरणों के इस पुनीत संकल्प को पूर्ण कराने वाले मूल प्रेरक श्री बाहेती जी रहे हैं। आपके भाणेजश्री बृजमोहनजी छापरवाल के सद्य-विवाहित पुत्रगिरिधर गोपाल छापरवाल के विवाहोपरान्त दूसरे ही दिन कालकवलित हो जाने से विह्वल-पितृ-हृदय को सांसारिक नश्वरता के वैराग्यपूर्ण ज्ञान से शमित करते हुये आपने 'गिरिधर-स्मृति' के रूप में श्रीचरणोंकी भावनानुसार मृतात्मा के शांत्यर्थ 'श्री ब्रजदासी - भागवत' के प्रकाशन कराने की सर्वमंगलकारी प्रेरणा दी। विधि की विडम्बना है कि दो वर्ष पूर्व श्रीस्वामी जी की अनन्य कृपा तथा श्री सर्वेश्वर महाप्रभू के नामस्मरण एवं मंत्रराजके मृत्युंजयी जप के अनन्याश्रय से लंदन में जिनकी हृदय-शल्य-चिकित्सा सफल हुई थी, ऐसे अदम्य - साहस और प्रगाढ़ जिजीविषा वाले बाहेती जी इस घटना के कुछ समय बाद ही निकुंज लीन हो गये। अपनी मृत्यु का आभास पाकर आपने कनिष्ठ भ्राता बंकटलाल जी तथा आत्मज प्रकाशचंद्र जी को भी 'श्री ब्रजदासी भागवत' के प्रकाशन में अपनी महती-सेवा-समर्पित करने का संकल्प कराया। श्री सर्वेश्वर प्रभू से अभ्यर्थना है कि श्रीनिकुंजलीला प्रविष्ट आत्मा को परमानंद की प्राप्ति हो।

स्व. श्रीरामकरण जी बाहेती की रिड़ ग्राम में ब्याही बहिन सरजूदेवी जी परमसाध्वी, संत सेवा परायणा, श्रीमद्भागवत कथामृत की रसिक श्रोता, रासलीला रसज्ञा, श्री सर्वेश्वर प्रभू एवं श्रीराधामाधव जी की अनन्यभक्त थीं जिन्हें श्री स्वामी जी महाराज एवं श्री आचार्य चरणों के प्रति अनन्य निष्ठा थी। श्री ब्रजमोहन छापरवाल इन्हीं के सुपुत्र हैं जिनके बालसुलभ सुकोमल मानस में माता श्री द्वारा वंशानुगत निम्बार्कीय रसोपासना के संस्कार अंकुरित एवं पल्लवित किये गये थे। पिताश्री भक्तप्रवर श्रीमांगीलालजी छापरवाल एवं माताश्री सरजूदेवी जी ने रिड़ में श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ प्रवक्ता अधिकारी जी श्रीब्रज बल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ से श्रीमद्भागवत कथा का साप्ताहिक पारायण करवाया था जिसके समापन-उपलक्ष्य वर्तमान अ.भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीश्रीजी महाराज की श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु की सेवा सहित पधरावणी करवाई गई थी। हाथी - घोड़े - नगारे - निशान से सुसज्जित राजसी लवाजमें तामझाम सहित बड़ी धूमधाम से श्री आचार्यचरणों की पधरावणी का यह दृश्य नयनाभिराम था। इसी शुभावसर पर भक्तिमति माता श्री ने पंचवर्षीय बालक श्रीब्रजमोहन को आचार्य श्री से मंत्र-दीक्षा दिलाई थी, वैष्णवी - संस्कारों का यही बीजारोपण श्रीआचार्य चरणों के सतत सानिध्य-सेवन से निरन्तर प्रस्फुटित एवं पुष्पित हो रहा है।

सूरत में सिल्क-व्यवसाय रत कुचामन निवासी श्री ब्रजमोहन जी छापरवाल श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायी भक्त समुदाय में परम वैष्णव, आचार्य श्रीचरणों के परम-अनुरागी, आचार्यपीठ की सेवा में सतत समर्पित भावुक भक्त माने जाते हैं। कुंभादि महापर्वो, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आदि महोत्सवों, अ.भा. विराट् सनातन धर्म-सम्मेलनों, श्री मुरारी बापू की श्रीरामकथादि अभूतपूर्व वृहदायोजनों, पुरुषोत्तम मासीय-भागवत-कथा-यज्ञादि अनुष्ठानों में आप सदैव अग्रगण्य सेवाभावी रहे हैं। अंतरंगभाव से महाराज श्री के महल की टहल आपकी अनुकरणीय साधना रही है। बाजवास निवासी रामकिशन जी भराड़िया की सुपुत्री श्रीमती बसन्ती देवी जी आपकी धर्मपत्नी भी आपके अनुरूप ही आचार्य श्री से दीक्षित भावुक भक्त वैष्णव धर्मपरायणा आदर्श महिला है। छापरवाल जी के कृष्णा सोमाणी, सरला मालपाणी दो पुत्रियाँ हैं अब एकमात्र पुत्र नटवर गोपाल छापरवाल है तथा अभिषेक सौंभाग्यशाली पौत्र है। आपके ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्री गिरिधर गोपाल बड़े होनहार थे जिन्होंने अल्पायु

में सी.ए. की शैक्षणिक योग्यता प्राप्त कर सूरत स्थित व्यवसाय का उल्लेखनीय विस्तार कर दिखाया था। आप भी आचार्य श्री चरणों से दीक्षित तथा वैष्णव संस्कारशील धार्मिक अभिरूचि वाले नवयुवक थे। श्रीमद्‌भागवत के प्रति अनन्य निष्ठा और श्रीस्वामी जी महाराज का इष्ट ही इनके जीवन का संबल था। २१ जनवरी सन् १९९१ ई. को बसंतपंचमी के दिन मकराना में आपका विवाह हुआ था कि दूसरे ही दिन २२ जनवरी को प्रातः ८ बजे आपका हृदय विदारक निधन हो गया।

इस वज्राघात से आहत छापरवाल जी के संतप्त हृदय को श्री आचार्यचरणों के सदुपदेश रूपी सान्त्वना से अमृततुल्य जीवनदायी संबल मिला। तथापि छापरवालजी के हृदय को क्रूर नियति ने पुनः पुत्री शोक से संतप्त कर दिया। विधि की क्रूर विडम्बना से २ दिसम्बर १९९४ ई. को इनकी सुपुत्री बीस वर्षीया कु. माधवी का भी दुर्घटना से दुःखद निधन हो गया।

ऐसी विषम दुःखदायी परिस्थितियों में भगवत-शरणागति, गुरु चरणों के आश्रय एवं सतसंग से उत्पन्न वैराग्यजनित ज्ञानसे पंचाभूतात्मक सृष्टि का मायामोह तिरोहित हो जाता है तथा युगलचरणों के प्रति परम-अनुरक्ति रूपी प्रेम लक्षणाभक्ति की अंतः सलिला तैल्य धारावत प्रवहमान होकर भक्तात्मा को पुनः रससिक्त एवं सुस्निग्ध कर देती है। सर्वशक्तिमान - सर्वनियन्ता, अनन्तानन्त-करूणालय श्री सर्वेश्वर प्रभु ही अमंगल में मंगल का विधान तथा दुर्भाग्य में सौभाग्य का सृजन कर प्रपन्न - हृदय में सुख-दुःख, लाभ-हानि, यश-अपयश, हित-अनहित के प्रति समरसता का भाव उत्पन्न कर देते हैं।

परब्रह्म-परमेश्वर-अखिल-ब्रह्मांड नायक श्री सर्वेश्वर श्रीकृष्ण भगवान की इसी रहस्यमयी लीला से निकुंज लीला प्रविष्ट पूर्वोक्त सभी पुण्यात्मायें 'श्रीब्रजदासी भागवत' के प्रस्तुत प्रकाशन की निमित्त बन गई हैं; लीला-वैचत्र्य की यह अकथनीय प्रत्यक्षानुभूति दर्शनीय है।

श्री आचार्य चरणों के मनोरथ पूर्ति के निमित्त दासानुदास भाव से 'श्री ब्रजदासी-भागवत' की प्रस्तुत प्रकाशन रूपी चिरकाल पर्यंत अविस्मरणीय सेवा करने वाले सभी महानुभाव श्रीमद्‌भागवंत महापुराण के सहस्त्राधिक कथानुष्ठानों, साप्ताहिक पारायणों का पुण्यफल रूपी परमानंद प्राप्त करेंगे। इस 'श्री ब्रजदासी भागवत' से कोटि कोटि वैष्णवजन श्रीकृष्णकथामृत का रसास्वादन कर साधुवाद पूर्वक आप सबकी अनवरत मंगल कामना करते रहेंगे। श्रीचरणों का शुभाशीर्वाद सर्वविधमंगलकारी सिद्ध होगा ।

डॉ. राम प्रसाद शर्मा
(सम्पादक)

समर्पकों की सद्भावना

श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु, श्रीराधामाधव, भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य, अनन्त श्रीविभूषित स्वामी जी श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी महाराज तथा परम पूज्यनीय आचार्य चरणों की महती कृपा से हमें 'ब्रजदासी-भागवत' के प्रति इस प्रकाशन सेवा का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिसकी निमित्त पूर्वोक्त पुण्यात्माओं की प्रेरणायें रही हैं; सर्वशक्तिमान श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु का अगम्य लीला-विधान सदैव मंगलकारी होता है; साधारण प्राणियों के लिए उनका यह लीला वैचित्र्य समझ पाना अत्यन्त कठिन है। अत: श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु से हमारी यही अभ्यर्थना है कि इस महती सेवा का पुण्यदायी फल उन्हीं निकुंजलीन महान् आत्माओं को प्राप्त हो।

दासानुदास-भाव से आचार्य पीठ के प्रति हमारे हृदय में सदैव यथाशक्ति सेवा-समर्पण की जो सद्भावना पूर्वजों की प्रेरणा से अद्यावधि रही है; उसका निर्वाह भगवत्कृपा से भावी पीढ़ी भी करती रहेगी - ऐसा दृढ़ विश्वास है। 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पय' - की पवित्र-भावना से ही प्रभुचरणों में समर्पण स्वीकार्य होता है; अत: हमारी ऐसी सद्भावना श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु के चरणों के प्रति अनवरत बनी रहे यही हार्दिक अभिलाषा है। हमारे निम्बार्क-साम्प्रदायिक वैष्णवी परिवार में श्रीमद्भागवत महापुराण के कथानुष्ठान के प्रति अगाध निष्ठा परम्परागत रही है। मातृशिक्षण के रूप में श्रीमद्भागवत जी ने हमें बाल्यकाल में ही युगल चरणारविंदों में अनन्य निष्ठा की भावना प्रदान की है। ब्रजदासी-भागवत के सफल-प्रकाशन का सम्पूर्ण श्रेय आचार्य-चरणों की महती कृपा में निहित है अत: हम उनके चरणों का नमन करते हैं। ब्रजदासी-भागवत के विमोचनकर्त्ता विश्वविख्यात युग संत श्री मुरारि बापू के चरणों का भी नमन करते हैं। सम्पादक डॉ. रामप्रसाद जी शर्मा का इसमें सर्वोपरि अथक श्रम रहा है जो सर्वविदित है; अत: हम उनके प्रति तथा परामर्श-मंडल के सदस्यों, मुद्रण-व्यवस्थापकों, मुद्रकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुये श्रीसर्वेश्वर महाप्रभु के चरणों में मंगल कामना करते हैं कि ब्रजदासी भागवत का यह प्रकाशन अत्यंत लोकप्रिय हो तथा घर-घर में सप्ताह जी के रूप में इसका कथानुष्ठान अत्यंत व्यापक हो। अन्तत: पुन: श्री चरणों की कृपा से प्राप्त इस तुच्छ सेवा-सौभाग्य के प्रति हम उनके पवित्र चरणारविंदों में सादर साष्टांग दंडवत प्रणाम करते हैं तथा उनके शुभाशीर्वादात्मक वरदहस्त की सविनय अभिलाषा करते हैं।

विनीत

श्रीआचार्यचरणों के कृपाकांक्षी दासानुदास

बंकटलाल बाहेती, ब्रजमोहन छापरवाल एवं प्रकाशचंद्र बाहेती

शुद्धि - पत्र

ब्रजदासी - भागवत (प्रथम - खंड)

शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
लौकिक	लैकिक	४	१०	अव	अंव	१५१	१२
रहस	रहन	४	१६	पहरैं	चहरैं	१७५	१६
कुंड	कंड	४	२१	मुक्ति	भक्ति	१९९	५
तजौ	तज्यौ	६	५	कटै	कट	२२२	२५
क्रिपा	क्रिया	११	१०	जीव	जाव	२२९	१७
तोकौ	तीकौं	११	१९	भूपत	भूपति	२६६	१३
तैं	तौ	१७	२२	पर्यो	पया	२८४	१८
आंहिं	मांहिं	२१	१५	लोभैं	लाभैं	३४५	१२
सुरसति	रसमति	२४	१७	त्रिबिधिहुँ	(चरण	३४५	२०
भयौ	भर्यौ	२७	३१	तापं	छूट		
जाहीं	नाहीं	४३	१७	भजैं जूं	गया		
जो	जा	४७	६	भजावैं।	है)		
करन न	करनन	५८	८	जु प्रसध्य	सप्रध्य	४०९	२
प्रजाजन	प्रजानन	६०	१७	पूरक	कपूर	५१४	११
देवकी	देव की	६७	५	आदिति	आदित	५६८	६
अलप	सुलप	७१	२	आदिति	आदित	''	७
कुर	कर	७२	११	अदिति	अदित	''	८
चित्त	चित्र	९३	९				
			(भूमिका)				
दोहे (१३०)	दोहे (१३४)	२४	३३				

भूमिका

श्रीमती ब्रजदासी जी एवं उनकी ब्रजदासी भागवत

निम्बार्कीय रसोपासना में सुख्यात - सखी 'ब्रजदासी जी'

जयति जयति ब्रषभांन, नंदिनी विस्वस्वामिनी ।
सकल सक्ति जिहँ सेव, करत हरि हिंदैं गामिनी ॥
तिहं अंसा अवतार, रमा गिरिजा रु सावित्री ।
दासिनी अति आनंद, दैंनि मांनत निज मैत्री ॥
जे परम प्रिया भगवांन की, भगत बछल करुना ढ़रन ।
उहिं बारंबार बंदन करत, ब्रजदासी गहि पद सरन ॥ (मंगलाचरण - द्वादस - स्कंध)

श्री वृषभानुनंदिनी नित्यकिशोरी श्रीराधाजी; रसरूप - परब्रह्म परमानंद - स्वरूप रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति तथा अंतरंगभूता उनकी हृदयेश्वरी प्रिया हैं, रमा - गिरिजा आदि इसी परमेश्वरी विश्वस्वामिनी के अंसावतार हैं। ऐसी सर्वेश्वरी भक्त वत्सला - करुणाकरण श्रीराधाजी की चरणाश्रिता 'ब्रजदासी' उन्हें बारंबार वंदना करती है।

परम गुह्य निम्बार्कीय निकुंज-उपासना-रहस्यानुसार ये ही निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी; आदि-अनादि-एकरस, अद्‌भुत, सर्वदा-सनातन-सच्चिदानंद-स्वरूप, रसरूप-परब्रह्म-परमानंद भगवान् श्रीकृष्ण की परम प्रिया आराधिका हैं। युगल-स्वरूप में ही उनके उभयात्मक रसरूप की पूर्णता होने से भगवान् श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा उन्हीं के अनुरूप परम-शोभायमान परमाह्लादिनी श्रीराधिका जी की कृपा-वांछा करते हैं। रसिकों के रस-भवन-निकुंज में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण निकुंज-बिहारी के रूप में लाडलीलाल नित्य-राधारमण हैं। इसीलिए परम रसिकवर्य्य श्री हरिव्यास देवाचार्य जी ने श्रीमहावाणी जी में युगल का तात्विक विवेचन करते हुये कहा है :-

उदधि महामाधुर्यके, रसिक दोऊ रसभौंन ।
सदा सर्वदा एकरस, राजत राधा रौंन ॥ (सि. सुख)

निकुंज-भवन में प्रतिपल निकुंज-क्रीड़ारत प्रिया प्रियतम लाडलीलाल की नव नव भावों के उल्लसित हृदय से सहचरी भाव की सेवा में तत्पर रहने वाले रसिकों के लिए निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी ही सर्वस्व हैं; स्वामिनी श्रीराधाजी का सहचरियों-सखियों के प्रति सहजभाव होने से सहचरियाँ उन्हीं के चरणाश्रित, एकमात्र उन्हीं की कृपाकांक्षिणी होती हैं जिन्हें निकुंज-रंध्रों से रतिरत प्रियाप्रियतम के दर्शन की तल्लीनता के लिए ही युगल का सुखद-सान्निध्य अभिलषित है। सहचरी-सेवा-सुख की गुह्यतम भावना में निमग्न 'ब्रजदासी - भागवत' के उपर्युक्त मंगलाचरण प्रसंग में सखी-भाव से यहाँ श्रीराधिका जी की बारंबार चरण-वंदना कर रही परमसाध्वी ब्रजकुँवरी 'ब्रजदासी' जी का स्वर्णिम वर्चस्व आज अतीत के अंधकार में विलुप्त हो गया है।

'ब्रजदासी जी' वि. सं. १७७६ से लगभग १८३० वि. तक भूतपूर्व कृष्णगढ़ राज्य के इतिहास में राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों एवं तत्सम्बंधित घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण धुरी रही हैं। विश्वविख्यात संत-भक्त कवि श्रीनागरीदास, बनीठनी, सुंदर कुंवरी, छत्रकुँवरी, आनंदघन आदि तात्कालिक हिन्दी भाषा के रीतिनीति एवं श्रीराधाकृष्णपरक मधुर भक्ति के सुख्यात कवियों का व्यक्तित्व कृतित्व इन्हीं राजमाता ब्रजदासी जी की वात्सल्यमयी प्रेरणात्मक मातृछाया में पल्लवित-पुष्पित तथा फलित हुआ है। राजपाट का परित्याग कर श्रीधाम वृन्दावन के कुंज-रंध्रों से निकुंज बिहारी बिहारिणी जी की निकुंज-केलि-क्रीड़ाओं को निहार कर कलम-कूंची से रससिद्ध रीतिकाव्य एवं तदनुरूप उनकी चित्रकारिता में चमत्कारवत् उसे उतारने वाले तथा इस धरा के चुम्बकत्वीय कलात्मक-आकर्षण को अंतर्राष्ट्रीय-दिग्दिगन्तों में प्रसारित करने वाले संत नागरीदास की यही विमाता उनकी गुरुत्वाकर्षण-केन्द्र-शक्ति बनकर उनके साथ श्रीवृन्दावनधाम निष्ठा से युगल-चरणों में समर्पित हो गई।

'ब्रजदासी जी' की अमरकृति 'ब्रजदासी-भागवत' के नाम से सुख्यात श्रीमद्भावत महापुराण का मारवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा में किया गया सरलतम जनकल्याणार्थक पद्यानुवाद है। उनके इस विशालकाय कृतित्व से उनके परम वैदुष्यपूर्ण-भागवत परायण-भावुक कविहृदय के विलक्षण वर्चस्व का प्रतिपादन होता है। आचार्य पीठ सलेमाबाद में वि.सं. १८३४ में लिपिबद्ध की गई - 'ब्रजदासी भागवत' की पोथी में प्रत्येक स्कंध के प्रारंभ में पोथीकार ने इस प्रकार का परिचयात्मक शीर्षस्थ लेख दिया है :- ''कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराजराजेश्वर राजा श्री राजसिंह जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुँवरी

जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी जी' कृत श्रीमद्भागवत - भाषा पद्यानुवाद।'' इससे पोथीकार ने ब्रजदासी जी के व्यक्तित्व कृतित्व की प्रामाणिकता का मुद्रांकित प्रतिपादन कर दिया है कि आप श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती उपनाम 'ब्रजदासी जी' कृष्णगढ़ के महाराजा श्री राजसिंह जी की द्वितीय महारानी थी तथा आपने श्रीमद्भागवत महापुराण का भाषा पद्यानुवाद किया था, उक्त भाषानुवाद की यह प्रामाणिक प्रति है। इस शीर्षस्थ लेख से भी ऊपरांकित ''श्री सर्वेश्वरोजयति'' तथा ''श्रीराधाकृष्णाभ्यां नम:'' आदि दिव्य-स्मरणों को लिखकर निम्बार्क संप्रदाय के उपास्य-देवों का स्मरण करते हुये भी पोथीकार ने 'ब्रजदासी' जी की संप्रदाय-सम्बद्धता स्पष्ट रूप से घोषित कर दी है। पोथीकार के इन तथ्यों की प्रामाणिकता 'ब्रजदासी-भागवत' की अंतिम पुष्पिका में उल्लेखित अंत:साक्ष्यों से स्वयं महारानी ब्रजकुँवरी जी ने सिद्ध कर दी है।

कृष्णगढ़ राज्य की तात्कालिक राजधानी रूपनगर के सन्निकट अ.भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ के तात्कालिक पीठाधिपति अ. ज. श्रीविभूषित श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज श्रीमती ब्रजकुँवरी बांकावती के मंत्र-उपदेष्टा गुरु थे तथा उन्हीं के निर्देशन में आपने गुरुप्रदत्त रसोपासनात्मक सखीपरक कविनाम 'ब्रजदासी जी' से उक्त विशालकाय पद्यानुवाद को वि.सं. १८१२ में पूर्ण किया था। इसीलिए उन्होंने अपने व्यक्तित्व के निर्माता पीठस्थल तथा गुरुचरणों के प्रति अनन्य समर्पण भाव से निकुंज-रहस्यात्मक-मंगलाचरण-प्रसंग में निम्न प्रशस्ति की है :-

जयति गुरु वृंदावन देव, जयति पीठ निंबारक ।
जय रसिक राजेस्वर कृस्नं, श्रीवृंदावन नाइक ॥
जयति श्री वृषभानुं सुता, स्वामिनी सुष रासीय ।
जयति श्री भागवत भगत, प्रभु चरन उपासीय ॥
इन्ह पाइ क्रिपा परिनांम करि, ब्रजदासी आनंद भरि ।
करिहैं अबै स्कंध नवम कौं, हिय आरंभ उमाह धरि ॥

(मंगलाचरण - नवम स्कंध)

चिरस्मरणीय धरोहर :- ब्रजदासी जी के अंतर्मन में उनके गुरुवर्य्य श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी तथा उनकी गुरु पीठ श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, श्री निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद के प्रति सर्वस्व-समर्पण का अनन्य-भाव विद्यमान था। 'ब्रजदासी जी' का व्यक्तित्व - कृतित्व; उनका इहलौकिक-पारलौकिक अस्तित्व सभी कुछ गुरु-प्रदत्त था। 'नाम-काम-धाम' का समस्त ऐश्वर्य गुरु कृपा का ही फल था। मंत्र-उपदेष्टा गुरु की शरणागति ही उनकी मुक्ति-भुक्ति दायिका चरमपरिणति थी। गुरु-गोविन्द की अभिन्नता ही उनका गुरुदर्शन था। भागवत-पद्यानुवाद की मूलाधार काव्य प्रतिभा गुरु के कृपापूर्वक ज्ञान-निर्देशन से ही निखर कर उनकी सृजनात्मिका कवित्व शक्ति एवं काव्यमति वन कर उजागर हुई थी। गुरु शरणागति से ही 'ब्रजदासी जी' का मनोरथ सफल हुआ था। जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने 'ब्रजदासी-भागवत' की पोथी रूपी धरोहर का कृतज्ञतापूर्वक समर्पण कर गुरु भक्ति की पराकाष्ठा का परिचय दिया था, जो अद्यावधि पीठ के ग्रंथागार में विद्यमान है। कृतित्व की सफलता के प्रति निरहंमतापूर्ण आत्म-स्वीकृति, तदनन्तर प्रभु-चरणों में कृतित्व भाव का सविनय-स्वात्म-निवेदन पूर्वक निष्काम-समर्पण ही वस्तुत: समर्पण है; प्रभु को नैवेद्य तभी अंगीकार होता है जब भक्त की यह भावना हो कि ''त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'' भक्तिभावनात्मक समर्पण का यही रहस्य है :-

म्हेरा मुझ में कछु नहीं, जो है सोइ तेरा ।
तेरा तुझको सौंपता, का लागिहै म्हेरा ॥

भक्त के उपास्य-विग्रह उनके प्राणों से प्रिय होते हैं। ब्रजदासी जी ने तो अपने और अपने मित्रवत् पति म. राजसिंहजी के उपास्य स्वरूप ठाकुर नगधर और बांकावती संयुक्त 'श्री बांके बिहारी जी' के युगल विग्रह को भी जो कांस्यमिश्रित पीतल की प्रतिमा के रूप में है, गुरु पीठ को समर्पित कर दिये थे, जो अद्यावधि तथा अ.भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठस्थ श्री राधामाधव जी के पार्श्व-भाग में विद्यमान हैं तथा जिनकी पूजा-अर्चा 'ब्रजदासीजी' की भावनानुसार निम्बार्कीय परंपरानुसार विधिवत् होती है। वि. सं. १७७६ में अपने विवाहोपरान्त श्री ब्रजदासी जी ने अपनी श्रीधामनिष्ठा से सतत-वृन्दावनवास की भावनापूर्ति हेतु महाराजा राजसिंह जी से कहकर 'किशनगढ़ कुंज' का निर्माण करवा लिया था, यहाँ

आप अधिकांशत: युवराज सावंतसिंह, बनीठनी, सुंदर कुँवरी आदि परिजनों के साथ वृन्दावनवास किया करती थी; अन्तत: वि. सं. १८१४ के बाद यहां विरक्त होकर नागरीदास जी के वृन्दावन वास करने से यह उपासनास्थल 'नागरीदास घेरे' तथा 'नागर कुंज' के नाम से विख्यात हो गया। 'नागर-कुंज' का बाह्य भाग नागरीदास जी के निकुंजलीन होने पर अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद को समर्पित कर दिया गया था तथा वहाँ भी निम्बार्कीय पूजा पद्धति से नागरीदासजी के ठाकुरजी का सेवापूजन पीठाधीन ही था - यदि ब्रजदासी जी चाहती तो उनके श्रीबांकेबिहारी वहाँ भी विराजमान कर दिये जाते पर उनका पीठ में समर्पित किया जाना गुरुपीठ के प्रति अनन्य भाव का सूचक है। श्री निम्बार्काचार्य पीठ के श्रद्धालु भक्त जन धन्य हैं जिन्हें अनेक भंगिमाओं से संयुक्त इस विलक्षण विग्रह के दर्शनों का सतत-सौभाग्य प्राप्त है।

सुख्यात व्यक्तित्व-कृतित्व :- महारानी ब्रजकुँवरी जी का व्यक्तित्व कृतित्व हिन्दी के ब्रजभाषा साहित्य में 'ब्रजदासी जी' के नाम से सुख्यातिमान रहा है। मिश्रबन्धु विनोद, महाकवि वृन्द की बचनिका, नागरी प्रचारिणी सभा के खोज-विवरणों, कविवर जयलाल द्वारा संपादित नागर-समुच्चय, पं. बिहारीशरणजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित निम्बार्क-माधुरी, सुंदर कुँवरी जी कृत मित्रशिक्षा, वियोगी हरि कृत ब्रजमाधुरी सार, प्रभुदयाल मीतल कृत ग्रंथ ब्रज के धर्मसंप्रदाय, डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी के ग्रंथ कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव, डॉ. मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थान का पिंगल साहित्य', सर्वेश्वर के सम्पादक पं. व्रज वल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ द्वारा संपादित नागरीदास आदि अन्य विशेषांक, डॉ. नारायणदत्त शर्मा कृत शोधप्रबंध 'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके कृष्णाभक्त कवि, डॉ. किशोरीलाल गुप्त द्वारा संपादित नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित नागरीदास ग्रंथावली, डॉ. फैय्याज अली खाँ के शोध प्रबंध भक्त प्रवर नागरीदास तथा डॉ. राजकुमारी शिवपुरी के राजपूताने के राजघरानों की हिन्दी सेवा तथा डॉ. सावित्री सिन्हा के मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ आदि अन्यान्य उल्लेखनीय शोध-प्रबंधों में श्री ब्रजदासी जी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

यहाँ इन सब ग्रंथों के तत्सम्बधित आलेखों का विवरण देना विषय-विस्तृति के कारण असंभव है, संक्षिप्त रूप से यह लिखना ही पर्याप्त होगा कि उपर्युक्त विद्वानों ने सार रूप में यही कहा है कि कृष्णगढ़ राष्य के संस्थापक कृष्णसिंह जी की पांचवीं पीढ़ी के महाराजा रूपसिंह के पौत्र महाराजा राजसिंह जी की द्वितीय महारानी ब्रजकुँवरी जी ने 'ब्रजदासी' नाम से तात्कालिक निम्बार्काचार्य श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी के गुरु निर्देशन में श्रीमद्भागवत पुराण का 'ब्रजदासी - भागवत' नामांकित विस्तृत पद्यानुवाद कर अपना नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर कर दिया है।

ब्रजदासी जी संस्कृत, ब्रजभाषा, मारवाड़ी - ढूंढाड़ी भाषा की - प्रकांड विदुषी, श्रीमद्भागवत महापुराण की पूर्ण मर्मज्ञ, प्रतिभाशाली पद्यानुवादक, सिद्ध हस्त - लोकोद्धारक कथाकार, वैष्णव-भक्ति दर्शन की सरलतम-व्याख्याकार, पिंगलादि अलंकारशास्त्र की परमज्ञाता, पौराणिक-ऐतिहासिक-बहुज्ञतापूर्ण वर्चस्वी साहित्यकार थीं। निम्बार्कीय-निकुंज-रसोपासना के परमगुह्य सखी-भाव से सतत-साधना करने वाली परमभागवत-भक्त राजमहिषी ब्रजकुँवरी जी निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रति अत्यन्त निष्ठावान, परमभक्ति परायणा भावुक कवयित्री थीं जिन पर उनके परमाराध्य भगवान् श्री सर्वेश्वर तथा भगवत्स्वरूप परम गुरु तपोनिष्ठ निम्बार्क पीठाधिपति श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की अपूर्व कृपा थी; तभी तो 'ब्रजदासी - भागवत'का सप्तवर्षीय दुर्लभ अनुष्ठानरूपी यह १९,३७५ छन्दों का वृहद भाषा पद्यानुवाद भागवत-वाहिनी-गंगासदृश विशालकाव्य सम्पूर्ण हो पाया था। उनकी यही धरोहर हिन्दी साहित्य की 'न भूतो न भविष्यति' परमनिधि है।

'ब्रजदासी जी' का दूसरा रूप वात्सल्यमयी-पालयित्री-मातृशक्ति का रहा है जिनकी सरस-सहृदयतापूर्ण मातृच्छाया ने महाकवि नागरीदास जी को श्रीवृन्दावन योगपीठ की परम गुह्य निकुंज रसोपासना की ओर सतत प्रेरणा दी है; आपने ही अपनी पुत्री सुंदर कुँवरी, प्रपौत्री छत्रकुँवरी जी की रीतिसिद्धि-भक्ति-परक काव्य प्रतिभारूपी वल्लरी को सिंचित-सुपोषित किया है। आपके ही वात्सल्यपूर्ण वरद-हस्त से आपके रनिवास की परिचारिका 'विष्णुप्रिया' का व्यक्तित्व निखर कर महामोहिनी 'बनीठनी' बना जो अन्तत: नागरीदास जी की अनंग-सहयोगिनी 'निकुंज-मंजरी' तथा 'रसिक बिहारी' की 'सामरि' रूप में उजागर होकर निकुंज - लीन हो गया। इस प्रकार आपका परम यशस्वी प्रेरक चरित्र सदैव वंदनीय रहेगा।

महारानी ब्रजकुँवरी जी बांकावती उपनाम 'ब्रजदासी जी' कृत ''ब्रजदासी - भागवत''

अस्तु हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महारानी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती भूतपूर्व कृष्णगढ़ (किशनगढ़) राज्य के महाराजा श्री राजसिंह जी की द्वितीय धर्मपत्नी तथा महाराजा सांवतसिंह उपनाम 'नागरीदास' जी की विमाता थी; जिन्होंने किशनगढ़ राज्यांतर्गत स्थित अ.भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, श्री निम्बार्कतीर्थ सलेमाबाद के तात्कालिक पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी से मंत्र-दीक्षा लेकर तथा इन्हीं गुरुवर्य्य द्वारा 'श्री ब्रजदासी जी' के उपनाम से विभूषित होकर एवं इन्हीं पावन गुरु-चरणों की सन्निधि में बैठकर 'श्री ब्रजदासी - भागवत' की रचना का यह धार्मिक-आध्यात्मिक-साहित्यिक अनुष्ठान विशिष्ट मनोरथ के रूप में वि.सं. १८१२ में पूर्ण किया था। पुष्कर क्षेत्र में अवस्थित श्री गुरु के पीठस्थल सलेमाबाद के सन्निकटस्थ, लगभग पांच मील की दूरी पर महाराजा श्री रूपसिंह जी द्वारा संस्थापित 'रूपनगढ़' द्वितीय नाम 'रूपनगर' जो रूपसिंह जी के वंशानुगत महाराजा सरदारसिंह जी के शासनकाल तक अर्थात् वि. सं. १७०६ से वि. सं. १८२३ तक कृष्णगढ़ राज्य की रूपसिंह जी द्वारा स्थापित राजधानी रहा था, यही 'रूपनगढ़' 'श्री ब्रजदासी-भागवत' का रचना स्थल था। कृष्णगढ़ राज्य और रूपनगढ़ राजधानी के तात्कालिक ऐतिहासिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश से प्रभावित परिस्थितियों के क्रोड़ में श्रीमती ब्रजकुँवरी जी का वंदनीय व्यक्तित्व-कृतित्व प्रस्फुटित एवं सुविकसित हुआ था।

'श्री ब्रजदासी - भागवत' श्रीमद्भागवत महापुराण का भाषा पद्यानुवाद है जिसमें ब्रजभाषा और उसके साथ पश्चिमोत्तर राजस्थान के जयपुर-अजमेर-किशनगढ़-जोधपुर आदि क्षेत्रों में व्यवहृत ढूंढ़ाड़ी तथा मारवाड़ी का मिश्रित प्रयोग हुआ है, तथापि प्रमुखभाषा ब्रज ही रही है। इस पद्यानुवाद में संस्कृत के श्लोकों का अनुवाद छप्पय, कवित्त, दोहा, चौपाई, चौपई तथा विविध मात्रिक-वर्णिक सवैयादि छन्दों में कलात्मक रूप से किया गयाहै। श्रीमद्भागवत महापुराण के मूलकथाक्रम में कोई परिवर्तन अथवा परिवर्द्धन नहीं किया गया है। सभी स्कंधों का विषयक्रम, उनसे सम्बंधित समस्त अध्यायों की कथा-प्रसंगों का धारावाहिक वर्णन, भागवतकार द्वारा प्रयुक्त उपमान - उद्धरण - आख्यान, उक्ति - प्रमाण तथा अलंकार विधान ज्यों के त्यों यथावत् रूप से व्यवहृत किये गये हैं। आख्यान-उपाख्यान, दृष्टान्तों, प्रासांगिक - उपकथाओं से प्रतिपादित विविध दार्शनिक मतवाद, उपदेश, प्रकरणादि का स्वरूप परम्परागत अक्षुण्ण है, तथापि प्रतिपाद्य विषय का सरल और मौलिक शैली में ठेठ ब्रज और मारवाड़ी में निर्वहन अद्वितीय और विलक्षण है। सम्पूर्ण ग्रंथ १९, ३७५ छन्दों में ग्रंथित हुआ है जो मूलरूप में श्रीमद्भागवत की श्लोक संख्या से कुछ ही अधिक है।

'ब्रजदासी - भागवत' नामांकित इस पद्यानुवाद की मौलिक एवं सर्वतोमुखी - विलक्षणता यह है कि महारानी जी ने इस पद्यानुवाद को किन्हीं सम्प्रदाय-सम्मत व्याख्याओं, टीकाओं, दार्शनिक-मतवादों-प्रतिपादनों से सर्वथा अछूता रखा है; निजी - उक्तियों - कविवचनों तथा अप्रासांगिक वक्रोक्तिक - व्यंजनाओं, प्रक्षिप्तांशो का समावेश भी नहीं होने दिया है। इस प्रकार यह श्रीमद्भागवत का मूल अनुवाद, उसी का प्रतिरूप, उसी के अनुरूप, ब्रजभाषा, और ढूंढ़ाड़ी - मारवाड़ी के कलेवर में श्रीमद्भागवतजी की मूल-आत्मा के रूप में अवतरित होने से सभी वैष्णव - सम्प्रदायों के लिए समादरणीय कंठहार है, तथा जिसका पठन - पाठन सप्तदिवसीय पारायण और कथा प्रवचन मूलतः श्रीमद्भागवत जी के अनुरूप ही फलदायी धार्मिक - आध्यात्मिक अनुष्ठान है।

संस्कृत के श्लोकों में रचित मूल-भागवत-महापुराण का ब्रजभाषा-प्रधान यह पद्यानुवाद अत्यंत मौलिक एवं उपादेय बन पड़ा है। सम्पूर्ण रूप से यह अत्यंत सरल, रोचक, सहज रूप से बोधगम्य होने से सार्वजनिक एवं लोक-कल्याणकारी है।''कीरति भणति भूरि भलि सोई। सुरसरिसम सबकर हित होई।'' के सर्वजनहितार्थ लोकग्राही काव्यादर्श को लिए हुये होने से यह अत्यंत लोकोपयोगी है क्योंकि इससे श्रीमद्भागवत का मौलिक रूप से पठन-पाठन तथा पारायण सर्वसुलभ और सर्वग्राह्य हो गया है। श्रीरामकथा के संदर्भ में जो महत्वपूर्ण लोकसेवा श्री राम चरितमानस के लोकनायक महाकवि तुलसीदास जी द्वारा संपादित हुई है, लगभग उसी के अनुरुप भागवतोक्त श्री कृष्ण कथा को लोकप्रिय, लोकग्राह्य तथा लोकहिताय रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीमती ब्रजकुंवरी 'ब्रजदासी' जी को दिया जाना चाहिए।

अस्तु, परमभागवत कृष्णाश्रयी वैष्णवों के परम्परागत विश्वास और श्रद्धा तथा भक्ति भावानुरूप श्रीमद्भागवत पुराण की यह 'ब्रजदासी - भागवत' कथा त्रिविध पापों का नाश करने वाली है क्योंकि इसे 'ब्रजदासी जी' ने महापापनाशिनी परममोक्षदायिनी-अनन्य श्रद्धा-समन्वित भागवती-भावना से गृह-कलह शमनार्थ सप्तवर्षीय आध्यात्मिक अनुष्ठान के रूप में अपने परमादरणीय गुरु श्री वृन्दावन देवाचार्य की आज्ञा और निर्देशानुसार पूर्ण किया था; पद्यानुवाद का यह पावन अनुष्ठान वि. सं. १८०६ से प्रारंभ होकर सप्तवर्षीय-भागवत 'सप्ताजी' का परम्परागत वैदिक महायज्ञ था जिसकी पूर्णाहुति

वि. सं. १८१२ में हुई थी, तदनुरूप भगवत्कृपा से सप्त-वर्षपर्यंत इस 'भागवत सप्ता जी' के श्रवण-स्मरणपूर्वक कथा सृजन की संकल्प सिद्धि से महारानी को 'गृह-कलह शांति' के अभीष्ट मनोरथ की उपलब्धि हुई थी।

'ब्रजदासी - भागवत' का शुभारंभ ब्रजदासी जी ने स्कंध पुराणोक्त भागवत - माहात्म्य से किया है; जो '' अथ स्कन्दपुराणोक्त श्री भागवत महातम भाषा लिष्यते'' - के पूर्व कथनों से स्पष्ट है । अतः यहाँ पद्मपुराणोक्त छः अध्यायों के स्थान पर चार अध्यायों में माहात्म्य विषयक विवेचन किया गया है जो कि स्कन्द पुराण-सम्मत होने से विधिवत् है। माहात्म्य के चतुर्थ अध्याय में पद्यानुवाद का प्रवर-अवर श्रोता-स्वरूप का निरूपण कितनी सरल और मौलिक शैली में किया गया है :-

॥ अथ प्रवर श्रौता लछिनं बर्ननं॥

कथा रूप धन बहु जल बरषैं । पैं यहि कृस्नं रसामृत करषैं ॥
सब तजि निज रसहीं स्वातिक । सौ श्रौता कहियै सुभ चातिक ॥
सब रस मिली सुकथा नित सुनैं । पै इक कृस्नं कथामृत चुनैं ॥
पृथक विवेक करैं जल अंसा । षीर अंस लैं ज्यों कल हंसा ॥
बक्ता जो कहै सु सब जिय धरैं । श्रोतननि के मन हरषित करैं ॥
बोलै मधुर अलप पद जे तुक । रस आस्वादी सो श्रौता सुक ॥
सुनतहिं बात करै न परस्पर । रहै झूमि मन इक वहि रस पर ॥
निधि बसि गंगा रस मैं लीनूं । सो श्रौता कहियै हैं मीनूं ॥

॥ अथ अवर श्रोता लछिनं बर्ननं ॥

राग सुनत बन मृग चमकावै । ज्यौं रसिकनि कटु बैंन सुनावैं ॥
जाहि कहै सबही मन धिक धिक । कथा भंग कौ सो श्रौता बृक ॥
औरनी कौं सिछा दै नीकैं । आपुन चलैं पंथ हठहीं कैं ।
चौंच धरै निज नाहर तूण्ड । सो श्रौता पंछी भूरूण्ड ॥
औरनी दैपि आपहूं सुनैं । स्वाद ना धारै सबहीं लुनैं ॥
षलि अरु दाष षाय इक गैलं । उदरं भरै श्रौता सौ बैलं ॥
रसमयी कथा छांडि दै सही । बिषै कुतर्क कुबात लै गही ॥
आंब बौर तजि कंटक बूंट । षावै सो श्रौता है ऊंट ॥

उल्लेखनीय यह है कि 'ब्रजदासी - भागवत' का यह माहात्म्य प्रकरण - भागवत के प्रथम स्कन्ध से द्वादश स्कंधपर्यंत संपूर्ण हो जाने के तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् वि. सं. १८१५ में पूर्ण किया गया था; यह अल्प-अंतराल राजामाता की संकटग्रस्त विषम - पारिवारिक परिस्थितियों के कारण होना स्वाभाविक ही है :-

समत अष्ट दस सत जु पुनि, पंचदस रीतु हेम ॥
(श्री) भागवत माहात्म्य की, भाषा पूरन छेंम ॥
(श्री) राधावर रिझबार मनि, दैहुँ रीझि इहि नेम ॥
धीरज जुत बिलसौं सदा, उच्छव दरसन प्रेम ॥

इस प्रकरण की ब्रजदासी कृत अंतिम पुष्पिका में माहात्म्य की संपूर्णता तथा सहचरी-भाव से युगल-स्वरूप राधारमण के 'रीझबार' की अभिलषित - सखी - भावना तथा निकुंज-सेवा-सम्मत 'रीझवार' सम्बंधित निकुंज - युगल - केलि के 'उच्छव - दरसन' के प्रति 'धीरज जुत बिलसौं' की निरपेक्ष-निष्काम सुख की वांछा सभी कुछ यथार्थ है। वस्तुतः भागवत कथा का यही मूल मन्तव्य है।

तदनन्तर इस पोथी में ब्रजदासी जी ने श्रीमद्भागवत महापुराण के क्रमानुसार यहाँ प्रथम - स्कंध से द्वादश-स्कंध पर्यंत कथा-विधान की क्रमिक प्रस्तुति एवं विस्तृति की है। पद्यानुवाद के इस रूपान्तरण में श्रीमद्भागवत - महापुराण के द्वादश - स्कंध पर्यंत सभी स्कंधों के सम्बंधित अध्यायों के क्रम में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। अध्यायों में ग्रंथित कथाक्रम में विषयांतरणों, प्रक्षिप्त-प्रसंगों का समावेश अथवा अनावश्यक रूप से स्वानुभूतिपरक कवि के निजी बचनों द्वारा विषय - परिवर्द्धन नहीं किये गये हैं। इस प्रकार ब्रजदासी जी ने पद्यानुवाद में श्रीमद्भागवत महापुराण के मौलिक स्वरूप की अक्षुण्णता का निर्वाह किया है, श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रत्येक श्लोक का क्रमिक रूप से दोहा - चौपाई आदिक विविध छन्दों में लगभग उन्हीं दृष्टान्तों उपमाओं-उद्धरणों का अनुसरण करते हुये किया गया यह भाषानुवाद

सराहनीय कवि-कर्म कौशल है। श्रीमद्भागवत महापुराण के ही क्रमानुसार यहां प्रथम स्कंध में १९ द्वितीय स्कंध में १० तृतीय स्कंध में ३३ चतुर्थ स्कंध में ३१ पंचम स्कंध में २६ षष्टम स्कंध में १९ सप्तम स्कंध में १५ अष्टम स्कंध में २४ नवम स्कंध में २४ दशम स्कंध पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध में ९० एकादस स्कंध में ३१ तथा द्वादश स्कंध में १३ इस प्रकार के क्रम से ब्रजदासी - भागवत में भी ३३५ अध्याय ही हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में १८००० श्लोक हैं जबकि ब्रजदासी - भागवत की वि. सं. १८३४ की इस प्राचीनतम पोथी में कुल १९,३७५ छन्द हैं। छन्दों की यह संख्यात्मक - संवृद्धि छन्दोबद्ध रूपान्तरण से हुई है जो अल्प होने से स्वाभाविक रूप से नगण्य है। पूर्व में इस प्रति में छंद गणना का विधिवत् संकेत या उल्लेख नहीं होने से लोकश्रुति के आधार से चौबीस-छब्बीस हजार छन्दों का होना अनुमानित था; ऐसी अनुमानाश्रित छंद - संख्या यदि वस्तुत: सही होती तो निश्चय ही यह पद्यानुवाद श्रीमद्भागवत - महापुराण के १८००० श्लोक वाले कलेवर से अति बृहत्तर और विशालकाय हो जाता जिससे इस रूपान्तरण में भागवत के स्वरूप की मौलिकता संदिग्ध हो जाती। ऐसी स्थिति में 'ब्रजदासी-भागवत' के कथित कलेवर में श्रीमद्भागवत महापुराणके मौलिक-स्वरूप के अनुरूप यथाकथाक्रम से उसी का मूल अवतरण होना सहज विश्वसनीय रूप से सत्यापित और सर्वमान्य है। अत: आश्रयदाताओं पर आश्रित अथवा राज्याधीन प्रतिबद्ध पोथीकारों की मेलमिलावट कारी विकृतियों से सर्वथा अछूती 'ब्रजदासी - भागवत' की यह निम्बार्काचार्य पीठस्थ वि. सं. १८३४ की प्राचीनतम प्रति मौलिकता की दृष्टि से विशेष रूप से समादरणीय है।

'ब्रजदासी - भागवत' में सम्बंधित कथाक्रम, सम्पूर्ण विषय विवेचन, समागत आख्यान-उपाख्यान, कथा प्रसंग ज्यों के त्यों श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार वर्णित हुये हैं तथापि इसके पोथी-स्वरूप में उल्लेखनीय कमियाँ भी दृष्टिगत हुई हैं। ब्रजदासी-भागवत में द्वादश स्कंध पर्यंत सभी स्कंधों से सम्बंधित अध्यायों के विषय-विवरणात्मक शीर्षक देने की प्रथा का अनुसरण नहीं किया गया है; जिसकी पूर्ति हमने कर दी है क्योंकि प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में दुविधा बनी रहती है, इसी प्रकार ब्रजदासी-भागवत में पोथीकार ने कथाक्रम की वाचन शैली को काव्यात्मक नाटकीय प्रबन्धानुसार संवादात्मक-शीर्षक देने का श्रम नहीं किया है। कथाक्रम के अंतर्गत समागत व्यक्ति जो 'कथन' कह रहा है जो 'वाचक-उपदेशक - व्याख्याकार के रूप में कथा योजना में प्रस्तुत हुआ है, उसका नामोल्लेख करते हुये उसका नाम सहित उवाच जैसे 'नारद - उवाच' लिख देने की कथा शैली का निर्वाह यहां श्रीमद् भागवत महापुराण की भांति सर्वत्र नहीं किया गया है जिसके अभाव की पूर्ति करते हुये हमने श्रीमद्भागवत महापुराणोक्त 'उवाच' लिख कर ब्रजदासी भागवत के कथाक्रम के वाचन को रोचक बनाने की चेष्टा की है। इसी प्रकार हमारे संपादकीय दायित्व का निर्वाह करते हुये हमने यहाँ प्रत्येक स्कंध के अंत में छंद गणना तथा छंदगणना योगक्रम का वैज्ञानिक विधान भी कर दिया है।

महापुराणोक्त प्राचीन कथात्मक शैली के अनुसार ब्रजदासी कृत इस पद्यानुवाद के प्रत्येक अध्याय के शीर्षस्थ इन सूत्रबद्धात्मक कथनों से यथाक्रमानुसार उक्त अध्याय के प्रारंभ होने की सूचना अंकित की गई है यथा - ''अथपंचमोऽध्याय: ''। इसी प्रकार अध्याय के अन्त में उसके पूर्ण हो जाने की सूचना का क्रम भी इन सूत्रात्मक कथनों से लिपिबद्ध किया है। यथा - ''इति चतुर्थोऽध्याय: ॥ ४ ॥'' इसी प्रकार स्कंध के प्रारंभ में ब्रजदासी जी के प्रति पूर्वोल्लेखित यह परिचयात्मक विवरण ''कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराजराजेश्वर राजा श्री राजसिंह जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी जी' कृत श्रीमद्भागवत भाषा पद्यानुवाद'' - दिया गया है तो स्कंध के अंत में '' इति श्री अष्टम स्कंध संपूर्णम् ॥ पोथी को सं. १८३४ वि.॥ अंकित है। संभवत: इस परम्परा का निर्वाह पोथीकार ने किया है।

ब्रजदासी - भागवत के प्रथम स्कंध से द्वादश - स्कंध पर्यंत प्रत्येक स्कंध के प्रारंभ में मंगलाचरण का विधान है। यह मंगलाचरण वंदनात्मक तथा छप्पय - छन्दबद्ध है। इन वंदनात्मक मंगलाचरणों में ही ब्रजदासी जी को अपनी सहचरी - भावपरक निम्बार्कीय रसोपासना, मंत्र-उपदेष्टा-गुरु श्री वृन्दावन देवाचार्य जी के चरणों की वंदना, इष्ट-आराध्य-युगल-स्वरूप निकुंज-बिहारी बिहारिणी श्री राधाकृष्ण के प्रति अनन्याश्रयता, निकुंज योगपीठ श्रीधाम वृन्दावन के प्रति अनन्यनिष्ठा, निम्बार्क-सम्प्रदाय-प्रवर्तक-आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्क एवं अ. भा. जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ - सलेमाबाद के प्रति पूण्य भाव आदि की स्वात्मपरक अभिव्यक्ति करने के समीचीन अवसर मिले हैं। मंगलाचरण के इन प्रसंगों में विशेष रूप से सखी - ब्रजदासी जी की निकुंज - स्वामिनी श्रीराधाजी के प्रति अनन्य भाव की शरणागति तथा निरपेक्ष - भाव से निकुँज केलि रतिरत युगल श्रीराधारमन जू के दर्शनों का अभिलषित परमानंद ही प्रकट हुआ है क्योंकि मूलत: इनकी दिव्य चरण-कृपा से ही भागवत-लीला रस का ब्रजदासी - भागवत में गंगधारावत् - यह सर्वकल्याणकारी अवतरण हो रहा है। भक्त - भगवान् और भागवत के प्रमुख प्रवक्ता श्री शुकदेव तथा अन्य भागवती व्याख्याकारों - टीकाकार - आचार्यों के प्रति पूण्यभावपूर्वक श्रद्धा-स्मरण-नमन की प्रवृति इन वंदनात्मक छप्पयों में प्रकट हुई है :-

जय जय श्री ब्रजराज, करन लीला रससांनी ।
जय जय श्री ब्रषभान, सुता वृंदावन रांनी ॥
जय जय म्हैरे गुरु जु, क्रपाल गुपाल उपासी ।
जय जय श्री भागवत, हरि भगति रूप प्रकासी ॥
जिन्ह क्रिपा पाय आनंद लहि, (श्री) राधे सहचरि पद धरौं।
जाही प्रताप ब्रजदासी कहि, सप्तम स्कंध बर्नन करौं ॥

(मंगलाचरण - सप्तम स्कंध)

इसी प्रकार कथाक्रमांतर्गत के उपयुक्त अवसरों पर उन्होंने भक्ति - ज्ञान - वैराग्य सत्संग आदि का दार्शनिक निरूपण, धर्म-आचार-विचार-नैतिकता का विवेचन, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म, माया - मोक्ष - मृत्यु, ब्रह्म-जीव-चिदचिद्, लोकधर्म, वर्णाश्रम-धर्म, लोकनीति, सामाजिक व्यवहार, राजनीति, प्रेमरहस्य, नारी-चरित्र, मातृत्व, लोकतत्व आदि के प्रसंगों में अपनी मौलिक वैचारिकता तथा कवित्व-कुशलता का परिचय दिया है। इन प्रसंगों में ब्रजदासी जी का वैदुष्यपूर्ण वर्चस्व तथा उनका दार्शनिक-सांस्कृतिक दृष्टि का मौलिक चिंतन अवलोकनीय बन गया है। ब्रजदासी जी द्वारा किया गया भक्ति-साधना का यह लोक व्यावहारिक निरूपण अत्यंत सरल सार्थक तथा सटीक होने से सर्वग्राही हो गया है। भागवत ज्ञान का लोकभाषा शैली में प्रसारित यह लोकशिक्षण ब्रजदासी भागवतकार का मौलिक वर्चस्व प्रतिपादित करता है :-

स्थल हौहि म्हैरौ जांह, पुहप चढ़ावै जाय ॥
अरु चौमासे मैं करै, मो पूजा अधिकाय ॥ ५८॥
वेद तंत्र की लै सिच्छा, अपनैं गुर कैं पास ॥
पुनि म्हैरे ब्रत करै निज, हिय में धारि हुलास ॥ ५९॥
मो प्रतमां कै थपन मैं, राषै श्रधा बिसाल ॥
ह्वै इकत्र उदिमजु करै, प्रतमां थपन रसाल ॥ ६०॥
जनम करम म्हैरो कथन, उछव पर्वादि मनांहिं ॥
नृत्यगान अनुष्ठान करै, लीला सुनैं सुचाहिं ॥ ६२॥
सफल बृछ फुलवार पुर, मंदिर वापी कूप ॥
इन्हकैं करबै कौं करै, उद्यमं जु सदा अनूप ॥ ६३॥
मो मंदिर की ठोर कौ, धोवै लीपै झारि ॥
भद्र सर्वतो आदि दै, मंडल रचै संवारि ॥ ६४॥
मो दाता तन धारि उर, ह्वै निहकपट निदांन ॥
म्हैरे मंदिर की करै, सैव भलै उनमांन ॥ ६५॥
म्हैरे मंदिर मध्य कै, दीपहुँ कै उजियार ॥
अपनैं घर कौ कार्ज कछु, नहिंन करै किहुँ वार ॥ ६६॥
मंदिर भोग बस्तुन की, चोरी करै न चाहिं ॥
लग्यौ देव कै भोग पुनि, मोहि भोग न लगाहिं ॥ ६८॥
लोकनि जो प्रिय बस्तु अरु, आपहुँ कौ प्रिय कौय ॥
करै निवेदन मोहि सौ, ताहि अनंत फल हौय ॥ ६५॥
वेद मंत्र पढि सूर्ज कौ, करि परिनांम सदाय ॥
रवि की है पूजा इही, दीनी बेद बताय ॥ ७१॥
करि अग्नि मैं होम दै, भौजन द्विजन सुढार ॥
तृन नीरै सुरभीन कौ, सैवा करै अपार ॥ ७२॥
साधुन कौ आदर करै, धरै हिर्दै निज ध्यांन ॥

लै पूजा की सौंज सब, पूजै जलहि सुजांन ॥ ७३॥
जिग्य करै मो निमत अरु, पुदवै कूप तलाव ॥
बाग लगावै अति सुभग, धरि अपनैं चितचाव ॥ ७७॥
अरु मो साधुन की करै, सेवा सहित उमांहि ॥
तब पावै मो भक्ति सुष, मिटि तिहुँ विध की चाहि ॥७८॥

(एकादश स्कंध - अ. १२)

अनुवादक के रूप में उनकी मौलिक काव्य-प्रतिभा का परिचय अनेक प्रकार से हो जाता है। श्रीमद्‌भागवत में अनादि वैदिक परम्परा के विविध विषयात्मक गहन-दार्शनिक-चिन्तनों, भक्ति-ज्ञान-वैराग्य तथा सत्संगादि के तात्विक विवेचनों, यमनियमादि साधनों, सांख्ययोग कर्मयोग - अष्टांग योग, प्रकृति पुरुष विवेक, तत्व - ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आदिके विविध गंभीर विषयों का पांडित्य, सौर - मंडल - ऋतुचक्र - भूगोल का वैज्ञानिक तथा पौराणिक राजवंशीय आख्यानों का ऐतिहासिक गहन ज्ञान समाहित है। अनुवादक का सफल होना इन सब विषयों के गंभीर अध्यवसायिक श्रमसाध्य अध्ययन करने पर निर्भर होता है। संस्कृत भाषा के श्लोकों में निहित ऐसे व्यापक ज्ञान का लोकमानस के अनुकूल अत्यंत सरल और बोधगम्य लोकभाषा की व्याख्यात्मक - शैली में सटीक और छन्दोवद्ध पद्यानुवाद प्रस्तुत कर देना बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न विलक्षण पांडित्य का परिचायक है। श्रीमद्‌भागवत के पूर्वोक्त प्रकार की विविध-रूपात्मक विषयवस्तु को सतत-स्वाध्याय से आत्मसात् कर निजी कवित्वमति से उसे मारवाड़ी-ढूंढाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा के लोकभाषी माध्यम से दोहे जैसे छोटे से छंद में बांधकर उसकी अवतारणा करना अत्यंत श्रम साध्य कविकर्म कौशल है। वस्तुतः यह ब्रजदासी जी के सप्तवर्षीय आध्यात्मिक अनुष्ठान की तपश्चर्या का ही चमत्कार है कि उन्होंने अपने भगवत्स्वरूप-गुरुदेव की कृपा से श्रीमद्‌भागवत को लघुकायिक दोहे में 'गागर में सागर' की भांति संपूर्ण रूप से समाहित कर दिया है।

इस प्रकार 'ब्रजदासी - भागवत' के इस अनूदित काव्य ग्रंथ की विशालता, उसमें निहित सारगर्भित सरल अनुवाद की यथार्थ - सिद्धिता तथा उसके लोककल्याणार्थक अध्यवसायिक कठोर-कवि-कर्म-कौशल की गहनता की दृष्टि से यदि ब्रजदासी जी का काव्यमूल्यांकन किया जाय तो यह निर्विवाद तथ्य है कि वह परमसाध्वी मरूमंदाकिनी भक्तिमति मीराँ जी के समरूप एक महान कवयित्री हैं। मध्य युगीन सामन्तवादी परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो दोनों ही का व्यक्तित्व विषम विलासिता के सागर में कमलवत् पवित्र और समादरणीय है। तात्कालिक राजनैतिक - सामाजिक विषम परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म दृष्टि से झांकने पर ही ब्रजदासी जी के महान - उज्ज्वलतम व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इस राजमहिषी ने राजघराने के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से विरक्त होकर भागवत - साधना से अपने साथ अपने समस्त परिवार को उच्चासित - प्रतिष्ठित भावुक भक्त कवि बना दिया तदनन्तर जनसंहारक राज-कलह से प्रताड़ित, वैधव्य - विदग्धावस्था में सप्तवर्षीय अनुष्ठान के रूप में, भक्तिभावपूर्ण तपोनिष्ठ कठोर कवि कर्म को अपना कर आपने श्रमसाध्य पवित्रनिष्ठा से 'ब्रजदासी - भागवत' का लोककल्याणकारी मनोरथ सफल किया; वस्तुतः उनका वैष्णव साहित्य में स्थान ध्रुववत् ऊंचा और अक्षय है।

ब्रजदासी - भागवत का मूल - प्रयोजन :- प्रत्येक महाकाव्य की पृष्ठभूमि में उसका महत्वपूर्ण 'मूल-प्रयोजन' होता है और वही उसका 'काव्य हेतु' कहा जाता है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण के प्रसंग में भी मूल प्रयोजन का बड़ा महत्व रहा है। श्रृंगी ऋषि के शाप से संभावित सर्पदंश जनित दुर्गति से महाराजा परीक्षित को उबारने के मूल प्रयोजन से परमभागवत श्री शुकदेव जी के पावन मुखारविन्द से 'श्रीमद्‌भागवत' का सप्ताहांतक कथावाचन हुआ। इसी परम्परा से श्रीमद्‌भागवत के सप्तदिवसीय साप्ताहिक-कथानुष्ठानों को त्रिविध - पापनाशक माना जाता है तथा परमभागवत वैष्णवजन मनोरथ पूर्वक इस सप्तदिवसीय भागवत कथा का अनुष्ठान अद्यावधि करते आ रहे हैं; जिससे उनकी समस्त शारीरिक - मानसिक तथा भूत पैशाचिक विघ्न बाधाओं तथा ग्रहादिक पीड़ाकारी क्लेशों का शमन हो जाता है। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुये राजमाता श्रीमती ब्रजकुँवरी जी ने अपने गुरु श्री वृन्दावन देवाचार्य जी की महती प्रेरणा से, अपने राज परिवार में व्याप्त 'गृह-युद्ध' रूपी कलह के शमनार्थ 'ब्रजदासी-भागवत' की इस रचना का सप्तवर्षीय अनुष्ठान के रूप में यह मनोरथ किया था और यही मनोरथ इस आध्यात्मिक रचना का मूल प्रयोजन था जिसकी प्रामाणिक पुष्टि निम्नांकित अंतःसाक्ष्य में श्री शुकदेव जी की स्तुति के रूप में प्रतिपादित हो रही है :-

जयति जयति सुकदेव, भेद भागौत प्रकासन ।
नंदनंदन साछात, रूप रस ही कौ बासन ॥
नगन मगन उनमत्त, सदा कैसौर सुंदरवर ।
जीत कांम मदमोह, हियै राजत लीलाधर ॥

'श्रीसनकादिकों से लेकर उत्तरोत्तरवर्ती आचार्यपरम्परानुसार पूर्वाचार्यों द्वारा संसेवित 'श्रीसर्वेश्वर प्रभु', विश्वव्यापी वृहद् निम्बार्क सम्प्रदाय के एकमात्र आचार्य अ.भा.जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री 'श्रीजी' महाराज के परमाराध्य ठाकुर हैं।

भगवान 'श्रीराधामाधवजी' निम्बार्कवीथि पथिक रससिद्ध कवि गीत गोविन्दकार श्रीजयदेव कवि के संसेव्य ठाकुर हैं। बंगाल से आकर गोवर्धन की तरहटी में विराजमान हुए और जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराज द्वारा वि.सं. १८२३ में श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ में विराजमान हुए।

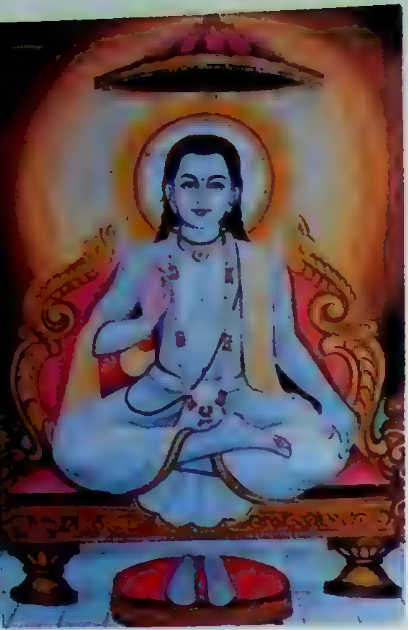

सुदर्शन-चक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य

रसिकराजराजेश्वर महावाणीकार जगद्गुरु निम्बार्काचार्य-
पीठाधीश्वर श्री हरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज

जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर परशुराम वाणीकार
श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराज

अनन्त श्रीविभूषित जगदगुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराज। श्रीब्रजदासीजी (श्रीमती बांकावतीजी) के गुरुवर्य्य तथा ब्रजदासी-भागवत के मूल अधिष्ठाता एवं सूत्रधार।

अति दयाल वक्तानि मैं, गृही कलह उद्धार हितहुं ।
ब्रजदासी कर वंदन करत, बार बार सिरलाय छितहुँ ॥

(मंगलाचरण - द्वितीय स्कंध)

वि. सं. १८०५ में महाराजा राजसिंह जी के निधन से ब्रजकुँवरी जी के भावुक हृदय पर वैधव्य का वज्रपात हुआ ही था कि उनके पुत्रों में परस्पर उत्तराधिकार के लिए छिड़े गृह युद्ध ने उनका हृदय और भी अधिक विचलित कर दिया। वेदना से संतप्त सहृदय की करुणा और दीनता से महाकाव्यों का जन्म होता है। खंडित- क्रौंच-युग्म की सी करुणाजनक विरहावस्था में जब राजमाता ब्रजदासी जी ने अपने परम कृपालु गुरुवर्य्य श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की शरण में उपस्थित होकर अत्यन्त दैन्यभाव से आत्मनिवेदन किया तो उन्हीं की प्रेरणा से 'ब्रजदासी - भागवत' नामक श्रीमद्भागवत महापुराण के विशालकाय पद्यानुवाद की काव्य सृजना हुई। वि. सं. १८०६ से वि. सं. १८१३ तक किशनगढ़ - राज्य गृहयुद्ध की भयंकर आग में जलता रहा। वि. सं. १८०५ में वैशाख शुल्का ५ को सांवतसिंह जी का राज्याभिषेक हुआ ही था कि उनके छोटे भाई बहादुरसिंह जी ने रूपनगढ़ पर आक्रमण कर उसे जीत लिया तथा वे रूपनगढ़ सहित सम्पूर्ण किशनगढ़ राज्य के एकमात्र राजा बन बैठे। वि. सं. १८०६ से वि. सं. १८१२ तक के सप्तवर्षीय अनुष्ठान के फलस्वरूप ब्रजदासी जी द्वारा किये गये श्रीमद्भागवत महापुराण के उक्त पद्यानुवाद के मनोरथ की पूर्णता होने तक किशनगढ़ में भीषण जनसंहार होता रहा था; अन्ततः उक्त अनुष्ठान की कृपा से वि. सं. १८१३ में मरहठों की सहायता से सांवतसिंह जी को रूपनगढ़ का राज्य तो पुनः मिल गया, पर किये गये शांति-समझौते के अनुसार किशनगढ़ राज्य का विभाजन हो गया तथा रूपनगढ़ - किशनगढ़ दो राज्य बन गये। इस प्रकार 'गृही कलह उद्धार हित' किये गये इस अनुष्ठान से राजपरिवार में शान्ति तो हो गई; पर राजसिंहासन को कलह का मूल मानकर सांवतसिंह जी ने वैराग्य ले लिया। सांवतसिंह जी को इस गृह कलह ने संत नागरीदास बना दिया। भाई भाई का उक्त वैमनस्य भावुक हृदय सांवतसिंह जी को असह्य हो गया जिससे उन्होंने वि. सं. १८१४ आश्विन शुक्ला विजय दशमी को अपने सुत सरदारसिंह जी को रूपनगढ़ का राजपाट देकर एकादशी को श्रीधाम वृन्दावनवास के लिए प्रस्थान कर दिया।

कालगति अजेय और अगम्य है, पर भगवत्कृपा से प्राप्त परम वीतरागी संतों का मंगलदायी शुभाशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता। परमसाध्वी राजमाता के भागवत - रचना का अनुष्ठान एवं उनका मनोरथ अन्ततः फलीभूत हो ही गया पर सब कुछ खोकर। वि. सं. १८२३ में संतनागरीदास जी के उत्तराधिकारी रूपनगढ़ के महाराजा सरदारसिंह जी जब निस्संतान दशा में मरने लगे तो उन्होंने अत्यंत राजनैतिक सूझबूझ और पारिवारिक सदाशयता की 'ब्रजदासी प्रेरणा' से किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह जी के ही पुत्र अपने चचेरे भाई बिड़दसिंह को अपने उत्तराधिकारी के रूप में गोद लेकर दो राज्यों के दुखद विभाजन को सुखद एकीकरण में बदल दिया। यही राजमाता ब्रजदासी जी का परम मनोरथ था, पर उनके वरद रत्न संत नागरीदास - बनीठनी - सरदारसिंह आदि को सदासर्वदा के लिए खोकर ही उसे पाया - यह विधि की ही विडम्बना है।

उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियाँ :- 'ब्रजदासी - भागवत' का रचना स्थल रूपनगढ़ रहा है - यह तथ्य ब्रजदासी जी द्वारा दिये गये अंतःसाक्ष्य से प्रतिपादित है। वि. सं. १८०५ में ७३ वर्ष की आयु में उनके पति महाराजा राजसिंह का रूपनगढ़ में दोहावसान हुआ था। उत्तराधिकार के लिए महाराजा राजसिंह के कनिष्ठ पुत्र बहादुरसिंह की अमर्यादित महत्वाकांक्षा से पितापुत्र में परस्पर मनोमालिन्य बना हुआ था तथा दूसरी ओर उनके उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र युवराज सांवतसिंह के भक्ति - भावना युक्त कोमल - वीतरागी संतोचित स्वभाव के प्रति महाराजा का सोच भी चिंताजनक था कि कहीं युवराज राजपाट-परित्याग कर विरक्त न बन जाये। राजमहल का यह दीर्घकालिक अंतर्द्वन्द्व राजसिंह जी की मृत्यु से अत्यन्त विस्फोटक बन गया और अन्ततः दोनों भाईयों के बीच गृहयुद्ध छिड़ गया।

वि. सं. १८०६ में बहादुरसिंह ने रूपनगढ़ जीत कर अपने आपको संपूर्ण किशनगढ़ राज्य का एकमात्र स्वामी घोषित कर दिया था - ऐसी स्थिति में राजमाता का 'ब्रजदासी - भागवत' सम्बंधित सप्तवर्षीय रचना-अनुष्ठान संभवतः उनके गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी के आश्रय में रूपनगढ़ के सन्निकट उनके गुरु स्थान अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ स्थल सलेमाबाद में सम्पन्न हुआ हो क्योंकि गृहयुद्ध की विभीषिका में राजमाता का राजसी महलों से यह वस्तुतः निर्वासन काल ही था। 'ब्रजदासी - भागवत' की अंतिम पुष्पिका में दिये गये अंतःसाक्ष्य प्रकरण की द्वितीय पंक्ति में निहित अर्थ कि पुष्कर क्षेत्र के 'थल' और 'गढ रूप' के मध्य यह रचनापूर्ण हुई थी। 'थल' नामक प्रसिद्ध ठिकाने और रूपनगढ़ के मध्य पीठस्थल 'सलेमाबाद' अवस्थित है। अतः यह भी सम्भव है कि - 'ब्रजदासी - भागवत' की मूल पोथी की रचना अ. भा. निम्बाकाचार्य पीठ स्थल में हुई हो; जहाँ उसकी प्राचीनतम प्रति अद्यावधि सुरक्षित है। रूपनगढ़ - किशनगढ़

- सलेमाबाद - लवाण ठिकाना - जयपुर आदि राजमाता 'ब्रजदासी' जी के जीवन - सम्पर्क के प्रमुख ये ही स्थान थे - अतः 'ब्रजदासी - भागवत' की प्राचीन पोथियाँ इन्हीं स्थानों पर प्रचलित रहने से वहाँ निश्चय ही विद्यमान रही हैं पर आज 'ब्रजदासी - भागवत' की अन्य प्राचीन पोथियाँ दुर्लभ हो गई हैं। वर्तमान में इसकी तीन हस्तलिखित पोथियाँ उनके मूल ग्रंथ की अधिकृत और प्रामाणिक प्रतियों के रूप में उपलब्ध हैं :-

(१) वि. सं. १८३४ में ठिकाना अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद में लिपिबद्ध की गई पोथी प्राचीनतम है जो अद्यावधि वहाँ के ग्रंथागार में सुरक्षित है तथा प्रस्तुत प्रकाशन उसी के आधार पर किया गया है।

(२) दूसरी प्रति वि. सं. १८५० की है। जयपुर राजमहल के पोथीखाने में खास मोहर संग्रह में यह पोथी 'भागवत-पुराण-भाषा' के नाम से विद्यमान है। इसी ग्रंथ का नाम 'भागवत - पुराण - भाषा' भी प्रचलित रहा है। वस्तुतः 'ब्रजदासी - भागवत' और 'भागवत - पुराण - भाषा' एक ही रचना के दो नाम हैं; जो अक्षरशः एक ही हैं। दोनों की समान अंतिम पुष्पिकाएँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं; दोनों की इन अंतिम पुष्पिकाओं में समान रूप से 'ब्रजदासी जी' का नाम तथा उनकी संपूर्ण जीवन-रेखा समान रूप से अंकित की गई हैं।

जयपुर पोथी खाने के इसी बस्ते में 'ब्रजदासी जी' कृत श्रीमद्भगवत् गीता का भाषा पद्यानुवाद 'श्रीमद्भगवत् गीता-भाषा' नाम से तथा दो अतिरिक्त रचनायें 'ब्याह विहार' व 'ख्याल संग्रह' जो ब्रजदासी जी द्वारा वि. सं. १८२७ में लिखे गये थे - सम्मिलित रूप से संगृहीत हैं। इस प्रकार 'ब्रजदासी जी' कृत समूचा साहित्य, जयपुर पोथी खाने में विद्यमान है।

(३) वि. सं. १९७० की प्रति किशनगढ़ राज्य के तवारीख महकमें में लिपिबद्ध की गई थी जो 'ब्रजदासी - भागवत' के नाम से वर्षों - पर्यंत सरस्वती भंडार में विद्यमान रही है पर अब यह अप्राप्य है। यह प्रति वि. सं. १९७० में कार्तिक बदी ११ शनिवार को लिपि संलेषक मथुरादास गुर्जर गौड़ द्वारा कृष्णगढ़ के तवारीख महकमें मध्य संपूर्ण की गई थी। उक्त पोथी की अंतिम पुष्पिका में यह तथ्य प्रमाणित किया गया है, हमने इस प्रति को स्व. महाराजा सुमेरसिंह जी के सौजन्य से प्राप्त कर इसका आद्योपान्त अध्ययन किया है तथा उक्त पुष्पिका का सत्यापन भी किया है। प्रतिलिपिकर्त्ता ने मंगलाचरणों के वंदनात्मक प्रसंगों में कतिपय स्थलों पर कांटछांट की है तथा प्रथम स्कंध के मंगलाचरणात्मक छप्पय को जानबूझकर उद्धृत नहीं किया है; यह निम्नोक्त छप्पय निम्बार्क-सम्प्रदाय की परम्परागत-आचार्य-वंदना से सम्बंधित है :-

नमो नमो श्री हंस, नमो सनकादिक रूप हरि।
नमो नमो नारद जू, रिषि जिनि निम्बारक सिष करि ॥
नमो नमो श्री व्यास, नमो सुकदेव जु स्वांमी ।
नमो परीछित राज, रिषिन में मुष्य जु नांमी ॥
ॐ नमो नमो श्री सूत जु, नमो नमो सौनक सकल ।
ॐ नमो नमो श्रीभागवत, कृस्न रूप छिति में अकल ॥

(मंगलाचरण - प्रथम स्कंध)

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, सलेमाबाद के अधिकारी स्व. श्री ब्रजबल्लभ शरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने पुष्टि की है कि तात्कालिक किशनगढ़ महाराजा श्रीमदनसिंह जी की आज्ञा से पीठ की पोथी तवारीख महकमें में नकल करने हेतु मंगवाई गई थी तथा राज्याश्रित कवि जयलाल जी के निर्देशन में इसकी प्रतिलिपि पूर्वोक्त संलेषक मथुरादास गुर्जर गौड़ ने वि. सं. १९७० में की थी जिसमें तथाकथित हेराफेरी की पुष्टि उन्होंने भी की है (द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी अंक पृ. २८ व २९ पाद टिप्पणी)

वि. सं. १८३४ में ठिकाना सलेमाबाद में लिपिबद्ध की गई उपयुर्क्त पोथी सर्वविध प्रामाणिक और विश्वसनीय प्रति है जिसमें ब्रजदासी जी द्वारा की गई गुरु-वंदनायें ज्यों की त्यों मौलिक हैं । इन मंगलाचरणों में गुरु-स्तवन के साथ में व्यक्त उनकी रहस्यात्मक-सहचरी-भावपरक रसोपासना, स्वामिनी श्री राधा जी के प्रति अनन्याश्रयता, श्रीधाम निष्ठा आदि का सर्वांगपूर्ण समावेश होने से आचार्य पीठस्थल पर किसी प्रकार के परिवर्तन का उद्देश्यहीन प्रयास किया भी क्यों जाता? जो रचना प्रामाणिक रूप से निम्बार्कीय रही है और स्वयं कवयित्री ब्रजदासी जी ने अंतिम पुष्पिका में जिसकी तथ्यात्मक लिखित पुष्टि की है, तथा जिसके लेखन के मूलाधार प्रेरक एवं निर्देशक तात्कालिक श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी ही थे - इन सब परिस्थितियों में निम्बार्क-सम्प्रदाय-श्री निम्बार्कपीठ और पीठाधिपति

गुरुदेव के आश्रय में इस धरोहर का पूर्णरूपेण परम्परागत संरक्षण हुआ है। अस्तु सलेमाबाद की प्रति में परिवर्धन तथा उसमें प्रक्षिप्तांशों के समावेश की कोई गुंजाइश ही नहीं रही है। उसमें १९.३७५ छन्दों की हमारे द्वारा की गई सही गणना होना भी मौलिकता का प्रमाण है। जयपुर पोथी खाने की उपर्युक्त प्रति से इसमें छन्दों की संख्या कम प्रतीत होती है पर अभी पोथी खाने की प्रति की छंदात्मक संख्या अनुमानाश्रित है, शोधकों ने अभी इसकी छंद-गणना सम्बंधित परख करने की पुष्टि भी नहीं की है, ऐसी परिस्थिति में सलेमाबाद की प्रति को किसी प्रकार अधूरी मानना भी भ्रामक है क्योंकि हमने श्रीमद्भागवत महापुराण के श्लोकों का क्रमिक रूप से छन्दोबद्ध मिलान करके इसमें संपूर्णता का सत्यापन कर लिया है। जयपुर पोथी खाने की 'भागवत - पुराण - भाषा' नामांकित प्रति में तो छन्दों की संख्या २२,००० होना ही प्रचलित है जबकि पूर्व में सलेमाबाद वाली उस प्रति में इससे भी अपेक्षाकृत कहीं अधिक अर्थात् चौबीस - छब्बीस हजार तक छन्दों की संख्या का होना लोकविश्रुति के रूप में प्रचलित रहा था पर अब वस्तुस्थिति में जो छन्दगणना की गई है वह ही तथ्यात्मक रूप से मान्य है।

सलेमाबाद पीठस्थ ब्रजदासी भागवत के पोथीकार ने प्रत्येक स्कंध के अंत में छंद-गणना अथवा उसका योग अंकित नहीं किया है - यही तथ्य जयपुर की पोथी में भी उजागर होगा। इसमें यदि छंद-संख्या-२२००० या इससे भी अधिक है तो निश्चय ही उसमें प्रक्षिप्तांश मान्य होगा। क्योंकि वि. सं. १८३४ में सलेमाबाद वाली प्रति लिपिबद्ध हुई है तथा उसके १६ वर्ष बाद वि. सं. १८५० में जयपुर वाली प्रति की लिपि तैयार की गई है; इस अंतराल में 'ब्रजदासी - भागवत' जैसी लोकभाषायी रचना में प्रक्षिप्त अंशों का समावेश तथा अन्य प्रकार से उसका परिवर्धन सहज ही संभावित और विश्वसनीय है।

इन उपलब्ध प्रतियों के अतिरिक्त 'ब्रजदासी-भागवत' की अन्य प्रतियां भी किशनगढ़ क्षेत्र के अन्य लिपिकारों द्वारा भी तैयार की गई प्रचलित रही हैं जिनकी मूलाधार श्रीनिम्बार्काचार्य पीठस्थ प्रति रही है। किशनगढ़ राज्यांतर्गत प्रसिद्ध ठिकाने 'गोठियाना' में भी इस प्रकार की साहित्यिक गतिविधियाँ होने से वहां भी 'ब्रजदासी-भागवत' की प्रति हमने देखी है, कुछ वर्ष पूर्व जिसका अध्ययन करने पर हमने उसको सलेमाबाद की प्रति के अनुरूप पाया है। विधि की विडम्बना है कि किशनगढ़ क्षेत्र में वैष्णवजनों द्वारा संगृहीत विविध प्राचीन पोथियों का भंडार जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर के रूप में बहुलता से संरक्षित था; अब पुरातत्वों के व्यवसायियों ने ऊँचे मूल्यों पर उसे निर्यातित कर दिया है।

पोथी प्रकाशन की भूमिका :- ठिकाना अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठस्थ 'ब्रजदासी भागवत' को प्रकाशित करके ब्रजदासी जी द्वारा समर्पित इस अक्षय-धरोहर को विधिवत् सुरक्षित करने का पुनीत प्रयास वर्तमान जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीश्रीजी श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य जी द्वारा दीर्घकाल से अभिलषित रहा है। कुछ वर्ष पूर्व पोथी के जीर्णशीर्ण होने तथा उसके उत्तरार्द्ध को दीमकों द्वारा क्षतिग्रस्त होते देखकर, वैष्णवधर्म की इस अमूल्य निधि को काल-कवलित न होने देने की पवित्र भावना से आचार्य श्री ने इसके शीघ्र प्रकाशन का मनोरथ प्रकट किया; तदर्थ उक्त संपूर्ण प्रति की हस्तलिखित पांडुलिपि तैयार कर ली गई। तदनन्तर भक्तों की भावनानुसार श्रीचरणों का संकल्प सिद्ध हुआ और दो तीन वर्ष की संपादन-प्रकाशन सम्बन्धित सतत-साधना की सफलता से स्वामिनी श्रीराधाजी की अनन्य-सखी 'ब्रजदासी जी' की आचार्यपीठ द्वारा परम्परागत रूप से सुरक्षित यह धरोहर अब आपको भी सहज-सुलभ्य है।

संपादन-दायित्व का सत्यनिष्ठा से निर्वहन करते हुये हमने कतिपय स्थलों पर पोथी में औचित्यपूर्ण संशोभन भी किये हैं। पोथीकार और रचनाकार दो भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व रहे हैं। पोथीकार सामान्य रूप से पढ़े लिखे लिपिकर्त्ता होते थे। 'नकल में अकल' का निर्वाह करते हुये भी अल्पज्ञ लिपिकों द्वारा पोथियों में उनसे अशुद्धियों का हो जाना प्राय: स्वाभाविक रहा है। अत: किन्हीं प्रसंगों में पोथीकार की भूलों का श्रीमद्भागवत की तुलनात्मक परख के आधार पर शोधात्मक दृष्टि से औचित्यपूर्ण समाधान करते हुये रचनाकार की मौलिक अनुभूति अभिव्यक्ति तथा अनुवादात्मक भावना की तह में पहुँचने का प्रयास किया गया है - ऐसी स्थिति में भागवत - मर्मज्ञ एवं विज्ञजन हमारी संभावित त्रुटियों को कृपापूर्वक क्षमा कर देंगे।

महारानी ब्रजकुँवरी जी के जीवन चरित्र सम्बन्धी अंत:साक्ष्य :- महारानी ब्रजकुँवरी जी ने 'ब्रजदासी - भागवत' की अंतिम पुष्पिका में अपनी गौरवशाली वंश परम्परा, पतिवंश, पितृवंश, मातापिता-श्वसुरादि के नाम, विवाह-संस्कार, जन्मस्थान, दीक्षा-गुरू, ब्रजदासी-भागवत के रचना-स्थल तथा ग्रंथ-संपूर्णता की तिथि आदि का परिचय अंकित किया है :-

महापुराण (श्री) भागवत जु, परमानंद सरूप ॥
पुस्करथल गढ़ रूप मधि, पूरन भयो अनूप ॥ ४३॥

कूर्मवंस लउवानि पति, नृप (श्री) आनंद रांम ॥
बषत कुंवर चहुवांन जिन्ह, ग्रेह धर्मधर वांम ॥ ४४ ॥
जास गर्भ तैं हूं भई, बिच धौलपुर अस्थांन ॥
नांम भयौ ब्रजकुंवरी मो, सबहिंन कहि बतरांन ॥ ४५ ॥
महाराजा (श्री) रूपसिंघ, रूपनगर अवनीप ॥
तिन्ह सुत (श्री) महाराज हुवै, मानसिंघ कुलदीप ॥ ४६ ॥
जिन्ह सुत सौं सनमंध मो, किय पितमात बिचारि ॥
चीरघाट पैं मो भयौ, पांनिग्रहन निरधारि ॥ ४७ ॥
परम भागवत रूप जें, प्रभु अवतारि क्रिपाल ॥
श्रीवृंदावन नांम जिन्ह, आदि महंत विसाल ॥ ४८ ॥
जिन्ह म्हैरै सिर हाथ धरि, करी क्रिपा करि दास ॥
महामुक्ति दाता दियो, मंत्र सुसहित हुलास ॥ ४९ ॥
तिन्हकैं क्रिपा प्रताप सौं, कहन भागवत चांहि ॥
प्रगट भई म्हैरै हिदैं, द्रिढ है अधिक उमांहि ॥ ५० ॥
बिद्यागुरु बृजनाथ भट्ट, कह्यौ भागवत भेव ॥
तिहं गुर गमि सौं म्हैं कर्यौ, पुसतक देवनि देव ॥ ५१ ॥
सो हरि की क्रिपा सौं, संग सुमित्र पतिपाय ॥
बरनन किय श्री भागवत, म्हैं निज मति अनुभाय ॥ ५२ ॥
संवत विक्रम अष्टादस, बारौतरा निदांन ॥
साका सौला सै सतरि, ऊपरि सस प्रमांन ॥ ५३ ॥
क्वार मास पुनि पछ सुकल, तिथि द्वादसी सुढार ॥
पूर्न भयौ श्री भागवत, सुभ दिन बृहस्पति वार ॥ ५४ ॥
बृजदासी पै करि क्रिपा, श्री हरि गुरू सुषदाय ॥
कियौ मनोरथ पूर्न इहि, दीन जांनि अपनाय ॥ ५५ ॥
म्हैं म्हैरी मति सम कह्यौ, श्री भागवत बषांन ॥
पढि है साधु सुधारि जें, परम सुजांनि निदांन ॥ ५६ ॥
या श्रीमत भागवत कौ, भेद प्रताप अपार ॥
लह्यौ जास क्यूं पार हौ, मो मति तुछ निरधार ॥ ५७ ॥

उपर्युक्त प्रकार से उद्धृत अंत:साक्ष्य से महारानी ब्रजकुंवरी जी के जीवन चरित्र सम्बंधित निम्न महत्वपूर्ण प्रामाणिक तथ्यों का उद्घाटन होता है :-

(१) जयपुर - राज्यांतर्गत लवाण ठिकाने के राजा आनंदराम जी कछवाहा बांकावत की धर्मपरायणा धर्मपत्नी बषतकुँवरी जी चौहान की पवित्र कुक्षी से आपका जन्म हुआ था।

(२) ब्रजयात्रांतर्गत बीच मार्ग में धौलपुर में आपका जन्म हुआ था। द्यौपुरी या द्यौपुर भी प्रचलित हैं जो धौलपुर के पर्याय हैं। ब्रज में जन्म होने से आपका नामकरण 'ब्रजकुंवरी जी' सहज-बोलचाल से हो गया।

(३) रूपनगढ़ (किशनगढ़) के महाराजा रूपसिंह जी आपके दादा श्वसुर तथा महाराजा मानसिंह आपके श्वसुर थे। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में पत्नी द्वारा पतिनाम का सम्बोधन अनिष्टकारक माना गया है; अत: महारानी जी ने अपने पति महाराजा राजसिंह जी का नामोल्लेख नहीं करते हुये 'जिन्हसुत सौं सनमंध' होने का स्पष्ट संकेत कर दिया है कि महाराजा मानसिंह के सुपुत्र महाराजा श्री राजसिंह जी से उनका पाणिग्रहण संस्कार श्री धाम वृन्दावन चीरघाट पर सम्पन्न हुआ था।

(४) परम भागवत, श्रीसर्वेश्वर प्रभु के अवतार, परमकृपालु अ.भा. जगद्गुरू श्री निम्बार्काचार्य पीठ श्रीनिम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद (रूपनगढ़ के सन्निकटस्थ) के पीठाधीश्वर श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज की आप कृपा पात्र शिष्या थीं; जिन्होंने आपको श्री निम्बार्क सम्प्रदायी परम्परानुसार परम गुह्य महामुक्तिदाता अष्टादशाक्षर श्रीगोपाल मंत्रराज की दीक्षा दी थी। श्री गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की महती प्रेरणा से महारानी जी के हृदय में श्रीमद्भागवत महापुराण के 'ब्रजदासी-भागवत' नामांकित इस भाषा-पद्यानुवाद करने की प्रबल प्रेरणा जागृत हुई थी और इन्हीं गुरु चरणों के कृपा-प्रताप तथा सतत निर्देशन से महारानी जी का यह मनोरथ पूर्ण हुआ था।

(५) श्री बृजनाथ भट्ट नामक श्रीमद्भागवत महापुराण के मर्मज्ञ विद्वान एवं व्याख्याकार आपके विद्यागुरु थे जिन्होंने आपको श्रीमद्भागवत महापुराण का गहन अध्ययन करवाया था।

(६) आपके पति महाराजा राजसिंह जी ने भी इस महत्वपूर्ण कार्य में सुमित्रवत् सुसंगत सहयोग दिया था।

(७) 'श्री ब्रजदासी-भागवत' का सम्पूर्ण रचना कार्य रूपनगढ़ में पूर्ण हुआ था, जो पुण्यस्थल पुष्कर क्षेत्र में पीठ के सन्निकट अवस्थित है।

(८) विक्रमी संवत् १८१२ तदनुसार शाका संवत् १६७७ में क्वारमासीय शुक्ल पक्ष की द्वादशी बृहस्पतिवार को 'श्री ब्रजदासी-भागवत' का रचना कार्य सम्पूर्ण हुआ था।

(९) इसी प्रकार 'श्री भागवत-माहात्म्य' की अंतिम पुष्पिका में अंकित अंत:साक्ष्य के अनुसार श्री ब्रजदासी जी ने इस प्रकरण को श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कंध पर्यन्त मूल-कथा सम्पूर्णता के ३ वर्ष पश्चात् वि. सं. १८१५ में पूर्ण किया था। श्री भागवत माहात्म्य को पोथीकार ने 'ब्रजदासी-भागवत' की इस पोथी के प्रारंभ में लिपिबद्ध किया है - ''समत अष्टदस सत जु पुनि, पंच दस रीतु हेम ॥

(श्री) भागवत माहात्म्य की, भाषा पूरन छेम ॥ ७३॥

जन्मकाल-विद्यमानता तथा निकुंजवास - अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ की बहियों के अनुसार वि. सं. १७७५ के आश्विन में श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की आज्ञा से महाराजा राजसिंह जी की प्रथम महारानी चतुरकुँवरी जी स्वास्थ्य लाभ हेतु श्रीसर्वेश्वरघाट स्थित श्रीजीकुंज में वृन्दावनवास कर रही थी। अस्वस्थता अधिक होने से महाराजा राजसिंह एवं कुँवर सांवत सिंह (नागरीदासजी) भी साथ थे। द्वितीय आश्विन मास विजयदशमी को महारानी चतुरकुँवरी जी परमधाम सिधार गई। श्रीजी की पुरानी कुंज के प्रबन्धक श्री जुगलदास जी के निरीक्षण में महारानी जी का नुकता एवं ब्रह्म भोज हुआ। इन्हीं दिनों लवाण राजा अणदराम सपरिवार चीरघाट वृन्दावन में ठहरे हुये थे। तदनन्तर वैशाख शुक्ला ११ वि. सं. १७७६ के दिन महाराजा राजसिंह का द्वितीय विवाह ब्रजकुँवरी जी के साथ सम्पन्न हुआ (नागरीदास वाणी - अंक - पृ. १३ - पं. श्री ब्रजवल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ)। इस प्रकार विवाह के समय आपकी आयु २० वर्ष रही होगी; अत: वि. सं. १७५६ में आपका जन्मकाल मानना युक्तियुक्त है। वि. सं. १८०६ से १८१२ तक अनुष्ठानपूर्वक ब्रजदासी-भागवत का मनोरथ आपने पूर्ण किया था; और इसी क्रम में वि. सं. १८१५ में आपने श्रीमद्भागवत-माहात्म्य पूर्ण किया। जीवन के अंतिमकाल में लगभग वि. सं. १८३० तक श्रीधाम वृन्दावन के 'नागरीदास घेरे में' आपका वास रहा था और यहीं आपका निकुंज वास हुआ। महाकवि नागरीदास जी, बणीठणी, गोपाल कुँवरी जी के समाधिस्थल के पार्श्वभाग में ही आपका समाधि स्मारक बना हुआ है। अत: आपका ७५ वर्षीय आयुमान तथा तदनुसार आपकी विद्यमानता मानना प्रामाणिक है।

जीवन विषयक विशेष वृत्त

(1) वंशानुगत वैष्णवी संस्कार :- ब्रजकुँवरी जी के पिता आनंदराम जी कछवाहा जयपुर राज्यांतर्गत लवाण ठिकाने के प्रतिष्ठित सामंत थे। आमेर-राज्य के इतिहास प्रसिद्ध भगवद्भक्त राजा भगवानदास जी के वंशज होने से आप परम्परागत रूप से 'राजा' की पदवी से विभूषित लवाण ठिकाने के राजा थे। जयपुर-महाराजा सवाई जयसिंह जी इनकी शूरवीरता तथा वैष्णव धर्म परायण भक्तिभावना का अत्यन्त सम्मान करते थे; कपड़द्वार जयपुर के दस्तावेजों से इनकी यह वंशानुगत प्रतिष्ठा प्रतिपादित होती है। संभवत: सवाई जयसिंह जी ने ही इन्हें जयपुर नगर में 'लवाण राजा की हवेली' नामक मुख्यावास प्रदान कर सम्मानित किया था। राजा आनंदराम जी को अपने पूर्वज राजा भगवानदास जी से ही शौर्य और भक्ति के वंशानुगत संस्कार मिले थे, वंशपरम्परानुसार इसीलिए उन्होंने भी अपने नाम के आगे वैष्णव संस्कार संयुक्त 'राम' शब्द लगा रखा था। संभवत: राजपूती शौर्य परम्परा संयुक्त 'सिंह' शब्द में निहित अहम्मन्यता भगवत-शरणागति के दास्यभाव के विपरीत समझी जाने से लवाण के कछवाहा बांकावतों में 'दास' या 'राम' शब्द लगाने की अध्यात्म-

भावना प्रबल थी। लवाण ठिकाने के वैष्णव धर्म परायण इन राजाओं का राजत्व काल उनकी भक्तिभावनायुक्त सदाचारिता तथा नैतिकता के लिए प्रसिद्ध रहा है।

लवाण ठिकाने के सर्वेक्षण के अनुसार यहाँ के चार सौ वर्ष के दीर्घकालिक इतिहास में यह उल्लेखनीय परम्परा रही है कि वहाँ दास-प्रथा नहीं थी; इसीलिए यहाँ 'दरोगा' जाति के परम्परागत घर नहीं है। वैवाहिक परम्परानुसार यहाँ की राजवधुओं के दहेज में साथ आने वाले पूरबिया राजपूतों के घर यहां बहुसंख्यक हैं; पर दास-प्रथा से भिन्न इनका कृषक जीवन है। ऐसे वैष्णवी आचार विचार वाले लवाण ठिकाने में आनंदराम सुख्यात राजा रहे हैं, जो सवाई जयसिंह जी के समकालिक थे तथा जिनकी विद्यमानता वि. सं. १७३० से १८०० तक मानी जाती है।

राजा आनंदराम जी का विवाह चौहान राजवंश में हुआ था। राजरानी बषतकुँवर चौहान पतिपरायणा, वैष्णवभक्ति भावना से परिपूर्ण परमसाध्वी थी। ब्रजधामनिष्ठा की बलवती भावना से दंपति में ब्रजरस-रमण के लीलाधाम के दर्शनों का चाव अधिक था। वि. सं. १७५६ में ब्रजयात्रा के अंतर्गत परम-भागवत बषत कुँवरीजी की पवित्र कुक्षी से धौलपुर में ब्रजकुँवरी जी का जन्म हुआ।

परब्रह्म-परमानंद-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के लीलाधाम ब्रज के रजस्पर्श से नवजात इसी कन्या ब्रजकुँवरी ने श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की शिष्या परमसाध्वी ब्रजदासी बनकर महाराजा राजसिंह जी की महारानी बांकावती के रूप में रूपनगढ़ के राजसी महलों में प्रवेश किया, पर आपने राजसी विलासिता के कीच में कमलवत् उच्चासीन रहकर तथा 'ब्रजदासी-भागवत' की दीर्घकालिक अध्यवसायी साधना में संलग्न होकर वैष्णवभक्ति साहित्य में मरुमंदाकिनी मीराँ सदृश सुख्याति अर्जित की थी जिससे अद्यावधि आपके पितृ तथा पति वंश दोनों ही आपकी अमर कीर्ति से समुज्ज्वल हो रहे हैं।

ब्रजरज स्पर्श से अंकुरित जन्मजात ब्रजधाम निष्ठा आपके पितृगृह की वैष्णवता के उदात्त परिवेश में पल्लवित होकर तथा गुरुप्रदत्त ब्रजदासी नामांकित सखीभाव से संयुक्त होकर अन्ततः रूपनगढ़ के पतिगृही-राजसी-अंतःपुर को सुरभित करने लगी। महाराजा राजसिंह और बांकावती के अध्यात्मपरक दाम्पत्य-भाव ने उन्हें मित्रवत् सुसंगत भाव से 'नगधर जी और बांकावती' संयुक्त निकुंज बिहारी युगल ''श्री बांके बिहारी'' का उपासक बना दिया। म. रूप सिंह जी का ब्रजरस केन्द्रित रूपनगढ़ जो श्रीनाथजी गोवर्धन धारी की भक्ति का ब्रज था वह अब निकुंज केलिरत 'श्रीबांकेबिहारी' का वृन्दावन बन गया। नव नव भावों और उमंगों से प्रेरित युगल की निकुंज-केलि परक सेवा-उत्सवों से रूपनगढ़ के राजमहल का परिवेश सखी भावपरक मानसिक - वृन्दावन का निकुंज सेवा कुंज बन गया जिसके परमानंद रस में समस्त राजपरिवार भी आप्लावित हो गया। फलस्वरूप निम्बार्कीय निकुंजोपासना में आकंठ निमग्न म. राजसिंह, नागरीदास, बनीठनी, सुंदर कुँवरी, छत्र कुँवरी- आनंदघनादि ने ब्रजदासी जी से प्राप्त इस रससिद्धि से किशनगढ़ क्षेत्र को ब्रजधाम से वृन्दावनधाम बना दिया। ब्रजरस में जन्मी, ब्रजरस से स्निग्ध निकुंज-भक्ति के वितान तले अहर्निश नित्यविहार में रमी ब्रजदासी जी अन्ततः वृन्दावनधाम की रमणरेती में ही निकुंज लीन हुई। उद्‌गम से समागम तक ब्रजदासी जी की यह रससिद्ध जीवन लीला ही उनकी वंशानुगत ब्रजयात्रा थी।

(२) श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की मंगलकामना से शुभविवाह - ब्रजकुँवरी जी का शुभविवाह पूर्वजन्म के मंगलदायक प्रारब्ध से श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी महती प्रेरणा से ही सम्पन्न हुआ था। अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ के ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार रूपनगढ़ के महाराजा राजसिंह जी की प्रथम राजरानी श्रीमती चतुरकुँवरी जी जो कि ब्रजक्षेत्रांतर्गत कामा के कछवाहा राजवंशी राजकुमारी थी तथा जिन्होंने श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री नारायणदेवाचार्य जी से दीक्षा ली थी। इसी महारानी चतुरकुँवरी जी ने सुखसिंह, फतेसिंह, सावंतसिह (नागरीदास) और बहादुरसिंह, को जन्म दिया था। वे दीर्घकाल से असाध्य रोग से पीड़ित थी तथा वि. सं. १७७५ के पुरुषोत्तम मास में वृन्दावनदेवाचार्य जी की प्रेरणा से वृन्दावनस्थ सर्वेश्वरघाट स्थित श्रीजी की पुरानी कुंज में चिकित्सा करा रही थीं। महाराजा राजसिंह तथा युवराज सावंतसिंह भी वहीं थे। विजयदशमी के दिन चतुरकुँवरी जी परमधाम सिधार गई। १९ वर्षीय युवराज सांवतसिंह जी को अपनी माता के इस निधन से हृदयविदारक पीड़ा हुई। उन्होंने 'मनोरथ मंजरी' से पूर्व रचित ग्रंथ 'देह दशा' और 'वैराग्य वटी' में अपनी इसी रुग्ण मानसिकता की अभिव्यंजना की है। पत्नी वियोग में राजसिंह जी का दुःखी होना स्वाभाविक ही था। दूसरी ओर भविष्यवेत्ता राजर्षि श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी का संवेदनशील हृदय रूपनगढ़ (किशनगढ़) राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी संत हृदय कुँ. सांवतसिंह तथा राजसिंहासन के प्रति अति आतुर महत्वाकांक्षी तथा कूटनीतिज्ञ छोटे कुँवर बहादुरसिंह जी के सुषुप्त अंतर्द्वन्द्व से किशनगढ़ राज्य में संभावित गृहकलहजनित जनसंहार से सशंकित हो रहा था। राज्य और जनता की भावी सुरक्षा के प्रति वे उद्विग्न हो किसी कल्याणकारी सार्थक उपाय सोच निकालने के

लिए अतिव्यग्र थे कि उनकी दृष्टि लवाण राजकुमारी ब्रजकुँवरी पर आकर स्थिर हो गई क्योंकि भविष्यवेत्ता राजर्षि की अंतर्दृष्टि ने इसे अपनी पीठ और किशनगढ़ राज्य के सुरक्षित भविष्य के लिए सक्षम और सुखद सुपात्र समझ लिया था।

ब्रजकुँवरी जी के माता पिता उन दिनों चीरघाट-वृन्दावन ठहरे हुये थे। जिन्होंने श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की मंगलदायक आज्ञा स्वीकार ली। विमाता शेखावती जी, कुँ. सांवतसिंह तथा अनेक राजाओं की प्रेरणा से महाराजा राजसिंह जी ने भी लवाणराजा अणदरामजी की 20 वर्षीय सुपुत्री परमभक्तिमति राजकुमारी ब्रजकुँवरी जी से दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लिया। बारात मथुरा से सजकर चीरघाट वृन्दावन आई और इस प्रकार वैशाखशुक्ला एकादशी वि. सं. १७७६ में ब्रजकुँवरी जी का श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी के शुभाशीर्वाद से विवाह सम्पन्न हुआ (द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी पृ. १३) फलस्वरूप वे रूपनगढ़ के महाराजा राजसिंह की द्वितीय महारानी ब्रजकुँवरी बांकावती तथा कुँवर सांवतसिंह (नागरीदास जी) की सुख्यात विमाता बन गई। यह तथ्य 'ब्रजदासी - भागवत' के अंत:साक्ष्य से भी प्रतिपादित है।

(३) विवाहोपरान्त रूपनगढ़ राजमहलों में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी का भव्य-स्वागत-समारोह :- विवाहोपरान्त ब्रजकुँवरी जी ने अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ, सलेमाबाद आकर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी से विधिवत् मंत्र-दीक्षा ली थी। उनके परमकृपालु गुरु श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी महाराज ने उन्हें निकुंज - रसोपासना का सखी-भावपरक रहस्यात्मक नाम 'ब्रजदासी' दिया था और इसी गुरु प्रदत्त नाम से उन्होंने ब्रजदासी - भागवत - पद्यानुवाद की रचना की थी, अन्तत: वे इसी गुरुप्रदत्त नाम ब्रजदासी से वैष्णव भक्ति साहित्य में अमर हो गई। रूपनगढ़ के राजमहलों में इस अवसर पर विशाल समारोह का आयोजन किया गया था जो संभवत: गुरुप्रदत्त वैष्णवी-दीक्षा के उपलक्ष्य में आयोजित था अथवा यह वैष्णवी आचार-विचार के अनुकूल वैवाहिक मांगल्य के प्रति-आयोजित समारोह रहा होगा जिसमें श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की श्रीसर्वेश्वर प्रभु के साथ लवाजमें सहित पधरावनी एवं राजसी परम्परानुसार राजमहलों में उनकी अगवानी का दृश्य अत्यंत भव्य एवं नयनाभिराम था। नगर द्वार के बाहर आकर महाराजा राजसिंह, महारानी बांकावती, राजकुमार सांवतसिंह, राजपरिवार के अन्य सदस्यों तथा प्रजाजनों ने श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का राजसी स्वागत किया था। तोपें दागी गई। धूमधाम से निकाली गई शोभायात्रा के उपरान्त उनका डेरा युवराज सांवतसिंह जी के महल में लगाया गया। इस अवसर पर डेढ़ माह तक गुरु चरणों का रूपनगढ़ राजमहलों में भक्तिभावपूर्वक आदर सत्कार किया गया था। रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बही में इस पधरावणी का ब्यौरा भी दिया गया है - '' ता. १६ मि. जु. अव्वल मितिमाघ वदी ४ सोमवार सं. १७८२ स्वामी वृंदावनदास जी वृन्दावन सूं आया, आप (म. राजसिंह) - दरवाजा ताईं सामा आया। डेरो कुँवरजी की रेवास में हुवो ---- आदि '' - द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी अंक-पाद टिप्पणी - पृ. १४) सर्वेश्वर विशेषांक में भी इस समारोह का उल्लेख किया गया है (पृ. २८१) इसी क्रम में गुरु भक्ति का परिचायक ऐसा ही समारोह म. राजसिंह और महारानी बांकावती जी ने अपने दिल्ली के शाही मुख्यावास में भी आयोजित किया था। यह वि. सं. १७८८ में बांकावती जी द्वारा दिल्ली में अपने सेव्य ठाकुर 'नगधरजी और बांकावती संयुक्त युगल स्वरूप के महोत्सव के रूप में मनाया गया था जिसमें सलेमाबाद और वृंदावन से महावाणी जी समाज-गायकों तथा साधुसन्तों को आमंत्रित किया गया था। कई दिनों तक रसिकभक्तों की वाणियों का गान हुआ तथा विदाई में साधुसन्तों का सम्मान-सत्कार भी किया गया था। (द्रष्टव्य - वही - पृ. २८१)

(४) सरस - दाम्पत्य के परस्पर समर्पण से गुरु प्रदत्त नामा 'ब्रजदासी' अब - 'नगधर' नामा पति महाराजा राजसिंह की 'बांकावती' नामा हृदयेश्वरी 'प्रियाजी' बन गई :-

'ब्रजदासी - भागवत' के अंत:साक्ष्य में ब्रजकुँवरी जी ने लिखा है :-

विद्या गुरु ब्रजनाथ भट्ट कह्यो भागवत भेव ॥
तिहं गुर गमि सौं म्हैं कर्यो पुस्तक देवनि देव ॥
सो हरि गुरु की क्रिपा सौं संग सुमित्र पति पाय ॥
बर्नन कियो श्री भागवत म्हैं निज मति अनुभाय ॥

स्पष्ट है कि राजरानी ब्रजकुँवरी जी ने अपने विद्यागुरु श्री ब्रजनाथ भट्ट से श्रीमद्भागवत महापुराण का वर्षों पर्यंत सतत-गहन-अध्ययन किया था। प्रकृति प्रदत्त सहज प्रतिभा अध्ययन- मनन- स्वाध्याय और चिंतन की प्रक्रिया से विषयगत ज्ञान गरिमा को आत्मसात् करती हुई अपने संगृहीत एवं परिपक्व - ज्ञान को सशक्त अभिव्यक्ति देने की क्षमता प्राप्त कर लेने पर ही कवित्व मति एवं काव्य-सृजनात्मिका शक्ति बनती है। भगवत् स्वरूप गुरु श्री वृंदावनदेव की कृपा से गुरु प्रदत्त नामा 'ब्रजदासी जी' ने अपनी काव्य प्रतिभा को उजागर करने वाले 'मित्रवत्' संगति और सहयोग

देने वाले, समान रूप से कवित्व अभिरूचि वाले, काव्य प्रतिभा से सुसम्पन्न, परमभागवत - भक्त - कवि-हृदय पति राजसिंह जी का अनुपम सहयोग भी प्राप्त किया था। दम्पति की परस्पर श्रीमद्भागवत महापुराण विषयक गहन-चर्चा और ज्ञान के आदान-प्रदान से वे अपने अनुभूत विषय को अपनी मौलिक कवित्व मति से सहज-अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो सकी थी और इस प्रकार 'ब्रजदासी - भागवत' वर्णन और लेखन से पूर्व राजरानी ने राजमहलों में रहते हुये उक्त रचना की 'पूर्व भूमिका और पृष्ठभूमि' तैयार कर ली थी, मित्रवत् पति के इस क्रियात्मक योगदान का उन्होंने श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है। ऐसा था कवि हृदयों का परस्पर सरस और क्रियात्मक रूप से समर्पित दाम्पत्य। म. राजसिंह जी के उपास्य स्वरूप श्रीकृष्ण का नाम 'नगधर जी' था। उसी के अनुरूप गुणकथन-लीलागायन की तन्मयासक्ति पूर्ण शरणागति भक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने अपना कविनाम भी 'नगधर' रखा था। दूसरी ओर यद्यपि ब्रजकुँवरी जी का युगल की सहचरी सेवा के अनुरूप गुरु प्रदत्त नाम 'ब्रजदासी' ही था जो कविनाम उनकी 'ब्रजदासी-भागवत' में सर्वत्र अभिव्यक्त हुआ है, तथापि उनके उपास्य-स्वरूप 'बांकेबिहारी' जी जिनकी श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ में अद्यावधि विराजमान कांस्यमिश्रित पीतल की चल युगल प्रतिमा, वस्तुत: अनेक टेढ़ी मेढ़ी भंगिमाओं से युक्त दर्शनीय है, जो उस समय रूपनगढ़ के राजमहलों में राजारानी द्वारा परिसेवित होते थे - ऐसे 'बांके' - ठाकुर की उपासिका रानी को 'उपास्य-उपासिका-भक्त और भगवान में' परस्पर दाम्पत्यपरक स्वकीयात्व-सम्बन्धों की मान्यता रखने वाले सहृदय-भावुक भक्त कवि एवं पति राजसिंह जी ने 'बांकावती' रूप में 'नगधर' की अनन्य आह्लादिनी शक्ति प्रिया जी को देखा था और उन्होंने इसी अध्यात्म-भाव से अपनी राजरानी ब्रजकुँवरी जी का नाम भी 'बांकावती' रख दिया था 'नगधर जी और बांकावती के संयुक्त नाम से राजारानी उक्त युगल विग्रह की निकुंज उपासना में तल्लीन हो गये थे। 'नगधर' और 'बांकावती' नामों का पारस्परिक दाम्पत्यपरक सम्बोधन दरबार-राजपरिवार-सद्गृहस्थ वैष्णव समाज तथा प्रजाजनों में भी अत्यंत लोकप्रिय होकर 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्त से यह सांस्कृतिक - सामाजिक तथा आध्यात्मिक आदर्श इस क्षेत्र में चरित्र निर्माणकारी अनुकरण बन गया था। रीतिकालीन आदर्शों और दरबारी परम्पराओं के अनुसरण से इस दाम्पत्य भाव का प्रभाव तत्कालीन किशनगढ़ी काव्य और चित्रकला पर भी प्रभावी रहा होगा। 'नगधर और बांकावती' के अनुपलब्ध युगल चित्र रूपनगढ़ किशनगढ़ में ऐसे ही रहे होंगे जैसे कि आज 'नागरीदास और बनीठनी' के संयुक्त युगलभावपरक चित्र कहे और देखे जाते हैं तथा सामान्य प्रजाजन जिन्हें कृष्णगढ़ के 'श्रीराधाकृष्ण' का रूप देते हैं।

महाराजा राजसिंह तथा राजरानी बांकावती जी के पूर्वोक्त 'नगधर जी तथा बांकावती' नामांकित श्रीराधाकृष्ण की संयुक्त चल-युगल प्रतिमा के 'बांके बिहारी' स्वरूप की निम्बार्कीय पद्धति से पूजा की व्यवस्था रूपनगढ़ के राजमहलों के मंदिर में तथा बांकावती जी के अंत:पुर में वर्षों तक होती रही होगी, चल-प्रतिमा होने से किशनगढ़ी परम्परानुसार वहां की जनानी ड्योढी में भी इनकी अस्थायी पूजा व्यवस्था रही होगी, दिल्ली तथा ढाका के शाही मुकामों में यह 'बांकेबिहारी' उनके साथ रहे ही होंगे। नागरीदास जी के साथ राजमाता बांकावती जी ने जब वृंदावनवास किया तो घेरे में स्थित नागरीकुंज अथवा अंत:पुर में वे पूजे जाते रहे होंगे। वि. सं. १८३० में ब्रजकुँवरी जी के निकुंजलीन होने से पूर्व 'नगधर जी और बांकावती' संयुक्त श्रीनिकुंजबिहारी श्रीराधाकृष्ण स्वरूप 'श्री बांकेबिहारी' का यही युगल विग्रह समुचित निम्बार्कीय पूजा व्यवस्था के उद्देश्य से गुरुपीठ सलेमाबाद को उनके द्वारा धरोहर के रूप में अन्तत: सौंप दिया गया था, जो धरोहर अद्यावधि सुरक्षित और अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ में परिसेवित है।

अ.भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ का परम्परागत रूप से भारत व्यापी वर्चस्व था जिससे सलेमाबाद राजनैतिक स्थिति से किशनगढ़ राज्याधीन होने पर भी यह सर्वतंत्र स्वतंत्र धर्माचार्य स्थल था, प्रजा की परम्परागत श्रद्धा से निम्बार्काचार्य पीठाधिपति के वर्चस्व के समक्ष राजाओं का व्यक्तित्व नगण्य था। राजमुकुट न होने पर भी वे राजाओं के राजा लोकहृदय सम्राट् होते थे। इन परिस्थितियों में किशनगढ़, जयपुर और सलेमाबाद के उत्तराधिकार के अवसरों पर प्राय: राजनैतिक उथल पुथल होना स्वाभाविक था। श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के वर्चस्वी प्रभाव तथा महाराजा राजसिंह जी के उत्तराधिकार से उत्पन्न संघर्ष की विभीषिकाओं को कूटनीतिज्ञ महाराजा बहादुर सिंह ने समझ लिया था। अत: बहादुरसिंह जी ने अपने बलपूर्वक हथियाये गये राजत्व को भविष्य में सुरक्षित रखने की दूरदर्शितापूर्ण राजनीति से यही उचित समझा कि किशनगढ़ को स्थायी रूप से सलेमाबाद पीठ के भारतव्यापी वर्चस्व से स्वाधीन किया जाय। तदनुसार उन्होंने वि. सं. १८२९ में किशनगढ़ की राजनीति में बल्लभ-संप्रदायी-धर्माचार्यों की पुष्टि मार्गीय धार्मिक अनुशासन व्यवस्था को स्थापित कर तात्कालिक प्रबल जनविरोध का सूझबूझ पूर्ण समाधान कर लिया। इसी क्रम में उन्होंने वि. सं. १८२३ में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के वरिष्ठ शिष्य भगवान दासजी को कृष्णगढ़ के श्रीजी महाराज के रूप में प्रतिष्ठित करने की राजनीतिक चाल भी चली होगी। ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि भगवान दास जी उक्त राजनीतिक परिपेक्ष्य में स्वेच्छा से निम्बार्काचार्य पीठासन

नागरीकुंज में अद्यावधि विराजमान श्रीनागरीदासजी के युगलस्वरूप 'दम्पति श्रीराधाकृष्ण' जो निम्बार्कीय परम्परानुसार परिसेवित हैं। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. १८)

म. राजसिंह (नगधरदास) तथा रानी ब्रजकुँवरी (ब्रजदासी) के संयुक्त उपास्य युगलस्वरूप 'श्री बांकेबिहारी और उनकी बांकावती' अर्थात् दंपति श्रीराधाकृष्ण। तदनुसार नामांकित चरण चौकियों पर विराजमान। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. १७)

म. राजसिंह (नगधरदास) तथा रानी ब्रजकुँवरी (ब्रजदासी) के संयुक्त युगलस्वरूप की तदनुसार नामांकित उनकी चरण चौकियाँ। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. १७)

नागरी-कुंज-अद्यावधि अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद) के स्वामित्व में है। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. १८)

बायें से दाईं ओर क्रमशः (१) नागरीदासजी (२) गोपालकुँवरीजी तथा (३) बनीठनीजी के समाधि-स्मारक जिन पर तदनुसार स्मारक लेख अंकित हैं। नागरीदास घेरे (वृन्दावन) में अद्यावधि स्थित
(द्रष्टव्य - भूमिका पृ. २०)

के दायित्व से विमुक्त होकर ब्रजधाम-कामा में विराजते थे तथापि उन्हें बहादुर सिंह जी ने वि. सं. १८२३ में किशनगढ़ की हवेली तथा वि. सं. १८३० में काचरिया ग्राम का पट्टा देकर नई धार्मिक नीति का सूत्रपात कर दिया जो स्थल आज भी वर्तमान है। आज यहाँ के महन्त गृहस्थ हैं तथापि अपना पूर्वागत सम्बन्ध पीठाधीन ही मानते रहे हैं।

किशनगढ़ के लिए अन्ततः बल्लभ-संप्रदायी-वर्चस्व को उपादेय समझ कर उन्होंने नितांत गुह्य राजनीति से प्रेरित होकर रूपसिंह जी के उपास्य स्वरूप श्रीगोवर्धनधारी श्रीकृष्णस्वरूप श्रीनाथजी की प्रतिमा को कल्याण राय जी के नाम से वि. सं. १८२९ में पधराया, इन परिस्थितियों में म. राजसिंह जी और बांकावती जी का पूर्वोक्त 'नगधर जी और बांकावती' संयुक्त 'श्री बांके बिहारी' का चल युगल स्वरूप बहादुर सिंह जी द्वारा निर्मित कृष्णगढ़ दुर्ग के मंदिर में नहीं पधराया जाने से अद्यावधि वह अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ में श्री निम्बार्कीय पूजा पद्धति से परिसेवित रहा है।

वि. सं. १८२९ में म. बहादुरसिंह जी द्वारा निर्मित कृष्णगढ़ दुर्ग स्थित बल्लभ-संप्रदायी मंदिर में श्रीकल्याणराय जी के स्वरूप के साथ स्व. श्रीराजसिंह जी के 'नगधर' जी का पूर्वोक्त युगल स्वरूप भी स्थापित कर दिया होगा ऐसी मान्यता भी भ्रामक है क्योंकि म. राजसिंह जी के 'नगधरजी' का यह स्वरूप 'नगधर जी और बांकावती' नामांकित युगल विग्रह रहा है जो पूर्वोक्त प्रकार से 'बांकावती रूपी श्रीराधाजी' के स्वरूप से संयुक्त युगल प्रतिमा का रहा है। जिन्हें म. रूपसिंह जी का उपास्य स्वरूप कदापि नहीं माना जा सकता क्योंकि कृष्णगढ़ के दुर्ग में स्थित बल्लभ मंदिर में परम पूज्य बालस्वरूप नृत्य गोपाल जी तथा गोवर्धनधारी श्री नाथजी की सेव्य प्रतिमाएँ ही परिसेवित रही हैं, वहाँ श्री राधाकृष्ण की युगल प्रतिमाएँ कभी भी स्थापित नहीं की गई हैं। अतः कृष्णगढ़ दुर्गस्थित म. बहादुरसिंह जी द्वारा निर्मित मंदिर के तोरण द्वार के छज्जे पर उत्कीर्णित इतिहास ''रुपवंश को कियो सनाथ नगधर दीनै गोपीनाथ'' महाराजा राजसिंह जी के 'नगधर जी' से सम्बंधित साक्ष्य न होकर यह श्री कल्याणराय जी की श्रीकृष्ण गोवर्धनधारी की श्री स्वामिनी रहित एकांगी प्रतिमा के प्रति उल्लेख है जो 'बचनिका' के अनुसार भी 'गिरधारी श्रीकृष्ण' के रूप में रूपनगढ़ में रूपसिंह जी के राजत्वकाल में पूजी जाती थी, तथा वही महाराज श्री रूपसिंह जी की श्रीकृष्ण स्वरूप श्री नाथजी की उपास्य प्रतिमा वि. सं. १८२९ में उक्त मंदिर में पधरायी भी गई है। इन परिस्थितियों में यही मानना समीचीन है।

म. राजसिंह जी के 'नगधर रूपी कृष्ण' तथा राजरानी बांकावती जी की 'श्रीराधारूपी बांकावती' नाम से सुख्यात युगल प्रतिमा वस्तुतः रही है। जो वस्तुतः इसी युगलनामात्मक युगल विग्रह से रूपनगढ़ राज्य में अत्यंत पूजनीय रही है, तथा यही चल प्रतिमा रूपी धरोहर अद्यावधि 'श्री बांकेबिहारी' के नाम से आचार्य पीठ सलेमाबाद में विराजमान है, उनकी प्राचीन चरण चौकी जो जीर्ण शीर्ण अवस्था में आज भी आचार्यपीठ सलेमाबाद के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसपर 'नगधरदास' और 'ब्रजदासी' नाम स्पष्ट रूप से अंकित होने से यह इस तथ्य का मूर्त प्रमाण है।

अतः प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि सलेमाबाद पीठ स्थित 'श्री बांकेबिहारी' की यही युगल प्रतिमा महाराजा राजसिंह और महारानी बांकावती के संयुक्त रूप से पूजे जाने वाले उपास्य की हैं जो बहादुरसिंह जी द्वारा किले में नहीं पधराये जाने की स्थिति में 'ब्रजदासी जी' द्वारा जीवन के अंतिम क्षणों में पीठ को समर्पित कर दिये गये थे।

तत्कालीन इन परिस्थितियों में निर्मित आचार्य पीठ सलेमाबाद की 'ब्रजदासी' तथा कृष्णगढ़ की 'बांकावती' के भावात्मक रूपों से आगे चलकर किशनगढ़ क्षेत्र में निम्बार्कीय तथा बल्लभीय उपासना की प्रबल प्रेरणा भी मिली है जो परम्परागत रूप से यहाँ के साहित्य और चित्रकला आदि की अद्यावधि प्राणाधार है। यहाँ के श्रद्धालु वैष्णवों के अंतर्मनों में बल्लभसंप्रदाय का कृष्णदुर्ग स्थित मंदिर ब्रजरसकेंद्रित बल्लभीय उपासना का केन्द्र होने से 'नंदगांव' और 'गोकुल' है तो दूसरी ओर निम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद निम्बार्कीय रसिकों की स्वामिनी निकुंज बिहारिणी श्री श्रीजी का योगपीठ 'वृंदावन' है तथा वही परमाह्लादिनी श्रीकृष्ण की शक्तिस्वरूपा श्रीनित्यकिशोरी जी का 'बरसाना' है।

(५) ब्रजकुँवरी जी की पवित्र कुक्षि से वि. सं. १७८१ में कार्तिक शुल्का ९ को भक्तिमति सुंदर कुँवरी जी ने जन्म लिया तथा वि. सं. १७९६ में आषाढ़ कृष्णा १४ शनिवार को उनके एकमात्र पुत्र राजकुमार वीरसिंह ने जन्म लिया। सुंदर कुँवरी जी आगे चलकर वैष्णव जगत में सुख्यात निम्बार्कीय रसोपासना की भक्त कवयित्री हुई तथा वीरसिंह जी ने वि. सं. १८१३ में रलावता ग्राम में अद्यावस्थित 'सूरजगढ़' बनवाया, जहां के पदवी प्राप्त राजा तदनंतर रलावता राजमाता ब्रजकुँवरी जी के वंशज कहलाये।

(६) महारानी ब्रजकुँवरी जी की निकुंज योग पीठ श्रीवृंदावन धाम के प्रति बलवती भावना से प्रेरित होकर राजपरिवार सहित उनके वृन्दावनवास के लिए ही राजसिंह जीने वि. सं. १७८० में 'कृष्णगढ़ कुंज' बनवाया जो तदनन्तर वि. सं. १७८७ में युवराज नागरीदास जी की देखरेख में संपूर्ण होकर 'नागरीकुंज' तथा 'नागरीदास घेरे' के नाम से सुख्यात हुआ। (द्रष्टव्य - नागरीदास अंक पृ. १५) उक्त नागरी-कुंज-मंदिर में नागरीदास जी के उपास्य युगल विग्रह निकुंज-

बिहारी श्री राधाकृष्ण की पूजा निम्बार्कीय सेवा पद्धति अनुसार ही हुआ करती थी। युवराज सांवतसिंह राजपाट-परित्याग से पूर्व भी यहाँ सपरिवार विराजते थे - इसका प्रमाण यह है कि वि. सं. १७८७ में यहीं उनके राजकुमार सरदार सिंह जी का जन्म हुआ था। (द्रष्टव्य रूपनगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्र नि. शोध मंडल वृंदावन)

राजपाट परित्याग करके वि. सं. १८१४ से जीवन-पर्यंत नागरीदास जी ने यहीं वृन्दावनवास किया था, उनकी जीवन लीला के अंतिम क्षणों में 'नागरी कुंज' अ. भा. श्री निम्बार्काचार्य पीठ को दान में दे दिया गया था जो अद्यावधि पीठ के स्वामित्व में है (द्रष्टव्य रूपनगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्र - निम्बार्क शोध मंडल वृन्दावन) 'नागरीदास घेरे' में स्थित नागरीदास जी का निकुंज साधना-स्थल तथा विविध समाधिस्मारक अद्यावधि भू. पू. किशनगढ़ राज्य के स्वामित्व में है।

(७) रूपनगढ़ राजमहलों की भांति यह वृंदावनस्थ 'कृष्णगढ़ कुंज' भी इस राजपरिवार का मनभावन निम्बार्कीय-निकुंज- रसोपासना का सखी-सहचरी-भावपरक रहस्यात्मक साधना-स्थल बना हुआ था। उल्लेखनीय है कि यहीं वृन्दावनवास करते हुये वि. सं. १७८५ में ब्रजकुँवरी जी ने पन्द्रह वर्षीय विमोहक किशोरी ब्रजसुंदरी बनीठनी को रसिक बिहारी जी की शिष्या के रूप में देखा था तथा उसे 'विष्णुप्रिया' के नाम से अपने अंत:पुर की दासी बनाकर निकुंज-मंजरी सेविका के रूप में उसके व्यक्तित्व का निर्माण करके तदनंतर उसको 'बनीठनी' विशेषणवाचक नाम देने का श्रेय ब्रजकुँवरी जी का रहा है। नागरीदास जी के राजपाट परित्याग से पूर्व विमाता भक्तिमति ब्रजदासी जी सपरिवार कृष्णगढ़ कुंज में प्रतिवर्ष चातुर्मास में निकुंज सेवा में तल्लीन रहा करती थी। निकुंज भक्ति के इसी वितान तले महाकवि नागरीदास (सावंतसिंह), बनीठनी, सुंदरकुँवरी, छत्रकुँवरी, आनंदघन आदि निम्बार्कीय भक्त कवियों तथा निहालचन्द - अमरचन्द आदि उनके दरबारी चित्रकारों ने निकुंज-रसोपासना में रससिद्धिता प्राप्त की थी। अत: ब्रजदासी जी की सखी - भावपरक निकुंज भक्तिरूपी मातृच्छाया में वात्सल्यपूर्ण आश्रय पाकर इन महान कवियों एवं चित्रकारों ने रीति सिद्ध श्रृंगारिक उद्भावनाओं से संयुक्त युगल भक्ति साहित्य एवं चित्रात्मक साधना से कृष्णगढ़ का नाम विश्व के दिग्दिगन्त में ख्यातिमान कर दिया।

(८) राजमाता के रूप में ब्रजदासी का व्यक्तित्व कृतित्व :-

(अ) महाराजा राजसिंह वैष्णवी सदाचारिता से परिपूर्ण संतोचित वैराग्य वृत्ति वाले अपने उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र युवराज कुँवर सांवतसिंह (नागरीदास) तथा राजलिप्सा की महत्वांकाक्षा से कुटिल-राजनीति में लिप्त कनिष्ठ पुत्र बहादुरसिंह की दीर्घकालिक प्रतिद्वन्द्विता से व्यथित थे। पति की इस अंतर्वेदना से सुविज्ञ महारानी ब्रजकुंवरी जी भी राजकलह से संभावित उत्तराधिकार के जनसंहारक गृहयुद्ध से आशंकित और सावधान थी। विदुषी विमाता युवराज की मातृविहीन मानसिकता से उत्पन्न वैराग्य भावना को समझती थी, संभवत: इसी कारण उन्होंने युवराज की मानसिकता राजकाज में स्थिर रखने की भावना से ही अपनी अत्यंत विमोहक परमसुंदरी निकुंज सेविका 'बनीठनी' के साहचर्य से सांवतसिंह जी को काव्य संगीत-चित्रकला एवं मनोनुकूल निकुंज - रसोपासनात्मक परिवेश में प्रवृत्त कर दिया था। इन्हीं परिस्थितियों में 'बनीठनी' विमाता जी की प्रेरणा से ही नागरीदास जी की राजकीय - मर्यादानुसार पासवान घोषित हुई थी।

(ब) वि. सं. १८०५ में वैशाखकृष्णा ७ को ७३ वर्षीय महाराजा राजसिंह का रूपनगढ़ में स्वर्गवास हो गया, युवराज सांवतसिंह जी चूंकि दिल्ली में थे अत: वहीं शाही-संरक्षण में उनका राज्याभिषेक किया गया। संभवत: पिता से मतभेद के कारण बहादुरसिंह जी भी रूपनगढ़ में उस समय नहीं रहे होंगे, अत: वीरसिंहजी के हाथों स्वर्गवासी महाराजा राजसिंह जी का अंत्येष्ठि-संस्कार हुआ यह बताया जाना सही प्रतीत होता है। (द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी अंक पृष्ठ - १९) ऐसी दुखद स्थिति में भी राजसिंहासन के लिए अति आतुर कूटनीतिज्ञ कुँवर बहादुर सिंह ने आक्रमण करके कुछ ही दिनों में रूपनगढ़ और कृष्णगढ़ पर अपना स्वामित्व स्थापित कर स्वयं को संपूर्ण कृष्णगढ़ राज्य का एकमात्र राजा घोषित कर दिया। युवराज-सांवतसिंह दिल्ली में थे तथा उनके पुत्र सरदारसिंह भयंकर मुकाबले में परास्त हो गये। फलस्वरूप राजमाता ब्रजकुँवरीजी का समस्त राजसी परिवार निर्वासित हो गया। इस निर्वासन काल में परिवार का संरक्षण करना राजमाता में वात्सल्य की पराकाष्ठा प्रतिपादित करता है।

(स) राजमाता ब्रजकुँवरी 'ब्रजदासी' जी वैधव्य के बज्रपात तथा गृहयुद्ध के भीषण संताप से विचलित होकर खंडित क्रौंची की सी करूणाजनक दुखद - विरहावस्था में अपने परम कृपालु गुरुवर्य्य श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी के चरणाश्रित हो उनसे इस गृह कलह शमनार्थ आध्यात्मिक उपचार करने के लिए करुण आत्मनिवेदन करने लगी। गुरुदेव के मुखारविंद से 'ब्रजदासी भागवत' के रूप में श्रीमद्भागवत के पद्यानुवाद करने सम्बंधित

मनोरथ व्यक्त किया गया। पूर्व प्रसंगानुसार राजमाता ने राजमहलों को त्यागकर गुरु आज्ञा से संभवत: पीठाश्रित रहकर वि. सं. १८०६ से १८१२ तक परम साध्वी का कठोर तपोनिष्ठ व्रतधारण कर सप्तवर्षीय अनुष्ठान के रूप में 'ब्रजदासी भागवत' की रचना करके उसे वि. सं. १८१२ में गुरु चरणों में समर्पित कर दिया, तदनुसार उसी के अद्‌भुत प्रभाव से वि. सं. १८१३ में समझौते अनुसार गृहयुद्ध समाप्त हुआ। राजपरिवार एवं प्रजाजन के कल्याणार्थ राजमाता की यह सदाशयतापूर्ण श्रमसाध्य सप्तवर्षीय तपश्चर्या किशनगढ़ के इतिहास की अमर कीर्ति है।

गुरु निर्देशानुसार ही इससे पूर्व 'ब्रजदासी भागवत' पद्यानुवाद' की पृष्ठभूमि के लिए राजरानी के रूप में रूपनगढ़ के राजमहलों में वर्षो पर्यंत किया गया सतत-स्वाध्याय भी उनकी भागीरथी उपासना थी जिसका मूल्यांकन करना और भी कठिन है।

(द) वि. सं. १७८५ से १८१३ तक के राजनैतिक धार्मिक परिप्रेक्ष्य में राजरानी एवं राजमाता दोनों ही रूपों में ब्रजकुँवरी 'ब्रजदासी जी' की वर्चस्व पूर्ण भूमिका रही है। तत्कालीन विषम राजनैतिक परिवेश में श्री निम्बार्काचार्य पीठ तथा रूपनगढ़ किशनगढ़ राज्य के भावी उत्तराधिकार के अंतर्द्वन्द्वों से परस्पर दो विरोधी राजनैतिक समीकरण उभरकर टकराव में आ गये थे। श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी के जीवनकाल में ही उनके भावी उत्तराधिकार के दावेदार थे - उनके प्रमुख दो शिष्य, प्रथम सद्‌गृहस्थी जयराम शेष जी तथा द्वितीय परम विरक्त गोविन्द देवाचार्य जी। जयरामशेष जी के प्रबल पक्षधर महाराजा सवाई जयसिंह ने वि. सं. १७९७ में हठपूर्वक आमेर रोड़ स्थित परशुराम द्वारे की गादी देकर जयराम शेष जी का मेड़ता में पट्टाभिषेक कर दिया। कु. बहादुर सिंह सहित कोटा बूंदी करौली आदि के राजाओं ने इसका समर्थन किया। श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की भावनानुसार उनके विरक्त शिष्य श्री गोविन्द देवाचार्य जी को समस्त वैष्णव समाज ने संगठित होकर श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी का भावी उत्तराधिकारी युवराज घोषित कर दिया जो वि. सं. १८१२ में 'ब्रजदासी-भागवत' के संपूर्ण होने के पश्चात् श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति बने।

ब्रजदासी-भागवत की अंतिम पुष्पिका के अनुसार श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की विद्यमानता वि. सं. १८१२ तक प्रामाणिक रूप से पुष्ट है, तथा जिससे उनके उत्तराधिकारी श्री गोविन्ददेवाचार्य जी का द्विवर्षीय आचार्यत्वकाल प्रतिपादित होता है क्योंकि वि. सं. १८१४ में ही श्रीगोविन्द शरण देवाचार्य जी को श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपत्य प्राप्त हो गया था (द्रष्टव्य - पीठ की इत्तिलाक बहियाँ तथा रूपनगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्र - नि.शोध मंडल - वृंदावन)

वि. सं. १८०० में स. जयसिंह जी के निधन से पीठ सम्बंधित शेषजी का प्रकरण समाप्त हो गया तथा उनका पट्टाभिषेक अवैधानिक होने से उनका नाम अद्यावधि श्रीनिम्बार्काचार्य-परम्परा में नहीं है, दूसरी ओर कु. बहादुरसिंह का आचार्य पीठ के प्रति मतभेद होने से उनके माता पिता के हृदय में संभवत: उनके प्रति ''सदाशयता का भाव नहीं रहा होगा।'' इसी कारण महाराजा राजसिंह और बहादुर सिंह में मनोमालिन्य प्रबल हो गया होगा। महाराजा राजसिंह के देहावसान होने पर वि. सं. १८०६ से १८१३ तक जो भीषण गृहयुद्ध हुआ उसमें श्रीवृन्दावन देवाचार्य एवं उनके पश्चात् श्री गोविन्द शरण देवाचार्य जी तक महाराजा सांवतसिंह (नागरीदास जी) तथा उनके उत्तराधिकारी पुत्र सरदारसिंह तथा उनके भी उत्तराधिकारी बिडदसिंह जी के प्रति पीठ का क्रियात्मक शुभाशीर्वाद राजामाता के विनम्र वर्चस्व का परिचायक है। वि. सं. १८१३ में रूपनगढ़ कृष्णगढ़ राज्य का शांतिपूर्ण बँटवारा करवाने तथा तदनन्तर राज परिवार में भातृत्व प्रेम और सरसता स्थापित करने तथा वि. सं. १८२३ में बिड़दसिंह को महाराजा सरदारसिंह का उत्तराधिकारी बनवाकर विभाजित राज्यों का पुन: एकीकरण करने के क्रम में आचार्य पीठ की क्रियात्मक भूमिका राजमाता ब्रजदासी जी के भागवती वर्चस्व को प्रतिपादित करती है। (नागरीदास वाणी के संपादक पं. ब्रजवल्लभशरणजी के अनुसार इन सब घटनाओं के प्रमाणिक दस्तावेज निम्वार्क शोध मंडल वृन्दावन के ऐतिहासिक संग्रहालय में सुरक्षित बताये जाते हैं।) श्री गोविन्दशरण देवाचार्य जी की सदाशयता तथा राजपरिवार के प्रति उनकी मंगलभावना का उल्लेखनीय उदाहरण है कि उनकी आज्ञा से राजपाट परित्याग से पूर्व वि. सं. १८१४ के प्रथम आश्विन मास शुक्रवार को किशनगढ़ के महाराजा बहादुर सिंह तथा रूपनगढ़ के महाराजा सांवतसिंह (नागरीदास) दोनों एक रथ में बैठकर श्रीसर्वेश्वर प्रभु एवं आचार्य श्री के दर्शन करने सलेमाबाद आये। १०-१२ दिन ठहरे तथा सांवतसिंह जी ने दोनों परिवारों में भावी शांति और प्रेम के लिए बहादुरसिंह के राजकुमार बिड़दसिंह को कृष्णगढ़ का उत्तराधिकारी मानते हुये युवराज बनाना स्वीकार कर लिया। जिससे कि रूपनगढ़ राज्य की ओर से बहादुर सिंह किसी प्रकार आशंकित न रहे। (द्रष्टव्य - नागरीदास बाणी अंक - भूमिका पृ. १०)

महाभिनिष्क्रिमण :- राजमाता द्वारा ब्रजदासी भागवत का रचना-अनुष्ठान वि.सं. १८१२ में संपूर्ण हुआ तथा उसी

की कृपा से वि. सं. १८१३ में मरहठों की सहायता उपलब्ध हो जाने से सांवतसिंह जी के युवराज सरदारसिंह जी ने कृष्णगढ़ राज्य पर भीषण आक्रमण किया जिसके फलस्वरूप महाराजा बहादुरसिंह शांति समझौते के लिए विवश हो गये। तदनुरूप रूपनगढ़ कृष्णगढ़ नाम से दो राज्य बन गये तथा समझौते के अनुसार बँटवारा इस प्रकार हुआ - वि. सं . १८१३ आषाढ़ कृष्णा ५ गुरुवार को रूपनगढ़, अरांई- सलेमाबाद, करकेड़ी इन चार परगनों वाला रूपनगढ़ राज्य सांवतसिंह के युवराज सरदार सिंह जी को मिल गया तथा कृष्णगढ़ फतेहगढ़-सरवाड़-बांदरसिंदरी-कुचील आदि के परगनों वाला कृष्णगढ़ राज बहादुर सिंह को मिल गया। पत्र द्वारा सूचित होने पर चैत्र कृ. १२ को सांवतसिंह जी जो उन दिनों वृन्दावन वास कर रहे थे - रूपनगढ़ आये । (नागरीदास वाणी अंक पृष्ठ २०) अन्ततः राज सिंहासन को कलह का मूल मानकर सांवतसिंह जी ने स्थायी रूप से वैराग्य ले लिया।

सभी कलह या राज मैं राजकलह कौ मूल । सरबस कै सिर धूर दैं सबैं धूर ब्रजधूर ॥

सावंतसिंह जी को इस गृह-कलह ने 'संत नागरीदास' बना दिया। भाई भाई का उक्त वैमनस्य भावुक हृदय सांवतसिंह जी को असह्य हो गया जिससे उन्होंने वि. सं. १८१४ आश्विन शुक्ला विजयदशमी को अपने सुत सरदारसिंह जी को रूपनगढ़ का राजपाट देकर एकादशी को श्रीधाम बृन्दावन के स्थायीवास के लिए प्रस्थान कर दिया। पूर्वोल्लेखित वृन्दावनस्थ 'नागरीदास घेरे' के साधनास्थल पर संत नागरीदास सहचरीभाव से श्रीराधाकृष्ण की निकुंजरसोपासना में तल्लीन हो गये। उनकी सरस वाणी और निकुंज रसोपासनात्मक चित्रकारिता ने उन्हें विश्व विख्यात 'महाकवि भक्त प्रवर संत नागरीदास' के रूप में अद्यावधि प्रसिद्ध कर दिया। यहीं पर बनी उनकी समाधि का निम्नोक्त प्रशस्ति लेख उनके इसी महान व्यक्तित्व कृतित्व का परिचायक है :-

॥ श्री नाथ जी ॥

श्रीराधाकृष्ण गोवर्धन धारी। वृंदावन जमुना तटचारी ॥
ललितादिक बल्लभ विट्ठलेस। मोहन कृपा करो आवेस ॥

छप्पय

सुत कौ दै युराज आप, श्री वृंदावन आये ।
रूपनगर पति भक्तिवृंद, बहो लाड लडाये ॥
सूरवीर गंभीर रसिक, रीझवार अमानी ।
संत चर्नामृत नेम उदधि, लौं जु गावै बानी ॥
नागरीदास विदित कृपा, सुढार नागरि ढरिय ।
सांवतसिंह नृप कलि विषै, त्रेता सम आचरिय ॥

(सं. १८२१ भादौं सुदी ५ को महाराज नागरीदास जी वृंदावन पाए)

छप्पय में अंतर्निहित 'रसिक रीझवार अमानी' 'गावै बानी' 'नागरीदास विदित' 'कृपा सुढार नागरि ढरिय' आदि निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना व्यंजक साक्ष्यों से नागरीदास जी का निम्बार्कीय रसोपासना में दीक्षित होना स्पष्ट रूप से प्रमाणित है। अतः छप्पय से ऊपर लिखे बल्लभ संप्रदायी साक्ष्य प्रक्षिप्त हैं तथा जो किशनगढ़ के राज्याश्रित पुष्टिमार्गीय मान्यतानुसार जोड़े गये प्रतीत होते हैं। 'श्रीराधाकृष्ण .... आवेस' उत्सवमाला से उद्धृत यह चौपाई नागरीदास कृत नहीं है - क्योंकि इसके अगले चरण में व्यवहृत 'सांवतेस' शब्द आत्मश्लाघा पूर्ण है। इसका उल्लेख हम नागरीदास जी के संप्रदाय निर्णय प्रसंग में विस्तारपूर्वक करेंगे।

श्री वृंदावनवास में नागरीदास जी की उपासनात्मक परिचर्या में निकुंज-मंजरी की हैसियत से उनकी प्रसिद्ध पासवान 'बनीठनी' जी भी उनके साथ मृत्युपर्यंत 'नागरीदास घेरे' में ही रही थी, इस प्रसिद्धि का प्रमाण नागरीदास जी की समाधि से सटी हुई 'बनीठनी' जी की समाधि पर लगा हुआ निम्नोक्त शिलालेख द्रष्टव्य है :-

॥ श्री बिहारी जी ॥

श्री बिहारिन बिहारि जू, ललितादिक हरिदास ।
नरहरि रसिकनि की कृपा, कियौ वृंदावन वास ॥
(श्री) रसिक दास गुरु की कृपा, नेहि नागरि सत्संग ।
विष्णुप्रियाहिं वृंदावन मिल्यौ, भक्त बिहार अनंग ॥
रसिक बिहारि की सामरि, ब्रजनागरि सुरकाज ।
जुगल पद पंकज मधुकरि, सेवत विष्णु समाज ॥

(वि. सं. १८२२ मिति अषाढ सुदी १५ तिथि बुधवार बनीठनी जी वृंदावन पाए)

राधाकृष्णदास जी, ब्र. विहारीशरण जी, डॉ. किशोरीलाल गुप्त आदि विद्वानों द्वारा उद्धृत उक्त दोनों शिलालेख जीर्णशीर्ण दशा में अद्यावधि विद्यमान हैं। उक्त छप्पय में स्पष्ट निर्देशित है कि बनीठनी हरिदासजी के टट्टी-संस्थान के रसिकदास जी के शिष्य रसिक बिहारी जी की शिष्या थी तथा विष्णुप्रिया नाम से ब्रजदासी जी के अंत:पुर की दासी थी जो रसिक नागरीदास जी सेवा में मंजरी थी हमने जिसका अन्यत्र प्रसंग किया है। राजपाट परित्याग और वैराग्यपूर्ण इस महाभिनिष्क्रमण में उनकी विमाता राजमाता ब्रजदासी जी ने नागरीदास जी के साथ मातृ छायावत् वृंदावनवास केवल इसीलिए नहीं किया था कि वे उनकी प्रेरणात्मक वात्सल्यमयी मातृशक्ति थी वरन् वे निकुंज रसोपासना की महायोग पीठ श्रीधाम वृंदावन के गूढतम रहस्य को समझने वाली तथा अहर्निश सहचरी सेवा की परम साधनात्मक भावावस्था में तल्लीन रहने वाली परम रसिक साध्वी थी, पूर्व में निरन्तर उन्होंने अधिकांशत: वृन्दावनस्थ इसी घेरे में वास करते हुये परमदुर्लभ सहचरी सेवा सुख के परमानंद की निश्चय ही अनुभूति की थी :-

जयति जयति श्रीराधाचर्न, नमो पूरन सुष रासिय ।
नंदनंदन ब्रजचंद, सदा वृंदावन जु वासिय ॥
जय श्री वृंदावन गुरु, क्रिपाल आनंद निवासं ।
जिन्ह की क्रिपा प्रताप, पाइयत दंपति जु पासं ॥
पुनि पुनि जयति वैष्णव सकल, ब्रजदासी बंदन करत ।
द्वादस स्कंध बरनन करन, अति उमाह निज हिय धरत ॥

रलावता राजमाता – वि. सं. १८१३ में जब समझौते अनुसार कृष्णगढ़ - राज्य का विभाजन हुआ तो विमाता राजमाता ब्रजकुँवरी जी के एकमात्र पुत्र 'बीरसिंह' जी ने रूपनगढ़ और किशनगढ़ के मध्य 'सूरजगढ़' नामक दुर्ग बनाया जो आज ग्राम रलावता में विद्यमान है। राज्य के पूर्वोल्लेखित बँटवारे में रलावता और पालड़ी नामक दो स्थानों की जागीरें राजमाता को दी गई थी। यहीं के राजा राजमाता के वंशज हैं तथा यही ग्राम राजमाता की जागीरों का मुख्य स्थान है - इसी संदर्भ से कई इन्हें 'रलावता राजमाता' भी कहते हैं।

खोया और पाया – कालगति अजेय और अगम्य है, पर भगवत्कृपा से प्राप्त परम वीतरागी संतों का मंगलदायी शुभाशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता। परम साध्वी राजमाता के भागवत - रचना का अनुष्ठान एवं उनका मनोरथ अन्तत: फलीभूत हो ही गया पर सब कुछ खोकर । वि. सं. १८२३ में संत नागरीदास जी के उत्तराधिकारी रूपनगढ़ के महाराजा सरदारसिंह जी निस्संतान दशा में मरने लगे तो उन्होंने अत्यंत राजनैतिक सूझबूझ और पारिवारिक सदाशयता की 'ब्रजदासी प्रेरणा' से किशनगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह जी के ही पुत्र अपने चचेरे भाई बिड़दसिंह को अपने उत्तराधिकारी के रूप में गोद लेकर दो राज्यों के दुखद विभाजन को सुखद एकीकरण में बदल दिया, जो राजमाता 'ब्रजदासी जी' का परम मनोरथ था, पर उनके वरद-रत्न संत-नागरीदास - बनीठनी, सरदारसिंह आदि को सदा सर्वदा के लिए खोकर ही उसे पाया, यह विधि की विडम्बना है।

अन्तत: प्रिया प्रियतम की सहचरी 'ब्रजदासी' 'बांकेबिहारी' की बांकावती श्रीधाम वृन्दावन की रमण-रेती में निकुंज लीन हो गई :

वि. सं. १८३० के लगभग राजमाता श्रीवृंदावनस्थ उक्त नागरीदास घेरे में अपना भौतिक देह त्यागकर परमधाम सिधार गई। उनकी यहीं बनी चबूतरेनुमा छोटी सी समाधि के दर्शनों का लाभ पिछले २५ वर्षों में लेखक ने कई बार प्राप्त किया है, पर अब यह समाधि कालकवलित हो गई है। वि. सं. १८४५ कार्तिक कृष्णा १० को वृन्दावन वास करते हुये अपनी दादी-राजमाता के शुभाशीर्वाद से एकीकृत किशनगढ़ राज्य का वैभव प्राप्त करने वाले म. सरदारसिंह जी के दत्तक पुत्र म. बिड़दसिंह जी ने पूर्ववत् परम्परानुसार वृन्दावनवास करते हुये शरीर छोड़ा था उनकी राजरानी सहित दो समाधियाँ भी नागरीदास घेरे में है। अस्तु आज हम पुण्यदायी स्मरण करें - मरुमंदाकिनी भक्तिमति मीराँ जी के भक्ति परक संस्कार लेकर ब्रजधरा में जन्मी लवाण पुत्री ब्रजकुँवरी का, श्री वृन्दावन देवाचार्य जी से उपदिष्ट श्रीधाम निष्ठा से युगलचरणारविंदों में आश्रय पाकर श्रीमद्भागवत महापुराण के जनकल्याणार्थक कथामृत 'ब्रजदासी - भागवत' का लोकार्पण करने वाली राजमाता 'ब्रजदासी' का, महाकवि नागरीदास को वरद-हस्त देने वाली विमाता का, जिन्होंने अन्तत: श्रीधाम वृन्दावन में स्वामिनी श्रीराधिका जी की अनन्याश्रिता - कृपाकांक्षिणी निकुंज क्रीड़ा रत-प्रियाप्रियतम की केलिसुख साक्षिणी सहचरी के रूप में निकुंज प्रवेश पाकर प्रियाप्रियतम के तदनुरूप अपने उपास्य युगल स्वरूप 'श्री बांके बिहारी' की 'बांकावती' बनकर वहीं विलीन हो गई। महाकाल की चिर निंद्रा में निमग्न महामही सहचरी के रूप में वह किशनगढ़ के समाधिस्थ वैभव संतनागरीदास - बनीठनी पर आज भी मातृछाया करती हुई तथा निकुंजबिहारी श्यामाश्याम को निकुंज रंध्रों से निहारती हुई रमण रेती में रम रही है।

ब्रजदासी-भागवत एवं कृष्णगढ़ कला-साहित्य की सृजनात्मक कर्मभूमि 'रूपनगढ़'

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व किशनगढ़ राज्य राजपूताने के अजमेर, जोधपुर, जयपुर, कोटा, उदयपुर आदि राज्यों की सीमाओं को स्पर्श करता हुआ जोधपुर राज्य के मोटा राजा उदयसिंह जी के कनिष्ठ पुत्र महाराजा किशनसिंह जी द्वारा संस्थापित राज्य था, जिसकी राजधानी किशनगढ़ ने वर्तमान में राजस्थान के अजमेर जिलांतर्गत अपनी प्राचीन धरोहर 'नागरीदास चित्रशैली' तथा अर्वाचीन पावरलूम - मार्बलादि की औद्योगिक उपलब्धियों के कारण राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मानचित्र में एक विशिष्ट तारांकित पहिचान बना ली है।

इम्पीरियल गजट, इत्तिलाक बहियों तथा ख्यातों के अनुसार वि. सं. १६६६ में किशनगढ़ राज्य की स्थापना की गई थी पर महाराजा राजसिंह जी के दरबारी कवि वृन्द कृत बचनिका के अनुसार सर्वमान्य यह है कि वि. सं. १६६८ की माघमासीय 'बसंत पंचमी' को नवनिर्मित 'कृष्णदुर्ग' एवं नगर की विधिवत् स्थापना हुई थी। हमारी संस्कृति में 'बसंत पंचमी' का शुभ-मुहूर्त रिद्धि-सिद्धि का चमत्कारिक योग तथा शौर्य-शक्ति -भक्ति का प्रतीक है। रसोपासना में बसंत रसरूप परब्रह्म लीलावतारी भगवान् श्रीकृष्ण का ही रूप है। फलत: शूरसंतों की पावन भूमि कृष्णगढ़ श्रीकृष्ण की भक्ति का सुदृढ़ गढ़ बन गया, यहाँ के शूरवीर शासकों ने राष्ट्रव्यापी ख्याति प्राप्त की तथा यहाँ के भक्ति परायण राजाओं-रानियों, रीतिसिद्ध दरबारी कवियों एवं लोक उद्धारक महान संतों ने अमिट कीर्ति अर्जित की है।

उत्तरी भारत की एकमात्र प्राचीनतम वैष्णव पीठ जो पुष्करारण्य में वैष्णवधर्म के चतु: सम्प्रदायांतर्गत अपने पद्मपुराणोक्त श्री निम्बार्कतीर्थ नामांकित पौराणिक वैशिष्ट्य एवं परम्परागत प्राचीन दार्शनिक धार्मिक सांस्कृतिक - साहित्यिक वैभव से मंडित अद्यावधि अ. भा. जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद ग्राम --तहसील - रूपनगढ़ के नाम से सुविख्यात रही है। भारत की यह गौरवशाली विरासत इसी राज्य को प्राप्त हुई थी। लगभग वि. सं. १५१५ में श्री निम्बार्काचार्य परम्परा के ३६ वें पीठाचार्य जगद्गुरु श्री परशुरामदेवाचार्य जी ने यहीं पर परम्परागत श्री निम्बार्काचार्य पीठ की विधिवत् रूप से संस्थापना की थी। जनश्रुति है कि आपने यहाँ आकर अपने तपोबल चमत्कार से मायावी मुस्लिम तांत्रिक संत 'मस्तिंगशाह' को परास्त कर पुष्करारण्य में परिव्याप्त यावनी अत्याचारों का अंत कर दिया था। नाभादासकृत छप्पय के अंतिम चरण 'जंगलीदेस के लोग सब परसराम किय पारषद' में उभयार्थक 'जंगलीदेस' के अनुसार इन्हीं क्रांतिकारी आचार्य श्री ने इस क्षेत्र में तात्कालिक राजनैतिक-परिवर्तित - परिवेश से व्याप्त धार्मिक कट्टरता, बर्बरता तथा क्रूरतापूर्ण हिंसा से दूपित जनजीवन में दया, सहिष्णुता, अहिंसा की आधारभूत दार्शनिक-सांस्कृतिक-सामाजिक क्रांति का सूत्रपात कर यहाँ के लोगों को परम पावन, सुसंस्कृत वैष्णव पार्षद बना दिया था। ''माया तेरे तीन नाम परसा परसी परसराम' तथा 'आख्यां देखी परसरांम कदै न झूठी हौय'' इन्हीं लोकोद्धारक महानसंत एवं उपदेष्टा कवि की अमिट लोकोक्तियाँ हैं। मरु मंदाकिनी भक्तिमति मीरां जी के दादा राव दूदाजी ने चारभुजा मंदिर मेड़ता के प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर परशुरामदेवाचार्य से मीरां जी को निम्बार्कीय दीक्षा दिलाई थी तथा इसी दीक्षा अवसर पर बालिका मीरां जी को श्री परशुरामदेवाचार्य ने 'मीरां के गिरधर - गोपाल' की उपास्य - मूर्त्ति प्रसादी रूप में दी थी- (द्रष्टव्य - आचार्य परशुरामदेव पृ. १५५) इसी ख्यातिमान पीठ के परवर्ती निम्बार्काचार्य श्री वृन्दावनदेव जी ब्रजकुँवरी जी के दीक्षा गुरु थे जिनकी प्रेरणा से ही 'ब्रजदासी-भागवत' की महत्वपूर्ण रचना हुई। मीरां और ब्रजदासी दोनों ही इस पीठ के कीर्तिमान हैं।

महाराजा किशनसिंह जी के पुत्र सहसमल्ल ने वि. सं. १६७२ से १६७५ तक, जगमल्ल ने वि. सं. १६७५ से १६८५ तक राज्य किया तथा भारमल्ल उनके साथ अमानुल्लाखाँ से जाफराबाद में युद्ध करते काम आये । तदनन्तर हरिसिंह १६८५ से १७०० तक किशनगढ़ के राजा रहे। किशनसिंह जी के पौत्र भारमल्ल पुत्र महाराजा रूपसिंह का जन्म वि. सं. १६८५ वैशाख शुक्ला ११ को हुआ था तथा आप वि. सं. १७०० ज्येष्ठ शुक्ला ५ को सिंहासनारुढ़ हुये। वि. सं. १७०६ में आपने अपने जन्मस्थान 'बबेरा' में विशाल दुर्ग 'रूपनगढ़ तथा नगर' की स्थापना की और इसे किशनगढ़ की राजधानी बनाया। वही रूपनगढ़ 'ब्रजदासी भागवत' का रचनास्थल था जो पुष्करारण्य में स्थित अ. भा. जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ से ५ मील की दूरी पर स्थित अद्यावधि अपने अतीत की गौरव गाथा कर रहा है।

रूपसिंह जी के दरबारी कवि वृंद ने बचनिका में रूपनगढ़ नगर का बड़ा भव्य वर्णन किया है जो रूपसिंह जी के ऐश्वर्य का परिचायक है :-

सुंदर समाज राजभवन बिराजमान ,
सुधा तै रवन सुर पुर सरभर कौ ।
उज्जल आवास आसपास च्यारों वरन कैं ,
भासत बिमान सौं सुरूप घरघर कौ ॥
चहुँ ओर फूले फले हरे भरे तरवर ,
सब सुख देखै जल भरै सरबर कौं ।
ऐसे रूपनगर नगर रूप सोहै तहां ,
राजै राजा रूपसिंघ रूप मुरधर कौं ॥ (१०५)

वि. सं. १७०६ से १८२३ तक लगभग ११७ वर्ष तक यही राजधानी रूपनगढ़ किशनगढ़ की रीति नीति, भक्तिरस प्रधान कला-संस्कृति-साहित्य की सृजनात्मक कर्म भूमि रहा है। किशनगढ़ राज्य के इतिहास का स्वर्णयुग इसी पवित्र भूमि पर अवतरित हुआ था जिसने किशनगढ़ के नाम को अजर-अमर कर दिया। यहाँ के परमप्रतापी राजा 'ब्रजदासी जी' के दादा श्वसुर महाराजा रूपसिंह जी ने मुगलकालीन भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर अपने अदम्य साहसपूर्ण रणकौशल एवं राजनीतिक सूझबूझ से अपने अमिट स्वर्ण हस्ताक्षर किये थे। इसी माटी से आविर्भूत महाराजा राजसिंह, महाकवि वृन्द, महारानी श्रीमती ब्रजकुँवरी, राजकुमारी सुन्दर कुँवरी, छत्रकुंवरी, महाराजा सांवत सिंह उपनाम 'नागरीदास', बणीठणी, आनंदघन, विरजानंद, टीकाकार हरिचरणदास, हीरालाल, पन्नालाल कल्ला, विजयचंद वैष्णव आदि उज्ज्वलतम कविरत्नों ने तत्कालीन निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री वृन्दावनदेवाचार्य की प्रेरणा से रीतिनीति श्रृंगार समाविष्ट श्रीराधाकृष्णपरक मधुर भक्ति से ओतप्रोत विपुल साहित्य की सृजना कर, सरस्वती के अक्षय-भंडार में अनूठी अभिवृद्धि की थी। नागरीदास-चित्रशैली के गणमान्य चित्रकार 'निहालचंद' ने विश्वविख्यात चित्र 'बणीठणी' में 'कृष्णगढ़ की राधिका' की प्राणप्रतिष्ठा कर कला के प्रकाश-पुंज से 'कृष्णगढ़' को अद्यावधि दिग्दिगन्त में दीप्तिमान कर दिया।

प्रेरणात्मक – पारिवारिक पृष्ठभूमि

(१) दादा श्वसुर महाराजा रूपसिंह :- शूरवीर एवं भक्तप्रवर महाराजा रूपसिंह जी ब्रजकुँवरी जी के दादा श्वसुर थे जिन्होंने वि. सं. १७०६ में रूपनगढ़ की स्थापना की थी तथा उसे अपनी राजधानी बनाया था। जिन्हें वि. सं. १७०० से १७१५ तक के उनके शासनकाल में, दिल्ली बादशाह शाहजहाँ ने सेना-नायक-सामंत के रूप में मुगल-विद्रोही पठानों और ईरानियों का दमन करने हेतु वि. सं. १७०२ में बलख तथा १७०६ से वि. सं. १७१० तक तीन बार कन्दहार भेजा था। इन मुहिमों में आपकी विलक्षण रणकुशलता, अदम्य-साहस और शूर-वीरता से प्रभावित होकर बादशाह ने उन्हें १७०२ वि. में वलख का रक्षाधिकारी बना दिया तथा आपको एक सफेद घोड़ा भेंट करके विशेष रूप से सम्मानित किया और अन्तत: वि. सं. १७१० में आपका मनसब बढ़ाकर चार हजारी जात तथा पांच हजार सवारों का करके आपको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया था। महाकवि वृन्द की बचनिका से उनका वर्चस्व प्रतिपादित है :-

सतरै सै रू बिडौतरै रूपसिंघ राजांन । बलख मुलक की मुहिम कौं भेजे साहिजांन ॥ (१३७)
संवत सतरै छहौतरै धरी मुहिम खंधार । राजा रूप बिदा किये पातिसाह करि प्यार ॥ (१६४)
सतरै सै रु नवोतरै दूजी बार खंधार। राजा रूप बिदा किये संक बधी सिरदार ॥ (१७३)
सतरै सै दाहौतरै मुहिम तीसरी बार । तोरि बांन तरवारि सौं ख्वार करी खंधार ॥ (१८२)

वि. सं. १७११ में चित्तौड़ विजय में आपकी वीरता से प्रसन्न हो बादशाह ने आपको पुरमांडल जागीर में दे दिया। अपनी कूटनीति और तदनुरूप अद्भुत वीरता से मुगलशाही के नीतिनियन्ता रूपसिंह जी ने हिन्दू-संस्कृति और स्वाभिमान के रक्षणार्थ उत्तराधिकार के युद्ध में उदारमना शाहजादे दाराशिकोह का पक्ष लिया। वि. सं. १७१५ में दाराशिकोह और औरंगजेब की सेनाओं में निर्णायक युद्ध हो रहा था। दाराशिकोह की सेना के अग्रिम दलनायक महाराजा रूपसिंह ने अकेले ही औरंगजेब के अग्रिम दल को तलवार से चीरते हुये औरंगजेब पर अपने भाले से भीषण प्रहार किया जिससे तत्काल ही महावत के मरने तथा हाथी की अम्बारिका का रस्सा कटने से धराशायी होता हुआ औरंगजेब उनकी वीरता और अदम्य साहस को देखकर दंग रह गया कि इतने में औरंगजेब के दूसरे सहायक दल ने आकर महाराजा रूपसिंह को घेर लिया। सिंह की भांति अकेले ही शत्रुदल का सर्वसंहार करते हुये रूपसिंह जी वि. सं. १७१५ ज्येष्ठ शुक्ला ९

को धौलपुर के सन्निकट 'रूपावास' में वीरगति को प्राप्त हुए। (बचनिका - छंद ५८१) औरंगजेब के इतिहास लेखक श्री खफी खाँ ने 'मुंतखबुल्लुबाब' नामक ग्रंथ में तथा सैरूल मुताखिरीन इतिहासकार का उद्धरण देते हुये मुंशी देवी प्रसाद ने, मआरिरूल उमरा का अनुवाद करते हुये वीर विनोदकार ने तथा मारवाड़ के इतिहासकार विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने महाराजा रूपसिंह के इस शूरवीरतापूर्ण बलिदान को प्रमाणित किया है।

इस अनुपम शूरवीरता के साथ ही रूपसिंह जी परमभागवत वैष्णव भक्त थे। यह भी प्रसिद्ध है कि वि. सं. १७०४ में गो. विट्ठलनाथ जी के ज्येष्ठ पुत्र गो. गिरधर जी के तृतीय पुत्र गोपीनाथ जी दीक्षित से आपने बल्लभ-संप्रदायी पुष्टिमार्गीय मंत्र दीक्षा ली थी, पर बचनिका में गोपीनाथ जी से गुरु दीक्षा लेने की पुष्टि नहीं की गई है। यहाँ तो इतना ही उल्लेख है श्रीनाथ जी ने इन्हें ब्रज में दर्शन दिये थे (१४३) और आपने स्वप्न में दी गई आज्ञा के अनुसार वि. सं. १७१० में श्रीकल्याण राय जी के स्वरूप को प्रतिष्ठित किया था, वि. सं. १७११ में इस स्वरूप को मांडलगढ़ में, बचनिका (छंद १४७) के अनुसार तदनन्तर रूपनगढ़ में पधराया था। आपने रूपनगढ़ को मानों ब्रजमंडल बना दिया था (१४८)। 'बचनिका' में रूपसिंह जी द्वारा श्रीनाथ जी की षोड़श पूजा का भावपूर्ण वर्णन है -

दियौ दरस आग्या दई सुपनैं मैं सुख सांनि । पधराए श्रीनाथ जी रूपनगर मैं आंनि ॥ (१४७)
आप गिरधारी गोपी गाइन उधारी ब्रज । मंडल बिहारी इहां प्रेम बस आयो है ॥
नाथ जू सौं मन कौं मगन करि रूपसिंघ, ब्रज कौ बनाव रूपनगर बनायौ है । (१४८)
सिसिर बसंत पुनि ग्रीषम सघन सुनि, सरद हेमंत मैं अनंत सुख छाये हैं।
जैसे जैसे रितु कै बिलास तहां तैसे तैसे, हिय कै हुलास सौं प्रकास दरसाये हैं ॥
भावकरि चाव करि सुखद सुभाव करि, रूपसिंघ जू कै गिरिधारी जिए भाये हैं।
देखि देखि जन मन मोद होत चहूं कोद, ब्रज के बिनोद रूपनगर बनाये हैं ॥ (१४९)
उत्तम अनेक अंन्न बिविध बिबेक सिन्न भिन्न भिन्न ढेर करि करि कैं धरत हैं।
मेवा पकवांन फलद आँन आँन पाँन आँनि आँनि राषै सोभा कही नां परत है ॥
व्यंजन बिनांन नाना भांति के संधान दधिदूध मिसरी सौ सांनि भाजन भरत है।
राजा रूप प्रीति रीति पार्गौ नाथ जू कैं आगैं कातिक मैं अन्नकूट उछव करत है॥ १५०॥

यह भी जनश्रुति है कि वि. सं. १५६८ में सुलतान सिकन्दर लोदी द्वारा उनके चित्रकार होनहार की कलम से बनाया गया श्रीमहाप्रभु बल्लभाचार्य जी का चित्र भी आपने बादशाह शाहजहाँ से बलख मुहिम की सफलता उपलक्ष्य प्राप्त किया था। अन्ततः ये निधियाँ वि. सं. १८२९ में चैत्र शुक्ला नवमी के शुभ मुहूर्त में महाराजा बहादुरसिंह जी द्वारा किले के मंदिर में स्थापित कर दी गई। म. राजसिंह के दरबारी कवि वृन्द बल्लभ-संप्रदायी शाकद्वीपी ब्राह्मण थे - जो मूलतः मेड़ता के थे । ''उनके चित्र में धर्म तिलक बल्लभकुल संप्रदाय का है तथा गले में तुलसी की माला है जिससे ज्ञात होता है कि आप पुष्टिमार्गीय वैष्णव थे (वृन्द और उनका साहित्य - डॉ. जर्नादन चेलेर पृ. ५९) ऐसी स्थिति में उन्होंने अपनी बचनिका में रूपनगर के उपर्युक्त प्रसंगों से रूपसिंह जी का पुष्टिमार्गीय वर्चस्व तो उजागर कर दिया है पर वे अपने प्रमुख आश्रयदाता महाराजा राजसिंह रानी ब्रजकुँवरी तथा सांवतसिंह-बनीठनी के निम्बार्कसंप्रदायी निकुंज-भक्ति से परिपूर्ण धार्मिक वर्चस्व के प्रति मौन रहे हैं जबकि उनकी बचनिका के नायक म. रूपसिंह जी तथा राजसिंह जी दोनों ही हैं। सत्यरूपक ग्रंथ में भी उन्होंने नायक राजसिंह के शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व कृतित्व की खुलकर प्रशंसा की है पर यहां भी वे उनके निकुंज रसोपासनात्मक वर्चस्व के प्रति मौन रहे हैं। सत्यरूपक के एक दोहे (१३४) में कथित श्रीनाथ जी की कृपाकांक्षा से उपासना तत्व स्पष्ट नहीं होता। बचनिका में इसी प्रकार वृंद म. मानसिंह जी की उपासना के प्रति भी मौन रहे हैं; अतः वंशानुगत पुष्टिमार्गी उपासना क्रम प्रामाणिक नहीं है।

महाराजा राजसिंह जी ने अपनी युगललीला पदावली में अपने उपास्य स्वरूप 'नगधर जी' के युगल नाम से लीला गान किया है, वहाँ पुष्टिमार्गीय बालरूप श्रीकृष्ण की अथवा श्रीनाथजी के नाम से गोवर्धनधारी श्री कल्याणरायजी की उपासनात्मक बाल लीलाओं का नितान्त अभाव है, उनके युगल वर्णन में स्वकीयात्व भाव से श्री स्वामिनी संयुक्त ब्रजरस लीलाओं का समावेश है। अतः दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि उनका उपासनात्मक वर्चस्व रूपसिंह जी की बल्लभी उपासना से भिन्न रहा है। जिसे वल्लभ संप्रदायी वृंद ने अल्पप्रकाशित किया है। ''रूपवंस को कियौ सनाथ। नगधर दीनै गोपीनाथ।'' में निहित वंशानुगत उपासना-परम्परा का निर्वाह म. मानसिंह, म. राजसिंह तथा सांवतसिंह जी ने नहीं किया- यह प्रमाणित है। म. रूपसिंह द्वारा विरचित 'रूपसतसई' का नामोल्लेख है पर अभी तक अनुपलब्ध है।

वीर विनोद पृ. ५२९ तथा किशोर सिंह बारहठ कृत महाराणा राजसिंह चरित्र के अनुसार बादशाह औरंगजेब

नागरीदासजी का स्मारक-लेख। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. २०)

नागरीदासजी की पुत्री गोपाल कुँवरी (रसिकबिहारीजी की शिष्या) का स्मारक-लेख। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. २०)

नागरीदासजी की सेविका निकुंज-मंजरी (पासवान) बनीठनी (रसिकबिहारीजी की शिष्या) का स्मारक-लेख (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. २०)

'बिहार चंद्रिका' ग्रंथ में नागरीदासजी द्वारा सांगोपांगिक रूप से वर्णित निम्बार्कीय निकुंज-केलि-रसोपासना पर चित्रकार निहालचन्द्र द्वारा बनाया गया काव्यात्मक भाव-चित्र जो सन् १९५९ ई. में ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा किशनगढ़ पेंटिंग्स की चित्रात्मक एटलस में प्रकाशित हुआ है। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. ६५)

''निम्बार्कीय तिलक-कंठी धारण किये तथा सखी-वेश में, प्रातः कालीन निकुंज-रसोपासनात्मक आराधना क्रम में दिव्य-केलि-धाम श्री वृन्दावन का मानसिक ध्यान करते हुये नागरीदासजी तथा तदनुसार उनकी निकुंज-सेवा-परिचर्या में संलग्न बनीठनी।''

यह चित्र मूलतः निहालचन्द्र द्वारा सन् १७३९ ई. में रूपनगढ़ में बनाया गया। नागर-समुच्चय, राधाकृष्ण ग्रंथावली, नागरीदास-वाणी (सलेमाबाद) आदि पूर्वापर ग्रन्थों में प्रकाशित यह चित्र सन् १९५९ ई. में ललित कला अकादमी (नई दिल्ली) द्वारा किशनगढ़ पेंटिंग्स की चित्रात्मक एटलस में पृष्ठ २२ पर 'कवि राजकुमार और बनीठनी-किशनगढ़-दरबार' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ। (द्रष्टव्य - भूमिका पृ. ९२)

ने स्व. रूपसिंह जी की पुत्री चारूमति को प्राप्त करना चाहा, इस पर राजकुमारी ने मेवाड़ महाराणा राजसिंह जी के पास विवाह का करुण आवेदन भेजा। अन्ततः तत्कालीन निम्बार्काचार्य अ. विभूषित श्रीनारायणदेवाचार्य जी की प्रेरणा से चारूमति का गुप्त विवाह राणा जी से हो गया। यह भी जनश्रुति है कि महाराणा द्वारा रक्षणार्थ भेजे गये उनके वीरवर सेनानायक चूड़ावत अपनी सद्य ब्याहता हाड़ी रानी की मुंडमाल पहने मुगलवाहिनी से युद्ध करते हुये यहीं रणखेत हुये थे तथा जौहर ज्वाला में अनेक ललनाओं की होली हुई थी। अतः खेत + होली से बने खातौली नामा ग्राम में किशनगढ़-रूपनगढ़ मार्ग पर यह इतिहास प्रसिद्ध युद्ध होना संभावित है।

(२) श्वसुर महाराजा मानसिंह :- ब्रजकुंवरी जी के श्वसुर महाराजा मानसिंह तीन वर्ष की अल्पायु में वि.सं. १७१५ में उत्तराधिकारी बनाये गये तथा इनका शासनकाल वि. सं. १७६३ तक रहा। वि. सं. १७४८ में आपने वजीर काम बख्श के साथ दक्षिणी भारत के जंजी किले को जीतने में अद्‌भुत वीरता दिखाई जिससे बादशाह औरंगजेब ने प्रसन्न होकर आपका मनसब बढ़ा दिया। इन्हीं दिनों बादशाह औरंगजेब की मंदिर एवं देवप्रतिमाओं को तोड़ने की विध्वंसकारी नीति हिन्दू संस्कृति के अस्तित्व के प्रति चुनौती बन चुकी थी। ब्रज में गोवर्धन स्थित 'श्रीनाथ जी' की मूर्त्ति को अत्यंत गोपनीय ढंग से मेवाड़ पहुँचाकर 'श्रीनाथ द्वारा' पधराया गया। इस धार्मिक अभियान में महाराजा मानसिंह की महत्वपूर्ण साहसिक भूमिका ने वैष्णवधर्म के इतिहास में किशनगढ़ का नाम उज्ज्वल कर दिया। आपने चालीस दिन तक पीताम्बर जी की गाल में 'श्रीनाथ जी की मूर्त्ति' को पधराया, बड़ी भावभक्ति से राजसी सेवा की अनूठी व्यवस्था की गई पर उल्लेखनीय बात यह थी कि मानसिंह जी ने प्राण हथेली पर रखकर तथा किशनगढ़ राज्य के अस्तित्व को संकट में डालकर उक्त मूर्त्ति की रक्षा की थी, इस प्रकार बादशाह के कोप से तनिक भी त्रस्त न होकर श्रीनाथ जी का आतिथ्य और उनके स्वरूप का संरक्षण करना वैष्णवधर्म के इतिहास में उनकी परम वैष्णवता, अदम्य साहस और धर्म के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना का अनुपम उदाहरण है। यह घटना वि. सं. १७६२ की है, गाल स्थित श्रीनाथ जी की बैठक में अद्यावधि लगा शिलालेख इसका प्रमाण है। वि. सं. १७६३ कार्तिक शुक्ला १० को पाटण में आपको वीरगति प्राप्त हुई। महारानी ब्रजकुंवरी जी के पूर्वजों की यह ऐतिहासिक धार्मिक गरिमा उनकी अत्यन्त प्रेरणास्पद पृष्ठभूमि रही होगी।

(३) पति महाराजा राजसिंह :- ब्रजकुँवरी जी के पति महाराजा राजसिंह जी का जन्म वि. सं. १७३१ में पौष शुक्ला १२ को हुआ था तथा आपका शासनकाल वि. सं. १७६३ से १८०५ वि. तक का रहा था। महाकविवृन्द कृत बचनिका तथा सत्यरूपक आदि ग्रंथों के अनुसार आप अपने दादा रूपसिंह जी के समान अनुपम शूरवीर योद्धा तथा दिल्ली बादशाह शाहआलम के विश्वासपात्र सतहजारी मनसबदार सेनानायक थे। वि. सं. १७७४ में आपने उत्तराधिकार के युद्ध में शाह आलम की ओर से लड़कर आजमशाह को हराया था, वि. सं. १७७५ में सैय्यदों की ओर से लड़कर फर्रूखसियर को हराया था। इसी से दिल्ली दरबार में आपकी साहसिक योद्धा तथा कुशल प्रशासक के रूप में उल्लेखनीय प्रतिष्ठा रही थी। शाह आलम ने आपको सुदूर पूर्वांचलों में मुगल विद्रोहियों को वश में रखने हेतु ढाका में रक्षाधिकारी प्रशासक बनाया था। शाह आलम से ही आपने महाकवि वृंद को मांगकर उन्हें अपना दरबारी कवि बनाया था, इससे पूर्व ही वृन्द म. मानसिंह जी द्वारा राजसिंह जी के शिक्षक भी नियुक्त किये गये थे।

महाकवि वृन्द की बहुमुखी प्रतिभा थी, उन्होंने ढाका में 'बचनिका' नामक ग्रंथ पूर्ण किया था जो किशनगढ़ का प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

दिल्ली-ढाका-लाहौर-पटना आदि स्थान महाराजा राजसिंह के शाही मुकाम रहे हैं तथा रूपनगढ़ का राजकाज करते हुये आपने श्रीधाम निष्ठा से वृन्दावनस्थ कृष्णगढ़ कुंज में भी आवास किया था जो कि आपके द्वारा वि. सं. १७८० में महारानी ब्रजकुँवरी जी के लिए बनवाया गया निकुंज साधनास्थल था। महाराजा राजसिंह साहित्य प्रेमी थे। महाकवि वृंद को राजाश्रय देकर आपने रीति परक साहित्य सृजन का पारिवारिक परिवेश निर्मित कर दिया था जिनके काव्यादर्श से हिन्दी के रीतिकालीन इतिहास में किशनगढ़ का नाम अमर हो गया। तदनन्तर कविसुबल्लभ, जयलाल आदि वंशानुगत वृंदवंशज कवियों ने भी किशनगढ़ के सरस्वती भंडार की अभिवृद्धि में अनुपम योग दिया था।

महाराजा राजसिंह जी ब्रजभाषा में युगलभक्तिपरक सरस पदों की रचनाकरने वाले भावुक कवि थे। आपने अपने उपास्य-युगल-स्वरूप पूर्वोल्लेखित बांकावती (श्रीराधा) संयुक्त 'श्री नगधर जी' के नाम से विष्णुपद नामक वृहद उत्सव लीला पदावली रची है जिसमें आपने विशिष्ट ऋतुओं - पर्वों तथा वैष्णवी उत्सवों के माध्यम से श्री स्वामिनी राधा जी

के स्वकीयात्व दाम्पत्य की सरस अभिव्यंजनाएँ की हैं। विरह की विवशता में नायक के 'जुल्मकारी' नेत्रों के प्रति गोपीभावपरक व्यंजना द्रष्टव्य है :-

ए अँखियाँ प्यारे जुलम करैं ।
ए महरेटी, लाज लपेटी, झुकि झुकि घूमैं झूमि परैं ॥
नगधर प्यारे, होहु न न्यारे, हाहा तो सौं कोटि ररैं ।
राजसिंह कौ स्वामि श्री नगधर, ता बिन देखै दिन कठिन भरैं॥

'बचनिका' के अनुसार महाराजा रूपसिंह के उपास्य श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीनाथजी थे, जो गोवर्धन धारी ब्रजराज श्रीकृष्ण माने जाते हैं पर उनका स्वरूप श्रीराधाजी संयुक्त नहीं था, जो वि. सं. १८२९ से अद्यावधि इसी रूप में परिसेवित है, पर म. राजसिंह जी अपने उपास्य नगधरजी को बृषभानु सुता संयुक्त युगल माना है, यही दंपति भाव उनके पदों में हैं। 'ब्रजबिलास' ग्रंथ में श्रीकृष्ण के अनुरूप सौभाग्यशालिनी स्वामिनी जी के जन्मोत्सव का निम्न पद दर्शनीय है :-

भई वृषभांन कैं सुता।
रूपरासि अंग अंग माधूरी, मानहुँ कनक लता ॥
सब अंगनि धुजा बनी अति मृगछबि कँचनहूँ तैं गौरी ।
जास कहत ब्रजराज नंद सुत बनी अनुपम जौरी ॥

इन उद्‌भावनाओं में आपका तथा महारानी ब्रजकुँवरी जी का भी श्रीराधाकृष्ण सदृश्य अध्यात्मपरक मधुर दाम्पत्य प्रतिपादित हुआ है, आप नंदसुत ब्रजराज (स्वयं राजसिंह) हैं तो वे (ब्रजकुँवरी) वृषभान सुता - इस प्रकार ब्रजराज और ब्रजकुँवरी दोनों की जोड़ी अनुपम है। अध्यात्मपरक इस दाम्पत्य का प्रसंग हमने दिया है। ऐसा दंपति विलास ही भावुक कवि का 'ब्रजविलास' है। इसी प्रकार आपके द्वारा विरचित दो और ग्रंथ हरिबाहुविलास तथा रसरास नामक प्रसिद्ध हैं। मिश्रवंधु विनोद, जयलाल कवि द्वारा संपादित नागर समुच्चय, डॉ. राजकुमारी शिवपुरी के शोधग्रंथ राजपूताने के राजघरानों की हिन्दी सेवा, डॉ. किशोरीलाल गुप्त के नागरीदास - ग्रंथावली दो भाग तथा डॉ. फैय्याज अली खां के भक्तप्रवर नागरीदास शोधग्रंथ में आपके सुकवि व्यक्तित्व कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बहियों के अनुसार कामा की कछवाही राजकुमारी श्रीमती चतुर कुँवरी जी से आपका प्रथम विवाह हुआ था। विवाह के पश्चात् दम्पती ने गठजोड़े से श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ की यात्रा की थी और तत्कालीन श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री नारायण देवाचार्य जी से आपने उक्त अवसर पर निम्बार्कीय दीक्षा और मंत्रोपदेश लिया था। वि. सं. १७५६ में जब श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी ने अपने गुरु श्रीनारायणदेवाचार्य जी का बृहत्स्मृति महोत्सव (मेला भंडारा) किया तब दिल्ली से म. मानसिंह द्वारा भेजे गये परवाने के अनुसार युवराज राजसिंह जी ने दुशाला सिरोपाव और सहस्त्रों रू. राज्य की ओर से भेंट स्वरूप भेजे थे। इससे पूर्व वि. सं. १७५४ में जन्माष्टमी महोत्सव पर अपने द्वितीय पुत्र फतेहसिंह का मुण्डन कराने महारानी चतुरकुँवरी सलेमाबाद आई, श्री नारायणदेवाचार्य जी ने आशीर्वाद देते हुये कहा कि तुम्हारा तीसरा पुत्र वीर, भगवत भक्त तथा कवि होगा, उक्त आशीर्वाद से वि. सं. १७५६ पौष कृ. १२ को चतुरकुँवरी जी की कुक्षि से कृष्णसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका बोलता नाम कुँवर सांवत सिंह हो गया। श्रीनारायणदेवाचार्य जी तब तक परमधाम पधार चुके थे, अत: चतुरकुँवरी जी की प्रार्थना पर तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृंदावन देवाचार्य वि. सं. १७६० चैत्र शु. १० को रूपनगढ़ पधारे और इसी अवसर पर कुँ. कृष्णसिंह जी को श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी ने निम्बार्कीय दीक्षा और मंत्रोपदेश दिया था तथा उनका निकुंज-भक्ति परक रहस्यात्मक नाम नागरीदास (निकुंज - स्वामिनी श्रीराधाजी के दास) रख दिया था। चतुरकुँवरी जी के मनोरथ अनुसार ३०० रु. वार्षिक का एक परवाना भेंट नामे के रूप में राज्य की ओर से इस अवसर पर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी को दिया गया। वि. सं. १७६२ में श्रीराजसिंह जी रूपनगढ़ के राजा बने, वि. सं. १७६५ में आपने सलेमाबाद तथा पुष्कर की यात्रा की। वि. सं. १७६६ में आपने राजकुमारी फतेह कुँवरी की दीक्षा गुरु पूर्णिमा के अवसर पर कराई (इत्तिलाक बही नं. ७ का उद्धरण -नागरीदास वाणी अंक पृ. ८/१० से उद्धृत)

वि. सं. १७७६ में पूर्व प्रसंगानुसार चतुरकुँवरी जी का निधन हो जाने से श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के शुभाशीर्वाद से लवाण राजा आनंदराम जी की सुकन्या ब्रजकुँवरी जी से महाराजा राजसिंह जी का द्वितीय विवाह हुआ तथा ब्रजकुँवरी जी ने भी श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी से मंत्रोपदेश लिया जिससे उनका पूर्वोक्त रहस्यात्मक नाम 'ब्रजदासी' हो गया।

ऐसे परमभागवत दंपति महाराजा राजसिंह एवं उनकी महारानी ब्रजकुँवरी जी परम यशस्वी श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री वृन्दावनदेव जी के प्रति पूर्णतया समर्पित थे। महारानी ब्रजकुँवरी जी ने 'ब्रजदासी भागवत' की मनोरथ पूर्ण रचना की सफलता में 'संग सुमित्र पतिपाय' कहकर भारतीय परम्परानुसार इस धार्मिक साहित्यिक अनुष्ठान में अपरोक्ष रूप से अपने पति राजसिंह जी की पवित्र प्रेरणात्मक भागीदारी बताई है। ब्रजकुँवरी जी का वि. सं. १७७६ में राजसिंह जी से पाणिग्रहण हुआ था तथा वि. सं. १८०५ में वैशाख शुक्ला ५ को राजसिंह जी का परलोक गमन हो गया। इस प्रकार दोनों का तीस वर्ष तक सरस-साहचर्य तथा भावपूर्ण प्रगाढ़-दाम्पत्य सम्बन्ध रहा था। सुमित्र जीवन को सार्थक लक्ष्य की ओर प्रेरित करने वाले परमहितैषी, परस्पर समर्पित सुहृद तथा व्यक्तित्व के परस्पर पूरक सहयोगी होते हैं। इनका ऐसा ही पावन, परस्पर पूरक दाम्पत्य था। ब्रजदासी-भागवत-पद्यानुवाद का 'गृहकलह शमनार्थ' विशेष मनोरथ के रूप में शुभारंभ वि. सं. १८०६ में हुआ था - अतः उनके पति राजसिंह जी का ब्रजदासी भागवत पद्यानुवाद में प्रत्यक्ष सहयोग ऐतिहासिक कालक्रमानुसार सिद्ध नहीं होता तथापि जीवित पति के रूप में राजसिंह जी ने महारानी जी की प्रतिभा और अभिरूचि के अनुकूल निर्बाध रूप से सदाशयी मित्रवत् व्यवहार से उनके व्यक्तित्व को उजागर करने तथा उनकी सृजनात्मक पृष्ठभूमि बनाने में मित्रवत् पूरक सहयोग दिया था।

सतत-स्वाध्याय, अनवरत - गहन-अध्ययन, विरक्त संत एवं गुरुचरणों का निरन्तर सत्संग सेवन, दीर्घकाल तक भागवत का कथाश्रवण-पारायण, भागवत - अनुष्ठान आदि कार्यक्रमों के सहयोगी बनकर महाराजा राजसिंह ने अपनी महारानी ब्रजकुँवरी जी के 'ब्रजदासी-भागवत' के अनुरूप ज्ञान-गांभीर्यपूर्ण प्रतिभा और काव्यगरिमामय व्यक्तित्व निर्माण में अपूर्व सहयोग दिया था - क्योंकि वे दोनों ही अपूर्व भाव साम्य वाले परम भागवत, युगल चरणानुरागी भावुक भक्त थे, दोनों ही ब्रजरस-निकुंजरस के परमरसिक साधक थे, दोनों ही संस्कृत ब्रजभाषा के अधिकारी थे, पद्यात्मक - रचना साम्य से पति ने रागबद्ध पदों में रचना करते हुये पत्नी में छन्दोबद्ध कथाख्यान की अभिव्यक्ति करने की अद्भुत क्षमता को जगा दिया था। इस प्रकार राजसिंह जी की 'ब्रजदासी-भागवत' के सृजन में प्रेरणात्मक पृष्ठभूमि रही है।

महाराजा राजसिंह के दरबारी कवि वृन्द ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'बचनिका' में अप्रत्यक्ष रूप से राजसिंह जी के स्व. दादा महाराजा रूपसिंह जी को काव्य का नायक बनाया है। इसी प्रसंग में उन्होंने रूपसिंह जी को गोवर्धनधारी श्रीकृष्णस्वरूप श्रीनाथ जी का उपासक बताया है। महाकवि वृंद बल्लभमतानुयायी वैष्णव थे, संभवतः इसी भावनात्मक प्रेरणा से रूपसिंह जी की उपासना का वर्णन उन्होंने जानबूझकर किया है जबकि वे अपने प्रत्यक्ष आश्रय दाता महाराजा राजसिंह जी की उपासना के प्रति मौन रहे हैं, उनके द्वारा विरचित ग्रंथ 'सत्यरूपक' के तो एकमात्र नायक उनके आश्रयदाता राजसिंह ही थे। उनकी उपासना के प्रति कवि का यहाँ मौन रहना इस सत्य का उद्घाटन करता है कि राजसिंह के शासनकाल में रूपनगढ़ राज्य का उपासना परिवेश पूर्णतया निम्बार्कीय रसोपासना से ओतप्रोत था जो कि बल्लभमतानुयायी राज्याश्रित कवि वृंद के लिए मनभावन नहीं रहा होगा।

महाराजा राजसिंह की प्रथम महारानी चतुरकुँवरी जी, द्वितीय महारानी ब्रजकुँवरी जी, उनकी पुत्री सुंदरकुँवरी, युवराज नागरीदास जी तथा उनकी निकुंज-सेविका बनीठनी जी, प्रपौत्री छत्रकुँवरी जी, कवि आनंदघन आदि सभी को प्रामाणिक रूप से निम्बार्कीय रसोपासना में दीक्षित तथा श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ समर्पित भावुक भक्त कवि माना जा रहा है तो फिर यह कहना नितान्त पक्षपातपूर्ण ही होगा कि वंशानुगत भावना से ही महाराजा राजसिंह जी उनके पूर्वज रूपसिंह जी द्वारा लाये गये श्रीनाथ जी स्वरूप के उपासक बल्लभ मतानुयायी वैष्णव थे, जबकि निम्बार्कीय सूत्रों के अनुसार 'बचनिका' में वर्णित श्रीनाथ जी के प्रसंग को भी कल्पित मानते हुये विद्वान रूपसिंह जी द्वारा रचित इस लोकविश्रुत पद के आधार पर उन्हें भी निम्बार्कीय सखी-भाव के उपासक मानते हैं :-

बनि तैं री बाँनिक बनि आवति ।
बैंन बजाय रिझाय जुवति जन गौरी रागनि गावति ॥
वारिज बदन लाल गिरधर को निरषि सखी सचु पावति ।
रूप कटाछ करत प्यारी पर रूपसिंघ अलि भावति ॥

(नागरीदास वाणी अंक पृ. १० से उद्धृत)

ब्रजदासी जी के गुरु श्री वृंदावनदेवाचार्य जी महाराज

महाराजा किशनसिंह जी द्वारा वि. सं. १६६८ में किशनगढ़ राज्य की स्थापना हो जाने पर वि. सं. १६६९ में सर्वतंत्र - स्वतंत्र तथा धर्माचार्यों के ही शासनाधीन रहने वाली परम्परागत अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ स्थल का

ग्राम सलेमाबाद किशनगढ़ राज्य द्वारा मान्य हुआ। कोसाथल में 'श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी के उत्तराधिकारी पट्टशिष्य परवर्ती श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री हरिवंश देवाचार्य जी महाराज को उनके गुरु पीठ संस्थापक श्री परशुरामदेवाचार्य जी महाराज (श्री स्वामी जी) के नाम किशनगढ़ राज्य-संस्थापक महाराजा श्रीकिशनसिंह जी की मुख परवानगी के अनुसार अधिकारी (दीवान) भीम जी भाटी द्वारा दिये गये पट्टे का यही तात्पर्य है जो कि स्वामी जी की तपस्थली में स्थित उनके पूजनीय चित्र के बांये पार्श्व में खेजड़ला तवारीख (वि. सं. १५१५) में उल्लेखित पीठ के पूर्व परम्परागत बादशाही ताम्रपत्र की भांति उत्कीर्णित है। यहीं से किशनगढ़ राजाओं के पीठ के प्रति आदर भावात्मक सम्बन्ध स्थापित हुये हैं। " श्री ६ श्रीमहाराजा श्रीकिशनसिंह जी बचनायत श्री परशुराम जी ने पुण्य अर्थ धरती बीघा १०१ अंके ही एक सौ एक बीघा को सेटो १ कस्बै सलेमाबाद मौ. पींगलोद में उदीक कर दीधी धरती बंजर खील दु. श्रीमुख परवानगी भाटी भीमजी लिखतं बा. हेमराज ता. १ माह जिलकाद सन् १०१९ सं. १६६९ मु. कोसाथल। " वि. सं. १६८९ में श्री हरिवंशदेवाचार्य जी द्वारा निर्मित श्रीपरशुराम द्वारा पुष्कर के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री नारायणदेवाचार्य जी के आचार्यत्व काल में वि. सं. १७०६ में महाराजा रूपसिंह जी द्वारा पीठ से ५ मील दूर रूपनगढ़ की स्थापना की गई। म . रूपसिंह जी पर श्रीनारायणदेवाचार्य जी का वरद-हस्त अवश्य रहा होगा, तभी तो वि. सं. १७१५ के पश्चात् स्वर्गीय म. रूपसिंह जी की पुत्री चारूमति को आपने संरक्षण दिया। पूर्वोल्लेखित घटना के अनुसार चारूमति का महाराणा राजसिंह से गुप्त ढंग से विवाह कराने वाले श्रीनारायण देवाचार्य जी ही थे। म. मानसिंह जी द्वारा इसीलिए कृतज्ञता व्यक्त करने निमित्त रूपनगढ़ में 'गोपाल द्वारा' के लिए हेमाधावड़ की हवेली तथा गोपाल जी की नित्य सेवा के लिए पांच सौ रु. वार्षिकी देने का पट्टा भी श्रीनारायणदेवाचार्य जी को दिया गया था। इसी संदर्भ में उदयपुर में चारूमति जी की ओर से श्रीनारायणदेवाचार्य जी की पधरावणी कराई गई तथा बाई जी का कुंड-सूरजपोल का अस्थल भेंट स्वरूप दिये गये। तत्पश्चात् श्रीनारायण देवाचार्य जी से महाराजा राजसिंह जी का चतुरकुँवरी जी के साथ गठजोड़े से आचार्य पीठ आकर मंत्रदीक्षा लेने का उल्लेख किया जा चुका है। (द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी अंक पृ. १०-११)

ब्रजदासी जी के गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य और उनका रूपनगढ़ के महाराजा राजसिंह (ब्रजदासी जी के पति) एवं उनके राजपरिवार से सम्बन्ध :- श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति नारायणदेवाचार्य जी महाराज के उत्तराधिकारी शिष्य श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी ब्रजदासी जी के मंत्र-उपदेष्टा, काव्य प्रेरक तथा सतत-दिशादर्शक गुरु रहे हैं। इनकी विद्यमानता वि. सं. १७५६ से १८१२ तक सिद्ध होती है। कृष्णगढ़ के ऐतिहासिक संदर्भों के अनुसार महाराजा राजसिंह का जन्म १७३१ पौषशुक्ला १२ को हुआ तथा उनका राज्याभिषेक (ढ़ाका में)वि. सं. १७६३ कार्तिक कृष्णा १० को हुआ था तथा आप वि. सं. १८०५ तक विद्यमान रहे थे। अस्तु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी एवं रूपनगढ़ महाराजा राजसिंह समकालीन थे।

अनादि वैदिक मर्यादानुसार परम्परागत स्वाभाविक द्वैताद्वैत - दर्शन से पुष्ट भगवान श्रीराधाकृष्ण की युगलभाव परक विशिष्ट निकुंज रसोपासना, वैष्णवी आचारविचार और भारतीय संस्कृति के आदर्शो का प्रचार-प्रसार करते हुये निम्बार्काचार्य पीठ की आचार्य परम्परा अपने विद्वतापूर्ण त्यागमय-सात्विक जीवन तथा तपोबल से साहित्य समाज धर्म और राजनीति को स्वच्छ और लोकहितकारी दिशा देने वाली रही है। श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का ऐसा ही विलक्षण वर्चस्व रूपनगढ़ - किशनगढ़, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर आदि राजपरिवारों में सुस्थापित हो गया था।

आमेर रोड़ स्थित परशुराम द्वारे में विराजते हुये आपने जयपुर राज्यांतर्गत वैष्णवधर्म के प्रचार से अद्‌भुत प्रतिष्ठा जमाई थी, जयपुर के संस्थापक द्वितीय सवाई जयसिंह के दरबार में आपका बड़ा मान सम्मान था। जयसिंह ने आपके विद्वत्तापूर्ण विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अनेक प्रशस्तियाँ स्वयं ने लिखी थी। (द्रष्टव्य गीतामृत गंगा की भूमिका) विश्व विख्यात जयपुर शहर की बसावट की परामर्श के लिए सवाई जयसिंह श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के परशुराम द्वारा आकर दर्शन किया करते थे। यह भी कथन है कि जयपुर शहर के 'नगर नियोजक-अभियन्ता-शिल्पकार' श्री विद्याधर परशुराम द्वारा (आमेर रोड़) में रहकर आचार्य चरणों के आश्रय में विद्याध्ययन किया करते थे। सवाई जयसिंह श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की पांडित्यपूर्ण काव्यप्रतिभा, संगीत, भक्ति एवं ज्योतिषिक ज्ञान से प्रभावित-प्रशंसक थे। (द्रष्टव्य -मंडन कविकृत जयसाहि सुजस प्रकाश की भूमिका पृ. ९) जयपुर की नींव वि. सं. १७८४ माघ कृष्णा ५ बुधवार को इन्हीं आचार्य जी की सत्परामर्श से रखी गई बताई जाती है। कालचक्र की गति अगम्य है, राजनैतिक कुचक्र यों चला कि श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के दो शिष्य जयराम शेषजी और गोविन्द देवाचार्य जी को लेकर पीठासन के उत्तराधिकार के राजनैतिक संघर्ष से अन्तत: उक्त परस्पर सम्बन्धों में कटुता आ गई। (द्रष्टव्य कृष्णगढ़राज्य के ऐतिहासिक सूत्र निम्बार्कशोध-संस्थान-वृंदावन)

श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की तत्कालीन वैष्णव समाज में भी धर्माचार्य के रूप में उल्लेखनीय प्रतिष्ठा रही है। वैष्णव धर्म और समाज की कुंभादि पर्वों तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर स्थायी रूप से स्वयं - सेवी सुरक्षा व्यवस्था के लिए तोरावाटी के बीहड़ वनों में 'श्रीनिम्बार्कस्थान' नामांकित सभास्थल पर जुड़े बृहद् वैष्णव सम्मेलनों में निर्णायक रूप से अध्यक्षता करते हुये खालसा-अणी-अखाड़ों आदि की अद्यावधि प्रचलित सुरक्षा - योजना के शुभारंभ में आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस वन्य प्रान्तर का वह ऐतिहासिक सभास्थल आज 'नीम का थाना' नामक विकसित नगर के रूप में इस तथ्य को प्रमाणित कर रहा है।

ब्रजदासी जी के गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य का सर्वाधिक उल्लेखनीय तथा किशनगढ़ राजपरिवार के लिए विशेष अनुकरणीय प्रेरणात्मक सम्बन्ध उनकी विलक्षण कवि-प्रतिभा के कारण रहा है। आपकी काव्य प्रतिभा में भावुक कवि, काव्यशास्त्र-संगीत के प्रकांड पंडित, ज्ञान-भक्ति योग के उपदेष्टा धर्माचार्य का बहुमुखी व्यक्तित्व समाहित रहा है। ब्रजरस - निकुंज रस के उभयात्मक लीला प्रसंगों की भावपूर्ण मधुर अभिव्यंजना तथा ज्ञान-भक्ति-योग की गूढतम तात्विक विवेचना, संगीत, रीतिनीति एवं काव्यशास्त्रानुसार अनेक रागों एवं गीतिपदों एवं छन्दों-अलंकारों से संयुक्त होकर आपके वाणी ग्रन्थ ''गीतामृत गंगा'' में प्रकट हुई है। महाकवि संत नागरीदास, बृजदासी जी, सुन्दर कुँवरी, छत्रकुँवरी, बनीठनी, आनंदघन आदि तात्कालिक कृष्णगढ़-रूपनगढ़ के कवियों के लिए यह ग्रंथ आदर्श लक्षण काव्य रहा है तथा उनकी रचनाओं पर इसका विलक्षण अनुकरणीय प्रभाव रहा है। इसी प्रकार आपके अन्य ग्रंथ युगल जस चन्द्रिका तथा दीक्षा मंगल भी उल्लेखनीय रहे हैं।

रूपनगढ़ के महाराजा राजसिंह एवं उनके परिवार में श्रीवृन्दावन देवाचार्य की प्रतिष्ठा :- पं. श्री ब्रजबल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ द्वारा संगृहीत किशनगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार कृष्णगढ़ राज्य के प्राचीन संग्रहालय में ऐसा चित्र विद्यमान रहा है जिसमें महाकवि नागरीदास (सांवतसिंहजी) अपने गुरुभ्राता बिरजानंद तथा आनंदघन के साथ निम्बार्कीय तिलक लगाये तथा श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के समक्ष संगीत-शास्त्र की शिक्षा लेते हुये बैठे हैं। (द्रष्टव्य - नागरीदास वाणी की भूमिका)

नरवरगढ़ के कवि उदयनाथ जी द्वारा रचित 'सिंह शिकार' रचना से प्रतीत होता है कि युवराज सांवतसिंह जी का अपने गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के प्रति अनन्य शिष्यभाव था, तभी तो उनकी आज्ञा से उन्होंने पीठ के गोचर वन्य उपत्यका में आगत हिंसक सिंह से द्वन्द युद्ध करके उसे मारा था। पं. श्री ब्रजबल्लभशरण जी ने नागरीदास जी द्वारा चित्रित ऐसे चित्र भी किशनगढ़ राज्य के संग्रहालय में देखे हैं जिसमें एक चित्र के शीर्ष पर 'हरिभक्तिनिवास विद्याप्रकाश महामहन्त स्वामी श्री वृंदावनदास जी सलेमाबाद स्थल' अंकित है तथा निम्न छप्पय भी अंकित है जो कृष्णगढ़ रूपनगढ़ राजदरबार में श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी के प्रभावकारी वर्चस्व का परिचायक है (नागरीदास वाणीग्रंथ - भूमिका) :-

दिनकर लौं जगमग प्रताप जस जक्त अषंडित ।
रसभाषा कविराज महा दिग्विजयी पंडित ॥
अति निबह्यो ऐश्वर्य भूप भये आज्ञाकारी ।
अन्त समय लौं परम धरम मरजादा पाली ॥
श्री निंबादित्य पद्धति बहे हरिव्यास गादी स्थित ।
श्रीवृंदावनदास महान्त से दिग्गज भये न होहिं क्षित ॥

ऐसी ही गुरु प्रतिष्ठा का चित्रण राजमाता श्री ब्रजदासी कृत भागवत प्रसंगों में हमने उल्लेखित किया है। सुंदर कुँवरी जी छत्रकुँवरी जी द्वारा भी अपने मंत्र-उपदेष्टा इन्हीं गुरु जी के प्रति की गई प्रशस्तियाँ अन्य परिवार जनों जैसी ही होने से परस्पर समान तथ्य को पुष्ट करने वाली है :-

भक्ति मुक्ति ठाम श्री परशुराम देव जू की गादी ,
है सलेमाबाद तहाँ पाप काँपहीं ।
कोटि कोटि जन्म सुकृत उदय तातैं .
पावै भागीजन सेवत सजापहीं ॥
जहाँ कलिकाल के अंधियारे के तिमिरहर ,
वृंदावन देव जू प्रकट प्रभु आपही ।

दीन कैं दयाल मोसी पतित निहाल कीनी ।
लीनी अपनाय अब बन्दौ यहि छापही ॥ (सुंदर कुँवरी)

सुंदर कुँवरी जी ने गुरु श्री वृंदावनदेवाचार्य जी की भावात्मक वंदना की है। सर्वस्व समर्पण भाव से वे आपके सर्वतोमुखी कल्याणकारी अनन्य आत्मीय सम्बन्धों की उद्भावना करती हुई आपको ही अपना कुलगुरु कुलदेवता मानती हुई कहती है :-

ये ही कुलदेव मेरे ये ही शुभ सेव्य मेरे, ये ही गुणभेव मेरे इनहीं को गाय हौं ।
ये ही मति गति मेरी ये ही मातुपितु मेरे, ये ही बन्धु मेरे इनही को धाय हौं ॥
ये ही पक्षधारी मेरे ये ही हितकारी मेरे, ये ही सिथसारी मेरे इनही को चाय हौं ।
श्री गुरू कृपा तैं पाय अमृत अभय भेव, ताहि तजि आन भजि काहे विष खाय हौं ॥

गीतामृत गंगा की भूमिका में पं. व्रजवल्लभशरण जी का यह उल्लेख अत्यन्त प्रासांगिक है कि म. रूपसिंह जी द्वारा संस्थापित किशनगढ़ राज्य की राजधानी रूपनगढ़ अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ से ५ मील की दूरी पर स्थित होने से आचार्य पीठ के प्रति तथा तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के प्रति अनुराग अधिक बढ़ा हुआ था। आचार्यचरणों के निरन्तर संपर्क से इस राजकुल के तात्कालिक राजा, राजमहिला, राज परिवार तथा प्रजाजनों में भगवद्भक्ति का अनुपम विकास हुआ। महाराजा राजसिंह जी, राजमहिषी श्रीवांकावती जी, कुँवर सांवतसिंह (नागरीदास जी), राजकुमारी सुंदर कुँवरी और इनके दास और दासियां भी विशिष्ट भक्त कवि बने।

प्राचीन राजर्षि परम्परावत जनकल्याणार्थ राजाओं की राजनीति-रीति तथा शासनपद्धति में धर्माचार्यों का औचित्यपूर्ण हस्तक्षेप भारतीय संस्कृति का परमोच्च आदर्श रहा है, इस प्रवृति ने राजतंत्र को निरंकुश होने से बचाते हुये जनहितार्थ शासन-संचालन का मार्गदर्शन दिया है। धर्म और संस्कृति का संरक्षण और उसी के अनुरूप शासन स्थापित करने तथा उसे स्थिर रखने में वीतरागी आश्रमवासी तपोनिष्ठ धर्माचार्यों का राजदरबारों में आवागमन तथा राजचिंतन इसीलिए रहता आया है। यही आदर्श-सम्बन्ध श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी का कृष्णगढ़-रूपनगढ़ आदि राजसिंहासनों से था।

ब्रजकुँवरी जी (ब्रजदासी जी) का महाराजा राजसिंह जी से विवाह :- महाराजा राजसिंह जी की प्रथम पत्नी चतुर कुँवरी जी, किसी असाध्य रोग से पीडित होने से श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की आज्ञा से वृन्दावनस्थ सर्वेश्वर घाट की श्रीजी कुंज में चिकित्सा करा रही थी कि वि. सं. १७७५ के आश्विन पुरुषोत्तम मास की विजयादशमी को निकुंजलीन हो गई। १९ वर्षीय कुँवर सांवतसिंह जी को अपनी माता के इस निधन से हृदय-विदारक पीड़ा हुई, उन्होंने 'मनोरथ मंजरी' से पूर्व रचित ग्रंथ 'देहदशा' और 'वैराग्य वटी' में अपनी इसी रूग्ण मानसिकता की अभिव्यंजना की है। पत्नी-वियोग में राजसिंह जी का दु:खी होना स्वाभाविक ही था। दूसरी ओर, भविष्यवेत्ता राजर्षि श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का संवेदनशील हृदय किशनगढ़ (रूपनगढ़) राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी संत हृदय कुँ. सांवतसिंह तथा राज्यसिंहासन के प्रति अतिआतुर महत्वाकांक्षी कूटनीतिज्ञ छोटे कुँवर बहादुरसिंहजी के सुषुप्त अंतर्द्वन्द्व से किशनगढ़-राज्य में संभावित गृहकलहजनित जनसंहार से सशंकित तथा राज्य और जनता की भावी सुरक्षा के प्रति उद्विग्न हो कल्याणकारी सार्थक उपाय सोच निकालने के लिए अतिव्यग्र था। वे ऐसे किसी सुपात्र की खोज में थे जो कृष्णगढ़ के भविष्य - समाधन के लिए तथा अपनी पीठ और रूपनगढ़ राज्य की परस्पर समरसता स्थिर रखने की दृष्टि से भी सक्षम हो। अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ में भीश्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के प्रमुख शिष्य श्री जयरामशेषजी तथा श्रीगोविन्ददेव जी में परस्पर उत्तराधिकार की स्पर्द्धा से पीठ के प्रति भी नये राजनैतिक समीकरण सन्निटस्थ किशनगढ़ और जयपुर (आमेर) राजाओं की ओर से होने सशंकित थे, जो दूरदर्शी श्रीवृन्दावनाचार्य जी की दृष्टि में रहे होंगे। क्योंकि निम्बार्कीय ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार आगे चलकर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के उत्तराधिकार के लिये वि. सं. १७९७ में जयपुर नरेश सवाई जयसिंह द्वितीय ने जयरामशेष जी का पक्ष लिया और उन्हें आमेर रोड़ स्थित निम्बार्कीय गादी श्रीपरशुराम द्वारे का आचार्य पद दे दिया जिसका अभिषेक सलेमाबाद न होकर मेड़ते में हुआ। (निम्बार्कीय शोधमंडल -वृंदावन) इधर कृष्णगढ़ राज्य के उत्तराधिकार-गृह-युद्ध में श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी का कृपाभाव न्यायपूर्ण पात्र सांवतसिंह जी पर था, अत: भविष्य में श्री गोविन्ददेवाचार्य के समर्थक सांवतसिंह, राजमाता ब्रजदासी जी तथा जयरामशेषजी के सवाई जयसिंह व बहादुरसिंह

नामक कृष्णगढ़ जयपुर के परस्पर राजनैतिक समीकरणों की भूमिका में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की व्यग्रतापूर्ण यह सोच संभव ही थी। इन सब आगामी चिन्ताओं के समाधानार्थ अन्ततः श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की दृष्टि परमसाध्वी भगवद् भक्ति परायणा, कविहृदया लवाण राजकुमारी ब्रजकुँवरी पर आकर स्थिर हो गई। ब्रजकुँवरी जी के पिता लवाण राजा अणदराम जी कछावा वांकावत उन दिनों सपरिवार चीरघाट वृन्दावन ठहरे हुये थे। अंततः रूपनगढ़ के राजा राजसिंह तथा लवाण राजकुमारी बीस वर्षीय ब्रजकुँवरी जी का वैशाख शुक्ला ११ वि. सं. १७७६ को चीरघाट वृन्दावन में, वरदायी मंगलकारी-राजनैतिक-सूझबूझ से शुभविवाह सम्पन्न हुआ जिसकी ब्रजदासी भागवत के अंतर्साक्ष्य से भी पुष्टि होती है। इस प्रकार ब्रजकुँवरी जी कुँ. सांवतसिंह जी (नागरीदास जी) की विमाता भी बन गई।

ब्रजदासी जी के गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज :- विवाह के उपरान्त अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ आकर अत्यंत श्रद्धा भाव से ब्रजकुँवरी जी श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के शरणागत हुई तथा उन्होंने उनसे विधिवत् मंत्रदीक्षा ली, तदनन्तर उनके मंत्र उपदेष्टा गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी ने उनका रहस्यात्मक सखी नाम ''ब्रजदासी'' रखा जो पद्यानुवाद में व्यक्त हुआ है। तदनन्तर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की रूपनगढ़ में म. राजसिंह युवराज सांवतसिंह तथा ब्रजकुँवरी जी द्वारा कराई गई पधरावणी आदि का उल्लेख पिछले प्रसंगों में किया जा चुका है। प्रस्तुत प्रसंग में हम ब्रजदासी भागवत के अंतःसाक्ष्य के आधार पर उनका गुरु स्तवन कराते हुये श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का वर्चस्व प्रतिपादन कर रहे हैं।

ब्रजकुँवरी जी कृत 'ब्रजदासी - भागवत' अनुष्ठान के अधिष्ठाता उनके परम-गुरु तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी थे। ग्रंथ की अंतिम पुष्पिका में उन्होंने श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी को परमभागवत, श्रीसर्वेश्वर प्रभु के अवतार, महामुक्तिदाता, श्री गोपालमंत्र के उपदेष्टा, परम-कृपालु दीक्षा गुरु बताते हुये कहा है कि इन्हीं के वरद हस्त एवं कृपा-प्रताप की अलौकिक प्रेरणा से उनके हृदय में 'ब्रजदासी-भागवत' पद्यानुवाद का पावन मनोरथ एवं उसके प्रति दृढ़ - निश्चय, उत्साह, क्षमता की बलवती भावना उमड़ पड़ी थी। अन्ततः उन्होंने अपने इस मनोरथ की सफलता का संपूर्ण श्रेय गुरु-चरणो को देते हुए अत्यंत श्रद्धा समन्वित दैन्य वचनों में समर्पण-भाव से, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की है :-

परम भागवत रूप जैं, प्रभु अवतारि क्रिपाल ॥
श्रीवृन्दावन नांम जिन्ह, आदि महंत विसाल ॥
जिन्ह म्हैरै सिर हाथ धरि, करी क्रिपा करिदास ॥
महामुक्तिदाता दियौ, मंत्र सुसहित हुलास ॥
तिन्हकैं क्रिपा प्रताप सौं, कहन भागवत चांहि ॥
प्रगट भई म्हैरै हिर्दै, द्रिढ़ है अधिक उमांहि ॥
ब्रजदासी पैं करि क्रिपा, श्री हरि गुरु सुषदाय ॥
कियौ मनोरथ पूर्न इहि, दीन जांनि अपनाय ॥

'ब्रजदासी-भागवत' के कई मंगलाचरण-प्रसंगों में ब्रजदासी जी ने अपने गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की नाम-स्मरण-सहित वंदना की है :-

श्रीहितु गुरु बृंदाबन चर्न, श्रीराधामाधव लाल॥ (भा.मा.)
श्री गुरु बृंदाबन वंदन करौं, प्रथमहिं करौं उछाह॥ (प्र. स्क.)
श्री बृंदाबन राधापति, जय राधे जु उच्चारि ॥ (द्वि. स्क.)
जय जय श्री बृंदावन, मोहि गुरु जिन्हपद बंदौ ॥ (पं. स्क.)
जै जै मो गुरु प्रभू, सरूप (श्री) वृन्दावन जु नांम ॥ (अष्ट. स्क.)
जयति गुरु बृंदावन देव, जयति पीठ निम्बारक ॥ (नव. स्क.)
नमो नमो मम गुरु, प्रसध्य बृंदावन दे नांम ॥ (एका. स्क.)
जय श्री बृंदावन गुरु, क्रिपाल आनंद निवासं ॥
जिन्हकी क्रिपा प्रताप, पाइयत दंपति जु पासं ॥ (द्वा. स्क.)

श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी ने अ. भा. जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद के ३९ वें आचार्य पद को अलंकृत किया था। अत्यंत -प्रभावशाली - दिशादर्शक धर्माचार्य, युगल चरणानुरागी परमभागवत - रसिकभक्त, संस्कृत-ब्रज-बंगला-मैथिली-मारवाड़ी भाषा के सुविज्ञ-प्रतिभासम्पन्न - रीतिसिद्ध-कवि, भक्ति-रीति नीति- संगीत-काव्यशास्त्र-श्रृंगारशास्त्र के प्रकांड पंडित तथा राजनैतिक संत - सामाजिक वर्चस्व से परिपूर्ण आपका राजर्षि के रूप में सर्वत्र पूज्य बहुमुखी प्रतिष्ठावान् व्यक्तित्व-कृतित्व निम्बार्क-सम्प्रदाय के इतिहास को अमिट कीर्ति है। आपके श्रद्धालु-भक्तों-शिष्यों द्वारा लिखित अनेक प्रशस्तियाँ आपके इसी तेजस्वी वर्चस्व को उजागर कर रही हैं।

राजदरबारों में श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का प्रभाव-विस्तार :- तत्कालीन सभी राजदरबारों में आप सर्वमान्य धर्माचार्य के रूप में समादरणीय रहे हैं। श्री जयसिंह द्वितीय के राज्याश्रित कवि, काशी वासी, वेदशास्त्रों के ज्ञाता, प्रकांड पंडित तथा यशस्वी विद्वान पं जयराम शेष जी भी आपके ही शिष्य थे, उनकी वंदना भी अवलोकनीय है :-

"श्री वृन्दावनदेवाय गुरवे परमात्मने, मनो मंजरी रूपाय युग्मसंगानुचारिणे ।

भजेहं वनाधीशदेवं महानां महासौम्य रूपंजनानां सुशान्तम् ।

सदा प्रेम मत्त महा प्रेमगम्यं मुखेराधिका कृष्णलीला सुरम्यम् ॥

विश्व प्रसिद्ध जयपुर नगर के संस्थापक आमेर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी का बड़ा सम्मान करते थे। जैसा कि कहा जा चुका है आमेर रोड़ स्थित परशुराम द्वारे में स. जयसिंह जी राजपरिवार सहित आपके दर्शनार्थ पधारते थे। महाराजा ने जयपुर नगर की स्थापना करते समय नगर-नियोजक शिल्पी बंगाली विद्वान विद्याधर द्वारा बनाई गई नगर-योजना सम्बंधित सत्परामर्श श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी से भी किया था। (मंडन कविकृत 'जयसाहि सुजस प्रकाश' की भूमिका पृ. ९) तथा महाराजा द्वारा किये गये राजसूययज्ञ में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी को प्रधान आचार्य पद देना महाराजा द्वारा प्रदर्शित श्रद्धा-सम्मान का द्योतक है। महाराजा जयसिंह ने इन्हें शास्त्रार्थ-सिद्ध-धर्माचार्य, युगल सेवा परायण रसिकवर्य्य, संतभक्त-वत्सल कृपालु महान आचार्य, देवर्षि, भगवान श्री नारायण एवं श्रीधाम वृन्दावन के साक्षात् रूप मानते हुये इनकी स्तुति की है :-

वादि नागकुले सिंह भाष्या विरोध कारिणम् ।

श्रीमन्नारायणं साक्षाद् वृन्दावन गुरुं भजै ॥

सर्वाचार्य्य महार्य्यं वै महाप्रेम प्रवर्षिणम् ।

श्रीमन्नारायणं साक्षाद् वृन्दावन गुरुं भजै ॥

भक्तपालं दयालुं च देवेस रसिकेश्वरम् ।

श्री मन्नारायण साक्षाद् वृंदावन गुरुं भजै ॥

श्रीराधाकृष्ण रहस्यज्ञं युग्म सेवापरायणम् ।

श्रीमन्नारायणं साक्षाद् वृन्दावन गुरुं भजै ॥

(म. श्री जयसिंह कृत 'महागुह्य स्तवं गीतामृत गंगा की भूमिका)

'जय साहि- सुजस-प्रकाश' के कविमंडन ने श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के प्रति महाराजा जयसिंह की उपरोक्त अनन्य श्रद्धा समन्वित भक्तिभावना की पुष्टि की है :-

"भये नारायण जू के श्रीवृन्दावन देव। तिनकी श्रीजयसाह ने करी चरण की सेव ॥

श्री वृन्दावनदेव की देत देव ऋषि दाद । रघुकुल श्री जयसाह सों किय तपबल कौ वाद ॥"

कृष्णगढ़-रूपनगढ़ के राजदरबार में तो आपकी अत्यन्त प्रतिष्ठा थी। महाराजा राजसिंह का समस्त परिवार आपका कृपाकांक्षी चरणानुरागी शिष्य परिकर में था। म. राजसिंह, महारानी चतुर कुँवरी पूर्वाचार्य श्री नारायण देवाचार्य जी के

शिष्य थे पर आपके प्रति भी उनकी वही श्रद्धा थी। ब्रजकुँवरी जी, राजकुमार नागरीदास जी, राजकुमारी फतेह कुँवरी, सुन्दर कुँवरी बनीठनी, छत्रकुँवरी जी, कवि आनन्दघन, बिरजानंद आदि आपके ही शिष्य थे।

श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी कृष्णगढ़ राज्य के रीति-नीति निदेशक एवं शुभचिंतक राजर्षि थे। तत्कालीन परिस्थितियों में उत्पन्न राज-गृह-कलह को शांत करने में आपकी प्रमुख भूमिका रही थी। वि. सं. १७७६ में आपकी आज्ञा और मध्यस्थता से ही चतुर कुँवरी जी के निधन के पश्चात् महाराजा राजसिंह जी तथा लवाण राजा अणदराम की पुत्री ब्रजकुँवरी जी का चीरघाट वृन्दावन में विवाह सम्पन्न हुआ था। कई प्रकरणों में गुरु आज्ञा ही राजाज्ञा होती थी। इस प्रकार कविराज समप्रतिभाशाली, दिनकर से दिग्विजयी - धर्मरक्षक - निम्बादित्य जैसी ऐश्वर्यपूर्ण आपकी प्रतिष्ठा कृष्णगढ़ दरबार में सतत रही थी जिसकी चित्रमय प्रशस्ति कृष्णगढ़ के चित्र संग्रहालय के चित्र सं. १४८ क्रमांक से विद्यमान रही है - जिसके पृष्ठभाग में 'हरिभक्तिनिवास विद्याप्रकास महामहन्त स्वामी श्री वृन्दावनदास जी सलेमाबाद स्थल'' और पूर्वोक्त छप्पय 'दिनकर लौं जगमग प्रताप जस जक्त अपंडित' अंकित था, जिसके प्रत्यक्षदर्शी पं. श्रीव्रजवल्लभशरणजीवेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने 'नागरीदास अंक' तथा 'श्रीनिम्बार्क अंक' में जिसका उल्लेख किया है। इसी चित्र की अन्य प्रति श्रीजीकुंज वृन्दावन धाम के चित्र संग्रहालय में भी रही है।

नागरीदास के परममित्र तथा उनके दरबारी कवि रीतिसिद्ध आनंद घन भी श्रीवृन्दावनदेवजी के शिष्य थे जिन्होंने उनके वर्चस्व की निम्नोक्त वंदना की है :-

सदा कृष्ण गुन कथनरत, मत मंडन जयरूप ।
विमुखनि खंडन बचनवर, रचना तुण्ड अनूप ॥
दीन शरणदायक करुन, हरत अखिल दुख दोप ।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जग, करन जीव परितोष ॥

(परमहंस वंशावली पृ. ६१० सं. विश्ववाथ मिश्र)

वि. सं. १७८९ में युवराज सांवतसिंह जी (नागरीदास) ने श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की आज्ञा से पीठ निकटस्थ सालरमाला वन में गोरक्षा हेतु हिंसक सिंह से द्वन्द युद्ध किया था। उक्त घटना के संदर्भ में 'सिंह शिकार' नामक ग्रंथ के नरवरगढ़ राजकवि उदयनाथ ने श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी का वर्चस्वी वर्णन किया है जो कृष्णगढ़ राजदरबार में उनकी अनुपम प्रतिष्ठा प्रतिपादित करने वाला बाह्य साक्ष्य है :-

''थांन सलेमाबाद मांझ ऋषिराज सुराजै। श्री वृन्दावन नाम शीश सरवेशु विराजै ॥
महाभक्ति दृढ़ नेम प्रेम नीकैं अवगाहैं। अघ भर नर जें होय ताहि दें भक्ति सराहैं ॥
जें गहैं आसरौ आय कैं करता महा उज्वल विमल। कहै राय कवित जै जयति जै परशुरामगादी अटल॥''

पिछले प्रसंग में रूपनगढ़ की इत्तिलाक बहियों से उद्धृत विवरणानुसार म. राजसिंहजी तथा चतुरकुँवरी जी ने सांवतसिंह (नागरीदासजी) की निम्बार्कीय दीक्षा श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी से करवाई थो तथा निम्बार्कीय परम्परानुसार सावंतसिंह जी का नागरीदास नामकरण श्रीवृन्दावनदेव जी की देन है। नागरीदास वाणी अंक पृष्ठ ३९ पर छापे गये चित्रानुसार नागरीदास जी (युवराज सांवतसिंह) विरजानंद व घनानंद जी सभी महानुभाव निम्बार्कीय तिलक लगाये गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी से संगीत शिक्षा लेते दर्शाये गये हैं। जो इस वर्चस्व की पुष्टि करता है कि राजसिंह जी का समस्त परिवार इनका शिष्य परिवार था। इसी प्रकार उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, भरतपुर आदि राजपरिवारों में भी आपका मान-सम्मानपूर्वक वर्चस्व होना आचार्यपीठ की पत्रावलियों-बहियों तथा उक्त राज्यों की तवारीखों से प्रतिपादित होता है।

धर्मरक्षक - वैष्णवाचार्य :- श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी संत-शिरोमणि, लोकोद्धारक, धर्मरक्षक-वैष्णवाचार्य के रूप में भी उल्लेखनीय हैं। उनकी समकालिक विषम परिस्थितियों में वैष्णवधर्म के समक्ष कई चुनौतियां समुपस्थित थीं। सुदृढ़-राज्याश्रय के अभाव में वैष्णवधर्म का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया था। शैव-शाक्तों तथा यावनी अत्याचारों

से त्रस्त सभी वैष्णव सम्प्रदायों को संगठित कर स्वानुशासित स्वयंसेवी सुरक्षात्मक व्यवस्था करना ही अपरिहार्य आवश्यकता थी जिसकी क्रियान्विती में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी की अग्रणी भूमिका सदैव स्मरणीय रहेगी। गलता आश्रम जयपुर के तत्कालीन आचार्य बालानन्दजी तथा श्रीवृन्दावनदेव की सद्प्रेरणाओं से वि. सं. १७९१ में वैष्णव सम्प्रदायों का प्रथम महासम्मेलन श्रीपद्माकर पुण्डरीक जी के संयोजकत्व में आयोजित हुआ। यह ऐतिहासिक सम्मेलन था जिसमें उक्त धर्म संकट निवारणार्थ सुदृढ़-स्वयंसेवी सुरक्षात्मक सैन्य-व्यवस्था का सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित हुआ, परिणामत: त्यागी- बैरागी वैष्णवों का सैनिक-संगठन स्थापित कर वैष्णवों को सैनिक विद्या में निपुण करने के लिए विभिन्न अनियों, अखाड़ों तथा खालसों की विधिवत् स्थापना की गई जो अद्यावधि कुंभ-स्नान, विशिष्ट-पर्व, तीर्थाटन-यात्राओं में वैष्णवों की सुरक्षा करते हैं। दूसरा सम्मेलन जयपुर के उत्तर में ३० कोस की दूरी पर आयोजित किया गया जिसका शुभारंभ गणेश-स्थापना से होने से यह स्थल 'गणेश्वर' नाम से प्रख्यात हुआ, इसी क्रम में विराट वैष्णव सम्मेलन की द्वितीय महत्वपूर्ण सभा गणेश्वर से कुछ दूर तोरावाटी के सघन-वन में हुई उक्त सम्मेलन स्थल का नाम 'निम्बार्क-थान' रखा गया जो कालान्तर में 'नीम का थाना' कहलाया जो अद्यावधि विकसित नगर है। इन महत्वपूर्ण सम्मेलनों में वैष्णवधर्म के नैमित्तिक आचार तथा मर्यादाओं का विश्लेषण भी किया गया, जिसमें सर्वसम्मत ५२प्रतिज्ञाओं का निश्चय किया गया जिनमें युगल-तुलसीमाल-धारण करना, गोपी-चंदन का तिलक लगाना, एकादशी में ४५ घड़ी का मान अर्थात् कपालबेध मानना तथा दण्डवत् प्रणाम की विधि आदि १३ प्रतिज्ञाएँ श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय की मान ली गई। वैष्णव धर्म के इन ऐतिहासिक सम्मेलनों का सभापतित्व श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी ने किया था जो उनके सर्वतोमुखी प्रभावशाली वैष्णवाचार्य के वर्चस्व का परिचायक है। (सर्वेश्वर वर्ष - ४ अंक ८ पृ. १०)

श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत भागवत - वाहिनी ''गीतामृत गंगा''

श्रीवृन्दावनचार्य जी द्वारा विरचित गीति छन्दों का यह मुक्तक काव्य रसोपासना की महनीय वाणी है, विविध लीला विषयक प्रसंगों की यह मधुर मंदाकिनी रूपी सरस-श्रृँगारिक काव्यधारा चौदह घाटों में अबाध गति से बहतीहुई निकुंज-केलि-रत युगलवाणी में समाविष्ट हुई है। गीतामृत गंगा का यह आध्यात्मिक प्रवाह भाषा, भाव, काव्य सौंदर्य, रसप्रवाह, शैली, छन्द-बंधन तथा लगभग ८० विविध राग-रागनियों में निबद्ध बंगाली-मारवाड़ी-पंजाबी की छटा लिए संस्कृत और ब्रज भाषा की सरस-सुमधुर पद रचना काव्य और उपासना दोनों की दृष्टि से अत्यंत उल्लेखनीय है। गीतामृत गंगा श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी की संगीत-शास्त्रीय गरिमा का परिचायक ग्रंथ है। यहाँ आचार्य श्री की विविध रागरागिनियों-वाद्यों तथा शास्त्रीय गायनों के क्षेत्र में आधिकारिक ज्ञान की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इसका चतुर्दशघाट तो संगीत-ज्ञान-गांभीर्य के प्रदर्शन एवं दिग्दर्शन के लिए ही लिखा गया प्रतीत होता है। रूपनगढ़ राज्य के युवराज सांवतसिंह (नागरीदास) बिरजानंद तथा घनानंद ने आपसे ही संगीत शिक्षा एवं उसके समुचित अभ्यास का निर्देशन लिया था। यहाँ निम्बार्कीय परम्परानुसार श्रीराधाकृष्ण की दाम्पत्य लीला का प्रतिपादन हुआ है तथापि श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड एवं कैशोर लीलाओं का भी सांगोपांग चित्रण किया गया है। रीतिकाव्यात्मक परकीयात्व-भाव का प्रदर्शन करने हेतु यहाँ मान-विरह-अभिसार-संयोग की लीलाएँ वर्णित हुई है तथापि निम्बार्कीय रसोपासना की मर्यादानुसार यहाँ श्रीराधाजी के स्वकीयात्व को ही प्रमुखता दी गई है; जो युगल के ब्याहादिक प्रसंगों से प्रतिपादित है।

ग्रंथारंभ में कवि ने गीतामृत गंगा का प्रतिपाद्य स्पष्ट करते हुये कहा कि सच्चिदानंद सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही रस-स्वरूप परब्रह्म परमानंद हैं, नित्यकिशोरी श्रीराधा जी उन्हीं की परमाह्लादिनी शक्ति है जो प्रतिपल उनके साथ रमण करती हैं, वे निकुंज बिहारी श्रीराधारमण रस महोदधि हैं, वे ही मूर्तिमान रसराज श्रृँगार हैं जो रसपोषक शक्ति श्रीस्वामिनी सहित ब्रजबिहार करते हैं। ब्रजरस ब्रह्मानंद सहोदर है जिसकी सर्वप्रथम रसानुभूति देवर्षि नारद जी ने की थी। देव गंधर्व ऋषि महर्षि, स्थावर जंगम सभी को मुग्ध करने वाले इस ब्रजरस से जो प्राणी रससिक्त नहीं होता- वहपशु से भी हेय है। श्रीमद्भागवत महापुराण में इसी रस का प्रतिपादन हुआ है। कवि ने भी अनेक शास्त्रों का मंथन कर श्रीश्यामा - श्याम की अनन्यकृपा से गीतामृत गंगा में इसी रस का प्रतिपादन किया है :-

मुरली मधुर बजाई कैं, जिन मोही ब्रजबाल ।
सोई नित प्रति गाइये, दिन दूलह गोपाल ॥
रसोवैसः श्रुति जो कह्यो, सोइ सच्चिदानंद ।
कहियत वेद पुरान में, परंब्रह्म गोविंद ॥
ब्रह्मप्रभा जाकी कह्यो, ज्यौं रवि किरनि लसन्त ।
श्रीराधा आह्लादिनी, शक्ति बहै इहिं कन्त ॥
एकाकी न रमें दुती, चाह भई जग आदि ।
रमत जोग्य श्रीराधिका, प्रकटी शक्ति अनादि ॥
मूर्तिमान श्रृंगार हरि, सब रस को आधार ।
रसपोषक सब शक्ति लै, ब्रज में करत बिहार ॥
देखउ ब्रह्मानंद तैं, रसानंद बढि आहि ।
नारद इहिं रस ही पग्यौ, लागि छांडि कैं ताहि ॥
रसानंद गांधर्व सुनि, थिर चर गति हो आन ।
तिनकी का कहिये दशा, जिनकैं पूरन ग्यान ॥
मृग शिशु अहि यासौं बंधै, इहिं हित तजत जु प्रान ।
समझि न यासौं जो पग्यौ, सो पशु तैं अज्ञान ॥
कह्यौ जुश्री भागौत मैं, वही पुरुष पशुरुप ।
सुन्यौ न कबहूं कान जिहि, गोविंद गीत अनूप ॥
तातैं सब रसशास्त्र मथि, सुमिरि जु श्यामाश्याम ।
गीतामृत गंगा रची, करि गुरु चरन प्रणाम ॥

श्रीवृंदावन देवाचार्य जी ने गीतामृत गंगा के प्रथम घाट में श्रीकृष्ण की बाल्यावस्था का संक्षिप्त चित्रण किया है। बाल्यावस्था को आपने बाल, कौमार तथा पौगंड नामों से विभाजित करते हुये तदनन्तर कैशोर और युवावस्था का नामोल्लेख किया है। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव से प्रारंभ इस वर्णन में नन्दराजा और जसुमतीजी के घर मांगलिक आनंद एवं बधाई गान का विधान है, बंदनवार-पताकादि से घर आंगन सजा है, गोप-नृत्य कर रहे हैं, गोपियाँ मंगलगान गा रही हैं, मागध-सूत-बंदीजन-भाट बधाई तथा विरुदावली गा रहे हैं। गज रथ हय मोतीमाणिक्यादि दान दिये जा रहे हैं, दधि कांदौ से दूध-दही-घृत-हरद की सरिता बह चली है। माँ यशोदा जल-बाइ पूजन हित सखी-समाज सहित जा रही है - यथाविधि वरूण देवता की पूजा की जाती है। तदनन्तर बालक-कृष्ण जी की शिशुलीलाओं का वर्णन है। पालने में यशोदा द्वारा लोरी गाकर झुलाना, शिशु कृष्ण द्वारा अंगुष्ठ पान, आंगन में चुटकी देकर चलाना, शिशु लड़ावन-खिलावन के रोचक वर्णन है। नंद के मणिमय आंगन में घुटुरन चलते शिशुकृष्ण का यह वर्णन सूरदास जी द्वारा रचित पदों का सा लालित्य लिये है :-

आंगन खेलत बाल गोविन्द ।
इन्द्र नीलमनि वरन श्याम तन नखशिष आनंद कंद ॥
बिथुरि रही सिर कुटिल लटूरी मृदु मुसुकत मुख चंद ।
घुटुरन चलन किंकिनी नूपुर बाजत मंदहिमंद ॥
थिरहूं रहत किलकि रींगत अति निरखि यशोमति नंद ।
वृंदावन प्रभु अद्‌भुत लीला गावत चारयों छंद ॥

तदनन्तर बाल गोपाल की साल गिरह, दधि-माखन-चोरी, गूजरी-उपालंभ, भांडे फोड़कर मुख-दधि लपेटन के सरस प्रसंग हैं। स्याम-सगाई के अवसर पर बेणीगुंथन तथा नखशिख वस्त्राभूषण पहिनाने के लिए यशोदा लाड लड़ावन किये हैं। इसी प्रकार यहां वृषभानुदुलारी जी का जन्मोत्सव, वर्षगांठ, उनका रूपवर्णन दर्शनीय है। तदनन्तर द्वितीय घाट के पौगंड लीला प्रसंग में श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य से मोहित गोपियों का प्रेमचित्रण हुआ है। गोदोहन के समय खरिक में, पनघट पर, यमुनामार्ग में श्रीकृष्ण द्वारा छेड़छाड़, तृतीय घाट में चीरहरण, दान आदि के सरस प्रसंग हैं। श्रीकृष्ण के अनेक रूप - गुणादि पूर्ण सौंदर्य से मंडित स्वरूप, वस्त्राभूषण-हावभाव, प्रेमचेष्टाएँ, रूपमाधुरी के प्रति गोपियों के मोह श्रृँगार आदि के कलात्मक छन्द रचे गये हैं। चतुर्थ घाट के कैशोर लीला प्रसंग से रूप सौंदर्य के प्रति निम्न उक्ति सूरदास जी कृत पद से अनूठी समानता रखती है - मोहित हृदय गोपियों का पछतावा आंखों के पंख न देने की वक्रोक्तिपूर्ण अभिव्यंजना से दर्शनीय है :-

आंखिन पांखि दई न दई किन ।
प्रीतम बदन मलिन मकरन्दहिं मधुप ज्यों पी पी आवति प्रतिदिन ॥
क्योंहूं चैन परै दिन रैन सु मैंन दहै तनकौं छिन ही छिन ।
वृंदावन प्रभु विरह बसाई मोहि करी जकरी वकरी इन ॥

श्याम की सुन्दरताई विधाता ने सकल-सृष्टि-सौंदर्य से रची है - विधाता के प्रति यह उक्ति वैचित्र्य सूर से अद्‌भुत साम्य रखता है :-

सखी? देखि री श्याम की सुंदरताई ।
तिहुँ लोक सकेलि सबै इह मूरति मानों विरंचि बनाई ।
मन आवत यौं अपनी सबही करि ह्यौंहिं चुक्यौ रचना चतुराई ॥

इसी घाट में राधाकृष्ण का मिलन, परस्पर विमोहन, श्रीराधाजी का वस्त्राभूपण अलंकार से युक्त अद्‌भुत रूप-सौंदर्य का चित्रण हुआ है :-

आवु भलैं बानिक बनी पियारी ।
लहंगा लाल कसूंभी अंगियां रूपहरी कोर केसरी सारी ॥
अंग अंग नग भूषण भूषित अरु राजत उर मोती हरारी ।
नाना फूल पल्लव जुत मानौं फरी मूलतैं कनक लता री ॥
सारी किनारी बीच वदन की उपमा कहूं निहारी ।
मानौं रस बरषा कौ सूचक भयो विधु मंडल सुखद महारी ॥
इतउत उमंगी फिरत उछाह में मनौं कौंधनी चपला री ।
वृंदावन प्रभु निरखि निरखि छबि विवस भये गिरधारी ॥

दृष्टकूट छन्द से रूप सौंदर्य का चित्रण रहस्यात्मक है - 'देखो अचरज कनकलता चल तापर पूरनचंद। नील नलिन द्वै राजत तिन पर दोय मिलिन्द॥ पंचम घाट में रास वर्णन है जो ब्रजरस की पराकाष्ठा का प्रसंग है। यहां रागरागनियों में बद्ध गीति सौंदर्य का पद सौष्ठव अत्यंत अनूठा है। राग गारो-वाअरगजा में गेय रास वर्णन द्रष्टव्य है 'घनश्याम घनश्याम घनश्याम प्यारा नाचत ततथेइ थेई थेई भारा। तो सूरति पर ता तन नन नन तन मन धन वारा॥ षष्ट घाट में मान, अभिसार, मिलन में सुरति सुरत्यान्त लीला वर्णन के प्रसंग हैं, अष्टम में विरह, उद्दीपन, उपालंभ आदि के प्रसंग हैं। नवम घाट उत्सव वर्णनों का है जिसमें बसन्त, होरी, फाग, फूलडोल-हिंडोरा, अक्षय-तृतीया, सांवनी तीज-पवित्रा दिवारी, गौवर्धन पूजा के कलात्मक प्रसंग हैं जहाँ प्रकृति की छटा एवं उत्सव-ऋतु-पर्व अनुसार साजसज्जा के अत्यंत सुंदर वर्णन हैं।

स्वकीयात्व-भाव से युगल क्रीड़ा के सुमधुर रति प्रसंग भी हैं, पदों की चित्रोपमता अनूठी है। चित्रकला, संगीत, प्रकृति, वस्त्राभूषणयुक्त परम्परागत उपमानों सहित नखशिष-चित्रण, श्रृंगारिक हावभाव, मधुरस उपासनात्मक महोत्सव सभी एकमेक हो गये हैं। ऐसे ही प्रसंग नागरीदास जी की चित्रांकन शैली के आधार हैं। निम्न पद द्रष्टव्य है-

बैठे सखी श्यामां श्याम अटारी ।
करत परस्पर मोद भरे दोऊ रति विनोद की बातैं बतयारी ।
गरजि गरजि बरसति बडी बूंदै चहूं दिस श्याम घटा री ।
पीत वसन घनसुंदर पहिनैं दामिनी दुति भामिनी सुही सारी ।
लहंगा छापदार हरियारौ सुन्हरी कौर कंचुकी कारी ।
चकोर सोर चहुँ ओर करत मिलि पिय पिय करत पपीहा भारी ।
कहति किसोरी नवकिशोर सौं यौं हम रटत तुम्हें गिरधारी ।
हरित भूमि जहां झुमि रहे घन नचत मोर लखि लखि निज नाहरी ।
वृंदावन प्रभु कहत प्रेमवश यौं तुम हमहिं नचावत प्यारी ॥

गीतामृत गंगा के ऐसे प्रसंग पूर्ववर्ती ग्रंथ महावाणी जी की परम्परा के हैं। इसी प्रसंग में उल्लेखनीय है कि निम्बार्कीय परम्परा से 'सांझी' के चित्रात्मक वर्णन का अनुसरण नागरीदास जी की काव्य एवं चित्रकला में हुआ है जो उनकी गुरुवाणी गीतामृत गंगा के इस प्रवाह से अनुसरित हुआ है :-

आवति सांझ समैं सजनीन कौं संग लियैं वृषभानु किसोरी ।
सांझी के पूजन कैं लियें फूलनि बीनि भरे अप अपनी झोरी ।

गीतामृत गंगा का नागरीदास जी के काव्य पर अनूठा प्रभाव हुआ है- यह उनका लक्षण काव्य है। इस प्रसंग में आगे हम और विस्तार से इसका प्रतिपादन करेंगे।

दशमघाट में नाम संकीर्तन भक्ति, एकादश घाट में कंसवध लीला, द्वादश में तीर्थ वर्णन, त्रयोदश में सर्व रस मिश्रण, चतुर्दश के गांधर्वोपदेश में रागरागिनियों के ज्ञान-दर्शन का वर्णन है। ब्रजरस केंद्रित गोपीभाव परक युगल लीला का यह विलुप रस-प्रवाह गीतामृत गंगा में आगत लीला प्रसंगों के विविध घाटों से होकर अन्ततः निकुंज रस में समाविष्ट हुआ है जहाँ सखियाँ कुंज महल में बनाबनी का ब्याह रचाती हुई श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी कृत महावाणी परम्परानुसार 'सोहिलौ' गा रही हैं :-

आजु ब्याह सखि कुंज महल मैं दुलहिन राधा नंद कुमर वर ।
गावति है नारि नये सोहिलै सुहाये तैसौ वृंदावन फूल्यौ रह्यौ उडिकै पराग भर ।
बनां बनी गांठि जोरि लिवायो हथलेवा जब हाथैं देखि छकि गये सालन सुघर ।
सूहे पट घूंघट घुति दूनी छिलैं आंनन की मानौं झीनैं लाल घन झलकत सुधा धर ।
(श्री) वृंदावन प्रभु दूलह चकोर दृग ललकत देखि देखि शोभा को निकर ॥

स्वकीयात्व-दाम्पत्य से परिपुष्ट निकुंज-बिहार के इस प्रसंग में रसोपासना की पराकाष्ठा प्रतिपादित है, यहां ब्रजरस वाहिनी गीतामृत गंगा का समागम निकुंज रसोपासना के महोदधि में हुआ है। अनादि वैदिक सनातन परम्परावत भागवतोक्त रसौ वैसः से प्रतिपादित ब्रजरस और निकुंज रस की उभयात्मक निम्बार्कीय रसोपासना का महनीय तत्व गीतामृत गंगा के सरस-संगीतबद्ध कलात्मक-कलेवर में अभिव्यक्त हुआ, जो गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य द्वारा प्रदत्त रसोपासनात्मक निम्बार्कीय दीक्षा, संगीत तथा रीतिकाव्य शास्त्रीय शिक्षा के माध्यम से रूपनगढ़ राजकुल के भक्त कवियों के लिए आदर्श बनकर उनके काव्यों का आधार सिद्ध हुआ है। महाराजा राजसिंह, ब्रजकुँवरी, नागरीदास-सुंदरकुँवरी-छत्रकुँवरी, आनंदघन आदि ने इसी गीतामृत गंगा के मर्म को स्वीकारा है।

महाकवि नागरीदास एवं उनका सम्प्रदाय-निर्णय

<u>नागरीदास (महाराजा सावंतसिंह) जी</u> :- युगल रसोपासना के रीतिसिद्ध कवि एवं विश्वविख्यात किशनगढ़ चित्रकला के प्रवर्त्तक, शूरवीर सामंत, परमवीतरागी, वृंदावनवासी - रसिकवर्य्य, महाराजा सांवतसिंह उपनाम नागरी दास जी का व्यक्तित्व क़िशनगढ़ के इतिहास का ऐसा परम ज्योतिर्मय प्रकाश पुंज है जिसका प्रभामंडल दिग्‌दिगन्त में व्याप्त विपुल विश्व को अद्यावधि अपनी सुमधुर युगल भक्तिरस की पीयूष रस वर्षिणी रीतिसिद्ध काव्यकला एवं परमानंद परक चित्रकला की शरद चन्द्रिका से आत्मविभोर कर रहा है।

ऐसे महापुरुष का जन्म महाराजा राजसिंह जी की प्रथम धर्मपत्नी महारानी चतुर कुँवरी जी की पवित्र कुक्षि से वि.सं. १७५६ में पौष कृष्णा १२ को हुआ था। बाल्यकाल में ही संस्कृत ब्रज-फारसी साहित्य के गंभीर अध्ययन, संगीत, काव्यशास्त्र एवं चित्रकला तथा शस्त्र विद्या के निरन्तर अभ्यास से आप में विलक्षण विद्वता एवं शूरवीरता ने जन्म लिया। वि. सं. १७६६ में जब आप मात्र १० वर्ष के थे, आपने दिल्ली दरबार से लौटते समय खूंखार-बिगड़ैल हाथी को तलवार के एक ही वार से साफ कर दिया; वि.सं. १७६९में १३ वर्ष की अवस्था में आपने हाड़ा जैतसिंह को परास्त कर दिया तथा वि.सं. १७७४ में १८ वर्ष की अवस्था में आपने भरतपुर राजा से 'थूण की गढ़ी' जीतकर बादशाह फर्रूखसियर को दे दी; नरवर के कवि उदयनाथ कृत 'सिंह शिकार' पुस्तक के अनुसार आपने अपने गुरु जगद्‌गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी की आज्ञा से 'सालरमाला' में हिंसक सिंह से द्वन्द युद्ध करके उसे मारा; वि.सं. १७८३ में बलपूर्वक चौथवसूली करने वाले मल्हारराव मराठे को आपने परास्त कर भगा दिया।

वि.सं. १७७७ ज्येष्ठा शुक्ला ९ को आपका विवाह भानगढ़ के राजावत यशवंतसिंह जी की सुपुत्री लालकुँवरी जी से हुआ जिनकी कुक्षि से वृन्दावनस्थ 'कृष्णगढ कुंज' में वि.सं. १७८७ में राजकुमार सरदार सिंह जी ने जन्म लिया जो वि. सं. १८१४ में आपके उत्तराधिकारी बने। आपकी ज्येष्ठ कन्या किशोर कुँवरी का विवाह बूंदी के हाड़ा दीपसिंह से हुआ, दूसरी पुत्री गोपाल कुँवरी का सम्बन्ध जयपुर के महाराजा माधोसिंह जी से हुआ था पर परिणय से पूर्व ही माधोसिंह जी का देहावसान हो जाने से गोपाल कुँवरी ने आजीवन अविवाहित रहकर भगवद्‌भक्ति में ही अपना समग्र जीवन बिता दिया था।

वि.सं. १८०५ में आपके पिता महाराजा राजसिंह जी के परमधाम वास हो जाने पर आपको राजसिंहासन मिला पर जैसा कि पूर्व पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि आपके कनिष्ठ भ्राता बहादुरसिंह जी ने बलपूर्वक सम्पूर्ण रूप से कृष्णगढ़राज्य पर स्वामित्व कर लिया। गृहयुद्ध के पश्चात् वि.सं. १८१३ में राज्य का बँटवारा हुआ। आपने रूपनगढ़ राज्य का उत्तराधिकार अपने पुत्र सरदार सिंह जी को सौंप कर अन्तत: वि. सं. १८१४ में आपने वृंदावन वास ले लिया। आपकी वृन्दावन परिचर्या में 'निकुंज मंजरी' की हैसियत से 'बनीठनी' जी आपके साथ रहीं। राजमाता 'ब्रजदासी जी' ने भी वृन्दावन वास किया और गोपाल कुँवरी जी भी आपके साथ रही थीं। अन्तत: वि.सं. १८२१ में भादों सुदी ५ को आप वृन्दावनस्थ नागरीदास घेरे में निकुंज लीन हो गये; जहाँ आपके पूर्वोल्लेखित समाधि स्मारक अद्यावधि विद्यमान हैं।

भक्तप्रवर नागरीदास हिन्दी साहित्य के ख्यातिमान रीतिसिद्ध कवि हैं; जिन्होंने वैराग्य, शृंगार, रीति नीति, श्रीराधाकृष्णपरक युगल भक्ति की अनूठी रचनायें की हैं। इनके ग्रंथों में युगल स्वरूप श्रीराधाकृष्ण की मधुरभक्ति रागबद्ध पदों एवं विविध कवित्त-सवैयादि छन्दों में, ब्रजभाषा के चित्रोपम-कमनीय-कलात्मक- कलेवर में अभिव्यक्त हुई है। इनके द्वारा विरचित ब्रजरस निकुंज रस के रीतिसिद्ध शृँगारिक सुमधुर भावों से परिपूर्ण ग्रंथों के अनेकानेक नित्यबिहारपरक युगल लीला प्रसंगों पर बनीं 'किशनगढ़ शैली की चित्रकला' के चित्र अद्यावधि विश्वविख्यात हैं, जो मूलत: इन्हीं के भाव-कला साम्य पर आधारित होने से नागरीदास जी द्वारा प्रवर्तित और निर्देशित हुये हैं; अधिकांशत: नागरीदास-चित्रावली निकुंज-केलिरहस्यात्मक भावों पर आधारित निम्बार्कीय रसोपासना का मूर्त स्वरूप है तथा वृन्दावनस्थ योगपीठ के रसिक जन ही उसके मर्मज्ञ हैं।

समाधि-लेखांकित प्रशस्ति 'उदधि लौं गावत बानी' के अनुसार नागरीदास कृत ७५ ग्रंथों का विशालकाय संकलन रत्नगर्भा-विविध-भावात्मक-कलात्मक हृदयस्पर्शी अभिव्यंजनाओं का महोदधि है। वि. सं. १९५५ में नागरीदास जी के समस्त ग्रंथों का सर्वप्रथम संग्रह 'नागर समुच्चय' के नाम से तत्कालीन कृष्णगढ़ नरेश शार्दूलसिंह जी के दरबारी-कवि वृंद-वंशज श्री जयलाल द्वारा संपादित तथा ज्ञानसागर प्रेस किशनगढ़ के स्वामी किशनलाल जी गौड़ द्वारा प्रकाशित हुआ है। यह नागर समुच्चय वैराग्य सागर, शृँगार सागर तथा पद सागर नामक शीर्षकों से वर्गीकृत है जिनमें क्रमश: १५, ५१ तथा ३ ग्रंथ हैं जो कुल मिलाकर ६९ हैं; शेष ६ संपादक ने अनुपलब्ध बताये हैं। जयलाल कवि समकालिक राधाकृष्ण ग्रंथावली, डॉ. फैय्याज अली जी का शोध प्रबन्ध (सन् १९५८ ई.) तथा सन् १९६६ में नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित डॉ. किशोरीलाल गुप्त का संपादन 'नागरीदास - भाग १ तथा २' इसी 'नागर समुच्चय' पर आधारित माने जाते हैं। वि. सं. २०२१ में अ. भा. ज. निम्बार्काचार्य पीठ के तत्वावधान में 'नागरीदास-वाणी' अंक भी प्रकाशित हुआ है। नागर समुच्चय के अनुसार नागरीदास जी कृत ग्रंथावली निम्न प्रकार से है :-

(१) वैराग्य सागर के १५ ग्रंथ - भक्तिमगदीपिका, देह दशा, वैराग्यवटी, रसिक रतनावली, कलि वैराग्य वल्ली, अरिल्ल पच्चीसी,

छूटक पद, छूटक दोहा, तीर्थानंद, रामचरित्र माला, मनोरथ मंजरी, पद प्रबोधमाला, जुगलभक्त विनोद, भक्तिसार, श्रीमद् भागवत पारायणविधि प्रकास।

(२) श्रृंगार सागर के ५१ ग्रंथ :- ब्रजलीला, गोपी प्रेमप्रकाश, पद प्रसंगमाला, ब्रजबैकुँठतुला, ब्रजसार, बिहार चन्द्रिका, भोरलीला, प्रातः रस मंजरी, भोजनानंद अष्टक, युगल रस माधुरी, फूल विलास, गोधन आगम, दोहनानंद अष्टक, लगनाष्टक, फागविलास, ग्रीष्मविहार, पावस पचीसी, गोपी बैन बिलास, रासरसलता, रैंन रूपारस, सीतसार, इश्क चमन, छूटक दोहा मजलस मंडन, रास अनुक्रम के दोहा, अरिल्लाष्टक, सदा की मांझ, वर्षा ऋतु की मांझ, होरी की मांझ, शरद की मांझ, श्री ठाकुरजी के जन्मोत्सव कवित्त, वर्षाऋतु के कवित्त, श्री ठकुरानी जी के जन्मोत्सव के कवित्त, सांझी के कवित्त, सांझी फूल वीननि समैं संवाद अनुक्रम, रास के कवित्त, चांदनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, गोवर्धनधारण के कवित्त, होरी के कवित्त, फाग खेल समैं अनुक्रम, बसन्त वर्णन के कवित्त, फाग बिहार, फाग गोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्त, छूटक कवित्त, वनविनोद, बाल विनोद, सुजनानंद, रास अनुक्रम के कवित्त, निकुंज विलास, गोविन्द परचई।

(३) पदसागर के ३ ग्रंथ :- वन जन प्रशंसा, पद मुक्तावली, उत्सवमाला।

(४) शेष ६ ग्रंथ :- सिख नख, नखसिख, चरचरियाँ, रेखता, बैन बिलास, गुप्त रस प्रकाश

नागरीदास जी की मधुर - रसोपासना

" यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत +++ संभवामि युगे युगे" तथा "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं +++ मोक्षयिष्यामि मा शुचः।" आदि श्रीमद्भगवत् गीता द्वारा प्रतिपादित इन भगवद्वाक्यों के आधार पर - लोकोद्धारक परमतत्व भगवान श्रीकृष्ण की प्रपन्नता से शरणागत रक्षा की अहैतुकी कृपा तथा तदनुरूप परमाह्लाद की अनुभूति होती है। इसी क्रम में सायुज्य भक्ति की प्राप्ति भी संभव है जिससे प्रपन्न को अभिलषित वैकुंठ धाम भी मिल सकता है; पर गोलोकधाम जो रसोवैसः युगलतत्व का परमधाम है वह तो परमगुह्य योगपीठ श्रीवृंदावन धाम के रसिक जनों को ही सुलभ होता है। इसीलिए भक्तिरस के आचार्यों ने श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित रसरूप, परमानंद स्वरूप, परब्रह्म पुरुषोत्तम, परमेश्वर के पूर्णावतार सच्चिदानंद सर्वेश्वर श्रीकृष्ण और उन्हीं के अनुरूप उनकी परम-आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा जी के दाम्पत्यपरक 'नित्यबिहार' की अनन्त-अखंड-एकानुभूति को ही मधुर-रसोपासना के रसिकों का परमलक्ष्य माना है। श्रीराधाकृष्ण की युगल रस लीलाओं के नित्य नूतन-विधान से चिन्तनीय 'नित्यबिहार' में परमानंद के अलौकिक-अखंड-एकरस, अनन्तानन्त आनंद की अहर्निश तथा प्रतिपल अनवरत रसानुभूति साध्य है; जबकि अन्य अवतार 'अंशावतार' होने से उनके स्वरूप से साधित आनंद सीमित - खंडित तथा अपूर्ण ही होता है।

युगल का यह नित्यबिहार ब्रजबिहार और वृन्दावन बिहार के भेद से निरन्तर अनुभूति परक होता है। इन दोनों प्रसंगों में युगल लीला विलास के आनंद से क्रमशः ब्रजबिहार रस और निकुंज बिहार रस ही साधित होता है। रसाचार्यों ने वृन्दावन विहार के दो भेद भी किये हैं - कुंज बिहार तथा निकुंज केलि बिहार, तथापि दो भेद ही प्रमुख हैं। ब्रजविहार-रस में गोपीभाव तथा निकुंजबिहार रस में सखी या सहचरी भाव से सेवा का विधान है। युगल बिहारी बिहारिणी जू के नित्य नूतन वयस में, उनके नित्यनूतन लीलाधाम ब्रज-वृन्दावन में, उनके लीला परिकरों के नित्य नूतन उत्साह-उमंग और नव-नव भावावेश में, उनके नित्यनूतन लीला-प्रसंगों का अष्टकालिक-अहर्निश चिन्तन-मनन करते हुये कहीं गोपी-भाव से तल्लीन ब्रजबिहार का, तो कहीं सखी सहचरी भाव से निकुंज बिहार का, दर्शनानंद पाना ही रसोपासना के साधकों का परम लक्ष्य होता है।

अस्तु, युगल तत्व श्रीराधाकृष्ण की लीलाएँ ब्रजबिहार और वृन्दावन बिहार के नामों से दो प्रकार की मानी गई हैं। इन्हीं युगल लीलाओं से परिपुष्ट क्रमशः ब्रजरस तथा निकुंज रस के सभी विधान लगभग समान हैं। रसराज श्रृंगार ही दोनों का मूलाधार है। ब्रजरस लीलाओं में श्रृंगार के संयोग-वियोग परक उभयात्मक पक्ष मान्य हैं जबकि निकुंज रस में प्रतिपल संयोग का अखंड-विधान है, यहाँ प्रिया प्रियतम युगल दंपति श्रीराधाकृष्ण का अनवरत सहचरण, निकुंज-केलि-रमण ही साध्य है। जलक्रीड़ा, दीपोत्सव, शरद चन्द्रोत्सव, होरी-फाग-बसन्त बिहार-हिडोंरा, ऋतुपरक विविध पर्व-त्यौहार-उत्सव के लीलापरक प्रसंग, नखशिख श्रृंगार के विषय, रास-महारास आदि सभी प्रसंगों की सरस योजनाएं दोनों में मान्य हैं, पर निकुंज बिहार में मान-अभिसार मिलन-विरह, परकीयात्व-प्रेम की स्वीकृति मात्र भी नहीं होती, पर यहाँ निकुंजबिहार में युगल-केलि-क्रीड़ाओं के बहुविध लीला प्रसंगों, सुरतिरत-सुरत्यंत-अवस्थाओं तथा श्रृंगार की साज-सज्जाओं की भरमार होती है। दोनों प्रकार की युगल लीलाओं में प्रमुख भेद साधक के भाव का है- ब्रजबिहार में गोपी-भाव प्रधान होता है जिसकी पराकाष्ठा 'रास' में होती है जहाँ भक्त गोपीभाव से भगवान श्रीकृष्ण के आलिंगन -चुम्बन आदि की वांछा करता है तथा कान्ताभाव से पतिरूप में श्रीकृष्ण के वरण का अभिलाषी होता है, जितनी गोपियाँ उतने ही रूप धारण कर भगवान श्रीकृष्ण रास के गोपी-बिहार प्रसंग में सबका मनोरथ पूर्ण करते हैं।

निकुंजबिहार में श्रीवृषभानुनंदिनी नित्य किशोरी श्रीराधाजी रसरूप परब्रह्म-परमानंद स्वरूप-रसिकेश्वर भगवान

श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी शक्ति तथा उनकी अंतरंगभूता हृदयेश्वरी हैं - ऐसी प्रिया जी भगवान् श्रीकृष्ण की भी आराधिका हैं क्योंकि युगल स्वरूप में ही उनके रसरूप की पूर्णता होने से वे सदा सर्वदा रसपोषिका श्रीराधिकाजी की कृपावांछा करते हैं। रसिकों के रस-भवन में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण निकुंज विहारी रूप में नित्य राधारमण हैं -

उदधि महामाधुर्य के रसिक दोऊ रसभौंन ।
सदा सर्वदा एक रस, राजत राधा रौंन ॥

(सि.सु. श्री महावाणी)

निकुंज-भवन में प्रतिपल निकुंज-केलिरत प्रियाप्रियतम लाड़लीलाल की, नवनव भावों के उल्लसित-हृदय से सहचरी भाव की सेवा में तत्पर रसिकों के लिए निकुंज - स्वामिनी ही सर्वस्व है; सहचरियाँ उन्हीं की चरणाश्रित एकमात्र उन्हीं की कृपाकांक्षिणी होती हैं, निकुंज - रंध्रों से रतिरत प्रियाप्रियतम के तटस्थ-भाव से दर्शनों की तल्लीनता ही उनका सुख है। निकुंज-दंपति के भावानुरूप युगल-केलि सुख का तटस्थ-भाव से चिन्तन करते हुये प्रतिपल नवनव निकुंज-क्रीड़ा विधान करना, स्वामिनी श्रीराधाजी की कृपा से प्राप्त मंजरी अनुचरी-भाव की यह सहचरी - सेवा निकुंज-महल की परिचर्या या निकुंज-महल की टहल या खवासी ही होती है, केवल कुंज-रंध्रों से युगल-केलि-आनंद की तटस्थ भावानुभूति ही सहचरी का स्वसुख कहा जाता है जो गोपी भाव से भी श्रेष्ठतर माना गया है क्योंकि इसमें काम का ईश्वरपरक भावनात्मक सुख भी नि:शेष हो जाता है।

निम्बार्क-संप्रदाय चतुर्सम्प्रदायांतर्गत अनादि-वैदिक-सनातन-परम्परावत स्वाभाविक द्वैताद्वैत दर्शन पर आधारित संप्रदाय है। इसकी निकुंज-रसोपासना भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य जी द्वारा सर्वप्रथम उपदिष्ट होने से उन्हीं की देन है। यह निम्बार्क-संप्रदाय की विशिष्ट तथा सखी-भाव की गुह्यतम उपासना है; निम्बार्क-संप्रदाय में ब्रजरस केंद्रित भागवतोक्त गोपी भाव की उपासना भी व्यापक रूप से मान्य है जो रसोपासक को ब्रजरस से निकुंजरस की पराकाष्ठा की ओर ले जाने वाली पृष्ठभूमि है; जिसके उच्चासित होने पर सखी-भावपरक युगल-केलिरत प्रियाप्रियतम के लाडलडावन की तत्सुख सुखित्व की अभिलाषा विशुद्ध-भावना में परिणत हो जाती है। ब्रजरस में श्रीराधा जी के प्रति स्वकीयात्व-परकीयात्व की दुविधाओं से युगल का सदा-सर्वदा अनादि-अखंड-एकरस-दाम्पत्य केलि-रसानंद निर्बाध नहीं होता तथा गोपीभावपरक स्वसुख की वाँछा से ईश्वरीय काम भी बना रहता है - इन्हीं कारणों से संभवत: गोपीभावपरक ब्रजरस की चरमोन्नति निकुंज-रसोपासना के सखी-भाव में हुई है।

किशनगढ़ की रीतिकालीन साहित्य - सृजना रूपी मणिमाल के सुमेरु महाकवि भक्त प्रवर नागरीदास जी का युगललीलापरक रसोपासनात्मक भक्ति साहित्य त्रिविधात्मक धाराओं का अनूठा संगम है, जहाँ उज्ज्वल रस से निर्मित स्फटिक सम धवल भावों के दिव्य-देवालयों एवं रीत्यात्मक मणिकणिकाओं से शोभित रसराज श्रृँगार के अनन्त-अभिव्यंजनाओं रूपी विविध कलात्मक घाटों से सुसज्जित, गोपीभाव तथा सखीभाव के उभयात्मक तटों के बीच, ब्रजरस निकुंजरस रूपी गंगा-जमुनीय धाराएँ समन्वित होकर परम गुह्यमान निकुंज-रसोपासना की अंत: सलिला वेगवती 'सरस्वती' रूप में प्रवाहित हुई है जिसके संगम में सभी श्रीराधाकृष्णाश्रयी सम्प्रदायों के रसिकजन आकंठ निमग्न हो अपने तन मन को निमज्जित कर धन्य धन्य होते आ रहे हैं। महाकवि नागरीदास जी के निकुंज-रस प्रधान इन्हीं मधुर-भावों पर आधारित नयनाभिराम प्राचीन चित्र अद्यावधि इसी के मूर्त रूप बने हुये हैं।

परमरसिक भक्त नागरीदास जी ने अपने विविध भक्ति ग्रंथों में ब्रजरस और निकुंज रस की पूर्वोक्त अभीष्ट उपासना का अनेक प्रकार से प्रतिपादन कर दिया है। उनके अनुसार ब्रजरस ने ज्ञानपरक हरिगुणानुवाद कथा प्रवचन नाम-स्मरण-कीर्तनादि भक्ति साधनाओं को मधुर बना दिया है; ब्रजरस बिना रसिकों का लीला पदगायन ही असंभव था; ब्रज बिना काव्य का प्राणतत्व रस ही मर जाता। ऐसे अलौकिक रसतत्व के मर्मज्ञ रसिकजन ही हैं। रसिकों द्वारा अभिलषित परमानंद-स्वरूप युगल-रस-माधुरी की अनन्त-रसानुभूति रस रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण की उभयारसात्मक नित्यलीलाओं के अहर्निश चिन्तन से ही सुलभ है जो लीलाधाम ब्रज-वृंदावन के अनवरत वास से सहज में ही साधित है। इसीलिए उन्होंने अनन्यनिष्ठा से ब्रजवृंदावन धाम को बैकुँठ से भी बढ़कर महिमान्वित किया है -

ब्रज कौ स्वाद बैकुंठ मैं नाहीं।
हरिगुन कथा भई जब मीठी ब्रजरस मिल्यौ तबै ता मांही ॥
ब्रजरस बिनु कहा रसिक गावते ब्रज बिनु रस मरि जातौ ।
ब्रजमहिमा की वेई जानैं जिनकैं है ब्रज सौं नातौ ॥
भुवन चतुर्दस मांझ धन्य ब्रज धनि धनि ये ब्रजवासी ।
नागरीदास धन्य है सोई जो ब्रज रेनु उपासी ॥ (छूटक पद १४६)

अनादि वैदिक 'रसो वै स:' श्रुति द्वारा प्रतिपादित, रसिकों के परमाराध्य रसरूप-परब्रह्म परमानंद-सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण के युगल स्वरूप का अप्रच्छन्न तथा प्रत्यक्ष, दिव्यातिदिव्य नित्यनूतन लीलाधाम ब्रजवृंदावन उन्हीं का रसरूप है तथापि 'नित्य-विहार' की लीलाओं में ब्रजविहारी का प्राकट्य इस दिव्यभूमि पर ही संभव होने से धाम-महिमा अपरिमित एवं अपरम्पार है। लीलाधाम में अपने प्राकट्य-प्रभाव से अनादि वैदिक सदासर्वदा एक रस-एक रूप-अखंड परात्पर रूप से अनिर्वचनीय-वर्णनातीत परब्रह्म परमतत्व पूर्णावतार पुरुपोत्तम भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के नाम में अनेक प्रकारेण रसमयी परिणति हुई है और वही रसिकों का भाव्यमान परब्रह्म-परमानंद है। इसीलिए नागरीदास ने गर्गमुनि द्वारा प्रदत्त परमेश्वर-नाम-श्रीकृष्ण के ब्रजरस से परिष्कृत रसावेष्ठित सुमधुर लीलापरक नामों की महिमा का प्रतिपादन करते हुये 'मुरली वाले ब्रज के ठाकुर' नित्य ब्रज बिहारी के प्रति अपनी उत्कट उपास्य भावना अभिव्यक्त की है -

(1) ब्रज सम और कौऊ नहिं धाम ।
या ब्रज सौं परमेसुरहू के सुधरे सुन्दर नाम ॥
कृष्णनांव यह सुण्यौ गर्ग तें कान्ह कान्ह कहि बोलैं ।
बालकेलि रसमगन भये सब आनंद सिंधु कलोलैं ॥
जसुदानंदन दामोदर नवनीत प्रिय दधिचोर ।
चीरचोर चितचोर चिकनियाँ चातुर नवल किशोर ॥
राधाचंद चकोर सांवरो गोकुलचंद दधिदानी ।
श्रीवृन्दावन चंद चतुरचित प्रेम रूप अभिमानी ॥
राधारवन औ राधावल्लभ राधाकान्त रसाल ।
वल्लव सुत गोपी जन बल्लभ गिरवरधर छबिजाल ॥
रासबिहारी रसिकबिहारी कुंजबिहारी श्याम ।
\+ \+ \+
ब्रजजीवन ब्रजबल्लभ सबके ब्रजकिशोर शुभगाथ ।
ब्रजभूपन ब्रजमोहन सोहन ब्रजनायक ब्रजचंद ।
ब्रजनागर ब्रजछैल छबीलै ब्रजवर श्रीनंदनंद ॥
ब्रज आनंद ब्रजदूलह नित ही अति सुंदर ब्रजलाल ।
ब्रज गउगन कैं पाछैं आछैं सोहत ब्रजगोपाल ॥
ब्रज सनमंधी नांव लेत ये ब्रज की लीला गावै ।
नागरीदासहिं मुरलीवारो ब्रज कौ ठाकुर भावै॥
(छूटक पद १४७)

(2) ब्रजरस लीला सुनत न कबहुँ अघावनौं।
ब्रजभक्तनि सतसंगति प्रान पगावनौं ॥
नागरिया ब्रजवास कृपा फल पाइयैं ।
ब्रजनागर नंदलाल सु निसदिन गाइयै ॥ २५॥ (अरिल्ल पच्चीसी)

रसिकों का अभिलपित रसानंद तो परमानंद धाम श्रीवृन्दावन में ही है, श्रीधाम नित्यानंद की दिव्यभूमि है जहाँ युगल की नित्यकेलि-रसलीला का अनन्तानन्त नयनाभिराम-कौतुक रूपी दर्शनानंद सुलभ्य है, नित्यनूतन दिव्यभूमि में नित्यनूतन केलिरत श्यामाश्याम नित्य विहार करते हैं, नित्यनूतन भावाभिभूत सहृदय रसिकजन ही जहां नित्यधाम में वास करते हुये तत्सुख सुखित्व भाव से निकुंज सेवा का सुख प्राप्त करते हैं -

नित आनंद वृंदावन महियाँ ।
नित्य केलि कउतक रसलीला निरखि निरखि दृग हारत नहियाँ ॥
नित्त हरे द्रुम फूलफलनि जुत जमुना तट अतिसीतल छहियाँ ।
नित्त नउतन सब लोग सनेही प्रीति रीति यह और न कहियाँ ॥
नित्त रास नित्त कथा कीरतन निति प्रति गति मति रहे उमहियाँ ।
नित्त वास तहाँ नागरिदासहिं श्यामाश्याम दयी गहि बहियाँ ॥ (छूटक पद ११६)

ऐसे अखंडित अनन्तानन्त आनंद के धाम श्रीवृन्दावन की चरमोपलब्धि ही रसिकों का परमसाध्य है। अखिल ब्रह्मांड से परे

इस दिव्य भूमि के वास से समस्त क्लेशों का परिहार हो जाता है, जन्म बंधन से मुक्त जीवात्मा को परमानंद का अनवरत-अखंड तथा अनन्तसुख सुलभ हो जाता है। नागरीदास जी का ऐसा सौभाग्य निकुंजबिहारी बिहारिणी जू की अनन्य कृपा से ही फलीभूत हुआ है -

हमारी सबही बात सुधारी ।
कृपा करी श्रीकुंज बिहारनि अरु श्रीकुंज बिहारी ॥
राख्यौ अपने वृंदावन में जिहिं ठां रूप उजारी ।
नित्यकेलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी ॥
कलह कलेस न व्यापै इहिं ठां ठौर विश्व तैं न्यारी ।
नागरिदासहिं जनम जितायो बलिहारी बलिहारी ॥ (वही ११५)

रसिक शिरोमणि भक्तप्रवर नागरीदास जी ने श्रीधाम वृन्दावन की महिमा का अद्वितीय वर्णन किया है जिससे उनकी वृन्दावननिष्ठा की प्रगाढ़ता का प्रतिपादन होता है। निकुंजलीन होने से दो वर्ष पूर्व वि. सं. १८१९ में वन-जन-प्रशंसा नामक ७१ पदों के ग्रंथ में आपने स्वतंत्र रूप से वृन्दावन तत्व का ही विस्तृत और भावपूर्ण चिन्तन किया था। छूटक पदों तथा पदमुक्तावली के निकुंज बिहार लीला प्रसंगों में भी श्रीधाम वृन्दावन के अप्राकृत स्वरूप का महनीय प्रतिपादन हुआ है। वनजन-प्रशंसा का अत्यन्त प्रसिद्ध पद द्रष्टव्य है। निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना का स्वरूप परमगुह्य अंतःपुर उपासना का है। नागरीदास जी ने इसीलिए श्रीधाम वृन्दावन को रसिकों की राजधानी कहा है; यहाँ रसिक बिहारी श्रीकृष्ण रसिक राजेश्वर हैं तथा रसिक बिहारिणी श्रीस्वामिनी श्रीराधिका जी परम राजमहिषी राजरानी हैं। ललितादिक अंतरंग-अष्टसखियाँ, सहचरी-सेवा-परायण रसिक-भक्त, वृंदादेवी, यमुना जी, नित्यनूतन द्रुम बेलियाँ, पशुपक्षी, लीलाधाम वृंदावन का चराचर लीला परिवेश आदि सभी रसिक रूप से निकुंज - सेवा में तल्लीन हैं। नित्य निकुंज बिहारी का केलि-स्थल, वहाँ का सखी सहचरी रूप में रसिकों का सेवा संलग्न लीला परिकर, दम्पत्ति की रतिरस लीलाओं के विविध विधान आदि सभी रसपोषक तत्व लीला विस्तारक रसरूप परब्रह्म परमानंद स्वरूप युगलतत्व के ही दिव्य स्वरूप हैं जो दम्पति की भावनानुसार उनकी निकुंज-केलि का नवनव उत्साह से प्रतिपल नूतन विधान करते हैं; तथा तटस्थ-भाव से परमानंद के रसास्वादन का गुणानुवाद ही जिनकी अभिलषित सुखानुभूति है। अनन्य धाम निष्ठा से अभिव्यक्त वृंदावन योगपीठ के निकुंज रसतत्व का ऐसा सैद्धान्तिक भावपूर्ण निरूपण नागरीदास जी की महनीय निम्बार्कीय रसोपासना का प्रबल रूप से प्रतिपादन कर रहा है -

वृन्दावन रसिक रजधानी ।
राजा रसिक बिहारी सुंदर सुंदर रसिक बिहारिनि रानी ॥
ललितादिक ढिंग रसिक सहचरी जुगलरूप मद पानी ।
रसिक टहलनी वृंदादेवी रची रुचिर निकुंज खानी ॥
जमुना रसिक रसिक द्रुम बेली रसिक भूमि सुखदानी ।
इहां रसिक चर थर नागरिया रसिक ही रसिक सबै गुनगानी ॥ (वनजन प्रशंसा - ६८)

ऐसे अलौकिक परमगुह्य रसिक-योगपीठ वृंदावन धाम का दुर्लभ्य वास रसिकों का ही सौभाग्य है। रस अधिष्ठात्री निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी ही रसिकों की परमाराध्या परमेश्वरी हैं क्योंकि उन्हीं की कृपा से रसिकों को सखी सहचरी रूप से निकुंज-सेवा में प्रवेश प्राप्त होता है; इसीलिए उन्हें एकांतिक भाव की अनन्यनिष्ठा से श्रीस्वामिनी जी का चरणाश्रय ही अभीष्ट है जिसके लिए वे अत्यंत दैन्यभाव से श्री स्वामिनी जी की कृपाकांक्षा करते हुये वृन्दावनवास के लिए करुण आत्मनिवेदन करते हैं। नागरीदास जी का यह पद इसीलिए निम्बार्कीय रसिक-समाज में अत्यंत भावनात्मक रूप से गाया जाता है -

अब तो कृपा करो श्रीराधा ।
वृन्दाविपुन बसौं श्रीस्वामिनी छांडि जगत की बाधा ॥
तीन लोक गावत वा बन की लीला ललित अगाधा ।
नागरिया पैं तनक ढरै तैं होय सहज सुख साधा ॥ (छूटक पद ९६)

निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना की अधिष्ठात्री निकुंज स्वामिनी श्रीराधाजी ही हैं, यहाँ उन्हीं की सर्वोपरि उपासना का विधान है क्योंकि रसिकों के परमानंद सच्चिदानंद स्वरूप श्रीकृष्ण अपने रसरूप की पूर्णता के लिए अपनी परमाह्लादिनी शक्ति श्री प्रियाजी की कृपाकांक्षा करते हैं। नागरीदास जी ने निम्बार्कीय परंपरानुसार श्रीस्वामिनी जी की नागरिया दासी के रूप में, निकुंज-बिहार के प्रसंगों में, केलिविधायिनी श्रीराधाजी के इसी परमानंद रसपोषक स्वरूप का प्रतिपादन किया है :-

राधिका आनंद रूप पिय कौं आनंद दीनौं।
रची हैं अति आनंद केलि बाहु जुगनि झेलिमेलि उर सौं उर आनंद भीनौं ॥

आनंद सखी श्रवण नैंन आनंद निकुंज ऐंन मिलिकैं घन सौं दामिनी आनंद कीनौं ।
पूरनानंद बढ्यौ जात नहीं मुखतैं कढ्यौ नागरिया दासि भए आनंद रस लीनौं ॥
(पदमुक्तावली ह. प्रति पद २६५)

निकुंज रसोपासना की भांति ही परमाह्लादिनी श्रीराधा जी के इसी सर्वोपरि स्वकीयात्व स्वरूप का प्रतिपादन नागरीदास जी ने ब्रजरसोपासना के नित्य बिहार प्रसंगों में भी किया है। ब्रजसार ग्रंथ के निम्न कवित्त द्रष्टव्य हैं -

जाकौं नाम सेस रटैं, शिव आदि सुर रटैं, मुनिगन नरनारि रटत न हटहीं ।
देव औ अदेव बधू नागबधू नृपबधू, रटत हैं नांव छांडि घट के कपटहीं ॥
कमला कमलमुख अमल रटत नांम, सेवा सावधान रहैं पायन निकटहीं ।
जाकौं सब रटै सो नागर तट जमुना कैं, मुरली मैं राधे राधे नाम नित्य रटहीं ॥
और जाकी बंसी सुनिवैं को तरसत, सौ व राधा बैंन सुनिबै कौं हियैं तरसत हैं ।
तांकी सब कृपा चहैं कृपा राधा की सौ, इक टक रहै नैंन नाहिं अरसत हैं ॥
जाकैं पाय पंकजनि राखैं कुच बीच किती, नागरिया पायन सौं नैंन परसत हैं।
जाकैं देखवैं कौं सव तरसत सोई हरि, राधामुख देखिबैं को नित्य तरसत हैं ॥

'सांझी फूल बीननि समैं संवाद अनुक्रम कवित्त' ग्रंथ में श्रीराधे जी के सर्वोपरि स्वरूप के प्रति अभिव्यक्त नागरीदास जी की उदात्त भावना अन्यत्र दुर्लभ है। उनके मतानुसार वृंदावनधाम की निकुंज-स्वामिनी परमाह्लादिनी श्रीराधा जी ही सर्वेश्वरी-परमेश्वरी हैं; तथा वही परब्रह्म श्रीकृष्ण की अंतरंगभूता परमशक्तिरूपिणी सृष्टि की परम रहस्य हैं; चराचर उन्हीं के स्वरूप की विराट विस्तृति है। यहां सखियों के सम्वाद में स्वामिनी जी के इस महनीय निरूपण के प्रति श्यामसुंदर श्रीकृष्ण की सहज स्वीकृति से श्रीराधा जी की सर्वोपरिता स्वत: प्रतिपाद्य है।''राधे जू के हम हैं हमें अपनाय लेहु ज्यौंवुं मुख सुधाधर देखि देखि जीजिये।'' नागरीदास जी द्वारा किया गया श्रीराधातत्त्व का यह निरूपण उनकी निम्बार्कीय निष्ठा का अकाट्य प्रमाण है -

कहा है परायो सब दीसत है सो राधे ही को, बिनही बिचारै झूठे बचन उचारे जू ।
राधे ही की भूमि यह राधे ही के खगमृग, राधे ही को नाम रटैं सांझ औ संवारे जू ।
राधे ही के सरवर ये तरवर है राधे जू के, राधे ही के फूल फल नागर निहारे जू ।
राधे ही की दुहाई फिरैं राधे ही को वृंदावन, तुम कौन लला बीच हटकनि हारे जू ॥

छूटक कवित्त ६८ में नागरीदास जी ने श्रीराधाजी को 'इष्ट' मानते हुए स्पष्ट कहा है:-**''संतनि को सतसंग आजीवका, कुंज-बिहार अहार अगाधा। नागर के कुलदेव गोवर्धन, मोहन मंत्र रु इष्ट है राधा।''**

पदमुक्तावली ग्रंथ में भी नागरीदास जी ने परमाह्लादिनी - रासरसविरहारिणी - निकुंज-स्वामिनी श्रीराधे जी को अपनी इष्ट-आराध्या-परमेश्वरी उद्घोषित किया है। श्रीराधा नाम ही उनका इष्ट-मंत्र है। श्रीराधाजी का आधा नाम ही उनका परमोद्धारक है। निम्बार्क-सम्प्रदायिक उपासना की अधिष्ठात्री-परमाह्लादिनी शक्ति नित्यकिशोरी वृषभानु-सुता श्री राधेजी के प्रति नागरीदास जी के सर्वोपरि इष्टाराधन की अनन्य भावना द्रष्टव्य है :-

(१) जय वृषभानुसुता चंदानन, वृंदा कानन अवनि बिहारी । नव तन तड़ित लता सम संभ्रम, सजल जलद नीलाम्बरधारी ॥
प्रिय अहलाद कल्पद्रुम गोभा, रासोत्सव निधि रस विस्तारी। प्रणत नागरीदासेश्वरी, श्रीराधा-कृष्णानंदकारी ॥ ४॥

(२) म्हेरी तू चतुर चिंतामनि ।
सुनि सुकुँवरि मम सुकृत पुंजफल, पलकनि की ओट होहु जनि ॥
सर्वसु प्रान अधार रसिकनी, याही तैं मांनत आपुन धनि ।
नागरीदासि मम मंत्र मनोरम, रसना श्रीराधा नाम रुचिर गनि ॥ २५॥ (पदमुक्तावली - ना. प्र. ५१४)

(३) साधौ कोरिक जतन तउ, सरै न एकौ काम । राधा आधौ नामहूँ, लियैं हौत बस स्याम ॥
राधा रज पद पद्म तव, आराधै सुखरास । जब वृंदावन प्रेमरस, लहत नागरीदास ॥
(७१ - चर्चरिया-पद मुक्तावली-वही पृ. ४८९)

निम्बार्क -सम्प्रदाय-विहित श्रीराधा जी के प्रति सर्वोपरि-सर्वोच्च उपास्य-भावना से परिपुष्ट निकुंज-रसोपासना ही नागरीदास जी की इष्ट-उपासना है। रस तत्व की परमपोषिका, निरतिशय-आनंदस्वरूपिणी, परमानंद-रसरूप-सच्चिदानंद भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी-आराधिका-प्राणप्रिया हृदयेश्वरी निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी की चरणाश्रिता--सखी के भाव से दम्पति-राधारमण की निकुंज-केलि सेवा तथा तटस्थभाव से दर्शनानंद की सुखानुभूति ही नागरीदास जी की अभीष्ट निम्बार्कीय

रसोपासना है, यही उपासना तत्त्व पदमुक्तावली आदि कई ग्रंथों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुआ है :-

(४) नित्त केलि आनंद रस, बिच वृंदावन बाग ।
नागरिया हिय मैं बसौं, स्यामां स्यामं सुहाग ॥ (जुगल रसमाधुरी पद. वही पृ. २६२)

(५) देखि देखि चितवत तोहीं ।
उत उत दृष्टि न होत निरंतर, बात कहत हंसि गौहीं ॥
मालसुधारत केस संवारत, चोज मनोज नए ललचौहीं ।
बसि नागरिदासि की स्वामिनी, स्यामैं दै सुख स्यामा यौहीं ॥८॥

(६) लाड़त लाल लड़ैते सौं लाड़िली, री देखि बैठे हैं भरि अंक ।
निकुंजभवन रसिक रमन प्रानप्रिय, प्रेम भरे मुदित मदनमयंक ॥
हंसत बिलसत परस्पर सुख, मुख बिलोकत नैनां करि करि वंक ।
बलि नागरीदासि की स्वामिनी स्यांमा, सदा बिहरैं रस नव नेह निसंक ॥ १२ ॥ (वही पृ. ५१५)

(७) स्यांमास्यांम के निम्बार्कीय निकुंज -केलि-विलास की सुखानुभूति ही उनकी परम इष्ट - उपासना है:-
''नित्त केलि आनंद रस, बिच वृंदावन बाग ।
नागरिया हिय मैं बसौ स्यामां स्याम सुहाग ॥ '' (जुगल रस माधुरी)

(८) निकुंज-केलि रसोपासनात्मक साधना की अधिष्ठात्री श्रीराधाजी से ही सखी भावपरक चरणाश्रय के लिए वे उनकी कृपाकांक्षा करते हैं :-
श्री राधे कीजै कृपा, चहत नागरीदास ।
अपने वृंदाविपुन कौ, देहु बास सुखरास ॥ (निकुंज विलास)

(९) भोरही तैं उठ चली है कुँवरिराधा ।
अरुन नैंन सिथिल बसन रूप छबि अगाधा ॥
रागरंग नव सुहाग आनंद रस बोरी ।
नागरिया हिदैं बसौ भांन की किसोरी ॥ (पदमुक्ता)

(१०) रसरूप परमानंद-स्वरूप सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण अखिल विश्व के आराध्य हैं तथापि परमाह्लादिनी आद्याशक्ति श्रीनित्य किशोरी श्रीराधाजी उनकी भी परमाराध्या हैं। श्रीकृष्ण अनवरत रूप से स्वयं उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। श्रीराधा के प्रति सर्वोच्च - आराधन की सहज स्वीकृति तथा उनका सर्वोपरि सर्वाधिक महत्व निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशिष्ट उपासना परम्परा है। नागरीदास जी द्वारा श्रीराधाजी के इसी महत्व का प्रतिपादन करना उनकी निम्बार्क सम्प्रदायी इष्ट-आराधना का प्रामाणिक प्रतिपादन है -

(क) जग लखमी सेवत जु वह, सेवत हरि कैं पाय ।
सो हरिराधा पगनि नित - जावक देत बनाय ॥
सेवा अंग सिंगार मैं, परम चतुर घनस्यांम ।
गौरी की बैंनी गुहत, पुरवै मन कैं काम ॥ (ब्रजसार)

(ख) प्यारी मुख स्वेदहिं सुखावैं पिय फूंक दै दै त्यौं त्यों उत भीजिजात सुख मांहि सखियाँ ॥
रास कै श्रमित आवे कुंज कैं निवास दोऊ ललिता बिछावै आगै पंकज की पखियाँ । (रास के कवित्त)

(ग) ए री राधे तैं रिझए नंद नंद ।
हौं सुनि आई उनके हियकी बतियाँ मधुर सुछंद ॥
याही रूप पगि रहै आली मदन मौंहन रसकंद।
नागरिया तेरौ मुख देखैं फीकौ लखे हैं चंद ॥ (पदमुक्ता ३०९)

(घ) रमा पलोटत चरन चित नित, जाके सहज सुभाय ।
सो वृषभांनु कुँवारि कैं, देत महावर पाय ॥

(ङ) बीन बीन फूल लाल जावक बनाय राख्यौ, ऐहैं प्यारी राधा रंग पायनि लगै हौं ॥
\+ \+ \+ \+ \+ \+
आय मिली बाल अंकमाल भरि बैठे लाल, पौंछत चरन आछैं पीतांबर छौर सौं ॥
(महावर - पदमुक्ता. पृ. ४०८)

(११) नागरीदासजी कृत उत्सव माला ग्रंथ में परम पूज्यश्रीमहाप्रभु बल्लभाचार्य जी तथा गो. विट्ठलनाथ जी के पदों

को जोड़कर उसे बल्लभ-साम्प्रदायिक रंग दिया गया प्रतीत होता है, क्योंकि उसी ग्रंथ में श्रीराधाजी का इष्ट-आराधन उनके निम्बार्क साम्प्रदायिक वर्चस्व को अत्यंत प्रकाशमान कर रहा है; अब तक के शोधकों ने जिसकी अनदेखी कर महाकवि नागरीदास द्वारा स्वयं प्रतिपादित उनके निम्बार्कीय व्यक्तित्व की पक्षपातपूर्ण अवहेलना की है। उत्सवमाला वर्णित वृषभानुजी की वंशावली के रेखांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

मोहन मोहनि पद कँवल, धर उर करनि प्रसंस।
बरनौं श्री वृषभान कौं, जगत प्रचुर बरबंस ॥ १॥
ताकैं कन्या पुत्र भए, जग प्रसिद्ध है नाम।
बरणौं अब श्रीराधिका तिनसौं मेरे काम ॥
प्राची कीरति कुक्षि तैं कन्या भई अनूप।
भान सिंधु आनंददा चंद्र मंजरी रूप ॥२६॥
हो वृंदावन ईश्वरी, गुन पूरक सुखरास ।
विधनां सौं मांगत रहैं जाचक नागरीदास ॥२९॥

ब्रजरसोपासना की चरम परिणति वृंदावनस्थ-निकुंज-केलि बिहार में है। रसोपासना तत्व के प्रति इसी रहस्यात्मक पुष्टि के लिए नागरीदास जी ने ब्रज रसोपासनात्मक ग्रंथों का उपसंहार निकुंज-विहार वर्णन से किया है, ब्रजसार, उत्सवमाला, पदमुक्तावली आदि कई ग्रंथों में समानरूप से उभयात्मक रसों का धाराप्रवाह निरूपण किया गया है। 'ब्रजसार' ग्रंथ के अन्त में निकुंज बिहार का विस्तृत-प्रकरण भी दिया गया है जिसमें दम्पति के निकुंज विलास की सरस अभिव्यंजनायें हुई हैं; कुंज-रंध्रों से निहारती हुई सखियों के तत्सुख सुखित्व भाव का प्रतिपादन भी हुआ है -

लहकि लहकि जात लगि कैं पवन लता, महकि महकि उठैं मालती सुवास है ।
गहकि गहकि गावै कोकिला तरून चढ़ी, कुंज छबि पुंज काम सेवत निवास है ॥
नागरिया स्यामास्याम सोहैं सुख सैंनी पर, देखैं रंध्रनि न कोऊ सखी पास है।
दोऊ मन हरै दोऊ रीझि रीझि अंक भरै, अंगनि अनंग बढ्यौ रंग में विलास है ॥ ४५॥

निम्बार्क सम्प्रदाय में ब्रजरस बिहार और निकुंज रसबिहार दोनों ही मान्य हैं। इसीलिए यहाँ भागवतोक्त गोपीभाव की संप्रदाय के विशिष्ट निकुंजोपासना - विहित सखी-सहचरी- भाव के साथ ही सहज संलग्न स्वीकृति है क्योंकि दोनों प्रकार के भावों की रसोपासनायें अनादि वैदिक श्रुतिप्रतिपादित सनातन भक्ति परम्पराएँ हैं। दोनों ही परम्पराएँ आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य से अद्यावधि व्यवहृत रही हैं। वाणी ग्रंथों में इनका निर्वाह निर्बाध रूप से प्रचलित है। ब्रजरसोपासना सामान्य रूप से सभी उपासकों के लिये मान्य है तथापि आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित तथा रसिकवर्य्य श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी कृत महावाणी जी द्वारा निरूपित विशिष्ट निकुंज-तत्व की निम्बार्कीय रसोपासना परमगुह्य अंतरंग भाव की अत्यंत मधुर महनीय मानसी रसोपासना होने से परमरसिक ही उसके अधिकारी होते हैं। श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी-युगलशतक, श्रीपरशुराम देवाचार्य कृत परशुराम पदावली, श्रीवृंदावन देवाचार्य कृत वृंदावन वाणी गीतामृत गंगा तथा गोविन्द शरणदेवाचार्य कृत गोविन्द वाणी आदि निम्बार्क परम्परा के नागरीदासजी से पूर्ववर्ती तथा समकालिक इन प्रामाणिक ग्रंथों में ब्रजरस और निकुंज रस दोनों का विधिवत् रूप से सरस काव्यात्मक रसपरिपाक हुआ है जिसमें यही उपासनात्मक समन्वय व्यवहृत है। ब्रजरस केन्द्रित गोपीबिहार, गोपियों की करुण विरहासक्ति, उद्धव गोपीसंवाद श्रीपरशुरामदेवाचार्यकृत वाणी एवं पदों में प्रचुर रूप से वर्णित हैं; परशुरामदेवकृत सूर पूर्व भ्रमरगीत हिन्दी भक्ति साहित्य की सर्वप्रथम रचना है। इसी प्रकार ब्रजबिहार के कई प्रसंग यहाँ तक कि बाल लीलावर्णन के प्रसंग भी गीतामृतगंगा में वर्णित हुए हैं। इस प्रकार ब्रजबिहार रस निम्बार्क संप्रदाय में परम्परा से वर्णित होने से मान्य विषय है ।

नागरीदास जी ने भी निम्बार्क सम्प्रदाय को इसी परम्परा का अनुसरण करते हुये अपने भक्ति ग्रंथों में ब्रजरसोपासनात्मक नित्यबिहार तथा निकुंज रसोपासनात्मक निकुंज-बिहार दोनों का समानरूप से तथा कहीं कहीं समन्वयात्मक रूप से घुलामिलाकर महनीय वर्णन किया है, इस प्रकार से नागरीदास जी की उभय-रसात्मक निम्बार्क-सम्प्रदाय-विहित उपासना के प्रति शोधकों को निरन्तर भ्रम रहा है। वस्तुत: नागरीदास जी के कई ग्रंथ ऐसे हैं जिसमें पूर्वोक्त ब्रजरस-निकुंज रस की उभयात्मक काव्यधारा गंगा यमुनीय धारावत् समानान्तर गति से बहती हुई चली है पर अन्तत: निकुंज रस में ही जिसका संगम-समागम हुआ है। हमारी यह दृढ़ धारणा 'सांझी के कवित्त' के फूल बीननि संवाद अनुक्रम प्रसंग से सहज ही प्रतिपादित है। इस ग्रंथ में प्रारंभ से सखियों सहित परमाह्लादिनी श्रीराधा जी का अभिसार वर्णित हुआ है जो ब्रजरस केन्द्रित नित्यबिहार की युगल लीला है। यद्यपि निम्बार्क सम्प्रदाय के निकुंज रस में परकीयात्व मान्य नहीं है और न ही वहाँ मान-विरह-अभिसार प्रसंग विहित है तथापि यहाँ इस प्रसंग में कवि ने परकीयात्व भाव की रीतिकाव्यात्मक श्रृंगारिक परिपाटी का निर्वाह किया

है। यहां सांझी के क्रम में अभिसारिका श्रीराधाजी हैं जिनका मानस तनिक मानग्रस्त है तथा ब्रजकिशोर नंदलाल फूल वाटिका के रखवारे हैं जो श्रीराधाजी के कृपाकांक्षी हैं। यहाँ युगल के परस्पर संयोग तक नागरीदास जी द्वारा ब्रजबिहार वर्णित हुआ है -

फूलनि कौं गई उत सखी मिली जहाँ तहाँ, इतकौं रंगीलै कछु औरैं ढार मैं ढरैं ।
रसिक रसाल बाल दयौ चाहैं उरमाल, जब नंदलाल हंसि आगैं हाथ लै करैं ॥
उरझी चितौंन कम्प स्वेद सुरभंग भये, नागरिया नागर अनंग रंग सौं भरैं ।
राधे जू दयो है हार मोतिन कौ मोहन कूं, मोहन जू हार होय राधे कैं गरै परैं ॥८॥

आगे के तीन चार कवित्त में अन्ततः नित्यबिहार की इस युगललीला का निकुंज-रस विहार में समापन करते हुये रसिकवर्य्य नागरीदास जी ने विशिष्ट रूप से अभिलषित अपनी निम्बार्कीय मंत्र-उपदिष्ट सखी-उपासना का प्रामाणिक प्रतिपादन कर दिया है। यहाँ 'दूर ही हटक राखी + + + + छकनि छकाय दी' - से सहचरी-भावपरक निकुंज-रसोपासना स्वतः ही सिद्ध है -

राधामनमोहन अगाधा रूप रंग भरे, भुज भरि झेलि कामकेलि सरसाय दी ।
खगशुक सारिकादि जकि थकि करि डारे, नूपुर औ किंकिनी की झनक सुनाय दी ॥
दूर ही हटक राखी कुंज द्वार अलि सैंनी, स्वेद अंग मिली लैं सुवास पहुँचाय दी ।
हुती ललितादिक जे लतान ओट नागरि तें, देखन सकत प्रेम छकनि छकाय दी ॥९॥

अंतिम कवित्त में 'वृन्दावन बिहार चारू दम्पति कैं' कहकर रसिक-भक्त कवि ने रीति-काव्यात्मक परकीयात्व-मान-अभिसार का निराकरण करते हुये इसे दम्पति श्री राधारमण के निकुंज रसबिहार से परिपुष्ट कर दिया है। इस प्रकार ब्रज रसलीला विषयक ग्रंथों में भी उभयात्मक रसोपासना का निर्वाह करते हुये अन्ततः नागरीदास जी ने अपनी सखी भावपरक निम्बार्कीय इष्ट-उपासना की प्रमुखता का स्पष्ट प्रतिपादन किया है। अतः नागरीदास जी की इष्ट-उपासना निम्बार्कीय है, यह तथ्य ऐसे कई उभयात्मक रसलीलाओं के प्रसंगों से स्वतः प्रामाणिक है :-

वृंदावन आनंद बिहार चारु दम्पति कैं, ताकी दिन रात बात सो सुनि जिया करो ।
ललित हिंडोरा सांझी रासरंग दीपमाला, फूलनि की कुंज की रचि रचना किया करो ॥
नित्य ही बसन्त इहा होरी चित चोरी चाव, नागरिया केलि ये सकेलि कैं लिया करो ।
दिया करो येई अरु येई सुख लिया करो, येई दिन रैंन रस रसिक पिया करो ॥ ११॥

नागरीदास जी द्वारा विरचित ब्रजरसोपासनात्मक ग्रंथों में कहीं भी अपने इष्ट स्वरूप के प्रति अन्य स्वीकारोक्ति नहीं की गई है। ऐसी स्थिति में कतिपय विद्वानों की यह मान्यता निराधार है कि नागरीदास जी बल्लभ-सम्प्रदायी रसिकभक्त थे, यदि ऐसा होता तो बल्लभाचार्य जी द्वारा प्रवर्तित बाल कृष्ण की उपासना का नागरीदासकृत ग्रंथावली में प्राचुर्य होता। वन-विनोद, बालविनोद, गोविन्द परचई, गोधन आगम, दोहनानंद-अष्टक, फाग-गोकुलाष्टक आदि इन अल्पकायिक ग्रंथों में वर्णित अत्यल्प-बल्लभसांप्रदायिक विषयविवेचन के आधार पर, अत्यंत विस्तृत एवं प्रमुख रूप से वर्णित निम्बार्क संप्रदाय विहित ब्रजबिहार-निकुंजबिहार की उपेक्षा करते हुये नागरीदास जी को बल्लभकुली माना जाना तर्क संगत नहीं है। गोरसदान, खरिक-दुहावन, ग्वाल बाल विनोद, छाक आदि की लीला नागरीदासजी के गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य कृत गीतामृत गंगा में होने से निम्बार्क सम्प्रदाय विहित है। 'उत्सवमाला' ग्रंथ के महाप्रभु बल्लभाचार्य जी तथा गुसाई विट्ठलनाथ जी के जन्मोत्सव-विषयक - तथाकथित प्रक्षिप्तांशों के आधार पर नागरीदास जी को बल्लभ संप्रदायी बताया जाता है जबकि तथ्य यह है इस ग्रंथ में भी परम पूज्य बालकृष्ण स्वरूप श्रीनाथ जी श्री कल्याणराय जी अथवा ठाकुर नृत्यगोपाल जी जो कि कृष्णगढ़ दुर्ग के बल्लभी मंदिर में विराजते हैं तथा गो. गोपीनाथ जी दीक्षित द्वारा प्रदत्त 'नगधर जी' कहे जाते हैं, उनका यहाँ भी नामोल्लेख तक नहीं है - यदि वे नागरीदास जी के इष्ट-आराध्य होते तो किसी ग्रंथ में कहीं तो उनका उल्लेख होता; जबकि तथ्य यह है कि इसी उत्सवमाला में व्यापक रूप से निम्बार्क संप्रदाय की विशिष्ट निकुंजोपासनात्मक दंपति विलास की लीलाओं का व्यापक वर्णन हुआ है जो नागरीदास जी की इष्ट-आराधना का प्रामाणिक प्रतिपादन है ।

दानलीला, चीरहरण लीला, गोवर्धन धारण, भागवतोक्त वेणुगीत, गोपी विलास, रास, भ्रमरगीत, गोपी विरह आदि तथा श्री राधा विषयक मान -अभिसार-श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधाजी का नखसिख श्रृंगार आदि ऐसे कई प्रसंग हैं जो सामान्यतः निम्बार्क-सांप्रदायिक सभी वाणी ग्रंथों में व्यापक विस्तृति से वर्णित होने से निम्बार्क परम्परा विहित हैं; ऐसी स्थिति में इन प्रासांगिक लीला विषयक वर्णनों का आधार भी नागरीदास जी को निम्बार्क संप्रदायानुगत रसिकभक्त कवि ही सिद्ध करता है।

पूर्वोक्त ब्रजरस तथा निकुंज रस के उभयात्मक युगलबिहार के लीलाविधान समान रूप से नागरीदास जी द्वारा वर्णित हैं। दोनों रसोपासनाओं में ऋतु-पर्व-उत्सवों का समान-रूप से वर्णन है। बसन्त, फाग, होरी, हिंडोरा, दीपोत्सव, शरद विषयक युगल लीलाएं तथा बसन्तोत्सव, अक्षय तृतीया, पवित्रा, रथोत्सव, ठाकुर ठकुरानी जी के जन्मोत्सव, सावनी-

तीज आदि के मधुर रसोपासनात्मक पर्व-त्यौंहार तथा ग्रीष्मविहार, वर्षा बिहार, शरद बिहार, रास आदि की युगल लीलाएँ, नखशिख श्रृँगार, स्नानकेलि, दर्पण लीला, भोजनानंद, वेणीगुंथन, मुखशोधन एवं महावर-चौसर आदि के परम्परागत प्रसंग समान रूप से उभयनिष्ट हैं। अतः नागरीदास जी कृत विविध ग्रंथों में वर्णित इन सभी प्रसंगों में पूर्वोक्त उभय-रसोपासनात्मकता परिपुष्ट हुई हैं तथा ऐसे कई ग्रंथों के समापन में अन्ततः नागरीदास जी ने अपनी अभीष्ट निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना की प्रतिपादनात्मक अभिव्यक्ति कर दी है। उभय-रसात्मक-रसोपासना के आधार पर नागरीदास कृत प्रमुख ग्रंथों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है -

ब्रजरसात्मक ग्रंथावली :- पद प्रबोधमाला, ब्रजलीला, फूल विलास, ब्रजसार, गोपी प्रेम प्रकाश, गोपी नैंन विलास, गोवर्धन-धारण के कवित्त, बसन्तवर्णन के कवित्त, होरी के कवित्त, फाग खेल समैं अनुक्रम, छूटक दोहा, मजलस मंडन, रास अनुक्रम दोहा, लगनाष्टक, तीर्थानंद, ब्रज बैकुंठ तुला, अरिल्लाष्टक, अरिल्ल पच्चीसी आदि ।

निकुंजरसात्मक ग्रंथावली :- मनोरथ मंजरी, वनजन प्रशंसा, प्रातः रस मंजरी, रसिक रत्नावली, भोजनानंद अष्टक, जुगलरसमाधुरी, रैंनि रूपारस, वर्षाऋतु की मांझै, सरद की सांझ, बिहार चंद्रिका, भोरलीला, फागबिहार, निकुंज विलास आदि।

उभय-रसात्मक ग्रंथावली :- छूटक पद, उत्सवमाला, पदमुक्तावली, फागविलास, ग्रीष्मबिहार, पावस पच्चीसी, रास रसलता, रास से कवित्त, श्री ठकुरानी जी के जन्मोत्सव के कवित्त, श्री ठाकुर जी के जन्मोत्सव के कवित्त, सुजनानंद।

अन्य ग्रंथावली :- गोधन आगम, दोहनानंद अष्टक, फाग गोकुलाष्टक, युगल भक्त विनोद, वन विनोद, गोविन्द परचई आदि इन ग्रंथों को कतिपय विद्वान वल्लभ-संप्रदाय से प्रभावित मानते हैं जबकि फाग गोकुलाष्टक तथा गोविन्द परिचई को छोड़कर अन्य ग्रंथों में वर्णित लीलाएँ निम्बार्काचार्य श्रीवृंदावनदेव कृत गीतामृत गंगा में भी है।

ब्रजरसलीलांतर्गत नंदग्राम और बरसाने की होरी का मार्मिक प्रसंग वैष्णव जगत में अद्यावधि अत्यंत प्रसिद्ध है। नंदलाल सहित नंदग्राम के गोप और बरसाने की गोपियाँ मिलकर होरी खेलते हैं जिसमें गोपियाँ गोपों को परास्त कर देती हैं। अबीर - गुलाल - डफ - धमार-गीतगार के विधान से यह सरस फागोत्सव चित्ताकर्षक वन जाता है। नागरीदास जी ने इस फागोत्सव के माध्यम से ब्रजरस का सरस प्रतिपादन किया है। 'लष्ठमारक होरी' के नाम से अद्यावधि यही फागोत्सव प्रचलित है :-

जब भए लोग एकत्र आय । मिलि चले दुंदुभी डफ बजाय ॥
सब लिए खेल की सौंज संग । जे ब्रजबासी रंगि रहे रंग ॥
लटपटी सीस पगिया सुहाति । कर लिए मोरछल नचत जाति ॥
तन पीरे पट फैंटनि अबीर । है रही रंगीली डगर भीर ॥
उत नंदग्राम नर नारि ठाट । इनकी सब जोवत खरे बाट ॥
इनकी जब आवत देखि भीर । वे आए सौंहै चलि सधीर ॥
जहं सुभग भूमि जसुदा सु कुंड । द्वै जुरै सनमुख दोउ झुंड ॥
किलकारिकारि मिलै दौरि दौरि । उड़ि उड़ि गुलाल मचि परी रौरि ॥
सिर लाए घट भरि भरि सुरंग । सबझोर बोर गये अंग अंग ॥
नहिं आप आप पहिचाने जात । गिर उठत एक लपटात जात ॥
वे लष्ठ पुष्ट गन गोप पीन । ए फाग केलि मैं सब प्रवीन ॥
कछु कहि न परत बढि परयौ सु खेलि । बहि चली धरनि पर रंग रेलि ॥
बन लालभयो फागुन बिहार । छुटि चले सबै मिलि नन्द द्वार ॥
बिच गांव अटारिनी चढिय बाल । भरि रंग कलस ढारत गुलाल ॥
दरगत नीर भरगत भीर । गावत गारी दै ओट चीर ॥
उड़ि उड़ि गुलाल मनु भइय सांझ । है रह्यौ कुलाहल गलिनि मांझ ॥
रस फाग महा सुख सिंधु झेलि । यों मंदर पहुँचे खेलि खेलि ॥
श्री नन्द जसोदा कुँवर देखि । लागी न तनक नैनन निमेपि ॥
करि उतते उन मनुहार चार । औसर विचार गाई धमार ॥
वे जथा समै गावत धमारि । बाजत मृदंग डफ झांझ तारि ॥
रस मगन कही कछु सुनत कौंन । अति गाजि रह्यौ सब नंद भौंन ॥
इक समधानौं अरु फाग मास । अति होत परसपर बचन हास ॥
केउ छिरकत केसर नीर आय । केउ मुख रोरी लपटात जात ॥
उड़त अबीर झोरनि गुलाल । बिच मंदिर मच्यौ सु ख्याल ॥
तहाँ बहु ब्रज बासनि आय आय । वृषभानुहिं गारी देत गाय ॥
है रह्यौ कुतूहल नंदधाम । मुसिक्यात खरे बलराम स्याम ॥

उत ठाढे बरसानियाँ, समधि लोग निहारि ।
धाई एकहि बेर जुरि, नंद गांव की नारि ॥
ब्रज तैं सोभा फाग की, ब्रज की शोभा फाग ।
फाग बिना कहा लाग है, लाग बिना कहा फाग ॥ (तीरथानंद)

'ब्रजवैंकुण्ठतुला' नामक ग्रंथ के फागविहार वर्णन में भी ब्रजरस का मधुर प्रतिपादन हुआ है। स्याम अरु गोरी पर, एक ब्रजहोरी पर कोटिक बैकुंठनि के सुखही वहाय दयूं'' की भावना से युगल की फागलीला अवलोकनीय है :-

खेलत विहारी प्यारी जबै कुंज कुंजनि में, बूडै मन आनंद में हेरैं न हिरत हैं ।
नागर गुलाल धूमि धूंधरी गगन चढै, छूटै पिचकारी धारधार सौं भिरत है ।
नूपुर निंनाद सौं रहत पूरी वृंदावन, धावत भरत गन भूषन गिरत हैं।
लागै मुख रोरी उरमाल तोरी, बोरी रंग होरी मांझ गोरी झकझोरी सी फिरत है ॥ ४९॥

ब्रजविहार में भागवतोक्त 'वेणुगीत' का अत्यंत महत्व है। 'वेणु' रसौ वै स: द्वारा प्रतिपादित रसरूप परब्रह्म सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण का अलौकिक नाद है जिससे वे अपने भक्तों को रास लीलास्वादन के लिये उनके शरण में आने की प्रेरणा देते हैं। वेणु रसरूप श्रीकृष्ण से ही उद्‌भूत परमाह्लादिनी शक्ति है जिसकी योगमाया से वे स्वयं मोहित हैं। भागवत की गोपियाँ इसीलिए वेणु से ईर्ष्या करती हैं क्योंकि वह श्रीकृष्ण को परकीया की भांति अपने वश में किए हुये उनके अधरामृत का पान करती है। भागवत में गोपियों की वेणु के प्रति सौत भावना प्रकट हुई है (१०/२१/९) श्रीकृष्ण की ब्रजलीला में वेणुनाद ब्रह्मनाद का प्रतीक है। वेदों में भगवान् के नाम और रूप के अनुसार दो स्वरूप वतलाये हैं। वेणु उनके नामात्मक स्वरूप को प्रकट करता है। व + इ + अणु अर्थात् क्रमश: ब्रह्मसुख, कामसुख जिसके सम्मुख अणु (तुच्छ) हो वही वेणुनाद है। वेणु के छ: छिद्र में भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य के प्रतीक हैं तथा सर्वोपरि सातवां छिद्र इन गुणों से युक्त षाड्गुण्य अप्राकृत देहधारी भगवान के स्वरूप का बोध कराता है। वेणुनाद ब्रह्मनाद है जो अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त है; परब्रह्म जीवों को इसी स्वर में आह्वान कर समागम की प्रेरणा देते हैं।

भागवतोक्त वेणुगीत सभी वैष्णव संप्रदायों में मान्य है। यह वेणुनाद जड़ चेतनादि समस्त भूतों को प्रभावित करता है। वंशी का मधुर स्वर सुनकर मयूर नृत्य करने लगते हैं, पर्वतवासी पशुपक्षी शांतचित्त हो जाते हैं तथा कृष्णसार मृगियां मंत्रमुग्ध हो मुरलीमनोहर नंदनंदनश्याम के समीप आ जाती हैं, स्वर्ग लोक की देवियाँ हर्षातिरेक से वेसुध हैं उनके वेणीपुष्प-अधोवस्त्र खुलकर पृथ्वी पर आ जाते हैं। गायों के स्तनों से दुग्ध धारा बहने लगती है। गोवत्स थनधार का दुग्ध निगल नहीं पाते। यमुना कच्छार-कुंज-लताएँ सभी प्रभावित हैं, यमुन जलधारा रुक जाती है, चंद्रमा ठिठक जाते हैं। गोपियाँ मधुर वेणुस्वर सुनकर गृहकार्य त्याग श्रीकृष्णशरण में आ जाती है। ऐसा भागवतोक्त वेणुगीत ब्रजबिहार का प्रमुख आधार है। निम्बार्क संप्रदाय में परम्परावत् इस आध्यात्मिक वेणुगीत का प्रतिपादन हुआ है -

श्रवननि सुनि जागी अरी या मुरली की घोर ।
कहा री करों मन हर्यौ सांवरे ललित बजाई भोर ॥
रह्यौ न परे चटपटी लागी नित देखे नंदकिसोर ।
जै श्रीभट्ट हठ न रह्यौ नागरी को सुरति धरी हरि ओर ॥

ब्रजबिहार रस के प्रतिपादन में ''मुरलि वारो ब्रज कौ ठाकुर भावै' (छूटक पद १४७) कहकर वेणुगीत तथा वेणुवादक मुरलीधर श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट करने वाले नागरीदास जी का 'बैन गान बर्ननं' द्रष्टव्य है :-

दो. मुरली अधरनि धरत हीं, छबि लखि लज्जित मैंन ।
चर थिर थिर चर होत सुनि, कमल नैन की बैंन ॥२७॥

ललित कदंब तरैं, मुरली अधर धरैं, ठाढ़े है तृभंग छबि छाजै बनमाल की ।
धैनु न चरत तृण, बछरा न पीवैं छीर, मृगनि कैं नीर दृग भीर तिहिं काल की ॥
उड़त पखेरु नभ बीच ठहराय रहै, नागर बिबस गति जुवतिनि जाल की ।
जमुना गवन थकि थकि कैं पवन रहैं, बाजैं जब वृंदावन बंसी नंदलाल की ॥ २८॥

(ब्रज बैकुंठ तुला)

भगवान् श्रीकृष्ण की गोवर्धनधारण लीला का प्रसंग सभी वैष्णव संप्रदायों में मान्य है। दीपोत्सव के दूसरे ही दिन वैष्णवजन घर-घर में गोवर्धन जी का पूजा-उत्सव मनाते हैं जिससे यह वैष्णव-संस्कृति का आचरित संस्कार हो गया है। अन्य संप्रदायों की भांति निम्बार्क संप्रदाय के वाणी ग्रंथों में भी इस ब्रज लीला का महनीय वर्णन हुआ है। श्री परशुरामदेवाचार्य कृत परशुरामसागर

की पदावली में इसका भावपूर्ण वर्णन हुआ है। श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत गीतामृत गंगा के ब्रज बिहार में भी गोवर्धन लीला का सरस वर्णन हुआ है। नागरीदास जी ने गोवर्धनलीला के प्रसंग को अंतरंग भूता आद्याशक्ति श्री राधाजी की उपस्थिति से जोड़कर इसे और भी सरस बना दिया है। गोवर्धनधारी ब्रजविहारी श्रीकृष्ण का स्वरूप दर्शनीय है –

सजनी निरखि नंदकुमार ।
धरै गिर कर बढी छबिं, लखि मदन बहो बलिहार ॥
ललित अंग तृभंग, कटितट, कनक किंकिनि जाल ।
बंक भुव दृग अलक परसत, चरन परसत माल ॥
उदित बिच बृजचंद पूरन, तिमिर मेट्यौ घोर ।
तहां गोपी गन तरइयाँ, भानकुँवरि चकोर ॥
उहां बाहिर इंद्र बरसत, प्रबल घन लियें संग ।
दास नागर गोवर्द्धन तर, इहां बरसत रंग ॥ (उत्सव माला – ६/१००)

रीति सिद्ध कवि नागरीदास जी ने 'गोवर्धनधारण के कवित्त' में इस प्रसंग को युगल के परस्पर प्रीति रस से ओतप्रोत कर दिया है। जिससे इस प्रसंग में रसराज श्रृंगार का सरस परिपाक हो गया है :-

(1) जांनै री बलैया कित बरखैं प्रबल पांनी, कित परैं ओला कित मेघमाला अनीकी ।
पायो प्रानप्रीतम निहारैं छबि गिर धरैं, चंदहिं चकोरी जिम् नेह चितवनी की ॥
नीरी मुख बीरी देत, लेत रूप नैंन सुधा, पगि रहै बातनि परम हित सनी की ।
नागर दिन सात रैंन चैंन मैं न जानी जात, घनी घन बरषा मैं बनी बनां बनी की ॥

(2) गोवर्द्धन कर धरैं बीच ठाढे नंदलाल, चहूं ओर बाल सुख समैं सरसत है।
राधे जू चित्तौन मैं भरत अंक मोहन कौं, मोहन चित्तौन अंग अंग परसत है ॥
दूर ही तैं दुहूँन के स्वेद रोम कंप होत, नागर निहारि नेहदसा दरसत है।
उत इंद्र कोपि कोपि बरसत मेह आनि, इत गिरधारी प्यारी रंग बरसत हैं ।
(गोवर्धनधारण के कवित्त)

ब्रजरस, ब्रजबैकुँठतुला, ब्रजलीला आदि ग्रंथों में ब्रजरस तथा ब्रजभूमि महिमा, वैंणु गान, माखन चोरी, गोचारण, बन भोजन, गोधनसंग ब्रजागमन, दधिदान, ब्रजजन प्रीति, नन्द जसोमति गोपी गोप प्रीति आदि का सरस वर्णन हुआ है। 'ब्रजसार' ब्रजरस प्रधान रचना है तथापि उसमें श्रीराधाजी के प्रति निम्बार्क साम्प्रदायिक परम्परानुसार सर्वोच्च भाव की सहज स्वीकृति है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण है। बेणी गूंथन, महावर, श्रृंगार के प्रसंग इसी का प्रतिपादन करते हैं :-

जल लखमी सेवत जु वह सेवत हरि के पाय ॥
सो हरि राधा पगनि नित, जावक देत बनाय ॥
सेवा अंग सिंगार मैं परम चतुर घनस्यांम ।
गौरी की बैंनी गुहत पुरवै मन कै काम ॥

वेदों में परब्रह्म को रसो वै स: कहा है। रसिकेश्वर रसरूप भगवान् श्रीकृष्ण में ही सब रसों की अभिव्यक्ति इसीलिए प्रतिपाद्य है। रसोवैस: सच्चिदानंद श्रीकृष्ण के संसर्ग से उनकी लीलाओं में जो रससमूह प्रकट हो – वही रास है। रसानां समूहो रास: कहकर श्रीधर स्वामी ने यही भाव रास लीला के प्रति व्यक्त किया है। बल्लभाचार्य जी ने सुबोधिनी टीका में रास का मूल रस की अभिव्यक्ति बताया है। रस प्रादुर्भाव हेतु नृत्य का समावेश होता है। रास क्रीड़ा में मानसिक रस की अभिव्यक्ति होती है, उस मानसिक रस का उद्गम देह द्वारा प्राप्त अनुभव से नहीं होता – रसस्याभिव्यक्तिर्यस्मादिति रस प्रादुर्भावार्थ भेद नृत्यम् रास क्रीड़ायां मनसो रसोद्गमो न तु देहस्यं '' – इस प्रकार रसविग्रह श्रीकृष्ण की इस दिव्यलीला की पूर्णता अंगसंग से उद्भूत लौकिक विषयानंद से नहीं होती ।अत: यह निष्काम लीला है। उन्होंने रास को 'बहुनर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रास:' कहकर विशिष्ट आध्यात्मिक नृत्य बताया जिसका आयोजन रसरूप श्रीकृष्ण की वेणुनाद प्रेरणा से शारदीय पूर्णिमा को यमुना पुलिन पर होता है। अनेक श्रृंगारिक चेष्टाओं के साथ अनन्य प्रेमिकाएँ गोपियाँ रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीड़ा करती हुई अन्तत: रसरूप श्रीकृष्ण में तल्लीन हो जाती है।

भागवत के दशम स्कंध के अध्याय उन्तीस से तैंतीस तक का 'रास – पंचाध्यायी' प्रसंग भागवत का प्राण तत्व माना जाता है। रसरूप भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया से रसमयी रासक्रीड़ा करने का ज्यों ही संकल्प किया शरद विभावरी पूर्णचंद्रिमा से अनुरंजित हो उठी, लतापुष्पादि से वन प्रफुल्लित हो गया। वेणुवादन द्वारा रस–उद्दीपन से प्रेमातुर गोपियाँ गृह कार्य त्याग कर श्रीकृष्ण से मिलने को दौड़ पड़ी। श्रीकृष्ण द्वारा पातिव्रत धर्म का उपदेश देने पर उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा

''हे श्रीकृष्ण आप सर्वांतर्यामी हैं। हम आपकी चरणसेविकाएँ हैं, आप निष्ठुरता त्यागकर जिसप्रकार भगवान् नारायण मुमुक्षुओं से प्रेम करते हैं - वैसे ही हमें अपना लो।'' (१०/२९/३१) पतिरूप में भजने वाली इन गोपियों की दृढ़ता देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें आनंदित करने हेतु रासलीला का विधान करते हैं। इस रासलीला में भागवतकार ने श्रृँगारिक चेष्टाओं तथा कामपरक क्रीड़ाओं का यहां सांगोपांग वर्णन किया है। श्रीकृष्ण मधुर चितवन, मुस्कान, आलिंगन, नीवीं-स्तन-स्पर्श, नख-क्षत आदि काम क्रीड़ाओं द्वारा गोपियों के दिव्यकामरस एवं उज्ज्वल प्रेमभाव को उद्दीप्त कर उन्हें आनंदित कर देते हैं। (१०/२९/४५-४६)

''रेमे रमेशो ब्रजसुंदरीभिर्यथार्भक: स्वप्रतिबिम्ब विभ्रम:'' अर्थात् जैसे नन्हा सा शिशु दर्पण अथवा जल में पड़े हुये अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है वैसे ही रमेश भगवान् ने ब्रजसुंदरियों में रमण किया है। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसिकेश्वर रसपरब्रह्म अखिल रसामृत सिंधु सच्चिदानंद भगवान श्रीकृष्ण की इस चिदानंद मयी दिव्य क्रीड़ा का नाम रास है जिसमें ब्रजरस बिहार की चरम परिणति मानी गई है पर रासलीला के आधारभूत गोपीभाव में ईश्वर परक काम की वांछा होने से मधुरभक्ति के आचार्यों ने सखी-भावपरक निकुंज-रस की महनीयता का प्रतिपादन किया है।

नागरीदास जी ने भागवतोक्त रास प्रसंगानुसार रास रसलता, रास अनुक्रम दोहा तथा रासकवित्त तथा उत्सव माला में ब्रजरसबिहारी के रास प्रसंगों का वर्णन किया है। उत्सवमाला' में शरद-रासोत्सव तथा निकुंज रासोत्सव नामक उभय-रसात्मक रासवर्णन अत्यन्त सरस और अनूठे हैं :-

(१) वृंदावन सरद रैन राका अभिराम, रची हैं रुचिर रसिक केलि राधा संग भाम ।
बैंन बीन बलय मिले किंकिनी मृदंग, नूपुरादि गान घोष छायौ है सुधंग ॥
अंस अंस बाहु बंध्यो मंडला अखंड, गोपिन बिच बिच गोपाल धरै सिखि सिखंड ।
निर्त होत अंचल चल लसत पहुप रैंन, ज्यों धुजा समूह फरहरात मैंन सैंन ॥
मनहुँ पवन प्रेरक मिलि गउर स्याम संग, मेघ चक्र चंचला बिलास रास रंग ।
बास बस अधीर संग संग भौंर भीर, झुलत हार खुलतबार नहिं सम्हार चीर ॥
गिरत कुसुम कबरिनि तैं बिबस रसावेस, लटपटाय लगत कंठ पुलकतन सुदेस ।
नीबी कुच परस पान चुंबन उगार, हावभाव लहर बढ्यौ सिंधु रस अपार ॥
मुरछ परेउ मदन बजी दुंदुभी अकास, पहुप वृष्टि होन लगी जहँ विलास रास ।
विथकित लखि रही रैंन होत हैं न भोर, नागर नट निरखि भयो चंद्रमा चकोर ॥ ७३ ॥

(२) थेई तथेई थेई थेई थेई थेई थेई ।
उघटत रास रसिक मनमोहन, रंग भरी निर्तत है प्यारी ।
मुरज मृदंग टकोर मिलावत, गावत सखी सुघर दैं तारी ॥
ललित अंग भुव भंग चितै, प्रिय बिवस भए बोलत बलिहारी ।
जगमग रही रास मंडल मैं, नागरिया मुख चंद उज्यारी ॥७४॥

(३) देखि श्यामा जू श्रमित भई रास मैं ।
बहु निर्त भेद खेद सरके सिंगार हार सिथिल कुसुम केस पास मैं ॥
रसिक रवन निज कर तैं पवन करैं हरैं हरैं ल्याए निवास मैं ।
नागरिया सोए कुंज कँवलनि सैंनी पर, बैंनी बिथु रैंनी है विलास मैं ॥ ७८ ॥

इसी प्रकार 'दीपोत्सव' के भी चित्रात्मक-कलात्मक सुंदर वर्णन 'उत्सवमाला' के उभय -रसात्मक बिहार में देखते ही बनते हैं, निम्नोक्त दीपोत्सव का निहालचंद्र कृत भाव चित्र नागरीदास कालीन किशनगढ़ चित्रकला का अद्भुत उदाहरण है :-

जहां तहां दीपन की दीपत दिपत दूनी, ज्यों जरी संजीवनि के पौधा लै लगायै हैं ।
कैंधौं देखि दंपति की संपति बिहार चार, इन्द्र पारिजात के पहुप बरसायै हैं ॥
कैंधौं पुरवरागिनि के नागर परे हैं ओला, कैंधो अंग अवनि सुनैंन सरसायै हैं ।
कैंधौं नभ मंडल ते वृंदावन चंद जू पैं, है कैं पांति पांतिनी नछत्र जुरि आयै हैं ॥ (उत्सवमाला १०९)

सावन भादों के हिंडोरों एवं झूलों की चित्ताकर्षक - नयनाभिराम कलात्मक झांकियों से सजे उभय रसात्मक उत्सवों में युगल बिहार की लीलाओं का सरस विधान होता है जिनके दर्शनों की उत्कट लालसा से ब्रजवृंदावन आदि तीर्थों के वैष्णव मंदिरों में रसिकजनों की भारी भीड़ उमड़ पड़ती है; नागरीदास जी ने अपने विविध ग्रंथों में इन हिंडोरौं - झूलों की मनोरम चित्रोपम-काव्यात्मक झांकियां सजाई हैं। युगल बिहार के ऐसे लीला-प्रसंग हावभावपूर्ण मधुर चेष्टाओं एवं श्रृंगारिक चित्रणों से समलंकृत

हैं तथापि ये उपासनात्मक पूज्यभावना से समन्वित हैं। उज्वल रस परिपूर्ण परस्पर तत्सुख भाव का दंपति विलास दर्शनीय है :-

(1) भीजहीं, भीजहीं, रीझि भीजहीं, झूलत लाल भींजहीं, नवल नेह रस अटकें ।
झोटा लैत हरैं हरैं, भुजमूल ग्रीव धरैं, हसि हसि बातैं करैं, नियरैं लूंबि लटकैं ॥
भीजत पट लपटे, प्रगट अंग अंग, लखि रहैं इकटक दृग नागर नटकैं ।
नागरीदास मेह बरसत, निसि भई, चपला चिराक ठई, तऊ न परत चित्त हटकैं ॥

(२) झूलत रसिक मोहनराय ।
संगभामिनी दामिनी घन बीच मनो दरसाय ॥
कटि लचकि मचकनि चलत अद्भुत लेत चित कैं चोरि ।
बढ़ि गई झूलनि झन झननन किंकिनी धुनी सोरि ॥
नील पीत दुकूल फहरत तुटी नव बनमाल ।
गयो अंचर छूटि उर, डर मिलत झुकि झुकि बाल ॥
छई चहुँ दिसि मेघमाला छयो राग मलार ।
दास नागरि तिहिं समैं सुख बढ्यौ विपुन बिहार ॥ (हिंडोरा - उत्सव माला)

इस प्रकार उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासनांतर्गत बसंत ग्रीष्म-वर्षा- शरद, सांझी-फूलमहल-बिहार, निकुंज-श्रृंगार दंपति-ब्याह-लीला के निकुंज बिहार के साथ ही चीर-हरण, दान, मान, मान-मनावन लाड लडावन के प्रसंग में श्रीराधाजी का नखशिख श्रृंगार अभिसार के अनेकानेक ब्रजरस लीलाविधान नागरीदास जी की रीतिसिद्ध निम्बार्कीय साधना के अनुपम उदाहरण हैं।

सम्प्रदाय - निर्णय :- नागरीदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे अथवा बल्लभ संप्रदाय में इस पर विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। नागरीदास जी को बल्लभ कुल में दीक्षित मानने वाले विद्वानों की विचारधारा नागरसमुच्चय के संपादक राज्याश्रित वृंदवंशज कवि जयलाल जी कृत उक्त ग्रंथ की भूमिका पर आधारित है। सर्वप्रथम बाबू श्री राधाकृष्णदास जी ने कवि जयलाल जी से अपने पत्राचार के आधार पर नागर-समुच्चय की भूमिका में नागरीदास जी को बल्लभकुल में दीक्षित माना है। (नागर समुच्चय श्री नागरीदास जी का जीवन चरित्र - बाबू राधाकृष्ण द्वारा लिखित पृ. ९) । कवि जयलाल जी ने नागरीदास जी के संप्रदाय विषय मं लिखा है - ''महाराज श्रीकृष्णसिंह जी के पौत्र रूपसिंह जी थे। श्री बल्लभाचार्य जी के पुत्र विठ्ठलनाथ जी जिनके पुत्र टीकैत श्री गिरधर जी थे। जिनके तृतीय पुत्र दीक्षित जी श्री गोपीनाथ जी थे जिनके शिष्य हुये थे उन्हीं के पास ब्रह्म सम्बन्ध भी लिया था और कल्याणरायजी का स्वरूप दीक्षित जी गोपीनाथ जी ने इनके मस्तक पर पधराया था। वह स्वरूप अद्यपि यहाँ विराजता है और इन्हीं (रूपसिंह जी) ने श्रीवल्लभाचार्य जी के उस चित्र को जो बादशाह अकबर ने बनवाया था वादशाह शाहजहाँ से मांगकर ले लिया था जो कि म. श्री रूपसिंह जी के गुरु गोस्वामी दीक्षित जी श्री गोपीनाथ जी थे जिनके प्रपौत्र श्री रणछोड़ जी नागरीदास जी के गुरु थे।'' (नागर समु. पृ. ११) नागरीदास जी के सेव्य ठाकुर जी के विषय में जयलाल जी लिखते हैं - ''नागरीदास जी स्वयं पूर्वोक्त श्रीकल्याणराय जी की सेवा में उपस्थित रहते थे और प्रदेश जाते तब श्रीनृत्य गोपाल जी का स्वरूप साथ में रखते थे। वृन्दावन में रहे तब भी श्रीनृत्यगोपाल जी की ही सेवा की।'' (वही) पं. राम चंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सांकेतिक रूप से नागरीदास जी का बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होना बतलाया है (हिन्दी साहित्य का इति. पृ. ३४७)। मिश्रबंधु विनोद में नागरीदास जी के संप्रदाय सम्बन्धी उल्लेख है कि'' ये महाराज बल्लभीय संप्रदाय के श्रीगोस्वामी रणछोरदास जी के शिष्य थे'' (पृ. ५८७) ब्रजमाधुरी सार में वियोगी हरि ने लिखा है कि ''प्रस्तुत पांचवें नागरीदास कृष्णगढ़ाधीश महाराज सांवतसिंह जी बल्लभकुल के शिष्य थे।'' (पृ. १८३) डॉ. फैय्याज अली खाँ ने अपने शोध प्रबंध भक्त प्रवर नागरीदास में लिखा है - '' नागरीदास परम पुष्टमार्गीय वैष्णव थे।'' (पृ. ११६ अप्रकाशित प्रति) पर इससे पूर्व उनके विचार भिन्न रूप से प्रकट हुये हैं। इसी शोध प्रबन्ध के पृष्ठ १०३ पर वे स्वीकारते हैं कि नागरीदास समन्वयवादी थे । उन्होंने यहाँ लिखा है - '' ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि नागरीदास का धार्मिक दृष्टिकोण विशाल और समन्वयात्मक था। वैसे भी निम्बार्क सम्प्रदाय और बल्लभकुल के सिद्धान्त निर्वाह का जहां तक प्रश्न है नागरीदास जी दोनों ही के मिलन बिन्दु हैं। अतिशय समन्वयवादी होने के कारण किसी प्रसंग में उनकी बल्लभ संप्रदाय विषयक प्रवृत्ति जागरूक है तो किसी दूसरे स्थान पर निम्बार्कीय मधुरोपासनावृत्ति। परम संभाव्य है कि प्रारंभ में उनकी बल्लभकुल में आस्था रही हो और विरक्तावस्था में वे - विशुद्ध निम्बार्की हो गये हों।'' नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी की आकर ग्रंथमाला ८ व ९ से नामांकित नागरीदास ग्रंथावली दो भागों में सन् १९६६ में प्रकाशित हुई है जिसके संपादक डॉ. किशोरी लाल गुप्त का मत भी यही है कि नागरीदास बल्लभकुल में दीक्षित हुये थे पर नागरीदास जी के गुरु कौन से रणछोड़दास थे इसविषय में उनका मत स्थिर नहीं है। कवि जयलाल जी के मत की पुष्टि करते हुये यद्यपि उन्होंने बल्लभ संप्रदाय की आचार्य परम्परा आदि का विस्तृत उल्लेख

करने का श्रम किया है तथापि वे किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाते। वे लिखते हैं – ''जयलाल जी के अनुसार गोपीनाथ जी गिरधर जी के तृतीय पुत्र थे ++ गोपीनाथ जी के चार पुत्र हुये बल्लभ, मथुरानाथ, गोविन्द, रामकृष्ण इनमें से बल्लभ जू के दो पुत्र हुए रणछोड़ जी और मोहन जी। यह रणछोड़ जी गोपीनाथ जी के पौत्र हुए। गोपीनाथ जी दीक्षित के तीसरे पुत्र गोविन्द जी के तीन पुत्र हुये मुरलीधर, बंशीधर, बाबूजी। पुनः मुरलीधर जी के चार पुत्र हुये गोपीनाथ, दामोदर, मथुरा नाथ, द्वारिका नाथ। चौथे पुत्र द्वारिकानाथ जी के दो पुत्र हुए रणछोड़ और गिरधर जी। इन रणछोड़ जी की वंश परम्परा यों है – महाप्रभु बल्लभाचार्य – गोसाईं विट्ठलनाथ जी गिरिधर जी – गोपीनाथ जी दीक्षित – श्री गोविन्द जी – मुरलीधर जी – द्वारिकानाथ जी – रणछोड़ जी। अस्तु गोपीनाथ जी के वंश में दो रणछोड़ जी हुए। एक उनके पौत्र दूसरे प्रप्रपौत्र थे। गोपीनाथ जी स्वयं महाराज रूपसिंह जी के गुरु थे। सांवतसिंह (नागरीदास) रूपसिंह के प्रपौत्र थे। यदि उन्होंने पहले रणछोड़ जी से दीक्षा ली होगी तों वे उनसे वय में बड़े रहे होंगे और यदि दूसरे रणछोड़जी से दीक्षा ली गई होगी तो उनके गुरु वय में उनसे बहुत छोटे रहे होंगे। अतः मेरा निर्णय है कि उन्होंने पहले रणछोड़ जी से ही दीक्षा ली होगी। राधाकृष्ण ग्रंथावली में गोस्वामी रणछोड़ जी का जन्मकाल सं. १७७८ पौष कृष्णा ५ दिया हुआ है। यह संभवतः दूसरे रणछोड़ जी का जन्म काल है। यदि इन्हें गुरु मान लिया जाता है, तो इनकी वय अपने शिष्य से २२ वर्ष कम होती है। मनोरथ मंजरी का रचनाकाल सं. १७८० है। यह नागरीदास की प्रथम सतिथि रचना है। इसमें इनकी भक्तिभावना एवं वृंदावन के प्रति उत्कट अनुराग प्रतीयमान है। यह रचना करते समय तक नागरीदास जी २४ वर्ष के हो चुके थे; और दूसरे रणछोड़ जी तब तक केवल दो वर्ष के थे। वे कम से कम १०-१२ की वय में ही दीक्षा देने योग्य हुए होंगे। अतः ऐसी स्थिति में इनको नागरीदास जी का दीक्षा गुरु कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता और पहले रणछोड़ जी ही इनके गुरु हो सकते हैं अब नागरीदास जी की गुरु परम्परा यों बनती है – बल्लभाचार्य – विट्ठलनाथ – गिरिधर – गोपीनाथ – बल्लभ जू – रणछोड़ जी। जयलाल जी का कथन इस सम्बन्ध में थोड़ा सा भ्रामक है। यहाँ पौत्र रणछोड़ एवं प्रप्रप्रौत्र रणछोड़ तो मिलते हैं, प्रपौत्र रणछोड़ कोई नहीं है।'' जयलाल जी द्वारा कथित सूचनाएँ सं. १७८१ में जगतानंद नामक बल्लभ संप्रदाय के एक कवि द्वारा पद्य में 'श्री बल्लभवंशावली' लिखी गई थी, उसी पर आधारित है जो कांकरोली से सं. २००२ में प्रकाशित हुई है।

नागरीदास जी का बल्लभ कुल में तथाकथित रणछोड़ जी से दीक्षित होने का अन्य प्रमाण किशनगढ़ के किले में स्थापित कल्याणराय जी के मंदिर के प्रांगण में दीवार पर गुरु परम्परा के इन दोहों को बतलाया जाता है :-

श्री महाप्रभु बल्लभ प्रकट, तिन सुत विट्ठलनाथ ।
जिनके गिरधर जी प्रकट, उनके गोपीनाथ ॥
श्री प्रभु जी तिनके भये, फिर रण छोड़ सुजान ।
उनके जीवन जी भये, विट्ठलनाथ प्रमान ॥
उन सुत बल्लभ जी भए, फिर श्री विट्ठलनाथ ।
करि करुणा कलियुग महीं, मोकूं कियो सनाथ ॥
तिनके सुत रणछोड़ जी, हैं कुँवरन सिर मौर ।
इनकौ बंस बढो यहै है, आसिस कर जौर ॥

उक्त दोहे नागरीदासजी कृत ग्रंथावली के जयलाल जी द्वारा संपादित 'नागर समुच्चय' में नहीं हैं और न ही नागरीदास कृत हैं वरन् ये तो उनके किसी वंशज की कृति हैं; संभवतः इनकी रचना महाराजा शार्दूलसिंह जी के भाई जवानसिंह ने की है जिनकी विद्यमानता वि. १९५५ के बाद तक मानी जाती है।

उत्सवमाला सम्बंधित अंतःसाक्ष्य :- नागरीदास जी कृत उत्सवमाला में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी तथा गो. विट्ठलनाथ जी के जन्मोत्सव सम्बंधित प्रसंग मिलते हैं जिनमें निम्नोक्त उल्लेखनीय हैं :-

(अथ श्री महाप्रभु जी को उत्सव)

(१) **राधाकृष्ण गोवर्धन धारी । वृंदावन यमुना तट चारी ॥**
ललितादिक बल्लभ विट्ठलेस । मो मन करो कृपा आवेश ॥
श्री नगेन्द्रधर नागर नायक । निज बल्लभ रस पुष्टि प्रदायक ।
तस्य कृपा ब्रजभक्त उदासी । सांवतेस बृंदावन वासी ॥

(२) **प्रगटे हैं श्री बल्लभदेव।**
\+ + + +
नागरीदास गोवर्धनधारी, हरषे नेह लाड की टेव ॥

(३) **समैं घोर कलिकाल, धर्म पद छेदन कीनौं ।**
विफल क्रोध कंदर्प, जीति जीवनि कौं लीनौं ॥
\+ + +

नागरीदास न और कछु विविध ताप सीतल करन ।
प्रगटित बल्लभ बदन तिहिं सरन मंत्र की हौं सरन ॥

(अथ श्री गुसाईं जी को उत्सव)

(४) परम पुष्टि रस जल अमित, उर्मी प्रेमावेस ।
नागर प्रगटि अनंद निधि, बल्लभ सुत बिठलेस ॥
बल्लभाचारज कल्पतरु, फल लाग्यो बिठलेस ।
या फल को रस रूप हैं, गोकुलनाथ ब्रजेस ॥
धनबल्लभ बिठलेस धन, धन्य सात सुत बंस ।
भव निस्तारन हित प्रगटि, नागर जक्त प्रसंस ॥

(५) धनि श्री बल्लभ विदित, धन्य धनि कुँवर विभूषन ।
विठलैस सुत सात धन्य, हरि अंस बंस धन ।
धन चौरासी भक्त जक्त, हित पुरुष रूप छित ।
धनि गोविंद कुंभनादि, प्रीति गिरिधरन अपरमित ।
धन्य भान भुव भागवत, नागरिया हिय तम हरन ॥
धन्य धन्य फिर धन्य हैं, महामंत्र केवल सरन ॥

निम्बार्कीय विद्वानों के मतानुसार :- भक्तवर नागरीदास निम्बार्क-संप्रदाय में दीक्षित हुये थे। सर्वप्रथम उत्सवमाला के उपर्युक्त पदों पर अपना विरोधी मन्तव्य प्रकट करते हुये ब्रह्मचारी बिहारी शरण जो लिखते हैं - '' इन्होंने ग्रंथारंभ में किसी भी संप्रदाय के आचार्यों की स्वाचार्य दृष्टि से वंदना नहीं की है, दो-चार मंगल बधाई के पद अवश्य उपलब्ध होते हैं, जो प्राय: अन्य कवियों के भी सम्मिलिति हो गये हैं। नागरीदास नाम के चार कवि हैं ही । अथवा निष्पक्ष कवि महानुभाव दूसरे के आग्रह से उसके उत्सव मनाने के लिए पद निर्माण भी कर दिया करते हैं। इन्होंने स्वनिर्मित ग्रंथों में अपने दीक्षा प्राप्त गुरु की वंदना नाम लेकर नहीं की है, न कहीं नाम ही उल्लेख किया है, दो-चार आचार्य वंदना के सिवाय। ग्रंथ में सांप्रदायिकों द्वारा साम्प्रदायिक ढंग से संपादित कर बहुत कुछ निर्मित कर मिला भी दिये जाते हैं; यह आजकल सांप्रदायिकों की पद्धति है। नागर समुच्चय में जयलाल कविकृत पद बहुत से सम्मिलित हैं, और कविकृत भी, वैसे ही दो चार आचार्य बधाई पद मिल जाना संभव है, अथवा विरक्त होने से प्रथम ही किये हों।'' (निम्बार्कमाधुरी पृ. ६१३) ब्रह्मचारी जी ने अन्य तर्क भी दिये हैं जो निम्नोक्त हैं :-

(१) नागरीदास जी की माता बांकावती, उनकी बहिन सुन्दर कुँवरी बाई और उनकी पोती छत्रकुँवरी बाई परशुरामदेवाचार्य द्वारा स्थापित सलेमाबाद की निंबार्क गद्दी की शिष्यायें थीं। अत: नागरीदास भी इसी गद्दी के शिष्य रहे होंगे ।
(२) सलेमाबाद किशनगढ़ के निकट है। अत: किशनगढ़ नरेश सांवतसिंह को इस गद्दी का अनुयायी होना चाहिये।
(३) वृंदावन में जहाँ नागरीदास रहते थे वह निम्बार्क संप्रदाय का स्थान है ।
(४) नागरीदास का उपासनाभाव श्रृंगारी है, बल्लभसंप्रदाय में बालगोपाल की उपासना विहित है।
(५) नागरीदास जी में वृंदावन धाम के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा है।
(६) नागर समुच्चय में नागरीदास जी का जो चित्र है वह विरक्तावस्था का है और इसमें जो तिलक है, वह निम्बार्क सम्प्रदाय का है।
(७) सुनते हैं कि मुकुट के झगड़े के समय स्व. किशनगढ़ नरेश श्री वृंदावन पधारे थे तो नागरीदास क्षेत्र में एक बाई द्वारा कोशिश करवाई गई कि बायें मुकुट की रास न हो तो महाराज ने उत्तर दिया था कि श्री नागरीदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय के थे उनके भावानुसार रास होगा ।

पं. श्री ब्रजबल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने नागरीदास वाणी अंक का संपादन किया है जो सर्वेश्वर विशेषांक के रूप में वि.सं. २०२१ में सर्वेश्वर प्रेस वृंदावन से प्रकाशित हुआ है। संपादक ने शोधपूर्ण तथा ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर नागरीदास जी को निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होना प्रतिपादित किया है। उनका सारभूत मन्तव्य निम्नोक्त है :-

(१) वि. सं. १६६८ में किशनगढ़ राज्य के संस्थापक महाराजा किशनसिंह जी ने स्वामी जी श्रीपरशुरामदेवाचार्य जी के प्रति श्रद्धाभाव से पुण्यार्थ धरती भेंट की थी तभी से निरन्तर सभी महाराजा सलेमाबाद पीठ के अनुनायी रहे हैं। महाराजा रूपसिंह जी और श्रीनाथजी के प्रसंग कल्पित हैं। पीठ और रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बहियों एवं पत्राचारों के सिरनामों में श्रीगोपाल जी, श्रीराम जी लिखा हुआ मिलता है, श्रीनाथजी और श्रीकल्याणराय जी के नामोल्लेख नहीं मिलते ।
(२) महाराजा मानसिंह की अल्पायु होने में अ.भा.ज. श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री नारायणदेव जी ने स्व. महाराजा रूपसिंह जी की पुत्री चारुमति का संरक्षण किया तथा गुप्त ढंग से महाराणा राजसिंह जी के साथ उनका विवाह करवाया

जिससे उन्हें उदयपुर में बाई जी के कुंड-अस्थलादि स्थान भेंट किये गये। उक्त घटना से रूपसिंह जी तथा मानसिंह जी के प्रति पीठाचार्य जी का कृपाभाव व गुरु-शिष्य सम्बन्ध की प्रगाढ़ता का प्रतिपादन होता है।

(३) रूपनगढ़ और अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ के बीच ५ मील का ही अन्तर रहा है - ऐसी स्थिति में रूपनगढ़ राजकुल का पीठानुयायी होना सहज विश्वसनीय है। म. राजसिंह का उनकी प्रथम राजरानी कामा की कछवाही राजकुँवारी चतुर कुँवरी जी से जब विवाह हुआ तो उन्होंने गठजोड़े से सलेमाबाद आकर तत्कालीन पीठाचार्य श्री नारायणदेवाचार्य जी से मंत्र दीक्षा ली थी।

(४) श्री नारायणदेवाचार्य जी के शुभाशीर्वाद से रानी चतुरकुँवरी जी की कुक्षि से सुखसिंह-फतेहसिंह के बाद तीसरे पुत्र ने वि.सं. १७५६ की पौषकृष्णा १२ को जन्म लिया; जन्म नक्षत्रानुसार उसका नाम कृष्णसिंह रखा गया था जो बाद में सांवतसिंह हो गया। चूंकि श्रीनारायणदेवाचार्य जी परमधाम सिधार चुके थे, अत: वि. सं. १७६० चैत्र शुक्ला १० को श्रीनारायणदेवाचार्य जी के उत्तराधिकारी श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी की रूपनगढ़ महल में पधरावणी कराई गई, उक्त अवसर पर कु. कृष्णसिंह के निम्बार्कीय कंठी बंधवाकर महाराजा राजसिंह तथा रानी चतुरकुँवरी ने उन्हें मंत्रदीक्षा दिलाई थी तदनुसार गुरु श्री वृंदावनदेवाचार्य जी द्वारा प्रदत्त निम्बार्कीय रसोपासनापरक नाम से कृष्णसिंह ''नागरीदास'' हो गये। चतुर कुँवरी जी ने सभी राजकुमार और राजकुमारियों को श्रीवृंदावनदेव जी का ही शिष्य बनाया था।

(५) चतुर कुँवरी जी के परमधाम सिधारने पर श्रीवृंदावनदेवाचार्य ने म. राजसिंह जी का दूसरा विवाह वृंदावनस्थ चीरघाट पर लवाण राजा आनंदराम जी की पुत्री ब्रजकुँवरी जी बांकावती से करवाया था। ब्रजकुँवरी जी ने भी श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी से दीक्षा ली थी तथा उन्होंने गुरुप्रदत्त नाम 'श्री ब्रजदासी' से श्रीमद्‌भागवत का भाषानुवाद किया था।

(६) महाराजा राजसिंह जी सहित उनका समस्त परिवार एवं राजकुल इस प्रकार निम्बार्क-संप्रदाय में दीक्षित हुआ जिनमें बांकावती जी, नागरीदास जी, उनकी निकुंज सेविका बनीठनी, सुंदर कुँवरी, छत्र कुँवरी, तथा आनंदघन जी ने रीतिकालीन भक्ति साहित्य में अपना विशेष कीर्तिमान स्थापित किया था।

(७) नागरीदास वाणीअंक में ऐतिहासिक चित्रों के साक्ष्य प्रमाणित करते हुये नागरीदास जी का निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होना भी प्रतिपादित किया है। सखी भेष में नागरीदास जी द्वारा प्रभु - आराधना करना तथा उनके समक्ष उनकी सेविका बनीठनी की उपस्थिति वाला चित्र, पीठ की गोचर-उपत्यका सालरमाला में गुरु वृन्दावनदेवाचार्य जी की आज्ञानुसार वि. सं. १७८९ में सिंह से द्वन्द्व करके मारते हुये युवराज सांवतसिंह तथा गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी की सन्निधि में निम्बार्कीय तिलक धारण किये सांवतसिंह जी (नागरीदास), बिरजानंद जी और घनानंद जी का बैठकर संगीत शिक्षा का अभ्यास करने से सम्बंधित चित्र, किशनगढ़ राज्य के संग्रहालय में सुरक्षित रहा नागरीदास कृत चित्र नं. ४५ जिसके पृष्ठ भाग पर 'महाप्रभु श्रीवृंदावनदेवाचार्य' अंकित था तथा चित्र नं. १४८ जिसके पीछे 'हरिभक्ति निवास विद्याप्रकाश महामहन्त स्वामी श्रीवृन्दावनदास जी सलेमाबाद स्थल' और नीचे दिनकर लौं जगमग -------- होहिं क्षित'' लिखित विवरण वाला चित्र तथा रसिक रत्नावली के शिक्षा गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठ द्वारा दीक्षित रसिक-संत श्री मोहनदेव जी की सांवतसिंह जी (नागरीदास) द्वारा सालरमाला उपत्यका में वंदना करने से सम्बंधित चित्र उल्लेखनीय हैं।

(८) संपादक ने स्पष्ट लिखा है कि कवि जयलाल जी ने श्री नागरीदास जी को बल्लभ-सम्प्रदायानुयायी सिद्ध करने हेतु नागर समुच्चय में पर्याप्त जोड़तोड़ तथा परिवर्तन परिवर्द्धन किये हैं। उत्सवमाला में महाप्रभु बल्लभाचार्य जी तथा गोसाईं विट्ठलनाथ जी की वंदना सम्बंधित पद जोड़े गये हैं। इसी प्रकार कलि वैराग्यवल्लरी, पदमुक्तावली आदि में भी प्रक्षिप्त अंश जोड़े गये हैं।

(९) नागरीदास जी के समाधि लेख में भी हेर फेर है क्योंकि उसमें आत्म श्लाघापूर्ण कथन हैं जो नागरीदास कृत छप्पय में नहीं हो सकते ।

(१०) श्री वृंदावनदेवाचार्य जी के उत्तराधिकार सम्बंधित संघर्ष तथा सांवतसिंह (नागरीदास) जी तथा उनके छोटे भाई बहादुरसिंह के बीच उत्तराधिकार के लिए हुये दीर्घकालिक गृहयुद्ध की भूमिका से तात्कालिक राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में बहादुरसिंह पीठ विरोधी बन गये थे। उन्होंने पीठ के अ. भारतीय वर्चस्व को अपने लिए बाधक मानते हुये बल्लभ-सांप्रदायिक नई धार्मिक रीतिनीति अपनायी तदनुसार कई परिवर्तन सुनियोजित हुये हैं ।

(११) वि.सं. १७८२ में गुरुदेव महाप्रभु वृन्दावनदेवाचार्य जी रूपनगढ़ पधारे तब उन्हीं के निर्देश से महाराजा राजसिंह जी ने वृंदावन में नागरी कुंज का निर्माण कराया जो तदनन्तर युवराज सांवतसिंह जी ने पूर्ण करवाया। नागरीदास जी के युगलस्वरूप अद्यावधि यहाँ निम्बार्कीय पद्धति से पूजे जाते हैं तथा नागर-कुंज पर पीठ का ही स्वामित्व है।

(१२) महाराजा राजसिंह जी ने रूपनगढ़-किशनगढ़ अथवा वृंदावन में कहीं पुष्टिमार्गीय मंदिर नहीं बनवाया जिससे कि उनका बल्लभ-संप्रदाय में होना सिद्ध होता हो । इस प्रकार पं. ब्रजबल्लभशरण जी द्वारा कई ऐसे ठोस ऐतिहासिक प्रमाण और

भी दिये गये हैं जिससे महाराजा राजसिंह सहित उनका समस्त राजकुल निम्बार्कसंप्रदायी प्रमाणित होता है। ''निम्बार्क- सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि'' नामक शोध जो दो भागों में प्रकाशित हो चुका है उसके लेखक प्रसिद्ध विद्वान स्व. श्री नारायणदत्त शर्मा ने भी नागरीदास जी को निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित माना है (पृष्ठ २७३ से २७५)-

(१) नागरीदास जी की विमाता बांकावती जी, उनकी बहिन सुंदर कुँवरी जी, उनकी पोती छत्रकुँवरी जी, कवि घनानंद जी श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के शिष्य थे तथा उनकी पासवान बनीठनी जी निम्बार्कसम्प्रदायी शाखा के स्वामी हरिदास जी के परम्परानुगत महात्मा रसिकदास जी की प्रशिष्या थीं। इस प्रकार नागरीदास जी के परिवार के सभी सदस्यों का निम्बार्की होना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि नागरीदास जी भी इन सबकी भांति निम्बार्क सम्प्रदाय में ही दीक्षित हुये होंगे।

(२) सलेमाबाद से नागरीदास जी के परिवार की अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठता होना स्वाभाविक है क्योंकि आचार्यपीठ रूपनगढ़ के अति सन्निकट है । नागरीदास जी ने विरक्त हो जाने पर वृन्दावनस्थ नागर कुंज में निवास किया जो सलेमाबाद की गद्दी से सम्बद्ध है। नागरीदास जी का निवास स्थान रहने के कारण ही वह नागर कुंज के नाम से विख्यात हो गई। वहीं इनकी तथा बनीठनी जी की समाधि चरण पादुकादि स्थापित हैं ।

(३) इनके काव्यग्रंथों के अनुशीलन से विदित होता है कि वृंदावनवास की इनके हृदय में जितनी अनन्य निष्ठा थी उतनी किसी भी बल्लभ कुली प्रशिष्य में दृष्टिगोचर नहीं होती । वृंदावन तत्व का जितना सुंदर और विशद वर्णन नागरीदास जी ने किया है उतना किसी भी बल्लभ कुली आचार्य ने आज तक काव्य संसार के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है।

(४) बल्लभ कुलियों के लिए तो बालोपासना निष्ठा और आचार्य निवास गद्दी की निष्ठा से गोकुल ही सर्वोपरि है; यदि नागरीदास जी बल्लभकुल में दीक्षित होते तो क्या यह संभव था कि वृंदावन में रहते हुये कुछ ही दूर पर स्थित गोकुल में निवास न करते ?

(५) श्रीकृष्ण अखिल विश्व के आराध्य हैं और श्रीराधा उनकी भी आराध्या हैं। श्रीकृष्ण स्वयं अनवरत रूप से आद्या शक्ति श्रीराधा की कृपा कोर के लिए लालायित रहते हैं। उक्त राधातत्व कि सर्वाधिक महत्व की सहज स्वीकृति हमको नागरीदास जी द्वारा रचित 'ब्रजसार ग्रंथ' में मिलती है क्योंकि वे श्रीराधा के चरणारविंदों को महावर से अनुरंजित करते हैं; कभी उनकी वेणी गूंथते हैं तो कभी पान की बीड़ी देते हैं - और इस प्रकार उन्हें प्रसन्न करने के लिये सतत सोत्साह प्रयत्नशील रहते हैं। (ब्रजसार ग्रंथ - नागर समुच्चय पृ. २५२)

(६) नित्य बिहार भी निम्बार्क सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण विधायक तत्व है जिसकी विशद विवृति हमको इनके द्वारा विरचित 'अरिल्ल पच्चीसी' और ब्रजसार ग्रंथ में मिलती है। सहचरी गण निभृत निकुंजों से इस प्रियाप्रियतम के नित्यबिहार दर्शन से अपना जीवन कृतकृत्य करती हैं। नागरीदास द्वारा रचित 'बिहार चंद्रिका' में नित्य बिहार का मार्मिक चित्रण है (बिहार चंद्रिका ना. समु. पृ. २५९) :-

नित्य राधा नंदलाल रूप रास सनेही। नित्य लगन रस मगन करत कल केलि बड़े ही ॥
नित्य पुहनि चित चारु चटपटी चोंपन बेली । नित्य सुखद संकेत रचावत रूचिर सहेली ॥
तैसौ कुसुमित बन मनो मन्मथ सर पंजर कियौ। नागरि नित्य बिहार कौं लखि दंपति हुलसत हियौ ॥

(७) सहचरी गण का तत्सुख सुखित्व भाव भी उक्त पथ में विशेष रूप से पल्लवित है। तभी तो वे प्रतिदिन सुखद संकेत रचना करती हैं। तत्सुख सुखित्व की यह विशुद्ध भावना भी नागरीदास जी के निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित होने की ओर संकेत करती है।

(८) गोपीपद रज महत्व की सर्वोपरि महत्ता की सहज स्वीकृति भी संप्रदाय के विधायक तत्वों में से एक है। अरिल्ल पच्चीसी में नागरीदास जी ने उक्त भावना की उन्मुक्त रूप से उद्घोषणा की है।

(९) श्रीराधाकृष्ण को दम्पति रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति निम्बार्क सम्प्रदाय के अंतर्गत है। नागरीदास जी द्वारा रचित जुगल रस माधुरी, भोरलीला, प्रात: रस मंजरी, भोजनानंद और फूल विलास आदि ग्रंथों में उन्होंने सर्वत्र श्रीराधा का स्वकीयात्व रूप में ही चित्रण किया है। इस संदर्भ में जुगल रस माधुरी का यह पद्य उल्लेख्य है :-

नित्य केलि आनंद रस बिच वृंदावन बाग ।
नागरिया हिय में बसो स्यामा स्याम सुहाग ॥

(१०) इनकी विरक्तावस्था का चित्र भी उपलब्ध है जो ज्ञान सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित नागर समुच्चय में देखने को मिला है चित्र का तिलक स्पष्ट रूप से निम्बार्कीय है।

समीक्षा - उभयपक्षी प्रतिपादित विवरण से कई तथ्य उभर कर सामने आये हैं जो गंभीरता पूर्वक विचारणीय हैं ।

(१) नागरीदास जी को बल्लभकुल में दीक्षित मानने वाले पूर्वोक्त विद्वानों की विचारधारा मूलत: कवि जयलाल जी द्वारा

संपादित नागर-समुच्चय पर आधारित है। नागर समुच्चय वि. सं. १९५५ में ज्ञानसागर प्रेस, मुँबई से तत्कालीन कृष्णगढ़ नरेश शार्दूलसिंह जी की आज्ञानुसार प्रकाशित हुआ था, उक्त प्रेस के स्वामी श्री किशनलाल गौड़ मूलत: सलेमाबाद के निवासी होने से किशनगढ़ राज्य के ही नागरिक थे जिन्होंने प्रकाशित नागर-समुच्चय को शार्दूलसिंह जी को समर्पित किया था क्योंकि उन्हीं की कृपा से ही किशनगढ़ राजवंश के परम श्रद्धेय पूर्वज की यह धरोहर उन्हें प्रकाशनार्थ मिली थी। नागरीदास जी कृत ग्रंथों की पांडुलिपियों का संकलन-संशोधन; ग्रंथों का सूचीक्रम तथा उनका तीन भागों में वर्गीकरण, संकलित ग्रंथ का 'नागर - समुच्चय' नामकरण, प्राक्कथन लेखन तथा नागरीदास जी के व्यक्तित्व कृतित्व का परिचयांकन आदि का एकाधिकार पूर्ण संपादन कार्य शार्दूलसिंह जी के दरबारी कवीश्वर जयलाल जी ने किया था। कवि जयलाल जी पूर्ववर्ती महाराजा राजसिंह जी के राज्याश्रित महाकवि वृंद के वंशज थे। महाकवि वृंद स्वयं बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित शाकद्वीपी भोजक ब्राह्मण थे और उन्हीं के वंशज सुकवि बल्लभ, सुखराम, दौलतराम तदनन्तर जयलाल आदि किशनगढ़ राज्य के वंशानुगत दरबारी कवि रहे हैं। वि.सं. १८२९ में महाराजा बहादुरसिंह जी ने कृष्णदुर्ग में श्रीकृष्ण स्वरूप श्रीनाथ जी श्रीकल्याणराय जी की प्रतिमा स्थापित करके तत्कालीन राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में परिव्याप्त श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद के देशव्यापी वर्चस्व के प्रभाव से भविष्य में अपने राज्य परिवार को तटस्थ रखने की कूटनीतिज्ञतापूर्ण सूझबूझ से बल्लभ सांप्रदायिक उपासना की नई धार्मिक रीति नीति का सूत्रपात किया था, परिणामत: इस प्रकार से बल्लभ संप्रदाय का स्थापित वंशानुगत राजसी सम्बन्ध शार्दूलसिंह जी के राजत्व काल - वि. सं. १९३६ से १९५७ तक अटूट तथा चरमोन्नत प्रगाढ़ता को प्राप्त कर चुका होगा। इन सब परिस्थितियों में वंशानुगत रूप से अनवरत राज्याश्रयता की स्थिति में कवि जयलाल जी की सहज संभावित बल्लभ संप्रदायी प्रतिबद्धता को अविश्वसनीय नहीं मानां जा सकता। अत: उनके द्वारा नागर-समुच्चय का संपादन उनकी परम्परागत बल्लभी निष्ठा से सर्वथा अछूता रहा होगा यह मान्य नहीं है।

नागर समुच्चय के शुभारंभ में राधाकृष्ण दासजी द्वारा लिखित श्री नागरीदास जी का जीवन चरित्र संलग्न किया गया है। राधाकृष्ण दास जी कृत यह नागरीदास चरित्र वि. सं. १९५४ में तदनन्तर नागरी प्रचारिणी की पत्रिका भाग दो में प्रकाशित हुआ है राधाकृष्णदासजी ने नागरीदास जी कृत ग्रंथों की सूची तथा तत्सम्बंधित अन्य जानकारी जयलाल जी द्वारा पत्राचार के माध्यम से प्राप्त की थी। नागरीदास जी बल्लभकुल के किस गोस्वामी जी के शिष्य थे? राधाकृष्णदास जी के इसी प्रश्न के उत्तर में कवि जयलाल जी ने उन्हें यह लिखा था - ''महाराज श्रीकृष्णसिंह के पौत्र रूपसिंह जी थे। वे बल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी जिनके पुत्र टीकैत श्री गिरिधर जी थे जिनके तृतीय पुत्र दीक्षित जी गोपीनाथ जी थे जिनके शिष्य हुये थे। उन्हीं के पास ब्रह्म-सम्बन्ध भी लिया था और श्रीकल्याणराय जी का स्वरूप दीक्षित जी श्रीगोपीनाथ जी ने इन रूपसिंह जी के मस्तक पर पधराया था जो कि महाराज श्री रूपसिंह जी के गुरु गो. दीक्षित जी श्री गोपीनाथ जी जिनके प्रपौत्र गोस्वामी श्री रणछोड़ जी नागरीदास जी के गुरु थे। इनका स्थान कोटा में श्री बड़े मथुरेश जी का है।'' अस्तु राधाकृष्ण दास जी को नागरीदास जी के संप्रदाय के विषय में जो कुछ कवि जयलाल जी ने उन्हें बताया था उसी का उन्होंने अनुसरण किया है; यह प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित है। इसी प्रकार मिश्रबन्धुओं, वियोगी हरि तथा आचार्य शुक्ल आदि परवर्ती विद्वानों ने भी जयलाल जी द्वारा स्थापित तथा श्रीराधाकृष्णदास जी द्वारा की गई उक्त अनुसृति के आधार पर नागरीदास जी को बल्लभकुली मान लिया था क्योंकि उन्होंने तत्सम्बंधित पृष्ठभूमि में नागरीदास जी का ऐतिहासिक अनुसंधान अथवा उपासनात्मक काव्यानुशीलन करके मौलिक रूप से अपने स्वतंत्र मत का प्रतिपादन नहीं किया है; क्योंकि उनके समक्ष संभवत: नागरीदास जी के संप्रदाय - विषयक किसी प्रकार का मतवाद नहीं रहा होगा। कवि जयलाल जी द्वारा स्थापित मान्यता का प्रतिवाद नागर समुच्चय के प्रकाशन के ४२ वर्ष बाद वि.सं. १९९७ में ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी ने 'श्रीनिम्बार्क माधुरी' में विधिवत् रूप से अभिव्यक्त किया था। वि. सं. २०१३ में निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख पत्र श्री सर्वेश्वर के वृन्दावनांक में भी नागरीदास जी को तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी का दीक्षित शिष्य बताया गया था ''रूपनगर के नरेश भक्तप्रवर महाराजा राजसिंह जी के बड़े पुत्र सांवतसिंह जी का जन्म वि.सं. १७५६ पौष कृष्णा १२ को हुआ था, उस समय श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ के सिंहासन पर श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी महाराज विराजमान थे - राजसिंह जी ने आपसे ही अपने राजकुमार को दीक्षा और शिक्षा भी दिलाई।'' (पृ. २८४) तदनन्तर वि.सं. २०२१ में पं. ब्रजबल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने नागरीदास वाणी अंक का संपादन तथा प्रकाशन किया जिसकी विस्तृत भूमिका में आपने शोधपूर्ण ढंग से नागरीदास जी का निम्बार्कसंप्रदाय में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी द्वारा दीक्षित होने का प्रामाणिक प्रतिपादन किया है।

दूसरी ओर डॉ. फैय्याज अली जी द्वारा नागरीदास जी से सम्बंधित शोध-प्रबन्ध लेखन और नागरीदास-ग्रंथावली का संपादन कार्य भी किया गया और इसी क्रम में सन् १९६६ में नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी के तत्वावधान में डॉ. किशोरीलाल गुप्त जी ने नागरीदास ग्रंथावली का दो भागों में संपादन किया है जिनका मूलाधार कवि जयलाल जी द्वारा संपादित नागर समुच्चय ही है। कहने का अभिप्राय यह है कि नागरीदास जी को वल्लभ संप्रदायी बताने वाले लगभग सभी विद्वानों ने जयलाल कवि द्वारा स्थापित धारणा का अनुसरण ही किया है।

(२) स्थानीय विद्वान श्रद्धेय डॉ. फैय्याज अली जी की अपने शोध प्रबन्ध में व्यक्त विचारधारा दृढ़ नहीं है; नागरीदास जी को उन्होंने परम पुष्टिमार्गीय वैष्णव बताया है पर दूसरे स्थल पर ही वे उनमें अतिशय समन्वयवाद होने की पुष्टि करते हुये उन्हें प्रारंभ में वल्लभकुली तथा विरक्तावस्था में विशुद्ध निम्बार्की होना प्रतिपादित कर देते हैं। इसी प्रकार विभिन्न अवसरों पर उनसे हुई वार्ताओं के अनुसार वे नागरीदासजी को वंशानुगत आधार पर पुष्टिमार्गीय प्रमाणित करने की दृष्टि से किसी अज्ञात चित्रकार द्वारा बनाये गये ऐतिहासिक दृष्टि से अपुष्ट म. रूपसिंह जी के उपास्य स्वरूप परम पूज्य श्रीनाथजी की पूजा करते हुये नागरीदास जी का चित्र प्रस्तुत करते हैं; पर केवल इसी आधार पर हम नागरीदास जी को श्रीनाथ जी के उपासक पुष्टिमार्गीय अनुयायी नहीं मान सकते क्योंकि वैष्णव परम्परा अत्यन्त उदारवादी है यहाँ परम्परागत अथवा पारिवारिक पूर्वजों के उपास्य स्वरूपों की पूजा निर्दोष भाव से की जाती है तथा विशेष पर्वों के अनुसार शिव, दुर्गा, हनुमान, गणेश, श्रीराम, नृसिंह, लक्ष्मी आदि की पूजा का विधान भी वैष्णवों की परम्परा में हैं, ऐसी स्थिति में यदि नागरीदास जी परम पूज्य श्रीकृष्णस्वरूप श्रीनाथजी के उक्त चित्र की पूजा करते हुये दर्शाये भी गये हैं तो उससे उनकी साम्प्रदायिक निष्ठा का सत्यापन नहीं हो सकता । डॉ. फैय्याज अली जी वृंदावनस्थ समाधि-स्मारक लेखों के प्रति भी अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुये नागरीदास जी तथा उनकी निकुंज-सेविका बनीठनी जी की नागरीदास घेरे में एकसाथ संलग्न स्थिति में बनी हुई समाधियों को अनदेखी बताते हैं और न ही उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध में इनका कहीं उल्लेख किया है; इसी प्रकार डॉ. साहब सखी वेश में निम्बार्कीय निकुंज निष्ठा से प्रभु की आराधना करते हुये नागरीदास जी के प्रामाणिक चित्रों को निराधार रूप से अप्रामाणिक बताते हैं। जिनकी समीक्षा हम आगे विस्तार से करेंगे। नागरीदास जी कृत लीला-पदों के भाव-साम्य पर बनाये गये उनके निहालचन्द आदि दरबारी चित्रकारों के चित्रों में प्रामाणिक रूप से मूर्तिमान निम्बार्कीय निकुंजोपासना के सैद्धान्तिक स्वरूप का प्रतिपादन उनके यहां आगन्तुक जिज्ञासु दर्शनार्थियों के समक्ष वे करते नहीं देखे गये हैं- यह मेरा निजी अनुभव है; ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि उनमें नागरीदासजी की वल्लभ-संप्रदाय के अतिरिक्त निम्बार्कीय सम्बद्धता के पक्ष को सुनने सुनाने अथवा स्वीकारने की मानसिकता प्रतीत नहीं होती।

पं. व्रजवल्लभशरण जी के अनुसार 'भक्तिमगदीपिका' की गुरुशरणागति प्रसंग में हस्तलिखित पाठ रहा है- चार सम्प्रदा में गुरु करिये। औरन के मत में नहिं परिये। विष्णु स्वामि निम्बादित आचारज। रामानुज और मध्वाचारज ॥ विष्णु स्वामि के गुरु त्रिपुरारी। निम्बादित सनकादिकचारी ॥ है जु रमा तहाँ श्री रामानुज। विधि सिख मध्वा पर्म धर्म धुज। इन चारन बिन गुरु मति ठानों और के मंत्र अफल करि मानों ॥ यह जानकारी उन्हें जोधपुर पुरातत्व के उप संचालक के पत्र से दिनांक १४/१/६५ को पत्र सं. एक ८ लाइ/र/प्र/विप्र/६४य४२ के अनुसार मिली - नागरीदास वाणी पृ. २७ से उद्धृत) मुद्रित प्रति में इस प्रसंग को यों बदल दिया है :- प्रथमहिं गुरु की शर्ण है प्राणी। तन मन धन बचननि मृदु बानी। प्रसिध संप्रदा मैं गुरु करियै। मन कल्पित मत मैं नहिं परियै ॥ १३ ॥ इसी 'प्रसिद्ध संप्रदाय' पाठ के आधार पर डॉ. फैयाज अली जी ने (शोध ग्रंथ पृ. १०६) वल्लभ संप्रदाय को प्रसिद्ध मानते हुये नागरीदास जी का वल्लभकुल में दीक्षित होना प्रतिपादित कर दिया है।

नागरीदास जी के तत्कालीन धार्मिक परिवेश का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाता तो संभवत: डॉ.साहब से यह भूल कदापि नहीं होती। पिछले पृष्ठों पर हमने तत्कालीन श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी का व्यापक वर्चस्व चित्रित किया है; कृष्णगढ़-जयपुर-जोधपुर-भरतपुर-उदयपुर आदि राज्यों तक उनका प्रभाव विस्तार रहा है। तोरावाटी के वैष्णव सम्मेलनों में उनका प्रमुख रूप से निर्णायक वर्चस्व हमने उल्लेखित किया है। कृष्णगढ़ में वि. सं. १८२९ से पूर्व कोई वल्लभ-संप्रदाय का मंदिर नहीं था जबकि रूपनगढ़-किशनगढ़-जयपुर में निम्बार्कीय मन्दिरों का बाहुल्य था। किशनगढ़ राज्यांतर्गत पद्मपुराणोक्त वैभव से मंडित परम्परागत अ. भा. जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ, श्री नारायणदेवाचार्य जी के समय निर्मित रूपनगढ़ का गोपाल द्वारा, राजमाता बांकावत जी द्वारा निर्मित किशनगढ़ का गोपाल द्वारा, सांवतसिंह (नागरीदास) जी के दिवान हठेसिंह जी मुहणोत द्वारा निर्मित राधावर (राधावल्लभ) जी का मंदिर , नागरीदास जी की पौत्री म. सरदारसिंह जी की एकमात्र पुत्री छत्रकुँवरी (बाई जी सरकार सिरताज कँवर) जी द्वारा निर्मित सदरबाजार किशनगढ़ में स्थित विशालकाय 'बाई जी का मंदिर' तथा म. बहादुरसिंह

जी द्वारा दिया गया काचरिया मंदिर आदि नागरीदासजी के पूर्वकालिक-समकालिक विशाल निम्बार्कीय मंदिरों का होना तो इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि नागरीदासजी के समय किशनगढ़ राज्य में तथा जयपुर-उदयपुर-जोधपुर-भरतपुर आदि अन्य राज्यों में तथा कथित "प्रसिद्ध संप्रदा" तो निम्बार्क-सम्प्रदाय ही थी। वि. सं. १८२९ में बहादुरसिंह जी द्वारा निर्मित एक मात्र बल्लभी मंदिर का प्रभाव-विस्तार तो नागरीदास जी के बाद भी अत्यंत सीमित रहा होगा - यह तर्क संगत है। इस प्रकार 'प्रसिद्ध सम्प्रदा' अंतर्साक्ष्य के आधार पर भी नागरीदास जी का निम्बार्क सम्प्रदाय में ही दीक्षित होना प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित होता है। इस संदर्भ में यह भी विचारणीय है कि नागरीदास जी जैसे महान संत को अपने संप्रदाय के नाम का स्पष्ट उल्लेख करने में ऐसी कौनसी बाधा थी - प्रतीत होता है कि उनके द्वारा घोषित निम्बार्क सांप्रदायिक जानकारी को ग्रंथ से अलग कर दिया गया है।

(३) डॉ. किशोरी लाल जी गुप्त ने सन् १९६६ में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित नागरीदास ग्रंथावली दो भाग का संपादन किया है; उन्होंने ग्रंथ की भूमिका में स्पष्ट उल्लेख किया है कि उनका यह संपादन कार्य जयलालजी के नागर समुच्चय के अनुसार है तथा सुविधा के लिए उन्होंने नागरीदास के ग्रंथों को छ: भागों में विभाजित किया है तदनुसार सभी ग्रंथों का क्रमिक परिचय भी प्रस्तुत किया है। अस्तु कवीश्वर जयलाल जी ने नागरीदास जी कृत ७५ ग्रंथों को वैराग्य सागर, श्रृँगार सागर और पद सागर नामांकित शीर्षकों में विभाजित कर उनको संपादित किया है जबकि इसी ग्रंथ सूची क्रम को बदलकर डॉ. किशोरीलाल जी ने नागरीदास ग्रंथावली का पदावली, दोहावली, कवितावली, एक छंद रचनावली, बहुछंद रचनावली, नामांकित ६ भागों में ग्रंथों का संपादन किया है।

(अ) डॉ. साहब ने नागरीदास जी का जीवन परिचय तथा संप्रदाय विषयक अपना निर्णय भी जयलाल जी के मतानुसार ही उद्धृत किया है। जैसा कि कहा जा चुका है डॉ. गुप्त भी जयलाल जी का अनुसरण करते हुये नागरीदास जी को बल्लभ कुल में दीक्षित बतलाते हैं पर नागरीदास जी के गुरु कौन से गोस्वामी रणछोड़ दास जी दीक्षित थे, इस विषय में उनका मत स्थिर नहीं है। क्योंकि गोपीनाथ जी दीक्षित के वंश में दो रणछोड़ दासजी हुये हैं प्रथम उनके पौत्र द्वितीय उनके प्रप्रपौत्र। बल्लभाचार्य जी की ये दो प्रामाणिक वंश परम्परायें वि.सं. १७८१ में जगतानंद जी द्वारा कांकरोली से प्रकाशित हुई है जो क्रमश: इस प्रकार हैं -

(1) महाप्रभु बल्लभाचार्य गो. विट्ठलनाथ - गिरिधर जी- गोपीनाथ जी दीक्षित - बल्लभ जू- रणछोड़जी

(2) महाप्रभु बल्लभाचार्य - गो. विट्ठलनाथजी - गिरिधर जी - गोपीनाथ जी दीक्षित - गोविन्द जी - मुरलीधर जी-द्वारिका जी - रणछोड़ जी।

यहाँ एक भ्रांति और है कि जयलाल जी ने राधाकृष्णदास जी को जिन बल्लभ-वंशज रणछोड़दासजी को नागरीदास जी का गुरु कहकर बतलाया है वह तो उनके अनुसार गोपीनाथ जी दीक्षित के प्रपौत्र हैं और उसी के अनुसार राधाकृष्ण दासजी की ग्रंथावली में उक्त रणछोड़दास जी का जन्म वि. सं. १७७८ पौष कृष्णा ५ को होना कथित है। अत: यह जन्मकाल कौन से रणछोड़दास जी का माना जाय यह बात जयलाल जी तथा राधाकृष्णदासजी दोनों ही द्वारा स्पष्ट रूप से निर्देशित न होने से भ्रामक है ।

डॉ. गुप्त ने तो अपने निजी अनुमान से इस जन्मतिथि को उन रणछोड़दास जी से सम्बंधित कर दिया है जो कि गोपीनाथजी के प्रप्रपौत्र हैं। दूसरी ओर वि. सं. १७८० में रची मनोरथ-मंजरी में व्यक्त नागरीदास जी की वृंदावननिष्ठा को आपके द्वारा गुरु दीक्षा के समय का आधार मानना और उसी आधार पर उक्त ग्रंथ के रचनाकाल क्रमानुसार प्रथम रणछोड़दास जी को नागरीदासजी का गुरु प्रतिपादित करना युक्तियुक्त नहीं है। साथ ही उक्त आधार पर डॉ. गुप्त द्वारा नागरीदास जी के निर्धारित वयक्रम २४ वर्ष में गुरु दीक्षा लेना भी उनके पिता परम वैष्णव रूपनगढ़ नरेश राजसिंह जी के आचारविचार के अनुकूल प्रमाणित नहीं होता क्योंकि रूपनगढ़ की इत्तिलाक बहियों में नागरीदास जी के मातापिता द्वारा अपनी सभी संतानों की दीक्षा बालवय में ही निम्बार्काचार्य श्रीवृन्दावनदेव जी से कराई गई प्रमाणित की गई हैं (नागरीदास वाणी अंक - वृन्दावन पृष्ठ ११-१२)

(ब) डॉ. गुप्तजी ने नागरीदास ग्रंथावली की भूमिका में डॉ. फैय्याज अली जी से साक्षात्कार करने का उल्लेख किया है, उनके अनुसार उक्त अवसर पर डॉ. फैय्याज अली जी से नागरी दास जी के संप्रदाय के सम्बन्ध में बात चली तो उन्होंने उनका बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होना स्वीकार किया तथा उनके दीक्षागुरु का नाम गो. रणछोड़लाल जी बताया। वे अपनी पुरानी मान्यता पर दृढ़ रहे। डॉ. फैयाज अली जी ने यह भी बताया कि नागर-समुच्चय में प्रकाशित वह चित्र जिसमें युवराज सांवतसिंह (नागरीदास) जी सखीभाव से निकुंज उपासना रत हैं तथा उनकी पासवान बनीठनी समक्ष खड़ी है - अप्रामाणिक है। अप्रामाणिकता का कारण उसमें खपरैल का छाजन होना बताया है। जिसका निराकरण हमने भी आगे कर दिया है। इस प्रकार डॉ. गुप्त , डॉ. फैय्याज अली द्वारा स्थापित मान्यता का पूर्वाग्रह लेकर निम्बार्काचार्य

पीठ सलेमाबाद भी आये। यह संदर्भ सन् १९६६ का है जबकि सन् १९६५ में श्रीसर्वेश्वर पत्र का विशेषांक नागरीदासवाणी अंक प्रकाशित हो चुका था जिसके संपादक श्रीब्रज वल्लभशरण जी नागरीदास जी के संप्रदाय विषयक कई निम्बार्कीय तथ्यों को गवेषणात्मक ढंग से निरूपित कर चुके थे; संभवत: डॉ. गुप्त ने उक्त ग्रंथ की अनदेखी की है अन्यथा वे इसमें प्रतिपादित निम्बार्कीय पक्ष का प्रतिवाद कर देते।

(स) डॉ. गुप्त द्वारा जो किशनगढ़ के किले के मंदिर – प्रांगण की भित्ति पर लिखे गये गुरु परम्परा विषयक दोहे बताये गये हैं; इनके विषय में हम बता चुके हैं कि वे नागर-समुच्चय से उद्धृत अथवा नागरीदासकृत नहीं हैं, अनुमानत: ज़वानसिंह जी कृत माना जाना भी प्रामाणिक तथ्य नहीं है।

(द) उत्सवमाला में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी तथा गोसाईं विट्ठुलनाथ जी के जन्मोत्सव सम्बंधित प्रसंगों के आधार पर नागरीदास जी को वल्लभ संप्रदायी बताने की चेष्टा अन्य विद्वानों के कथनानुसार डॉ. गुप्त जी ने भी की है; परन्तु प्रस्तुत जन्मोत्सव पदों का नागरीदास जी कृत होना संदिग्ध है क्योंकि :-

(१) प्रथम चरण में 'श्रीराधाकृष्ण गोवर्धनधारी' – पद विचारणीय है 'गोवर्धनधारी' श्रीकृष्ण तो नंदलाल-गोपाल स्वरूप रहे हैं 'श्रीराधा' संयुक्त युगल स्वरूप में उनका चित्रण करना वल्लभमतानुसार भी मान्य नहीं है। अद्यावधि गोवर्धन जी के मुखारविंद का स्वरूप भी युगल नहीं हैं। अत: इसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। साथ ही दूसरे चरण 'तस्य कृपा व्रजभक्त उदासी। सांवतेस वृंदावनवासी॥' में प्रयुक्त 'सांवतेस' शब्द आत्मश्लाघापूर्ण कथन होने से युगलचरणाश्रित अत्यंत दैन्य भाव परिपूर्ण रसिक हृदयी नागरीदास जी द्वारा अभिव्यक्त नहीं माना जा सकता है; दास्य-भावनायुक्त शब्द नागरीदास अथवा चौपाई छन्द गणनानुसार नागरिया शब्द का प्रयोग ही कवि द्वारा किया जाना विश्वसनीय हो सकता था; अत: प्रतीत होता है कि यह प्रक्षिप्त है। श्री निम्बार्क मयूख के सं. ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी ने पृ. ६७ पर लिखा है कि नागर समुच्चय की हस्तलिखित प्रति पृ. ३४२ पर इस प्रकार पाठ है :- कल्पवृक्ष श्रीभट्ट की शाखा नागरि चार । तिनकौं फल गोविंद शरण भरयौ भक्तिरस सार ॥ मुद्रित प्रति में परिवर्तित करके लिखा है वल्लभाचारज कल्प तरु फल लाग्यौ विठलेस या फल को रसरूप है गोकुलनाथ ब्रजेस ॥ संभवत: यह वल्लभसम्प्रदायानुयायी संपादक जयलाल जी की रचना रही हो ।

(२) पदों में महाप्रभु वल्लभाचार्य – गो. विट्ठुलनाथ तथा उनके सात पुत्रों का बिना नाम लिखे संदर्भ देते हुये गुरु परम्परा का वंदनात्मक स्मरण किया गया है। प्रश्न उठता है कि ऐसे प्रसंग में नागरीदास जी ने इन पदों में अपने गुरु तथाकथित गो. रणछोड़दास जी का वंदनात्मक स्मरण अथवा नामोल्लेख क्यों नहीं किया? श्री वल्लभ-मुखारविंद-निसृत 'महामंत्र की सरन' ग्रहण का कथन करने वाले नागरीदास जी ने अपने कंठी बांधकर मंत्र सुनाने वाले गुरुनाम का विस्मरण उक्त सभी पदों में किस कारण से किया; जानवूझ कर विस्मरण किया हो तो भी कारण प्रतीत नहीं होता, ऐसी स्थिति में इन जन्मोत्सव प्रसंगों को नागरीदासकृत मानना संदेहास्पद है।

(३) नागर – समुच्चय के किसी भी ग्रंथ के किसी भी प्रसंग में नागरीदास जी द्वारा अपने गुरु की वंदना करना तो दूर की बात है वरन् उन्होंने पूर्वोक्त विद्वानों द्वारा कथित अपने गुरु रणछोड़दास जी का नामोल्लेख तक भी नहीं किया है जबकि सभी संप्रदायों में गुरु का महत्व गोविन्द के तुल्य प्रतिपादित किये जाने की प्रामाणिक परम्परा रही है तथा परम्परानुसार सभी भक्त कवियों ने अपने गुरु की स्वतंत्र रूप से वंदना अपनी रचनाओं में की है; ऐसी स्थिति में परम भागवत भक्तप्रवर नागरीदास जी ने इसकी उपेक्षा क्यों की यह प्रश्न अत्यंत गंभीर रूप से विचारणीय है? ऐसी परिस्थिति में निष्पक्षता से यही माना जा सकता है कि संपादक जयलाल जी ने ही वल्लभ-संप्रदाय-परम्परा के गो. रणछोड़दास जी को नागरीदास जी का गुरु बताने की निराधार कल्पना की है। तथा संभव है कि उन्होंने नागर समुच्चय से नागरीदासकृत निम्बार्काचार्य श्रीवृन्दावन महाप्रभु के नाम से उनके गुरु के वंदनात्मक प्रसंगों को अलग कर दिया हो, यह भी संभव है कि ऐसा बहादुर सिंह जी ने वि. सं. १८२३ में श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी द्वारा दीक्षित नागरीदास सुत म. सरदारसिंह के निधन के बाद उनके सर्वेसर्वा निरंकुश राजत्वकाल में सुनियोजित ढंग से करवाया हो; और इन्हीं कारणों से वे प्रसंग डॉ. गुप्त की तथाकथित अनुसृति में भी नहीं आये हो, जबकि नागरीदास वाणी अंक में पं. ब्रजवल्लभशरण जी ने नागरीदास जी कृत चित्रों में महाप्रभु वृंदावनदेवजी का नामोल्लेख तथा उनके प्रति वर्चस्व मंडित छप्पय का भी उल्लेख किया है 'दिनकर लौं जगमग प्रताप जस जक्त अखंडित (पृ. ३७) जो किशनगढ़ के चित्र-संग्रहालय में विद्यमान रहा है।

(३) डॉ. गुप्त ने अपनी नागरीदास ग्रंथावली – प्रथम भाग के पृ. ४७ पर वृन्दावनस्थ नागरीदास घेरे में बनी नागरीदास एवं बनीठनी जी की समाधियों पर उत्कीर्णित स्मारक-लेखोंका उल्लेख किया है जो उन्होंने राधाकृष्ण ग्रंथावली पृष्ठ १७४ से उद्धृत किये हैं। नागरीदास जी के समाधिलेख का विवरण देते हुए उन्होंने ब्रह्मचारी जी का प्रतिवाद भी किया है, उक्त लेख में अंकित 'श्रीनाथजी' तथा 'वल्लभ विट्ठलेस' शब्दों के आधार से वे यहाँ अपना निम्बार्क विरोधी मत व्यक्त

करते हुये लिखते हैं –"ब्रह्मचारी जी का कहना है कि नागरीदास जी संभवत: बाल्यावस्था में बल्लभसंप्रदाय के अनुयायी रहे होंगे, पर विरक्त होने पर वे निंबार्क सम्प्रदाय के शिष्य हो गये थे। हमारा उक्त लेख के आधार पर यह कथन है कि वे अंत तक बल्लभ संप्रदाय के ही अनुयायी रहे हैं।" (पृ. ४८) बनीठनी जी के समाधि लेख पर उनकी सहमति होने से डॉ. गुप्त ने कोई आपत्ति नहीं की है। नागरीदास जी का उक्त समाधि लेख डॉ. गुप्त के अनुसार निम्नोक्त है :-

॥ श्रीनाथ जी ॥

श्रीराधाकृष्ण गोवर्धन धारी। वृंदावन जमुना तटचारी ॥
ललितादिक बल्लभ विठलेस । मोहन करो कृपा आवेश ॥

(छप्पय)

सुत कौ दे युराज आप, श्रीवृंदावन आये।
रूपनगर पति, भक्ति वृंद बहो लाड लडाये ॥
सूरवीर गंभीर, रसिक रिझवार अमानी ।
सन्त चरनामृत नेम, उदधि लौं गावै बानी ॥
नागरीदास विदित सो, कृपा ढार नागर ढरिय ।
सांवतसिंह नृप कलि विषै, सतत्रेता विध आचरिय ॥

(सम्वत् १८२१ भादौं सुदी ५ को महाराज नागरीदास वृंदावन पाए)

उत्सवमाला में उल्लेखित "श्री राधाकृष्ण गोवर्धन धारी + + + + सांवतेस वृंदावनवासी" नामक चौपाई छन्द का अंश ही यहाँ समाधि-लेख में शीर्षकांकित किया हुआ है। उत्सवमाला के प्रसंग में 'श्रीराधाकृष्ण गोवर्धनधारी' तथा 'सांवतेस' शब्दों के व्यवहार से हमने इसे नागरीदास कृत नहीं माना है जबकि नागरसमुच्चय के अनुसार यहाँ यह नागरीदास कृत उत्सवमाला का अंश अंकित कर अज्ञात लेखक ने इस कथ्य को भ्रामक सिद्ध कर दिया है। 'सांवतेस' की भांति ही यहाँ के समाधि लेख सम्बन्धित छप्पय में 'सुत कौ दे युवराज आप वृंदावन आये' तथा 'सांवतसिंह नृपकलि विषै सत त्रेता विध आचरिय।' आदि पद आत्मश्लाघापूर्ण होने से नागरीदास कृत नहीं कहे जा सकते । ऐसे दुविधापूर्ण कथ्यात्मक विवरण से यही ध्वनि निकलती है कि छप्पय किसी अज्ञात कवि कृत है पर इससे नागरीदास का विरक्तावस्था तक बल्लभ-अनुयायी होना भी प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित नहीं है क्योंकि 'रसिक रिझवार अमानी' 'नागरीदास विदित सो कृपा ढार नागर (नागरि) ढरिये' तथा 'गावै बानी' - (अर्थात् महावाणी सदृश रसिक-समाज द्वारा निकुंज-रहस्यात्मक वाणी गायन की परम्परा का अनुसरण करना न कि बल्लभ-संप्रदायानुसार कीर्त्तन प्रणाली के लीलापद गायन की परम्परा का अनुसरण करना) आदि से नागरीदास जी का उक्त अज्ञातनामा कवि ने निम्बार्कीय निकुंज - रसोपासक होना प्रतिपादित कर दिया है। इसी प्रकार भक्तात्मा नागरीदास जी का अन्ततः 'वृन्दावन पाना' अर्थात् निकुंजधाम में समा जाने की ध्वनि भी निम्बार्कीय परम्परा को व्यंजित कर रही है। शीर्षांकित 'श्रीनाथजी' का सिरेनामा भी बल्लभ-संप्रदायी निष्ठा से जोड़ा गया प्रतीत होता है। सारांशत: यही कह सकते हैं कि विरूपित किये गये इस समाधि लेख से भी निम्बार्कीय पक्ष ही पुष्ट होता है।

(४) ब्रह्मचारी जी का उत्सवमाला सम्बन्धी आपेक्ष निर्मूल नहीं है। वि.सं. १५०० से १८०० तक की समयावधि में नेही नागरीदास (राधा बल्लभी), टट्टी संस्थान के रसिक देव जी के शिष्य नागरी दास, पीताम्बर देवजी के शिष्य नागरीदास, महाराज सांवतसिंह जी उपनाम नागरीदास तथा बुंदेलखंड बरेछा के परमारक्षत्री नागरीदास हुये हैं जिनका उल्लेख डॉ. गुप्त तथा पं. ब्रजबल्लभशरण जी ने सम्बंधित ग्रंथों की भूमिकाओं में किया है। उत्सवमाला की आचार्य-वंदनायें प्रक्षिप्त प्रतीत होती है, जो अज्ञात कवियों की ही है अथवा यह भी संभव है कि से बल्लभ-संप्रदायी प्रसंग कवि जयलाल जी ने जोड़ दिये हों ऐसा उन्होंने पूर्वकथित प्रतिबद्धता से किया हो।

(५) पं. ब्रजबल्लभशरण जी के अनुसार जोधपुर के पुरातत्व संग्रहालय में वि.सं. १८५८ में लिखी 'उत्सवमाला' की प्रति है उसमें ३५ पृष्ठ हैं, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी से आरंभ होकर हिंडोला पर्यंत बारह मास के भगवदुत्सवों के पद हैं। जहाँ महाप्रभुजी और गुसाई जी के उत्सवों की गंध तक नहीं है।(नागरीदास वाणी पृ. ३०)

(६) ब्रह्मचारी का मुकुट वाला प्रसंग जनश्रुति पर आधारित है, ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्ट न होने से उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है; पर ब्रजक्षेत्र में रासलीला में ऐसे भेद परम्परा से प्रचलित होने से उक्त घटना भी संभावित है।

(७) नागरीदास वाणी अंक के सम्पादक ने सभी तर्क पीठ तथा रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बहियों से प्रमाणित किये हुये दिये हैं जो उनके शोध-मंडल-संग्रहालय वृन्दावन में सुरक्षित हैं। प्राचीन चित्रों से सम्बंधित साक्ष्य भी ऐतिहासिक

प्रमाणों से पुष्ट किये गये हैं। यद्यपि उन्होंने रूपसिंह जी से सम्बंधित श्रीनाथ जी के साक्ष्यों को कल्पित माना है तथापि बचनिका के उक्त प्रसंगों से महाराजा रूपसिंह जी तथा पीताम्बर गाल में श्रीनाथजी के बैठक के शिलालेखों से महाराजा मानसिंह को बल्लभसंप्रदायी मान भी लिया तो भी महाराजा राजसिंह सहित उनका समस्त राजसी परिवार निम्बार्क संप्रदायी रहा है, यहां वंशानुगत उपासना परम्परा के आधार पर राजसिंह जी अथवा सांवतसिंह जी को पुष्टिमार्गीय उपासक नहीं माना जा सकता। बचनिका में म. मानसिंह जी तथा म. राजसिंह जी के वंशानुगत उपासनात्मक वर्चस्व का उल्लेख पुष्टिमार्ग के अनुयायी वृंद ने जानबूझ कर नहीं किया है जिसका प्रतिवाद पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

(८) डॉ. नारायणदत्त शर्मा ने काव्यानुशीलन आधार को, नागरीदास जी की सखी भावपरक निकुंज - रहस्यात्मक निम्बार्कीय रसोपासना के प्रसंगों से पुष्ट करते हुये सिद्ध किया है कि नागरीदास कृत काव्य की आत्मा निम्बार्कीय है। अत: हम भी इन सब तथ्यों को स्वीकारते हुये नागरीदास जी को निम्बार्क संप्रदाय में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी द्वारा दीक्षित मानते हैं जो हमारे द्वारा आगे दिये गये प्रमाणों से और भी पुष्ट हो जाता है।

(९) पदमुक्तावली नागरीदास जी कृत सबसे बड़ा ग्रंथ रहा है जिसकी हस्तलिखित मूल प्रति में नागरीदास जी कृत रचनाओं के साथ अन्य ९६ कवियों की रचनायें भी संकलित रही हैं; जिनके लिए कहा जाता है नागरीदासजी ने स्वयं ही इन पूर्ववर्ती तथा समसामयिक भक्त कवियों की रचनायें संकलित की थीं। नागर समुच्चय के संपादक ने बनीठनी, रूपसिंह, राजसिंह आदि कवियों के अतिरिक्त अन्य सभी कवियों की रचनायें निकाल दी हैं। डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने नागरीप्रचारिणी की ग्रंथावली में पदमुक्तावली को ज्यों का त्यों रखना ही समीचीन समझा है (पृ. १०९)। इसे देखकर प्रतीत होता है कि नागरीदास जी कृत पदों के साथ बल्लभ संप्रदायी अष्टछाप कवियों, राधाबल्लभ संप्रदाय के हितहरिवंश, ध्रुवदास, टट्टी संस्थान के स्वामी हरिदास, बिहारिनदेव, श्रीनिम्बार्क संप्रदाय के श्रीभट्ट तथा वृंदावन प्रभु तथा अन्य प्रसिद्ध वैष्णव कवियों के पदों को मिलाकर यह बात प्रचारित करने की योजना रही होगी कि नागरीदास जी समन्वयवादी वैष्णव थे ताकि आगे चलकर उनके संप्रदाय का सही निर्णय नहीं हो सके। इनको नागरीदास जी द्वारा संकलित किये जाने का प्रचार भी योजनाबद्ध रहा है? भला कौन ऐसा कवि आज तक हुआ है जिसने अन्य कवियों की रचनाओं को अपनी रचनाओं के साथ संकलित किया हो; और करे भी क्यों? यदि तुलनात्मक समानता बताने का उद्देश्य हो तो ऐसे कार्य के लिए परिशिष्ट या पाद टिप्पणियों की परिपाटी रही है; अत: अन्य ९६ कवियों की रचनाओं के घुलाने मिलाने तथा नागरीदास जी कृत मूल पदावली को इस प्रकार विकृत करने की साजिश से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि नागरीदास जी के ग्रंथों में कांट-छांट करने तथा घुलाने मिलाने का प्रयत्न नागर-समुच्चय से पूर्व भी होता रहा है। नागर-समुच्चय के संपादक जयलाल जी ने इस काट-छांट में और भी अधिक चतुराई बरती है कि उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय के श्रीभट्ट, श्रीवृंदावन प्रभु, घनानंद आदि कवियों के पदों को भी जो सहजरूप से रूपसिंह, राजसिंह , बनीठनी की भांति ही संलग्न थे; उन्हें भी अलग कर दिया है जबकि नागर समुच्चय में नागरीदास जी के अतिरिक्त अन्य सभी कवियों की रचनाओं को निकालना ही था तो फिर रूपसिंह - राजसिंह - बनीठनी की रचनाओं को रखने का भी औचित्य क्या था? स्पष्ट है कि संपादित नागर-समुच्चय के माध्यम से जयलाल जी नागरीदास- रूपसिंह - राजसिंह और बनीठनी को येन केन प्रकारेण बल्लभसंप्रदायी प्रतिपादित करने के लिए प्रयासरत रहे हैं।

पं. ब्रजबल्लभशरण जी ने पद मुक्तावली की दो तीन हस्तलिखित पोथियों का अन्वेषण किया है तथा बताया है कि एक पदमुक्तावली की हस्तलिखित पोथी में तो ऐसा भी पद मिलता है जिसमें 'बहादुरसिंह जी ' का परमधर्मप्रतिपालक श्यामाश्याम सनेही परम रसिक रूप में यश वर्णित है जो नागर समुच्चय के पृष्ठ ५८५ पर प्रकाशित हुआ है जो ग्रंथ के अंतर्गत समाविष्ट होने से नागरीदासकृत माना जावेगा - इसी उद्देश्य से संपादक द्वारा जोड़ा गया प्रतीत होता है :- (नागरीदास वाणी अंक पृ. २९)

परमधर्म प्रतिपाल समर मंडित अतिभारी ।
गुण मंडित मति विमल भक्ति नवधा अधिकारी ॥
रसकनि मन कौं मंत्र विमोहित सिंह बहादुर ।
श्यामाश्याम सनेह गेह करि राखे उर वर ॥
धुर धरनि भानशशि सप्त रिषि चिरंजीव जौ लौं सुखद ।
नृपराज राज महाराज सुत धन्य धन्य जग जस विशद ॥

ब्रजबल्लभशरण जी ने स्पष्ट कहा है कि छप्पय के अनुसार यदि बहादुरसिंह जी का ऐसा ही व्यक्तित्व होता तो वे ईश्वर तुल्य अपने पिता तथा पितृतुल्य भगवद्भक्त बड़े भ्राता को क्यों कष्ट पहुँचाते तथा उनका राज्याधिकार

क्यों हड़पते? परस्पर गृह युद्ध क्यों होता? + + आदि। 'विमोहित सिंह बहादुर' को श्लेषार्थक मानते हुए डॉ. गुप्त ने ना. प्र. द्वारा प्रकाशित नागरीदास ग्रंथावली में इसे नागरीदास जी के भतीजे विरदसिंह कृत नागरीदास प्रशस्ति माना है जो सही प्रतीत होती है। अतः दूसरी पदमुक्तावली के ये छप्पय प्रक्षिप्त हैं - इसी भांति अन्य पद मुक्तावली के पद 'परम पुष्टि रस जल अमित' 'बल्लभाचारज कल्पतरु' 'श्रीबल्लभाचारज कुमार' वेई गाय गोप वृंद आदि पद भी प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। उनकी मान्यता सही प्रतीत होती है कि नागरीदास जी एवं उनके पुत्र सरदारसिंह जी के देहावसान के बाद रूपनगढ़ राज्य के भी बहादुरसिंह जी सर्वेसर्वा बन गये थे तभी इस पदमुक्तावली में ऐसे प्रक्षिप्त अंश जोड़े गये थे। हमने भी यही निष्कर्ष पीछे दिया है।

'गोपी प्रेमप्रकाश' - ग्रंथ नागरीदासकृत मौलिक रचना में बल्लभसांप्रदायिक भावना से सूरदास जी कृत भ्रमरगीति पदों को संगृहीत किया गया प्रतीत होता है। ५५ पदों के इस ग्रंथ में ५ पद नागरीदास कृत हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि नागरीदास कृत मूल गृंथावली में जानबूझकर बल्लभ-संप्रदायी उपासना के अंतर्साक्ष्य संगृहीत किये गये हैं जिन्हें नागरीदास जी द्वारा संकलित किया जाना भ्रामक है। नागर-समुच्चय की हस्त लिखित पोथी ज्यों की त्यों नागरी प्रचारिणी द्वारा संपादित हुई है जिसमें पदमुक्तावली आदि में अन्य कवियों के पद निष्कासित नहीं किये गये हैं। जयलाल जी द्वारा संपादित मुद्रित नागर समुच्चय में बल्लभसंप्रदायी अनुकूलता के अनुरूप काट-छांट से दोनों में भी अंतर है। नागर समुच्चय की सर्वाधिक रूप से प्रचलित पोथियों में भागवत पारायणविधि ग्रंथ में नागरीदास जी के सभी दरबारी कवियों की रचनायें संकलित हैं तथा नागरीदास जी कृत पद नगण्य हैं। गोपी प्रकाश में ५३ पद सूरदास के हैं तथा केवल ५ पद नागरीदास कृत हैं, रामचरित्र माला के ३१ पदों में केवल ८ नागरीदास जी के हैं तथा तीन चार पद तुलसी-नंददास- परसा जी के अतिरिक्त सभी सूरदास के पद हैं। पदमुक्तावली इस दृष्टि से बहुचर्चित है। उल्लेखनीय है कि नागर समुच्चय में यह सबसे बड़ा ग्रंथ है और इसमें नागरीदास कृत निम्बार्कीय निकुंज रसोपासनात्मक पदों का बाहुल्य है पर आश्चर्य है कि पोथीकारों ने यहाँ विभिन्न साम्प्रदायिक ९६ कवियों के लगभग ४०० पद नागरीदास जी कृत शेष ४०० पदों के साथ संगृहीत किये हैं। अन्य साम्प्रदायिकों में सर्वाधिक रूप से बल्लभ संप्रदायी अष्टछाप के पद हैं; और जिनमें सर्वाधिक रूप से सूरदास कृत पदों का संग्रह है। प्रतीत होता है कि नागरीदास जी की निम्बार्कीय रसोपासना को बल्लभी रंग से जानबूझकर आच्छादित करने का प्रयास किया गया है। अथवा उनको बहुविध सांप्रदायिक समन्वय से प्रच्छन्न किया गया है।

हमारी यह भी धारणा है कि 'नागर समुच्चय' की प्राचीन हस्तलिखित पोथियाँ तथा तदनन्तर उनका जयलाल जी द्वारा संपादन, बहादुरसिंह जी द्वारा संस्थापित बल्लभ - संप्रदायी पुष्टिमार्गीय मंदिर में विधिवत् कीर्तन के अभिप्राय से संगृहीत किया गया - संकलन है जिसमें श्रीवृंदावनदेवाचार्य कृत गीतामृतगंगा पर आधारित किशनगढ़ घराने की विशिष्ट-नागरीदास-कीर्तन पद्धति के प्रचलन निमित्त तथा बल्लभसंप्रदायी पुष्टिमार्गीय उपासना एवं सेवापद्धति के अनुसार अष्टछाप के कवियों तथा तदनुरूप अन्य संप्रदायों के समरूप तुलनात्मक पदों का संग्रह कर दिया गया है। ऐसा सुनियोजित परिवर्तन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ के प्रभावी वर्चस्व से किशनगढ़ राज्य को तटस्थ करने की बल्लभसांप्रदायिक नई धार्मिक रीति नीति का सूत्रपात करने वाले कूटनीतिज्ञ म. बहादुरसिंह जी के राज्याश्रय से प्रारंभ हुआ; नागर - समुच्चय के विधिवत् संपादनकाल तक आते आते तो किशनगढ़ की राजकीय उपासना ही मानों बल्लभ-सांप्रदायिक बन जाने से नागरीदास ग्रंथावलियों में उक्त साम्प्रदायिक उपासना परिवेश के अनुरूप यथेष्ट परिवर्तन किये गये संभावित ही हैं

नागरीदास जी श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी द्वारा दीक्षित निम्बार्क - सांप्रदायिक निकुंज - रसिकोपासक थे :-

(1) नागरीदास जी की उभय-रसात्मक मधुरोपासना के पिछले प्रसंग में हमने विविध अंतर्साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित किया है कि नागरीदास जी की रसोपासना निम्बार्कीय है तथा उनके ग्रंथों में निम्बार्क सम्प्रदाय विहित परम्परावत् उभय-रसात्मक रसोपासना का प्रतिपादन हुआ है तथा उसमें निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशिष्ट निकुंजोपासना का प्राधान्य होने से उसका ही व्यापक वर्णन है। ब्रजरस और निकुंजरस न्यूनाधिक रूप से नागरीदास जी से पूर्ववर्ती तथा उनकी समकालिक निम्बार्कीय वाणियों में इसी प्रकार समन्वित रूप से प्रतिपादित हुआ है। श्रीभट्ट देवाचार्यकृत आदिवाणी-युगलशतक, श्री परशुरामदेवाचार्य कृत परशुराम पदावली (परशुराम सागर) श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत वृन्दावन वाणी गीतामृतगंगा तथा गोविन्दशरण देवाचार्य कृत गोविन्दवाणी उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना के मान्य ग्रंथ हैं। श्रीभट्टदेवाचार्य जी के उत्तराधिकारी रसिक वर्य्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी कृत महावाणी में एकांतिक रूप से सखी भावपरक निम्बार्क निकुंज रसोपासना का सांगोपांग चित्रण हुआ है जो मूलतः आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा केवल परमरसिकों के लिए उपदिष्ट निम्बार्कसंप्रदाय की परमगुह्य, विशिष्ट तथा नितान्त मानसिक-भाव की रसोपासना है, इस प्रकार ब्रजरस और निकुंज रस दोनों ही निम्बार्क संप्रदाय में परम्परावत मान्य है जबकि बल्लभ संप्रदाय में महाप्रभु बल्लभाचार्य द्वारा उपदिष्ट प्रमुख उपासना श्रीकृष्ण के बालस्वरूप की है जिसमें वात्सल्य, सख्य तथा गोपीभाव परक

व्रजरसोपासना समाविष्ट हुई है। गो. विट्ठलनाथजी ने श्रृंगार - मंडन तथा स्वामिनी स्तोत्रादिक ग्रंथों में श्रीराधातत्व को बल्लभसंप्रदाय में समाविष्ट करते हुये युगलविहार परक व्रजरसोपासना को मान्यता दी है तथापि बालस्वरूप श्रीकृष्ण की प्रमुख उपासना ही बल्लभ-संप्रदाय में अद्यावधि मान्य है; वहाँ निकुंज-रसोपासना की मान्य स्वीकृति नहीं होने से बल्लभसांप्रदायिक भक्तिग्रंथों में अद्यावधि इसका नितान्त अभाव है, ऐसी स्थिति में यदि नागरीदास जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होते तो उनके ग्रंथों में प्रमुख रूप से बालकृष्ण की इष्ट-उपासना का प्रचुर वर्णन होता; जबकि ऐसा नहीं है। वृन्दावन वास से पूर्व भी यदि उनकी बल्लभ-साम्प्रदायिक निष्ठा होती तो निश्चय ही उनके कई ग्रंथों में कृष्णगढ़ दुर्ग के वल्लभ सांप्रदायिक राजसी मंदिर में अद्यावधि पूज्य श्रीकृष्णस्वरूप श्रीनाथजी श्रीकल्याण राय जी अथवा नृत्यगोपाल जी की नामात्मक वंदनायें किंचित् मात्र तो होती; और अन्तत: नागरीदास जी का श्रीधामवृन्दावन में साधनात्मक वास न होकर व्रजधाम गोकुल में हुआ होता । बल्लभ-सांप्रदायिक निष्ठा की ऐसी स्थिति में नागरीदास जी की वाणी में निकुंज रस का नितान्त अभाव ही होता। संभवत: फिर उन्हें निकुंज-मंजरी बनीठनी जी का उनकी वृन्दावनस्थ निकुंज-परिचर्या में अद्यावधि सुख्यात चिर-साधनात्मक-साहचर्य भी नहीं मिलता; नितान्त एकनिष्ठ-स्वर में दोनों की निकुंज-रसपीयूषवर्षिणी वाणियों के समानरूप से ऐसे रस प्रवाह में श्रीधाम-निष्ठ निकुंज रसिकों का तनमन निमज्जित क्योंकर होता :-

हँसि हँसि दोउ बातनि करहीं ।
अधर खुलनि, चमकनि चौका की, लाड़भरी बतरानि उचरहीं ॥
कबहुँ कबहुँ रहि जात एकटक, बहुरि छकि अँखियां ढुरहीं ।
नागरीदास मोहनी मोहन, रीझि परसपर अंकनि भरहीं ॥
दंपति रंगमहल मधि गावत ।
तानन मैं हाँ हाँ 'न न' की बतियाँ सुनत सखी सुख पावत ।
कबहुँक अधरनि छुवा कैं, मंदमंद मुसक्यावत ॥
बिबस होय मोहन प्यारी कूं, भुजभरि उर लपटावत ।
श्रीरसिक बिहारी कौं सखी रंगी, निरखत नैंन सिरावत ॥ (पद मुक्ता.)

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय की अनादि वैदिक सनातन परम्परानुसार रसौ वै स: - श्रुतिप्रतिपादित रसरूप परब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के अनुरूप उनकी अंतरंगभूता आद्याशक्ति परमाह्लादिनी-रस-अधिष्ठात्री परमानंद प्रेमरस रूपिणी निकुंज स्वामिनी नित्य किशोरी श्रीराधाजी ही नागरीदासजी की इष्ट-आराध्या हैं; सर्वोच्च-भाव से उन्हीं का परमाराधन उन्हें अभीष्ट है। नागरीदास जी के रसोपासना प्रसंगमें इन्हीं राधाजी के प्रति निम्बार्कीय परम्परावत् उनकी सर्वोपरि आराधना भी प्रतिपादित हुई है। रसिकों के परमगुह्य निकुंज-केलि-योगपीठ श्रीधाम वृंदावन के प्रति नागरीदास जी की व्यापक रूप से अनन्य निष्ठा अभिव्यक्त हुई है; इन सब परिस्थितियों में नागरीदास जी द्वारा प्रमुख रूप से प्रतिपादित निकुंज रसोपासना को कतिपय विद्वानों के मतानुसार केवल निम्बार्कीय प्रभाव नहीं माना जा सकता क्योंकि संभवत: वे पूर्वोक्त प्रसंगों के अनुसार नागर-समुच्चय के तथाकथित प्रक्षिप्तांशों से दिग्भ्रमित हुये हैं; अन्यथा वे नागरीदासजी के ग्रंथों में गंगधारावत् विपुल रूप से प्रवाहित निकुंज-रसोपासना की उपेक्षा करते हुये उन्हें बल्लभसंप्रदायी बताने की भूल नहीं करते। नागरीदास कृत ग्रंथों में व्रजरसबिहार के साथ अत्यंत व्यापक रूप से वर्णित प्रधानत: निकुंज-रसोपासनात्मक निकुंज केलि बिहार से वे स्वत: ही निम्बार्कीय रसोपासक सिद्ध होते हैं; इसके विपरीत उन्हें कतिपय अत्यल्प कायिक ग्रंथों के अपरीक्षित साक्ष्यों के आधार पर बल्लभसंप्रदायी बताना उनके महान मौलिक व्यक्तित्व को प्रच्छन्न करना है।

(2) नागरीदास जी के माता पिता म. राजसिंह जी तथा महारानी चतुरकुँवरी जी ने अपने गुरुवर्य्य श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीनारायणदेवाचार्य जी के शुभाशीर्वाद से वि.सं. १७५६ में तृतीय पुत्र प्राप्त किया था। उसी कृष्णसिंह जी की निम्बार्कीय दीक्षा उक्त गुरुदेव के परमधाम सिधार जाने पर उनके उत्तराधिकारी श्रीवृंदावन देवाचार्य जी से उन्होंने करवाई थी - यह प्रसंग हम पीछे प्रतिपादित कर चुके हैं। नागर समुच्चय में बल्लभसंप्रदायी मान्यतानुसार उनके कथित गुरु रणछोड़दास जी का नामोल्लेख तक नहीं हुआ है; निम्बार्कीय साक्ष्यों को जानबूझकर हटाने के अभिप्राय से आदिवाणीकार श्रीभट्ट तथा नागरीदास जी के गुरु श्रीवृन्दावनदेव का नाम कवि जयलाल जी द्वारा निष्कासित किया गया है तथापि कई पदों का संकलन श्रीभट्ट तथा श्रीवृंदावन प्रभु के नाम से ह. लि. नागर समुच्चय में अब भी विद्यमान है; तथा नागरीदासजी ने श्रीवृंदावनदेवाचार्य कृत वृंदावनवाणी - गीतामृत गंगा भक्ति काव्य की भाव एवं कला तथा रसोपासनात्मक दृष्टि से अनुसृति की है; संगीत-काव्यशिक्षा, रसोपासनात्मक - निर्देशन आदि सभी आपने अपने इन्हीं गुरु से प्राप्त किया था;

साथ ही हमने चित्रात्मक आधारों से भी यह तथ्य प्रतिपादित किया है। इन परिस्थितियों में यह निर्विवाद रूप से माना जाना चाहिये कि श्रीवृन्दावनदेवाचार्य ही नागरीदास जी के दीक्षागुरु थे।

(३) वि सं. १७७५ में वृन्दावनधाम में आपकी माताश्री का निकुंजगमन हो गया था तथा वि. सं. १७७६ में आपके पिता म. राजसिंह का बाकांवती जी से विवाह हो जाने से ब्रजकुँवरी बांकावती जी आपकी विमाता बनी। निकुंज रस की परम-साध्वी ब्रजकुँवरी जी ने श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी से दीक्षा ली थी तथा गुरु चरणों ने उनका निकुंज-सेवा का रहस्यात्मक नाम ब्रजदासी रख दिया था। इन प्रसंगों के साथ पिछले पृष्ठों पर यह भी बताया जा चुका है कि उनकी माता चतुरकुँवरी जी के निधन से बनी युवराज सांवतसिंह नागरीदास जी की रुग्ण मानसिकता को निकुंज-रस का सरस-साधनात्मक-संबल देकर उनमें वृन्दावन निष्ठा की उदात्त भावना जागृत करने का कार्य विमाता ब्रजकुँवरी जी की वात्सल्यमयी मातृच्छाया रूपी सत्संग ने किया था। इन्हीं परिस्थितियों में 'वैराग्यवटी' और 'देहदसा' ग्रंथों में अभिव्यक्त नागरीदास जी के जीवन की पलायनवृत्ति निकुंज-साधना के अभीष्ट से वृंदावनवास के 'मनोरथ' में परिवर्तित हो गई।

नागरीदास जी ने वि.सं. १७८० आश्विन कृष्णा १४ मंगलवार को अपनी सर्वप्रथम रचना 'मनोरथ मंजरी' पूर्ण करते हुये अपने २४ वर्षीय युवाकाल में ही निम्बार्कीय निकुंज-रसात्मक-साधना हेतु अपने वृंदावनवास का अभीष्ट-संकल्प 'मनोरथ' के रूप में विधिवत् ग्रंथित कर दिया था। इस ग्रंथ में वर्णित उत्कट श्रीधामनिष्ठा से नागरीदास जी द्वारा किया गया निम्बार्कीय रसोपासना का प्रामाणिक दृढ़-संकल्प, राजकलह से राजपाट परित्याग कर अन्ततः वृन्दावन वास के लिए प्रस्थान करने वाली वि.सं. १८१४ की घटना से पूर्व परिपुष्ट भाव की प्रबल पृष्ठभूमि के रूप में हुआ था। अस्तु, नागरीदास कृत निम्बार्कीय-निकुंज-रसोपासना-प्रधान विपुल साधनात्मक काव्यरचना का यही मंगलाचरण था। अनन्य - भाव - समन्वित ऐसी श्रीधाम निष्ठा ब्रजभाषा के भक्ति साहित्य में दुर्लभ्य है :-

कब वृंदावन धरन मैं, चरन परैंगे जाय । लौटि धूरि धरि सीस पर, कछु मुखहूं मैं पाय ॥
पिक केकी कोकिल कुहुक, बंदर वृंद अपार । ऐसे तरु लखि निकट तैं, कब मिलिहौं बाँह पसार ॥
कबैं रसीली कुंज मैं, हौं करिहौं परवेस । लखि लखि लता जु लहलही, चित ह्वैगो आवेस ॥
मोकौं लै एकंत मैं, मिलि रसिक बिसाल । कबैं सुरत नव कुंज की, कहिहैं बात रसाल ॥
गउर बाँह सुठि ग्रीव पर, चूरी हरि रसाल । इन नैंननि कबधौं लखौं चूमत झुकि झुकि लाल ॥
महाछीन कटि किंकिनी, मद खंडत तन काम । सो अब कबहौं देखिहौं, लाज बहावन बाम ॥
संवत सतरा सैं असी, चोदसि मंगलवार । प्रगट मनोरथ मंजरी, बदि आसू अवतार ॥ ४५॥

वि.सं. १७५६ में नागरीदास जन्में निम्बार्काचार्य श्री नारायणदेवाचार्य जी के शुभाशीर्वाद से, उनकी दीक्षा हुई निम्बार्काचार्य श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी से, वि.सं. १७८० में २४ वर्षीय युवराज ने वृंदावनवास की अनन्यनिष्ठा से निकुंज केलि रसोपासना का ही मनोरथ किया; तदनन्तर वि. सं. १८१४ तक ३४ वर्ष तक अर्थात् ५८ वर्षीय आयुपर्यंत रूपनगढ़-दिल्ली-वृंदावन-गुरुपीठ सलेमाबाद में वास करते हुये गुरु श्री श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के निम्बार्कीय सत्संगी सान्निध्य में तथा म. राजसिंह जी, ब्रजकुँवरी जी के निम्बार्कीय राजकुल-परिवेश में रहते हुये आपने अनेकानेक निम्बार्कीयरसोपासनात्मक महनीय ग्रंथों की रचना की तदनन्तर राजपाट का परित्याग करके भी ७ वर्ष पर्यंत उन्होंने निम्बार्कीय निकुंज केलि सेवा में ही वृन्दावनस्थ नागरी कुंज में ही निवास किया। वि. सं. १८१९ में यहीं वृन्दावन की अनन्यनिष्ठा का वनजन प्रशंसा ग्रंथ पूर्ण हुआ । और अन्ततः निकुंज-स्वामिनी की निम्बार्कीय सखी-परिचर्या की तल्लीन-अवस्था में निकुंज-केलि रत श्यामा-श्याम के शरद - ज्योतिष्णा में दर्शनों का अनन्तानन्तानंद रूपी चिर अभिलषित उनका मनोरथ भी सिद्ध हो गया। निम्नोक्त पद में उनकी इसी निम्बार्कीय-निकुंज-निष्ठ परमानंद की चरमोपलब्धि अत्यंत स्पष्टशब्दों में उजागर हुई है; इसी पद के भावसाम्य पर निहालचंद्र द्वारा बनाये गये स्वर्णिम चित्र का ऐतिहासिक साक्ष्य कृष्णगढ़ के चित्रसंग्रहालय में वर्षों तक दर्शनीय रहा है; किशनगढ़ निवासी नागरीदास जी के अनन्य श्रद्धालु इसके दर्शनों के साक्षी हैं :-

(अहो) मोर बोलहीं बिमलचंद . उजियारी ।
पुनि प्रतिशब्द होत वृंदावन, गरजत गिरि कंदरा सारी ॥
अति आनंद भयौ कोलाहल, रही पाछली पहर निसारी ।
नागरिदासि स्यांम स्यांमा रति समैं अनूपम ऊँची अटारी ॥

(४४३ पदमुक्तावली ह. प्र.)

इस प्रकार जन्म से निकुंज प्रवेश तक की नागरीदास जी की निकुंज-रसोपासनात्मक अनवरत ६५ वर्षीय प्रामाणिक जीवनयात्रा से पिछले प्रसंगों में उल्लेखित उन सभी विद्वानों की ऐसी धारणायें निर्मूल हो जाती हैं कि नागरीदास जी

जीवन के प्रारंभ में बल्लभसंप्रदायी थे तदनन्तर वृन्दावनवास में उन्होंने निम्बार्कीय-रसोपासना को अंगीकार कर लिया था। अस्तु नागरीदास न बल्लभी थे और न ही समन्वयवादी वरन् उनका व्यक्तित्व जन्म से मृत्यु पर्यन्त अप्रच्छन्न रूप से निम्बार्की था।

(३) नागरीदास जी की उभय-रसात्मक मधुरोपासना के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है कि मनोरथ मंजरी, प्रातरस मंजरी, भोजनानंद-अष्टक, जुगलरस माधुरी, रैंनि रूपारस, चांदनी के कवित्त, वर्षा ऋतु की मांझैं, सरद की मांझै, बिहार चंद्रिका, भोरलीला, फागबिहार, निकुंज विलास, रसिक रतनावली, वन जनप्रशंसा, आदि निम्बार्कीय निकुंज केलि रसोपासनात्मक तथा श्रीधाम निष्ठा के सैद्धान्तिक ग्रंथ हैं तथा ग्रीषम बिहार, पावस पच्चीसी, रासरसलता, ठकुरानी जी के जन्मोत्सव कवित्त, ठाकुरजी के जन्मोत्सव कवित्त, सांझी कवित्त, सांझी फूल बीननि समैं संवादकवित्त, दिवारी कवित्त, हिंडौरा कवित्त, वर्षा कवित्त, छूटक कवित्त, होरी की मांझै, छूटक पद, उत्सवमाला तथा पदमुक्तावली आदि उभयरसात्मक ग्रंथों में भी व्रजबिहार के साथ वृन्दावनस्थ निम्बार्कीय निकुंजबिहार की विपुलधारा प्रवाहित हुई है। इसी प्रकार दोहनानंद अष्टक, व्रजसार, लगनाष्टक, रास अनुक्रम दोहा, छूटक दोहा, मजलस मंडन, गोवर्धन धारण के कवित्त, वसंत वर्णन के कवित्त, होरी के कवित्त, फागन खेल समैं अनुक्रम, अरिल्लाष्टक, अरिल्ल पच्चीसी, गोपी प्रेम प्रकाश, व्रजलीला आदि ग्रंथों में वर्णित व्रजबिहार भी निम्बार्कीय वाणियों में परम्परावत मान्य हैं। इस प्रकार नागरीदास जी कृत लगभग सभी रचनायें निम्बार्कीय हैं।

(४) बिहार चंद्रिका, निकुंज विलास, जुगल रसमाधुरी आदि ग्रंथों में परमगुह्य केलि-रसोपासना का सांगोपांग चित्रण हुआ है। निकुंज-केलि विलास की सैद्धान्तिक रूप से परमगोपनीयता का निरूपण करते हुये नागरीदास जी ने निम्बार्कीय परम्परानुसार केवल रसिकों को ही इसका अधिकारी बताया है :-

वृन्दावन कुंजन के रहसि उपासक जे, निसदिन स्यामां स्यांम ही कौ गुन गांवनौ ।
सज्जन सनेही सुखदाइक रसिक महा, सुनि लीला लोचननि नीर ढरकांवनौ ।
नागरिया दास हौंहि तिन्हैं संत प्यारे, यहैं चंद्रिका बिहार ग्रंथ ताहि कौ सुनांवनौ ।
वादी आनधर्मी ताके विद्याअभिमान होई, जांसौ यहै जाही ताही भांति कै दुरावनौ ।

यह बिहार चंद्रिका वि.सं. १७८८ श्रावनमास में पूर्ण हुई थी'' सतरै सैं अठ्यासिया, संवत सांवन मास। नवविहार यह चंद्रिका, करी नागरीदास।'' से स्पष्ट है। नागरीदास जी के दरबारी चित्रकार निहालचंद्र जी ने 'बिहार चंद्रिका' ग्रंथ के संपूर्ण भावसाम्य तथा काव्यकलात्मक वर्णन को मूर्त रूप में दरसाने हेतु उसका सांगोपांग निकुंज - केलि-रसोपासनात्मक चित्र बनाया है जो किशनगढ़ की प्राचीन नागरीदास चित्रशैली का अनुपम चित्र है। डॉ. फैय्याज अली जी ने नागरीदास शैली की कृष्णगढ़ चित्रावली में इस चित्र को 'बोट आफ लव' शीर्षक से युगल का नौकाबिहार कहा है जबकि यह निकुंज-केलि की निम्बार्कीय रसोपासना का सांगोपांग सैद्धान्तिक चित्र है जिसमें गोलोकधाम वृन्दावन, दंपति रतिविलास का द्रुमाच्छादित कुसुमित शरद चन्द्रोज्ज्वल निकुंजकेलि-स्थल, सखियों द्वारा आयोजित रस पोषक नौका बिहार तदनन्तर कुंज रंध्रों से सुखद सेज पर रति क्रीड़ारत दंपति का तटस्थ भाव से सखियों द्वारा अभिलषित दर्शन आदि का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ में नित्य-केलिकुंज बिहारी बिहारिणी जी के रसरूप दंपति का नित्यप्रति नूतन उत्साह से उमंगित निकुंज-केलि बिहार, दंपति के तद्भावानुरूप निकुंज-सहचरियों की केलि-सेवा एवं दिव्यभूमि निकुंज केलि धाम वृन्दावन का रहस्यात्मक चित्रण हुआ है; दंपति के विलास की तत्सुख सुखित्व समन्वित सहचरी सेवा का सुख भी निरुपित हुआ है; इस प्रकार इस ग्रंथ में सांगोपांग रूप से निम्बार्कीय निकुंज केलि रसोपासना का प्रतिपादन हुआ है:-

नित्य राधा नंदलाल रूपरस रस रास सनेही ।
नित्य लगन रस मगन करत कल केलि अछेही ॥
नित्य दुहुनि चित चाह चटपटी चौंप नवेली ।
नित्य सुखद संकेत रचावत रूचिर सहेली ॥
तैसो कुसमित बन मनौं, मनमथ सर पंजर कियो ।
नागर नित्त बिहार कौं, लखि दंपति हुलसत हियो ॥

रसरूप परब्रह्म परमानंद स्वरूप दंपति के शरद-नौका बिहार से उद्दीप्त शरद-केलि-विलास के सभी तत्व स्फटिक महल, स्वच्छ चंद्रिमा, शीतलमंद सुवासित बयार, फूल फूलनी-सुंदर सेजादि सभी केलि विधान तथा दंपति की दिव्यकामकेलि सभी अलौकिक परमानंद-परमसौंदर्य समन्वित दिव्य उज्ज्वल रस के प्रतिपादक हैं :-

उज्ज्वल महल उच्च सुच्छ चंद्रिका प्रकास, मंदगति सीतल बयार सुखकारी जू ।

कसित सुडोरी सेज, चौसर चंबेली बेली, फूलि रही फूलनि की बास मनुहारी जू ॥
चौकी चारू अतर गुलाब सीसे चमकत, ससि की मयूखैं मिली कौतुक उजारी जू ।
पूरन सरद रैंनी बिलसत सुख सैंनी, कोक कला नागर बिहारिनि बिहारी जू ॥

इसी प्रकार निकुंज - विलास में भी रसिकवर्य्य श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत महावाणी परम्परा का सांगोपांग निकुंज-केलि-क्रीड़ा का दंपतिविलास प्रतिपादित हुआ है। उल्लेखनीय है कि निम्बार्कीय निकुंज-केलि रसोपासना के सखी-सेवा रसमर्मज्ञ रसिकोपासक नागरीदास जी ने यहां प्रात: मंगला से शयनपर्यंत की अष्टकालिक सखीभाव की निकुंज-केलि सेवा का परम रहस्यात्मक, सांगोपांग तथा निम्बार्कीय रसोपासना की महावाणी परम्परावत् सैद्धान्तिक प्रतिपादन किया गया है; ग्रंथ के मंगलाचरण में नागरीदास जी ने रसरूप दंपति, नित्य निकुंज बिहारी बिहारिणी श्रीराधाकृष्ण के आदि अनादि एकरस सर्वदा सनातन एकरूप रसरूप परब्रह्म दंपति का निम्बार्कीय स्वरूप प्रतिपादित कर दिया है। जो रसक्रीड़ा हेतु एक प्राण द्वै देह के दिव्य रूप में है, रसविस्तारिणी स्वामिनी श्रीराधाजी, निकुंज- केलिस्थल वृन्दावन, उनका नित्यनूतन वयस का नित्य नूतन निकुंज विहार, मुंह चही सहचरी आदि सभी तत्व रसरूप परब्रह्म की लीला विस्तृति ही है :-

गौर स्याम नित एक रस, नउतन रस अछेह ।
एक वयक्रम एक मन, एक प्रान द्वै देह ॥
पिय प्यारी वृन्दाविपुन, नित्यविहार रस एक ।
विछुरत नाहीं पलकहूं बीतत कलप अनेक ॥
नव निकुंज मन कौं अगम, सेवत कोटि अनंग।
जुगल केलि आनंद कौ तहाँ अखंडित रंग ॥
नैंन नैंन सियरावहीं बैंन संजीवन मंत्र ।
मुहाँचही जिय ज्यांवही, स्यामास्याम सुतंत्र ॥
लाल कैं सर्बस बाल हैं, बाल कैं सर्बस लाल ।
दुहुनि कैं वृंदाविपुन के सर्वस ताल तमाल ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वृहदगौतमीय तंत्र, संमोहनतंत्र, ब्रह्मसंहिता आदि विविध ग्रंथों में युगल स्वरूप की मधुरभक्ति, निकुंज-केलि-रसोपासना तथा सखी सेवा का प्रतिपादन हुआ है जिनके आधारभूत सिद्धान्तों पर आद्याचार्य भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने निम्बार्क-सम्प्रदाय-विशिष्ट निकुंज-रसोपासना का सर्वप्रथम प्रवर्तन किया है, यही रसोपासना श्रीभट्ट की आदि वाणी, श्रीहरिव्यास देवाचार्य कृत महावाणी के ब्रजभाषा कलेवर में व्यापक रूप से निरूपित हुई है। निम्बार्कीय रसोपासना की समस्त वाणियों का यही मूल स्रोत है। यहाँ श्री कृष्ण रसरूप परब्रह्म परमानंद स्वरूप परमसुंदर, परममधुर, सर्वसद्‌गुणालंकृत, नित्य किशोर हैं जो कोटिकाम देवों का दर्प दलन करने वाले रसिकराजराजेश्वर राधारमण हैं।

श्रीराधा रसरूप परब्रह्म की रस पोषिका परमाह्लादिनी आद्याशक्ति परमेश्वरी निकुंजस्वामिनी, निकुंज केलि-रस विस्तारिणी नित्य किशोरी प्रेमस्वरूपिणी प्राणप्रिया लाडली निकुंज-बिहारिणी वृन्दावनेश्वरी हैं जो रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण के अनुरूप परमेश्वर्यमयी परम सुंदरी उनकी लीलाविस्तारिणी प्रियातमा हैं तथा श्रीकृष्ण लाडलीलाल राधारमण हैं सच्चिदानंद परब्रह्म श्रीकृष्ण वृंदावन बिहारी रसिकेश्वर नित्य बिहारी पूर्ण पुरुषोत्तम हैं तथापि उनकी रस-अधिष्ठात्री नित्यकिशोरी निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी का ही वृन्दावन बिहार में प्राधान्य हैं; नित्यबिहारी श्रीकृष्ण के रसरूप की पूर्णता उन्हीं के द्वारा होने से वे उनकी परमाराध्या हैं, चराचर इन्हीं किशोरी जी का प्रतिबिम्ब है तथापि दंपति अनादिरूप से एकतत्व, परस्पर अभिन्न-अद्वैत, सदासर्वदा एकरस-रसमय और अनन्त हैं तथा नित्यनूतन किशोरावस्था में युगलविग्रह रूप से नित्य बिहार करते हैं। नागरीदास जी ने निकुंज विलास के पूर्वोक्त प्रसंग में निकुंज केलि-रत बिहारी बिहारिणी जी के इसी निम्बार्कीय-युगलतत्व का प्रतिपादन किया है ।

निकुंज केलि का दिव्य - स्थल श्रीधाम वृन्दावन है जो नितान्त अप्राकृत तथा गोलोक - बैकुंठादि धामों से भी पावन है। पद्मपुराण के द्वितीय अध्याय पाताल खंड में इसे अत्यन्त गुह्य; परमानंददायक, अद्‌भुत-रहस्यों से परिपूर्ण, नित्यनूतन, देवाधिदेवविष्णु को भी दुर्लभ, गोलोक-बैकुंठ-द्वारिका से भी श्रेष्ठ तथा ब्रह्मांड से सर्वथा परे बताया गया है। निम्बार्कीय निकुंज-केलि-रसोपासना में वृन्दावन का और भी महनीय स्थान है, नित्यबिहारी का दिव्य वृन्दावन ही निकुंज-केलि बिहारी-बिहारिणी जू का क्रीड़ा स्थल दिव्य रंगमहल है; महावाणी में वर्णित सखियों की भावनानुसार अनेक सजाओं से सज्जित दंपति का यही दिव्य रंग स्थल फूलमहल अथवा फूल बंगला है, नित्य बसंत के नित्यनूतन

प्रकृति-परिवेश से आच्छादित सुकुसुमित कुंजों से आवेष्ठित प्रिया प्रियतम की सुखद-सेज है। यही रसिकोपासना रत परम योगियों का योगपीठ है; ऐसे दिव्य स्थल वृन्दावन में एकमात्र स्वामिनी श्रीराधिका जी का एकछत्र राज्य है; जहाँ उन्हीं की कृपा से, उन्हीं के प्रति अनन्य-भाव से चरणाश्रित सखियों-सहचरियों को ही निकुंजप्रवेश सुलभ है श्रीभट्ट देवाचार्य कृत युगलशतक तथा श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत महावाणी में इसी दिव्य वृन्दावन तत्व का निरूपण हुआ है। पिछले प्रसंगों में हमने वनजन प्रशंसादि ग्रंथों में नागरीदास जी द्वारा व्यापक रूप से प्रतिपादित वृन्दावन निष्ठा का दिग्दर्शन कराया है। 'निकुंज विलास' आदि निकुँज-केलि-रसोपासना के नागरीदास कृत कई ग्रंथों में निकुंज-केलि-स्थल दिव्य वृन्दावन का यही महनीय स्वरूप प्रतिपादित हुआ है :-

सोभा संपति विपुन की, बरनत बनैं न बैंन। दंपतिहूं छकि रहत लखि, बढ़त मैंन कैं मैंन ॥
लता फूल फल संकुलित, काम कुटी अनयास । कदली अंब कदंब मिलि, बनि बनि रहे अवास ॥
ताल तमालनि जाल बिच, सुभग सरोवर नीर । अमल कमल प्रफुलित तहाँ, रोचक त्रिबिध समीर ॥
सुक सारिक अरु कोकिला, मत्त मधुप कलहंस । नित अपनी बानीन सौं, करत हैं केलि प्रशंस ॥
वृंदावन भुव अंकुरित, सबै हरित नवरंग । जुगल कमल पद परस कैं भई रोमांचित अंग ॥
हरित भूमि पर रतन की, वारौं अवनि कठोर । द्रुम सोभा सम लगत नहिं, महल जराव करोर ॥
हरित अंकुरित भूमि बन, कनकमईहूं नित्त । जाही कौ बरनन करैं, जो भावै जिहिं चित्त ॥
विपुन कुसुम रज धुंधरित, ज्यों सर पंजर कांम। तहाँ बिछौना फूल कैं, परे रहैं अभिराम ॥
सदा एकरस बन अवनि, हरित द्रुमनि की भीर । कुँवरि कमलदल दृगनि की, चितवनि सींच्यौ नीर ॥
ऐसैं वृंदाविपुन मैं, निति बिहार रस एक । कहू जथामति तनकही, कौतुक केलि अनेक ॥

दंपति का यह निकुंज-विलास ऋतु-पर्व-उत्सव, काम-केलि-प्रसंग, रसराजश्रृँगार के विविध विधान काव्यकला, संगीत-राग रागनियों के अनुसार अनन्तानन्त है; युगल की प्रतिपल नूतन भावना, सखी-सहचरी-भाव में उमंगित रसिकों के प्रतिपल नूतन-उत्साह और चाव के अनुसार अनन्त है। निकुंज केलि का यह नित्य विहार अष्टकालिक अहर्निश सहचरी-सेवानुरूप प्रतिपल नव नव उत्साह और उमंग से प्रतिपल नित्य नूतन है। बिहार-चंद्रिका के प्रसंग में भी नागरीदासजी ने नित्यबिहार का यही स्वरूप प्रतिपादित किया है :-

नित्यबिहारी लाल संग, परमप्रिय सुकंवार । भूमि रैंन तारेन तैं, इनके अधिक बिहार ॥

निकुंज विलास के इस प्रसंग में भी वर्णित अष्टकालिक निकुंज बिहार को नागरीदास जी ने अनन्तानंत नित्यबिहार का आभास कह कर दंपति के इस रति विलास को सदासर्वदा नित्य अनन्त अखंड अनादि अनिर्वचनीय तत्व कहकर प्रतिपादित कर दिया है; निम्नोक्त वचनों का यही तात्पर्य है :-

श्री गुरु नेह सरूप ससि, हिय मैं करो प्रकास । अष्ट प्रहर की केलि कौं, जांनि परै आभास ॥
श्रीस्यांमा अरु स्यांम कैं, अमल कमल पद चार । तिनकौं वंदन करि कहूं, तिनकौं कछू बिहार ॥

ब्राह्ममुहूर्त से शयन तक युगल स्वरूप की दिव्य चेष्टाओं का ध्यान करना, मंगला, श्रृंगार, भोग, निकुंज-प्रवेश शयन आदि के अवसरों पर दंपति के प्रति निकुंज केलि की सेवा सुखानुभूति के तटस्थ भाव से निकुंज-क्रीड़ा का तत्परता से विधान करते हुये युगल चरणों का अनवरत सान्निध्य प्राप्त करना ही सहचरी - सेवा - सुख का सार है। अष्टकालिक प्रहरों में प्रियाप्रियतम की केलिसुख चेष्टाओं में संलग्न सहचरी हृदय की सुकोमल भावनाओं से दंपति की मानमनुहार, अनुनय-विनय, मधुर हास विलास से उनका लाड लडावन करना निकुंज-सेवा का रहस्य है। रतिरत दंपति का सुरतिसुख रसिकोपासक सहचरी-साधक की परमानंद अवस्था है जहाँ वह दिव्यक्रीड़ास्थल अप्राकृत वृन्दावन में रतिरत श्यामा-श्याम के दिव्यरसरूप की अलौकिक छबि का कुंजरंध्रों के तटस्थ भाव से परमगुह्य दर्शन करता हुआ दिव्य रसानंद की स्थिति में पहुँचता है और यही चरमोपलब्धि उसका परमसुख-परमानंद है। ब्रजरस बिहार में भी वृन्दावन का नित्यबिहार समाहित है तथापि दोनों में मौलिक अन्तर भाव का है। ब्रजबिहार में गोपियों तथा सखियों का युगलपरक लीलानंद में तटस्थ सुखानुभूति का विधान नहीं है। रास आदि की युगल क्रीड़ाओं में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति आलिंगन-चुम्बनादि से ईश्वरपरक प्रेम का प्रत्यक्ष पोषण प्रतिपादित है तथा ब्रजरसप्रधान युगल की वृन्दावनस्थ नित्य-बिहार लीलाओं में भी सखियों की प्रत्यक्ष सुखानुभूति की परमार्जित अभिव्यक्ति निहित है; पर निम्बार्कीय निकुंज-केलि के नित्य निकुंज विहार की दाम्पत्य लीलाओं के सहचरी भावपरक निकुंज-सेवासुख में नितांत निरपेक्ष भाव के दर्शनानंद का ही विधान होता है। दंपति के निकुंज प्रवेश के तदनन्तर ज्योंही दंपति निकुंज केलि में सुरतिरत होते हैं त्यों ही सहचरियाँ निकुंज से बाहर होकर युगल केलि को निर्बाध-निर्द्वन्द कर देती हैं; इस प्रकार केलि साक्षिणी सहचरियाँ कुंज-रंध्रों से ही निकुंज बिहार के तटस्थ भाव का रसानंद लेती हैं। निकुंज विलास में वर्णित सहचरी-भाव के इस

अष्टकालिक निकुंज-केलि बिहार का नागरीदास दास जी ने महावाणी जी के सेवा सुख तथा सुरति सुख अनुसार प्रतिपादन किया है। अष्टकालिक सहचरी-सेवा एवं निकुंज-केलि बिहार का दिव्य-स्वरूप संक्षिप्त रूप में दर्शनीय है :-

(अथ प्रात: समैं बर्ननं)

कछुक भुरहरी सखियां आईं । बीन बजाई मधुर सुर गाई ।
कोउ कोउ हँसि डारत हैं फूल । दोउ पौढे इक ओढि दुकूल ॥
लटपटाय सोवत हैं जगैं । अरसौंहैं दृग दृगनि मैं खगैं ॥
बैठे, लपटि, लटकि फिरि सोवैं। यह सुख सखी द्रुमनि मैं जोवैं ॥

(अथ स्नान केलि)

प्यारी न्हात, न्हवात पिय, रस लंपट रिझवार । भीजैं तन लपटानि कौं, लेत दोऊ सुखसार ॥
मंजन कुंज मैं हौत सुख, वरनत बनैं न बैंन । मौनहिं मैं ताकी कहनि, जांनत मन कैं नैंन ॥

(अथसिंगार वर्ननं)

आए कुंज सिंगार मैं जबै । जिहिं ठां सौंज धरी सबै ॥
पहलै ल्याई महावर । पिय कैं आनंद बढ्यौ उर ॥
मुदित लाल जब लगे लगावन । पौंछ पौंछ पीतांबर पावन ॥
कंपत कर रंग भर्‍यौ न जाय । रहौ रहौ कहति कुँवरि मुसक्याय ॥
पुनि दंपति मिलि दर्पन देखैं । करत सिंगार न लगत निमैषैं ॥
दर्पन से तन, तन मैं झलकैं । लखि झलकैं, लागत नहिं पलकैं ॥
सखी सुघर भूषण पहिनावै । बिच बिच कहुकहि हंसै हंसावै ॥

(अथ भोजन समैं वर्ननं)

पुनि भोजन ल्याई सखी, दई जवनिका डारि । को जन कवि रसनाइ कैं, वहि सुख सकैं उचारि ॥
मिलि जैंवत दोउ दरस रस , रसनां रस बिसराय। गई छुधा सब उदर की, रही दृगनि मैं आय ॥

इसी प्रकार आरती समैं बर्ननं, दुपहरी समैं दुतिय कुंज प्रवेस वर्ननं तदनंतर निकुंज रहस केलि क्रम की सेवा वर्णित है। निम्नोक्त निकुंज-केलि रहस्य के भावसाम्य पर बना किशनगढ़ की नागरीदास शैली का चित्र भी अत्यंत प्रचलित है :-

कहैं सखी तब सुनियै प्यारी। हम सब ओट हौत हैं न्यारी ॥
यौं कहि उठि ललितादिक सखियाँ। द्रुमनि लागि रहीं ज्यौं मधुमखियाँ ॥
भुज भरि पिय. कौं कंठ लगाए । अधर सुधारस प्याय जगाए ॥
मगन भए दोउ रति रस गहिरैं । काम उदधि की बाढ़ी लहिरैं ॥
टूटैहार बार बर छूटै । कटि तट ग्रंथि बसन खुलि खूटै ॥
लटपटाय लपटाय कैं रहैं । रसमसे रूप न आवत कहैं ॥
मिलैं अधर, मिलि बहियाँ बहियाँ । सुरति श्रमनि पौंछैं द्रुम छहियाँ ॥
कोकिल सुक सारिक मृदु बांनी । तिहिं छिन कामं की कहत कहांनी ॥

तदनंतर जमुना कूल बिहरनि, कुंज जुन्हइया वर्नन, नृत्य गांन सुख समैं वर्ननं आदि प्रसंगों में भी सखियों द्वारा आयोजित दंपति के निकुंज विहार के उद्दीपनकारी विधान महावाणी परम्परावत् वर्णित है :-

सीतल समयै जमुना कूल । तहं द्रुमलता झुकी फल फूल ॥
सीतल मंद सुगंध पवन जहां । सखियन जुत दोउ कियौ गवन तहां ॥
हंसै हंसावै मिलि मिलि गावै । फूलनि गहनैं गैंद बनावैं ।
चहुँ दिसि सखी उमहियाँ । दुहुनि कि बिचि छूटत न गरबहियाँ ॥
फूलनि सौ बैनी गुही, रचै फूल कैं हार । फूल भरैं लपटाय दोउ, भुजभरि दृढ़ अंकवार ॥
प्यारी मुख पिय निरखहीं, अमल उज्यारी मांह । तहां चंद दीठ डरि, करत मुकुट की छांह ॥
ललितादिक सब सहचरी, दंपति की परछांह । रूप चंद्रिका सी खरी, विमल चंद्रिका मांह ॥
तहँ प्यारी पिय मन कियो; निरखी उज्यारी रैंन । निर्तगान आरंभ मिलि, कीजे सब सुख दैंन ॥

रस विलास निकुंज सुख, रास करनि कैं काज । कितिक सहचरी करनि लियै अपनैं अपनैं साज ॥
बीन तंबूरा खंजरी बाजनि लगै सुधंग । एक ताल सुर सांच मिलि, मिलि मृदंग मुहचंग ॥
खूटि खूटि अंचर रहैं, छूटि छूटि रहै बार । श्रमित रास रस रंग मैं, टूटि टूटि रहै हार ॥

दंपति के इस सुखकारी निकुंज-रास-विहार के अनंतर' दंपति के शयनसमैं' का 'निभृत निकुंज-रहसि-बिहार' वर्णित है जो सहचरी - सेवा का परमानंद है। रतिरत दंपति के निकुंज-सुरति सुरत्यंत सुख के तत्सुख-सुखित्व भाव का यह दर्शनानंद महावाणी जी द्वारा निरूपित तथा तदनुरूप नागरीदास जी की सखी-भाव परक निकुंज-सेवा का उनके द्वारा प्रतिपादित परमसुख-परमानंद है :-

उरझै तनमन प्यारी पीय । आए निभृत कुंज सयनीय ॥
सेवत कोरिक कांम निवास । महकि रही जहां फूलनि बास ॥
रस संपति दंपति तहां लूटी । लाज गढी दृढ़ तिहिं तन छूटी ॥
तन उरझै उरझै हैं नैननि । गउर स्याम उरझै रस बैंननि ॥
आधे आधे निकसत बैंन । चढ्यौ महा मादिक मन मैंन ॥
कंपत अंक होत सुर भंग । छिन छिन बाढ़त रस अनंग ॥

ऐसे परमानंद 'सुख रास' की अनवरत मनोरथ सिद्धि हेतु अभीष्ट नित्यवृंदावनवास तथा सहचरी-भावपरक निकुंज-सेवा के प्रति नागरीदास जी अपनी परमाराध्या निकुंज रस अधिष्ठात्री स्वामिनी जी की कृपाकांक्षा करते हैं :-

यह वृन्दावन, यह समैं, यह दंपति की प्रीति । नागरिया कैं हिय वसो, निति बिहार रस प्रीति ॥
श्री राधे कीजै कृपा चहत नागरीदास । अपनैं वृंदाविपुन कौं देहु बास सुखरास ॥

वि. सं. १७९४ में नागरीदास जी द्वारा रचित यह निकुंज विलास उनकी निम्बार्कीय निकुंज-केलि परक परम गुह्य रहस्यात्मक सहचरी-रसोपासना का प्रामाणिक साक्ष्य है। यहाँ भी उन्होंने इसे गोपनीय तथा मानसी रखने का निम्बार्कीय निर्देश दिया है जो श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी द्वारा उपदिष्ट निकुंज-केलि-रसोपासनात्मक महावाणी-परम्परा का अक्षरशः अनुसरण है :-

उचित नहीं कहनी इती, रहस केलि रस कांम । नागरिया को दोष कहां, प्रेरक स्यामा-स्याम ॥
सतरा सैं चौरानवां, पून्यौ अगहनमास । ग्रंथ निकुंज विलास यह, कियौ नागरीदास ॥

इसी प्रकार नागरीदास जी ने 'भोरलीला' ग्रंथ में उत्थापन, स्नान-श्रृंगार-राजभोग, आरती, निकुंज-शयन तक की निकुंज-केलि; तदनुरूप दंपति विलास की सहचरी-सेवा का सांगोपांग सरस वर्णन किया है जो महावाणी जी में निरूपित निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशिष्ट निकुंज केलि रसोपासना की परम्परा का है।

आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रणीत प्रातः स्तवराज के परम्परागत मूलाधार पर रचित 'प्रातः रस मंजरी' तथा 'भोरलीला' ग्रंथों का निकुंज केलि विलास भी उल्लेखनीय है। 'भोजनानंद अष्टक' तथा 'जुगल रस माधुरी' में प्रतिपादित दंपति विलास तथा तदनुरूप सहचरी-सेवा का सुख भी दर्शनीय है :-

स्यांमा स्यांम सिंगार सजि, जैंवत दृग सुख दैंन । को जन कवि बरनन करैं, वह मिलि भोजन लैंन ॥
नवल किसोरी लै गसा, दसन खंड करि देत । रसिक सांवरो तिहिं फलहिं, भाग सफल करि लेत ॥
अंचवनि मैं रचवनि भई, हसि हसि बीरी दैंन । नीरी नागरिया सखी लखि सियरावति नैंन ॥

(भोजनानंद अष्टक)

जुगल रस-माधुरी में दंपति की राग रसलीला का निकुंज केलि परक वर्णन हुआ है :-

दंपति ढिंग-नवकुंज सखी, करत गांन सारंग, बीन तमूरा खंजरी, बजि दायर मुह चंग ॥
रस संपति मिलि विलसहीं, दंपति दै गरबाँह । ढिंग बीना बीनासखी बजवति द्रुम की छांह ॥
गहगड़ राग समाज जुत राजत बिच नव कुंज । प्रेमरूप गहवर भयै गौर स्याम रस पुंज ।
नित्त केलि आनंद रस, बिच वृंदावन बाग । नागरिया हिय मैं बसौ स्यांमा स्यांम सुहाग ॥

चांदनी कवित्त, रैनि रूपारस, फागबिहार, वर्षाऋतु की मांझै, सरद की मांझै, होरी की मांझैं आदि भी निकुंज केलि विलास के अनुपम ग्रंथ हैं। ऐसी निम्बार्कीय निकुंज-केलि रसोपासनात्मक रचनाओं से नागरीदास जी का निम्बार्क साम्प्रदायिक वर्चस्व स्वतः ही प्रामाणिक सिद्ध हो जाता है।

(४) रसिक रत्नावली ग्रंथ नागरीदास जी कृत निम्बार्कीय रसोपासना का ऐतिहासिक ग्रंथ है जिसमें निम्बार्कीय परम्परानुगत निकुंज-रसोपासक परम वीतरागी संतों के स्वरूप का प्रतिपादन हुआ है। इस ग्रंथ के शिक्षा गुरु श्री मोहनदेव जी थे जो अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ की गोचर-उपत्यका सालरमाला में साधनालीन श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ द्वारा ही दीक्षित तत्कालीन रसिकोपासक संत थे; नागरीदास - वाणी - ग्रंथ पृ. ५ पर संपादक श्री ब्रजबल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य ने

उनका प्रामाणिक चित्र दर्शाया है जिसमें इन्हीं मोहनदेव जी से युवराज सांवतसिंह (नागरीदास) उक्त रचना का निर्देशित भाव हृदयंगम कर रहे हैं। नागरीदास जी ने रसिक रत्नावली ग्रंथ में इनके व्यक्तित्व का निम्नोक्त वर्णन किया है :-

श्री मोहन गुरु प्रेम वपु, वंदौ पंकज पांय । मोपैं पूरण करि कृपा दीनौं संत जताय ॥
तेई हरिजन इष्ट मम, तिनहीं को सिर नांउ । तिनहीं कैं जु प्रसाद तैं, तिनहीं कौ जस गांउ ॥

उनके सहज वैष्णव - संतोचित - रसिक - वर्चस्व का गुणानुवाद करते हुये नागरीदास कहते हैं :-

माला गलै तुलसी की लखैं, हिय मैं मुक्तावली जाल बिसारौं ।
गूदर पैं केई कंचन पट, टूटी कोपीन पैं काहि उचारौं ॥
जीरन जूति घिसी फिरै नागर, तापैं सिंघासन फेरि डारौं ।
और बखानौं कहा मुंडमाधुरी, स्वामी की चांदि पैं चंदा वारौं ॥

स्यांमास्यांम के ऐसे अनन्य सहचरी-भाव के निकुंज-केलि रसोपासक संत श्री मोहनदेवजी से उन्होंने निम्बार्कीय केलि रसिकों का जो स्वरूप सीखा था वह निम्बार्कीय परम रसिकों का ही है :-

वृंदावन रस में पगे, जीत्यौ अजित सुभाव । सात गांठ कोपीन कै, गनैं न राना राव ॥
गनैं न राना राव, भाव चित रहैं महाभरि । लखैं दीन तैं दीन, लीन है परति पगनि ढरि ॥
अहा अनोखी रीति, कहा कहौं रहत रहित तन । है चकोर ससि बदन, जुगल निरखत वृंदावन ॥

नागरीदास जी के युवराजपद की युवावस्था में ही परिपक्व वृन्दावन निष्ठा के धनी निम्बार्कीय रसिकोपासनात्मक रसिक वर्चस्व का इससे अधिक प्रामाणिक ऐतिहासिक साक्ष्य क्या हो सकता है? इतना ही नहीं रसिक रत्नावली में नागरीदास जी ने तिलक और उपासना का भेद करते हुये उज्ज्वल गोपीचन्दन तिलक वाले तथा उज्ज्वल रसमयी श्यांमाश्यांम की युगलोपासना में पगे निम्बार्कीय संतों में अपनी विशेष निष्ठा व्यक्त की है तथा लाल रोली के तिलक वाले वात्सल्य रस के बल्लभ परम्परानुगत उपासक गोस्वामियों से अपना सांकेतिक विभेद भी प्रतिपादित कर दिया है :-

मेरे वेई देव सन्त उज्ज्वल तिलक कीनैं, भीनैं रस उज्ज्वल औ जुगल उपासना।

इस उज्ज्वल तिलक का तात्पर्य उन्होंने भक्तिमग दीपिका में जिस प्रकार प्रतिपादित किया है उससे तो उनकी संप्रदाय निष्ठा बल्लभकुली नहीं निम्बार्कीय सिद्ध होती है :-

"तुलसी गोपी चन्दन काय। इनकी महिमा कही न जाय॥ तुलसी चंदन महिमा महा लघुमति बरनि सकौं हौं कहा। ताकैं तिलक ललित हरिमंदिर । लिख्यौ भालजनु गोप पुरंदर ॥"

बल्लभसंप्रदाय में न तो गोपीचंदन से तिलक होता है न ही वहां तिलक को हरिमंदिर ही माना जाता है। बल्लभसंप्रदाय में तो दोनों लाल रेखाओं को ब्रह्मशिव तथा मध्यवर्ती आकाश को विष्णु रूप में प्रतिपादित किया है (द्रष्टव्य शिव पुराणोक्त तिलक तात्पर्य) इन अंतःसाक्ष्यों से उनकी निम्बार्कीय निष्ठा स्वतः ही प्रतिपादित हो जाती है।

(५) **नागरीदास जी की निम्बार्क साम्प्रदायिक विशिष्ट निकुंज-केलि-रसोपासना का मूल स्रोत श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी कृत श्रीमहावाणी है।** निम्बार्क-सम्प्रदाय की इस परमगुह्य श्री महावाणी में आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य जी द्वारा प्रवर्तित सहचरी-भाव की विशिष्ट निकुंज-केलि रसोपासना का महनीय निरूपण हुआ है। इसमें प्रियाप्रियतम श्रीराधारमण के नित्य निकुंज-केलि-बिहार का परमगोपनीय सैद्धान्तिक चित्रण किया गया है; महावाणीकार ने जिसे "निगमागम को सार तंत्र को मंत्र जु भारी (सि. सु.)" कहकर महिमान्वित किया है। सेवा सुख, उत्साह सुख, सुरत सुख, सहजसुख, सिद्धान्त सुख नामांकित पांच सुखों में दंपति के नित्य - निकुंज - केलि - बिहार, दिव्य केलि-धाम श्रीवृन्दावन, रसरूप परब्रह्म परमानंद स्वरूप युगल तत्व श्रीराधाकृष्ण तथा नितान्त निष्काम भाव से दंपति के नित्य केलि बिहार की परम गुह्य सखी-सहचरी रसोपासना का सैद्धान्तिक एवं पारिभाषिक विवेचन किया गया है। अद्यावधि यही महावाणी निम्बार्कीय निकुंज - रसोपासनात्मक वाणी ग्रंथों की परम्परा का मूलस्रोत आदर्शरूप अनुकरणीय ग्रंथ है; वृन्दावन के रसिकजनों में विशिष्ट समादृत होने से इसे आदर सूचक श्री से संयुक्त किया जाता है। श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी से पूर्व उनके गुरु श्रीभट्टदेवाचार्य जी ने ब्रजभाषा की आदिवाणी युगलशतक की रचना की थी जिसमें ब्रजरस केंद्रित ब्रजबिहार-वृन्दावनबिहार तथा वृन्दावनस्थ निकुंज-केलि-बिहार दोनों का सूक्ष्म-सारगर्भित निरूपण हुआ है; आदि वाणी में निर्दिष्ट केवल निकुंज-केलि बिहार की व्यापक व्याख्यात्मक विस्तृति श्रीमहावाणी जी है। निम्बार्कीय रसिक भक्त कवियों के लिए उभय रसात्मक आदि वाणी तथा निकुंज-केलि रसात्मक श्री महावाणी दोनों ही का अत्यंत महत्व रहा है। नागरीदास जी के रचनाकाल से लगभग 200 वर्ष पूर्ववर्ती श्रीमहावाणी जी का निम्बार्कीय रसोपासनात्मक मूल स्रोत, श्रीपरशुरामदेवाचार्यकृत श्रीपरशुरामवाणी (परशुरामसागर) तथा श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत वृंदावनवाणी (गीतामृत गंगा) तथा श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्य कृत गोविन्दवाणी में परम्परावत निर्झरित होकर पुनः

नागरीदास वाणी में विपुलवेग से प्रवाहित हुआ है। पिछले पृष्ठों में प्रतिपादित नागरीदास जी कृत बिहार चन्द्रिका, निकुंज विलास, भोरलीला, प्रातरस मंजरी, जुगलरसमाधुरी, फागबिहार, भोजनानंद-अष्टक, मनोरथ मंजरी, वनजनप्रशंसा आदि निकुंज-केलि-रसोपासनात्मक ग्रंथों तथा उत्सवमाला, पद मुक्तावली आदि कई अन्य उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना के ग्रंथों के नित्यबिहार प्रसंगों में हमने ऐसा स्पष्ट उल्लेख किया है कि नागरीदास कृत ग्रंथों में श्रीमहावाणी परम्परा का अनुसरण है यद्यपि हमने कथित तथ्य का तुलनात्मक सत्यापन विषय विस्तृति के भय से नहीं किया है तथापि श्रीमहावाणी रहस्य के रसिक मर्मज्ञ स्वयं पारखी हैं।

(अ) नागरीदास जी द्वारा फूल डोल के निकुंज - केलि - बिहार वर्णनों में नखशिखपर्यंत फूलमय शृंगार - आभूषण से सजे दंपति प्रियाप्रियतम लाड़लीलाल के दिव्य - केलि - स्थल दिव्य रंगमहल को 'फूल महल' की रचना देना भी उनके द्वारा की गई श्री महावाणी जी की परम्परागत अनुसृति है। दोनों का तुलनात्मक वर्णन दर्शनीय है :-

फूलमहल फुलवारि में फूल सिंगार किये ।
श्रीहरि प्रिया बैठे दोऊ फूले फूल हिये ॥
देखो सखि ! फूलन की फुलवारी ।
फूले फूल महल में बैठे फूलि फूलि पिय प्यारी ।
फूलन कौं सिरमुकट बिराजैं फूलन मांग संवारी ॥
फूलन की किलंगी जगमगि छबि फूलन की चंद्रिकारी ।
फूलन कैं आभूषण पहिरैं फूलन कंचुकि सारी ॥
फूलन की अंगिया उपरैंना फूल इजार लहंगा री ।
फूलन सिखर फूलन कौ मंडप फूलन कैं छाजा री ॥
फूलन कैं छबि दैत झरोखा अरु फूलन की जारी ।
फूलमई सब ठौर ठौर फबि फूलि रही फुलवारी ॥
फूल चौक में फूल फूल की छूटत फुल फुहारी ।
फूल सिंघासन आसपास ठाढ़ी फूलि सबैं सहचारी ॥
फूल फूल की सौंज लियैं कर फूलन फूल सिंगारी ।
फूल चँवर ढुरावति फूली लै फूलनि बिजना री ।
कहा कहौं कछु फूल फूल की सोहैं अति सोभा री ।
श्री हरिप्रिया फूल फूलन पर फूल करौं बलिहारी ॥ (५६ उ. . सु.)

ऐसी फूलमई सज्जा के कई कलात्मक वर्णन श्रीमहावाणी की निकुंज केलि रसोपासना की विलक्षण परम्परा है जिसका रसात्मक एवं कलात्मक अनुसरण श्रीनागरीदासजी के गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी की गीतामृत - गंगा में होता हुआ नागरीदास जी की रचनाओं में प्रतिपादित हुआ है।

झूलत फूलैं फूल कैं डोल ।
नाना विधि फूलन भूषन बनाये गूंथे विमल निचोल ॥
फूली मंजु कुंज कालिन्दी कूल फूल कैं महल अमोल ।
फूली फूली सखी झुलावती वृंदावन गावत पिक टोल ॥ (नवमषाट पद २५)

नागरीदास कृत पदमुक्तावली के फूलमहल वर्णन श्रीमहावाणी जी की परम्परानुसार अत्यंत कलात्मक तथा निकुंज-केलि-रसात्मक हैं :-

(१) फूलनि के वेष नव वसन बनाय लिय, फूलन की क्यारी सी कुँवरि अलबेली है।
फूलनि कैं भूषन बसन भांति फूलनि कैं, फूल भरी छबि हरी ए नवेली है ॥
अधर मधुर मकरंद लैंन फूलनि कौं, फूल सौं अलिंद स्याम भुजनि सकैली है ।
फूली है जुन्हाई तामैं फूल पंचबाननि कैं, निरखैं अकेली केलि नागरि सहेली हैं ॥

(२) फूलमहल फूली जौन्हि जगमगी ।
तामैं फूल करैं केलि स्यांमा स्याम सुख झेलि फूलनि मरगजी चारु रगमगी ॥
फूलनी की सैंनी पर राजत बिथुरि बैंनी, फूली हैं बदन ज्योति मदन अगमगी ।
फूल अरसानैं फूल रंग भोए सोए नागरिया मोहे मन रीझनि डगमगी ॥

आश्चर्य यह है कि 'फूलमहल' का दिव्य-क्रीड़ा प्रसंग पदमुक्तावली में फूल विलास के नाम से तथा उत्सवमाला में

फूल रचना शीर्षक से वर्णित है। उत्सवमाला ग्रंथ में उभय रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना का सरस वर्णन हुआ है, महाप्रभु बल्लभाचार्य जी तथा गुसाई श्रीविट्ठलनाथ जी के जन्मोत्सव के तथाकथित प्रक्षिप्त-अंशों को समाविष्ट कर जिस ग्रंथ को बल्लभसाम्प्रदायिक रंग देने का प्रयास किया गया है; वहाँ नागरिया, नागरि, नागरी-सहेली तथा नागरिया सखी नामांकित श्रीमहावाणी परम्परा के फूल रचना प्रसंगों के होने से मूलत: वह ग्रंथ स्वत: ही स्यांमास्यांम की निकुंज-केलि के उज्ज्वल रस में रंगा है; साथ ही यहाँ युगल का व्रजरस परक नित्यवृंदावन विहार भी फूल सज्जा से सज्जित निम्बार्कीय परम्परा का है सो दर्शनीय है। इस चित्रोपम फूल विलास के भाव साम्य पर बने नागरीदास जी के चित्र भी अत्यन्त कलात्मक हैं :-

(१) फूलै बहु फूलनि सौं वृन्दावन सोभा देत, तामैं फूली राका निसि अति छबि छाई है ।
कुंज कुंज फूल पुंज गुंजत मधुप माते, फूलनि सौं मिलि मंद पौन सियराई है ॥
सोहैं स्यामास्याम पैं सिंगार सजि फूलनि कैं, फूलमई हियैं लखि फूली बनराई है ।
<u>नागरिया</u> मिलै दुहूं फूलनि सफल करि, भुज अंस, फूलै फिरैं सुखदाई हैं ॥

(२) फूल भरैं पिय प्यारी, फूलनि सौं खेलहीं ।
फूलनि कैं हार, झूलत झबा फूलनि कैं, फूलनि चलाय झुकि झेलहीं ॥
फूली हैं जुन्हइया कुञ्ज, फूल कैं बिछौना तहाँ, दोऊ चढै आनंद अलेलहीं ।
<u>नागरिया सखी</u> सब फूल भरी आंखिनि मैं, फूलनि की केलिहिं सकेलहीं ॥

वृन्दावनधाम की अनन्यनिष्ठा से प्रेरित होकर कृष्णगढ़ में सुरम्य गूंदोलाव झील तट पर नागरीदास जी ने श्री महावाणी परम्परा के अनुसार ही निकुंज-केलि-परक सखी भाव की रस-साधनात्मक सिद्धि के लिए प्रियाप्रियतम के दिव्य क्रीड़ास्थल सुकुसुमित कमलकुंज सघन वृक्षावली आवेष्ठित 'फूलमहल' भवन का निर्माण करवाया था जो अद्यावधि विद्यमान है । नागरीदास कृत रचनाओं में 'सांझी' युगललीला प्रसंग अति चर्चित हैं। सांझी फूल बीननि, सांझी-उत्सव के नाम से इस लीला के नागरीदास शैली में बने अनेक कलात्मक प्राचीन चित्र भी प्रसिद्ध हैं। नागरीदास जी के सांझी प्रसंग अतिकलात्मक रीति काव्यात्मक हैं तथापि मूलत: यह 'सांझी' का युगल लीला बिहार भी महावाणी जी की परम्परा की अनुसृति है।

(ब) श्रीमहावाणी जी में वर्णित 'सांझी लीला'; तथा श्रीवृंदावन प्रभु की वृंदावन वाणी-गीतामृत गंगा के अनुरूप तथा तदनुसृतिपरक नागरीदास वाणी की सांझी लीला में रसोपासनात्मक विभेद प्रतिपादित है। श्रीमहावाणी में निकुंज-केलि प्राधान्य वैशिष्ट्य होने से दंपति की सांझी लीला सखियों द्वारा दिव्य रंग महल निकुंज - केलि में समायोजित है जबकि नागरीदास वाणी के उभय रसात्मक बृज-वृंदावन के युगल बिहार प्रसंगों में सखियों द्वारा सांझी लीला का आयोजन वृंदाविपुन-यमुना कछार, कुंज-बाग-फुलवारियों में भी विस्तृत है तथा कुछ प्रसंगों में यहां सांझी के माध्यम से स्वामिनी जी के - परकीयात्व पोषित अभिसार मिलन का रहस्यात्मक युगल-संयोग भी चर्चित है । सांझी के 'फूल विलास' का उदाहरण द्रष्टव्य है :-

दोऊ मिलि फूलनि बींनहीं, जमुना कूलनि सांझ । रंग रैली अति है रही, कुंज गली कैं मांझ ॥
फूलनि मिस तिय सौं मिलत सखी रूप रचि छैल । नागरिया कैं हिय बसौं, कुंज रंगीली सैल ॥

साथ ही यहां तुलनात्मक दृष्टि से सांझी लीला की श्रीमहावाणी परम्परानुगत नागरीदास जी की अनुसृति भी द्रष्टव्य है, फूलों से विचित्र चित्रों का बनाव, अभिसार, फूलों से सांझी-पूजन आदि दर्शनीय है :-

(१) चित्र विचित्र बनाव कैं, चुनि चुनि फूले फूल । सांझी खेलहिं दोऊ मिलि, नवजोवन समतूल ॥
सांझी सांझ मिलि खेलहीं दोऊ नवजोवन समतूल हो । चित्रविचित्र बनाव के बहुचुनि चुनि फूले फूल हो ॥
पहिरैं बागे तनसुखी अति लागैं मन रुचिदाई हो । बरन बरन आभरन कैं कछुकहि नहिं जाति निकाई हो ॥
नव पल्लव प्रीति के सखी देत कमल कर आय हो । अति सौरभ सौं सोहने मनमोहन सहज सुभाय हो ॥
गावत गोरी गुन भरी सहचरी सकल कलकूजि हो । रंग रह्यौ न कह्यौ परै प्रति प्रति प्रतिमा कौं पूजि हो ॥
यह सांझी को सुख समैं समझै समझनहारि हो । हितू सहेली श्रीहरिप्रिया जीवन नित नैन निहारि हो ॥

(२) पिय संग बिहारिन लाडली मिलि खेलत सांझी सांझ हो । चूंटत सुमन सुचाय कैं बहुभाय हिये जिय मांझ हो ॥
इंदीवर कल कली ललीवर कोक नदन करलीनी हो । सुभग गोद में दवटि मोद सौं नारि नवाय नवीनी हो ॥
सोन सुगंधी जाय राय पिय कर पकराय प्रवीना हो। सरस गुलाब गुलाब मौलसरि भई लवलीना हो ॥
लै लै फूल दुकूलन मैं अनुकूल अलौकिक नीके हो । मधुर मालती जाति जूथ की कर बीननि हर हीके हो ॥
चहल पहल निज महल कुंज कोरनि कल भीत लिपाई हो । रची संवारि सहेलिन संमतमन अभिलाप पुराई हो ॥

पूजी परम प्रीति सचि स्यांमास्यांम संपूरन साधा हो । स्वरनथाल भरिभोग धरति ढरि हरन वितन तन बाधा हो ॥
\+ + + +
सुखविलास विलसत सांझी सांझी मांझी सुख सानी हो। श्रीहरिप्रिया निहारि नवल छबि वारि वारि पीवै पानी हो ॥

(३) आवति सांझ समैं सजनीन कौं संग लियैं वृषभानु किसोरी ।
सांझी के पूजन कैं लिये फूलनि बीनि भरै अप अपनी झोरी ॥
हेम वरा गजरा गज मोतीन पोति हरा हरि की मति चौंरी ।
भरै बहु नेवज सी नटरा धरैं अंजन चंदन वंदन रोरी ॥
सजै कुसुमल सारी सुरंग रु राजै हरी अंगियाँ तन गौरी ।
वृंदावन प्रभु सौं मांगति नेह पसारि पसारि दुहुँ कर औरी ॥ (नवम घाट -गीतामृत गंगा)

सखी नामांकित नागरीदास जी कृत उत्सवमाला का सांझी-उत्सव, तत्सम्बन्धित वृषभानु कुमारी जी का अभिसार तथा फुलवारी में दम्पति की संयोग लीला के प्रसंग दर्शनीय हैं :-

(अ) रंग सरसानैं बरसानैं बनवाग स्यामा, खेले सांझी सांझ बहु साथनि-सिंगारि कैं ।
नूपुर निनाद पूरि रह्यौ है द्रुमनि मांझ, जहाँ तहां लेत लड़कीली कुसुम उतारि कैं ॥
सांवरी नवेली वाल नीलमनि बेलि सी, अकेली फिरैं वाहांजोरी, संग सुकुँवारी कैं ।
डारहि नवावैं मिलि बीनैं फूल पावै फल, नागरिया वौरै मन कौतिक निहारि कैं ॥

(ब) फूलनि बीननि हौं गई, जहाँ जमुना कूल द्रुमनि की भीर । उरझि गयौ अरनी की डरियाँ तिहिं छिन मेरो अंचर चीर ॥
तब कोउ निकसि अचानक आयो मालती सघन लता निरवारि । बिनही कहै मेरो पट सुरझावत इकटक मो दिस रह्यौ निहारि ॥
हौं सकुचनि झुकी दबी जात इत, उत वहि नैंननि हा हा खात । मन उरझाय बसन सुरझायो कहा कहौं और लाज की बात ॥
नाम न जान्यौ श्याम अंग हैं पियरै, रंग वाकौ हुतौ दुकूल । अब वहि बन लैं चलि नागरी सखी फिरि सांझी बीननि कौं फूल ॥

(स) आई हैं मालिनियां कोऊ फूल लियैं रंग रंग । नखसिख लौं अति सोहनी मानौं मोहनी सांवरै रंग ॥
चलत ललित गति हंस की तन ओढे झीनौ चीर । रूप अंचभौ है रह्यौ वाकैं चहुँदिस मांची भीर ॥
\+ + + +
ज्यौं ज्यौं कर प्यारी गहैं कहैं तू मति मानैं भीत । सांझी चीत नचीत है बसि सकैं न सांझी चीत ॥
स्वेद सिथिल सियरी भई वहिरही थहरि थहराय । छुवत छवीली छांह कौं वाकौं तन पिघल्यौ सौ जाय ॥
रीझि व्यथा प्रगटन लगी जब स्यामास्याम निहारि । निज मंदिर मैं आई कैं भरी रंग अंकवारि ॥
नागरिया रस रंग रगमगे दोऊ कुसुम सेज कैं मांझ । सांझी पूजत पिय मिलै परम सलौनी सांझ ॥

नागरीदास जी ने श्रीमहावाणी परक इन परम्परागत सभी नित्यविहार लीलाओं को अपनी रीत्यात्मक काव्यकलाओं से पूर्ण शृँगारिक मधुर अभिव्यंजनाओं से अत्यन्त चित्ताकर्षक बना दिया है। दीपोत्सव, शरदोत्सव, रासोत्सव, होरी, बसन्त, फाग, ग्रीष्म, पावस बिहार, हिंडोरा आदि की ऐसी निकुंज लीलाओं में नागरीदास जी ने श्रीमहावाणी परम्परा के उपासनात्मक मूलस्रोत को अपनी अद्भुत काव्यकला से दर्शनीय बना दिया है जो उनके महान कवि वर्चस्व का परिचायक है।'सांझी के कवित्त' तथा 'सांझी फूल बीननि समैं संवाद अनुक्रम' भी लगभग ऐसे ही नित्यबिहार प्रसंग हैं। इन प्रसंगों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यहाँ परमाह्लादिनी श्रीराधाजी का स्वकीयात्व परिपुष्ट करते हुये उनका सर्वोपरि इष्ट आराधन प्रतिपादित किया है। नागरीदास जी से पूर्ववर्ती तथा समकालिक बल्लभ-सांप्रदायिक ग्रंथों में ऐसे फूलमहल-सांझी-आदि के निम्बार्कीय रसोपासनापरक सरसलीला वर्णनों की यह परम्परा दुर्लभ्य है ।

(स) परमगुह्य निम्बार्कीय निकुंज रसोपासनात्मक रहस्यानुसार निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी आदि -अनादि-एकरस, अद्भुत, सर्वदा सनातन - सच्चिदानंद-स्वरूप, रसरूप-परब्रह्म-परमानंद भगवान् श्रीकृष्ण की परमप्रिया आराधिका हैं। युगल स्वरूप में ही उनके उभयरसात्मक रसरूप की पूर्णता होनेसे भगवान् श्रीकृष्ण सदा सर्वदा उन्हीं के अनुरूप परम शौभायमान परमाह्लादिनी अंतरंगभूता आद्याशक्ति नित्यकिशोरी वृषभानुनंदिनी श्रीराधाजी की कृपा-वांछा करते हैं। रसिकों के रस-भवन-निकुंज में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण निकुंज बिहारी के रूप में लाड़लीलाल नित्य-राधारमण हैं। श्रीमहावाणीकार परमरसिक वर्य्य श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी ने श्रीमहावाणी में युगल स्वरूप का यही तात्विक निरूपण करते हुये कहा है :-

उदधि-महामाधुर्य कैं, रसिक दोऊ रसभौंन । सदा सर्वदा एकरस राजत राधारौंन ॥ (सि.सु.)

श्रीमहावाणी में दंपति राधारमण अपने सहज - स्वकीयात्व प्रतिपोषण हेतु एकरस एकरूप अभिन्न रसतत्व होते हुये भी युगल विग्रहात्मक स्वरूप धारण करके दंपति-विलास का नित्यनूतन रसलीला बिहार करते हैं :- 'सहज स्वकीयानि

श्रीपोषकर्त्ता अमित गुण चंड ब्रह्मंड भर्त्ता। श्रीहरिप्रिया जुगल वपुधरि बिहारें।" (वही) से यह तथ्य ही निरूपित हुआ है। युगल का प्रतिपल नित्यनूतन दंपति विलास चराचर में प्रतिबिम्बित परमरहस्य है। श्रीमहावाणी में युगल के स्वकीयात्व का परिपुष्ट प्रतिपादन सहचरियों द्वारा दिव्य रंग महल में आयोजित दंपति के ब्याहलीला प्रसंगों में हुआ है; बना बनी, दूल्हा-दूल्हिन दंपति राधारमण का श्रीमहावाणी वर्णित सांगोपांग ब्याह, बधाईगान, तेल उबटन, साहिलौ, मंगलाचारिक गीतगार, सुहागरात की सुरत केलि आदि का व्यापक विधान दर्शनीय है :-

(१) श्रीराधाकृष्ण बिबाहसुख सरबस मंगल मूल । नित नित रचत सहेलियाँ भरी प्रेम परफूल ॥
भरी प्रेम पर फूल सबहित की अलि अलबेलि । ब्याह विनोदनि सुख रच्यौ हिलि मिलि सबै सहेलि ॥
सबै सहेलि सहेलियाँ राची रंग रसाल । सर्वस तिनकैं संपति दंपति पति प्रतिपाल ॥
दंपति संपति सहज सुख दुलहिन दूलह लाल । तदपि ब्याह बिधि बिरचहीं बिबिध विनोदनि बाल ॥
दोउ लालन ब्याह लडाऔ री, छबि निरखत नैन सिरावौ री। फूलन कौ मंडप छावौरी, सुचि सरस सथंभ सजावौरी॥
रंगभीने कौं बना बनावौ री, सब मंगल मोद बढ़ावौरी । सुख तेल फुलेल लगावौरी, बहुबाजै विविध बजावौरी ॥
उबटना अंग उबटावौ री, केसरि कैं नीर न्हवावौरी । अंगनि अंगनि सिरी चढ़ावौरी, जु सहाने पट पहिरावौरी ॥
रोरी कौं तिलक रचावौ री, मोतिन कै अछित चढ़ावौरी । सेहुरा सीस बंधावौ री, हँसि हँसि बीरी जु खुवावौरी ॥

(२) नव नव सुख सरसावतौ तनमन प्रानधना। लाड़लडीली लाड़ली बनरी संग बना ॥
बना बनी के ब्याह के रसमयमंगलाचार । श्रीरंगदेवी संग सहचरी गावत परम उदार ॥

(३) रंग सोहिलौ रंगरली कौ, रंगरंगीली रंग अली कौ । सबै सखी सब सेवा माहीं ॥
फूली फूली फिरत उमांही, भांति भांति कै लाड लड़ावै । लाड़लडीलै अतिसुख पावै ॥

(साहिलौ)

(४) लाडिलौ बना बन्यौ अति नीकौ लाड़लड़ी बनरी कौ। सुही पाग सिर पेच सुनहरी और मौर मोती कौ ॥
उज्ज्वल अछित सहित सोहैं बर दियैं तिलक रोरी कौ। कंजन खंजन गंजन अखियाँ अंजन रंजन जी कौ ॥
चितवनि चारु महा मनमोहै कौ है कांत रतीकौ । सुंदरबदन रदन रस राचै छियै छोर उतरी कौ ॥
बागौ अंग लागौ रंगभीनौं पटुका हरी जरी कौ । रंग रंगीलौ छैल छबीलौ ओपति ऐंन अमी कौ ॥

(५) बना बनी की जोर बनी ।
नित नवकुंज मंजु मंदिर मैं दूलह रसिक रसिक दुलहनी । मोहन मोहन मैंन मुकुटमणी मुकुटमनी स्यामाधन धनी॥

(६) सेज पर बाद्यौ अति रतिरंग । दूलह दुलहिनि अलक लड़ीलै अलबेले अंग अंग ॥
नित्यनवीन किसोर लालदोउ नित्य नवीन अभंग । विलसत विविध बिलास बितन के श्री हरिप्रिया जू कैं संग ॥

नागरीदास वाणी के उत्सवमाला तथा पदमुक्तावली ग्रंथों में भी सखी सहचरियों द्वारा आयोजित दंपति के 'पाणिग्रहण' की निकुंज - केलि - परक प्रस्तुति में रसोपासनात्मक एवं कलात्मक अद्भुत साम्य होने से यह प्रसंग भी श्रीमहावाणी परम्परा का प्रतिपादन है जो श्रीवृंदावनदेवाचार्य कृत गीतामृतगंगा-वृंदावनवाणी से अनुसरित हुआ है :-

आज ब्याह सखि कुंज महल में दुलहिन राधा नंदकुँवर वर ।
गावति है नारि नये साहिलै सुहाये तैसौ वृंदावन फूल्यौ रह्यौ उड़ि कै पराग भर ॥
बना बनी गांठि जोरि लिवायो हथलेवा जब हाथैं देखि छकि गये सालन सुघर ।
मिंहदी के बिन्दु कैसें राजैं इन्दुमुखी कर मानौं इंद्रबधू पांति बैठी अरविंद पर ।
सूहै पट घूंघट दुति दूनी छिलैं आनन की मांनौ झीनै लाल घन झलकत सुधाधर ।
(श्री) वृंदावन प्रभु दूलह चकोर दृग ललकत देखि देखि वधू शोभा कौ निकर ॥

आपने तीन पदों में ब्याह वर्णन किया है जो श्री महावाणी परम्परा का होने पर भी सांगोपांग लीला परक नहीं है। नागरीदास जी के पदमुक्तावली प्रसंग में महावाणी जी जैसा विधिवत् तथा सांगोपांग 'पाणिग्रहण' का निकुंज केलि बिहार नितान्त निम्बार्कीय रसोपासनात्मक, अत्यंत सुरतिपरक श्रृंगारिक-रीति-काव्य-कलात्मक , दंपति विलास के रूप में वर्णित हुआ है जिसमें श्री महावाणी परम्परागत अद्भुत साम्य दर्शनीय है; सभी प्रसंग 'दासि' नामांकित हैं :-

(१) नित दुलहनि नव नागरी, हरि दूलह नित हेत । नित बिबाह बृंदाबिपुन नित चौरी संकेत ॥
दूलह दुलहनि कँवलमुख, रहत निहारि निहारि । अलि दृग चितवन भाँवरै, भरत दोऊ रिझवार ॥
दुलहनि झीनैं चीर दृग झांई छबि झलकात । लाल जाल घूंघट रूके खंजरीट अकुलात ॥
रसबिबाह निरखि निरखि कैं, लोचन समझि सिहात । मनां मनी ही राखियै बनां बनी की बात ॥
मंगल रैंनि सुहाग कैं, गावत सखी प्रवीन । ब्याह बिलास अनंग रस, बाद्यौ रंग रंगीन ॥

मंगल कुंज बिबाह नित, दंपति बितन बिलासि । है अलि नित प्रति लहत सुख नवल नागरिदासि ॥
(२) चितवनि ही यह और; परम अनुराग की । उमड़ी है सैंन सैंन सैंननि मैं, बनी बनां के भाग की ॥
अब चलि ओट निरखियें नीकैं लीला लोचन लाग की । नागरीदासि धन्य-वृन्दावन, धनि यह राति सुहाग की ॥
(३) रहसि मंगल राज आज ।
प्रगट्यौ है हरि राधानेह वृंदा भवन बधाइयाँ । रचना ए माई रची हैं विवाह बृज देवी पधराइयाँ ॥
गावै हैं माहि मंगलगीत जुवति सबै उमाहियाँ । फूलैं हैं द्रुम नाना भांति बन पराग घुमड़ाइयाँ ॥
नाचै ए मन मगन मयूर कोकिल कोहक सुनाइयाँ । दुलह ये नव दुलहिन जोरी रुचिर सिंगार बनाइयाँ ॥
मौरी ए नव मंजुल मोर दुहुनि सीस छबि छाइयाँ । ल्यायौ है वर विप्र मनोज लगन पत्र मिलाइयाँ ॥
चौंरी ए नव निभृत निकुंज सुमन सैज बैठाइयाँ । तहाँ न ए कोऊ और समीप सब सखी समझि दुराइयाँ ॥
कर सौं ये करि पांनिग्रहन अंचर प्रीति जुराईयाँ । भांवरि ये देई कुंज कुटीर; जमुनां साखि कराइयाँ ॥
चुम्बन ये करि दयौ उगार मदन दछिना पाइयाँ । बिथुरै हैं बर बार बिसाल मनहुँ चँवर फहराइयाँ ॥
किंकिनि ये कल बजतं निसांन नूपुर धुनि मन भाइयाँ । सुनि सुनि ये ललितादिक ओट लेत है अलछ बलाइयाँ ॥
इहि बन ए नित राधाकन्त लीला करत सुहाइयाँ । नागरिया कहिबात न जात पैं उर मैं उरराइयाँ ॥
(४) आज बरसाने अति ओप बाढ़ी नई, देखि सखी ब्याह की रात मंगलमई ।
मिलनि समधीन की भीर गहमह हई, गांन नीसांन धुनि भेदि सुरपुर गई ॥
परम सुंदर सुघर स्यांम दूलह बन्यौ, दुलहनी रूपनिधि कुँवरि कीरति जई ।
सेहरा सीस नग जटित जगमगि रहे, छोर मुख दियें, दुहु ओर अति छबि छई ॥
भरत भांवर भलैं लगत सांवर गउर, चलैं कलहंस गति सबनि मन भई ।
दए महाराज ब्रषभांन तहाँ, नागरीदासि कौं महल की टहल दई ॥
(५) गिरधर दूलह परम सलौंना वाकी हँसि चितवनि मैं टौंना । दूलह दुलहिन रूप लुभाए प्यारी जी कछुक चितै मुसकाए ॥
प्रीतम अंकमाल करिलीनी बाढ़ी है मनमथ केलि नवीनी । टूटे हार उर डोरी दुलहनि सुरति सिंधु झकझोरी ॥
दोऊ श्रमित सेज मिलि सोए अधखुलैं नैंन मैन रंग भोए । प्यारी जू निद्रा बस ह्वै जावै तब उठि पिय पायनि सहरावै ॥
इहि विधि सुख ही सुख निस बितई । नागरीदासि केलि दुरि चितई ॥ (पदमुक्तावली)

ऐसा निकुंज-केलि रसोपासनात्मक दंपति ब्याह विलास अन्यत्र दुर्लभ है जो नागरीदास जी के परम्परागत परिपक्व-निम्बार्कीय वर्चस्व का प्रतिपादक है। ब्रजरस केंद्रित ब्रजबिहार अथवा वृंदावन बिहार में दंपति ब्याह की लीला का प्राधान्य नहीं है, और न वहाँ इसकी अनिवार्यता है वहाँ तो प्रचुर परकीयात्व लीला-वर्णनों की स्वकीयात्व-स्वीकृति के लिए इसका सामान्य विधान किया जाता है, पर नागरीदास वाणी में सहचरी भाव से आयोजित दंपति ब्याह की ऐसी सांगोपांगिक लीला-विस्तृति का होना उसका श्रीमहावाणीपरक प्राधान्य प्रतिपादित करता है।

(द) श्रीमहावाणी के निकुंज केलि बिहार में उपर्युक्त प्रकार से रसरूप नित्यानंद-परमानंद-स्वरूप परम रसमय प्रेमानंद रूपी राधारमण प्रियाप्रियतम दंपति का विशिष्ट क्रीड़ा-विलास वर्णित होने से नागरीदास कृत वाणी में भी तदनुरूप महावाणी परम्परा का नामरूपात्मक युगल तत्व वर्णित है। इसीलिए नंदलाल गिरिधर गोपालादि नामों सहित, सैद्धान्तिक रूप से प्रियाप्रियतम, लाड़लीलाल, स्यांमास्यांम, मोहिनीमोहन, बनांबनी, दूलह दुलहिनी, राधावर-राधा वल्लभ रसिकेश्वर रसिकेश्वरी नित्यबिहारी बिहारिणी, निकुंज बिहारी बिहारिणी, रसिक बिहारी बिहारिणी आदि नामों का प्रचुर व्यवहार हुआ है। निकुंज स्वामिनी रस अधिष्ठात्री श्रीस्वामिनी जी के रसिकोपासक सखी सहचरी-भावानुसार लाड़ली, अलक लड़ैती, लड़वन, लाड़गैली, अलबेली नाम व्यवहृत हुये हैं जो सैद्धान्तिक रूप से उनके निम्बार्कीय वर्चस्व के ही परिचायक हैं।

(३) निम्बार्क - संप्रदाय की निकुंज-केलि-रसोपासना में परम्परानुसार आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्काचार्य से अद्यावधि श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वरों के रहस्यात्मक सखी नाम व्यवहृत हैं, जो महावाणी वर्णित सखी-सहचरी-नामावली अनुसार रखे जाते हैं। श्री महावाणी में श्रीभट्टदेवाचार्य जी तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी के सखी-नाम क्रमशः श्रीहितू तथा श्रीहरिप्रिया व्यवहृत हुये हैं। तथा इस रहस्यात्मक नाम परम्परा का अनुसरण निम्बार्कीय भक्त कवियों ने भी किया है। सखी-भावपरक निम्बार्कीय निकुंज-केलि के रसिकोपासक नागरीदास जी ने भी अपनी वाणी के कई पदों में अपने सखी नाम नागरि, नागरिया, नागरिदासि, नागरी अली, नागरी सखी आदि अभिव्यक्त किये हैं। 'नागरीदास' नाम पुरुषवाचक होते हुए भी स्वामिनी जी के चरणाश्रित दास्य भाव का सूचक होने से निकुंज-केलि-परम्परागत सहचरी-भाव का ही प्रतीक है। इसीलिए आदिवाणी युगल-शतक में श्री हितू के भांति ही श्रीभट्ट नाम भी व्यवहृत हुआ है; इसी परम्परा से नागरीदास जी द्वारा पुरुषवाचक नाम का व्यवहार भी निम्बार्कीय निकुंज-परम्परा विहित है। वैसे मूलतः

उनके गुरु प्रदत्त इस नाम का उपासनात्मक शाब्दिक अर्थ भी 'राधिकादास' ही है। प्रस्तुत प्रसंग में हमने नागरीदास जी के ऐसे सखी नामों को इसी तथ्य के प्रतिपादनार्थ रेखांकित किया है तथापि कुछ उदाहरण और भी द्रष्टव्य हैं जो उनके रहस्यात्मक सखी नाम तथा तत्सुख सुखित्व के सहचरी-भाव की तटस्थ-दर्शन-अभिलाषा के द्योतक हैं :-

(१) अलसौंही अखियांन की , चितवनि बलगत बैंन । नागरिया दोउ भोर लखि भुरए म्हेरै नैन ।

(२) अब देखौ देखौरी दोऊ प्रात रंगीलै, दृग उनमीलै बसन रसन ढीलै ढीलै । लता भवन तैं निकसत नहीं सकुची लै, नागरि सखि सुसीलै सौंहैं ठाढी आरसि लै। लखिमुख लजत लजीलै ॥ (वही पृ. २२९)

(३) प्रफुलित कमल तरनिजा तीरै विचरत अलि मकरंद अधीरै । ++ रतिरण छत छबि मंडित बीरे । तंद्रित लोचन बिगलित चीरै पश्यत अलछत तजि मंजीरे । रही नागरि सखी पुलक दृगनीरे ॥ (वही पृ. २३०)

(४) कुंज छबि पुंज बहो वितन सेवत सदा जुगल आसक्त एक आनंद। + + + मधुरकल कंठ ललितादिक पूरित महा रंगमय राग सारंग धुनिमंद । दासि नागरि तहां स्याम स्यामा निकट ठाढ़ी इकटक जु रही निरखि मुख चंद ॥ (जुगलरसमाधुरी - पदमुक्ता.)

(५) कुंज रस केलि कवनीय दंपति करत परसपर हितबिवस रूप मादिक छके। + +सुरत सुख स्वेद तैं महकि केसरी चली बास लहि नागरीदासि धीर न धरत ॥ (वही. पृ. २६०)

(६) दंपति तन चंदन पट पहिरैं । चंदन खौर और लेप चंदन को उर चंदन नहीं ठहरे + + नागरिया नागर बिहार चारु चंदन के चहलै परयौ है म्हेरौ निकसैं न मन गज गहरैं ॥

(७) महल उसीर दोऊ बैठे मौज मैं हौज मैं पाय झुलावे । + + नागरिया सखी चितवत इक टक पलक भुलावै ॥ (वही - पद १६४-६५)

(८) हरि मिलि स्यामां सैज सोए सुखदाई । सुरत श्रमित तन छिरकैं गुलाब नीर सुमन सुगंध । पौन चलै सियराई + + यह पौढनि सुख समैं मनोहर नागरिदासि बसौं हिय मांहि ॥ (वही पृ. ३४४)

निकुंज केलि-सेवाके सखी-भाव में पुरुषवाचक 'नागरीदास' रहस्यात्मक नाम की व्यापकता भी निम्बार्क सम्प्रदायी ही है श्रीभट्ट कृत आदिवाणी परम्परा विहित ऐसे कई स्थलों पर श्रीमहावाणी परम्परानुसार उक्त सखी नामात्मक सहचरी-भावना व्यक्त हुई है; जो निम्बार्क - साम्प्रदायिक मान्यतानुसार होने से आपत्तिजनक अथवा भ्रामक नहीं है।

(फ) सनकादिक सुसेव्य दक्षिण चक्रांकित गुंजाफल सदृश प्राचीनतम शालिग्राम विग्रह श्रीसर्वेश्वर प्रभु निम्बार्क संप्रदाय के सर्वोच्च परमाराध्य हैं जो आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्काचार्य से अद्यावधि अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वरों द्वारा परम्परावत् पूज्य हैं जिन्हें वे अनवरत साथ ही रखते हैं तथा वे अधिकांशत: आचार्य पीठ विराजते हैं। इन्हें युगल रूप श्रीराधासर्वेश्वर भी माना जाता है। इन्हीं शालिग्राम स्वरूप श्रीसर्वेश्वर प्रभु विग्रह की परमगोपनीय रहस्यात्मक पूजा-आराधना के परम्परावत् एकमात्र अधिकारी श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर ही होते हैं। परम्परागत मान्यता है कि ज. निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर वही होते हैं जिन्हें श्री सर्वेश्वर प्रभु का शालिग्राम विग्रह प्राप्त हो।इस प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्य की एकाधिकारिक परमगुह्य आराधना परम्परा से ही रसरूप परब्रह्म युगलतत्व श्रीराधाकृष्ण स्वरूप श्रीसर्वेश्वरप्रभु की निम्बार्कीय रसोपासनात्मक वाणियों में नामरूपात्मक वंदना अतिसूक्ष्म, यत्किंचित्, गोपनीय तथा प्रतीकात्मक रही है; मध्यकालीन सांप्रदायिक विद्वेष के वातावरण से सुरक्षित रखने तथा विषम देशकालिक परिवेश में सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी ऐसी गोपनीयता प्रचलित रही है।इन्हीं कारणों से नागरीदास वाणी में भी श्रीसर्वेश्वरजी की नामरूपात्मक वंदना का नितान्त अभाव रहा है तथापि कथित परिस्थितियों में नागरीदासजी की वाणी में 'श्री सर्वेश्वर प्रभु' की नामांकित वंदना न होना कोई दोष नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अन्य निम्बार्कीय वाणियों में भी ऐसा हुआ है।

(६) नागरीदास जी कृत परम्परागत उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना के पूर्वोक्त कथित ग्रंथों में वर्णित युगल का ब्रजरस केंद्रित ब्रज-वृन्दावन नित्यबिहार का मूलस्रोत श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी के गुरु श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी-युगलशतक है जो श्रीमहावाणी से पूर्ववर्ती तथा ब्रजभाषा की आदिवाणी है जिसमें ब्रजरस लीला सुख तथा निकुंज लीला सुख नामांकित उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना का परम्परागत स्वरूप निरूपित किया गया है। श्रीभट्टदेवाचार्य जी कृत आदि वाणी की उभय-रसात्मक परम्परा का निर्वाह श्री परशुरामदेवाचार्य कृत परशुराम वाणी- परशुरामसागर, तदनन्तर श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत वृंदावन वाणी - गीतामृत गंगा में होता हुआ - नागरीदास जी की वाणी में आया है तथा इसी कालक्रम में उनकी समकालिक गोविन्दशरणदेवाचार्य कृत गोविन्द वाणी में भी यही परम्परा रही है। श्रीभट्टदेवाचार्य जी की वाणी में गोपीभाव परक तथा सखीभावपरक दोनों रसोपासनाएँ समानरूप

से व्यवहृत हैं। इसके सिद्धान्त सुख में इसी उभयरसात्मक उपासना का अभीष्ट प्रतिपादित किया गया है। युगलशतक के सूक्ष्म कलेवर में ब्रजनिष्ठा तथा वृन्दावन निष्ठा का अद्‌भुत समन्वय हुआ है तथापि युगलशतक की विशिष्ट-रसोपासना सखी भावपरक निकुंज-केलि-रसोपासना है :-

(१) ब्रजभूमि मोहनी मैं जानी ।
मोहनि कुंज मोहन वृंदावन, मोहन जमुना पानी ॥
मोहनि नारि सकल गोकुल, बोलत अमृत वानी ।
श्रीभट्ट के प्रभु मोहन नागर, मोहनि राधारानी ॥

(२) जै जै वृन्दावन आनंद मूल
नाम लेत पावत जु प्रनै रति, जुगल किसोर देत निज कूल ॥
सरन आय पाये राधाधव, मिटी अनेक जनम की भूल ।
ऐसै जानि वृंदावन श्रीभट्ट, रज पैं वारि कोटि मखतूल ॥

युगल शतक में ब्रजलीला रस बिहार वेणु वादन, गोचारण-छाक, श्रीगोपाल आरती, श्रीब्रजराज गोपाल लाल का वृषभांनु कुमारी राधाजी से विवाह प्रसंग, त्रिभंगीलाल के बंशीवादन से गोपियों में विरहोद्दीपन, गोपी मंडल में रास, गोरस दान श्रीराधा का मान आदि प्रसंगों से प्रतिपादित हुआ है; ब्रजरस केंद्रित युगलबिहारी श्रीराधाकृष्ण का नित्य वृंदावन बिहार भी यमुना तट-कुंज लीला के लीला प्रसंगों से वर्णित है तथापि सेवासुख, सहजसुख, सुरतसुख आदि शीर्षांकित पदों में ब्रजरस के वृन्दावन बिहार से नितान्त भिन्न निकुंज केलि-रसोपासनात्मक निम्बार्क-साम्प्रदायिक विशिष्ट सखी-भावपरक निकुंज-केलि का दंपति विलास सांगोपांग तथा व्यापक रूप से वर्णित है ।'सेवासुख' विशिष्ट शीर्षांकित पदों में सखी भाव की अष्टकालिक निकुंज-केलि सेवा का भी निरूपण हुआ है। कई पदों में श्रीभट्ट अलि, श्रीभट्ट भटू नामांकित रहस्यात्मक सखी परक नामावली है; पर युगल शतक - आदिवाणीकार ने निकुंज केलि रसोपासनात्मक सखी-सेवा के प्रसंगों में अधिकांशत: अपने पुरुषवाचक श्रीभट्ट नाम की ही अभिव्यक्ति की है; इसी परम्परा का निर्वाह नागरीदास जी ने भी किया है - उन्होंने भी सखी-भाव की निकुंज-केलि सेवा में अधिकांश 'नागरीदास' नाम की छाप लगाई है जो 'राधिकादास' के अर्थ में भी पुरुषवाचक है। श्रीभट्ट की आदिवाणी परम्परा का व्यापक रूप से सैद्धान्तिक निरूपण करते हुये उनके पट्टशिष्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य ने श्रीमहावाणी में श्रीभट्ट का भी सखीनाम 'श्रीहितू' संलग्न किया है जो कि उनके उक्त सखी नाम का प्रामाणिक प्रतिपादन है।

आदिवाणी-युगलशतक के 'उत्सवसुख' शीर्षांकित पदों में निम्बार्कीय रसोपासना में स्वीकृत उभय-रसात्मक ब्रज बिहार वृन्दावन बिहार तथा निकुंज केलि बिहार में उभयनिष्ठ होरी - वर्षा - हिंडोरा - रास, दंपति (राधारमण) का निकुंज केलि परक ब्याह, पर्वोत्सव तथा ऋतुविहार के लीला वर्णन किये गये हैं।

श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी युगलशतक निम्बार्क-सम्प्रदाय की परम्परागत उभय-रसात्मक रसोपासना की परवर्ती कालीन वाणियों का मूलस्रोत है, तथा श्री हरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी निम्बार्क सम्प्रदाय का परम्परागत निकुंज-रस प्रधान विशिष्ट रसोपासना की परवर्ती वाणियों का मूलस्रोत है। नागरीदास वाणी इन्हीं उभयनामात्मक वाणियों के मूलस्रोत पर आधारित है, इन्हीं वाणियों का निम्बार्कीय-रसोपासनात्मक परम्परागत रस प्रवाह नागरीदासजी के गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य कृत रीतिसिद्ध वृन्दावनवाणी - गीतामृत गंगा में निर्झरित होकर नागरीदास जी की वाणी में अनुसृति के रूप में विपुल वेग से प्रवाहित होकर अत्यन्त सरस कलात्मक मधुर रसामृत भक्ति सिंधु रूप में परिव्याप्त हुआ है।

आधुनिक शोधकों ने निम्बार्क सम्प्रदाय की श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी, श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी तथा श्रीपरशुरामदेवाचार्य कृत परशुरामवाणी को ब्रजभाषा की प्राचीनतम वाणियों के रूप में प्रतिपादित किया है। डॉ. बलदेव उपाध्याय, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, डॉ. नारायणदत्त शर्मा, डॉ. रामप्रसाद शर्मा, डॉ. राजनेद्र प्रसाद गौतम, डॉ. पारसनाथ तिवारी आदि विद्वानों ने अपने सम्बंधित शोधग्रंथों में इसी तथ्य को प्रमाणित किया है। पोद्दार - अभिनंदन ग्रंथ में इनका रचनाकाल क्रमश: १३५२, १३८०, और १४५० वि. बताया गया है। निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान पं. ब्रजवल्लभशरण जी तथा निम्बार्कमाधुरी के संपादक ब्रजबिहारीशरण जी ब्रह्मचारी जी ने भी इन वाणियों को अत्यंत प्राचीन बताया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने इन्हीं वाणियों को सूरपूर्व ब्रजभाषा की प्राचीन वाणियाँ सिद्ध किया है। नागरीदास जी के पारिवारिक निम्बार्कीय परिवेश में अंकुरित - पल्लवित - पुष्पित उनके रसोपासनात्मक वर्चस्व में इन्हीं वाणियों के मूलाधारित महत्व को नकारा नहीं जा सकता। नागरीदास वाणी का स्वरूप राधाबल्लभ आदि सांप्रदायिक वाणियों से भिन्न है तथा निम्बार्क-साम्प्रदायिक रसोपासनात्मक- उपासना

के अतिरिक्त नागरीदास वाणी में व्यवहत अन्य कोई पूर्ववर्ती या समकालिक वाणियों के प्रामणिक साक्ष्य भी यहाँ नहीं मिलते। अत: इन्हीं वाणियों के मूल स्रोत से नागरीदास कृत वाणी की रचना मानना युक्ति संगत है ।

(७) **नागरीदास जी के गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत वृंदावनवाणी-गीतामृत गंगा में व्यवहत परम्परागत निम्बार्कीय रसोपासनात्मक भावों तथा उक्त ग्रंथ के रीतिकाव्यकलात्मक संगीतात्मक आदर्शों के मूलाधार पर नागरीदास वाणी की रचना हुई है :-** नागरीदास जी द्वारा व्यवहत निम्बार्क साम्प्रदायिक रसोपासना के उभयनामात्मक ब्रजरस तथा निकुंज रस ही उनके रीतिसिद्ध-मधुर संगीतात्मक कलेवर में अभिव्यक्त काव्य की आत्मा है। नागरीदास जी ने निम्बार्कीय रसोपासनात्मक दीक्षा, संगीत तथा भक्ति शास्त्र की शिक्षा अपने गुरु अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी से ही प्राप्त की थी; वही उनके वाणी-ग्रंथ का आधारभूत प्राण तत्व है 'वृंदावन-वाणी- गीतामृत गंगा' नागरीदास जी का रसोपासनात्मक लक्षण ग्रंथ है तथा उसमें विपुल वेग से प्रवाहित उक्त गुरुवाणी की निम्बार्क-साम्प्रदायिक परम्परा का उभयात्मक रस प्रवाह मधुर रसोपासक नागरीदास जी के रसाप्लाादित मधुर हृदय से निर्झरित होकर नागरीदास वाणी के रीतिसिद्ध-संगीतात्मक कमनीय-कोमल ब्रजभाषिक कलेवर में पुन: प्रकट हुआ है। उसी भक्ति रस की अनुसृति का रसामृत-आचमन करने वाले नागरीदास जी के भावुक दरबारी चित्रकारों की चित्रकारी भी अमर हो गई है।

गुरुवाणी 'गीतामृत गंगा' की निम्बार्कीय रसोपासना का अनुसरण मंत्र-उपदिष्ट-शिष्य नागरीदास जी का परमधर्म था क्योंकि गुरु प्रदत्त संप्रदायी मंत्रदीक्षा से प्राप्त उपासनात्मक निर्देशों तथा भक्ति भावात्मक उपदेशों के आदर्शों का अपने आचार-विचार, व्यक्तित्व-कृतित्व तथा भौतिक-आध्यात्मिक मार्ग में अनुसरण करना ही यथार्थ में गुरुभक्ति है, अत: नागरीदास जी ने अपनी उभय रसात्मक-भक्ति भावपरक रीत्यात्मक काव्य साधना में इसी वाणी का मनोरथपूर्वक अनुसरण किया था, श्रीगीतामृत गंगा-वाणी में समाविष्ट निम्बार्कीय परम्परा का तथा श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी सम्मत मधुररसोपासनात्मक भक्ति दर्शन का मूलाधार लेकर, दंपति विलास की नित्य बिहार-लीलाओं में अंतर्निहित परब्रह्म श्रुति-प्रतिपादित रसरूप परमानंद के अनवरत चिंतन की भावभूमि पर, रसराज-श्रृँगार की मधुरातिमधुर सरस रीति परक कलात्मक आलंकारिक अभिव्यंजनाओं के समधुर ब्रजभाषानिष्ठ कलेवर में, संगीत की अनेकानेक लीला सामयिक राग-रागनियों में निबद्ध जयदेव कृत गीत गोविन्द तथा गीतामृतगंगा की कीर्त्तनात्मक - रीतिपदात्मक मुक्तक शैली तथा परशुरामसागरवत् विविध छन्दात्मक प्रबंध शैली में रचित नागरीदास - वाणी का यही मर्म है। इसीलिए श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत वृंदावनवाणी - गीतामृत गंगा तथा नागरीदास वाणी के ग्रंथों में निम्बार्क-साम्प्रदायिक परम्परावत गोपीभाव-सखीभाव की उभय-भावनिष्ठ रसिकोपासना से सम्बंधित ब्रज वृन्दावन लीला परक नित्यबिहार-निकुंज बिहार के युगल-लीला वर्णनों का भावात्मक साम्य तथा उनमें रीति काव्यपरम्परानुसार काव्यकलात्मक एवं रागबद्ध गीतिपदात्मक एवं ब्रजभाषा शैली परक श्रृँगारिक उद्‌भावनाओं, तदनुरूप सूक्ष्माति - सूक्ष्म संवेगिक मधुर हावभावपूर्ण श्रृँगारिक चेष्टाओं का अभिव्यंजनात्मक अद्‌भुत साम्य दृष्टिगत होता है :-

(१) इनमें श्रीभट्टदेवाचार्यकृत आदिवाणी-युगलशतक तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी दोनों की परम्परानुसार निम्बार्क संप्रदाय की परम्परागत उभय रसोपासनात्मक नित्यबिहार लीलाओं का वर्णन हुआ है। ब्रजरस केंद्रित युगल बिहार लीलाओं का दोनों में समान रूप से सांगोपांग व्यापक चित्रण हुआ है; ब्रजलीला परक युगल के कैशोरवयात्मक ब्रजरस केंद्रित नित्यबिहार में गोरसदान, चीरहरण, गोवर्धन धारण, वेणुवादन, गोपी बिहार, रास, युगल का ब्रजवृन्दावन-बिहार, वृषभांनुकुमारी का अभिसार, मान तथा श्रीकृष्ण द्वारा परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधा जी के परमाराधन प्रसंग में महावर - बेणीगूंथन आभूषण श्रृंगार, मानमनावन, यमुनातटीय ब्रज-वृन्दावन कुंजों में दंपति स्वरूप युगल का सुरति-परक नित्यबिहार आदि के समानरूप से सरस व्यापक तथा विस्तृत लीला प्रसंग वर्णित हैं। ब्रजरसलीलाओं के इन प्रसंगों पर नागरीदास वाणी के पूर्वोक्त नामांकित अनेक ग्रंथ रचित हुये हैं।

(२) गीतामृत गंगा के प्रथम-द्वितीय घाटों में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का सूक्ष्म चित्रण हुआ है जिसमें श्रीराधाकृष्ण के जन्मोत्सव, तदनुरूप नंद-वृषभानु के यहाँ मंगलाचारिक उत्सव, जसुमति और कान्हा के पालना प्रसंग, नंद-यशोदा का वात्सल्यपरक लाडलडावन इत्यादिके अल्पकायिक संक्षिप्त प्रसंग वर्णित हैं। द्वितीय घाट में नंदलाल-गोविन्द गोपाल गोकुल चंद की पौगंड लीलाएँ गोचारण, गोवर्धन धारण, बनगमन, वनभोजन, गोपाल का गोधूलिक ब्रजागमन, खरिक दुहावन, बंशीवादन का संक्षिप्त वर्णन हैं। बाल-पौंगंड लीला में श्रीकृष्ण की असुर लीलाओं का यहाँ नितान्त अभाव है। नागरीदास जी ने भी गोकुललीला के इन प्रसंगों का अति सूक्ष्म वर्णन किया है, उनके ग्रंथों में भी असुर-संहारक लीलाओं का नितान्त अभाव है। ठाकुर-ठकुरानी जी के जन्मोत्सव, नंदोत्सव के मंगलाचार-दधिकादौ, वृषभानु के

मंगलाचार-बधाई के अतिसंक्षिप्त वर्णन हैं । गोपाल लीला के गोचारण प्रसंगों से सम्बंधित वन विनोद - बाल विनोद, गोधन - आगम, दोहनानंद अष्टक, ब्रज बैकुण्ठ तुलादि नागरीदास वाणी के इन ग्रंथों में इन लीलाओं का गीतामृतगंगा के अनुसार अतिसूक्ष्म चित्रण है ।

(३) गीतामृत गंगा के चतुर्थ घाट में कैशोरलीला वर्णन प्रसंगों में युगल की रूप छबि - नखशिख सौंदर्य, नैंन-अधर-मुखमंडल का चित्ताकर्षक आलंकरिक वर्णन, तथा परस्पर प्रीतिभाव के प्रसंग हैं। नागरीदास वाणी में युगल छबि का ऐसा आलंकारिक - रीतिपरक रूप वर्णन युगल लीला प्रसंगों में सर्वत्र वर्णित है।

(४) गीतामृत गंगा के पंचम घाट में युगल रूप में गोपी - रास विलास का वर्णन है नागरीदास वाणी के रास रस लता, रास-अनुक्रम, रासकवित्त, उत्सवमाला - पदमुक्तावली में शरद रास तथा निकुंज महारास के ऐसे ही वर्णन हैं ।

(५) षष्टम में श्रीराधा का मान, सप्तम में अभिसार सुरत-सुरतान्त लीला वर्णन है। अष्टम में खंडिता राधा के उपालंभ-विरह-मानमनावन के प्रसंग हैं जो नागरीदास वाणी के ब्रजरस लीला के पूर्वोक्त ग्रंथों में वर्णित हैं - फूलविलास, सांझी कवित्त ग्रंथ, ब्रजसार, ब्रजलीला, उत्सवमाला और पदमुक्तावली के युगल बिहार-निकुंज- केलि बिहार भी उल्लेखनीय हैं। इन प्रसंगों में श्रीराधाजी के वर्णित परकीयात्व स्वरूप को गीतामृत गंगा के सप्तम घाट में रसराज श्रृँगार के रीतिकाव्यात्मक नायिका भेदानुसार लौकिक ललित युगल प्रेम चित्रण की परिपाटी मात्र बताया है। रसोपासना में श्रीराधा रस की अधिष्ठात्री निरतिशय आनंद स्वरूप अनंत गुणांलकृता प्रेमस्वरूपा हैं। रसराज श्रृंगार के प्रेमामृत रसार्णव रूपी श्रीराधा में ही अनेक नायिका रूपी सरिताएं समाविष्ट हो जाती हैं। श्रीराधा जी में रस और प्रेम की चरम अभिव्यक्ति है । इस प्रकार निम्बार्कीय राधा तत्व अलौकिक अनन्त है। ऐसे ही कृष्ण सर्वोच्च नायक हैं जिनमें रस और प्रेम की पराकाष्ठा है । वे ही रस रूप परब्रह्म सच्चिदानंद सर्वेश्वर श्रीकृष्ण अपनी अंतरंगभूता आद्याशक्ति परमाह्लादिनी, अनुरूप सौभाग्यशालिनी नित्य किशोरी श्रीस्वामिनी वामांगिनी श्रीराधाजी के साथ ही नित्य बिहार करते हैं। दंपति राधारमण हैं उनका स्वकीयात्व अनादि है। श्रीराधा - सर्वेश्वरी तथा ब्रजचंद श्रीकृष्ण सर्वेश्वर हैं जिनका स्वरूप सदा-सर्वदा एक रस अभिन्न तथा अनादि है; सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के अनुरूप श्रीराधा उनकी परमाह्लादिनी होने से उनके द्वारा भी आराधित उनकी परमाराध्या है; सर्वोपरि भावना से पूज्य ऐसी श्रीराधा जी में परकीयात्व देखना मतिमंदता है तथापि उनके अनादि अनन्त-अगम्य अलौकिक-परमदिव्य दंपति विलास की नित्यबिहार लीलाओं की 'रेलपेल' में लौकिक ललित प्रेमभावनानुसार कवि कल्पित काव्यात्मक परकीयात्व मान्य हुआ है। भक्त जनमनरंजन हेतु दंपति ने ऐसा भाव भी दिखाया है पर वे अनादि रूप से दंपति हैं । इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण के नित्यबिहार को स्वकीयात्व भाव से परिपुष्ट दंपति विलास मानना ही निम्बार्कीय परम्परा है जो आदिवाणी - श्रीमहावाणी से होकर वृन्दावन वाणी-गीतामृत गंगा में भी प्रबल रूप से प्रतिपादित है। नागरीदास जी द्वारा वर्णित उभय-रसात्मक ब्रज वृन्दावन बिहार तथा निकुंज केलि बिहार में इसीलिए सर्वत्र ही राधारमण का दंपति विलास चित्रित हुआ है। नित्य बिहार लीलाओं के सभी प्रसंगों में, परकीयात्वपरक प्रसंगों में भी; इसीलिए नागरीदास ने अधिकांशतः दंपति शब्द का व्यवहार किया है जो निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशिष्ट परम्परा है। जो गीतामृत गंगा के अनुसरण से नागरीदास वाणी में प्रतिपादित हुई है। नागरीदास जी द्वारा वर्णित नित्य बिहार परक निम्बार्क रसोपासना का यही सार है जो गीतामृत गंगा में निर्देशित है :-

दंपति रति लीला अगम अब बरनत भलिभांति । जिसमैं लाडिलीलाल की सब विधि पूरति कांति ॥
कबहुँ न बिछुरै जोरि यह दम्पति जनमन चौर । सदा एकरस नेहमय बिहरत युगल किसोर ॥
ज्यौं रविकर रवि सौं सदा विलग न कबहुँ होयँ । त्यौं श्रीहरि अरु राधिका छिनु न्यारे न होयँ ॥
जनमनरंजन हेतु प्रभु रचे विविध विधि खेल । ज्यौं विलास लौकिक ललित दम्पति रस की रेल ॥
एक ईश सब लोक के स्वामी श्रीभगवांन । यातैं हो किस बाल में परकीया का भांन ॥
ब्रज बनिता बनिता नहीं नहीं काममय राग । श्याम सुधानिधि की कला स्वाभाविक अनुराग ॥
श्रीराधासर्वेश्वरी सर्वेश्वर ब्रजचंद । परकीया तिनकौं कहै ऐसो कौ मतिमंद ॥
विविध भांति की नाइका ज्यौं सरिता जगमांहि । श्रीराधासर्वेश्वरी वारिधि मांझि समांहि ॥
सर्वोपरिनायक परम परं ब्रह्म ब्रजराज । मूल नायकनि सबनि को कवि बरनत रसराज ॥
हरि की लीला अटपटी कोउ न पावै पार । मानव क्या ऋषि मुनि सभी करि करि थके विचार ॥

(६) नवमघाट में बसन्त, होरी, फाग, फूल डोल, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, ग्रीष्म-पावस, सांवन तीज, हिंडोरा, सांझी, दीपोत्सव, गोवर्धन पूजा आदि उत्सवों, ऋतु-पर्वादि की नित्यविहार लीलाओं का वर्णन हुआ है -जिसमें दंपति का वृन्दावन बिहार चित्रित हुआ है। तदनन्तर त्रयोदश घाट के सर्वरस मिश्रित वर्णन में सर्वाधिक रूप से दंपति का निकुंज-केलि बिहार लीला प्रसंग वर्णित हैं; उल्लेखनीय यह है कि यहाँ श्रीहरिव्यासदेवाचार्य कृत श्रीमहावाणी जी परम्परा की

सांगोपांग निकुंज-केलि परक एकांतिक निकुंज-रसोपासना अति संक्षिप्त रूप से वर्णित है; तथा यहाँ सखी-सहचरी भावपरक निकुंज-सेवा का चित्रण भी नगण्य है। गीतामृत गंगा के दशमघाट में कंसवध वर्णन है जो नागरीदास वाणी का विषय नहीं है। गीतामृत गंगा में केवल यही प्रसंग लोकोद्धारक श्रीकृष्ण का परिचायक है।

(७) नागरीदास जी की वाणी में गीतामृत गंगा के नवम घाट में वर्णित - उत्सवों-पर्वों तथा ऋतुपरक-नित्यबिहार लीलाओं का व्यापक वर्णन हुआ है। नागरीदास वाणी में वर्णित दंपति के उभय-रसात्मक ब्रज-वृंदावन-विलास तथा निकुंज-केलि-विलास का इन्हीं लीलाओं द्वारा व्यापक विधान किया गया है। उत्सवमाला और पदमुक्तावली, फाग विलास, ग्रीष्म बिहार, पावसपच्चीसी, सांझी कवित्त, वसंत, चांदनी, दिवारी, हिडोंरा कवित्त, वर्षा ऋतु की मांझ, सरद की मांझ होरी की मांझ ऐसे ही ग्रंथ हैं। उल्लेखनीय है कि महाकवि नागरीदास जी ने रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में वर्णित दोहा, चौपाई, पद्धरि, अरिल्ल, सार, रोला, कुंडलिया, छप्पय, कवित्त, भुजंग प्रयात, मत्तगयंद, किरीट-मदिरा, दुर्मिल, सवैयादि विविध छन्दों में निबद्ध - विविध छंद रूपात्मक ग्रंथावली में तथा गेय पदों में भी लीलाओं का वर्णन किया है जो उनके रीतिसिद्ध कला का परिचायक है। जबकि गीतामृतगंगा केवल गीतिपदात्मक मुक्तक वाणी ग्रंथ है।

(८) गीतामृत गंगा में शास्त्रीय संगीत की विविध राग-रागनियों का वैभव भी उल्लेखनीय है। नागरीदास वाणी में इसी के अनुरूप उत्सव पर्व-ऋतु एवं लीला सामयिक राग रागनियों का विधान अनूठा है; इन्हीं के भावसाम्य पर चित्रों में भी रागरागनियों की चित्रात्मक प्रस्तुति हुई है।

(९) यह भी उल्लेखनीय है कि नागरीदास वाणी पर श्रीमहावाणीजी की परम्परा का प्रभाव अधिक है। उनके निकुंज-केलि परक निकुंज विलास, विहार चंद्रिका और भोर लीला, जुगलरस विहार, उत्सवमाला, पद मुक्तावली आदि ग्रंथों में सांगोपांग रूप से दंपति का निकुंज केलि विलास तथा तदनुरूप सहचरी सेवा का व्यापक वर्णन हुआ है।

(१०) नागरीदास वाणी में निम्बार्कीय परम्परानुसार उभय रसात्मक रसोपासना का समान रूप से व्यापक वर्णन हुआ है तथापि उसमें श्रीमहावाणी परक निम्बार्क-संप्रदाय की विशिष्ट निकुंज-केलि रसोपासना का प्राधान्य है - यही उनका रसोपासनात्मक निम्बार्कीय वैशिष्ट है जो पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिपादित है।

(११) गीतामृत गंगा के दशम घाटमें नाम संकीर्तन भक्ति का जयदेव कृत गीतगोविन्द कीर्तन पद्धति से संक्षिप्त वर्णन है; जबकि नागरीदास जी ने भक्तिमगदीपिका, भक्तिसार में संक्षिप्त रूप से भक्ति निरूपण किया है।

(१२) गीतामृत गंगा के द्वादशघाट में पुष्कर, प्रयाग, वृन्दावन, मथुरा, काशी का संक्षिप्त वर्णन किया गया है जबकि नागरीदास जी ने 'तीरथानंद' में ब्रज रस बिहार के सभी लीलास्थलों का तीर्थाटन वर्णन किया है।

(१३) गीतामृत गंगा के चतुर्दश घाट में विलक्षण रूप से गांधर्वोपवेद के आधार पर शास्त्रीय संगीत की विविध रागरागनियों एवं विविध-वाद्य यंत्रों का वर्णन किया गया है। उल्लेखनीय है कि नागरीदास वाणी में व्यापक रूप से वर्णित निम्बार्कीय मधुरोपासना के रागबद्ध - मधुर गीतात्मक पदलालित्य का मूलाधार श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत यही गीतामृतगंगा है।

(१४) गीतामृतगंगा और नागरीदास वाणी में ब्रजभाषा का अद्भुत साम्य है। दोनों में संस्कृतनिष्ठ परिष्कृत प्रसादपूर्ण सुमधुर ब्रजभाषा का व्यवहार हुआ है; गीतामृत गंगा में पंजाबी, बंगला, मारवाड़ी भाषाओं के विशिष्ट प्रयोग की अनुसृति नागरी दास वाणी में हुई है। रसिक बिहारी नाम से संकलित बनीठनी के निम्बार्कीय रसोपासनात्मक निकुंज-बिहार के पदों में गीतामृत गंगा के प्रभाव से ही मारवाड़ी भाषा की प्रधानता प्रकट हुई है तथा नागरीदास जी की विमाता ब्रजदासी जी कृत 'ब्रजदासी - भागवत' का मारवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा शैली का विधान इसी ग्रंथ की अनुसृति है। नागरीदास वाणी का भाषा वैभव और भी अनूठा है कि उसमें व्यवहृत ब्रजभाषा के साथ अरबी-फारसी-रेखता का संक्षिप्त प्रयोग हुआ है- इश्क चमन, मजलस मंडन-दोहा ग्रंथ ऐसे ही हैं।

(१५) नागरीदास जी का रीतिसिद्ध अभिव्यक्ति पक्ष अत्यन्त मौलिक और अनूठा है जो उन्हें महाकवि पद पर उच्चासीन करता है। उन्होंने गीतामृत गंगा के पूर्वोक्त उभयरसात्मक दंपति विलास के व्यापक लीला वर्णनों में बहुछंदात्मक तथा प्रबन्धात्मक पद्य शैली तथा रागबद्ध गीति पदात्मक मुक्तकशैली का सरसतापूर्वक अद्भुत समन्वय किया गया है। उन्होंने रसराज श्रृँगारं की सुकोमल दाम्पत्य परक सूक्ष्माति सूक्ष्म प्रीतिपरक उद्भावनाओं का संवेगिक, हावभावपूर्ण मधुर चेष्टाओं से परिपूर्ण रस परिपाक किया है। रीतिपरक अतिशयोक्तिपूर्ण रूपांकन में उपमा-उत्प्रेक्षा-रूपक-दृष्टान्त आदि विविध अलंकारों से मंडित नखशिख श्रृँगार, नायक-नायिकाभेद, मानविरह, अभिसार तथा सर्वाधिक रूप से निकुंज-केलि-विहार में वर्णित सुरत्यारंभ- सुरतिरत-सुरत्यन्त अवस्थाओं का सूक्ष्म अभिव्यंजनात्मक चित्रण, अतिशय सुकोमल सुवासित - विमल-चंद्रिमा-आच्छादित, लता-आवेष्टित प्रकृति परिवेश का पृष्ठांकन, चित्रोपम शैली में वर्णित मधुर भावों का चित्रांकन आदि विशेषताओं से उनकी वाणी में रीतिसिद्ध महाकाव्यात्मकता प्रतिपादित होती है।

<u>निष्कर्षतः</u> यह मानना उचित ही है कि नागरीदास वाणी का मूलाधार स्रोत ग्रंथ इनके गुरु श्री वृन्दावन देवाचार्य कृत

वृंदावन वाणी- गीता मृत गंगा ही है, उनके द्वारा प्रतिपादित निम्बार्क- सम्प्रदाय की उभय-रसात्मक रसोपासना इसी गीतामृत गंगा की अनुसृति है, अत: यह तथ्य प्रामाणिक है कि नागरीदास जी श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी के ही शिष्य थे - जिन्होंने उन्हीं से निम्बार्कीय दीक्षा लेकर विपुलरूप से निम्बार्कीय रसोपासनात्मक बहुसंख्यक ग्रंथों की रचना की थी जो नागरीदास-वाणी तथा नागर समुच्चय के नाम से अद्यावधि प्रख्यात है।

(८) **ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक चित्रों का आधार -** श्री सर्वेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित नागरीदास - वाणी के संपादक पं. व्रजवल्लभशरण जी ने उक्तवाणी के पृष्ठ एक तथा अड़तीस पर नागरीदास जी से सम्बंधित ऐतिहासिक चित्रों को प्रकाशित करवाकर संलग्न किया है। पृष्ठ एक पर संलग्न चित्र में नागरीदास (युवराज सांवतसिंह) जी निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशिष्ट निकुंज-केलि-रसोपासना-परम्परानुसार सखी- भाव से दंपति प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्ण की प्रात: कालीन निकुंज-सहचरी-सेवा सुख की तल्लीन-अवस्था में श्रीधाम वृन्दावनस्थ दिव्य-रंगमहल में परमानंददायी दंपति विलास का मानसिक चिन्तन एवं तदनुरूप प्रभु का आराधन कर रहे हैं। युवराज कंवर पदां सांवत सिंह (नागरीदास) जी निम्बार्कीय परम्परानुसार उक्त युगल आराधन के सखीवेश में निम्बार्कीय श्रीस्वामिनी जी द्वारा प्रदत्त प्रसादी रूपी 'दुकूल' पीले उपरैना की साड़ी पहिने तथा आध्यात्मिक परम्परागत विश्वास के अनुसार निम्बार्कीय तिलक कंठी धारण किये हुये अनन्य निष्ठा से अभिलषित दिव्य-केलि धाम श्रीवृंदावन का ध्यान कर रहे हैं। संपादक ने इस चित्र में केवल सखी वेश में नागरीदास जी का ब्लाक दिया है तथापि विवरण दिया है कि इसके सम्पूर्ण चित्र में नागरीदास जी के सम्मुख उनकी निकुंज-सेविका बनीठनी खड़ी हैं। मूलत: किशनगढ़ के कपड़ - भंडार में सुरक्षित रहे इस चित्र का ब्लाक उन्होंने किशनगढ़ राज्य के तत्कालीन होम मिनिस्टर नारायणदास जी मेहता के सौजन्य से प्राप्त चित्र से बनवाया है। यह चित्र 'नागर-सम्मुचय' तथा 'राधाकृष्ण ग्रंथावली' में भी प्रकाशित हुआ है। वृन्दावनस्थ निम्बार्क शोध-मंडल के रूपनगढ़ - राज्य पुरातत्व संग्रहालय-में आज भी इसकी प्रति सुरक्षित है। यही चित्र सन् 1959 में ललित कला अकादमी नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित किशनगढ़ पेंटिंग की चित्रावली में पृष्ठ सं. २२ पर प्लेट नं. - दो में छापा गया है। युवराज नागरीदास जी का सखी वेश में यह चित्र उनके बाल्यकाल में ली गई निम्बार्कीय दीक्षानुसार उनके युवाकाल की परिपक्व वृन्दावन निष्ठा से उनके द्वारा की जा रही निकुंज-सहचरी-आराधना का प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार है। हमने इसका पूर्ण आलोचनात्मक विवरण आगे बनीठनी के प्रसंगमें दिया है, जो अवलोकनीय है।

इसी प्रकार नागरीदास जी की युवाकालीन युवराज पदां की परिपक्व-निम्बार्कीय निकुंज - रसोपासनात्मक भावावस्था में, तदनुरूप उनकी बाल्यकालीन निम्बार्कदीक्षा के उपदेष्टा परम पूज्य गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्रीवृन्दावन देवाचार्य जी के चरण सान्निध्य में बैठकर, अनवरत रूप से निकुंज-केलि विहारपरक पदगायन कीर्तन का शिक्षाभ्यास करने तथा गुरुवाणी गीतामृत गंगा सदृश अपने वाणी-ग्रंथों में की जाने वाली शास्त्रीय-राग-रागनियों की सम्बद्धात्मकता के प्रति निर्देश लेने एवं तदनुरूप ही रसोपासनापरक काव्यभक्ति तथा संगीत शिक्षा का निरन्तर ज्ञान प्राप्त करने सम्बंधित प्रामाणिक इतिहास को प्रतिपादित करने वाला दूसरा चित्र भी उक्त नागरीदास वाणी के पृष्ठ ३८ पर संलग्न किया गया है जो दस वर्ष पूर्व वि. सं. २०१० में प्रकाशित श्रीवृंदावनदेवाचार्य कृत - वृंदावनवाणी-गीतामृत गंगा की भूमिका पृष्ठ ८ पर भी छापा गया है; यह चित्र भी पूर्व में नागर समुच्चय में भी संलग्न किया गया था तथा यही चित्र किशनगढ़ राज्य के चित्र संग्रहालय में भी रहा था; तथा अद्यावधि इसकी एक प्रामाणिक प्रति श्रीनिम्बार्क शोध मंडल श्रीजी कुंज वृन्दावन में सुरक्षित बताई गई है। इस चित्र में युवराज सांवतसिंह निम्बार्कीय तिलक लगाये - गले में निम्बार्कीय कंठी पहिने, अपने गुरुभाई विरजानंद तथा गुरुभाई-कविमित्र आनंदघन आदि गुरु परिकर सहित अपने गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के समक्ष शिष्यवत् विनीतभाव से सितार वादन - अभ्यास की मुद्रा में बैठे दर्शाये गये हैं। इन चित्रों का प्रासांगिक प्रतिपादन पं. श्रीब्रज बिहारीशरण जी ब्रह्मचारी जी ने अपने ग्रंथ निम्बार्क माधुरी में तथा डॉ. नारायणदत्त शर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि में भी किया है। हमने इन चित्रों के प्रत्यक्ष दर्शन किशनगढ़ के चित्र-संग्रहालय तथा वृन्दावनस्थ श्रीजी कुंज में किये हैं तथा ये चित्र किशनगढ़ में भी बहु प्रचलित रहे हैं। अत: हमारे मतानुसार भी उक्त दोनों चित्र ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक हैं।

(९) **महाकवि नागरीदास जी की ''बनीठनी''** - कृष्णगढ़ नागरीदास-काव्य एवं चित्रकला में ''बनीठनी'' का व्यक्तित्व अत्यंत प्रेरणात्मक माना गया है। श्रीधाम वृन्दावन में निम्बार्कीय निकुंजोपासना के रस-मर्मज्ञ रसिकवृन्द ''बनीठनी'' को नागरीदास जी के वृन्दावनवास में उनकी निकुंज-सेवा में संलग्न - सहचरी, साधनात्मक परिचर्या में उनकी अनन्य सेविका तथा राजसी परम्परा की हैसियत से पासवान होने पर भी परम विरक्त महाराजा नागारीदास की भांति ही भौतिक स्वरूप से वैराग्य लेकर वृन्दावन-निष्ठा से उन्हीं के अनुरूप सहचरी-भाव से निकुंज-स्वामिनी श्री राधिकाजी की कृपाकांक्षिणी अनन्याश्रिता तथा ''नेहि-नागरि'' अर्थात् नागरीदास जी की सत्संग-सेविका ''निकुंज-मंजरी'' मानते

हैं।

निम्बार्कीय - रसोपासना में सहचरी का रहस्यात्मक व्यक्तित्व ''बनीठनी'' वस्तुतः ''बनीठनी'' नागरीदास जी की विद्यमानता से लगभग २५० वर्ष पूर्व में रचित श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी की श्रीमहावाणी में वर्णित सखी-स्वरूप का गुह्यतम विशेषण है। ''बनीठनी'' विशिष्ट विशेषण इसी ग्रंथ में निकुंज-स्वामिनी श्रीराधा जी के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। यह परम्परा श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी द्वारा रचित ''गीतामृत गंगा'' के पदों में भी है जो श्रीनागरीदास जी के समकालिक उनकी गुरुवाणी है तथा जिसका नागरीदास के काव्य पर उल्लेखनीय प्रभाव भी रहा है तथापि हम ''बनीठनी'' नाम का आधार इसे नहीं मान सकते ''बनीठनी'' तो महावाणी जी में वर्णित ''मंजरी-सुंदरी'' स्तर की सहचरी थी; महारानी ब्रजकुंवरी जी ने अपने अंतःपुर की इस दासी को परमभक्तिपरायणा सहचरी-स्वरूप के इन विशिष्ट गुणों से संवार कर उसे ''बनीठनी'' बना दिया था। उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीवृन्दावनदेवाचार्य द्वारा उपदिष्ट श्रीमहावाणी जी के सहचरी-सेवा रहस्य के आधार पर अपनी साम्प्रदायिक निकुंज-रसोपासना के अनुकूल यह गुह्य नाम देकर उसे नागरीदास जी के राजत्वकाल में राज्य द्वारा उनकी अधिकृत पासवान बनाकर तदनन्तर उसे उनके वृन्दावनवास में मंजरी-भाव से अनन्य-पारिचारिका के रूप में भेजा था। अतः ''बनीठनी'' के विलक्षण-व्यक्तित्व के निर्माण का श्रेय महारानी ब्रजकुँवरी ब्रजदासी जी को है। नागरीदासजी की ''बनीठनी'' मनसा वाचा कर्मणा रसिकों की रहस्यात्मक निकुंज सेवा करने में निपुण, सर्वथा - सिद्धहस्त तथा तदनुरूप रूप-गुण वाली परमसुंदरी सेविका का विशेषण युक्त नाम है जो बांकावती जी की देन है; इस प्रकार नागरीदास जी की 'बनीठनी'' नाम से अद्यावधि व्यवहृत तथा किशनगढ़ के इतिहास एवं निम्बार्कीय रसोपासना के क्षेत्र में लोकश्रद्धा से अत्यंत सम्मानित बांकावती जी द्वारा संवारी हुई ऐसी सेविका रही है जो श्रीनिकुंजबिहारी लाडलीलाल प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्ण की अनन्य-सहचरी, सहज-सौंदर्यशालिनी, सद्गुणालंकृता-परमसुंदरी थी, जो निकुंज-सेवा में अपनी कुशलता, रसिकों की सेवा-परिचर्या में अपनी परमनिष्ठा तथा परमरसिक-नागरीदास जी के कृपाश्रय से परमानंद की प्रबल-कामना के कारण ही नागरीदास जी के वृन्दावनवास में उनकी परम सहयोगिनी बनी थी। निकुंज-रसोपासना के परिवेश में रसिक जनों की सेवा में संलग्न ऐसी दासियां ''मंजरियाँ'' कहलाती हैं। इसी परम्परा से बनीठनी मंजरी भी निकुंज-सेवा की भावावस्था में तल्लीन रसिकों की अष्टकालिक सेवा-परिचर्या में सहजभाव से, नव-नव-उत्साह और उमंग से प्रतिपल तत्पर रहने वाली पूर्वोक्त प्रकार से निकुंज-सेवाविधि और व्यवस्था में सर्वथा सिद्ध तथा अत्यंत निपुण एवं निष्काम-निष्ठा से श्रीराधाचरणानुरागिनी सहचरी साधिका का नाम है। श्रीमहावाणी जी में ''सखी-सहचरी-सहेली'' अरू मंजरी-सुंदरी'' आदि के भिन्न भिन्न स्वरूपों का इसी प्रकार निरूपण किया गया है।

''निकुंज-सेवा-रहस्य'' के अनुसार सेविका ''मंजरी'' भी निकुंज रसोपासना के मधुरतम तथा नित्यनूतन परिवेश के अनुरूप सर्वविध विशिष्टता सम्पन्न, दिव्यरूपगुणालंकृता-महामोहनी, रस मर्मज्ञा, मधुर रसानुरूप श्रृंगार-काव्यशास्त्रीय-विधान एवं संगीत-नृत्य रागरागनियों के ज्ञान में अत्यन्त निपुण, निकुंज-भक्ति विधान में मान्य युगल के रत्यात्मक रागरंगभोगादिक ज्ञान से गर्वित, ऋतु-पर्वादि विशिष्ट तथा नित्य प्रति की अष्टकालिक सामान्य सेवाविधि एवं व्यवस्था में निरपेक्ष-भाव से युगल-केलि की सेवा में पारंगत तथा निकुंज-मंदिर की कलात्मक-चित्ताकर्षक साज-सज्जाओं में सिद्ध-हस्त, निकुंज-बिहारी प्रियाप्रियतम लाडलीलाल राधारमन जू की सेवा-सुख-वांछा से रसिकों के कृपाश्रित-परमानंद की साधिका के रूप में बनीठनी अर्थात् सर्वगुणसम्पन्न उनकी सेविका-दासी मंजरी के व्यक्तित्व का नाम ही किशनगढ़ के नागरीदास जी की बनीठनी रहा है। इस प्रकार के श्रीमहावाणी जी आधारित ''बनीठनी'' के आध्यात्मिक एवं सहचरी-भाव के उपासनापरक नाम-स्वरूप को उजागर करना हमारा लक्ष्य है।

निम्बार्कीय रसोपासना की मूलाधार श्रीमहावाणी जी के गूढ़तम तत्व-ज्ञान के अभाव में ''बनीठनी'' के व्यक्तित्व को समझने समझाने में अद्यावधि भ्रामक प्रचार ही किया गया है।

निहालचन्दकृत प्रसिद्ध विश्वविख्यात चित्राकृति ''बनीठनी'' का मूलाधार प्रसंग - सखी सहचरी-भाव की निकुंजोपासना का रहस्य समझ लेने पर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुंच पायेंगे कि ''बनीठनी'' नामांकित विशिष्ट व्यक्तित्व परमरसिकाचार्य अ. श्रीविभूषित-जगद्गुरू श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी कृत श्रीमहावाणी जी में वर्णित विशिष्ट सहचरी तथाकथित ''निकुंज-मंजरी'' के रहस्यमय स्वरूप का नाम है जो पूर्वोक्त प्रकार के रूपों से संबलित, विशिष्टताओं से आवेष्टित, मनसा वाचा कर्मणा प्रतिपल नवनव भावोत्साह से उमंगित एवं निष्काम-भाव से निकुंज-सेवा में तत्पर होने से रसिकों की यही अनन्य-दासी ''मंजरी'' निरूपित सर्व श्रेष्ठ नायिका श्यामा है तथा जिसका सर्वांग - सौंदर्ययुक्त शोभायमान रसिकजन-विमोहक रूप होने से वह महामोहिनी है। ऐसी ही ''बनीठनी'' नागरीदास काव्य एवं चित्रकला में अवतरित हुई है जिसकी चित्रकार निहालचंद-कृत चित्राकृति विश्वविख्यात ''मोनालीसा'' चित्राकृति के समान

सुंदर मानी गई है तथा भारत सरकार ने उक्त चित्राकृति का डाक टिकिट भी जारी किया है। आज इन्हीं अलौकिक गुणों और विशिष्टताओं से संयुक्त ''बनीठनी'' के स्वरूप को किशनगढ़ की चित्रकारिता में कृष्णगढ़ की राधिका के नाम से उपमित किया जाने लगा है।

नागरीदास-चित्रशैली की अधिकांश चित्राकृतियां उनके काव्यमय-भावों की मूर्तरूप हैं। लीला पदों से भावसाम्य स्थापित करने की दृष्टि से कई चित्रों के नीचे उक्त चित्रावली से सम्बंधित पद भी अंकित किये जाने की परिपाटी भी चली आ रही है। बड़ा आश्चर्य है कि अद्यावधि-किसी विद्वान अथवा चित्रकार ने निहालचंद कृत ''बनीठनी'' का नागरीदासकालीन काव्याधार जानने का प्रयास नहीं किया है। इस रहस्यमय चित्राकृति का आधार महारानी व्रजकुँवरी जी कृत ''व्रजदासी-भागवत'' का निम्न उद्धरण है जो तत्कालीन राजनैतिक परिवेश में बनीठनी के ''वकी'' सदृश चराचर-विमोहक रूप को उजागर करने की दृष्टि से रूप चित्रांकन शैली में उपमान-विधान से दोनों पात्रों के लिये ही व्यंजित किया गया प्रतीत होता है :-

ऐक दिनां वा पूतनां, धरि अस्त्री कौ रूप ॥
गौकुल मधि आवत भई, बनिठनि महा अनूप ॥
सुमन गूंथित वैनी रही, छूटी नितंबनि ठांम ॥
पंकज सौ मुष छीन कटि, षंजन नैंन अभिरांम ॥
मंडित भूषण बस्त्र सौं, मुसकत करत अदाय ॥
मौहित गोपी गोप सब, करत भइ या ठगाय ॥ (द. पू. अ. ६)

''वकी'' का यह प्रसंग हम आगे और स्पष्ट करेंगे इससे पूर्व हम वृन्दावनवास में नागरीदास जी की अनन्य -सेविका ''निकुंज-मंजरी'' ''बनीठनी'' के नामाधार स्वरूप को महावाणी जी के प्रमाणों द्वारा पुष्ट कर देना चाहते हैं।

महावाणी जी में निरूपित सखी-सहचरी तथा निकुंज-रसोपासना में विशिष्ट मंजरी का विशेषण वाचक शब्द ''बनीठनी'' :- आद्याचार्य भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य कृत दशश्लोकी में ''अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूप सौभागाम् सखी सहस्त्रै: परिसेवतां सदा स्मरेम देवी सकेलष्टकामदाम् ॥'' के अनुसार सखी-भाव से श्रीराधाजी की निकुंजोपासना उपदिष्ट हुई है और इसी सारगर्भित उपदेश से निम्बार्कीय सहचरी-भाव की रसोपासना का सूत्रपात हुआ है जिसका परम्परागत वर्णन परवर्ती आचार्यों ने विस्तार से किया है। श्रीभट्टदेवाचार्य जी कृत आदिवाणी - ''युगलशतक'' में उनके रहस्यात्मक सखी नाम ''हितू'' से श्रीभट्टदेवाचार्य जी ने यहाँ युगल-लीला का भावमय चित्रण किया हैं। निम्बार्कीय निकुंजोपासना का सांगोपांग विवेचन श्रीभट्टदेवाचार्य जी के शिष्य रसिकवर्य्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी ने ''हरिप्रिया'' सखी नाम से महावाणी जी के पांच सुखों में विस्तारपूर्वक किया है। इसी महावाणी जी के उत्साह सुख का सखी-रहस्य निरूपण द्रष्टव्य है। यहाँ पद १४५-४६ में निकुंज-स्वामिनी के ''सखी जूथों'' का विवेचन किया गया है। आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क अपने रहस्यात्मक सखी नाम ''श्रीरंगदेवीजू'' के दिव्य स्वरूप में अवतरित होकर श्रीस्वामिनी जू कीअनन्य-अंतरंग तथा वरिष्ठतम सखी-भाव से नित्यप्रति की निकुंज सेवा में प्रतिपल संलग्न हैं। श्रीरंगदेवी जी के सखी-जूथ में सहचरियों के रहस्यात्मक नाम लगभग वहीं है जो ''हरिप्रिया जी'' अर्थात् श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्य जी के पूर्वाचार्यों ने सहचरी-सेवा में धारण किये थे। अस्तु श्रीरंगदेवी जी के इस सखी जूथ में सभी पूर्वाचार्य आद्याचार्य के साथ संलग्न होकर नव नव उत्साह से लाडलीलाल प्रिया प्रियतम निकुंजबिहारी श्रीराधारमन की सेवा का परमानंद प्राप्त कर रहे हैं। ''श्रीनिकुंजोपासना रहस्य'' में अनन्य रसिक स्वामी श्रीकुंजबिहारी शरण जी ने सखी - स्वरूप का निरूपण करते हुये लिखा है :-

''सखी गण दो प्रकार की हैं - प्रथम रसात्मिका, द्वितीय रागात्मिका + + रसिक रस रसी सहचरी समाजें - अर्थात् जो सहचरी समाज रसिक-शिरोमणि श्रीयुगल के रस में निरन्तर मग्न रहती हैं, वही रसात्मिका एवं रसानुगा हैं। दूसरी जो उनके अनुगत होकर रसपान करती हैं वह है रागानुगा तथा रागात्मिका इस रस को अस्मदादिकों के प्रति वितरण करने के लिए निकुंज मंदिर में आकर प्रगट हुये हैं, वे ही रसिकाचार्य तथा उनके चरणाश्रितजन रसिक हैं तथा इन सबका निरन्तर पोषण करने के कारण श्रीयुगल है रसिकेश्वर। (पृ. ४७)'' यहाँ श्रीरंग-रंगीली रंगदेवी जू के सखी-जूथ में सखी-रूप से सेवा-संलग्न सभी रसिकाचार्यों के निकुंज-सान्निध्य सुख की अनूभति रमणीय है :-

रंग साहिलौ रंगरली कौ, रंगरंगीली रंग अली कौ ।
श्रीरंगदेवी जू नववासा, बिस्वाभा उत्तमा बिलासा ।
रंगरंग भीनी रंगरंगीली, नवल जुगल सेवा गरबीली ।

सरस सरूपा मधुरा भद्रा, पद्मा सुरस सारदा ।
एक डार सी तोरी सी गोरी, जिनकें जीवन एही जोरी ।
किरपाला देवदेवी सुंदरि, पद्मास्या अरू ऐन्द्रा सहचरि ।
एकहिं सांचै मांहिं ढरी सी, छबि की छरी जराय जरी सी ।
रामा बामा कृष्णा कामिनि, पद्माभा श्रुतिरूपा नामि नामिनि ।
कुंदन की सी बेली सोहैं, महामोहनी मनकों मोहैं ।
गौरांगी केसी अरू पवित्रा, कुमकुम देवी हितू बिचित्रा ।
कलकंठी ससिकला अरू कमला, कंदरपा हित सुंदरिनवला ।
भागवतिका माधवि असिता, गुन की आकरि बलभा लसिता ।
सबैं सखी सब सेवा मांहीं, फूली फूली फिरत उमांहीं ।
भांति भांति के लाड़ लड़ावैं, लाड़लड़ीलैं अतिसुख पावै ॥
रंगरंगी हिये रंगनि भारी, श्रीहरिप्रिया निरखि सुखकारी ॥ १४५॥

अस्तु महावाणी जी के उपर्युक्त पद में वर्णित सखी-स्वरूप परमरसिकाचार्यों के आचार्य - व्यक्तित्व लिए प्रतिपादित है जो रागानुगा सखी - भाव से स्वामिनी जू की अंतरंग-सखी के मैत्री-भावानुरूप निकुंज-मंदिर में समुपस्थित होकर अन्य सहचरीगणों को रसरूप का वितरण कर रहे हैं, ऐसे रसिकाचार्य श्रीस्वामिनी जू की अन्तरंगी-सखी-भाव के रूप में अत्यंत दुर्लभ मैत्री-सुख का कृपाश्रय प्राप्त कर प्रतिपल रस निमग्न रहतेहैं - ब्रजदासी जी ने कहा है - जयति श्रीवृषभानु सुता, स्वामिनी सुष रासीय + + दासिनी अति आनंद, दैनि मानत निज मैत्रीय।'' अतरंग-सखी के जूथ में निकुंज-स्वामिनी जू की कृपाश्रित निकुंज-प्रविष्टि पाने वाले तथा सहचरी-भाव की सेवा सुख-वांछा करने वाले रसात्मिका रसिकों का स्वरूप ही सहेली और सहचरी का होता है पर ''मंजरी और सुन्दरी'' पद सामान्य निकुंज सेविका का होता है जो सखी सहेली-सहचरी की अनुचरी होती है तथा जो निकुंज-सेवा में परम निपुण होने से रसिकों की सेवा में सहयोग का सौभाग्य प्राप्त कर लेती है। ऐसी स्थिति में मंजरी और सुन्दरी निकुंज - परमानंद-प्राप्ति के लिए रसिकों की कृपाश्रिता भी है, अत: रसिक-सेवा उनकी प्राथमिकता है और उनका अंतिम लक्ष्य है श्रीस्वामिनी जू की अनन्य कृपाश्रयता । मोटे तौर पर 'सखी-सहस्त्रै: परिसेवताम् का भाव सहस्त्राधिक सभी सेविकाओं के लिए है जो मूलत: श्रीराधाजी का ही सखी परिकर है, यों तो श्रीधामवृन्दावन के चराचर को सहचरी-सुख का सौभाग्य प्राप्त है। वे सभी वैष्णवजन जिनका व्रत है ''भूख लगे तो रसिकनि झूठन प्यास लगे जमुना जल नीकौ'' इस अध्यात्म भाव से सहचरियां ही हैं। महावाणी जी के उत्साह सुख-पद १४६ में सखी सुदेवी जी के प्रसंग में सखी सहेली अरू सहचरी मिली मंजरी और सुन्दरी, से सखी भेद का निरूपण द्रष्टव्य है :-

सखी सुदेवी के मंगलाचार, गावत बिमली बिमल बिहार ।
सखी सहेली अरू सहचरि, मिली मंजरी और सुन्दरि ।
काबेरी मंजु केसी कबरा, केसी कंठहार मनहरा ।
महाहीरा अरू हीराहारा, हित प्रदायका परम उदारा ।
चटक भरी जहां चारू चमेली, सुखभासनी महा अलबेली ।
अहली महली फूलां फूली, फिरत जुगल सेवा अनुकूली ।
नीरज नैंनी नेह नवीना, नागरि नवला नवरंग भीना ।
भवन सुंदरी भावप्रकासा, सुख सरूपिका सहज सुहासा ।
मंजुलमाला केलिकलावलि, रतिरसालिका रसरतनावलि ।
मंजु मोदनी मौज मनौजा, मानमंजुला सरद सरोजा ।
सुखदा सुखद सरूपा सरसा, सानुरक्तिनी बाला बरसा ।
महामोद मंगल गुनगावै, मौज मनोजनि मन उपजावै ।
जूथ जूथ मिलि जुगल रिझावै, नृत्य करै गावै रु बजावै ।
रंगमंजरी रंग बढ़ावै, चारू चौंपनी चौप चढ़ावै ।
आनंदभरी उर में न समावै, श्रीहरिप्रिया निरखि सुख पावैं ।

अस्तु सुदेवी जी के सखी जूथ में पूर्वोक्त ऐसे कई ''मंजरी-सुंदरी'' नाम प्रयुक्त हुये हैं जो ''सखी सहेली सहचरी''

से भिन्न व्यक्तित्व के प्रतिपादक हैं। चारू-चमेली, अहली-महली, फूलाँ फूली इत्यादिक ऐसे ही उदाहरण हैं। सखी-सहचरी से भिन्न ''मंजरी-सुंदरी'' तथा 'सजनी'' का व्यक्तित्व सामान्य सेविकाओं अथवा दासियों का है जो ''सखी-सहचरी-सहेली'' की अनुचरियां तथा अनुगामिनी-सहयोगिनियां हैं, यहां प्राधान्य तो सखी-सहचरी का ही है जो अन्य अनेक प्रसंगों में यही प्रतिपादित है -

(१) **सखी-सहेली-सहचरी छबि निरखि दृग न अघांहिं उ.सु. ८७**

(२) **सखी सहेली-सहचरी बोली, वे आई मिलि अनगन टोली ।उ. ११६**

महावाणी जी में सर्वाधिक रूप से सखीनाम ही व्यवहृत हैं जो श्रीस्वामिनी जी के सेवा-संपादन में प्रतिपल दत्तचित्त हैं। अतः यह रसिकाचार्यों का श्रीस्वामिनी- सेवा प्रधान व्यक्तित्व है, सहचरी-सहेली आदिक तो उनसे न्यूनतर व्यक्तित्व के रसिक मात्र हैं, मंजरी-सुंदरी आदिक तो सामान्य-सेवा परिचारिकायें हैं। सुदेवी जी के प्रसंग में इन सब सखी-परिकर का भेद निरूपित करके दर्शाया गया है। नागरीदास जी की ''बनीठनी'' मंजरी-सुंदरी-सजनी नामांकित सामान्य निकुंज-सेविका का ही है, इस तथ्य का प्रमाणीकरण नागरीदास घेरे में ''बनीठनी'' के स्मारक पर अंकित शिलालेख के इन शब्दों में निहित है - '' इन पद पंकज मधुकरि सेवत विष्णु समाज''। अस्तु इसके अनुसार बनीठनी इसी स्वरूप से निकुंज-सेवा-संलग्न मंजरी या सुन्दरी'' के विशिष्ट व्यक्तित्व वाली रसिकवर नागरीदास जी की परमसेविका थी जो परमानंद लाभ के लिए उनके प्रति कृपाश्रित भाव से श्रीस्वामिनी जी की चरणानुरागिनी सहचरी थी। सिद्धान्त सुख में महावाणीकार श्रीहरिप्रिया जी ने श्रीस्वामिनी जू की प्रधान अष्टसखियों एवं उनके परिकर का विस्तृत नामोल्लेख किया है। सर्व श्रीरंगदेवी, सुदेवी, ललिता, बिसाखा, चंपलता, चित्रा, तुंगविद्या, इंदुलेखा इन अष्ट-सखियों-सहचरियों के नाम हैं जिनके प्रत्येक के आठ और उन आठ के भी प्रत्येक के आठ आठ इस प्रकार अष्टसखी-परिकर में कुल ५२० सखी-सहचरियों की नामावली दी गई है। इनमें भी कोई नाम ''बनीठनी'' नहीं हैं। विशेष उल्लेखनीय प्रसंग पांचवी सखी चंपलता जी का है ''बनीठनी'' विशेषण शब्द के रूप में यहां इनके विभिन्न नामांकित सखी परिकर के लिए प्रयुक्त हुआ है जो उनके निम्नांकित गुणों रूपों का परिचायक है -

बनीठनी सुखसनी सलोनी । जगमग होति जोति अनहोनी ।
एक एक तें अधिक न ओंनी। सोहति सदासहज सरसोनी ।
निकट जुगल बरबैंन निहारें । पलकैं पलक प्रानधन वारें ।
तिन बिच तनक न अंतर पारे । सदा एक रस रंग बिहारें ।
अति रस चाव भरी उर मांही ।झमझमाती अधिकाति उमांही ।
लैं लैं सौंज सबै सब पांहीं । चित्तै रही जुग-चंद जु चांहीं ।

चौथी सखी बिसाखा जी के प्रसंग में महावाणीकार ने उनके सखी-परिकर के निम्न प्रकारेण जिन रूपों-गुणों विशेषताओं का उल्लेख किया है- ऐसा ही वैशिष्ट्य है नागरीदास जी की तथा कथित 'बनीठनी' का :-

परिचरिष्या में परम प्रवीना । नवनव केलिकला रस भीना ।
निसदिन लगी रहत लवलीना । अति रतिरंगी अधिक अधीना ।
सहज सुरंग - सिंगारनि साजें । अतिहिं अनूप मनोहर साजें ।
चढि बढि रहे चोंप चित छाजें । समवय सुघर स्वरूप बिराजें ।
दामिनी सी दमकें तन गोरें । चंद्रबदनि सहचरी चहुँओरें ।
जरी जराय सु चितवत चोरें । छाजत छबि जिहिं और न छोरें ॥

महावाणी जी में निरूपित रूपगुणादि के मूलाधार पर निर्मित नागरीदास जी की बनीठनी :- अष्ट सखियों के स्वरूप निरूपण में जिन रूपगुणादि का वर्णन है उन्हीं के मूलाधार पर नागरीदास जी की बनीठनी का आध्यात्मिक व्यक्तित्व-कृतित्व निर्मित हुआ है - रसोपासना की रसमयी सहचरी की रहस्यमयी शारीरिक-मानसिक कलात्मक एवं भावात्मक विशेषताएं द्रष्टव्य हैं :-

1. **सदा सुदंपति के मनमानी। महल टहल में महा सयानी ।**
डोलत बोलत कोकिल बानी। रमझमाति रति रस में सानी ।
परम चतुरि जिय की सब जानें । समझि समझि सोइ बिधि बानें ।
छिन छिन प्रति नव नेह जनावैं । बिबि बिनोद मोद उपजावैं ।
नवल जुगलबर कैं मन भावैं । अंग अनंग तरंग बढ़ावैं ।

2. दम्पति की प्यारी परिचारी । परमानंद भरी अति भारी ।
कबहुं न होय संग तें न्यारी । रहति सदा जैसे छाया री ।
चितवति चंदबदनि चहुं ओरी । चारू चकोरी ज्यों रस बोरी ।
अति आनंद समुद्र झकोरी । फिरत टहल में यौं चकडोरी ।
प्रेमपगी जगमगी महाई । अति रस रंग रंगी अधिकाई ।
3. प्रीतम प्रानप्रिय रस रांची । मोहन मदन मोद में मांची।
काहू बिधि कर नाहिंन कांची। सकल कला संपूरन सांची ।
अहल महल टहलें रस लागी । भावनि भरी खरी बड़भागी ।
विपुल पुलक प्रेमावलि पागी । लाखनि अभिलाखनि अनुरागी ।
4. तन मन प्रान समर्थन कीयें । अति अनुराग भरी सब हीयें ।
रहसि रंग रूचि में समुझनियां । सहज सनेह नेह रस-सनियां ।
सुठि स्वरूप दंपति मनमनियां । आनंद कंदनि चंद बंदनियां ।
5. कोटिक चंद्र कलानि विमोही । अमित माधुरी अंगनि जोही ।
निसवासर इकरस पीवें । परम तृषातुरि सहज सदीवें।
जोय जोय जुग चंदहिं जीवे । नैंन कटाछि चरन रज छीवें ।

ऐसे अलौकिक सौंदर्य, रूप-गुण-कलादि से सम्पन्न जुगल चरणों में अति चाव से सेवारत, उनकी सहचरियां दशश्लोकी के अनुसार सहस्त्राधिक हैं । महावाणीकार ने भी इनकी संख्या अगनित बताई है जैसे कि फेनित महासमुद्र की तरंगे अगनित हैं तथा रजकण भी अनगनित हैं :-

ए सब कही कहन जो आई । परम रस सहचरी समुदाई ।
और हुं अपरंपार सुहाई । अनगिनती जु गिनी न जाई ।
को बरने महासिंधु तरंगा । भू रजकन उडगन अप्रसंगा ।
परम चतुरि जद्दपि गुन भोरी । एक डार की सी सब तोरी ।
तत्पर - टहल महल रसबोरी । जीवनि जिय श्री हरिप्रिया जोरी । (सि. सु.)

सखी-स्वरूप के इस निरूपण से ''बनीठनी'' के स्वरूप में निहित रूपगुण कला-चातुर्य, प्रेम-रहस्य एवं निकुंज-सेवाविधि की निपुणाई का रहस्यमय व्यक्तित्व प्रतिपादित हुआ है जो नागरीदास जी की ''बनीठनी'' के लिए सुख्यात है और जिसे हम मूलत: महावाणी परम्परा में सत्यापित करते हैं। अत: ''बनीठनी'' के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की यही सही परख है जिसे अद्यावधि समझा नहीं गया है ।

''बनीठनी'' सखी-परिकर में मंजरी-सुंदरी के लिए ही प्रयुक्त विशेषणवाचक शब्द :- जैसा कि हमने कहा है कि ''बनीठनी'' का सखीपरक नाम महावाणी जी के सखी परिकर में कहीं नहीं है पर उसका विशेषण रूप में प्रचुरता से सहचरियों के लिए प्रयुक्त होना दूसरे अर्थ में उसी के स्वरूप का श्रीमहावाणी द्वारा प्रतिपादित निरूपण कहा जायेगा। ''बनीठनी'' विशेषण के महावाणी व्यवहृत और भी उद्धरण द्रष्टव्य हैं :-

सखी सब आई सुहाई बनीठनी रंगभरी ।
अप अपनी सखी संगलाई रंगीली रंगभरी ।

''आई खिलावन रंगभरी रस होरी की केलि'' के इस प्रसंग की भांति रथारोहण प्रसंग भी उत्साह-सुख में युगल सेवालीन ''सजनी बनीठनी'' सहचरी रूप से ''मंजरी या सुंदरी'' के रूप की चर्चा करता है, यह भी ''बनीठनी'' सेविका के स्वरूप का प्रतिपाद्य है :-

बनीठनी सजनी सबै सेवत तन मन दीय ॥
देखहुँ री छबि सौं दोउ रथ आरोहन कीय ॥ ७०॥

निम्न प्रसंग में प्रयुक्त विशेषण शब्द ''बनीठनी'' नागरीदास जी की ''बनीठनी'' के कटि-सौंदर्य के चित्ताकर्षक रूप की प्रस्तुति कर रहा है जो निहालचंदकृत ''बनीठनी'' की चित्राकृति का आधार प्रतीत होता है :-

बनीठनी छटछटी कटी की नटी चटी चहुं औरनि छीयें ।
श्रीहरिप्रिया बदनबिधु बानिक निरखत है हरखत मन दीयें ।

अस्तु ''बनीठनी'' महावाणी जी में वर्णित सखी सहचरी तथा मंजरी-सुंदरी के रूपसौंदर्य-गुणकलादि का परिचायक विशेषण है जो नागरीदास जी की ''बनीठनी'' के मूर्त व्यक्तित्व की मूलाधार चित्राकृति है तथा उसके रूपांकन की

निम्बार्कीय रसोपासना सम्मत पृष्ठभूमि भी है।

''बनीठनी'' नखशिख सौन्दर्य का काव्य शास्त्रीय आदर्श – महावाणी जी के कतिपय प्रसंग में ''बनीठनी'' विशेषण श्रीराधा जी तथा युगल स्वरूप के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, प्रतीत होता है कि ''बनीठनी'' को कृष्णगढ़ की राधा'' मानने की परम्परा भी वृन्दादि कवियों ने इसी आधारभूमि से ली है। युगल के लिए ''बनीठनी'' शब्द का महावाणी वर्णित विशेषण रूप अत्यंत उल्लेखनीय है। संस्कृत - काव्यशास्त्र की श्रृंगार परम्परा के नायक नायिका के नखशिख सौंदर्य का यह आदर्श रूप ही है जिसे परवर्ती कालीन भक्त कवियों ने रीतिकालीन परम्परा-सम्मत होने से भी अपनाया है। संस्कृत श्रृंगार में प्रयुक्त होने वाले अलंकारों-आभूषणों-उपमानों आदि की काव्यगत विशेषताओं से संयुक्त युगल की इस ''बनीठनी'' स्थिति में सजी धजी नित्यनूतन किशोर वयस्का नायिका ''बनीठनी'' और नायक ''बनाठना'' ही कहा जायगा। इस प्रकार यही ''बनीठनी'' शब्द रीतिकालीन अलंकारों उपमानों से युक्त नखशिख श्रृंगार की किशनगढ़ीय परम्परा बनकर आगे नागरीदास के काव्य एवं चित्रकला में अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त आदर्श बन गया है। ''बनेठने'' युगल का छबिदर्शन कीजिए। लगभग इन्हीं आभूषणों उपमानों, साज-सज्जाओं से निहालचंद्र ने बनीठनी की चित्रकारिता भी प्रस्तुत की है -

अंग अंग सोभा सहज सुख, बाढ़त रहु निसि भोर ।
इहि बानिक बनिठनि सदा, मो मन जुगल किसोर ॥
मो मन बसो जुगल किसोर बनें यों निसि भोर ।
बदन चंद प्रकास पूरन नैंन जुगल सरोज ।
नासिकाधर चिबुक छबि लखि होत है हिय चोज ।
ग्रीव उरज सुबाहु सुंदर अंगुरी नख लाल ।
उदर त्रिबली रोम राजी नाभि गहर सुढाल ।
जघन जंघा पर लसैं अति छीन सी कटि दाम ।
जानु जंघा पिंडुरी पद अंगुरी अभिराम ।
क्रीट सिर कच लटैं छूटी बंक भौंह मरोर ।
मुक्तलर बैंदा लसैं सुभ श्रवन भूषन ओर ।
नासिका बेसरि सुमुक्ता बिम्ब ओठनि आय ।
मनहुँ श्रवत सुचंद अमृत बूंद छबि ठहराय ।
कंठ भूषन कनक के खचि हीरा मानिक लाल ।
मुक्त मनि पुनि कनक कुसुमनि गुही सोहित माल ।
भुजबंध चूरी सुभग कंकन मुद्रिका नग जोति ।
ललित कोमल मुकुर सोभा जगर मगर सी होति ।
किंकिनी कटि पायं नुपूर झीन सुर झनकार ।
मनहुँ हँसिनि निरखि छोना बोलि एकहिंबार ।
झीन पट में दीपति दुति कहा दामिनी घन जोति ।
उरज अंगिया लाल कसबी लहक लहंगा होति ।
बोल पिक गति हँस राजै मत गजगति गौंन ।
नहिंन सोभा पटतरैं लखि थकित तीनहुँ भौंन ।
श्री हरिप्रिया की ललित छबि कवि कौन बरनैं जाहिं ।
नित्य निकट निहारिये छिन टारियैं नहिं ताहिं ॥ ४०॥

''बनीठनी'' श्रीराधा और उनका युगल रूप में 'बनठन' कर बंगले में बिराजने की झांकी में प्रयुक्त ''बिबिन छबि'' का यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है जिसमें यह विशेषण शब्द श्रृंगार करने का क्रियार्थक अभिप्राय भी व्यक्त करता है :-

छाजनि छाजनि लहलही लखि रही अचंभ ।
बनिठनि बैठनि बिबिन की रचि रूचि रंभनि खंभ ॥

पद - बैठे बिबि बंगले बनिठनि री ।
चारि हुँ ओर खंभ रचि रंभनि रहि सब सही अंचभनि सनिरी ॥
छाजनि छाजनि राजनि रतिरंग साजनि सोभा अंग अंगनि री ॥

श्रीहरिप्रिया केलि बेली मिलि रेली झेली झुकि झूमनि री ॥ (७४ सुरत सुख)

गीतामृत गंगा में खंजन नैनी ''बनीठनी'' :- श्रीमहावाणी - परम्परा का यह ''बनीठनी'' विशेषण ब्रजकुंवरी जी के गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी ने ''गीतामृत गंगा'' में अभिसार-श्रृंगार से सजीधजी निकुंज-गामिनी श्रीप्रिया जी के लिए प्रयुक्त किया है, नखशिख श्रृंगार से सुरत्यर्थ ''बनीठनी'' प्रिया श्रीराधा जी निकुंज में प्रवेश करती हुई दर्शनीय है:-

धनि धनि आजु की घरी प्यारी पधारी प्रिय पैं बनिठनि ।
बढ़ी छबि दून री चूनरी पहिरैं चूनि अंगिया कसि बांधी तनि तनि ।
नखशिख रूप भरी विधि आप करी कर अति कमनी मनि ।
वृन्दावन प्रभु आइ धाइ अंक भरी लीनी कीनी रसभीनी सुरत रंगनि ।

(सप्तम - घाट राग कान्हरों दरबारी - पद १८)

किशनगढ़ शैली की ''बनीठनी'' जो निहालचंदकृत चित्राकृति है उसकी विशिष्टता उसके नासिका से कर्णपर्यंत खिंचे सुडौल तीखे खंजन नैंन हैं और यही खंजन - नैंन किशनगढ़ की चित्रकारिता में नैत्रों के आदर्श बन गये हैं, जो कृष्णगढ़ शैली की प्रमुख पहिचान है। श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के गीतामृत गंगा में नैत्रों के लिए प्रयुक्त खंजन उपमान ही नागरीदास चित्रशैली परम्परा का मूलाधार प्रतीत होता है :-

तुव नैंन कजरारे पर वारे खंजन मृग वारे ।
अनियारे रतनारे ढरारे मतवारे ऐसे मैं न निहारे ।
अति चंचल तारे बडियारे भारे तो में पौंछि संवारे ।
वृन्दावन प्रभु कान्हर कारे प्यारे न्याय अपनौं हारे ॥ (च. घा. प० - ३६)
प्यारी तेरे दृग जुग खंजन नंदन ।
अति चंचल मुख मंजु कंज पर नांचत हैं दुखकंदन ।
भृकुटी काम नरिंद फंद मनौं रच्यो इनही हित फंदन ।
वृन्दावन प्रभु दृग खंजन हूं बिंधये इन करि छंदन ॥ (च. घा. पद - ४६)

ब्रजकुंवरी जी ने भी ''वकी'' से व्यंजनार्थ बनीठनी के पूर्व प्रसंग में भी नैत्रों के लिए षंजन को इसीलिए उपमित किया है। यथा 'पंकज सौ मुष छीन कटि, षंजन नैंन अभिरांम'।

कविवृंद की यमक-सतसई में ''बनीठनी'' :- संभवत: इसी महावाणी - परम्परा का अनुसरण करते हुये महाराजा राजसिंह जी के दरबारी कवि वृंद ने भी अपनी यमक सतसई में श्रीराधा जी के लिए ''बनीठनी'' उपमान प्रयुक्त किया है :-

बनी मांहि राधा बनी, बनीं - ठनी की भांति ।
भई देखि फिर उनमनी, सबै उनमनी कांति ॥

'बचनिका' में वृंद ने बनीठनी को राजमंदिर की परमसुंदरियों का आदर्श रूप भी माना है। अत: प्रमाणित है कि वे रूपनगढ़ राजमहलों में रहनेवाली बनीठनी के चमत्कारी सौंदर्य से पूर्णतया परिचित थे :-

काहू कह्यौ मेरी बनता कै काच भूषन है, मनिन कैं भूपन कीकन में उमाहियै ।
काहू कही झूंपरी पुरांनी टपकत पांनी, तहां राजमंदिर की बांनीठांनी चाहिये । (१३६ - दानबरनन)

नागरीदास जी की बनीठनी का भौतिक स्वरूप - ब्रजकुँवरी जी की दासी तथा नागरीदास जी की पासवान :- श्री महावाणी जी के पूर्वोक्त प्रमाणों से स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हो गया है कि नागरीदास जी के वृंदानवास में उनकी निकुंज परिचर्या में संलग्न उनकी अनन्य सेविका 'बनीठनी' का आध्यात्मपरक स्वरूप निकुंज-रहस्यात्मक दृष्टि से 'मंजरी' का था जो युगल-केलि-परमानंद की सुख-वांछा से परम रसिक 'नेही' नागरीदास जी की कृपा पर आश्रित थी। अब हम आगे 'बनीठनी' जी के भौतिक स्वरूप की चर्चा करेंगे।

नागरीदास जी के व्यक्तित्व कृतित्व पर शोध करने वाले अधिकांश विद्वानों ने बनीठनी को नागरीदास जी की पासवान बताया है, पासवान राजसी परम्परा में राजकीय नियमांतर्गत मान्य उपपत्नी होती है। यही पासवान 'बनीठनी' नागरीदास जी के वृंदावनवास में उनकी सेवा में संलग्न अनन्य-सेविका या दासी बनकर रही है; इसी प्रकार की अद्यावधि मान्यताएँ बनीठनी विषयक भौतिक परिवेश में प्रचलित है। डॉ. फैयाज अली खाँ, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, डॉ. राजकुमारी शिवपुरी, डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. नारायणदत्त शर्मा, ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी तथा पं. श्रीब्रजबल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ आदि अधिकृत विद्वानों ने भी ''बनीठनी'' का यही रूप प्रतिपादित किया है। डॉ. फैयाज अली खाँ के अप्रकाशित शोध - प्रबन्ध पृ. २४३-२४४ पर लिखा तत्सम्बंधित उदाहरण विशेषतया अवलोकनीय है:-

निहालचन्द कृति - बनी ठनी

अनुकर्ता : श्याम जोशी

(प्रताप हैण्डीक्राफ्ट्स, ओसवाली मोहल्ला, मदनगंज-किशनगढ़ के सौजन्य से)

''बनीठनी'' को नागरीदास के पिता राजसिंह ने वि.सं. १७८४ में दिल्ली में खरीदा था। उस समय उसकी अवस्था 10 वर्ष की थी। इसे गायनों में नियुक्त किया गया। कृष्णगढ़ राज्य घराने में गायनों की तीन पीढ़ी पहले तक रहती आयी थी। उन्हें साहित्य एवं संगीत का अभ्यास कराया जाता था। इस रीति के अनुसार ''बनीठनी'' की भी शिक्षा – दीक्षा हुई''इस प्रसंग में वे आगे लिखते हैं कि''किशनगढ़ इतिहास विभाग में लिखा है कि''बनीठनी''का पासवान होना वि. सं. १७९५ के पीछे पाया जाता है''उनके अनुसार''राजसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् सं. १८०५ में बनीठनी वस्तुत: उनकी पासवान हुई – यह अनुमान समीचीन है।'' पर अब डॉ. साहब अपनी इस मान्यता के प्रति दृढ़ मत नहीं हैं। वि.सं. १८०५ में बैशाख शुक्ला ५ को महाराजा राजसिंह जी के उत्तराधिकारी सांवतसिंह जी (नागरीदास) सिंहासनारूढ़ हुये, अत: यहीं से उनका राजत्वकाल प्रारम्भ होता है।''बनीठनी'' को राजसी मर्यादानुसार – वि. सं. १८०५ के पश्चात् नागरीदास जी के राजत्वकाल में ही राज्यनियमों के अंतर्गत ''पासवान'' की हैसियत मिली होगी – यह स्वत: प्रमाणित है। ''पासवान'' उपपत्नी ही होती है जिसे राज्य की मान्यतानुसार राजरानी के समान सभी अधिकार होते हैं, अंतर केवल यह होता है कि उसके पुत्र को राजसिंहासन का उत्तराधिकार नहीं मिलता। ''बनीठनी'' को राजसी परम्परानुसार किशनगढ़-राज्य में मान्यता प्राप्त नागरीदास जी की ''पासवान'' की पूर्व-प्राप्त हैसियत से वृन्दावनवास में उनकी सेवा-परिचर्या में संलग्न हो सकने का शासकीय अधिकार था उनका यही भौतिक स्वरूप लोकमर्यादा सम्मत भी था, यदि वे उनकी इस प्रकार ''पासवान'' नहीं होकर केवल सामान्य दासी-सेविका ही होती तो वृन्दावनस्थ-नागरीदास घेरे में नागरीदास जी की समाधि से संलग्न उनकी समाधि किशनगढ़-राज्य-नियमों और राजपूती मर्यादा के विपरीत कैसे बन सकती थी? राजसी परम्परा यही रही है कि रानी अथवा पासवान का छतरी-स्मारक ही राजा के पार्श्व में बनाया जा सकता था। अत: यह भ्रामक प्रचार है कि''बनीठनी'' नागरीदास जी की पासवान नहीं थी तथा वह तो मात्र दासी के रूप में उनकी वृन्दावनवास में सेवा करने वाली सामान्य स्थिति की भावुक भक्त महिला थी ।

डॉ. फैयाज अली के कथनानुसार किशनगढ़ राज्य की तवारीख में ''बनीठनी'' का सांवतसिंह जी (नागरीदास)की पासवान होना तथा वि. सं. १८०५ में उक्त घटना का तवारीख में उल्लेख होना प्रामाणिक माना जा सकता है, पर राजसिंह जी द्वारा उसका दिल्ली से खरीद कर लाया जाना विश्वसनीय नहीं है क्योंकि महाराजा राजसिंह परमभागवत वैष्णव-भक्त थे, उनके चरित्र में इस प्रकार की भौतिकवादी विलासप्रियता की प्रवृति का होना और विलासी राजा की भांति संगीत नृत्यादि के लिए उपर्युक्त गायनियों की खरीद करना कथमपि विश्वसनीय नहीं होने से इसकी प्रामाणिकता नितांत संदिग्ध ही है। राजसिंह जी के दरबारी कवि वृन्द ने किशनगढ़ के ऐतिहासिक ग्रंथ 'बचनिका'' में इसका पूर्वोक्त प्रकार से उल्लेख नहीं किया है – जबकि 'बचनिका' के तो नायक महाराजा राजसिंह जी ही थे तथा 'बचनिका'' अधिकांशत: उनके ''दिल्ली' और ''ढ़ाका'' में मुगलशाही के शासकीय मुख्यावास के समय ही लिखी गई थी। यह भी विचारणीय है कि राजसिंह जी के महाकवि वृन्द को ''बनीठनी'' के चित्ताकर्षक वर्चस्व की पूरी जानकारी थी तभी तो उन्होंने ''यमक सतसई'' के निम्न उदाहरण में श्रीराधाजी से ''बनीठनी'' को उपमित किया है –

बनी मांहि राधा बनी, बनीठनी की भांति ॥
भई देखि फिर उनमनी, सबै उनमनी कांति ॥

महाराजा राजसिंह जी का विशेष सम्बन्ध रूपनगढ़ राज्य से रहा है, निम्बार्क शोध-मंडल वृंदावन में संगृहीत रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बहियों में ''बनीठनी'' का दिल्ली से खरीदे जाने का उल्लेख नहीं हैं ।इसी प्रकार खरीद के समय ''बनीठनी'' की दसवर्षीय आयु भी संभवत: इसीलिए कल्पित की गई है ताकि नागरीदास जी और बनीठनी की उम्र में अत्यधिक अंतराल की स्थिति में वृन्दावनवास में उनका परस्पर अंग संग न होना सिद्ध किया जा सके, पर बनीठनी महाराजा सांवतसिंह जी (नागरीदास) के गृहस्थ जीवन में उनकी पूर्ण यौवना-नयनाभिराम परमसुंदरी अंगसंगिनी प्रेयसी पासवान थी। अंगसंग की स्थिति होने पर ही कोई स्त्री राजा की पासवान हो सकती थी और राज्य उसे राजा की पासवान होने की मानद पदवी भी तभी देता था तथा तभी उक्त पासवान के राजकीय नियमों के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार सुरक्षित रहते थे। अत: सांवतसिंह जी के राजत्वकाल में''बनीठनी'' का उनकी घोषित पासवान होना तर्क संगत होने से सुनिश्चित है, तथा ऐसी स्थिति में राजसी परम्परानुकूल महाराजा सांवतसिंह जी का गृहस्थ जीवन राजकीय नियम तथा लौकिक रीति नीति के अनुसार होने से चारित्रिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष ही माना जावेगा। वृन्दावनवास में वही पासवान ''बनीठनी'' नागरीदास जी की भांति ही परमविरक्तव्रती बनकर सहचरी भाव से निकुंज रसोपासना में सत्यनिष्ठा और पवित्रता से तल्लीन थी। नागरीदास जी परमरसिक थे और उस साधनात्मक स्थिति में

''बनीठनी'' को नागरीदास के पिता राजसिंह ने वि.सं. १७८४ में दिल्ली में खरीदा था। उस समय उसकी अवस्था 10 वर्ष की थी। इसे गायनों में नियुक्त किया गया। कृष्णगढ़ राज्य घराने में गायनों की तीन पीढ़ी पहले तक रहती आयी थी। उन्हें साहित्य एवं संगीत का अभ्यास कराया जाता था। इस रीति के अनुसार ''बनीठनी'' की भी शिक्षा – दीक्षा हुई'' इस प्रसंग में वे आगे लिखते हैं कि ''किशनगढ़ इतिहास विभाग में लिखा है कि ''बनीठनी'' का पासवान होना वि. सं. १७९५ के पीछे पाया जाता है'' उनके अनुसार ''राजसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् सं. १८०५ में बनीठनी वस्तुत: उनकी पासवान हुई – यह अनुमान समीचीन है।'' पर अब डॉ. साहब अपनी इस मान्यता के प्रति दृढ़ मत नहीं हैं। वि.सं. १८०५ में बैशाख शुक्ला ५ को महाराजा राजसिंह जी के उत्तराधिकारी सांवतसिंह जी (नागरीदास) सिंहासनारूढ़ हुये, अत: यहीं से उनका राजत्वकाल प्रारम्भ होता है। ''बनीठनी'' को राजसी मर्यादानुसार – वि. सं. १८०५ के पश्चात् नागरीदास जी के राजत्वकाल में ही राज्यनियमों के अंतर्गत ''पासवान'' की हैसियत मिली होगी – यह स्वत: प्रमाणित है। ''पासवान'' उपपत्नी ही होती है जिसे राज्य की मान्यतानुसार राजरानी के समान सभी अधिकार होते हैं, अंतर केवल यह होता है कि उसके पुत्र को राजसिंहासन का उत्तराधिकार नहीं मिलता। ''बनीठनी'' को राजसी परम्परानुसार किशनगढ़-राज्य में मान्यता प्राप्त नागरीदास जी की ''पासवान'' की पूर्व-प्राप्त हैसियत से वृन्दावनवास में उनकी सेवा-परिचर्या में संलग्न हो सकने का शासकीय अधिकार था उनका यही भौतिक स्वरूप लोकमर्यादा सम्मत भी था, यदि वे उनकी इस प्रकार ''पासवान'' नहीं होकर केवल सामान्य दासी-सेविका ही होती तो वृन्दावनस्थ-नागरीदास घेरे में नागरीदास जी की समाधि से संलग्न उनकी समाधि किशनगढ़-राज्य-नियमों और राजपूती मर्यादा के विपरीत कैसे बन सकती थी? राजसी परम्परा यही रही है कि रानी अथवा पासवान का छतरी-स्मारक ही राजा के पार्श्व में बनाया जा सकता था। अत: यह भ्रामक प्रचार है कि ''बनीठनी'' नागरीदास जी की पासवान नहीं थी तथा वह तो मात्र दासी के रूप में उनकी वृन्दावनवास में सेवा करने वाली सामान्य स्थिति की भावुक भक्त महिला थी ।

डॉ. फैयाज अली के कथनानुसार किशनगढ़ राज्य की तवारीख में ''बनीठनी'' का सांवतसिंह जी (नागरीदास)की पासवान होना तथा वि. सं. १८०५ में उक्त घटना का तवारीख में उल्लेख होना प्रामाणिक माना जा सकता है, पर राजसिंह जी द्वारा उसका दिल्ली से खरीद कर लाया जाना विश्वसनीय नहीं है क्योंकि महाराजा राजसिंह परमभागवत वैष्णव-भक्त थे, उनके चरित्र में इस प्रकार की भौतिकवादी विलासप्रियता की प्रवृति का होना और विलासी राजा की भांति संगीत नृत्यादि के लिए उपर्युक्त गायनियों की खरीद करना कथमपि विश्वसनीय नहीं होने से इसकी प्रामाणिकता नितांत संदिग्ध ही है। राजसिंह जी के दरबारी कवि वृन्द ने किशनगढ़ के ऐतिहासिक ग्रंथ 'बचनिका'' में इसका पूर्वोक्त प्रकार से उल्लेख नहीं किया है – जबकि 'बचनिका' के तो नायक महाराजा राजसिंह जी ही थे तथा 'बचनिका'' अधिकांशत: उनके ''दिल्ली' और ''ढ़ाका'' में मुगलशाही के शासकीय मुख्यावास के समय ही लिखी गई थी। यह भी विचारणीय है कि राजसिंह जी के महाकवि वृन्द को ''बनीठनी'' के चित्ताकर्षक वर्चस्व की पूरी जानकारी थी तभी तो उन्होंने ''यमक सतसई'' के निम्न उदाहरण में श्रीराधाजी से ''बनीठनी'' को उपमित किया है –

बनी मांहि राधा बनी, बनीठनी की भांति ॥
भई देखि फिर उनमनी, सबै उनमनी कांति ॥

महाराजा राजसिंह जी का विशेष सम्बन्ध रूपनगढ़ राज्य से रहा है, निम्बार्क शोध-मंडल वृंदावन में संगृहीत रूपनगढ़ राज्य की इत्तिलाक बहियों में ''बनीठनी'' का दिल्ली से खरीदे जाने का उल्लेख नहीं हैं । इसी प्रकार खरीद के समय ''बनीठनी'' की दसवर्षीय आयु भी संभवत: इसीलिए कल्पित की गई है ताकि नागरीदास जी और बनीठनी की उम्र में अत्यधिक अंतराल की स्थिति में वृन्दावनवास में उनका परस्पर अंग संग न होना सिद्ध किया जा सके, पर बनीठनी महाराजा सांवतसिंह जी (नागरीदास) के गृहस्थ जीवन में उनकी पूर्ण यौवना-नयनाभिराम परमसुंदरी अंगसंगिनी प्रेयसी पासवान थी। अंगसंग की स्थिति होने पर ही कोई स्त्री राजा की पासवान हो सकती थी और राज्य उसे राजा की पासवान होने की मानद पदवी भी तभी देता था तथा तभी उक्त पासवान के राजकीय नियमों के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार सुरक्षित रहते थे। अत: सांवतसिंह जी के राजत्वकाल में ''बनीठनी'' का उनकी घोषित पासवान होना तर्क संगत होने से सुनिश्चित है, तथा ऐसी स्थिति में राजसी परम्परानुकूल महाराजा सांवतसिंह जी का गृहस्थ जीवन राजकीय नियम तथा लौकिक रीति नीति के अनुसार होने से चारित्रिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष ही माना जावेगा। वृन्दावनवास में वही पासवान ''बनीठनी'' नागरीदास जी की भांति ही परमविरक्तव्रती बनकर सहचरी भाव से निकुंज रसोपासना में सत्यनिष्ठा और पवित्रता से तल्लीन थी। नागरीदास जी परमरसिक थे और उस साधनात्मक स्थिति में

वह उनकी कृपाश्रिता परमानंद सुखापेक्षी मंजरी सेविका थी ।उनके पवित्र जीवन में निरपेक्षभाव से नित्यनिकुंज बिहारी श्रीराधारमण लाडली लाल प्रियाप्रियतम के युगल केलि दर्शनानंद की निष्काम वांछा करना ही शेष रह गया था, उनमें परस्पर भौतिक सुख की कल्पना करना महापाप है।

''बनीठनी'' वस्तुत: महारानी ब्रजकुंवरी जी के अंत:पुर की दासी वनकर आई थी पर उसे लाने वाले महाराजा राजसिंह जी नहीं थे वरन् वह तो ब्रजकुंवरी जी द्वारा चयनित ब्रजसुंदरी थी, जिसकी परमसुंदर विमोहक देह में सहज-सौंदर्य की पराकाष्ठा थी तथा उसमें परमसाध्वी सहचरी-सेविका के सर्वथा उपयुक्त सुषुप्त गुण विद्यमान थे। ब्रजक्षेत्रीय किसी गुर्जर-धाभाई अथवा आभीर या अहीर परिवार में जन्मी भोलीभाली खंजन नैंनी विमोहक रूपवती अनाथ किशोरी बालिका को अपनी ब्रज यात्रांतर्गत ब्रजकुंवरी जी ने संभवत: मधुकरी करते देखा होगा तथा उसे भक्तिमय अंत:पुरीय परिवेश के नितान्त उपयुक्त समझकर उसे दासी के रूप में अपना लिया होगा - यही मानना युक्तियुक्त है। ब्रजकुंवरी जी ने बनीठनी जी के स्मारक-शिलालेख के अनुसार उस ''ब्रजनागरि'' दासी का वैष्णवपरक नाम ''विष्णुप्रिया'' रखा था। निम्न स्तरीय जाति के सामान्य-संस्कारों से युक्त इस दासी को मधुरोपासना के परिवेश में वांछित कुशलता के लिए महारानी जी ने ही उसे संगीत-नृत्य-श्रृंगार और रीतिपरक काव्यशास्त्र तथा वैष्णवी आचार-विचार एवं निकुंज-सेवा विधि-व्यवस्था आदि विषयों में शिक्षा दिलाकर अत्यंत निपुण बनाया था और जब वह परमसुंदरी सद्गुणालंकृत सहचरी-सेवा तथा काव्यकलादि गुणों से आवेष्ठित हुई तो उसके पूर्णयौवन से युक्त नयनाभिराम विमोहक रूप से विकसित व्यक्तित्व के आधार पर उन्होंने उसका नाम ''बनीठनी'' रख दिया था। अलौकिक-सौंदर्य-शुचिता, रूप-गुण-लावण्य-श्रृंगार की महामोहिनी-चारूता, षोड़स-कलाओं की निपुणता, संगीत काव्यकला-रीति-नीति के चमत्कारिक चातुर्य एवं वैष्णवी आचार विचारों की सदाचारिता से संयुक्त परम गुह्य रसोपासना की निकुंज-भावपरक सेवा-सिद्धिता आदि सुलक्षणों के तदनुरूप षंजन-नैंनी ''बनीठनी'' के विमुग्धकारी व्यक्तित्व ने समस्त राजसी परिवार को मोह लिया था। यह सुखद और युक्तियुक्त आश्चर्य है कि ब्रजकुंवरी जी ने अपनी ब्रजदासी-भागवत के तथाकथित ''वकी'' प्रसंग के व्यंजनात्मक उपमान से अपनी उक्त ''बनीठनी'' का चित्रांकन शैली में रूपांकन किया है जो पूर्वोक्तानुसार निहालचन्द्रकृत ''बनीठनी'' की विश्वविख्यात ''मोनालीसा'' सम चर्चित चित्राकृति का मूलाधार है उक्त उदाहरण पुन: अवलोकनीय है :-

अैक दिनां वा पूतनां, धारी अस्त्री को रूप ॥
गोकुल मधि आवत भई, बनिठनि महा अनूप ॥
सुमन गूंथित बैंनी रही, छूटी नितंबनि ठांम ॥
पंकज सौ मुख छीन कटि, षंजन नैंन अभिरांम ॥
मंडित भूषण बस्त्र सौं, मुसकत करत अदाय ॥
मोहित गोपी गोप सब, करत भइ या ठगाय ॥
गोपिन जान्यौ इहि रमा, सोधत अपनौं कंत ॥
नंदमहर कैं घर गई, जसुमत पास असंत ॥
\+ + + +
तैज पूतना कौ बडौ, देषि सुदिव्य बहिं बार ॥
जसुमति जी पुनि रोहनी, बरजी न सकी बिचार ॥

''वकी'' नामांकित इस रूपचित्रण में ''बनीठनी'' की निहालचन्द्रकृत तथाकथित अद्यावधि प्रचलित चित्राकृति की शब्दमयी प्रस्तुति प्रकट हुई है। ''बनीठनी'' के नासिका से कर्ण खिचित सुडौल तीक्ष्ण पंजन नेत्र थे, उस महा अनुपम परम सौंदर्यशालिनी कमलमुखी सुंदरी की क्षीण कटि थी तथा उसकी सुमन गूंथित बैंनी नितंबों तक लम्बित एवं दोलायमान थी। वह रूपवती शुभ्रवसना, अनेक-आभूषओं से सुसज्जित होकर मंद मधुर-मुस्कान से संयुक्त अत्यंत विमुग्धकारी श्रृंगारिक अदाओं से सभी का मन विमोहित कर रही थी। यह शब्द चित्राकृति वस्तुत: किशनगढ़-चित्रकला-क्षेत्र में अद्यावधि प्रचलित निहालचन्द्र कृत ''बनीठनी'' की है जो नागरीदास जी की पूर्वोक्त प्रकार से ''बनीठनी'' के नाम से सुख्यात पासवान तथा निकुंज-सेविका रही है - यह सार्वजनिक तथ्य है ।

अब यहां यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से विचारणीय है कि ब्रजकुंवरी जी द्वारा ''वकी'' और ''बनीठनी'' में परस्पर रूपात्मक समानता स्थापित करने के प्रति उनका क्या मन्तव्य रहा है। सूक्ष्मदर्शिता पूर्ण परख करने पर यही तथ्य सत्यापित होता है कि ब्रजकुंवरी जी इस उपमात्मक-व्यंजना से ''बनीठनी'' के जीवन का रेखांकन करना चाहती

है कि ''वनीठनी'' मूलत: पूतना-सदृश राजसी परिवारों में स्तन पान कराने वाली तथा कथित गुर्जर-धाभाई जाति में जन्मी थी। राजस्थान में इसी परम्परा से सुन्दर स्वस्थ स्त्री को ''धाय'' बनाया जाता है। तथा उससे उत्पन्न संतति को धाय भाई अर्थात् धाभाई कहा जाता है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से निम्नतर संस्कारों की दासी का रूप ब्रजकुंवरी जी द्वारा दिलाई गई राजसी-शिक्षा-दीक्षा एवं संगीत-नृत्य-काव्यकलादि के ज्ञान से संवर कर अत्यंत विमोहक रूप में परिवर्तित हो गया था और वह ऐसी ''बनीठनी'' बन गई थी कि जिसकी आश्चर्यचकित करने वाली महामोहनी-रूपगुणात्मक -चमत्कृति (ग्लेमर) से संबंधित सामाजिक परिवेश ''वकी'' संदर्भ की भांति उसके रूपजाल से मानो ठगा जाने लगा था। उसके इस विमोहन से समस्त दर्शक गोपी-गोप-जसुमति-रोहिणी की भांति-जड़वत् स्तंभित होकर हतप्रभ-बुद्धि से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते थे। इससे यह भी ध्वनित होता है कि युवराज-सांवतसिंह जी का भावुक - कलाप्रेमी - हृदय भी ''बनीठनी'' पर विमुग्ध हो गया था। जसुमति-रोहिणी द्वारा ''बरजने'' अर्थात् मना करने जैसी परिस्थितियां विवशताओं में परिवर्तित हो चुकी थी। इसमें यह भी अनुमानित है कि विमाता-ब्रजकुंवरी जी प्रारंभिक काल से ही राजकुमार की मातृविहीन मानसिक रुग्णता तथा तात्कालिक पारिवारिक कलह जनित अंतर्वेदना से उत्पन्न संत हृदय राजकुमार की वैराग्यभावना को जानकर उत्तराधिकारी युवराज की मानसिकता राजकाज में स्थिर रखने की भावना से चाह रही थी कि ''बनीठनी'' के साहचर्य से युवराज सांवतसिंह का काव्य-संगीत-चित्रकला संयुक्त बना हुआ मनोनुकूल रसोपासनात्मक परिवेश निरन्तर गतिशील बना रहे । अत: उन्होंने ऐसी परिस्थितियों में ''बनीठनी'' का पासवान होना भी स्वीकारा होगा; पर युवराज सावंतसिंह (नागरीदास) जी का अपनी विमोहक निकुंज-सेविका बनीठनी के प्रबल प्रेरणादायक उपासनात्मक साहचर्य से, राजपाट परित्याग कर वृंदावनवास करने सम्बंधित मनोरथ -मंजरी में व्यक्त पूर्वोक्त मनोरथ और भी दृढ़ हो गया; पासवान बनीठनी से वांछित सफलता न मिलने पर तत्कालीन गृहयुद्ध तथा वैधव्य से आहत राजमातृत्वपूर्ण दायित्व की मानसिकता लेकर वि. सं. १८०६ से १८१३ तक 'ब्रजदासी भागवत' के रचना-अनुष्ठान में संलग्न, निराशा और विफलता की पृष्ठभूमि में 'बनीठनी' उन्हें पुत्र नागरीदास जी का मनहरण कर वृंदावनवासी विरक्त बनाने वाली क्रूर 'वकी' सी लगी होगी: बनीठनी के सहयोग से राजमाता चाहती थी राजपाट और भक्ति से समन्वित नागरीदास, पर ऐसा न होने पर 'बनीठनी' पर ही इन्होंने किंचित् आक्रोश किया होगा और अन्तत: म. सरदारसिंह जी को राजपाट सौंपकर राजमाता सहित सभी ने स्थायी वृंदावन वास किया होगा- ऐसी स्थिति में 'वकी' से बनीठनी उपमित की गई होगी; यही अनुमान समीचीन है। ''वनीठनी'' के प्रति सांवतसिंह जी का विमोहित होना उनके निम्न मनोविश्लेषणात्मक तथा प्रेम-रहस्यात्मक काव्यगत उदाहरणों से असंदिग्ध ही लगता है :-

रे लोभी मन सुनि दौरि दौरि जात हुतौ ,
रूप को लुभायो समझायो हो दरद में ।
देत हो न चैन बस कीनैं आप नैंन पर्‌यौ ,
अधिक बधिक पानि आनि मैंन मद में ।
पायौ फल नागर फँसायो मुसकान भौंह ,
कसनि कसायो लैं मिलायो रे गरद में ।
कटि कैं कटाछिन सौं बेधि तीखे कोयन सौं ,
चूर करि लोयन सौं डार्यौ नेह नद में ।

ऐसे प्रेम-रहस्यात्मक चित्रणों में रूप का हृदयाघाती चित्ताकर्षण, विरही की मर्मांतक विरहपीड़ा एवं सर्वसमर्पण की अटूट भावना किसी भुक्त भोगी शूरवीर प्रेमी हृदय की ही अनुभूति हो सकती है :-

लोचन कटाछि बान हँसनि कृपान तेरी ,
हूल अंगरानि सूल साल्यौई करत हैं ।
लागैं सेल सर असि पागैं सुख मन ऐ पैं ,
तनक रूखाई ज्वाल माला सौं सौ जरत हैं ।
वारपार बरछी दुसार तीर तनकई ,
शीश कटि लटक्यौं पैं नैंक न टरत हैं ।
नेह रन छक्यो सूर घावन सौं चूर चूर ,
तऊ देखि अरी पैंड आगैं ही परत हैं ।

इस प्रकार बनीठनी नागरीदास जी की काव्यकला- सहचरी एवं उनके चित्रों की नायिका तथा निकुंज-मंजरी बनकर उनके विश्वविख्यात ख्यातिमानी व्यक्तित्व की पूरक प्रेरिका सिद्ध हुई; अद्यावधि प्रचलित ऐसी मान्यताओं की यहाँ पुष्टि हो जाती है ।

नागरीदास तथा बनीठनी के साहचर्य का चित्रात्मक आधार :- ईस्वी सन् १९५९ में ललित कला अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पेंटिंग की चित्रात्मक एटलस में 'ललित कला सिरीज ऑफ इंडियन आर्ट्स' के क्रम में किशनगढ़ पेंटिग की चित्रावली प्रकाशित की गई है जिसके पृष्ठ २२ पर प्लेट नं. II में 'कवि राजकुमार और बनीठनी किशनगढ़ दरबार (दी पोइट प्रिंस एण्ड बनीठनी किशनगढ़ दरबार) नामक शीर्षक से युवराज सांवतसिंह (नागरीदास) और बनीठनी का साहचर्य सिद्ध करने वाला चित्र प्रकाशित किया गया है। इस चित्रात्मक एटलस का संपादन मेयो कालेज के भूतपूर्व प्रिंसिपल कार्ल खांडालावाला) ने किया है। सन् १९४३ ई. में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी के प्रख्यात प्रोफेसर एरिडिकिनसन मेयो कालेज, अजमेर आये थे तब कार्ल खांडालावाला उन्हें किशनगढ़-पेंटिंग दिखाने किशनगढ़ लाये थे। उक्त अवसर पर चित्रों की जानकारी कराने वाले विद्वानों में किशनगढ़ के फैयाज अली खाँ भी थे जिन्हें संपादक ने इस एटलस की भूमिका में धन्यवाद दिया है।

संपादक के अनुसार यह चित्र प्रख्यात चित्रकार निहालचंद्र द्वारा सन् १७३९ में रूपनगढ़ में बनाया गया था। इस चित्र के पीछे चित्र की जानकारी इस प्रकार अंकित की गई है ''तसवीर म्हाराज नागरीदास जी की कँवरपदाँ की सेवा पूजा करतां।'' यद्यपि इस चित्र-परिचय में बनीठनी का नाम अंकित नहीं किया गया; तथापि संपादक के अनुसार पीली साड़ी में चित्रित सुंदरी निस्संदेह बनीठनी ही है; किंचित् सलज्ज घूंघट (पर्दा) रहित मुद्रा में अपनी दो दासियों सहित (स्वामिनी ''मिस्ट्रेस'' की हैसियत से) उनकी पासवान बनीठनी ही है जो हर समय नागरीदास जी के साहचर्य में रहती थी। संपादक ने इस चित्र को राजकुमार सांवतसिंह और बनीठनी का अधिकृत चित्र बताते हुये कहा है कि किशनगढ़-चित्रकला के अध्ययन सम्बंधित इस महनीय चित्र को सन् १७५७ ई. के बाद राजपाट-परित्याग कर विरक्तावस्था में वृन्दावनवास कर रहे नागरीदास (सांवतसिंह) जी से सम्बंधित समझना भारी भूल है; यदि यह चित्र सन् १७५७ ई. के बाद राजपाट का परित्याग करके तदनुसार वृंदावनवास कर रहे नागरीदास जी की विरक्तावस्था का होता तो उनकी आयु इस समय ५८ वर्ष की होती जबकि इस चित्र में उनकी आयु पैंतीस से चालीस वर्ष के पुरुष की दर्शायी गई है (चूंकि नागरीदास जी का जन्म सन् 1704 ई. में हुआ था) तथा इसमें चित्रित बनीठनी भी बीस वर्षीय किशोरी बालिका है जिसने पूर्णयौवना नारी की अवस्था में प्रवेश ही किया है। इस प्रकार उन्होंने इस चित्र को युवराज सांवतसिंह और बनीठनी से सम्बंधित बताते हुये माना है कि इसमें सांवतसिंह अपने रूपनगढ़ आवास में नित्यप्रति की प्रातःकालीन पूजा-आराधना में तल्लीन है :- ''दी पोइट प्रिंस एण्ड बनीठनी किशनगढ़ दरबार - दिस मिनियचर विच इज ऑफ हाई इम्पोर्टेंस इन दी स्टेडी ऑफ किशनगढ़ पेंटिंग हेज इन देयर टु बीन रांगली आइडेंटिफाइड एज नागरीदास एट पूजा इन बृन्दावन आफटर हिज एबडीकेशन इन 1757 ए. डी. फार वनथिंग इट इज एपिरेंट देट सांवतसिंह इन दिस मिनियचर इज फार फ्राम बीइंग एन एलडरली मैन यट, इफ दिस पेंटिंग हेड रेफर्ड टू ए पीरियड ऑफ टाइम आफटर दिस एबडिकेशन ही बुड हेव बीन ओवर फिफटी ऐट इयर्स आफ ऐज इन दी प्रजेन्ट स्टेडी हाउएवर ही इज सरटेनली नो मोर देन थरटीफाइव टु फोरटी सो आलसो बनीठनी इज शोन एज ए यंग गर्ल ऑफ एबाउट टवन्टी हू हेज जस्ट पिओजम्ड इन टु फुल वूमनहुड - दी सीन डिपिक्टेड दस एपियर्स, टु बी नो मोर देन ए पोट्रेयल ऑफ सांवतसिंह एज ए प्रिंस परफारमिंग हिज मोर्निंग (पूजा) प्रेयर हिज पासवान (मिस्ट्रेस) बनीठनी हू वाज इक्वली डिवोट हेज जस्ट एन्टर्ड दी कोर्टयार्ड फ्रेस फ्राम हर बाथ केरिंग ए गारलेंड ऑफ फ्लावर्स-बिहाइण्ड मैडन फालोज विथ ए वाटर सुराही एण्ड थाली, दिस वुड बी डेली ओकेरेंस इन सावंतसिंहस् पेलेस - ही वाज पाइएस वैष्णव हू स्पेन्ट लोंग हावर्स इन प्रेयर एण्ड वुड बी ड्रेस्ड सीटेड फार दिस डेली वरसिप एजेक्टली एज वी सी हिम इन दी पेंटिंग, दी मिनियचर वाज प्राब्बेली पेंटेड एट रूपनगढ़ + + + दो दी इन्सक्रिप्सन डज नाट मेन्सन, बनीठनी देअर केन बी नाट डाउट देट दी यंग गर्ल इन दी यलो सारी इज नन अदर वी नो देट डिडनाट आबर्जब पर्दा एण्ड बाज आलवेज विथ हिम- '' पेज 22 -

(किशनगढ़ पेंटिंग - ललित कला अकादमी - ललित कला सीरिज ऑफ इंडियन आर्टस - एडीटर - कार्ल खांडालावाला- पब्लीस्ड इन 1959 - न्यू देहली।) हमारे मतानुसार वस्तुतः इस चित्र में युवराज सांवतसिंह जी निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना के सखीभाव में, तदनुरूप सहचरी - वेश (केशरिया पीली साड़ी में) धारण किये, निम्बार्कीय तिलक लगाये, निम्बार्कीय तुलसी कंठी बांधे प्रियाप्रियतम दंपति श्रीराधारमण के निकुंज-केलि-स्थल श्रीधाम की अनन्य-निष्ठा से दिव्य वृन्दावन की मानसिक ध्यानावस्था में आसीन होकर युगल-स्वरूप के प्रातःकालीन परमगुह्य अंतरंग आराधन में तल्लीन हैं। श्रीधाम वृन्दावन की रसोपासनात्मक निष्ठा से निहित इस सैद्धान्तिक चित्र को वैष्णवों की सामान्य प्रातः कालीन आराधना से संबंधित करके उसे परखना भूल है, अतः इसमें चित्रित प्राकृतिक पृष्ठभूमि सांवतसिंह जी के रसिक-भावानुरूप मानसिक वृन्दावन की है; रूपनगढ़-किशनगढ़ की स्थूल-प्रकृति के

परिवेश को इसमें देखना ही भूल है। नागरीदास और बनीठनी जी के निकुंज-रसोपासनात्मक-सत्संगी-साहचर्य को अत्यंत स्पष्ट करने वाला यह निहालचंद्र कृत रूपनगढ़ में निर्मित ऐतिहासिक और प्रमाणिक चित्र है जिसके अनुसार निकुंज-उपासना-गृह के प्रांगण में केशरिया रंग के वस्त्र से सखी- वेश धारण किये सांवतसिंह जी (नागरीदास जी) युगल-सेवा-आराधना में तल्लीन दर्शाये गये हैं, उनकी पासवान निकुंज-मंजरी भाव में उपासनारत ''बनीठनी'' उनके सम्मुख हाथ में पुष्पमाला लटकाये, शांत-गंभीर तथा लज्जायुक्त क्रियाशील मुद्रा में तथा पूजाक्रम में सद्यस्नात - अस्पृश्य भाव से हरे भरे तुलसी - थाने के समीपस्थ खड़ी दर्शायी गई है जिनके पृष्ठभाग में दरवाजे से प्रविष्ट होती हुई बनीठनी की दो कनिष्ट परिचारिकायें भी जलपात्र-पुष्पादिक सेवा-सामग्री लिये सेवा में तत्पर हैं। किशनगढ़ शैली के अनुसार ही इस विवरणात्मक चित्र की पृष्ठभूमि में सघन हरितमाच्छादित वृक्षावली तथा वानरबाहुल्य वृन्दावनस्थ परिवेश एवं शुभ्राकाश चित्रित है। सखी - रूप धारे सांवतसिंह जी (नागरीदास जी) के पार्श्व में बेलबूटों से अलंकृत छज्जों वाला श्वेताभासित उनका आवसीय कक्ष है, सम्मुख लाल ईंटों से बनी पर्दी के अलगाव से सटा हुआ दरवाजे वाला निकुंज-मंजरी भाव में उपासनारत पासवान बनीठनी का आवास है जिसके द्वार से प्रांगण में प्रविष्ट होती हुई दो परिचारिकायें बनीठनी के आवास से ही आ रही भासित हैं। इसमें कहीं भी खपरैल का छाजन (केलू से बनी छत) नजर नहीं आता, ईंट की पर्दी को भ्रमवश छाजन कह कर प्रचारित करना विद्वानों की भूल ही है।

यह चित्र किशनगढ़ राज्य द्वारा अधिकृत रूप से मान्य सांवतसिंह जी (नागरीदास जी) के जीवनकाल में बना उन्हीं का पवित्र इतिहास है। इसकी प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता असंदिग्ध है क्योंकि यह चित्र दीर्घकाल तक किशनगढ़ राज्य के कपड़-भंडार में सुरक्षित रहा है तथा ''नागर-समुच्चय'' के सम्पादक सुख्यात कवि जयलाल जी ने वि.सं. १९५५ में इसे उक्त ग्रंथ में प्रकाशित करवाया है, तत्कालीन राजतंत्रीय अनुशासन में असम्बद्ध चित्रावली जो विशेष रूप से राजवंशीय प्रतिष्ठा की हो उक्त ग्रंथ में कैसे प्रकाशित हो सकती थी? अस्तु इसे अप्रामाणिक मानना भ्रामक प्रचार है। इसी चित्र में चित्रित केवल नागरीदास जी के सखी-रूप को दर्शाने वाला अंश नागरीदास-ग्रंथावली के संपादक पं. श्री ब्रजवल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य पंचतीर्थ ने वि. सं. २०२१ में प्रकाशित करवाया था। इसीलिए सम्पूर्ण विवरण वाला चित्र उन्होंने तात्कालिक होम-मिनिस्टर श्रीनारायणदास जी मेहता के सौजन्य से प्राप्त कर उसका उक्त आंशिक ब्लाक बनवाया था। नागरीदास ग्रंथावली में प्रकाशित इस चित्र के विवरण में लिखा गया है ''भक्तवर श्रीनागरीदास (म. सांवतसिंह जी) - श्रीवृन्दावनधाम में प्रभु-आराधना में संलग्न-किशनगढ़ राज्य के कपड़ भंडार में सुरक्षित चित्र (जिसमें उनकी सेविका बनीठनी भी सम्मुख खड़ी हुई है) से ब्लाक बनवाया गया है। होम मिनिष्टर मेहता श्री नारायणदास के सौजन्य से वि. सं. २००३ में सम्प्राप्त'' यही चित्र किशनगढ़ शैली के अन्य चित्रात्मक एटलसों में प्रकाशित होने से अत्यंत प्रचारित रहा है। यह महत्वपूर्ण चित्र नागरीदास जी के निम्बार्कीय रसोपासना में दीक्षित होने का प्रामाणिक साक्ष्य है तथा इससे बनीठनी जी के पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिपादित निकुंज-मंजरी-रूप का विलक्षण वर्चस्व भी प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित है। डॉ. फैयाज अली खाँ और डॉ. किशोरीलाल गुप्त के परस्पर वार्तालाप को डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने ''नागरीदास ग्रंथावली'' की भूमिका पृष्ठ ४-५ पर प्रकाशित किया है- प्रतीत होता है कि डॉ. फैयाज अली जी ने नागरीदास जी के निम्बार्कीय रसोपासना में दीक्षित न होने के समर्थन में इसे संभवत: भ्रामक बताया है। डॉ. साहब का वक्तव्य इस प्रकार है ।''नागर समुच्चय में जो चित्र प्रकाशित है और जो अब नागरीदास के चित्र के रूप में प्रचारित प्रसारित है, वह अप्रामाणिक है। उन्होंने बताया कि उक्त चित्र काल्पनिक है और किशनगढ़ में वह भी है। वस्तुत: एक बड़ा चित्र है जिसमें खपरैल का घर है और संभवत: उसमें उनकी पासवान (रक्षिता) बनीठनी जी भी हैं। उस समूचे चित्र को न देकर नागर - समुच्चय में उसका केवल वह अंश दिया गया है जिसमें नागरीदास चित्रित हैं चित्र में खपरैल का जैसा घर बना हुआ है - वैसे खपरैल के घर यहाँ किशनगढ़ में होते ही नहीं। अत: यह चित्र अप्रामाणिक है।''

डॉ. फैयाज अली जी का तथाकथित प्रकाशित मन्तव्य समझ से बाहर है। चित्र में खपरैल से बना छाजनवाला घर है ही नहीं और यदि होता तो भी सही ही था क्योंकि उक्त चित्र में मानसिक रूप के चित्रित वृन्दावनस्थ परिवेश में खपरैल का घर होना भी मान्य होता। क्योंकि यह प्रथा वृन्दावन क्षेत्र में अत्यंत प्रचलित है। उक्त चित्र नागरीदास जी के मानसिक ध्यान में अवस्थित वृन्दावन के उपासना निकुंज का है उसमें किशनगढ़ के खपरैल रहित परिवेश की अनिवार्यता मानना भ्रामक है। वृन्दावन के मानसी परिवेश से संबंधित इस चित्र में वृन्दावनस्थ परिवेश की उपेक्षा करके उसमें किशनगढ़ीय भौतिक परिवेश को देखना मूलत: भारी भूल है - ऐसी परिस्थिति में चित्रित रसोपासनात्मक विवरण ही अप्रामाणिक हो जाता है क्योंकि देशकाल और भौगोलिक चित्रण किसी वस्तु के सत्यापन का प्रमुख आधार होता है। अस्तु हम इसे ''खपरैल होने'' के तथाकथित भ्रामक कथन से अप्रामाणिक नहीं मानते । डॉ. फैयाज अली

द्वारा प्रो. एरिडिकसन और प्रो. कार्ल खांडालावाला के समक्ष इस चित्र को सन् १९४३ के पूर्व कथित अवसर पर प्रामाणिक तथा तदनन्तर अप्रमाणिक बताने वाला दुविधात्मक कथन भ्रामक है - वस्तुत: यह चित्र तो किशनगढ़ के अतीत का स्वर्णाक्षरों में लिखित प्रामाणिक इतिहास है। यह वह चित्र है जो नागरीदास जी की परमगुह्य निम्वार्कीय रसोपासना की प्रामाणिकता उद्घाटित करता है जिसकी उपेक्षा से नागरीदास जी का व्यक्तित्व ही अधूरा रह जाता है। साथ ही यह विश्वविख्यात ''बनीठनी'' के विलक्षण वर्चस्व का भी ऐतिहासिक प्रमाण है।

''बनीठनी'' के पूर्वोक्त वर्चस्व का ऐतिहासिक साक्ष्य ''शिलालेख'' :- पूर्वोक्त प्रकार से वर्णित एवं प्रतिपादित ''बनीठनी'' जी के सम्पूर्ण वर्चस्व का ऐतिहासिक साक्ष्य वृन्दावनस्थ ''नागरीदास घेरे'' में अद्यावधि विद्यमान ''बनीठनी'' के समाधि-स्मारक पर लगा हुआ शिलालेख है जिसमें उनके तथा कथित सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिचयात्मक काव्यमय वर्णन बनीठनी जी की ही भाषा में लिखित निम्न प्रकार से उत्कीर्णित है :-

॥ श्री बिहारी जी ॥

श्री बिहारिन बिहारि जू, ललितादिक हरिदास ।
नरहरि रसिकनि की कृपा, कियौ वृंदावन वास ॥
(श्री) रसिकदास गुरू की कृपा, नेहि नागरि सत्संग ।
विष्णुप्रियाहि वृन्दावन मिल्यौ, भक्तविहार अनंग ॥
रसिक विहारि की सामरि, ब्रजनागरि सुरकाज ।
जुगल पद पंकज मधुकरि, सेवत विष्णु समाज ॥

(वि. सं. १८२२ मिति अषाढ़ सुदी १५ तिथि बुधवार - बनीठनी जी - वृन्दावन पाए)

इस समाधि-लेख के लिखित विवरण से बनीठनी जी के प्रामाणिक जीवन एवं वर्चस्व सम्बंधित कई ऐसे तथ्यों का उद्घाटन हो रहा जो अद्यावधि अज्ञात रहे हैं तथा जिनसे बनीठनी जी विषयक अद्यावधि प्रचारित भ्रांतियों का भी प्रामाणिक निराकरण हो जाता है :-

(१) शिलालेख के शीर्षस्थ लेख में ''बनीठनी जी के ठाकुर श्रीबिहारी जी'' का नाम अंकित है जिससे प्रमाणित होता है कि वे निम्बार्कीय शाखा-सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित, स्वामी श्री हरिदास जी द्वारा संस्थापित टट्टी-संस्थान परम्परा की शिष्या थीं। मुगल सम्राट अकबर के विश्वप्रसिद्ध दरबारी गायक 'तानसेन' तथा उन्हीं के अनुरूप ख्यातिमान ''बैजूबावरा'' के गुरु परमरसिकाचार्य स्वामी हरिदास जी की विद्यमानता वि. सं. १५३७ से १६३२ तक मानी जाती है तथा उनके ''ठाकुर श्रीबिहारी जी'' का प्राकट्य वि. सं. १५६७ में बताया जाता है। (दृष्टव्य - श्री सहचरी शरणकृत निजमत सिद्धान्त तथा प्रभुदयाल-मीतलकृत- ब्रज के धर्म सम्प्रदाय) इन्हीं ठाकुर श्री बिहारी जी का वृन्दावन में सुख्यात मंदिर है।

बनीठनी जी के शब्दों में आलेखित इस शिलालेख में उन्होंने इस संप्रदाय के बिहारिनदेव जी, नरहरिदास जी, रसिकदास जी तक के रसिकाचार्यो की परम्परा का नामोल्लेख किया है। संप्रदायी ग्रन्थों के अनुसार स्वामी श्री रसिकदास जी की विद्यमानता वि. सं. १६९२ से १७५८ तक मानी गई है तथा उनका आचार्यत्व काल १७४१ से ५८ तक का रहा है। बनीठनी जी के दीक्षा-गुरु के ये ही पूर्ववर्ती आचार्य थे; स्वामी श्री रसिकदास जी की विद्यमानता के पश्चात बनीठनी जी ने स्वामी श्री रसिकदास जी द्वारा दीक्षित इसी संप्रदाय के ''रसिकबिहारी'' नामक अन्य प्रसिद्ध संत द्वारा मंत्र-दीक्षा ली थी। ''रसिक विहारी'' जी स्वामी श्री रसिकदास जी के ही शिष्य रहे हैं, इसी कारण बनीठनी जी ने अपने गुरु नाम से पूर्व सम्बंधित गुरु-परम्परा का उल्लेख करते हुये अपने तथाकथित दीक्षा गुरु तथा उनकी सम्प्रदाय-परम्परा की प्रामाणिकता स्थापित की है। अस्तु, बनीठनी जी के ठाकुर श्रीबिहारी जी थे तथा उनके गुरु श्री रसिक बिहारी जी स्वामी श्रीहरिदास जी की वृन्दावनस्थ टट्टी - संस्थान की आचार्य परम्परा के स्वामी श्री रसिकदास (रसिकदेव) जी के शिष्य थे- यही मानना तर्क संगत है।

(२) शिलालेख में बनीठनी का निकुंज-गमन वि. सं. १८२२ अंकित है। इस समय उनका आयुमान ५२ वर्ष भी माना जाय तो लगभग वि. सं. १७७० में बनीठनी का जन्म हुआ था तथा वि. सं. १७८० में दस वर्षीय बालिका के रूप में अपने गुरु रसिकबिहारी जी से मंत्र-दीक्षा लेकर उनके आश्रय में वृन्दावन में रहना माना जाना समीचीन है। अपने वृन्दावनवास में ब्रजकुंवरी जी ने वि. सं १७८५ के लगभग बनीठनी को किशोरी ब्रजसुंदरी के रूप में देखकर तथा उसे अपने अंत:पुर के भक्तिमय वातावरण के अनुकूल जानकर दासी का स्थान दिया होगा। ब्रजकुंवरी जी ने अपनी वैष्णवपरम्परानुसार इसका नाम ''विष्णुप्रिया'' रखा था जो शिलालेख में भी अंकित है ।

(३) बनीठनी का ''विष्णुप्रिया'' होने से भी पूर्व गुरू-प्रदत्त नाम ''स्यामा'' था जो नायिका भेद के अनुसार उसके परमसौंदर्य

संयुक्त सद्‌गुणालंकृत सदाचारिता पूर्ण सुलक्षणा नारी एवं सर्वश्रेष्ठ सुंदरी होने का परिचायक भी है जो दूसरी ओर ''स्यामा'' अर्थात् निकुंज स्वामिनी श्यामा श्रीराधाजी के नाम का द्योतक शब्द भी है। यहाँ ''सामरि'' श्यामारी का अप्रभ्रष्ट रूप है जो लघुता सूचक सम्बोधन वाची शब्द है। परिवार के वृद्धजन गुरुजन तथा अन्य सामाजिक वयोवृद्ध प्राय: बच्चों तथा अपने वयक्रम में छोटे आत्मीयजनों को प्राय: इसी लघुतावाची सम्बोधन से पुकारते हैं जिससे नाम के अपभ्रष्ट होने की परम्परा बन गई है। निम्बार्कीय रसिकों की निकुंजभाव परक अध्यात्म परम्परा में श्रद्धालुसंत भक्तजन परस्पर सम्बोधनार्थ 'श्यामा' अर्थात 'राधे' के आराध्यदेवपरक शब्द का प्रयोग भी करते हैं। इसी स्थिति में बालिकावय की शिष्या बनीठनी को लाडप्यार से गुरु रसिकविहारी जी ''सामरि'' नाम से सम्बोधित करते थे, जो उसके श्यामा नाम का लघुता सूचक सम्बोधन था। यह तथ्य ब्याकरण सम्मत भी है। ''इ'' या ''ई'' प्रत्यय प्राय: लघुता व न्यूनता वाची स्त्रीबोधक शब्द बनाते हैं, यथा भामरि, कामरि, छामरि, सायरि, सांवरि, कांवलि, छांवलि, बावलि, भंवरि-कुंवरि आदि हमारे परिवेश में व्यवहृत ऐसे अनेक शब्द हैं।

(४) ''रसिकविहारि की सामरि, ब्रजनागरि सुरकाज'' के श्लेषार्थ से यह तथ्य भी प्रतिपादित होता है कि बनीठनी जी सहचरी-भाव से निकुंज-रसबिहारी परब्रह्म-परमानंद-स्वरूप-श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी नित्यकिशोरी श्री श्यामा-स्वामिनी - श्रीराधा जी (ब्रजनागरि) के परमदिव्य - रहस्यात्मक - सहचरी - सेवाकाज (सुरकाज) की परमानंद रूपी युगलपदपंकज-मधुकरि-वांछा को परमलक्ष्य मानकर इसी हेतु वह परम-वैष्णव-रसिकवर्य श्री नागरीदास जी की कृपाश्रिता निकुंज-मंजरी की हैसियत से उनकी सेवा में संलग्न थीं। इस प्रकार बनीठनी ने इस प्रामाणिक साक्ष्य से अपने भौतिक-आध्यात्मिक तथा उपासनात्मक व्यक्तित्व को स्वयं उजागर किया है।

(५) बनीठनी जी अत्यंत-भावुक कवि-हृदया काव्यकार थीं जिन्होंने अपने इन्हीं गुरु ''रसिक बिहारी'' की छाप से युगललीला के निकुंज - भाव परक अनेक सुललित रागबद्ध पदों की रचना की थी। लगभग सभी विद्वानों ने यह माना है कि बनीठनी जी द्वारा रचित उक्त शताधिक पदावली ''नागर समुच्चय'' में संगृहीत की गई है जिसको अलग करना शोध का विषय है।''नेहि नागरि'' अर्थात् नागरीदास जी से इनके निरन्तर सत्संग का आधारभूत कारण नागरीदास जी और बनीठनी में परस्पर समान रूप से साधनात्मक एवं सृजनात्मक प्रवृति का होना था। उनका परस्पर समर्पण उनके उभयात्मक विलक्षण व्यक्तित्व का पूरक सिद्ध हुआ ।

(६) शिलालेख के अनुसार बनीठनी जी ने अपने आपको श्लेषार्थक ''ब्रजनागरि'' बताया है जिससे यह भी प्रमाणित होता है कि बनीठनी जी वस्तुत: ब्रजक्षेत्र की तथा कथित ब्रजसुंदरी थी। ब्रजकुंवरी जी ने जिसका दासी रूप में चयन किया था, अस्तु उनका राजसिंह जी द्वारा दिल्ली से खरीदा जाना अप्रामाणिक तथा भ्रामक इतिहास है। निकुंज बिहारी श्यामाश्याम के युगलचरणारबिन्दों की सहचरी-सेवा की निरपेक्ष सुख-वांछा से ही उन्होंने रसिकों वैष्णवों के सेवार्थ मधुकरि-व्रत लिया था, इस प्रकार रसिकदास जी की गुरु परम्परा के गुरु-आश्रय से उन्हें प्रथमत: वृंदावनवास मिला और इसी से उन्हें ब्रजकुंवरी जी की ''विष्णुप्रिया'' दासी बनकर तदनन्तर ''नेहि-नागरि'' अर्थात् नागरीदास जी की सत्संग-सेवा में संलग्न होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। अन्तत: विरक्तावस्था में उन्हें इन्हीं परिस्थितियों से वृन्दावन का मृत्युपर्यंत स्थायी वास भी मिल गया था जहाँ उन्हें अत्यंत स्वच्छन्द-भाव से रसिक-भक्तों से सत्संगरूपी ''अनंग-बिहार'' करने का अपूर्व लाभ भी मिला। ''अनंग'' शब्द का प्रयोग करके बनीठनी ने प्रामाणिक आधार से यह स्पष्ट कर दिया है कि वृन्दावनवास में रसिक भक्त प्रवर नागरीदासजी के प्रति उनकी ''अशरीरी'' अर्थात् अंगसंग से सर्वथा अछूती निकुंज-मंजरी-भावापरक सेवा-साधना थी। इस प्रकार नागरी-दास जी और बनीठनी जी का परस्पर अनंग-साहचर्य होने का इससे बड़ा तथा अधिक विश्वसनीय प्रमाण और कौन सा हो सकता है?

(७) अत: पूर्व प्रसंगानुसार किशनगढ़ राज्य से प्रमाणित नागरीदास जी की पूर्व पासवान; तथा वृंदावनवास में उनकी सेवा-संलग्न निकुंज-मंजरी बनीठनी जी को इस शिलालेख के अनुसार वि. सं. १८२२ के आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा-बुधवार को निकुंजवास प्राप्त हो गया था। पूर्वोक्तानुसार बनीठनी जी लगभग ५२ वर्ष की अवस्था में निकुंजलीन हुई थी - यही मानना समीचीन है।

(८) सभी विद्वानों के मतानुसार यह शिलालेख प्रामाणिक है इस ऐतिहासिक आलेख को संदिग्ध मानना भ्रामक है क्योंकि यह शिलालेख किशनगढ़ राज्याधीन वृन्दावनस्थ नागरीदास घेरे में श्रीनागरीदास जी की समाधि के पार्श्व में बनी बनीठनी की उक्त समाधि पर अद्यावधि विद्यमान है जो अब जीर्ण शीर्ण हैं। ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी ने अपने महत्वपूर्ण काव्य निम्बार्क-माधुरी में इसे उद्धृत किया है। नागरीदास ग्रंथावली के संपादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने भी इस शिलालेख को मान्य ठहराते हुये इसे अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। इसी प्रकार पं. ब्रजवल्लभशरण जी वेदान्ताचार्य आदि अन्य विद्वानों ने भी इसकी प्रामाणिकता प्रतिपादित की है तथा इसे निम्बार्क-शोध-मंडल-संग्रहालय में आलेखित

किया है। मैंने इस शिलालेख को पिछले २५ वर्षों में कई बार तथा अद्यावधि सुरक्षित देखा है। नागरीदास शोध के बहुचर्चित विद्वान डॉ. फैयाज अली जी से कई बार व्यक्तिगत आग्रह करने पर भी वृन्दावन चलकर नागरीदास घेरे में स्थित नागरीदास तपस्थली, तथा नागरीदास-बनीठनी आदि के समाधिस्मारक एवं उन पर उत्कीर्णित तथा कथित शिलालेखों के प्रत्यक्ष दर्शन करने संबंधी उनका कार्यक्रम संभव नहीं हुआ है तथापि मैने आदरणीय डॉ. साहब को इन शिलालेखों की कई बार जानकारी दी है।

(९) डॉ. किशोरीलाल गुप्त, डॉ नारायणदत्त शर्मा आदि कई विद्वानों ने बनीठनी जी को संभवत: इसी शिलालेख के विवरण के आधार पर स्वामी श्री रसिकदास जी की शिष्या वताया है। इसी क्रम में उन्होंने स्वामी श्री रसिकदास जी के टट्टी संस्थान के आचार्यत्वकाल वि.सं. १७४१ से १७५८ में बनीठनी जी का उनसे दीक्षित होना बताया है, तदनुसार बनीठनी जी की विद्यमानता का भ्रामक प्रचार हो गया है। इस समय को बनीठनी जी का विद्यमानकाल मान लेना सर्वथा अप्रामाणिक है क्योंकि वि.सं. १७५६ नागरीदास जी का जन्मकाल है- तदनुसार बनीठनी उनकी समवयस्का सिद्ध होती है, इसी प्रकार बनीठनी को दासी रूप में अपने अंत:पुर में स्थान देने वाली रानी ब्रजकुंवरी जी भी बनीठनी की समवयस्का प्रतिपादित हो जाती है जो कि कथमपि संभव नहीं है। जनश्रुति के अनुसार बनीठनी आयुक्रम से नागरीदास जी से लगभग २० वर्ष छोटी थी, जिसे कृष्णगढ़ का इतिहास भी प्रमाणित करता है। पासवान होने के प्रसंग में डॉ. फैयाज अली जी के पूर्वोक्त शोधात्मक उदाहरणों से भी श्री नागरीदास और बनीठनी जी की उम्र में इतना ही अंतराल प्रमाणित है। यदि बनीठनी का यह विद्यमान काल मान लिया जाय तो फिर निकुंज गमन के समय (वि. सं. १८२२) बनीठनी का आयुमान लगभग ७० वर्ष का सिद्ध होता है और यह तथ्य भी विरूपित हो जाता है कि आश्रयदात्री रानी ब्रजकुंवरी से उम्र में बड़ी यह दासी बनीठनी थी अत: इस भ्रांति का निराकरण शिलालेख के पद ''रसिक बिहारी की सामरि'' से स्वत: ही हो जाता है कि बनीठनी जी के गुरु रसिकबिहारी नामक संत थे जो स्वामी श्री रसिकदास जी की शिष्यपरम्परा के थे। हमने इसे पूर्वोक्त प्रकार से स्पष्ट कर दिया है। अस्तु; वि. सं. १८१४ आश्विन शुक्ला ११ को राजपाट-गृहस्थादि से विरक्त होकर नागरीदास जी श्रीधामवृन्दावनस्थ नागरीदास घेरे नामक साधना-स्थल पर आ गये थे तथा वहाँ वे निम्बार्कीय-निकुंज रसोपासना पद्धति के अनुसार सहचरी भाव की रसिकोपासना में तल्लीन हो गये । वे परमगुह्य सखी-भावना से निकुंज-बिहारी-बिहारिणी लाडलीलाल प्रियाप्रियतमश्रीराधामन जू की नव-नव-भावोत्साहवत् प्रतिपल नवनव अष्टकालिक निकुंज केलि-सेवा में संलग्न रहते थे, उसी के अनुरूप काव्य-संगीत तथा चित्रात्मक साधनों से रसिक-आराधना का नित्यप्रति सत्संग होता था। विरक्तावस्था के इस वृन्दावनवास में उनकी निकुंजभावपरक सेवा परिचर्या में ''बनीठनी'' उनकी निकुंज-मंजरी की रूप में उनके साथ मृत्युपर्यंत रही क्योंकि वृन्दावनवास में ''बनीठनी'' जी का परमलक्ष्य भी निकुंज-परमानंद की ही प्राप्ति था जिसके लिये वह सहचरी-भाव से परमरसिक-संत नागरीदास जी की कृपाश्रिता अनन्य-सेविका बनी हुई थी। वृन्दावनवास के सेवा-सहयोगजनित साहचर्य से ही बनीठनी अत्यंत श्रद्धा और सम्मान से रसोपासना क्षेत्र में अद्यावधि कीर्तित है।

बनीठनी कृत निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासनात्मक साहित्य

कृतित्व ही व्यक्तित्व की खरी कसौटी होता है। नागरीदास जी की निकुंज सहचरी बनीठनी जी के पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिपादित व्यक्तित्व की प्रामाणिकता इसी सिद्धान्त से परखी जा सकती है। नागरीदास जी परमवीतरागी, श्रीधाम वृन्दावन के प्रति अनन्य निष्ठावान, निकुंज--केलि-रत प्रियाप्रियतम की निकुंज सहचरी सेवा में प्रतिपल तत्पर रहने वाले निम्बार्कसम्प्रदायिक रसिकोपासक परमसंत थे, जिनकी निकुंज-परिचर्या में निकुज-मंजरी की हैसियत से सेवा संलग्न उनकी अनंग-सहचारिणी बनीठनी का वांछनीय व्यक्तित्व कृतित्व भी नागरीदास जी की मनोभावनानुकूल वृन्दावननिष्ठ सहचरी सेवा-भावना का ही रहा होगा तथा उसमें सहचरी सेवापरम्परानुसार निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासनात्मक सेवा की, प्रियाप्रियतम के परमगुह्य अंतरंग रत्यात्मक भावानुकूल निपुणता, रसिक काव्य-साधना, चित्रकारिता तथा संगीत साहचर्य की प्रवीणता सम्बंधित मूलाधार पूर्वोक्त योग्यता रही ही होगी। बनीठनी जी के ऐसे निकुंज-मंजरी के व्यक्तित्व-कृतित्व का परिचायक उनके द्वारा विरचित निकुंज केलि परक रसोपासनात्मक पद-साहित्य है, जिसमें नागरीदास जी की मनभावन निकुंज-रहस्यात्मक सांगोपांगिक निम्बार्कीय रसोपासना निहित है तथा जो बनीठनी जी के गुरु तथा गुरनामात्मक उपास्य 'रसिक बिहारी' के नाम से रचित एवं नागर समुच्चय से नागरीदास जी के पदों के साथ विशेप रूप से उत्सवमाला - पदमुक्तावली ग्रंथों में संकलित किया गया है।

बनीठनी जी ने भी उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना का वर्णन किया है। युगल के जन्मोत्सव, राधाकृष्ण के प्रीति प्रसंग, सांझी लीला, राधाजी का मान, अभिसार, विरह, संयोग सुरति, आदि के सरस रागबद्ध मारवाड़ी भाषा की अनूठी छटा से युक्त पद निम्बार्क परम्परावत् हैं।

श्रीकृष्ण जन्म-उपलक्ष्य वर्णित नंदमहोत्सव का अत्यंत आनंदायक मंगलाचार द्रष्टव्य है :-

कान पड़ी न सुणी जै नंद घर आजैं ।
घुरैं निसाण घणां मंगलमय जाणैं नभ भादौं घण गाजैं ॥
गोपी गीत गावती आवैं चालतां घणी छवि छाजैं ।
गोकुल रा गलियाँरा चहुवां बहुवां मझोल बाजैं ॥
स्याम वरण सुत जायौ राणी रूप अनूपम राजैं ।
होसी 'रसिक बिहारी' नांव यांरो अबही मदन वदन लखि लाजैं ॥ (उत्सव माला ९)

प्रियाजी श्रीराधाजी के जन्मोत्सव पद भी इसी प्रकार अत्यंत भावनात्मक हैं :-

(१) हो छै वृषभान रैं घर लाखां री वधाई आज । कुँवरी लाडिली जनम लियौ छै मोहन रैं सुखकाज ॥
हुलरावै मंगल गावै ढाढनि लीयां सुघर समाज । रसिक बिहारी मन आनंद हुयौ, प्रगटी निज सरताज ॥
(२) हो छै वृषभान घर आनंद रली वधावणौं । जनमी राधा वृजसुखसाधा निरख-नैंना सुख पावणौं ॥
आंगण ग्रह में भीड़ हुई छै आज कौ दिवस सुहावणौं । प्रगटी छै रसिक बिहारी की जोड़ी हुयौ मनोरथ भावणौं ॥
(उत्सव माला २०-२१)

मुरली वारै व्रजविहारी श्याम के प्रति विरहासक्तिपूर्ण अनन्य-प्रेमजन्य उन्माद तथा व्याधि की करूण अभिव्यंजनाएं हुई हैं; निम्नोक्त पद में व्रजभाषा का भी मारवाड़ी के समान ही आधिकारिक प्रयोग हुआ है :-

मुरली वारौ मोहनां वहि कहि हेली कहां पाऊँरी ।
घर वन मन लागै नहीं हौं बावरी भई कित जाऊं री ॥
सिथिल अंग अंग पग थर हरैं हौं उठि उठि कैं मुरझाऊँ री ।
रसिक बिहारी बनवारी विन, कइसै जीव जिवाऊँ री ॥ (पदमुक्ता. ५९२)

श्रीराधाजी का अभिसार, मान और तदनंतर श्रीकृष्ण द्वारा उनका आह्लादन परम्परागत रीतिकाव्यात्मक है। नेत्रों के सूक्ष्म - हावभावों की रहस्यात्मक व्यंजना से प्रकट परकीया गमन के प्रति रुष्ट मानिनी खंडिता नायिका के उपालंभ सम्बंधित भाव निम्न पद में सुललित-सुमधुर मारवाड़ी भाषा की रागात्मक शैली में द्रष्टव्य है :-

(१) रतनाली हो थारी ऑखड़िया । प्रेम छकी रसवस अलसांनी जांणि कंवल री पांखड़ियाँ ।
सुंदर रूप लुभाई गति मति, होई गई ज्यों मधु मांखड़ियाँ । रसिक बिहारी वारी प्यारी कौंण बसी निस कांखड़ियाँ ॥
(२) मोहन जी म्हारै थे कांई हठि लाग्या छोजी । जावां द्यौ घर, छोडौ छेहड़ौ, रस वातां पाग्या छोजी ॥
आंख्यां थाकी छै रतनाली, सारी निस ग जाग्या छोजी । रसिक बिहारी प्यारा म्हानैं थें, औरां सूं अनुराग्या छोजी ॥
(पदमुक्तावली- ४८८/९९)
(३) उणींदा छै जी रातरा । वैण सिथल अरु नैण झुक्या ही आवै लगि बैठा परभात रा ।
पलका पीक अधर फीकैं रंग रस अलसाया रातरा । रसिक बिहारी प्यारी पूरणकरी मदन देव री जातरा ॥ (३२ वही)

निम्बार्कीय रसोपासनात्मक परम्परानुसार रसिकविहारी श्रीकृष्ण द्वारा प्रिया जी का आह्लादन उनके प्रति सर्वोपरि-भावना तथा स्वकीयात्व की सहज-स्वीकृति का प्रतिपादक है; निम्नोक्त पद में व्यवहृत 'सालूड़ा वेस' की लोक-परम्परा श्रीराधा को व्याहता नायिका प्रतिपादित करती हैं :-

प्यारी जी रा सालूड़ा मैं आवै छै सुगंधी रूड़ी वास। अंग मरगजी गंध लुभाया भंवर भवैं आसपास ॥
लटपटै वेस आणि ऊभा रह्या आंगण कुंज निवास । रसिक बिहारी पवन दुरावै खासा होय खवास ॥ ५०७॥

दंपति के निकुंज-केलि-विलास के पद भी अत्यंत रीत्यात्मक तथा रतिरसपूर्ण रहस्यात्मक हैं; जिनमें श्रृंगारिक भावों की हावभावपूर्ण मधुर चेष्टाएं सरस वन पड़ी हैं :-

(१) तो रंगीली वाजी लागि रही छै नैणां मैं । जांणी कांम कटांछांहीं का देखिदांव दैणां मैं ॥
कांपै अंग अनंगरंग सुर भंग हुयौ बैणां मैं । रसिक बिहारी मन फूलबढ़ी छै हारजीत सैणां मैं ॥ ५०८॥
(२) रंगि रह्या जुगल रूप रंगमाहीं । कुंज महल मैं दर्पण साम्हैं दियां रहै गलबाहीं ॥
कदैक संभ्रम है स्यांमा रै नेडै स्यांम छतांहीं। कदेक रीझि रहैं रसिक बिहारी देखि देखि पड़छांही ॥ ५००॥
(३) बिनु दुकूल वैठे परजंक । कमल नैन अंग अंग छवि निरखत प्यारी भरै जु अंक ।
धन्य धन्य पिय मांनि अपनपौं ज्यों निधि पायौ रंक । रसिक बिहारी यह सुख विलसत तहां निपट निसंक
(पद. मु. ३४)

निकुंज - केलि विहार की सहचरी-भावपरक दर्शनाभिलाषा की अभिव्यंजनाएं भी हुई हैं; ऐसे रति विलास प्रसंगों

में जुगल तत्व का दाम्पत्य निरन्तर चिन्तनीय रहा है :-

(१) **कुंज पधारौ रंग भरी रैंन । रंगभरी दुलहनि रंग भरे पिय स्यांम सुंदर सुखदैंन ॥**
रंगभरी सैंनीय रची जहाँ रंग भर्यो उलहत मैंन । रसिक बिहारी प्यारी मिलि दोऊ करौ रंगभरी सैंन ॥ ४८० ॥

(२) **आज सखी रंग महल मैं रंग भरी रातड़ली हो सुहाई । सेजड़ल्याँ रंगमगि रह्या दंपति, जालरंध्र जहां आई जुन्हाई ॥**
नहिं सुरझै तनमन आनंद मैं, सघली नैंन विहाई । रसिक बिहारी प्यारी प्राण सूं मनमांनी निधि पाई सुखदाई ॥ ५६० ॥

ब्रज-वृंदावन नित्यबिहार तथा निकुंज केलि बिहार की उत्सवपरक दंपति-रसलीलाओं के भी सांगोपांग चित्ताकर्षक वर्णन हुये हैं। होरी-हिंडोरा-फूलडोल-फाग के मनोहारी वर्णन मारवाड़ी भाषा में अत्यंत सरस रागात्मकता सिद्ध हैं, तटस्थ-भाव के सहचरी-सुख से हिंडोरा के भावात्मक-आनन्द में मन का झूमना-झोटा खाना दंपति के निकुंज-हिंडोरे प्रसंग में दर्शनीय है; तत्सुख सुखित्व का यह निकुंज रहस्यात्मक प्रतिपादन अनूठा हुआ है :-

हिंडौरै हेली रंग रह्यौ सरसाय । हौं तो वारी जी वारी गई देखि, हिंडौरै हेली रंग रह्यौ सरसाय ॥
झूलनि मैं झुकि झूमि रह्या पिय, प्यारी जी रौ रूप लुभाय । भीजैं तन तरवर चूवैं लागा ,
गलबांहीं लपटाय । रसिक बिहारी जी रो झूलबौ म्हारां मन मैं झोटा खाय ॥

(उत्सवमाला २४८)

ब्रजकुँवरी बांकावती जी ने अपने अंत:पुर की दासी बनीठनी को अभीष्ट निकुंज-मंजरी की योग्यता के लिए उसे संगीत-काव्य-श्रृंगारशास्त्र का विशेष ज्ञान करवाया था। पूर्वोक्त प्रसंगानुसार संगीत गायन में विशिष्ट अभ्यास का उल्लेख कर आये हैं। श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के चरण सान्निध्य में बनीठनी को संगीत निर्देशन मिलना भी संभावित है। गीतामृत-गंगा की रागात्मक मुक्तक-पद्धति ब्रज तथा मारवाड़ी भाषा की समन्वित परम्परा का अनुसरण बनीठनी जी के इन पदों में स्वत: प्रतिपादित है। निकुंज केलि परक पावस बिहार के चित्रोपम पद में संगीत का अद्भुत सांमजस्य बनीठनी के इसी मोहक व्यक्तित्व का परिचायक है :-

पावस रितु वृंदावन की दुति, दिन दिन दूनी दरसै है - छबि सरसै है ।
लूम झूम सावन घनो घन - बरसै है ।
हरिया तरवर सरवर भरिया, जमुनां नीर किलौलै है - मन मोलैं हैं ।
प्यारी जी रो बाग सुहावणो - मोर बोलै है ।
आभा आभा बीज चमंकै जलधर गहरौ गाजै है - रितु राजै है।
स्यामा सुर मुरली रली - बन बाजै है।
रसिक बिहारी जी रौ भीज्यौ पितांबर प्यारी जी री चूनर सारी है - सुखकारी है ।
कुंजां कुंजां माहिं झूलरिया यौं पिया पिय - राधा प्यारी है ॥

(पदमुक्ता ३५)

बनीठनी जी कृत इन पदों में निम्बार्कीय रसोपासनात्मक निकुंज-केलि बिहार परक दंपति की सहचरी सेवा स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुई है; 'सुख रंगी निरखत नैंन सिरावत' तथा 'बतियां सुनत सुख पावत' से निकुंज-मंजरी बनीठनी जी का निरपेक्ष भाव का दर्शनानंद प्रकट हुआ है :-

(१) **दंपति रंग महल मधि गावत ।**
तांनन मैं हाँ हाँ न न की बतियां सुनत सखी सुख पावत। कबहुँक अधरनि अधर छुवा कैं मंद मंद मुसकावत ।
विवस होय मोहन प्यारी कूं भुजभरि उर लपटावत । श्रीरसिक बिहारी कौ सुख रंगी निरखत नैंन सिरावत ॥

(२२ पदमुक्तावली)

(२) **सुरंगी सेजां रगमग रह्या सुख सैंण । हारां उरझ्या हार हियारा, नैंणा उलझ्या नैंण ॥**
मनमथ अमल अगाधा बोलै आधा आधा बैंण । रसिक बिहारी प्यारी मिलि आनंद मैं सोहत बितई छै रैंण ॥

(उत्सवमाला २२२)

नागर समुच्चय में ऐसे लगभग शताधिक पद, रसिक बिहारी नाम से बनीठनी जी कृत संकलित हैं जिनसे उनका निकुंज-मंजरी विशिष्ट विमोहक वर्चस्व प्रामाणिक रूप से प्रतिपादित है। निकुंज-पद-गायन और सृजन की रसिक सेवा में तल्लीन नागरीदास जी इस अनंग-सहचारिणी निकुंज-मंजरी बनीठनी जी का व्यक्तित्व चिरस्मरणीय रहेगा ।

सुंदर कुँवरी जी का जन्म महाराजा राजसिंह जी की द्वितीय पत्नी महारानी ब्रजकुँवरी जी बांकावत जी की पवित्रकुक्षि से वि. सं. १७९१ में हुआ था । आप नागरीदास जी की सौतेली बहिन थीं, जिन्हें ब्रजकुँवरी जी ने पांचवर्ष की अवस्था में ही श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्रीवृन्दावन देवजी से निम्बार्क-संप्रदायी मंत्र-दीक्षा दिलवाई थी, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने **'मित्रशिक्षा'** ग्रंथ में किया है :-

'' श्रीवृंदावन प्रभु जिनकी दासित छाप । लही वालवय में तवही उभै भाग अमाप । + श्री सर्वेश्वर शरण प्रभु दिय, सुभेव निज गोप। स्थल सलेमावाद की हौं दास्यानुज दासी।'' तथा इसी ग्रंथ के निम्न कवित्त में उन्होंने निम्वार्काचार्य पीठ और अपने उपदेष्टा गुरु श्रीवृंदावन प्रभु का विलक्षण वर्चस्व भी प्रतिपादित किया है :-

भक्ति मुक्ति ठाम श्री परशुराम देव जू की गादी है सलेमाबाद तहां पाप कांपहीं ।
कोटि कोटि जन्म सुकृत उदय तातैं पावै महाभागी जन सेवत सजापहीं ॥
जहाँ कलिकाल के आंधियारे तिमिर हर वृंदावनदेव जू प्रकट प्रभु आपही ।
दीन कैं दयाल मोसी पतित निहाल कीनी लीनी अपनाय अव बंदौ यहि छापही ॥

श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी आचार्य गोविन्दशरण देव जी तदनंतर श्रीसर्वेश्वरशरण जी की भी आप पर पूर्ववत् कृपा रही है; पीठ की इत्तिलाक वहियों तथा पत्राचारों से सुंदर कुँवरी जी का निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वरों से तीन पीढी पर्यंत सम्वन्ध रहा है। अत: मिश्रवंधुविनोद में इन्हें राधावल्लभीय बताना भ्रामक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में ऐसी महान कवयित्री का नामोल्लेख करना भी भूल गये जिन्होंने रीतिपरम्परावत निम्बार्क रसोपासना के १२ ग्रंथों की रचना की थी जिनमें नेहनिधि, प्रेमसंपुट, रसपुंज गोपी माहात्म्य तथा २७९६ छन्दों का विशद काव्यग्रंथ 'मित्रशिक्षा' अत्यन्त प्रसिद्ध है। वि. सं. १८२२ में राघौगढ़ के खींची वलवंतसिंह जी से आपका शुभ विवाह हुआ था।

सुदरकुँवरी जी में अद्‌भुत काव्यप्रतिभा थी। आपने निम्बार्क-संप्रदाय की परम्परानुसार दंपति - श्रीराधाकृष्ण की व्रजविहार-निकुंज विहार लीलाओं का रीतिसिद्ध सरस वर्णन किया है जिसमें आपकी सखी-भाव की निकुंज-रसोपासना का भावपूर्ण प्रतिपादन हुआ है। 'मित्रशिक्षा' में आपने निम्बार्क संप्रदाय का इतिहास, सिद्धान्त, उपासना पद्धति, गुरु - महिमा, मंत्र-दीक्षा आदि का महत्वपूर्ण विवेचन तो किया ही है साथ ही यहाँ आपकी परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधाजी के प्रति सखी-भाव की विशिष्ट उपासना भी प्रतिपादित हुई है :-

रमा विष्णु लहि भेव पहिचाने प्रेम प्रबन्ध । उनसौं तो अनरिण न है कृष्णचंद नंदनंद ॥
गतिमति हारे रहत हैं जिनसौं श्रीकृष्ण । हित चित्त उन आधीन नित परम प्रेम के तृष्ण ॥
सौ तौ त्रयगुण सृष्टि तैं हैं न्यारिय सृष्ट । जो श्रीराधा परिकर सु श्रीकृष्ण कौ इष्ट ॥

निम्बार्क-सम्प्रदाय का रसोपासनात्मक वैशिष्ट तथा सर्वोपरि श्रीराधातत्व का प्रतिपादन इनके ग्रंथों में अत्यंत सरलरूप में किया गया है :-

या परिकर की सृष्ट को निगमअगम कहिभेव । सो निम्वादित्य संप्रदा प्रगटत विश्व कि सेव ॥
सो निम्वादित सम्प्रदा नित परिकर सजूप । या समाज ही मैं सदा जुगल बिहार अनूप ॥
श्रीनंदनंदन कृष्ण ए परम प्रभू सर्वेश । जिन श्रीराधा तैं विनय लहिय सुकृपा विशेष ॥
तब यह प्रेमाभक्ति की संप्रदाय प्रगटाय । जो श्रीराधा भेव की खान अनन्य सुभाय ॥

रसपुंज ग्रंथ में आपने वेणुवादन त्रिभंगीलाल व्रजविहारी श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधा और गोपियों का सहज-भाव से पुष्ट व्रजरसोपासनात्मक प्रेम का सरस तथा आलंकारिक वर्णन किया है। श्रीराधाजी का लाजरूपी जहाज श्रीकृष्ण प्रेमामृत-समुद्र की उत्ताल तरंगों से डगमगा रहा है; नंद नंदन वंशीधर की त्रिभंगी छटा से प्रभावित श्रीराधा की मनोदशा का यह चित्रात्मक वर्णन द्रष्टव्य है जिसमें सांग-रूपक की छटा अनूठी बन पड़ी है :-

स्यामरूप सागर में नैन वारपार थके, नचत तरंग अंग अंग रगमगी है ।
गाजत गहर धुनि वाजत मधुर बैंन, नागिनि अलक जुग सीधै सगपगी है ॥
भँवर त्रिभंग ताई पान पलुनाई तामैं, मोती लालन की जोती जगमगी है।
काम पौंन प्रवल छुकाव लोपी पाज तातैं, आज राधे लाज की जहाज डगमगी है ॥

रूपकातिशयोक्तियों से परिपूर्ण इस रीतिपरम्परागत रूप-सौन्दर्य वर्णन में गोपियों की मनोदशा का उन्माद कारी चित्रोपम चित्रण भी देखते ही वनता है :-

गागर गिरी है केऊ, सीस ऊघरी है केऊ, सुधि बिसरी है तैं लगी हैं द्रुम डारि कैं ॥
डगमग है कै भुजधारी गर है कै काहू, बैठ गई कोऊ सीस मटकी उतारि कैं ॥
मैंन सरपागी कोऊ घूमन है लागी कोऊ, मोती मणिभूषण उतारें डारें वारिकैं ॥
ऐसी गति हेरि इन्हें वार कहें टेरि टेरि, मदन दुहाई जीती मदन मुरारि कैं ॥

इसी प्रकार प्रेमाभिव्यंजनाओं में नये कथाक्रम संयोजित कर उन्होंने युगल प्रेम में नई उद्‌भावनाओं की अपनी मौलिक शैली का परिचय दिया है। पतंग के माध्यम से नवीन वक्रोक्तिपूर्ण कथानक की सृष्टि करती हुई निम्बार्कीय कवयित्री सुंदर कुँवरी जी ने श्रीकृष्ण द्वारा कुपित श्रीराधिका जी के मानमनावन प्रसंग का नाटकीय वर्णन करते हुये श्रीराधाजी के सर्वोपरि आह्लादन तथा उनके स्वकीयात्व के प्रति श्रीकृष्ण की सहज-स्वीकृति का मनोहारी चित्रण किया है। श्रीकृष्ण की पतंग श्रीराधाजी की अटारी पर अटक जाती है। श्रीराधा उसे तोड़कर यशोदा के पास चली जाती है। श्रीकृष्ण आकर अपनी गुड़ी के लिए पूछताछ करते हैं; प्रेमी श्रीकृष्ण के क्रोध का वहाना भी प्रिया जी के नेत्रों को घूंघट - पट में जिसप्रकार चंचल बना देता है; वह छवि अवलोकनीय है :-

लौने दृग कौने पलकानन छुवत वालि, झीनैपट देखि पिय दृग गति पंग है ।
पौन के परस होत हलचल घूंघट ज्यौं, त्यौं ही त्यौं विवश छटा सांवरे के अंग है ॥
आनकान लागि मन जानि कहै प्रान प्यारी, कैसे एक हालै लहै अंचिरज रंग है ।
मुख कै दुकूल झूल झूल अकुलानै उत, सबहिन जानैं ए तौ हुनर फिरंग है ॥

श्रीराधा जी श्रीकृष्ण द्वारा पतंग छुपाने का दोष लगाने पर कुपित हो जाती हैं जिससे श्रीकृष्ण श्रीराधाविरह से व्यथित होकर मनमंजरी सखी को राधा-भवन में भेजते हैं, अन्ततः श्रीकृष्ण ही श्याम सखी बनकर श्रीराधाजी को मनाने जाते हैं; उरोज रहित वक्षस्थल से उनकी जब पहिचान हो जाती है तो वे श्याम मनावन की रहस्यात्मक उक्ति देते हुये कहते हैं श्रीकृष्ण ने विश्वास दिलाने को मुझे दो निशानियाँ श्यामरंग और वंशी दे दी थी और उन्हीं के बदले उन्होंने मेरे दोनों उरोज अपने पास रख लिये हैं? नायिका श्रीराधा में परप्रीति कातरता जागृत कर मानमनावन क्रम में यह विचित्र उक्ति पूर्ण वक्रोक्ति कवयित्री की रीतिसिद्ध काव्य कला का सुंदर उदाहरण है :-

इनहि बुलावन काज कह्यौ मोहि जानि सयानी। तब मैं इनपैं पता ल्यान द्वै लई निसानी ॥
इक वंशी अरु श्याम बरन ए द्वै हौं ल्याई । तिहिं बदलै दुहु मो उरोज उनपै धरि आई ॥

आपके पदों में भी महाकवि नागरीदास तथा गुरुभाई आनंद घन जैसा काव्य सौष्ठव है। सुंदरकुँवरी भी अपने गुरु ग्रंथ श्रीवृंदावनवाणी-गीतामृतगंगा से प्रभावित है; उनके ग्रंथों में उभय-रसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना परम्परा तथा मारवाड़ी-पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा शैली का उल्लेखनीय प्रभाव रहा है।

छत्रकुँवरी जी :- ब्रजकुँवरी जी बांकावती, सुंदर कुँवरी जी तथा बनीठनी की काव्य परम्परानुसार नागरीदास जी की पौत्री महाराजा सरदार सिंह जी की पुत्री छत्रकुँवरी जी (सिरताज कुँवर) ने भी सरस काव्य की रचना की है। उनके रीतिसिद्ध 'प्रेमविनोद' ग्रंथ में निम्बार्कीय दंपति विलास की रसलीलाओं का परम्परागत वर्णन हुआ है; प्रिया प्रियतम के चौसर का प्रसंग अवलोकनीय है :-

बाढ़ी चितचाह खेलत उमाह भरै, दसा प्रेमपूर छिल अंग हरसत हैं ।
प्रिया दांव देत पिय झूंठे ही रूंगट कहैं, गहैं पानि रिस मिस परसत हैं ।
चौपर की बाजी माहि बाजी लागी गतिमति की, चाल की चहुल मन मौज सरसत हैं ॥
नैंनन में नैंन मिलै चरचा चरचा मैं रीझि, रीझवार रीझ तहां रंग बरसत हैं ॥

छत्रकुँवरी जी का विवाह वि. सं. १८३१ में कोटड़े के खींची गोपालसिंह जी से हुआ था; इससे पूर्व उन्होंने महाकवि नागरीदासजी के साथ नागरी कुंज वृंदावन में भी वास किया था। आप श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी की शिष्या थीं; इसी ग्रंथ में उनकी दीक्षा का उल्लेख है। किशनगढ़ शहर के सदर बाजार में आपने विशालकाय 'बाई जी का मंदिर' बनवाया था जो अद्यावधि इसी नाम से प्रख्यात है। सनोंदिया गांव की जागीर सम्बंधित बाई जी की सरकार के हुक्मनामों में आपका रेखता में अनूदित दूसरा नाम 'सिरताज कंवर' भी था; ऐसा उक्त मंदिर के पट्टों परवानों में उल्लेखित है।

आनंदघन :-

महाराजा राजसिंह जी तथा महारानी बांकावती जी का समस्त राजपरिवार इस प्रकार श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी से दीक्षित निम्बार्क-साम्प्रदायिक रीतिसिद्ध कवियों का रहा है; इसी प्रकार नागरीदास जी के गुरुभाई एवं कवि मित्र आनंदघन भी श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी से दीक्षित निम्बार्कीय रीतिसिद्ध कवि थे जिन्होंने कृपाकंद, वियोगबेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रजबिलास, सरस बसंत, अनुभवन चंद्रिका, रंगबधाई, प्रेमपद्धति, व्रषभांनपुर महिमां,

गोकुल गीत, नाममाधुरी, गिरिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावना प्रकाश, कृष्णा कौमुदी, धाम चमत्कार, प्रियाप्रसाद, वृंदावन मुद्रा, व्रजस्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहली, रसनायश, गोकुल विनोद, व्रजप्रसाद, मुरलिका मोद, मनोरथ मंजरी, व्रज त्यौहार, गिरिगाथा, व्रजवर्णन, छन्दाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त संग्रह स्फुट, पदावली, परमहंस वंशावली आदि निम्बार्कीय परम्परा का वृहत् साहित्य लिखा है जिससे प्रतिपादित है कि आनंदघन श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी द्वारा उपदिष्ट निम्बार्कसाम्प्रदायिक रसोपासना के कवि थे; जिन्हें नागरीदास जी का साहचर्य पूर्ण राज्याश्रय प्राप्त था; उन्होंने भी श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी से ही संगीत- काव्य एवं रसोपासना का निर्देशन प्राप्त किया था जो कि पूर्व चित्र प्रसंग में भी उल्लेखित है। आनंदघनजी 'अनघन' नाम से भी गुरु परिकर में प्रसिद्ध रहे हैं; आप श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी को अपने गुरु रूप में सर्वश्रीसंयुक्त, पृथ्वीमंडल का शिरोमणि तथा श्रीधामवृंदावन तुल्य महिमान्वित किया है; जो निम्नपद में 'वृंदावन' शब्द के श्लेषार्थ से प्रतिपादित है :

जगबोहित मोहित प्रगट, हरिविनोद निजधाम । अवनी मनि श्रीयुत सदा वृंदावन अभिराम ॥
बिसे बीस महिमा तिन्हें ताहि कोस है बीस । सदा बसौ नीकैं लसौ कृष्ण ईस मो सीस ॥

(परमहंस वंशावली, घना.कृत पृ. ६१० – छन्द ४४-४५ सं. विश्वनाथमिश्र)

हिन्दी साहित्य में आनंद, आनंदघन तथा घनानंद इन तीन नामों के प्रति मत वैषम्य बना हुआ है। डॉ. ग्रियर्सन दि माडर्न वनक्यिूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान ग्रंथ के पृष्ठ ८२ पर आनन्द और आनंदघन का अपार्थक्य स्वीकार किया है तथापि मिश्रबन्धु विनोद (पृ. ४५८) तथा नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विवरणों में (सं. विश्वनाथमिश्र - पृ. ५२) इनमें पार्थक्य बताया गया है। डॉ. ग्रियर्सन ने आनंदघन को हिसार के कायस्थ कुल का माना है तथा इन्हें मुगलबादशाह मुहम्मदशाह रंगीले का मीर मुंशी भी स्वीकार किया है; जीवन के अंतिम काल में आपका वृंदावनवास तथा नादिरशाही आक्रमण में आपका मारा जाना भी उल्लेखित है। (पृ. ९२ सं. ३४) निम्बार्क-साम्प्रदायिक जनश्रुतियों में इनको नृप-सांवतसिंहजी का दीवान समझकर आक्रमणकारियों द्वारा 'जर' (दौलत) मांगने पर सहज भाव से इनके द्वारा मुट्ठिभर व्रज 'रज' देने पर कुपित आत्याचारियों द्वारा तलवार से काट काट कर इनका दर्दनाक प्राणांत करने का प्रसंग प्रसिद्ध है। जिसे बाबूराधाकृष्णजी ने भी वर्णित किया है। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले का जीवनकाल वि. सं. १७७६ से १८०५ तक था तथा नादिरशाह का आक्रमण वि. सं. १७९६ में हुआ था जो भारतीय इतिहास सम्मत घटनायें हैं। मिश्रबन्धुओं ने आनंदघन का यह जीवन वृत स्वीकार करते हुये भी आनंदघन और आनंद में पार्थक्य प्रतिपादित किया है तथा आनंदघन जी का रचनाकाल वि.सं. १७१५ माना हैं। इसी प्रकार दिल्ली वाले तथा वृन्दावन वाले घनानंद का पार्थक्य भी प्रचलित है। जयलाल कवि द्वारा प्रतिपादित वृंदावन वाले घनानंद जी ही कृष्णगढ़ के नागरीदास जी के समसामयिक राज्याश्रित कवि रहे हैं 'छप्पन भोग चन्द्रिका' ग्रंथ में आनंदघन की यही मान्यता स्वीकार की गई है जो नागरीदास जी के जीवन चरित्र लेखक बाबूराधाकृष्णजी द्वारा भी परिपुष्ट की गई है (राधाकृष्ण ग्रंथावली - पृ. १७२) इसीलिए रामचन्द्रशुक्ल ने नागरीदास सम्बद्ध आनंदघन जी का रचनाकाल वि. सं. १७८० से १८१९ तक माना है (हि. सा. इति. पृ. ३८०) जिसे विश्वनाथ मिश्र आदि घनानंद विषयक शोध लेखकों ने भी स्वीकार किया है।

आनंदघन ने 'परम हंस मुक्तावली' में स्वयं को श्रीवृन्दावन देवाचार्य का शिष्य होना स्वीकार किया है, 'भोजनादि धुन' के पद में आपने वृंदावन देवजी को 'चातक रसिकों का आनंदघन' कहा है, इनके ग्रंथों में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के उत्तराधिकारी श्रीगोविन्ददेवाचार्य जी का भी नामोल्लेख हुआ है तथा 'प्रिया प्रकाश' में आपने अपने सखी नाम 'बहुगुनी सखी' से श्रीस्वामिनी प्राधान्य निम्बार्कीय निकुंज-केलि सेवा का प्रतिपादन किया है :-

राधा की हौं चौकस चेरी, सदा रहति घर बाहरि नेरी ।
नीकौ नांव बहुगुनी म्हेरौ, बरसानौं ही सुंदर खेरौ ।
राधानांव बहुगुनी राख्यौ, सोई अरथ हिय अभिलाख्यौ।

(प्रिया प्रकाश पृ. २५)

आनंदघन कृत ग्रंथों से उनकी उभयरसात्मक निम्बार्कीय रसोपासना का सविस्तार प्रतिपादन किया जा सकता है। आनंदघन कृत ग्रंथावलियों तथा नागरीदास कृत वाणी ग्रंथों के नामरूपात्मक शीर्षकों में परिलक्षित अद्‌भुत साम्य उनके उक्त ग्रंथों में निहित लीला वर्णनों के अंतर्साक्ष्यों से भी सप्रमाण प्रतिपादित किया जा सकता है तथापि विषय विस्तृति की विवशता से यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि दोनों ही कविमित्र निम्बार्क साम्प्रदायिक रसोपासना के

महाकवि थे और उनका यह रचना साम्य दोनों पर एक ही गुरु श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के वरद-हस्त द्वारा उपदिष्ट - वृन्दावननिष्ठा का अपूर्व प्रभाव था। दिल्ली, किशनगढ़, रूपनगढ़, सलेमाबाद, जयपुर, व्रज तथा वृंदावन में निरन्तर दोनों का मित्रवत् सहचरण उनके एकात्मक व्यक्तित्व कृतित्व का रहस्य था।

नागरीदास जी के दरबारी कवि तथा चित्रकार भी निम्बार्क-सम्प्रदायी रसिकोपासना में पूर्ण पारंगत तथा उसी में तल्लीन रहे हैं; उनकी यह निम्बार्क-रसोपासनात्मक मानसिकता रसिक वर्य्य नागरीदासजी के अनवरत-सत्संग-साहचर्य से ही साधित हुई थी। यह तथ्य नागरीदास द्वारा वि. सं. १७९९ में रचित 'श्रीमद्‌भागवत पारायण विधि प्रकाश' नामक ग्रंथ से प्रमाणित है जहाँ दरबारी काव्य परम्परानुसार 'समस्या पूर्ति' का निम्न प्रसंग किया गया है :-

द्वादस संकथहि हैं हरि कैं तन, कृष्ण कथा जग पांवनकारी ।
जो ब्रजकेलि करी सु कहो, आछैं लागत वैष्णव श्रौननि प्यारी ॥
क्यौ कहैं सर्व गोपी जनवल्लभ, क्यौं मुरलीधर क्यौं गिरधारी ।
कैसैं वृंदावन मैं बिहरैं, अरु नाम भयौ कैसै कुंज बिहारी ॥ ७॥

इस काव्यात्मक समस्या पूर्ति के समाधान में नागरीदास जी के उक्त ग्रंथ में नामोल्लेखित सनावड़ हीरालाल, वैष्णव हरिचरनदासादि ने जो भागवतोक्त रसरूप दंपति के उभय रसात्मक नित्यविहार का निरूपण किया है; वह निम्बार्क सम्मत रसोपासना का प्रतिपादन ही है; जो निम्नोक्त कवित्त से सुस्पष्ट है :-

सर्द ससि पूरन उजास में रमत रास, माननी मनावैं हरि बांसुरी बजाय कैं ।
कानन में फिरैं सदा गौंहन नवेलिन कैं, प्यारी मुखचंद चारु रहत चिताय कैं ॥
बृज कौं बिहारी मनहारी पटहारी, जिन लीनौं वाम कर सैलवर कौं उचाय कैं ।
ऐसी सुधासानी निगमागम बखांनी, पुनि कहिये कहानी दधिदानि की सुनाय कैं ॥

ऐसे प्रसंग से तो यह भी प्रमाणित है कि नागरीदास जी ने स्वनिष्ठ निम्बार्कीय रसोपासना के व्यापक प्रचार के लिए दरबारी कवियों में भी अनन्य-निम्बार्कीय निष्ठा जागृत कर दी थी। समस्या पूर्ति के इन्हीं अंतःसाक्ष्यों में नागरीदास जी एवं उनके समस्त कवि कुल की अनन्य-भावनात्मक श्रीधाम वृन्दावन निष्ठा ही व्यक्त हुई है जहाँ गोकुल - केंद्रित श्रीवल्लभ संप्रदायी बालकृष्णोपासना का सांकेतिक प्रतिपादन भी नहीं किया गया है; जबकि दंपति श्रीराधाकृष्ण के नित्य वृंदावन बिहार केन्द्रित निम्बार्कीय रसोपासना का स्पष्ट प्रतिपादन द्रष्टव्य है :-

कीनौं उचार जिही छिन मैं, भजनानंद आनि छयो सुछयो है ।
श्री रसकेंद्र बिहारी जू की कथा, आसव प्याय दयो सो दयो है ॥
गाई सो पुरांननि में पाई निधि अनायास, यह भूमि छांडि हम कितहूं न जावैंगे ।
जमुना जल पान रु सनान श्री जमुना जी कौ रज कौ परसि प्रेम पुलकि सिहावैंगे ।
वृंदावन मांहिं सदा संतनि कैं बाहबल, दंपति चरित चारू सुनैंगे सुनावैंगे ।
रसिक बिहारी प्यारी कृष्ण कथा आनंद मैं, ऐसै ही बिताई समैं ऐसै ही बितावैंगे ।

अतः नागरीदास जी की निकुंज सेविका बनीठनी द्वारा इस कवित्त में परिपुष्ट निकुंज-केलिरत दंपति चरित्र की अंतरंग निम्बार्कीय-रसोपासना ही नागरीदास जी द्वारा अभीष्ट उपासना थी। निहालचंदादि दरबारी चित्रकारों की अनुपम चित्रकारिता के माध्यम से भी नागरीदास जी ने अपनी निम्बार्कीय रसोपासना के मूर्तरूपात्मक स्वरूप का लोकोपकारी प्रचार-प्रसार करवाया था, उनकी चित्रशैली का परम्परागत वही क्रम अद्यावधि उनकी अजर अमर निम्बार्कीय निष्ठा का विश्वविख्यात कीर्तिमान है।

निष्कर्ष :- वल्लभ- संप्रदाय में प्रचलित धारणा कि कविकृतियों में गुरु नामोल्लेख की परम्परा नहीं है; जो महाकवि सूरदास जी कृत गुरु वंदना 'भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो। श्रीवल्लभ नखचंद्र छटा विनु जगमांहिं अंधेरो' के प्रमाण से भ्रामक प्रतीत होती है। निम्बार्क संप्रदाय में आदिवाणी युगलशतक, श्रीमहावाणी, श्रीपरशुरामवाणी, श्रीवृंदावनवाणी गीतामृत-गंगा आदि नागरीदासवाणी से पूर्ववर्ती आचार्य कवि-परम्परा की वाणियाँ होने से भक्तकवियों की वाणियों से उनका स्थान उच्च और अतुलनीय है। वल्लभ-संप्रदाय में भी नागरीदास जी को इसी परम्परा से अष्टछाप कवि श्रृंखला में नवम स्थान पर माना गया है सो मेरे मतानुसार नागरीदास जी के महान मौलिक व्यक्तित्व कृतित्व के मूल्यांकन को कम करने वाला है क्योंकि वे तो निम्बार्क संप्रदाय के वाणीकारों की भक्त कविमाल के सुमेरु होने से उनका स्थान यहाँ 'प्रथम नागरीदास' का है; अतः मैं महाकवि नागरीदास जी के इसी सर्वोत्कृष्ट निम्बार्कीय वर्चस्व की वंदना करता हूँ।

ब्रजदासी - भागवत में श्रीमद्भागवत महापुराण का अवतरण

श्रीमद्भागवत पुराणोक्त भक्ति: - वेद, उपनिषद्, महाभारत-गीता, भक्ति सूत्रादि ग्रंथों में निरूपित परम्परागत कृष्ण भक्ति को सर्वग्राह्य एवं सर्वसुलभ बनाने के लिए भागवत पुराण में प्रेमाभक्ति-तत्वों के प्रतिपादन द्वारा वात्सल्य, सख्य, श्रृँगार आदि रसों के परिपाक से कोमल एवं रसमयी भाव-भूमिका निर्मित की गई जिससे श्रीकृष्ण के लौकिक एवं अलौकिक स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। भागवतकार ने भगवान श्रीकृष्ण को मानव कल्याणार्थ लीलावतारी परब्रह्म तथा प्रियतम आराध्यदेव के रूप में चित्रित कर भक्ति के क्षेत्र में अप्रतिम योग प्रदान किया। भागवत पुराण की इसी पृष्ठभूमि पर परवर्तीकालीन वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदायों की सरस प्रेमोपासना स्थिर हो सकी। भागवत पुराण का प्रेमाभक्ति विधान अत्यंत सरस और हृदय स्पर्शी है जहाँ वात्सल्य - सख्य एवं रति श्रृँगार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। अत: भागवत भक्तिशास्त्र का विश्वकोष माना जा सकता है जिसमें प्रेमाभक्तितत्व का बड़ा ही मार्मिक एवं सांगोपांग विवेचन किया गया है।

भक्ति के प्रधान दो भेद माने जाते हैं - (१) साधनारूपा जिसको वैध-भक्ति के नाम से व्यवहृत किया जाता है (२) साध्यरूपा जिसे प्रेमा, प्रेमलक्षणा, रागानुगा आदि नामों से अभिहित किया जाता है। दोनों में सेवा विधान अथवा वैध साधना साधन है और प्रेमतत्व साध्य है। भागवत में दोनों प्रकार के भक्ति साधनों का विस्तृत विवेचन किया गया है। भागवतकार ने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, आत्मनिवेदन, पादसेवन आदि नवधा-भक्ति तत्वों का प्रतिपादन किया है। महाभागवत प्रह्लाद यहां आत्मकल्याणार्थ नवधा भक्ति द्वारा भगवान विष्णु को रिझाने का उपदेश देते हैं (७/५/२३)। श्रवणभक्ति का माहात्म्य बताते हुये जड़भरत रहुगण को सत्संग द्वारा श्रवण लाभ करने का उपदेश देते हैं (५/१२/१२)। ब्राह्मण, मातापिता, गौ, गुरु आदि के पूज्य प्राणों का घातक महापापी भी कीर्तन-भक्ति से मुक्त हो जाता है तथा चांडाल एवं म्लेच्छ को भी इस मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है (६/१३/८)। कलिकाल में कृष्ण-नामोच्चारण ही विशेष रूप से कल्याणकारी है (१२/१३/५१)। स्मरणभक्ति से मनुष्य आवागमन से मुक्ति पाता है (१०/२/३७); पापात्मा अजामिल ने केवल अंतिम काल में नारायण का उच्चारण कर विष्णुधाम प्राप्त किया था। महाराजा अम्बरीष ने पाद-सेवा द्वारा ही भगवान को प्रसन्न किया था जिनके भक्तिबल के समक्ष महान तपस्वी दुर्वासा को भी परास्त होना पड़ा था। ध्रुव, प्रह्लाद, परीक्षित, द्रौपदी, अक्रूर, विदुर आदि भक्तों के उदाहरणों द्वारा भागवतकार ने यह स्पष्ट किया है कि कठिन परिस्थितियों में भी जो अडिग रहकर भगवान का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवन आदि करते हैं उनको निश्चय ही भगवत्कृपा-प्राप्ति होती है।

भक्ति के क्षेत्र में दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भावों का महत्वपूर्ण स्थान है। आराध्यदेव का सानिध्य प्राप्त करने के लिए भक्त अपने हृदय में उनके प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने लगता है फलत: उसे दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं रति आदि भावों का अवलंबन करना पड़ता है। भक्त हृदय में दास्य से अधिक सख्य में, सख्य से अधिक वात्सल्य में और सर्वाधिक रतिभाव में उसके आराध्य के प्रति प्रेमोद्रेक होता है। अत: भक्तिमार्ग में रतिभाव को सर्वोपरि समझा जाता है। भागवतकार ने राजा अम्बरीष के आख्यान में दास्यभक्ति का निर्देशन किया है तथा श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं में वात्सल्य, सख्य और रतिरस का परिपाक किया है। दानलीला, मानलीला, माखनलीला, गोदोहन लीला, चीरहरण लीला तथा रासलीला आदि लीलाएँ रतिरस पर अवलम्बित हैं। भागवत के दसवें-ग्यारहवें स्कंध में रति-भक्ति की महारसप्रदायिनी महारासलीला का वर्णन भागवतकार ने हृदय ग्राही ढंग से किया है। जो भक्त शुद्ध रतिभाव से भगवान में आसक्त होता है उसके प्रेम को भगवान दिव्य-प्रेम के रूप में स्वीकार कर उसे विशुद्ध आनन्द प्रदान करते हैं। भगवान ने कामासक्त गोपियों के प्रेमानुग्रह पर उन्हें योगमाया विधान द्वारा महारास का परमानन्द दान दिया है (वीक्ष्यरंतु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित:)। वेद कर्मकांड से अनभिज्ञ गोपियों का सरल हृदय शास्त्र मर्यादा, लोकलाज, परिवार-गृह-पति आदि का मोह त्याग कर तथा पातिव्रत धर्म की सीमा लांघकर, अनन्य प्रेमी परमानंद स्वरूप रसिकेश्वर श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित हुआ तो ज्ञान-ध्यान के समक्ष उनका प्रेमभाव विजयी हुआ और परमभागवत गोपियों को सर्वानंद की प्राप्ति हुई (११/१२/१३)। इसी परमानंद प्राप्ति के लिए ज्ञानी तथा कर्मयोगी अनेक प्रकार की साधनाओं का निर्देश करते हैं; परन्तु महारस की प्राप्ति तो भागवत-रस के रसास्वादन से ही संभव है। इसीलिए श्रीकृष्ण द्वैपायन भावुक भक्तों को परमानंद लाभ करने हेतु श्रीमद्भागवत-रससरिता में निमग्न होने का संकेत करते हैं। (१/१/३)।

भागवतोक्त भक्ति-प्रसंगों का ब्रजदासी जी ने अत्यंत सरल ढंग से प्रतिपादन किया है। परमभागवत प्रह्लाद जी के द्वारा निरूपित नवधा-भक्ति तत्वों का दोहे छन्द में निम्न अनुवाद द्रष्टव्य है :-

इहि सुनि कैं प्रहलाद जू, बोले बचन रसाल ॥ बिस्नु चरितननि कौं करैं, श्रवन भलैं सब काल ॥ २८॥
उन्हीं कौ कीरतन करैं, सुमरैं बेइ चरित्र ॥ अर्चन बंदन दास्य सख्य, सेवन चरन पवित्र ॥ २९॥

आत्म निवेदन जुक्त इह, नवधा भक्ति सुढार ॥ चित्त लगाय प्रांनी करै, सौ पढनौ सुपसार ॥ ३०॥

साधनरूपा नवधाभक्ति की प्राप्ति प्रसंग में प्रह्लाद जी द्वारा अनासक्ति पूर्ण वुद्धि, विरक्ति तथा सत्संग आदि की अनिवार्यता का भी प्रतिपादन हुआ है; भागवत के अनुरूप ही यह अनूदित प्रसंग वर्णित है :-

कहत भयै प्रहलाद जू, जे गृह में आसक्त ॥ जिन्ह इंद्री चंचल रहत, विषैंन में अनुरक्त ॥ ३६॥
तिन्ह की बुधि किहूँ कैं कहैं, अरु निज मन अनुभाय ॥ कवहुं हरि में लगत नहिं, निश्चल ह्वै ठहराय ॥ ३७॥
जे विषैंन में लगि रहै, प्रांनी दुष्ट कुपात ॥ वेदमार्ग में बंधि चलै, कुल म्रजाद में जात ॥ ३८॥
ज्यौं अंधरै के संग लगि, चल्यौ अंधरौ जाय ॥ तै हरि कौं जांनत नांहिं, मृरपता कैं भाय ॥ ३९॥
साधुचरन रज सीस पर, जब लौं रापै नांहिं ॥ तबलौं हरि पद कँवल मैं, बुद्धि थिर न ठहरांहिं ॥ ४०॥

इसी प्रकार षष्टम स्कंध में वासव द्वारा की गई विश्वरूप की ब्रह्म-हत्या के प्रसंग में नामभक्ति की महिमा का भागवतोक्त प्रतिपादन ब्रजदासी जी ने अत्यंत ही सरल शब्दों में किया है :-

नारायण कौं पूजि हैं, अश्वमेध अनुभाइ॥ जांसुं कैसोंहूँ हौंहिं अघ, तैं सबही मिटि जाइ ॥ ९॥
गुरु घातक द्विज घातक रु, गौ वध करता हौहिं ॥ पिति घाती घाती जननि, पुनि चांडाल जु कौहिं ॥ १०॥
जिहिं हरिनांम प्रभाव सौं, अतिहिं पवित्र ह्वै जांहिं ॥ जाही सौं तौ दीर्घ अघ, सब मिटि जाय पलांहिं ॥ ११॥

साधन भक्ति विधि मूला है तथा साध्य भक्ति में प्रेम का प्राधान्य होता है। शांडिल्य सूत्र २ के अनुसार ईश्वर में परम अनुरुक्ति ही प्रेमाभक्ति है नारदजी ने जिसे प्रेमरूपा तथा अमृतस्वरूपा कहा है जिसकी प्राप्ति से परमसिद्ध भक्त को सांसारिक विषय वासनाओं से अनासक्ति हो जाती है तथा वह योगी की भांति आत्मानंद का अनुभव करता है। भागवतकार ने प्रेमाभक्ति को परमधर्म कहा है तथा उन्होंने भगवान वासुदेव श्रीकृष्ण के प्रति उसी प्रकार की अहैतुकी भक्ति को भगवद् प्राप्ति का प्रमुख साधन बताया है (१/२/३); व्रजदासी जी ने भी प्रेमाभक्ति पूर्वक भागवतकथा के श्रवण का महत्व समझाते हुये श्रवण भक्ति का लोकग्राह्य प्रतिपादन किया है :-

हरि की कथा श्रवन बिच धारै ॥ हियै मध्य श्रीकृस्नं बिहारै ॥
ज्यांकी सकल वासना कामां ॥ दूरि करत हरि बसि हिय धामां ॥
है श्रीकृस्नं साध हितकारी ॥ बिरद भगत बच्छलता धारी ॥
उन्ह गुन श्रवन कीरतन सारा ॥ सबनि पवित्र करै निरधारा ॥
साधन की सतसंगति जु करै ॥ सुधा भागवत श्रवननि धरै ॥
हिय तैं करम बासनां जायै ॥ द्रिढ़ हरि भगति तबै सरसायै ॥

परम विमल हरि भक्ति सौं, जब ज्यांकौ मन हौय ॥ तबै संग संसार कौ, छूटि सहज सुप हौय ॥
अरु ज्यांकौ भगवांन कौ, ग्यान तत्व सरसाय ॥ ज्यांकी हिय की गांठि अरु, सब संदेह टलि जाय ॥
छीन हौहि सब करम तव, प्रभु कौ दरसन हौत ॥ छूटि संसारी विपत्ति तैं, ह्वै आनंद उदौत ॥
याकैं परमानंद सौं, बड्डे बड्डे मुनि साध ॥ वासुदेव भगवांन की, करहीं भगति अगाध॥
परम ब्रह्म करतार प्रभु, वासुदेव भगवांन ॥ तिन्ह भगति प्रभाव तैं, मन ह्वै सुद्ध प्रमांन ॥

भागवत में विशुद्ध प्रेमाभक्ति को ज्ञान-कर्म-स्वाध्याय-तपादि से श्रेष्ठ माना गया है - (११/१४/२०-२५) तथा निर्देश किया गया है कि भगवान् भक्तों के आधीन हैं तथा प्रेमाभक्ति से उन्हें सहज ही प्राप्त किया जा सकता है, (९/४/६३-६८)। दुर्वासा और अम्बरीप कथा प्रसंग में ब्रजदासी जी ने भी भागवतोक्त प्रेमाभक्ति की श्रेष्ठता का अत्यंत सरल शब्दों में प्रतिपादन किया है :-

इह सुनिकैं बोलत भयै, भक्तबछल भगवांन ॥ हे ब्राह्मण सुनि कहत हौं, जो निश्चै बंधान ॥
मम भक्तननि आधीन हूं, नहिं म्हैं मो आधीन ॥ मोकौं अति प्रिय साध हैं, जिन्ह मो मन हरि लीन ॥
म्हैं भक्तननि विनु आपुहूं, कौं चाहत नांहिं ॥ अरु लछमीहूं की नांहिं, धरत चाह चित्त ठांहिं ॥
म्हैं साधुन की गति सही, अरु म्हैरी गति साधु ॥ साधुनहीं कौं करत हौं, म्हैं निसदिन आराधु ॥
स्वजन पुत्र धर प्राण तिय, इहै लोक परलोक ॥ सब तजि आवत सरन मो, अति सनेह की वोक ॥
तिन्हकौं म्हैं कइसैं तजौं, तजैं लगत है लाज ॥ भक्तबछल मोह बिरद की, सब जग जगी अवाज ॥
जइसैं पति कौं बसि करैं, पति बरता ज्यौं नारि ॥ ज्यूं ही मो कौं बसि करत, म्हैरै साधु सुढारि ॥

भागवत में जिस प्रकार विशुद्ध भक्ति का निरूपण हुआ है उसी प्रकार यहाँ भक्ति के सात्विक, राजसी, तामसी, निर्गुण आदि चार भेदों का भी विवेचन हुआ है। भगवान ने कहा है जो भेददर्शी क्रोधी मनुष्य हृदय में हिंसा और दम्भ का भाव रखकर भी मुझ से प्रेम करता है वह मेरा तामस भक्त है जो विषय यश ऐश्वर्य की कामना से मेरी अर्चा

पूजा करता है वह मेरा राजसी भक्त है तथा जो पाप-क्षय हेतु पूजादि कर्म करके मुझे समर्पित करता है - वह मेरा सात्विक भक्त है। निर्गुण-भक्तियोग को भागवतकार ने निष्काम-भक्ति कहा है जो प्रेमाभक्ति का मूलाधार है। निष्काम-भक्त सालोक्य-सामीप्य सारूप्य-सायुज्यादि मुक्ति का भी तिरस्कार कर देता है जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखंड-रूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होता है उसी प्रकार परमात्मा के गुणों के श्रवणमात्र से भक्त के मन की गति तैल्य धारावत् अविच्छिन्न रूप से सर्वांतर्यामी के प्रति होजाती है; इस प्रकार के अनन्य तथा निष्काम भावपरक भगवत्प्रेम का होना ही निर्गुण-भक्तियोग है जिसे परम-पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है जिसकी परिपक्वावस्था में तामसी-राजसी-सात्विक तीनों वृत्तियों को लांघकर भक्त भगवान के अप्राकृत प्रेम को प्राप्त करता है (३/२९/७-१४)। व्रजदासी-भागवत में भक्ति का यह तात्विक-निरूपण विषयानुकूल भाषानुवाद की अनुपम विशेषता का परिचायक है जिसमें भगवान कपिल द्वारा उपदिष्ट भागवतोक्त ज्ञान को आत्मसात कराने की सार्वलौकिक क्षमता का सृजन किया गया है :

भक्ति जोग म्हैरौ सुपद, है अनेक परकार ॥ गौ कीनैं तैं काल कौ, भय न हौहिं किहूँ द्वार ॥ ६ ॥
किहूँ कै मारनकाज अरु, दंभ ईरषा भाय ॥ भक्ति करैं प्रांनी सु तौ, तामस भक्ति कहाय ॥ ७ ॥
ईस्वर तामस विषै कै, लियै करैं मो भक्ति ॥ सोही भक्ति रजोगुणी, संजुत मायासक्ति ॥ ८ ॥
कर्म टारिवैं अर्थ अरु, अर्पन करि प्रभु मांहिं ॥ करतव्य भक्ति पूजन यहि, प्रांनी कौ चित चांहिं ॥ ९ ॥
भक्ति करै यहि जांनि कैं, सात्विक भक्ति जांनिं ॥ अंकुर म्हैरी भक्ति कौ, सुपदाता यौं मांनि ॥ १० ॥
सुनतहिं म्हैरे गुन श्रवन, मोमैं चित्त लगि जांय ॥ करै कामनां नहिंन सौं, निर्गुन भक्ति कहाय ॥ ११ ॥
मुक्ति जु पांच प्रकार की, चहै भक्त सौ नांहि ॥ ऐसी उपजै भक्ति तब, जीव मिलै मो मांहिं ॥ १२ ॥
करै धर्म निहकांम अरु, ऐसै करै जु धर्म ॥ जामैं उपजै नाहिंनै, कछु हिंसा कौ कर्म ॥ १३ ॥
म्हैरौ मंदिर होय जहँ, दरसन करै उमांहि ॥ मौ असतुति पूजा करै, भलीभांति अवगांहि ॥ १४ ॥
सब ठां देषै मोंहिं अरु, करै न कहुँ कौ संग ॥ आदर साधुन कौं करै, धरि संतोष अभंग ॥ १५ ॥
दीनन पर राखै दया, साधै यम अरु नेम ॥ आत्मविचार करै भलैं, साधन सौं धरि प्रेम ॥ १६ ॥
श्रवन करैं म्हैरी कथा, करै कीरतन नांम ॥ छोडि कपट अहँकार कौं, हौय रहै निहकांम ॥ १७ ॥
इन्ह साधन सौं हौत है, म्हैरी निर्गुन भक्ति ॥ छूटै जग जंजाल दुष, हौय मोह अनुरक्ति ॥ १८ ॥

सर्वव्यापक परमात्मा की सगुणभक्ति तथा प्रतिमा पूजन के तात्विक रहस्य का अत्यंत सरल निरूपण व्रजदासी-भागवत के इस प्रसंग में द्रष्टव्य है :-

गंध पवन के संग ज्यौं, पेद नासिका बास ॥ अविकारी रत जोग चित्त, आवै ह्वै मो दास ॥ १९ ॥
व्यापक हूं सब ठौर मैं, ताकौं जानै नांहिं ॥ इक प्रतिमा ही मैं लपै, मूरष सौ जग मांहिं ॥ २० ॥
होम कियै ज्यौं राष मैं, कछू कांम कौ नांहि ॥ जइसी बांकी भक्ति है, यहि समझौ मन मांहिं ॥ २१ ॥
करै परायौ द्वैष अरु, करै मान बहुभांति ॥ चित मैं राषै भेद सौ, नाहिंन पकरै सांति ॥ २२ ॥
जौ सब जीवनि कौ करै, काहू विधि अपमांन ॥ अरु मो पूजा करत सौ, मांनौ हूं न निदांन ॥ २३ ॥
प्रतिमा पूजै जबहिं लौं, सब ठां लषै न मोंहिं ॥ भेद दृष्टि राषै जु नर, ताहिं मृत्यु भय होहिं ॥ २४ ॥
म्हैंहूं सब प्रांनिन मैं, यहि निश्चै उनमांन ॥ तांतै सबै प्रांनिन कौं, भलै करै सनमांन ॥ २५ ॥
जड़ जीवनि तैं श्रेष्ठ हैं, चेतन जीव सुजांन ॥ प्रानवंतता तैं अधिक, तातैं जै जुत ग्यांन ॥ २६ ॥

भागवत में भक्ति के साध्य-साधन दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। मन की एकाग्रता तथा पूर्ण-वैराग्य लाने के लिए भक्ति का साधन पक्ष उपयोगी होता है। भगवान् के निरन्तर श्रवण-कीर्तन पूजनादि के सेवन से विषय-वासनाओं से निवृत्ति एवं भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है; इस प्रकार वैधी अथवा मर्यादा-भक्ति रागानुगा अथवा प्रेमाभक्ति का साधन है। भागवतोक्त उपर्युक्त प्रसंग में भगवान ने यही कहा है कि निष्काम-भाव से पूजा करने तथा श्रद्धापूर्वक नित्य नैमित्तिक कर्मों का पालन करने, नित्यप्रति हिंसा रहित क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन स्पर्श-पूजन-स्तुत्य-वंदन करने; धैर्य-वैराग्य-मान-दया-प्रेम का अवलम्बन करने तथा यमनियमों का पालन, शास्त्रों का श्रवण, भगवन्नामोच्चारण, सत्संगादि के करने से अनायास ही साधक का चित्त शुद्ध हो भजन में लग जाता है (३/२९)।

भक्ति के क्षेत्र में प्रेमाभक्ति का सर्वोच्च स्थान है। नारद भक्ति सूत्र में प्रेमाभक्ति की व्याख्या, उसका माहात्म्य एवं उसके विविध साधन-स्वरूपों का तात्विक विवेचन हुआ है। प्रेमाभक्ति में अनन्यता का भाव होता है इसीलिए वह ज्ञान-कर्म-योग से श्रेष्ठतम मानी गई है - भागवत में भगवान ने कहा है हे उद्धव! योग साधन, ज्ञान-धर्म-स्वाध्याय, तप त्याग मुझे प्राप्त कराने में समर्थ नहीं होते जितनी कि मेरी अनन्य प्रेममय दृढ़-भक्ति। मैं अनन्य श्रद्धा और भक्ति से ही प्राप्त होता हूँ। मेरी यही भक्ति चांडाल आदि को भी पवित्र कर देती है। यही प्रेमाभक्ति पराभक्ति कही जाती

है और यही भूमानंद है तथा यही भागवतोक्त अहैतुकी निर्गुण भक्ति है। नारद भक्ति सूत्र ८२ में प्रेमरूपाभक्ति की ग्यारह आसक्तियाँ बताई गई हैं जिनके अनुसार भागवत के नारद-शुकदेव-व्यास-परीक्षित आदि में गुणमाहात्म्यासक्ति, पृथु-अम्बरीष-भरत में पूजासक्ति, अक्रूर-विदुर में दास्यासक्ति, ध्रुव में स्मरणासक्ति तथा यशोदा नंद में वात्सल्यासक्ति, गोपियों तथा कृष्णपट्टमहिषियों में कान्तासक्ति तथा उद्धव और गोपियों में परमविरहासक्ति भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। भागवत में पूर्वोक्त प्रकार से वर्णित नवधा भक्ति का नारद-सूत्रोक्त आसक्तियों से मिलान करें तो श्रवण-कीर्तन भक्ति गुणासक्ति में, अर्चन-पाद सेवन-वंदन भक्ति पूजासक्ति में, स्मरण स्मरणासक्ति में, दास्य दास्यासक्ति में, सख्य सख्यासक्ति में, आत्म-निवेदन-भक्ति आत्मनिवेदनासक्ति में समाविष्ट है। रूपासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति भागवतोक्त प्रेमाभक्ति के प्रमुख अंग हैं। नवधा भक्ति के अर्चन-पाद--सेवा को छोड़कर शेष-अंगों का समावेश विशुद्ध-निर्गुण भक्ति में प्रतिपादित हुआ है। तन्मयासक्ति-परमविरहासक्ति निर्गुण-सगुण दोनों प्रकार की भक्ति की चरमावस्थायें हैं जिनका भागवत-भक्ति में समावेश है।

भक्ति के आचार्यों ने भागवतोक्त प्रेमाभक्ति के आधार पर ही प्रेमा, परा और प्रौढ़ा नामक भक्ति के तीन भेद प्रतिपादित किये हैं - नवधाभक्ति सेवन से उत्पन्न प्रभु के प्रति स्नेह ही प्रेमाभक्ति है; जिसके उदय से भक्त हृदय में भगवान् के प्रति विशेष भाव-सम्बन्ध की परिपक्वावस्था पराभक्ति है। जिसमें रति स्थिर होने पर रसास्वादित माधुर्य की प्राप्ति हेतु परमविरह उत्पन्न होकर प्रभु का साक्षात्कार होता है; वही प्रौढ़ा है। इसी प्रकार साधन भक्ति, भावभक्ति, प्रेमाभक्ति नाम से उत्तमा भक्ति का निरूपण भी हुआ है; साधनभक्ति वैधी और रागानुगा तथा रागानुगा-कामानुगा-सम्बन्धानुगा नाम से प्रतिपादित हुई है। भागवतोक्त भावभक्ति ही इनका आधार है जहाँ भगवत्प्रेम ही प्रथमावस्था है; भाव का ही दूसरा नाम रति या प्रेम है - यही स्नेह, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव के क्रम से चरमोत्कर्ष पर पहुंचता है। शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर-नामक पांच प्रकार की यही भावभक्ति भावविकास क्रम से अन्ततः मधुर भक्ति की चरमावस्था में परिणत हो जाती है। भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड, कैशोर लीलाओं में प्रेममूलक भाव-भक्ति का यही क्रमिक चरमोत्कर्ष अन्ततः गोपियों द्वारा अभिलषित रतिभाव प्रधान माधुर्य में परिणत हुआ है। ब्रजदासी-भागवत के रासलीला प्रसंग में जिसका श्रीमद्भागवत के अनुरूप ही प्रतिपादन हुआ है :-

कोउ गौपी श्रीकृस्न की, भुजा धरै निज कंध । चुंबन करत सु सूंघहीं, अदभुत बाहु सुगंध ॥ ५३॥
कौ गौपी पिय बदन सौं, रही वदन निजलाय। ताकौ पांन उगार पिय, दैत मंद मुसकाय ॥ ५४॥
किहुँ गौपी कैं कंध धरि, निज भुज कृस्न कुमार। गांन करत है मनहरन, विहरत रंग बिहार ॥ ५५॥
कमल कर्निका कर्न परि, धरै बजावत बैंन। सुमनमाल पर करत है, अलि गुंजार सुपैंन ॥ ५६॥
आलिंगन तन कौं परस, चितवनि प्रीत प्रकार । गौपिन जुत या रीत सौं, बिहरत बिबिधि बिहार ॥ ५७॥
भई कृस्न कैं मिलन सौं, मौहित सब ब्रजबाल । कच कंचुकि तन वस्त्र की, भूली सकल संभाल ॥ ५८॥
तूटि तूटि भूषन गिरै, तिन संभार कछु नांहिं। महामत्त पिय प्रेम मैं, बिहरत रहि उमांहिं ॥ ५९॥
लषि लीला श्रीकृस्न की, मुह्ति अपछरा वांम । गिरत विमांनन तैं मुरछि, कैं अति व्याकुल कांम ॥ ६०॥
जिति हुती ब्रज गोपिका, तितैं रूप हरि धारि। गौपिन सौं बिहरत भयै, परम सनैह प्रकारि ॥ ६१॥

श्रीमद्भागवत का भक्तितत्व ही वैष्णव सम्प्रदायों का मूलाधार है। इसी के अनुरुप सभी सम्प्रदायों में मधुर-भक्ति रस की प्रधानता है। लोकपक्ष में जिसे हम श्रृंगार रस कहते हैं भक्ति पक्ष में वही मधुर रस के नाम से सांगोपांगिक रूप से व्यवहृत हुआ है। गौड़ीय संप्रदाय के उज्ज्वलनील मणि, वल्लभ-सम्प्रदाय में विठ्ठलनाथ जी के शृंगार मंडन तथा राधावल्लभ-सम्प्रदाय में राधासुधानिधि-हित चौरासी आदि ग्रंथों से मधुरोपासना प्रतिपादित हुई है। इनसे पूर्व निम्बार्क-सम्प्रदाय में भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य ने सखी-भाव से दंपति श्रीराधारमण - की विशिष्ट निकुंज-कलि रसोपासना का प्रवर्त्तन किया है। श्रीभट्टदेवाचार्य कृत आदिवाणी, श्रीहरिव्यास देवकृत महावाणी, श्री परशुरामदेवाचार्य कृत परशुराम सागर, श्रीवृन्दावनदेवाचार्य कृत गीतामृत गंगादि ब्रजभाषा प्रधान वाणी-ग्रंथों में माधुर्य रस पर आधारित ब्रज-वृंदावन-रस केन्द्रित गोपीभाव की ब्रज रसोपासना तथा सखीभाव परक विशिष्ट एवं सांगोपांगिक निकुंज-केलि-रसोपासना का विस्तृत विवेचन हुआ है। ब्रजदासी जी ने भी इसी परम्परागत निम्बार्कीय रसोपासना का प्रतिपादन किया है।

ब्रजदासी जी की सखीभावपरक निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना

ब्रजदासी जी ने पूर्वोल्लिखित प्रसंगानुसार निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी महाराज से मंत्र दीक्षा ली थी, तदनुसार गुरुदेवाचार्य जी द्वारा प्रदत्त ब्रजदासी नाम से आपकी सखीभावपरक निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना आपके द्वारा अनूदित ब्रजदासी भागवत के वंदनात्मक मंगलाचरणों में प्रतिपादित हुई है। श्रीमद्भागवत महापुराण के इस भाषा-पद्यानुवाद के मूल कथाक्रम में ऐसे स्थलों तथा उपयुक्त अवसरों का नितान्त अभाव रहा है जहाँ वे प्रासांगिक रूप से

अथवा कथाक्रम से विलग होकर स्वतंत्र रूप से अपनी निजी उपासनात्मक-भावनाओं को अभिव्यक्ति दे सके; तथापि प्रत्येक स्कंध के वंदनात्मक मंगलाचरणों में उनकी निजी उपासनात्मक भावनाएँ प्रासंगिक रूप से प्रकट होकर स्वतः ही प्रतिपादित हुई हैं। इस प्रकार इन मंगलाचरणों में व्रजदासी जी के गुरुनाम श्रीवृंदावन देवाचार्य जी का तथा श्रीहंस सनकादिक-नारद सहित आद्याचार्य-भगवान् श्री निम्बार्काचार्य जी की निम्बार्क-सम्प्रदायी आचार्य परम्परा का एवं अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ श्रनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) का श्रद्धापूर्वक नामस्मरण किया गया है। यहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय की परमाराध्या स्वामिनी श्रीराधा, निकुंजविहारी प्रियाप्रियतम दंपति श्रीराधाकृष्ण, निकुंज-केलि-स्थल दिव्यधाम श्रीवृंदावन, सहचरी-सेवा आदि निकुंज-रसोपासनात्मक तत्वों का गुणानुवादकपूर्वक स्मरण किया गया है जिससे आपकी निम्बार्कसाम्प्रदायिक सखी भावपरक निकुंज रसोपासना स्वतः ही प्रतिपादित हुई है। श्रीमद्भागवत महापुराण की महती कथा के शुभारंभ से पूर्व, स्कंध पुराणोक्त श्रीमद्भागवत - माहात्म्य के मंगलाचरण में, 'व्रजदासी-भागवत' नामक इस पद्यानूदित ग्रंथ का श्रीगणेश गुरु श्रीवृंदावन देवाचार्य जी की चरण-वंदना से तथा अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ में अद्यावधि विराजमान, गीतगोविन्दकार श्री जयदेव समाराधित युगल विग्रह 'श्रीराधामाधव' के अनन्य-भावपूर्ण स्मरण से किया गया है :-

श्रीहितु गुरु वृन्दावन चर्न, (श्री) राधामाधव लाल।
(श्री) भागवत माहातम कौं, बर्नन करौं रसाल ॥ १॥

प्रथम-स्कंध के मंगलाचरण का वंदनात्मक छप्पय अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें श्रीकृष्णरूपी श्रीमद्भागवत के कथात्मक-स्वरूप के माहात्म्य में श्रीव्यास, सुकदेव, परीक्षित, सूत-शौनकादिक की श्रद्धापूर्वक नामात्मक वंदना से पूर्व के दो चरणों में निम्बार्क-साम्प्रदायिक आचार्य परम्परा का उल्लेख किया गया है :-

छ. **(ॐ) नमो नमो श्री हंस, नमो सनकादिक रूप हरि ॥**
नमो नमो नारद जु, रिषि जिनि निम्बारक सिष करि ॥
नमो नमो श्रीव्यास, नमो सुकदेव जु स्वांमी ॥
नमो परीछित राज, रिषिन मैं मुष्य जु नांमी॥
ॐ नमो नमो श्री सूत जू , नमो नमो सौनक सकल ॥
ॐ नमो नमो श्रीभागवत, कृष्णरूप छिति मैं अकल ॥ १॥

इसी मंगलाचरण क्रम में आगे छ दोहे और लिखे गये हैं; जिनमें प्रथम दो दोहों में अभिलषित सफलता हेतु गुरु श्रीवृंदावनदेव जी की वंदना तथा दंपति प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्ण की कृपाकांक्षा; परमाराध्या नित्यकिशोरी वृषभानुनंदिनी स्वामिनी श्रीराधाजी की विशिष्ट-वंदना सहित श्रीगोपाल-मुरारी का जयजयकार किया गया है जिससे निम्बार्क सम्प्रदाय की श्रीराधिका प्रधान दम्पति-भाव की युगलोपासना का प्रतिपादन हुआ है :-

(श्री) गुरु बृंदाबन बंदन करौं, प्रथमहिं करौं उछाह ॥
दम्पति प्रभु तिहुँ की क्रिपा, करौं सफल मो चाह ॥ २॥
बार बार बंदन करहुँ, श्री बृषभानु कुँवारि ॥
जय जय श्रीगोपाल जू, कीजै क्रिपा मुरारि ॥ ३॥

निम्नोक्त मंगलाचरणों की वंदनाओं में भी इसी प्रकार से व्रजदासी जी द्वारा निम्बार्क-साम्प्रदायिक मान्यताओं का प्रतिपादन किया गया है तथा प्रत्येक प्रसंग में श्रीवृन्दावनदेवाचार्य जी के प्रति भावनात्मक गुरु-स्तवन, सर्वोपरि इष्ट-आराधिका की भावना से परमाराध्या श्रीराधा जी का स्मरण तथा श्रीराधारमण भगवान श्रीकृष्ण गोपाल का जयकार पूर्वक वंदन किया गया है :-

(१) **गुरु बृन्दावन राधापति, जय राधे जु उच्चारि ॥**
बरनौं दुतीय स्कंध हौं, निजमति कैं अनुसारि ॥ २॥ (द्वितीय स्कंध)

(२) **जय जय श्री गौपाल, जयति श्रीभांन दुलारी ॥**
जयति जयति श्रीगुरुहुँ, क्रिपाल सुक जुँ सुभकारी ॥ (षष्टम स्कंध)

(३) **जय जय श्रीगौपाल, जयति बृषभांन दुलारी ॥**
जयति जयति मम जु गुरु, क्रिपाल सरन सुपकारी ॥ (दसम स्कंध)

(४) **नमो नमो गौपाल, लाल गौवरधनधारी ॥**
नमो नमो बृषभानु, कुँवरि प्रिय प्रांन पियारी ॥
नमो नमो मम गुरु, प्रसध्य बृंदाबन दे नांम ॥
नमो नमो हरिभक्त, रसिक जे अति अभिरांम ॥ (एकादस स्कंध)

अष्टम एवं नवम स्कंधों के मंगलाचरण प्रसंग विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि इनमें मधुर रसोपासना की अधिष्ठात्री परमाह्लादिनी स्वामिनी श्रीराधिका जी की सर्वोपरियता प्राधान्य युगलतत्व श्रीराधाकृष्ण की निकुंज-रसोपासना के प्रवर्तक आद्याचार्य भगवान् श्री निम्बार्काचार्य जी का स्तवन तथा श्रीवृंदावनदेवाचार्य जी के नाम संलग्न अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ स्थल (सलेमाबाद) का जयकारपूर्वक नामोल्लेख किया गया है :-

जै जै मो गुरु प्रभू, सरूप (श्री) बृन्दावन जु नांम ॥
मन क्रम बचन संजुक्त, नमसकृतं तिन्हिं पद ठांम ॥
जै (श्री) बृषभांनु कुँवारि, जयति श्रीनंदकुँवर वर ॥
जै (श्री) निंबार्क आर्चाज, मम गुरु हरिभक्ति रसिक वर ॥
अैं करि क्रिपा ब्रजदासी पैं, तिहिं परताप आनंद भरि ॥
अब अष्टम सकंध बरनन करूँ, जुगल रूप उर ध्यांन धरि ॥ १ ॥

नवम स्कंध के मंगलाचरण में व्रजदासी जी ने अपने मंत्र-उपदेष्टा श्रीनिम्बार्काचार्य पीठाधिपति गुरु श्रीवृंदावनदेव, तथा अ. भा. ज. श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद का जयकार किया है। यहाँ रसरूप-परमानंद-स्वरूप सच्चिदानंद भगवान श्रीकृष्ण जो निम्बार्क सम्प्रदाय में रसिक राजेश्वर निकुंज-केलि-धाम दिव्य-वृंदावन के नित्यविहारी नायक हैं उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण तथा रस-अधिष्ठात्री आनंद विधायिनी निकुंज-स्वामिनी परमाराध्या श्रीराधा जी का वंदन भी उल्लेख्य है। व्रजदासी जी द्वारा इन उपासनात्मक तत्वों का इस प्रकार उल्लेख उनकी सखीभावपरक निम्बार्कीय रसोपासना का प्रामाणिक अंतर्साक्ष्य है जो नवम स्कंध के मंगलाचरण का उल्लेखनीय वैशिष्ट है :-

जयति जयति गुरु बृन्दाबनदेव, जयति पीठ निम्बारक ॥
जय रसिक राजेस्वर कृस्नं, श्री बृन्दावन नाइक ॥
जयति श्री बृषभांनु सुता, स्वामिनि सुप रासीय ॥
जयति श्री भागवत भगत, प्रभु चरन उपासीय ॥
इन्ह पाइ क्रिपा परिनांम करि, ब्रजदासी आनंद भरि ॥
कहिहैं अबै स्कंध नवम कौं, किय आरंभ उमाह धरि ॥ १ ॥

निम्बार्क-सम्प्रदाय में स्वामिनी श्रीराधा जू की उपासना का मूर्द्धन्य विधान है। श्री वृषभानुनंदिनी नित्यकिशोरी श्रीराधा जी रसरूप-परब्रह्म परमानंद-स्वरूप रसिकेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की परमाह्लादिनी, सर्वोपरि शक्ति तथा अंतरंगभूता उनकी हृदयेश्वरी प्रिया हैं; रमा-गिरिजा आदि इसी परमेश्वरी विश्वस्वामिनी की अंसावतार हैं। ऐसी सर्वेश्वरी-परमेश्वरी, परमभक्त वत्सला, करुणाकरण श्रीराधा जी की चरणाश्रिता 'व्रजदासी' उन्हें बारंबार वंदना करती है। निम्बार्कीय राधातत्व का ऐसा सैद्धान्तिक तथा उपासनात्मक निरूपण द्रष्टव्य है :-

जयति जयति ब्रषभांन, नंदिनी विस्वस्वामिनी ॥
सकल सक्ति जिहँ सेव, करत हरि हिदैं गामिनी ॥
तिहं अंसा अवतार, रमा गिरिजा रु साविेत्री ॥
दासिनी अति आनंद, दैंनि मांनत निज मैत्री ॥
जे परम प्रिया भगवांन की, भगत बछल करूना ढ़रन ॥
उहिं बारंबार बंदन करत, ब्रजदासी गहि पद सरन ॥

(मंगलाचरण - द्वादस - स्कंध)

परमगुह्य निम्बार्कीय निकुंज-रसोपासना-रहस्यानुसार ये ही निकुंज-स्वामिनी-श्रीराधाजी, आदि-अनादि-एकरस, अद्भुत, सर्वदा-सनातन सच्चिदानंद-स्वरूप रसरूप-परब्रह्म परमानंद भगवान् श्रीकृष्ण की परमप्रिया आराधिका हैं। युगल-स्वरूपमें ही उनके उभयात्मक रसरूप की पूर्णता होने से भगवान् श्रीकृष्ण सदासर्वदा उन्हीं के अनुरूप परमशोभायमान परमाह्लादिनी श्रीराधिकाजी की कृपा वांछा करते हैं। रसिकों के रस-भवन निकुंज में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण निकुंज-विहारी के रूप में लाडलीलाल नित्य-राधारमण हैं; इसीलिए परम रसिकवर्य्य श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी ने श्रीमहावाणी जी में युगल का तात्त्विक विवेचन करते हुये कहा है :-

'उदधि महामाधुर्य के, रसिक दोऊ रसभौंन । सदा सर्वदा एकरस, राजत राधा रौंन ॥ (सि.सु.)

निकुंज-भवन में प्रतिपल निकुंज-क्रीडारत प्रियाप्रियतम लाडलीलाल का नवनव-भावों के उल्लसित हृदय से सहचरी भाव की सेवा में तत्पर रहने वाले रसिकों के लिए निकुंज-स्वामिनी श्रीराधाजी ही सर्वस्व हैं; स्वामिनी श्रीराधाजी का सहचरियों-सखियों के प्रति सहजभाव होने से सहचरियाँ उन्हीं की चरणाश्रिता, एकमात्र उन्हीं की कृपाकांक्षिणी होती हैं जिन्हें

निकुंज-रंध्रों से रतिरत प्रियाप्रियतम के दर्शन की तल्लीनता के लिए ही युगल का सुखद सान्निध्य अभिलषित है। सहचरी-सेवा सुख की गुह्यतम भावना में निमग्न ब्रजदासी जी अंतर्मन में ऐसे ही सहचरी-पद की कामना करती है। निम्न मंगलाचरण द्रष्टव्य है :-

(१) जयति जय श्रीराधा चर्न, नमो पूरन सुष रासिय ॥
नंदनंदन ब्रजचंद, सदा बृंदाबन जु वासिय ॥
जय श्री बृंदावन गुरु, क्रिपाल आनंद निवासं ॥
जिन्ह की क्रिपा प्रताप, पाइयत दंपति जु पासं ॥
पुनि जयति जयति वैस्नव सकल, ब्रजदासी बंदन करत ॥
द्वादस स्कंध बरनन करन, अति उमाह निज हिय धरत ॥

(२) जय जय श्री ब्रजराज, करन लीला रससांनी ॥
जय जय श्रीवृषभांन; सुता जु बृंदाबन रांनी ॥
\+ + + +
जिन्ह क्रिपा पाय आनंद लहि, (श्री) राधे सहचरी पद धरौं ॥
जाही प्रताप ब्रजदासि कहि, सप्तम स्कंध बर्नन करौं ॥

निम्बार्कीय निकुंज - रसोपासना से ही उन्होंने अभीष्ट-परमानंद की चरमोपलब्धि प्रतिपादित की है; रसिकों की सर्वेश्वरी अलबेली श्रीस्वामिनी नित्यकिशोरी वृषभानुकुँवरी श्रीराधा, ब्रजराज कुँवर नित्यकिशोर श्रीकृष्ण, दिव्यधाम वृन्दावन, निकुंज-तत्व-उपदेष्टा गुरु श्री वृंदावनदेव, रसिकों का सत्संग आदि तत्वों से साधित निकुंज-रसोपासना का ही उन्होंने अनुसरण किया है; ऐसी सहज स्वीकारोक्ति उन्होंने इन मंगलाचरणों में की है :

जय जय श्रीवृषभांन, सुता अलवेली (श्री) राधे ॥
जय जय श्री ब्रजराज, कुँवर श्रीकृस्नं अगाधे ॥
जय जय श्रीबृंदाबन, मोहि गुरु जिन्ह पद बंदौ ॥
जय जय भगत क्रिपाल, सरन गहि अति आनंदौ ॥
हूं पाय क्रिपा इन्ह सबन की, भवसागर सहजैं तरौं ॥
है प्राप्त परम आनंद कौं, तीन ताप दुष परहरौं ॥ १ ॥ (पंचम स्कंध)

इस प्रकार ब्रजदासी जी कृत इन मंगलाचरण-प्रसंगों में उनकी परम्परागत सखी-भाव की निम्बार्कीय निकुंज रसोपासना का सारगर्भित प्रतिपादन हुआ है जिससे उनका निम्बार्कीय भक्ति-वर्चस्व होना प्रामाणिक है ।

श्रीमद्‌भागवत पुराणोक्त श्रीकृष्ण चरित्र

ऋग्वेदादि अनादि वैदिक औपनिषदिक वांग्मय में उल्लेखित, महाभारत श्रीमद्‌भगवत गीता तथा जातक ग्रंथों एवं अन्यान्य पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण चरित का जो उत्तरोत्तर विकास हुआ उसी का समन्वित, सारगर्भित तथा परम्परागत व्यापक रूप श्रीमद्‌भागवत महापुराण में प्रकट हुआ है। यहाँ गीता के सर्वव्यापक-सर्वांतर्यामी-सर्वनियन्ता, सृष्टिके परम रहस्य, व्यक्ताव्यक्त, विराट स्वरूप, परमतत्व पुरुषोत्तम, निराकार-साकार तथा उभयात्मक परात्पर तत्व श्रीकृष्ण का, भक्तों के लोकरंजनकारी तथा लोकोद्धारक भगवान् पूर्णब्रह्म के रूप में निरूपण हुआ है। यहाँ श्रीकृष्ण ब्रह्म के सामान्य अंशावतार न होकर साक्षात् पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर हैं - एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् (१/३/२८) से यही प्रतिपादित हुआ है। यहाँ श्रीकृष्ण को श्रीनारायण की भांति आदि पुरुषावतार चित्रित किया गया है जिनमें प्रकृति, सृष्टि, स्थिति, प्रलय सभी समाविष्ट हैं। देवकी जी द्वारा किये गये स्तुति गान में यही भाव प्रकट हुआ है (१०/८५/२९-३१)। ब्रजदासी भागवत में जिसका प्रतिपादन द्रष्टव्य है :-

पुत्रननि सौं बौली कि हे, रांमकृस्नं सुषसार। आदि पुरुष ईस्वर तुम्हहिं म्हैं जानैं निरधार ॥
मिट्यौ सत्वगुन काल वसि, चलत कुमार्ग नृपाल । तातैं तुम्ह प्रगटै हरन, भुव कौ भार बिसाल ॥
ब्रह्मादिक गुन प्रकृति कैं, अंस तुम्हारे आंहिं। तिनसौं जग उतपति प्रलै, पालन हौति सदांहिं ॥
ईस्वर जोगैसरन कैं, तुम्ह हौ कृस्न कुमार । मो मनोर्थहूं कीजियै, पूरन भलै प्रकार ॥

कुंती जी की स्तुति में भी श्रीकृष्ण को भगवान् माना गया है (१/८/१८-४३) गीता में वासुदेव कृष्ण को ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि गुणों से विशिष्ट षाड्गुण्य भगवान् माना गया है। श्रीमद्‌भागवत में षाड्गुण्य भगवान् वासुदेव स्वयं श्रीकृष्ण हैं (१/८/३२-३५) ब्रजदासी-भागवत में अनूदित श्रीकृष्ण स्वरूप का यह निरूपण कुन्ती जी की स्तुति में लोकग्राही बन गया है :-

आदि पुरुष ईस्वर तुम्ह स्वांमी। परे प्रकृति तैं अंतरजांमी ॥
सब ठां व्यापक बाहरि अंतर । नमस्कार हौं करत निरंतर ॥
माया रूपी चिद मैं आपू। छिपि बैठे निरलेप अपापू ॥
मूढ़न कौं नहिं देत दिपाई। संतन कै हिय बसत सदाई ॥
ज्यौं नट स्वांग बउत धरि आवै । नहिं पहिचानि कोउ तिहिं पावै ॥
हौं तो अतिहि अग्यांन सहित हौं । तुम्ह कौं करन प्रनांम चहत हौं ॥
वासुदेव तुम्ह देवकीनंदन । नंद गोप कै सुत अघकंदन ॥
नमस्कार हौं बारंबारहिं । तुम्हहिं करत स्वामी करतारहिं ॥
कमल नाभि गर कमल जु माला । कमल नयन पद कमल रसाला ॥
तुम्ह पद पंकज सुख कै धामां । तिनकौं हौं निति करत प्रनामां ॥
+ + + + +
लीला करन सबनि मन भाई। प्रगटै तुम्ह स्वांमी सुषदाई ॥
तुम्ह हू चरित साधूजन सुनैं । गावै कहै सराहै रु गुनैं ॥
तैं सब जन या जग कै मांहीं । सो प्रभु तुम्ह चर्नन कौं पाहीं ॥
विस्वईस हरि देवन जु देवा । अहो जगत पति स्वामि अजेवा ॥
इनि जादवनि पांडवनि मांहीं। म्हेरौ अधिक नेह दुहुँ ठांहीं ॥
सो सब दूरि प्रभू अब कीजै । अपनै चरन सरन गहि लीजै ॥
+ + + + +
कृस्न कृस्न अरजुन कैउ सपा । श्रेष्ठ आप सवै जादव रपा ॥
दाता मुक्ति अहो जु गोविन्द । सुर गौ ब्रह्मन हर नउ दन्द ॥
सबकै गुर जोगिन कै ईस । तुम्हहिं नमति हौं बिस्वाबीस ॥

यहाँ श्री ब्रह्मा जी द्वारा की गई स्तुति में भगवान् नारायण, वासुदेव तथा श्रीकृष्ण की एकरूपता स्थापित कर दी गई है (१०/१४/१८-२३)। संक्षेप में श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीकृष्ण नारायण, वासुदेव, विष्णु सभी के गुणों रूपों से अलंकृत किये गये हैं। वे षोड्श कलाओं से युक्त पुरुषावतार हैं। संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध उन्हीं के व्यूह हैं। विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र उन्हीं के गुणावतार हैं। श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत महापुराण में प्रकृति पुरुष, सर्वव्यापक, व्यक्ताव्यक्त-परात्पर-परब्रह्म, विश्वरूप, सच्चिदानंद, पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम हैं।

श्रीकृष्ण चरित्र की व्यापकता पुराणमूलक है। हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, वायु, विष्णु, गरुड़ आदि पुराणों में श्रीकृष्ण चरित्र का विस्तृत वर्णन हुआ है तथापि श्रीमद्भागवत महापुराण का श्रीकृष्ण चरित्र ही वैष्णवधर्म का मूलाधार है क्योंकि यहाँ श्रीकृष्ण के सभी परम्परागत स्वरूपों का सरस समन्वय हुआ है। उनके लोकरक्षक एवं लोकरंजक तथा भक्त मनोहारी स्वरुप का सुंदर प्रतिपादन हुआ है। यहाँ वे महाभारत के द्वारिकाधीश, कूटनीतिज्ञ, नीतिनियन्ता, न्याय-धर्मपालक हैं। गीता के सर्वेश्वर-योगेश्वर तथा परम उपदेष्टा हैं। भक्तों के रक्षणार्थ भागवतोक्त श्रीकृष्ण अद्‌भुत कर्मा, असुरसंहारक तथा लोकोद्धारक हैं। वे प्रकृति-नियन्ता, विश्वकर्त्ता, परमब्रह्मश्रीकृष्ण हैं। भक्तों के मनोरंजनार्थ तथा उनकी मनोकामनापूर्णार्थ भागवत के श्रीकृष्ण लीलावतारी सच्चिदानंद, रसरूप परब्रह्म तथा परमानंद स्वरूप हैं। वे बालकृष्ण, गोविन्द गोपाल, मुरलीमनोहर, नृत्यगोपाल, नटनागर, व्रजबिहारी गोपीजन वल्लभ, तथा रासबिहारी हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण श्रीकृष्ण चरित्र का पूर्णकाव्य है। वैष्णवधर्म में इसका सर्वोच्च सम्मान होने से इसके नाम से पूर्व श्रीमद् विशेषण प्रयुक्त किया जाता है तथा इसे 'महापुराण' की आदरसूचक संज्ञा दी गई है।

श्रीराधातत्व - वैष्णव-सम्प्रदायों में गृहीत श्रीराधातत्व का मूल परम्परागत साधनाओं में निहित है। 'राधानांपते' (१/२०/२९) के अनुसार ऋग्वेदीय माना जाता है। सांख्य दर्शनानुसार श्रीकृष्ण पुरुष और श्रीराधा प्रकृतिरीश्वरी हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण) भारतीय शक्तिवाद के अनुसार शिव के साथ प्रतिष्ठित शक्ति, विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ सरस्वती, श्रीराम के साथ सीता तथा श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा नाम से प्रतिष्ठित हुई है (मध्यकालीन प्रेमसाधना परशुराम-चतुर्वेदी - पृ. १७४) शक्तिरूपिणी इस श्रीराधा की वैष्णव धर्मदर्शन में परमप्रेमस्वरूपिणी मूर्ति के रूप में चरम परिणति भी मानी गई है (श्रीराधा का क्रमिक विकास - डॉ. शशिभूषणदास गुप्त)। इस प्रकार वैष्णवों के राधातत्व में काश्मीरी शैवागम, शक्तिमत तथा तंत्रवाद के कतिपय सिद्धान्तों का समावेश हुआ है तथापि वैष्णव-भक्तिदर्शन का श्रीराधातत्व भिन्न है। श्रीराधाकृष्ण की युगलोपासना में सरस और शृँगार मूलक प्रेम भावनाओं का प्राचुर्य देखकर उसे बौद्धों के

व्रजयानी शाखा के तंत्रमत, वैष्णवसहजिया मत तथा वाममार्गी सिद्धमत से सम्बद्ध करना नितान्त असंगत और असत्य है; क्योंकि वहाँ त्रिपुरासुंदरी तथा सुरासुंदरी आदि सिद्धि के साधन-साध्य कामवृत्ति पर आश्रित हैं। इनके विपरीत वैष्णवों की प्रेम लक्षणा मधुर-भक्ति परम्परागत रूप से शुद्ध, सात्विक तथा मर्यादित है। इसीलिए भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य द्वारा प्रवर्तित दंपति प्रियाप्रियतम श्रीराधारमण की निकुंज-केलि-रसोपासना में सखी-भाव की तटस्थता अनिवार्य रूप से प्रतिपादित हुई है।

वैष्णव-सम्प्रदायों में गृहीत श्रीराधातत्व में गोपाल-स्वरूप से संलग्न आभीरों की बालदेवी परक इष्ट-आराधना, रासलीला के प्रति वेदोक्त सौरमंडलीय ज्योतिपिक मान्यता, दक्षिण के आलवार-भक्तिपरक तामिल गीतों में लक्ष्मी-प्रतिरूपात्मक 'नाप्पिनाई' की आराधना आदि के इन परम्परागत कुछ तत्वों का तथा संस्कृत के शृँगारपरक ग्रंथों का समावेश माना जाता है। देवी भागवत, सम्मोहनतंत्र तथा राधिकोपनिषद् आदि ग्रंथों में निरूपित श्रीराधा का स्वरूप भी वैष्णवों के राधा तत्व का मूलाधार माना जाता है। ऋग्वेद के उपनिषद् भाग राधिकोपनिषद् में ऊर्ध्वरेता सनकादिकों को ब्रह्मा जी द्वारा उपदिष्ट रहस्य के अनुसार षाड्गुण्य ऐश्वर्यों से परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण परमदेव हैं जो गोप-गोपियों के सेव्य, श्रीवृंदावनदेवी से आराधित श्रीवृंदावन अधीश्वर हैं जो एकमात्र सर्वेश्वर हैं; ये ही श्रीकृष्ण प्रकृति से भी पुरातन, अखिल ब्रह्मांडों के अधीश्वर, तथा नित्य हैं। उनमें आह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान-इच्छा-क्रिया आदि बहुत सी शक्तियाँ हैं जिनमें आह्लादिनी सर्वोपरि है - यही परम अंतरंग भूता श्रीराधा हैं; श्रीकृष्ण जिनकी आराधना करते हैं तथा वे सर्वदा श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं - इसीसे ये श्रीराधा हैं; इन्हीं से गोपियाँ प्रकट हुई हैं। ये राधाकृष्ण रससागर श्रीविष्णु के एक देह से रसक्रीड़ा हेतु दो हो गये हैं। इन्हीं राधिकाजी की अवज्ञा करके जो श्रीकृष्ण की आराधना करता है, वह महामूर्ख-अज्ञानी है।'' राधिकोपनिषद् का यह राधातत्व वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रमुख रूप से मान्य हुआ है।

इस प्रकार वैष्णव-सम्प्रदायों में गृहीत श्रीराधातत्व परम्परागत है तथापि उसकी वैष्णवधर्म एवं भक्तिदर्शन में स्वीकृति एवं विस्तृति पुराण मूलक है। पद्मपुराण उत्तराखंड में वर्णित राधाष्टमी व्रत प्रसंग से राधाभक्ति माहात्म्य प्रतिपादित हुआ है। भादों की शुक्लाष्टमी को वृषभानुगृह में कीर्तिदा के गर्भ से श्रीराधा का आविर्भाव उल्लेखित है; गोलोक-माहाम्य में यहां श्रीराधा को नंदगृहेश्वरी, पाताल खंड में (अ. ३८) कृष्णप्रिया, आद्याशक्ति, राधा, कृष्ण वल्लभा आदि नामों से उल्लेखित किया गया है। श्रीराधा ही मूलप्रकृतिरीश्वरी हैं जिनके पद स्पर्शमात्र से करोड़ों विष्णु जन्मधारण करते हैं; देवर्षि नारद श्रीराधा का स्तवन करते हुये उन्हें लक्ष्मीरूपा, मातेश्वरी, रमा, आद्याशक्ति, मूलप्रकृति, इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्ति आदि घोषित करते हैं। श्रीराधा कृष्ण वल्लभाओं में तप्त-स्वर्ण-प्रभावशालिनी, सर्वादिशान्यतमा, भगवती, सृष्टिविधायिनी, विद्या-अविद्या, पराशक्ति, मायारूपा-त्रिदेवात्मिका, चिन्मयी तथा वृन्दावनेश्वरी बताई गई है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के ब्रह्मखंड, प्रकृति खंड तथा श्रीकृष्ण जन्मखंड में श्रीराधा शब्द की उत्पत्ति तथा उसका माहात्म्य वर्णित है। प्रकृति खंड में श्रीदामा के शाप से श्रीराधा वृंदावन में अवतीर्ण हुई, रमण-इच्छा से धावन करती हुई रासपरायण श्रीकृष्ण के निकटस्थ पहुँचने से 'श्रीराधा' कही गई। यद्यपि यहाँ आयान घोष से विवाह का आख्यान है तथापि श्रीराधा जी को प्रत्यक्ष रूप में श्रीकृष्ण की प्राणेश्वरी बताकर उनका दाम्पत्य दिव्य-नित्य और अनादि प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म खंड के अनुसार गोलोक में रासपरायण श्रीकृष्ण के प्राणों से ही उनकी प्राणेश्वरी श्रीराधा की उत्पत्ति बताई गई है। रासक्रीड़ारत श्रीकृष्ण के पार्श्व में अलौकिक कन्या श्रीराधा का आविर्भाव हुआ तथा वह नवोत्पन्न कन्या अलौकिक सौंदर्य से मंडित षोड़शी के रूप में प्रकट हो चराचर को विमोहित करने लगी; उसी के रोमकूपों से समान-सौंदर्यमयी गोपिकाओं का प्राकट्य हुआ (अ. ५) श्रीकृष्ण जन्म खंड़ में राधा शब्द की व्युत्पत्ति और माहात्म्य प्रकाशित करते हुये कहा गया है कि रकार के उच्चारण मात्र से अशुभ कर्मफलों का हरण होता है, आकार-गर्भमृत्यु-रोगादि संकटों से रक्षा करता है, धकार आयुवर्द्धक तथा आकार भवबंधन से मुक्तिदायक है। (अ. १३) इस प्रकार के माहात्म्य पद्मपुराण में वर्णित हैं।

चूंकि गौड़ीय गोस्वामियों ने पद्म तथा मत्स्य पुराणों में ही श्रीराधा तत्व को माना है (जीव गोस्वामी कृत ब्रह्मसंहिता) जिसके आधार पर कतिपय विदेशी विद्वानों ने श्रीराधातत्व को ब्रह्मवैवर्त पुराणमूलक बताते हुये उसे अर्वाचीन तत्व प्रतिपादित करने की भ्रामक चेष्टा की है। वैष्णव विद्वानों ने श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीराधा तत्व का मूल प्रतिपादित किया है; परन्तु यहाँ 'राधा' का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं होने से भ्रामक धारणाओं का प्रचार किया जाता है। श्रीमद्भागवत के दशम-स्कंध के तीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण की एक अनन्य प्रेमिका गोपी का उल्लेख हुआ है। वैष्णव-विद्वानों ने श्रीकृष्ण की इसी विशिष्ट गोपी का सम्बन्ध श्रीराधा से जोड़ते हुये अन्यान्य पुराणों से सर्वाधिक प्राचीन श्रीमद् भागवत में ही श्रीराधातत्व का मूल प्रतिपादित किया है। रासक्रीड़ारत गोपी परिकर को रासमंडल स्थल पर छोड़कर श्रीकृष्ण इसी प्रियतमा को एकाकी एवं अनन्त प्रेम का सुखानुभव कराने हेतु उसके साथ अंतर्ध्यान हो जाते हैं। विरहातुरा गोपवल्लभाओं ने प्रियतम

श्रीकृष्ण की खोज करते समय वृंदावनस्थ मार्ग में ध्वजावज्रांकुशजवादि से युक्त कृष्णकमल-पदों से संलग्न इस व्रजबाला के पदचिन्ह पहिचाने और कहा भगवान् हरि अर्थात् कृष्ण इसी अनन्य प्रेमिका गोपी द्वारा आराधित हुये हैं तथा उसी के परितोषन हेतु हमें त्यागकर उसके साथ एकाकी निवास में रत हैं :-

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः । (भाग. १०/३०/२८)

इस अनयाराधितः अथवा अनया आराधितः शब्द से ही राधा शब्द की उत्पत्ति हुई है। सनातन गोस्वामी ने वैष्णवतोषणी टीका में भागवतोक्त 'अनयाराधितो' पद की व्याख्या करने हेतु इसी के आधारभूत निम्न श्लोक की रचना की है :-

अनयैव आराधितः आराध्य वशीकृतः न त्वस्माभिः ।
राधयति आरध्यतीति राधेति नामकारणं च दर्शितम् ॥

कृष्णदास कविराज ने चरितामृत में लिखा है - कृष्ण वाञ्छा पूर्ति हेतु ही राधा द्वारा कृष्ण आराधित हैं और इस आराधने से ही राधा नाम की पुराणों में उत्पत्ति हुई है :-

कृष्ण वांछापूर्ति रूप करे आराधने ।
अतएव राधिका नाम पुराणे बखाने ॥ (आदि चतुर्थ)

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी टीका में 'नूनं हरिरयम् राधितः । राधां इतः प्रानः' द्वारा इसी तथ्य की स्वीकृति की है। यहाँ राध् धातु परिचरण या परिसेवन के तत्वार्थ में ग्रहण की गई है और सांकेतिक रूप में यह राधा तत्व से सम्बन्धित है।

श्रीमद्‌भागवत् के मर्मज्ञों का कथन है कि परमभागवत श्रीशुकदेव श्रीराधा के स्मरण मात्र से समाधिस्थ हो जाते थे; ऐसी स्थिति में उनके द्वारा श्रीराधा नामोच्चारण होने से श्रीमद्‌भागवत का सप्ताहांतक कथानुष्ठान श्रीशुकमुख से होना असंभव हो जाता। अतः श्रीमद्‌भागवत में उनके द्वारा श्रीराधा नामोच्चारण जानबूझकर नहीं किया गया; तथापि उनके द्वारा सांकेतिक रूप से कतिपय स्थलों पर श्रीराधा तत्त्व का निरूपण हुआ है। व्रजदासी-भागवत में भागवतोक्त दशम-स्कंध के रासपंचाध्यायी-वर्णित महारास-प्रकरण में श्रुतिपादित रसोवैसः परब्रह्म-परमानंद स्वरूप भक्तमनोहारी-लोकरंजक-लीलावतारी सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण के मुरली मनोहर, नट नागर, नृत्यगोपाल, गोपीजन वल्लभ, व्रज-वृंदावन-विहारी स्वरूप का चरमोत्कर्ष रासविहारी में निरूपित हुआ है। व्रजदासी जी ने रास पंचाध्यायी के तीसवें अध्याय में वर्णित परम विरहासक्त गोपियों द्वारा परमाह्लादिनी प्रिया श्रीराधा जी के अन्वेषण में भागवतोक्त अनुसृति की है तथापि 'प्रिया' शब्द का व्यवहार करते हुये उन्होंने महापुराण की श्रीराधा विषयक भ्रांति का श्लेषार्थक युक्तियुक्त तथा वक्रोक्तिपूर्ण निराकरण भी कर दिया है जो उनकी मौलिक कवित्व मति का परिचायक है :-

कृष्ण चरनन कैं चिह्न लषि, आगै भुव पर नारि ॥
आपस मैं बोली बिहसि, परम प्रेम अनुसारि ॥ ५६॥
बज्र कँवल अकुंस धुजा, जव जुत चिह्न संजुक्त ॥
पद पंकज अैं कृस्नं कैं, दैंन जक्त कौ मुक्त ॥ ५७॥
आगैं ढूंढत जात जांह, लषत भई सब वांम ॥
चरन चिह्न किहुँ प्रिया कैं, जगमगात अभिरांम ॥ ५८॥
<u>**आराधै इन्हहीं तिया, हरि ईस्वर भगवंत**</u> **॥**
<u>**स्यांम हम्हहिं तजि प्रस्न ह्वै, लै गय याहि इकंत**</u> **॥ ६१॥**
<u>**कृस्न हम्हारै धन महा, लै गइ ताहि छिनाय**</u> **॥**
<u>**भोग अकैली ही करत, नित ईछा अनुभाय**</u> **॥ ६४॥**
आगै चलि गौपी कोउ, कहत भई यौं बात ॥
इहां न वा तिय कैं चरन, उघरै भुव दरसात ॥ ६५॥
तातैं जांनि परत इहां, त्रिन अंकुर अधिकाय ॥
तिय कैं कोमल चरन मैं, गडत भवै दुपदाय ॥ ६६॥
जासौं अपनैं कंध हरि, लीनी प्रिया उठाय ॥
चरन चिह्न वां तिया कैं, इहां नाहिं दरसाय ॥ ६७॥
आगै चलि बौली कोउ, अहै सपी या ठांम ॥
बैंनी मैं निज पिया कैं, पुहप गुथै हैं स्यांम ॥ ७०॥

तबै बैंठि पिय यौं कह्यौ, चढि मौ कंध सथांन ॥
चढ़न लगी प्यारी जबै, हरि हुव अंतरध्यान ॥ ७६ ॥
सब गौपी ढूंढत चली, आई वांहीं ठांम ॥
मूर्छित पिय कै बिरह सौं, लषी प्रिया अभिरांम ॥ ८३ ॥
तब उन्ह परम प्रिया कही, सब निज बात सुनाय ॥
अचिरज सब गौपीन चित्त; हौत भयौ अधिकाय ॥ ८५ ॥

गोपी विलास परक महारास-प्रकरण के तैंतीसवें अध्याय के अंतर्गत ब्रजदासी जी ने निम्बार्क-साम्प्रदायिक निजी रसोपासनात्मक गोपी-भावानुसार महारास का मौलिक निरूपण किया है जो भागवतोक्त महारास से भिन्न है। यहाँ निम्बार्क-साम्प्रदायिक ब्रजरस केंद्रित रसोपासना सम्मत दंपति श्रीराधारमण का स्वकीयात्व से परिपुष्ट वृन्दावनस्थ महारास का वर्णन किया गया है जिसमें परमानंद-स्वरूप गोपीजन बल्लभ ब्रजबिहारी श्रीकृष्ण परमाह्लादिनी संयुक्त अपने युगल स्वरूप में श्रीराधा नटनागर रासबिहारी भी हैं जो रासनृत्य श्रमित अपनी रस-अधिष्ठात्री परमाह्लादिनी अंतरंगभूता आद्याशक्ति श्रीस्वामिनी श्रीराधाजी के श्रमकणों को अपने पीताम्बर से पोंछ रहे हैं; जिससे निम्बार्क-साम्प्रदायिक श्रीराधातत्व का सर्वोपरि इष्ट आराधन तथा उनके प्रति स्वकीयात्व भाव प्रतिपादित हुआ है।

ब्रजदासी - भागवत के इस महारास प्रसंग में नखशिख-आभूषणालंकृत, परमसुंदर-परममधुर गोपी प्राणबल्लभ, श्रीराधा नटनागर रासबिहारी का संगीत-राग-लय, वाद्य-छन्द-ताल में बंधा महारास वर्णन अद्वितीय बन गया है; श्रुति प्रतिपादित रसो वैस: परब्रह्म परमानंद युगल तत्व रासरत प्रियाप्रियतम के दर्शनानंद से भक्तों का मनमयूर भी नृत्य करने लगता है। लोकतत्व-समाविष्ट-लयात्मक तथा संस्कृतनिष्ठ मारवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा तथा बिराज छंद बंध की शब्द चित्रात्मक गत्यात्मक-ध्वन्यात्मक-रीत्यात्मक शैली में वर्णित युगल-रासबिहारी की रासलीला दर्शनीय है। महारास का यह वर्णन गोपी -भावपरक ब्रजरसोपासनात्मक तथा पूर्वोक्त निम्बार्कीय वाणी-परम्परानुरूप है तथापि यह श्रीमद्भागवत महापुराणोक्त परम्परा से भिन्न, ब्रजदासी जी की स्वानुभूति परक निजी मधुरोपासना की मौलिक तथा कलात्मक उद्भावना है :-

प्रभू रुप रासी । बड़ै ही विलासी ॥ घनस्यांम रंगं । प्रभा अंग अंगं ॥ १२
प्रसंनं वदंनं । सु सौभा सदंनं ॥ लसै मुक्टं सीसं । महा सौभ दीसं ॥ १३ ॥
लटै घुंघरारी । कपोलं बिहारी ॥ छुटै बार स्यांमं । जषं लौं सुठामं ॥ १४ ॥
ललाटं उदारं । सुनासा सुढारं ॥ बड़ै नैंन बांकै । मदं मैंन छाकैं ॥ १५ ॥
कटाछै अपारं । मनौं बांन मारं ॥ श्रुतं कर्णफूलं । झुमंकं सझूलं ॥ १६ ॥
फबी मोर वारी । सुबेसं सुढारी ॥ चढी उच्च भौंहैं। कटाछैं नमौंहै ॥ १७ ॥
मुषं मंद हासं । सुधा रुप भासं ॥ हदै ठां बिसालं । बनी मुक्त मालं ॥ १८ ॥
लरी दौय मुक्तं । बंधी ग्रीव जुक्तं ॥ वनं माल सोभै । चषं चाह लोभै ॥ १९ ॥
भुजाबंध हीरं । फुंदी झूम सीरं ॥ करं कंज पत्रं । तिहूं लोक छत्रं ॥ २० ॥
पहूची पहुंची । लरी मुक्त षंची ॥ अंगूठी नगंतं । झमाझंम कंतं ॥ २१ ॥
मणिंमाल मांनौं । नषं चौप जांनौं ॥ कटि ठौर छीनं । अलंकार लीनं ॥ २२ ॥
मनं मोहि लैंही । द्रिगं चैंन दैंहीं । लषैं नंद ध्रुवारं । मनोजं निछारं ॥ २४ ॥
लिये संग गोपी । बड़ी सौभ चौपी ॥ रच्यौ सांम रासं । अनूपं बिलासं ॥ २५ ॥
नचैं कृस्न ध्रुवारं । चहूं वोर नारं ॥ थट्यौ है संगीतं । रंगीनं जु रीतं ॥ २६ ॥
तथुं थुंग थुग्गं । धुमाकं धलुंग्गं ॥ झिनं .किंट झं झं । तुधिं दां म धं धं ॥ २७ ॥
तत्त ता त रंग्गं । थरी त्रक थग्गं ॥ बुलै सब्द ऐसै । दृढं ताल वैसै ॥ २८ ॥
गतिं लै सुधंगं । बढावै उमंगं ॥ करै गांन तानं । अनैकं विनांनं ॥ २९ ॥
बजावै बजित्रं । सुरं मेलि सित्रं ॥ दियै ग्रीव बाहं । अदाहैं अथाहं ॥ ३० ॥
कटिं ग्रीव मौरै । करं कंज जोरै ॥ कटाछै नवीनं । सचै हैं प्रवीनं ॥ ३१ ॥
कसै भौंह बंकं । भरै रीझ अंकं ॥ गतिं लैंत झूमैं । पलां छूट लूमैं ॥ ३२ ॥
करं कंज फेरैं । तिरं छाय हेरैं ॥ भलैं हाव भावं । करैं जुक्त चावं ॥ ३३ ॥
पटं पीत छोरं । गहैती सुतीरं ॥ लचंकंत लंकं । नचै है निसंकं ॥ ३४ ॥
डुलै पीठ बैंनी । द्रिगं चैंन दैंनी ॥ बजै नूपुरंगं । पदं तार संगं ॥ ३५ ॥

चरंनं धरंनं । फिरंनं करंनं ॥ गतिंभेद बाढै । चितं चौप चाढै ॥ ३६ ॥
छकै वाह बोलै । हसै औ कलोलै ॥ भ्रमं जौरि हाथं । प्रिया पीव साथं ॥ ३७ ॥
घनं बीज जौरी । छबिं स्यांम गौरी ॥ भ्रमंतं जुतंतं। दुहु है श्रमंतं ॥ ३८ ॥
थकैं बैठ छांही । पिया कंठ लांही ॥ लता प्रेम प्यारी । सुभं सौभ धारी ॥ ३९ ॥
प्रतीतं सुमूलं । लगै चौप फूलं ॥ मनोर्थं फलैंहैं । फलं सौभ लैंहैं ॥ ४० ॥
बढं बार वेलं । रसं नीर मेलं ॥ रिझं पत्र गौभं । नवं नित्त सौभं ॥ ४१ ॥
लपंटिं रसालं । सुस्याम तमालं ॥ श्रमंतं पियारी । लपै श्री बिहारी ॥ ४२ ॥
जबै आप पांनं । पटं लैं सुजांनं ॥ पुंछै बूंद स्वैदं । चितं चाह भेदं ॥ ४३ ॥
निहारं बिहारं । थकै चंद तारं ॥ थकै पांन पांनी । निसाहुँ लुभांनी ॥ ४४ ॥
थिरं है चलांनं । चरं थाकि थानं ॥ सुरं कैं विमानं । छयै आसमानं ॥ ४५ ॥
धनुं बैन गानं । सुनिं थांन थानं ॥ मुनिं जोगं ध्यानं । दृढ़ सौ छुटानं ॥ ४६ ॥
बढ्यौ रंग भारी । बृज दासि वारी ॥ लप्यौ माह रासं । हदै गौपि भावं ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्ण चरित्र की लीलाएँ

श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम-स्कंध-पूर्वार्द्ध में रसोवैसः श्रुति द्वारा प्रतिपादित परमानंद-स्वरूप लीलावतारी सच्चिदानंद भगवान् श्रीकृष्ण के बाल-पौगंड-कैशोरवयात्मक क्रमानुसार उनकी अनेकानेक भक्त मनोहारिणी प्रेमपरक लीलाएँ वर्णित हैं। साथ ही यहाँ पूतना, शकट, तृणावर्त, वत्स, बक, अघ, धेनुक, प्रलम्ब आदि अनेक असुरों एवं अत्याचारी निरंकुश कंस के आध्यात्मपरक उद्धार से सम्बधिंत लोकोद्धारक-असुर संहारक लीलाओं के आख्यान भी वर्णित हैं। वैष्णवों की प्रेमाभक्ति में कृष्ण के बाल चरित्र तथा ब्रजबिहारी नंदलाल, गोविन्द-गोपाल श्रीकृष्ण की प्रेमपरक रहस्यात्मक लीलाओं का अधिक महत्व है। सभी वैष्णव-सम्प्रदायों में ब्रजगोपाल की 'गोवर्धन-धारण-लीला' का भी महत्व अद्यावधि वर्तमान है। ब्रजविहारी गोपालकृष्ण की भक्त मनोहारिणी, अध्यात्म-आरोपित, प्रेमपरक-प्रतीकात्मक-लीलाओं में गोचारण, गोदोहन, गोरसदान, चीरहरण आदि लीलाओं के सरस प्रसंग हैं। तदनन्तर इसी क्रम में कैशोरवयात्मक लीलाओं में व्रज-वृन्दावनस्थ उभय-रसात्मक नित्यबिहार के कथात्मक लीला-आख्यान आते हैं जिनमें वेणुगीत, रास-महारास आदि के लीला प्रसंग हैं - भागवतोक्त कथा में इन सभी लीलाओं का रोचक वर्णन हुआ है।

दशम-स्कंध-उत्तरार्द्ध में द्वारिकाधीश के रूप में श्रीकृष्ण के धर्मसंस्थापनार्थ अत्याचारी-निरंकुश राजाओं के संहारक आख्यान समाविष्ट हैं जिनमें जरासंध, शिशुपाल, शाल्व, भौमासुर आदि के युद्धों तथा रूकमणी आदि कृष्णपट्टमहिपियों के वैवाहिक प्रसंग निहित हैं। श्रीमद्भागवत कथा के रसिक-श्रोताओं के लिए ब्रज-वृंदावन-बिहारी गोपालकृष्ण की भक्तमनोहारिणी लोकरंजक लीलाओं का ही अधिक महत्व रहा है। ब्रजदासी जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के इन लीला प्रसंगों के कथात्मक अनुवाद में भागवतोक्त अनुसृति ही की है तथापि उन्होंने अपनी कवित्वशक्ति, भक्तिभावना तथा कलात्मक मौलिक कल्पना से ऐसे प्रसंगों को और अधिक चित्ताकर्षक बना दिया है। लोकभाषा माध्यम से इन लीलाओं का छन्दात्मक पद्यानुवाद अत्यंत सरल, बोधगम्य तथा लोकग्राह्य बना दिया गया है। 'गोवर्धन लीला' का उद्धरण द्रष्टव्य है :-

(गोवर्धन - लीला)

सुक कहत कि यौं मैघ सब, बासव आग्यां पाय । ब्रज ऊपर बरपत भयै, जलधारा अधिकाय ॥
झमाझमी बिजुरीन की, गरजत सबद भयांन । मैघ पवन प्रेरक गडा, बरषत है अप्रमांन ॥
अरु बरपत अति जौर सौं, थूनी समं जलधार । तासौं भुव बूडत भई, उमडी नीर अनपार ॥
बउत पवन चलिकैं बउत, बरपन लाग्यौ नीर । तातैं लगि अति सीत हुव, गौपी गौप अधीर ॥
बिकल हौय प्रभु कैं सरन, आयै सब बां बार । थरथर कांपत सीत सौं, अरु भय कैं अनुसार ॥
अप अपनैं बछरांन कौं, पैट तरैं लै गाय । अति कांपति प्रभु कैं सरन, आई सब इक ठाय ॥
ब्रजबासी बौलै सबैं, हे श्रीकृस्न कुमार । तुम्ह गौकुल कैं नाथ हौ, करहुँ रछा सुभ द्वार ॥
बरषा दौष सिलांन की, ब्रजजन विकल निहारि । जांनि गयै भगवांन किय, इंद्रीस अधिकारि ॥
इहि ब्रज मैरो धांम है, मैरे आस्रय आंहिं । या ब्रज की रछया भलैं, करिहौं अबैं उमांहिं ॥
इहि बिचारि गिरिराज प्रभु, धरत भयै निज पांन । ज्यौं बालक छतनां उचकि, कर मैं लैत निदांन ॥
प्रभु बोलै हे गौपगन, हे मो माता तात । गायन जुत या नग तरैं, बैठहुँ आय अग्यात ॥
सबकैं दैषत सात दिन, गिरवर धरि निज हाथ। ब्रजबासिन आनंद दिय, श्रीगौवरधन नाथ ॥

ब्रजदासी जी ने श्रीमद्भागवत महापुराणोक्त सभी लीला प्रसंगों को भाषानुवाद की अनुपम कुशलता से अत्यंत सरल तथा बोधगम्य बना दिया है। श्रीमद्भागवत की धारावाहिक कथा का ऐसा लोकभाषी अनुवाद दुर्लभ्य है। लीला वर्णन क्रम में भगवान श्रीकृष्ण की रहस्यमयी अध्यात्मपरक तथा प्रतीकात्मक दिव्य प्रेमात्मक लीलाओं की सरलतम लोक-प्रस्तुति करना ही उनके काव्य का प्रयोजन रहा है। अनन्य-शरणागति की प्रेरणा देने वाली भागवतोक्त 'चीर हरण' लीला का भाषानुवाद भी द्रष्टव्य है :-

(चीर - हरण)

सुक कहत कि रितु हैम मैं, अगहन मांसहि मांहिं । गौपी सौरह सहस मिलि, ब्रत आरंभ रचांहिं ॥
अैकासन भौजन करत, प्रातहिं करत सिनांन । दैवी कात्यायनी कौ, पूजत भलैं सुजांन ॥
अरुनोदय कैं समैं मैं, करि विच जमुना स्नांनि । मूर्ति भवांनी रेत की, रचि पूजत हित ठांनि ॥
धूप दीप फल दल पुहप, चांवल मलय सुगंध । इन्ह करि पूजा करत इहि, मंत्र पढत सुषसंध ॥
महाजोगिनी ईस्वरी, कात्यायनि महामाय । हौहुँ हम्हारै पति सुभग, नंदहिं पुत्र सुषदाय ॥
प्रात समैं इक दिवस उठि, गहि पांनिन सौं पांनि । गावत कृस्नहिं चरित कौं, करिवैं चालि सिनांनि ॥
धरि धरि बस्त्र किनार जल, पैठि जु जमुनां मांहिं । कृस्न कुँवर आवत भयै, बां बैरां उहिं ठांहिं ॥
बस्त्र सवनकैं लैं चढै, तरु कदंब परि स्यांम । अरु अैसैं बौलत भयै, बानी अति अभिरांम ॥
हे अस्त्री आवौ इहां, निज निज पट लै जाहुँ । म्हैं हांसी नांहिंन करत, सत्य कहहूँ आहुँ ॥
इहै बचन श्रीकृस्नं कौ, सुनि गौपी मुसकाय । प्रेम मगन लज्जित भई, आपस मांहिं चिताय ॥
जल मैं तैं निकसी नांहिं, कांपत सीत प्रभाय । कंठहिं लौं जल मैं परी, बौली बचन सुनाय ॥
नंदराय कैं पुत्रहिं तुम्ह, करहुं न इति अनीत । इहां आय कैं दैहुं पट, हम्ह कांपत लगि सीत ॥
अै हौ सुंदर स्यांम हम्ह, सबै तुम्हारी दासि । तुम्ह कहिहौ करि हैं सोइ, हे प्रीतम सुषरासि ॥
इहि सुनिकैं श्रीकृस्न जू, जौ तुम्ह सब मौं दासि । तौ म्हैं कहूं सु करौ पट, लैहुं आय मौ पासि ॥
तब सब कन्या सीत सौं, कंपित लाज मिटाय । निकसी बाहरि नीर तैं, कर सूं अंग दुराय ॥
तबै प्रभु उन्ह चित सुध लषि, बोलै पट धरि कंध । तुम्ह नित नागी न्हात हौ, करिकैं ब्रत कौ बंध ॥
तातैं जल कैं अमर की, भई अवग्यां जांनि । बांकौ करौ प्रनांम सब, जोरि जोरि बिय पांनि ॥
बांसौ छमा कराय कैं, निज अपराध सुभाय । अप अपनैं पट लीजियैं, निकट हम्हारै आय ॥
उन्हकौं करत प्रनांम लषि, प्रसंन हौय भगवांन । दैत भयै पट सबन कौं, पूर्न प्रीति पहिचांन ॥

(वेणु गीत)

श्रीमद्भागवत महापुराणोक्त 'वेणुगीत' लीला आख्यान की ब्रजदासी जी कृत छन्दानूदित अनुसृति भी उल्लेख्य है। रसो वैसः लीलावतारी परब्रह्म-परमानंद-स्वरूप श्रीकृष्ण अपनी योगमाया वेणु के स्वर से अपने भक्तों को लीलास्वादन की अप्राकृत प्रेरणा देते हैं। भागवतोक्त वर्णनानुसार ब्रजदासी जी ने भगवान के वेणुवादन से विरह-उद्दीप्त गोपियों की उन्माद दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इस वेणु से चराचर विमोहित हैं - पवन-लता-वृक्ष, यमुना-कछार, कृष्णसार-मृगियों; गौ-गौवत्स तथा अप्सरा-देव-देवांगनाओं आदि पर भी वेणु-स्वर का मार्मिक प्रभाव चित्रित किया गया है। ब्रजदासी जी ने इस लीला-आख्यान को गोपियों द्वारा संवादात्मक शैली में प्रकट किया है जिससे कथा में नाटकीयता आ गई है। इसी क्रम में यहाँ मुरली के प्रति व्यक्त वक्रोक्तिपूर्ण उपालम्भ तथा मुरली के मूलाधार 'बांस' तथा उसी के माध्यम से यमुना जी के प्रति भी वक्रोक्तिपूर्ण उत्प्रेक्षा के कलात्मक प्रसंग से ब्रजदासी जी की कथात्मक शैली चित्ताकर्षक बन गई है :-

फैरि औरि गौपी कौउ, बौली या अनुभाय । अहे सषी मुरली काह, कियौ पुन्य अधिकाय ॥
अधर सुधा श्रीकृस्नं कौं, करत बैंन इहि पांन । वां रस कैं तौ जोग्य हम्ह, हैं त्रिय नवल सुजांन ॥
जा सरिता कैं नीर सौं, सिंच्यौ बैंनु कौ बंस । सौ सरिताहू हौत हैं, हरषित महा प्रसंस ॥
बांमै प्रफुल्लित पंकजनि, मनु रुमांच आनंद । अलि गुंजत है सौ मनौ, उच्छव गांन सुछंद ॥
अरु मुरली जा बांस की, सौहू हरषित बांसु । तिन्ह मैं तैं रस चुवत सौ, है आनंद कै आंसु ॥

रास और महारास में इन प्रेमात्मक लीलाओं में निहित रस की पराकाष्ठा होती है। पूर्वोक्त प्रसंगानुसार उल्लेखनीय है कि ब्रजदासी जी ने भागवतोक्त रासलीला कथा की रोचक अनुसृति करते हुये निजी रसोपासनात्मक निम्बार्कीय-परम्परानुसार गोपियों के मंडल में श्रीयुगल बिहारी नटनागर श्रीराधावर का महारास भी वर्णित किया है।

कलात्मक अवतार चरित

श्रीमद् भागवत महापुराणोक्त चौबीस अवतारों के क्रम में ब्रजदासी-भागवत में अनूदित भगवान् नृसिंह जी का अवतार चरित विशेषरूप से उल्लेख्य है जहाँ ब्रजदासी जी ने वीर, रौद्र, भयानक, अद्‌भुत एवं वीभत्स रसों की विषयानुकूल लोकभाषा में तथा तदनुरूप कथात्मक एवं संवादात्मक शैली में काव्यकलात्मक अभिव्यक्ति की है; यहाँ उत्प्रेक्षा-रूपक-संदेह अलंकारों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है :-

हिरण्यकस्यपु सुनि इह कह्यौ, बचन रीस करि ण्याद ॥ तू निश्चै चाहत मर्यौ, बहुँत करत बकवाद ॥ १७॥
आवत मृत्यु मनुष्य की, नैरी औसर पाय ॥ तब मुषहूं तैं बौलहीं, भौंडे बचन कुभाय ॥ १८॥
भाग्यहीन तू कहत है, मो तैं ईस्वर और ॥ सौ बताहुँ मौकौ अबै, बह कौनैं ठौर ॥ १९॥
कहत भयै प्रहलाद जू, है सब ठां भगवांन ॥ हिरण्यकस्यपु बोल्यौ क्यूं, नहिं बिच थंभ सथांन ॥ २०॥
इहि सुनि फिरि प्रहलाद जू, बौलै बचन सुढार ॥ मोकौ दीसत है सही, थंभहूं मधि करतार ॥ २१॥
हिरण्य कस्यपु बोल्यौ कि म्हैं, काटत हूं तौ सीस ॥ जा हरि कै तू सरन सौ, राषहुँ बिस्बाबीस ॥ २२॥
यौ पुत्रहिं कहि दुर्बचन कर, लैकर फिरि तरबार ॥ सिंघासन तैं कूदि किय, मुष्टि थंभहिं प्रहार ॥ २३॥
तांह भयंकर सबद हुवै, प्रगट थंभ बिच आय ॥ तासौं सब ब्रह्मांड इहि, फटन लग्यौ थहराय ॥ २४॥
ब्रह्मादिक बही सबद सुनि, कंपित हुवै बहिं बार ॥ जान्यौ निज निज लोक कौं, नास भयौ निरधार ॥ २५॥
हिरण्यकस्यपु देष्यौ कि अैं, थंभा तैं प्रगटाय ॥ किंअै बिचार नाहिं सिंघ, रु नहिं मनुष दरसाय ॥ २९॥
हिरण्यकस्यपु निजू चित्त मैं, अैसौ करत बिचार ॥ लषत भयानक रूप जो, श्री नरसिंघ उदार ॥ ३०॥
ताअै सुबरन सम अरुन, नैत्र रंग निरधार ॥ अंग कंठ कै रोम फर, कत मुप रहै पसार ॥ ३१॥
महा भयंकर दाढैं, हैं जिभ मनु तरबारि ॥ ठौढी भौंह डरावनी, ऊंचै कांन सुढार ॥ ३२॥
सपरस करै जु स्वर्ग कौ, अैसौ उच्च सरीर ॥ भारी गरदन बछिसथल, कटि पतरि महाबीर ॥ ३३॥
सैत रोम भुज है बडी, नपही आयुध भाय ॥ मनहुँ नग की कँदरा मुष, पसरायौ दरसाय ॥ ३४॥
चक्रादिक बहु सहस्त्र हैं, भुजांन मधि बिकरार ॥ तिनसौं डरि भाजत भयै, सकल असुर वहिं वार ॥ ३५॥
तब असुरहिं लीनौं पकरि; श्रीनरसिंघ उदार ॥ काटै कटत न षल त्वचा, बज्रहूं कै अनुसार । ४७॥
उदर असुर कौं नषन सौं, फारत भयै रिसाय ॥ सांपहिं जइसै गरुड़ जू, फारत बार न लाय ॥ ४९॥
दैत्य अंत निज कंठ मैं, लई पहरि ज्यौं माल ॥ जइसै गज कौ मारिकैं, सौभित सिंघ रसाल ॥ ५१॥
किय प्रहार नरसिंघ जू, हुव तिहँ सबद सटाक ॥ जासौं फटि गय मेघ जे, घिरैहुँ तैं बिच नाक ॥ ५३॥
प्रभू द्रिष्टि की जोति सौं, सूर्जादिक ग्रह कांति ॥ छीन भई उहिं बार सब, असुरन कौ उतपांति ॥ ५४॥
बिकल भयै सामुद्र सबै, प्रभु कै स्वांस प्रभाय ॥ अरु गर्जन कैं सबद सौं, डरत दिगज थहराय ॥ ५५॥
इत उत है गयै स्वर्ग तैं, सबहीं देब बिमांन ॥ प्रभु पायन कैं जोर सौं, कंपत प्रिथवी सथांन ॥ ५६॥

श्रीमद्‌भागवत महापुराण में असुरों तथा अत्याचारी-निरंकुश नृपों के संहारिक तथा वैवाहिक-प्रसंगों से सम्बंधित अनेक घटनाओं के संदर्भ में कथात्मक शैली में अगणित युद्धों का वर्णन हुआ है। सभी अवतारों की ऐसी असुर-संहारक लीलाएँ भी हैं जिनमें ब्रजदासी जी ने पूर्वोक्त प्रकार के रसों की अभिव्यंजनाएँ की हैं; तथापि दशम स्कंध उत्तरार्द्ध के शाल्व-उद्धार आख्यान में ब्रजदासी जी ने महापुराणोक्त वर्णन की लीक छोड़कर अपनी मौलिक कल्पनानुसार छंद-भुजंगी, मोतिदाम (मौक्तिक दाम), पद्धरी आदि रासो-परम्परा के छन्दों में प्राचीन चारण-शैली के अनुरूप युद्ध वर्णन किया है; जो उनके मौलिक कवि-वर्चस्व का प्रतिपादक है; प्रद्युम्न सुत साम्ब के नेतृत्व में यादव तथा महावीर शाल्व के भीषण-युद्ध में वीर, रौद्र, अदभुत रसों का परिपाक तो हुआ ही है तथापि यहाँ वीरगाथाओं की भांति प्रयुक्त ध्वन्यात्मक-औजवर्द्धक तथा द्वित्यवर्णात्मक शब्दावली, चित्रात्मक शैली, वक्रोक्तिपूर्ण चांरु-चमत्कृति, अतिशयोक्तिपूर्ण कथात्मक-वर्णन, मोतीदाम-छन्द-बंध, अनूठी-उत्प्रेक्षाओं, तथा कमंध-युद्ध-प्रसंगों से विलक्षणता आ गई है। औजपूर्ण भाषा-सौंदर्य, अंत्यानुप्रास तथा प्रत्यक्षानुभूतिपरक आयुध-वर्णन से काव्यात्मक विशेषता उल्लेख्य है :-

मच्यौ जुद्ध पूर दुहू दिसि सूर ॥ करैं ललकार सुबोलै गरूर ॥
हकारत बीर महा दुहु वोर ॥ गदा धम धम्म धमंकत जोर ॥ ८॥
करैं ललकार महाभट्ट बंक ॥ सुसज्जन प्रीति मिटी सब संक ॥
परै तब टूटि जु बारन दंत । मनौ घन मांहि लसै बग पंत ॥ ९॥
लगी गज सुंडन पै जु सिंदूर ॥ मनौ उठि जागि दवागि सपूर ॥
अरी गन कौं जु मिलावहिं धूर ॥ परै भट षैत वरै तिहि हूर ॥ १०॥
लरै रन दैत महारन आज ॥ परै धर सूर बड्डै गजराज ॥
गहै दुहु हत्थ रु मारत षाग ॥ सु उड्डुत ढाल मनौ नभ लाग ॥ ११॥

भई तब मार कसै धनुवांन ॥ महाभुज ऐंचि तहां लगि कांन ॥
बहै षग सूंल त्रिसूंल अपार ॥ गिरै धर झूझि उठै षगधार ॥ १३॥
तहाँ मचि तौमर सैलहिं मार ॥ गहै हत्थ सत्थ अवत्थ कुठार ॥
तुटै रथ वीर गिरैं असवार ॥ फुटै सिर हत्थ लियै जु झुंझार ॥ १४॥
करै दुहु वाह महा वलवीर ॥ तहां धुकि धाय पछारत धीर ॥
धरै रथ भुज हनै भुव मांहिं ॥ पछारत कप्पर जौं सिल ठांहिं ॥ १५॥
गहै कर सिंधुर दंत उषारि ॥ किंधौ घन तैं बगपंत बिडारि ॥
लयै भुज वारन वीर उठाय ॥ मनौं हनुमंत द्रुनां गिरि पाय ॥ १६॥
जयै जय मैंन जयै सुर काज ॥ रिझै लषि कौतिग दैव समाज ॥
गहै लट पट्ट झपट्ट चपैटि ॥ मरै षल छूटि परै धर लैटि ॥ २३॥
लगै तन लौह भभक्कत घाव ॥ मनौं जल मैं घट बूडत भाव ॥
चलै रण ठैलत पैलत सैल ॥ परै गज बाज सुषाय उथैल ॥ २४॥
भयैदुहु वीर उतारय अब्ब ॥ परी अति मार जुटै भट सब्ब ॥
धमाधम गद्द झड़ाझड़ पग्ग ॥ कटाकट तौमरि घोपरि लग्ग ॥ २५॥
बड़ाबड़ बज्जिय मुंड परिघ्घ ॥ षुलै षल सीस गई गिर पघ्घ ॥
झड़ाझड़ ग्रीधन पंष अकास ॥ दड़ादड़ मूंड गिरै कर जास ॥ २६॥

ब्रजदासी-भागवत का मोहनी-अवतार चरित भी उल्लेख्य है। समुद्र-मंथन से उद्भूत अमृत-घट की अमरत्वदायिनी सुधा के परस्पर बँटवारे से उत्पन्न देवासुर संग्राम की पृष्ठभूमि में शरणागत देवताओं को ही छद्मपूर्णनीति से अमरत्व प्रदान करने के प्रयोजन से भगवान् श्रीविष्णु ने महायोगेश्वर भगवान् शिव को भी विमोहित कर देने वाला महामोहिनी रूप धारण किया था। ब्रजदासी जी ने भागवतोक्त अनुसृति से ही उक्त आख्यान की कथा में मोहिनी जी का प्राकट्य दर्शाया है :-

असुर अमृत घट दैपि कैं, लै गय बैग छिनांय । तबै देवता दुषित है, गयै बिस्नुं सरनांय ॥
अधिक दीनता सुरनि की, लषि कैं क्रिपा निधांन । करता सेवग कार्ज कैं, यौं बोलै भगवांन ॥
अहौ देवता करहुँ मति, षेद आप चित्त मध्य । माया करिकैं करहुँगौ, तुम्हरौ कार्ज प्रसध्य ॥
असुर अमृत कैं कलस कौ, लै गय हुतै छिनाय । कलह करत तैं आप मिलि, पहिलैं इन्ह अनुभाय ॥
जांनन सर्व उपाय कैं, बिस्नुं समैं तिहिं आप । करत भयै अदभुत महा, अस्त्री रूप सथाप ॥
सुंदर स्यांम अनूप छबि, अंग अंग अभिरांम । झमझमात जौबन नवल, भयौ मोहनी नांम ॥

तथापि धारावाहिक इस कथाक्रम के अगले ही चरण में उन्होंने भागवतोक्त अनुसृति से किंचित् विलग होकर कवि-वचनों की परम्परानुसार मोहिनी जी के अनन्त-सौंदर्य-सम्पन्न, चराचर-विमोहक, दिव्य-स्वरूप का रीतिसिद्ध शैली में, संस्कृतनिष्ठ श्रृँगारिक उपमानों से अलंकृत, अत्यंत कलात्मक तथा स्वानुभूतिपरक नखशिख वर्णन किया है जो ब्रजदासी जी की तत्कालीन रीतिपरक काव्यकला का अनुपम उदाहरण है। उपमा-उत्प्रेक्षा-रूपक अलंकारों से संयुक्त रूपकातिशयोक्ति की यह शब्दाचित्रात्मक तथा कलात्मक वक्रोक्ति एवं चारु चमत्कृति विलक्षण रूप से कवि मन मोदक तथा भावुक-भक्तजनों के लिये परम आह्लादकारी है। भगवान् विष्णु का यह मोहिनी रूप संस्कृत की श्रृँगारिक काव्य परम्परानुसार सर्वश्रेष्ठ नायिका का है तथापि इस प्रसंगानुसार दिव्य-स्वरूपिणी श्रीश्यामा का है जो शुभ्रवसना-शुभ्र-आभूषणों से सुसज्जित, परम-यौवना, सद्गुणालंकृता, परम सुन्दरी है; जिसका दर्शन उद्दीपनकारी न होकर भक्तजन-आह्लादकारी तथा रसोपासनात्मक माधुर्य-भाव की निष्काम-दृष्टि से परमानन्ददायी होता है। अखिल-ब्रह्मांड नायक भगवान् विष्णु के इस चराचर विमोहक दिव्य-स्वरूप को ब्रजदासी ने "सुमोहं सुरूपं। अनंत अनूपं" बताकर तथ्यात्मक प्रतिपादन कर दिया है। ब्रजदासी ने यहाँ नखशिख के उपमानों तथा आभूषणों का रीतिपरम्परागत श्रृँगारिक वर्णन किया है तथापि लोक प्रचलित आभूषणों तथा आंगिक सज्जाओं से उन्होंने यहाँ इसे चित्ताकर्षक लोकरंग भी दिया है। ब्रजदासी द्वारा रूपांकित मोहिनी जी की इस शब्द चित्रात्मक-अनूठी कलाकृति ने किशनगढ़ की तत्कालीन चित्रशैली को निस्संदेह प्रभावित किया होगा; तथा यह संभावित सत्य है कि विश्वविख्यात 'बनीठनी' की चित्राकृति बनाने वाले अद्यावधि प्रसिद्ध नागरीदास जी के तत्कालीन दरवारी चित्रकार निहालचंद जी ने अपनी चित्रात्मक कृति 'बनीठनी' की पृष्ठभूमि में इसी से प्रेरणा ली होगी। नागरीदास जी की विमाता ब्रजदासी जी द्वारा वर्णित शब्द चित्रात्मक मोहिनी रूप का दर्शन कर मर्मज्ञ चित्रकार स्वयं निर्णय करेंगे :-

प्रसंनं वदंनं । सुसोभा सदंनं । छूटै बार सीसं । महासोभ दीसं ।
बडे नैंन बांके । बप्र दंत वांके । चढी ऊँच भौहैं । मनौं चाप सौहैं ॥ क॥

छबि धाम नासा । सुगंधाय स्वासा । अछै दोउ जुल्फैं । विषै जुक्त हुल्फै ।
ससी अर्ध भालं । कपोलं रसालं । करें कंज पंत्रं । हथैली जु तंत्रं ॥ ख॥
भुजा चंप डारं । अदा हैं अपारं । उरोजं नवीनं । कटि ठौर छीनं ।
नितंबं सुढारं । उरं ठां उदारं । जंघ षंभ केरं । पदं मुक्त फेरं ॥ ग॥
नषं कांति ऐसी । मणी औप जैसी । सजै हैं सिंगारं । अनैकं प्रकारं ।
मिहीं पीत सारी । लरी मुक्त वारी । अलंकार अंगं । जथा जोग बंगं ॥ घ॥
बन्यौ भाल बैनां । द्रिगं चैन दैनां । फब्यौ फूल सीसं । रबिं जोत दीसं ।
लरी मुक्त मांगं । छुटी केस जागं । विचं भौंह टींकी । मुक्तं फूल नीकी ॥ ङ॥
श्रुतं कर्न फूलं । नथं मूल रूपं । छरा पोति ग्रींवा । सुभं सोभ सींवा ।
तरै जास झुंक्कं । लरी दोय मुंक्तं । कली चंप सोभै । चपैं चाहिं लोभै ॥ च॥
हराओ हियैलैं । अनीं मैंन ठेलैं । भुजा बंध हीरं । फुंदी पूच सीरं ।
चुरी नील छाजं । कंकनं बिराजं । बिछं और ढारं । झुमंकं बिहारं ॥ छ॥
पहूंचू अगूंठी। मिहींदी अनूंठी । कटिं किंकनी है । निबी बंधनी है ।
गरैं फूल माला । चलै मंद चाला । करं कंज फेरै । तिरंछाय हेरै ॥ ज॥
तुला पाय बाजं । बजै साज बाजं । झरैं फूल केसं । लंगैहा सुदेसं ।
लज्जा जुक्त हासं । भ्रकुंटी बिलासं । चित्तौनं अनूपं । कटाछं संजूपं ॥ झ॥
झुकायै सुनैंना । बतायै सुसैंना । भक्तिजुक्त वानी । कहै जू सयानी ।
धरैं रूंप ऐसौ । कहै कौनु जैसौ । सुमोहं सुरूपं । अनंन्त अनूपं ॥ ञ॥

तदनन्तर मोहिनी रूप भगवान् के द्वारा अमृत बांटे जाने के प्रसंग में ब्रजदासी जी ने श्रीमद्भागवत पुराणानुसार ही भगवान् का हावभावपूर्ण मधुर चेष्टाओं से युक्त सरस-श्रृँगारिक रूप वर्णन किया है। उन्होंने अपने अनुवाद कौशल तथा मोहिनी रूप की प्रासांगिक श्रृँगारिक-व्यंजनाओं से, इस कथा वर्णन को अत्यन्त रोचक एवं लोकरंजक बना दिया है :-

ताही समैं सरूप तिय, धरि आयै करतार । करत भयै जिन्हकौं असुर, दरस परम उदार ॥
दरसन करि लागै कहनि, असुरन मौहित कांम । रूप तेज जौबन लष्यौ, या तिय कौ अभिरांम ॥
अरु पूछन लागै कि तुम्ह, कौनुं कांह तैं आय । का चाहत है नैत्र तव, कमल पत्रनि अनुभाय ॥
करत हम्हारै चित्तहिं कौ, तूं मौहत है बाल । हौ तुम्ह किहिं बड़भाग की, अस्त्री परम रसाल ॥
इहिं हम्ह जांनत हैं कि किहुं, तौ सपरस किय नांहिं । सिध चारन गंधर्व सुर, असुरनि हूँ कौ नांहि ॥
अमृत कलस काजै करत, कलह सकल हम्ह आज । है हम्हरौ कल्यांन सौ, तू करि बाल इलाज ॥
लै अमृत घट हाथ मैं, करि कटाछि मुसिकाय । असुरनि सौं बौलत भयै, प्रभु ऐसै अनुभाय ॥
म्हैं कम ज्यादा दैहुँ सौ, अमृत जाहुँ पिवाय । ताही मैं सब प्रसंन है, तौ बँट करूँ सुभाय ॥
बचन मौहनी जू इहै, असुरन कह्यौ सुनाय । सौई मान लेतैं भय, हौ मौहित या भाय ॥
पगनि मंद गति जु घूंघरु, बाजत सब्द रसाल । पंजन सम चंचल चपल, मदजुत नैत्र बिसाल ॥
चितवनि हास कटाछ जुत, सुंदरि रूप निहारि । सुर असुरनि की पांति किय, जुदी जुदी उहिं बारि ॥
बचन कटाछिन सौं प्रसंन, करि है दयतन पास । दगा दैय प्यावत भई, सुरनि सुधा लषि दास ॥

श्रीमद्भागवत के सरल-श्रृँगारपरक प्रसंगों में तृतीय स्कंध का कर्दम-देवहूति-विहार, अष्टम स्कंध का विष्णु मोहिनी रूप को देखकर महायोगेश्वर भगवान शिव का विमोहन, दशम-स्कंध-उत्तरार्द्ध का उषा-अनिरुद्ध-मिलन आदि उल्लेखनीय हैं जिनके भागवतोक्त अनुवाद में ब्रजदासी जी ने श्रृँगार रस का काव्य-कलात्मक पद्यानुवाद किया है; विषय-विस्तृति की दृष्टि से उनका प्रसंग असंभावित है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में उपदिष्ट विविध उपासनात्मक ज्ञान तथा भक्ति वैराग्य - सत्संग, योग-साधनादि के उपदेशों का अद्यावधि लोकोपकारी महत्व है। इस दृष्टि से श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में भगवान कपिल द्वारा उपदिष्ट भक्तियोग, प्रकृतिपुरुष विवेक, अष्टांग-योग, भक्तिमर्म, देह-गेह-आसक्ति से सम्बंधित कथात्मक प्रसंग; चतुर्थ स्कंध में वर्णित-पुरंजनोपाख्यान, प्रचेताओं को नारद जी का उपदेश, भवाटवी-कथाख्यान; षष्ठम स्कंध के अजामिलोपाख्यान में विष्णुदूतों द्वारा उपदिष्ट भागवत धर्म निरूपण, विश्वरूप जी द्वारा उपदिष्ट नारायण-कवच; सप्तम स्कंध में उपदिष्ट-मानवधर्म, वर्णधर्म-स्त्रीधर्म, ब्रह्मचर्य-वानप्रस्थ के नियम ग्रहस्थ - सदाचार तथा एकादश स्कंध में उपदिष्ट माया-ब्रह्मविषयक ज्ञान तथा कर्मयोग निरूपण, भगवान् की पूजाविधि, अवधूतोपाख्यान, हँस-सनकादिक भगवान् के उपदेश, भक्ति योग-ध्यानयोग, सत्संग-महिमा, भक्ति ज्ञान - यमनियमादि साधनों का वर्णन, ज्ञान-कर्म-भक्तियोग तथा भागवत धर्मों का निरूपण आदि

के प्रसंग बहुचर्चित हैं। ब्रजदासी भागवत में परम विदुषी ब्रजदासी जी ने भागवतोक्त इन उपदेशों का लोकभाषा के माध्यम से सरल-सहज बोधगम्य व्याख्यात्मक पद्यानुवाद किया है। यहाँ उन्होंने लोकोद्धारक परम उपदेष्टा संतों की भांति दोहा - चौपाई - चौपई छन्द के सरल माध्यम से भागवतोक्त ज्ञान का लोकार्पण किया है; इस दृष्टि से यह ब्रजदासी-भागवत सर्वजनहितकारी महाकाव्य है। भारतीय संस्कृति के परम्परागत गृहस्थाचार में आदर्श पत्नी और गृहिणी की ब्रजदासी जी द्वारा प्रतिपादित भूमिका का आज भी महत्व है। उपर्युक्त संदर्भों में भागवतोक्त अनुसृति का केवल एक ही उपदेशात्मक उदाहरण देना पर्याप्त होगा :-

साधै पतिव्रत धर्म कौ, करनी पति की सेव । पति मनोरथ पूर्न करै, बोलै सत्य सुभेव ॥
इंद्री दमन रु नम्रता, समैं समैं पति सेव । प्यारै बचन रु सति लियै, कहै सबनि अनभेव ॥
पति कै बंधुन की करै, सेवा भलैं प्रकार । राखै चित्त संतोष तजि, चंचलता निरधार ॥
सुथरौ राखैहुँ गृह बहु, चित्र बिचित्र जो बनाय । जथा जोग्य पहरैं रहै, भूषन अंग सुभाय ॥
बासण राखै ऊजरै, रु रहै पवित्र जु आपु । है अस्त्री धरमातमा, चित्त चतुराय सथापु ॥
सांवधान पति प्रेम मैं, रहै भलै अनुसार । है अस्त्री पतिव्रता कैं, औंहिं लछिन सुभ ढार ॥
जा पति कौं लागै न है, पाप जु पंच प्रकार । अस्त्री तिहिं सेवा करै, जांनि प्रभू भरतार ॥

(सप्तम स्कंध - अ. ११/४१-४७)

ब्रजदासी-भागवत मारवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा का महाकाव्य है

संस्कृत भाषा में रचित श्रीमद्भागवत महापुराण का ब्रजभाषा में छन्दात्मक-पद्यानुवाद करना कठोर तपश्चर्यावत् श्रमसाध्य काव्य-साधना है। ब्रजदासी-भागवत के रूप में ऐसे भाषानुवाद की सफलता की पृष्ठभूमि में यह मानना नितान्त सत्य ही है कि ब्रजदासी जी में संस्कृत, ब्रज और मारवाड़ी भाषाओं का तत्सम्बन्धित पूर्ण-पांडित्य था; तथा उनमें इन भाषाओं में कुशलतापूर्वक काव्य-रचना करने सम्बन्धी आधिकारिक क्षमता और प्रतिभासम्पन्न-कविकर्मकौशल भी विद्यमान था। जैसा कि अद्यावधि प्रचलित है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य की रीतिकालीन समकालिक-काव्य परम्परानुसार प्रमुख रूप से प्रचलित ब्रजभाषा में ही यह लोकग्राह्य पद्यानुवाद किया था। जन्मजात संस्कारों एवं अधिकांशतः ब्रजधामवास के सौभाग्य से उन्होंने ब्रजभाषा का पांडित्य पूर्ण ज्ञान अर्जित किया था। दूसरा पक्ष भी अत्यंत प्रबल है कि उनका पितृ गृह लवाण जयपुर राज्यांतर्गत था; वे रूपनगढ़ की राजरानी थी; तथा उनका रूपनगढ़ से पांच मील दूर अत्यंत सन्निकटस्थ गुरुपीठ-अ.भा.ज. श्रनिम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद (पुष्कर शेत्र) से निरन्तर सान्निध्य रहा था; और पूर्वोक्त प्रसंगानुसार रूपनगढ़ ही उनकी ब्रजदासी-भागवत का रचना-स्थल रहा था; इन सब परिस्थितियों में उनके द्वारा किये गये उक्त ब्रजभाषिक पद्यानुवाद में मारवाड़ के तत्सम्बंधित उपर्युक्त क्षेत्रों की लोक प्रचलित भाषा का प्रचुर रूप से सम्मिश्रण हो गया था। यह वैज्ञानिक सत्य है कि कवि रचना-स्थल के परिवेश से अछूता नहीं रह सकता।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से, उनके द्वारा किये गये उक्त पद्यानुवाद की ब्रजभाषा में मारवाड़ी प्रचलित ड़ ढ़ ण आदि की कर्णकटु एवं अनुनासिक तथा द्वित्य-ध्वनियों का अभाव है; ब्रजभाषानुरूप उनकी जगह र, न आदि का व्यवहार हुआ है; तथापि उसमें मारवाड़ की राजसी-परम्परा की तत्कालीन पारिभाषिक शब्दावली होने (कृस्न कुँवर, कृस्न-कुमार, बेगार-सिरदार इत्यादिक); तथा मारवाड़ी लोक प्रचलित शब्दों-मुहावरों-लोकोक्तियों का प्रचुर व्यवहार होने से उसमें मारवाड़ी भाषा का यथेष्ट प्रयोग नकारा नहीं जा सकता । यहाँ मारवाड़ी भाषा के औकारान्तक ऐकारान्तक क्रिया व संज्ञा शब्दों तथा रकार मिश्रित कर्यो-मर्यो (कन्यौ-मन्यौ) ध्वनियों का बाहुल्य भी कथित तथ्य का सत्यापन करता है। ब्रजदासी-भागवत पद्यानुवाद की प्रमुख भाषा निस्संदेह 'ब्रजभाषा' है; श्रीमद्भागवत महापुराण के विषयानुकूल भाषासौष्ठव की दृष्टि से ब्रजदासी जी ने उसमें संस्कृत निष्ठ तत्सम-शब्दावली का यथेष्ट प्रयोग किया है, रसोपासनात्मक परिवेश से भी ब्रजभाषा की अनिवार्यता सिद्ध है; तथापि ब्रजदासी-भागवत में पूर्वोक्त रूप से ग्राम्य-अंचलों में व्यवहृत मारवाड़ क्षेत्रकी लोकभाषा का प्राचुर्य होने से इसे **"मारवाड़ी मिश्रित ब्रजभाषा का महाकाव्य"** मानना ही समीचीन है। इस तथ्य का सत्यापन करने के लिए ब्रजदासी-भागवत में प्रचुर रूप से प्रयुक्त मारवाड़ी क्षेत्र की लोकभाषा की शब्दावली के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

माहात्म्य :- महातम, भागौत, सींथ (बिना मूल्य), छौले, कर्यौ, पर्यौ, सउनक ।

प्रथम-स्कंध :- सथांन, असतुति, थांन, ठौर, सुढार, ग्यांन, निसंग, डरप्यौ, मति (नहीं), बिस्वांबीस, आछैं, पाछैं, मेंह, बांदरवाल, तांछै (डोरी), सिंदन-सींदन (राजमहिषियों के लिए रथ), पातर, पितर, स्यारी, सामुँह-सामू (सम्मुख), पल-पल (चमकना), नीठ (बड़ी कठिनाई से), माराज, पाग, मिस (बहाना), निजू (निजी) जौरावर, कांगा, जिग्य ।

द्वितीय-स्कंध :- बिलस्त, निवेरि, कांचली, दंडौत, जोगी, उबासी, नचिंत (निश्चिंत), छत्री (क्षत्री), कित्तौक (कितना), ठोठ (मंदबुद्धि), अधबिचलै, कै, छ (है), नजीक, हूँ (मैं), में (अन्दर, में), म्हैं (मैं), आपणी, रिषि।

तृतीय-स्कंध :- बावड़ी, लिछमी, न्हाय, बिमांण, तमायचा, जुदौ, हिर्दै, बह्यौ, रह्यौ, गिर्यौ, मर्यौ, मुसनि (मुस), बैंसे (बैठे), दीसत, ताय (घी को गर्म करके नितारना), आछी, कोरड़ा (कौड़ा), तिस (प्यास), गुठली, परमेसर, परकास, परसाद, करम, षीन (क्षीण), षारौ, लछिन, भुगतै।

चतुर्थ-स्कंध :- बषांन, करार, अनषांन, सिरदार, भरतार, रीस, फैल (झूठे कर्म, बहाने), कंगला, तुस, ढेरमढेर, हेरि (खोजना), छांनी (गुप्त), इकंत, रितु, बरषा, गनती, लार (पीछे पीछे या साथ साथ), फुलवार, गैल (एक साथ), जक्त (जगत), सो, सौं, बिन्ती, डली ।

पंचम-स्कंध :- पईयांन, लीक (पहियों के निशान), बगाय (फैंक देना), उबरै, तांई (तक या लिए), टौलांहिं (बहकाना या उपेक्षा करना), रेत, षेत, रषवाल, षलि (षल, तेल निकलने के बाद का पदार्थ), तातौ (तप्त), सीलौ (शीतल), रांधि (रांधना या पकाना), डांस (मोटे आकार का मच्छर), अपछरा, कांकरी (कंकड़ी) बेगी (जल्दी), हूंस (उमंग), धान (अनाज), गाहत (खलिहान में अनाज गाहना-बैलों द्वारा), पसवारा (पार्श्वभाग), सांठा (गन्ना), बिन्ताक (बैंगन), माषीमाछर, जइसै, कइसै, अलषांवनौ (असुहावना)।

षष्टम-स्कंध :- बिजनां (पंखी), बायरा (हवा), चिड़ौ (गौरियाँ), पाग्र (पगड़ी), सीर (हिस्सेदारी), पुष्याल (खुशी), सगी (स्वार्थी), पाछिनौं (उस्तरा), टूक (टुकड़े), सकति (शक्ति), भगति, मिसरी।

सप्तम-स्कंध :- रंडवा (विधुर), चट्टा (चेला चांटा), बींछू, तिरसाय (तरसाना), बेझा (छेद या लक्ष्य), बकवाद, नैरी (नजदीक), सटाक (सरल-सीधा), औसर (अवसर), बेगार (बिना पारिश्रमिक दिये कार्य करवाना), बिलांद-बिलांत, सिरदार, कुँवर, कुँवार।

अष्टम-स्कंध :- लबार (झूठा या वाचाल), बधीक (आवश्यकता से अधिक), कोरी (बिना सब्जी की रोटी), टींकी, मिहीं (बारीक), कुंड, पैंड, षोटौ, षीरषांड, छांनै, बेद (वेद), सगला (सब), धाम (देवालय)।

नवम-स्कंध :- ईस्यांन (इस प्रकार), मारू (पति या प्रेमी), सिगरी-सिगरौ (समस्त-सब), सिलोक (श्लोक) कोठा (भंडार), गुपत, छोह (अति उत्साह), मींढा-मैंढा (भेड़-मैंमने), करार (इकरार), नागौ (नंगा), अहुटि (बात-वापस फेरना), अँवार-अवांर (देरी), स्यांन (शान), बैस्यां (वैश्या), अनछैह (अनंत), संदूक, किस्यांन (किस प्रकार)।

दसम-स्कंध :- बनीठनी (सजीधजी) - किशनगढ़ नरेश सांवतसिंह (नागरीदास) जी की प्रख्यात परम सुंदरी पासवान, राष, उवाँर (देर), झूमका, कंठुला, झुगली, ष्याल, झमक, बाजूबंध, लोढ़ा (गोल पत्थर), अरबी (अड़बी-अड़ियल-हठी), ऊपल, आडौ, गाडा (बैल गाडी), चषमूंदनी (आखं मिचौंनी), भीरू-भीरू (साथी), हौड बदी (शर्त लगाकर), कूटै (मारै), किती (कितनी), चूक, कूंष, चिनगी (चिनगारी), विलस्त (बिलांत का नाम), भाकसी (भट्टी), पल्ला (ओढणी का सिरा), ऊकलतौ (उबलता हुआ), रालि (डालना तथा मिलाना), छौंगा (छिनगा), बगाय (फैंकना), पैंच (दांव), लुकलुक मींचनी (आंख मिचौंनी), छतना-लता (कुकुरमुत्ता या सांपछतरी), करसा (कृषक), बगसीस (इनाम या बक्षीस), झमाझमी (बिजली चमकना), गडा (ओले), थूंनी (थंभा), बांटा (गाय-भैंस को दिया जाने वाला खाद्य), धनी (मालिक), रुकसद (छुट्टी), बकारि (सम्बोधित करना या ललकारना), जीमी या जीमना (भोजन करना), थाप (थप्पड़), भौंरेटी (चकरी खाने का खेल), ठग बिद्या, ल्यालीन (सियारों), करार (ताकत), पहपट (दिखावा, फैल, डराने के काम, शरीर में प्रेतात्मा के हावभाव दिखाना), हूर (अप्सरा), नटै (इंकार करना), छतनां (छाता), उरासि (रस्सा कुएँ में डालकर), ठीक (मालूम), हाजर कीनौं (अभिरक्षा में हाजिर किया), आंटन (हाथ पैर में आंटन पड़ना)?

एकादस-स्कंध :- परताप, म्हानैं, पिछवारा, झांकै, मूरत ।

द्वादस स्कंध :- बिलांत, बउत (बहुत), इन्ह, तिन्ह, जिन्ह।

॥ इति ॥

सम्पादक
(डॉ. रामप्रसाद शर्मा)

शिवाजी नगर, मदनगंज
किशनगढ़ (राज.)

।। श्रीसर्वेश्वरोजयति ।।

।। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।।

अ. भा. ज. श्री निम्बार्काचार्य पीठाधिपति श्री वृन्दावनदेवाचार्य जी की शिष्या

कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराज राजेश्वर राजा श्रीराजसिंहजी की महाराणी

श्रीमती ब्रजकुँवरीजी बांकावती उपनाम ''श्रीब्रजदासी'' कृत

।। श्री ब्रजदासी – भागवत ।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण का भाषा – पद्यानुवाद)

– प्रथम खंड –

विषय – सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	भागवत माहात्म्य	
१.	परीक्षित और बज्रनाभ समागम, शांडिल्य द्वारा भगवान का लीला - रहस्य और ब्रजभूमि-महत्व का वर्णन	१
२.	उद्धव जी को भजनानंद की प्राप्ति	५
३.	श्री भगवद् - प्राप्ति - निरूपण	८
४.	श्री सूत - शौनक - संवाद तथा पारायण-विधि निरूपण	१४
	प्रथम स्कंध	
१.	श्री सूत जी से शौनकादिक ऋषियों का प्रश्न	२०
२.	भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य	२४
३.	भगवान के अवतारों का वर्णन	२७
४.	महर्षि व्यास महिमा और उनका असंतोष	३१
५.	भगवद् यश-कीर्तन माहात्म्य तथा देवर्षि नारद जी का पूर्व चरित्र	३४
६.	नारदजी के पूर्व चरित्र	३८
७.	अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का मारा जाना और अर्जुन के द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन	४१
८.	गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा; कुन्ती के द्वारा भगवान् की स्तुति और युधिष्ठिर का शोक	४५
९.	युधिष्ठिरादि का भीष्म जी के पास जाना और श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए भीष्मजी का प्राणत्याग करना	४९

१०.	श्रीकृष्ण का द्वारिका-गमन	५३
११.	द्वारका में श्रीकृष्ण का स्वागत	५६
१२.	परीक्षित का जन्म	५९
१३.	विदुर जी के उपदेश से धृतराष्ट्र और गान्धारी का वनगमन	६१
१४.	अपशकुनों से युधिष्ठिर को शंका तथा अर्जुन का द्वारका से लौटना	६५
१५.	कृष्ण विरह व्यथित पांडवों का परीक्षित को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना	६९
१६.	परीक्षित की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का संवाद	७१
१७.	महाराज परीक्षित द्वारा कलियुग का दमन	७४
१८.	राजा परीक्षित को ऋषि श्रृंगी का शाप	७७
१९.	परीक्षित का अनशन व्रत और श्री सुकदेवजी का आगमन	८१

द्वितीय स्कंध

१.	ध्यान विधि और भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन	८४
२.	भगवान के स्थूल और सूक्ष्म रूपों की धारना तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति का वर्णन	८७
३.	कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति के प्राधान्य का निरूपण	९१
४.	राजा का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्रीशुक देवजी का सृष्टि कथारम्भ	९३
५.	सृष्टि का वर्णन	९५
६.	विराट स्वरूप की विभूतियों का वर्णन	९९
७.	भगवान के लीलावतारों की कथा	१०१
८.	राजा परीक्षित के विभिन्न प्रश्न	१०७
९.	ब्रह्मा जी का भगवद्धाम दर्शन और भगवान के द्वारा उन्हें चतुः श्लोकी भागवत का उपदेश	११०
१०.	भागवत के दस लक्षणों का वर्णन	११४

तृतीय स्कंध

१.	उद्धव और विदुर की भेंट	११९
२.	उद्धव द्वारा भगवान की बाल लीलाओं का वर्णन	१२३
३.	भगवान के अन्य लीला चरित्रों का वर्णन	१२६
४.	उद्धव से विदा होकर विदुर जी का मैत्रेय ऋषि के पास जाना	१२८

५.	विदुर जी का प्रश्न मैत्रेय जी का सृष्टि क्रम वर्णन	१३१
६.	विराट शरीर की उत्पत्ति	१३५
७.	विदुर जी के प्रश्न	१३७
८.	ब्रह्माजी की उत्पत्ति	१३९
९.	ब्रह्माजी द्वारा भगवान की स्तुति	१४२
१०.	दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन	१४५
११.	मन्वन्तरादि काल विभाग का वर्णन	१४८
१२.	सृष्टि के विस्तार का वर्णन	१५१
१३.	वाराह अवतार की कथा	१५५
१४.	दिति का गर्भधारण	१५८
१५.	जय विजय को सनकादिक का शाप	१६१
१६.	जय विजय का बैकुण्ठ से पतन	१६५
१७.	हिरण्यकसिपु और हिरण्याक्ष का जन्म तथा हिरण्याक्ष की दिग्विजय	१६७
१८.	हिरण्याक्ष के साथ वाराह भगवान का युद्ध	१६९
१९.	हिरण्याक्ष - वध	१७१
२०.	ब्रह्माजी की रची हुई अनेक प्रकार की सृष्टि का वर्णन	१७४
२१.	कर्दम की तपस्या और भगवान का वरदान	१७६
२२.	देवहूति के साथ कर्दम - प्रजापति का विवाह	१७९
२३.	कर्दम और देवहूति का विहार	१८१
२४.	श्री कपिल देव जी का जन्म	१८४
२५.	देवहूति का प्रश्न तथा भगवान कपिल द्वारा भक्तियोग की महिमा का वर्णन	१८७
२६.	महदादि भिन्न भिन्न तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन	१९०
२७.	प्रकृति - पुरुष के विवेक से मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन	१९३
२८.	अष्टांग योग की विधि	१९५
२९.	भक्ति का मर्म और काल की महिमा	१९८
३०.	देह गेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन	२०१
३१.	मनुष्य योनि को प्राप्त हुये जीव की गति का वर्णन	२०३

३२. धूम मार्ग और अर्चिरादि मार्ग से जाने वालों की गति का और भक्तियोग की उत्कृष्टता का वर्णन २०५

३३. देवहूति को तत्वज्ञान एवं मोक्षपद की प्राप्ति २०७

चतुर्थ स्कंध

१. स्वायंभुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन २१०

२. भगवान शिव और दक्ष प्रजापति का मनोमालिन्य २१४

३. सती का पिता के यहाँ यज्ञोत्सव में जाने के लिए आग्रह करना २१६

४. सती का अग्नि प्रवेश २१८

५. वीरभद्र कृत दक्ष - यज्ञ -विध्वंस और दक्ष-वध २२१

६. ब्रह्मादि देवताओं का कैलास जाकर श्रीमहादेव जी को मनाना २२२

७. दक्ष - यज्ञ की पूर्ति २२५

८. ध्रुव का वन गमन २३०

९. ध्रुव का वर पाकर घर लौटना २३४

१०. उत्तम का मारा जाना; ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध २३८

११. स्वायंभुव मनु का ध्रुव जी को युद्ध बंद करने के लिए समझाना २४०

१२. ध्रुवजी को कुबेर का वरदान और विष्णुलोक की प्राप्ति २४२

१३. ध्रुव वंश का वर्णन और राजा अंग का चरित्र २४५

१४. राजा वेन की कथा २४८

१५. महाराज पृथु का आविर्भाव और राज्याभिषेक २५१

१६. वंदीजन द्वारा महाराज पृथु की स्तुति २५३

१७. महाराज पृथु का पृथ्वी पर कुपित होना और पृथ्वी के द्वारा उनकी स्तुति २५५

१८. पृथ्वी का दोहन २५७

१९. महाराज पृथु के एक सौ अश्वमेध यज्ञ २५९

२०. महाराज पृथु की यज्ञ शाला में श्रीविष्णु भगवान का प्राकट्य २६२

२१. महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश २६५

२२. महाराज पृथु को सनकादिक का उपदेश २६७

२३. महाराज पृथु की तपस्या और परलोक गमन २७२

२४.	पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को भगवान रुद्र का उपदेश	२७४
२५.	राजा पुरंजनोपाख्यान का प्रारंभ	२७८
२६.	राजा पुरंजन का शिकार खेलने वन में जाना और रानी का कोप	२८२
२७.	पुरंजन पुरी पर चंडवेग का आक्रमण तथा कालकन्या - चरित्र	२८४
२८.	पुरंजन को स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञात के उपदेश से उसका मुक्त होना	२८६
२९.	पुरंजन - उपाख्यान का तात्पर्य	२९०
३०.	प्रचेताओं को भगवान विष्णु का वरदान	२९६
३१.	प्रचेताओं को देवर्षि श्रीनारद जी का उपदेश और परमपद - प्राप्ति	२९९

पंचम स्कंध

१.	प्रियव्रत - चरित्र	३०२
२.	आग्नीध्र - चरित्र	३०६
३.	महाराज नाभि का चरित्र	३०९
४.	ऋषभदेव जी महाराज का राज्य शासन	३१०
५.	म. ऋषभदेव जी का अपने पुत्रों को उपदेश देना तथा स्वयं अवधूत वृत्ति ग्रहण करना	३१२
६.	ऋषभदेव जी का गृहत्याग	३१५
७.	भरत - चरित्र	३१७
८.	भरत जी का मृग - मोह में फँसकर मृग - योनि में जन्म पाना	३१८
९.	भरत जी का ब्राह्मण कुल में जन्म	३२१
१०.	जड़भरत और रहूगण की भेंट	३२३
११.	राजा रहूगण को भरत जी द्वारा उपदेश	३२६
१२.	रहूगण का प्रश्न और भरत जी का समाधान	३२८
१३.	भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय निवारण	३२९
१४.	भवाटवी का स्पष्टीकरण	३३२
१५.	भरत वंश का वर्णन	३३६
१६.	भुवन कोश का वर्णन	३३८
१७.	गंगा विवरण और भगवान् शंकर कृत संकर्षण - स्तुति	३४२

१८.	भिन्न - भिन्न वर्षों का वर्णन	३४४
१९.	किंपुरुष और भारत वर्ष का वर्णन	३४८
२०.	अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोक - पर्वत का वर्णन	३५१
२१.	सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन	३५७
२२.	भिन्न - भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन	३५९
२३.	शिशुमार - चक्र का वर्णन	३६१
२४.	राहु आदि की स्थिति तथा अतलादि नीचे के लोकों का वर्णन	३६३
२५.	श्रीसंकर्षणदेव का विवरण और स्तुति	३६७
२६.	नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन	३६९

षष्ठ स्कंध

१.	अजामिल - उपाख्यान का प्रारंभ	३७६
२.	विष्णुदूतों द्वारा भागवत धर्म-निरूपण और अजामिल का परधाम - गमन	३८२
३.	यम और यमदूतों का संवाद	३८५
४.	दक्ष के द्वारा भगवान की स्तुति और भगवान का प्राकट्य	३८९
५.	नारद जी के उपदेश से दक्षपुत्रों की विरक्ति तथा नारद जी को दक्ष का शाप	३९३
६.	दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण	३९७
७.	बृहस्पति द्वारा देवताओं का त्याग और विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण	४०१
८.	नारायण-कवच का उपदेश	४०५
९.	विश्वरूप का वध; वृत्रासुर द्वारा देवताओं की हार और भगवान् की प्रेरणा से देवताओं का दधीचि ऋषि के सरन में जाना	४०९
१०.	देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र-निर्माण और वृत्रासुर की सेना पर आक्रमण	४१५
११.	वृत्रासुर की वीर वाणी और भगवत्प्राप्ति	४१८
१२.	वृत्रासुर का वध	४२०
१३.	इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण	४२३
१४.	वृत्रासुर का पूर्व चरित्र	४२६
१५.	चित्रकेतु को अंगिरा और नारद जी का उपदेश	४३०

१६. चित्रकेतु का वैराग्य तथा श्री संकर्षण देव के दर्शन ४३३

१७. चित्रकेतु को पार्वती का शाप ४३९

१८. अदिति और दिति की संतानों की तथा मरुद्‌गणों की उत्पत्ति का वर्णन ४४२

१९. पुंसवन व्रत की विधि ४४९

सप्तम स्कंध

१. नारद - युधिष्ठिर - संवाद और जय - विजय की कथा ४५२

२. हिरण्याक्ष का वध होने पर हिरण्यकशिपु का अपनी माता और कुटुम्बियों को समझाना ४५७

३. हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर-प्राप्ति ४६२

४. हिरण्यकशिपु के अत्याचार और प्रह्लाद के गुणों का वर्णन ४६४

५. हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लादजी के वध का प्रयत्न ४६८

६. प्रह्लाद जी का असुर बालकों को उपदेश ४७२

७. प्रहलाद जी द्वारा माता के गर्भ में प्राप्त हुए नारद जी के उपदेश का वर्णन ४७५

८. श्री नृसिंह भगवान् का प्रादुर्भाव; तथा हिरण्यकशिपु का वध एवं ब्रह्मादि देवताओं द्वारा भगवान की स्तुति ४७९

९. प्रह्लाद जी के द्वारा श्री नृसिंह भगवान की स्तुति ४८६

१०. प्रह्लाद जी के राज्याभिषेक तथा त्रिपुर दहन की कथा ४९२

११. मानवधर्म तथा वर्णधर्म एवं स्त्रीधर्म का निरूपण ४९८

१२. ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमों के नियम ५०१

१३. यतिधर्म का निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद ५०४

१४. गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार ५०८

१५. गृहस्थों के लिये मोक्षधर्म का वर्णन ५११

अष्टम स्कंध

१. मन्वन्तरों का वर्णन ५२०

२. ग्राह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना ५२३

३. गजेन्द्र के द्वारा भगवान् की स्तुति और उसका संकट निवारण ५२६

४. गज और ग्राह का पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार ५२८

५. देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना और ब्रह्माकृत भगवद् स्तुति ५३१

६. देवताओं और दैत्यों का मिलकर समुद्र-मंथन के लिये उद्योग करना ५३६

७.	समुद्र-मंथन का आरंभ और भगवान् शंकर का विषपान	५३९
८.	समुद्र से अमृत का प्रकट होना और भगवान् का मोहिनी-अवतार लेना	५४३
९.	मोहिनी-रूप से भगवान के द्वारा अमृत बाँटा जाना	५४८
१०.	देवासुर-संग्राम	५५१
११.	देवासुर - संग्राम की समाप्ति	५५४
१२.	मोहिनी रूप को देखकर श्री महादेव जी का मोहित होना	५५७
१३.	आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन	५६१
१४.	मनु आदि के पृथक् पृथक् कर्मों का निरूपण	५६४
१५.	राजा बलि की स्वर्ग पर विजय	५६५
१६.	कश्यप जी के द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश	५६८
१७.	भगवान् का प्रकट होकर अदिति को वर देना	५७२
१८.	वामन भगवान् का प्रकट होकर राजा बलि की यज्ञशाला में पधारना	५७५
१९.	भगवान् वामन का बलि से तीन पग पृथ्वी मांगना, बलि का वचन देना तथा शुक्राचार्य द्वारा रोकना	५७७
२०.	भगवान् वामन का विराट रूप होकर दो ही पग से पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लेना	५८१
२१.	बलि का बंधन	५८४
२२.	बलि द्वारा भगवान् की स्तुति और भगवान् का उस पर प्रसन्न होना	५८७
२३.	बलि का बंधन मुक्त हो सुतल लोक को प्रस्थान	५९०
२४.	भगवान् के मत्स्यावतार की कथा	५९३

।। श्रीसर्वेश्वरोजयति ।।

।। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।।

कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराज राजेश्वर राजा श्रीराजसिंहजी की महाराणी

श्रीमती ब्रजकुँवरीजी बांकावती उपनाम "श्रीब्रजदासी" कृत

।। श्री ब्रजदासी - भागवत ।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण का भाषा - पद्यानुवाद)

- प्रथम खंड -

।। अथ स्कन्द पुराणोक्त श्रीमद्भागवत महातम भाषा लिष्यते।।

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

(परीक्षित और बज्रनाभ समागम, शांडिल्य मुनि द्वारा

भगवान का लीला - रहस्य और ब्रजभूमि - महत्व का वर्णन)

(मंगलाचरण)

दोहा - श्री हितु गुरु वृन्दावन चर्न, (श्री) राधामाधव लाल ॥
(श्री) भागवत माहातम कौं, बर्नन करौं रसाल ॥ १ ॥
कृस्न रूप श्री भागवत, भागवत रूप श्री कृस्न ॥
इन्हकैं निति सेवन बिनां, मिटै न उर की तृस्न ॥ २ ॥
सकलदेव आराध्य श्री, कृस्न पूर्नतम आद्य ॥
वेदसार भागवत त्यौं, सब सास्त्रनि प्रतिपाद्य ॥ ३ ॥
साध्यरूप श्रीभागवत, साधन सबै पुरान ॥
यातैं स्कन्द पुरानहुँ, करत भागवत गान ॥ ४ ॥
ताकैं चारि अध्याय की, भाषा करी सुछन्द ॥
मिलै सबनि अनयास ज्यौं, सरवर नीर अमन्द ॥ ५ ॥

।। अथाख्यान ।।

।। श्री सौनक उवाच ।।

दोहा - सहस अठासी मुनिन मैं, श्री सौनक बड गन्य ॥
प्रस्न करत श्रीसूत सौं, बैठे निमिषारन्य ॥ ६ ॥

चौपाई - अहो सूत इक मन संदेहू। दूरि करौ सब करिकैं नेहू ॥
जब श्रीकृस्न जु भये अदृस्य। कलिजुग जीवनि आसुरी वस्य ॥ ७ ॥
नृपति जुधिष्ठिर कौ भयौ राजू। परम भगति जुत कीनौं काजू ॥
ह्वै विरक्त कियौ राज विभागहिं। मथुरा बज्रनाभ बडभागहिं ॥ ८ ॥
हथिनांपुर मैं नृपति परीछितहिं। कियौ सकल हरिगुन गन सिछितहिं ॥
आप भयै हरिपद मैं लीनां। भ्राता तिय संग ज्यौं जल मीनां ॥ ९ ॥
ता पाछैं दोउन का कीनौं। कइसै ब्रज कूं मिलि सुष दीनौं ॥
सो हम्हकुँ कहौ सबै सुनांई। हौ तुम्ह परम भगत हरि रांई ॥ १० ॥

।। सूत उवाच ।।

तबहिं सूत जू बोलै गाथा। बंदन करि करि श्री बृजनाथा॥
भंलौ प्रस्न कीनौं रिषि ईसू। यामैं प्रगट हौत जगदीसू॥११॥

।। अथ बर्ननं ।।

दोहा - **अैक समैंनृप परीछित, आये मथुरा देस॥**
बज्रनाभ सौं मिलन कूँ, पठयौ कहि आदेस॥१२॥

चौपाई - चाचा कौ आगम सुनि आये। सनमुष पट पावडे बिछाये॥
मिलत ही हिय अतिहित गहबरै। अधिकहिं प्रीति सौं पायन परै॥ १३॥
बज्रहिं मिलत कृस्न सुधि आई। गरभ मांझी रछिक जे माई॥
गीत वाद्य मंगल जुत गांनहिं। पधराये मथुरा निज थांनहिं॥ १४॥
अंतहपुर मैं हरि की पतनी। हरि इच्छा तैं रही जू जितनी॥
तिन्हकौं हरषित कियौ प्रनांमा। उन्ह सनमानैं कहि सुत नांमा॥ १५॥
तब बैठि दौउ नृप इक ठौरहिं। करन लगै बातैं कर जोरहिं॥
बडै उभै इक हरि कुल गौरव। वय क्रम तैं इक उत्तम कौरव॥ १६॥

।। परीछित उवाच ।।

अहो बज्र जू बडै तुम्हारै। बहु प्रतिपारै बडै हम्हारै॥
अग्नि अस्त्र जु निवारन कीनौं। गर्भ सहित मातहि सुष दीनौं॥ १७॥
तुम्ह श्रीकृस्न पौत्र सुत हरिसम । सो भयौ आजु बहि जु समागम॥
प्रत्युपकारन कछु आवत बनि। आपनपौ निति मानत धनि धनि॥ १८॥
मो कौ अग्रसेवकहिं जांनौं। प्रजापाल अरिदमनहिं ठांनौं॥
कोस सैन्य संपादन करिहौं। तुम्हरै सुष सौहि अनुसरिहौं॥ १९॥
जो बिधि सो इहि निवेदन करौं। आतुर ताइ जिन चित मैं धरौ॥
सुष पूर्वक सेवो इहि राजू। सफल होय म्हैरौ सब काजू॥ २०॥

।। बज्रनाभ उवाच ।।

दोहा - **बज्रनाभ बोलै तबै, उपज्यौ सुष मन मांहिं॥**
इहै उचित तुम्हकौं भलैं, अपनैं कौ अपनांहिं॥ २१॥
अर्जुन जू अभिमन्यु जू, दीनी सुसिछा मोहि॥
अस्त्र सस्त्र संहार गति, सामादिक नय सोहि॥ २२॥
तातैं बाधा तनक नहिं, छत्री धरम द्रिढ़ चित्त॥
कछु यक चिन्ता परम जुर, लगी रहै उर नित्त॥ २३॥

चौपाई - क्यूं इहिं मथुरा देसहिं निरजन। सबही दीसै बन अरु उपबन॥
राजकरन क्यूं रुचै प्रजा बिन। क्यूं संपत्ति क्यूं नृप सुष निसदिन॥ २४॥

॥ श्री सूत उबाच॥

कौरवेस सुनि चितंन कीनौं। बूझि पुरातन मुनि इक लीनौं॥
सांडिल्य नांम श्री नंद पुरोहित। आदि अंत सब जांनत ब्रजहित॥ २५॥
तिन्हकौं आश्रम तैं पधरायै। सनमाने निज सीस नवायै॥
तबहिं सुचित्त है पूंछन लागै। ब्रजमहिमा अर्थहिं रस पागै॥ २६॥

ब्रजभुव की महिमा कहुँ कइसैं। क्यौं निरजन वन भयौ अनैसैं ॥
अति निरभै सुंदर सब ठांमां। एमैं जांह हरि अति अभिरांमां ॥ २७ ॥

॥ श्री सांडिल्य उवाच ॥

दोहा - तब बोलै सांडिल्य जू , सुनहुँ नृपति चित लाय ॥
अछिर अर्थ रु रहस्य ब्रज, सुनतहिं संसै जाय ॥ २८ ॥
ब्रज इन्ह द्वै अछरन कौं, व्यापक अर्थ ही जांनि ॥
गुणातीत परब्रह्म सौ, व्यापक यामैं मांनि ॥ २९ ॥
व्याप्य देस यहि जांनियै, ब्रज ब्रह्महिं अंग रूप ॥
तामैं निति बिहरत रहैं, अंगी कृस्न सरुप ॥ ३० ॥
सतचित आंनदमय सुतनु, नंदनंदन घनस्यांम ॥
हौय अंस तैं रहित निति, द्रव घन इकरस नांम ॥ ३१ ॥

चौपाई - सो अदृस्य अब आंनद ज्योती। प्रेमी भक्तहिं अनुभव होती ॥
आप्तकाम अरू आत्मा रांमा। जिन्हकैं कहियत है ए नांमा ॥ ३२ ॥
आत्म अर्थ श्रीराधा कहियै। ताकैं रमण श्रीकृस्नहिं लहियैं ॥
यातैं आत्मारांम बषानत। रहसि अर्थ वेत्ता तैं जानत ॥ ३३ ॥
ब्रज निकुंज लीला ए द्वै घन। गौधन गोपी गोप सषीगन ॥
अैं सब पूरण जिन्हकैं कामां। तातैं आप्त काम इहि नामां ॥ ३४ ॥
याहि माया तैं परै रहस्य। यौं मायक जनहिं नैंन अदृस्य ॥
जबहिं मायामय क्रीडा करै। तबहिं सबहिंन कौं समझी परै ॥ ३५ ॥
बिस्व सृष्टि पालक संहारी। त्रिगुणमयी लीला बिसतारी ॥
इहि व्यवहारिक लीला नामां। त्रिगुणी जीवनिहीं कै कामां ॥ ३६ ॥
दूजी वास्तवि लीला जांनहुँ। सो निजी रहसि आपनि मांनहुँ ॥
व्यवहारी जीवनि कै जोग्य। वास्तवि लीला अपनैं भोग्य ॥ ३७ ॥
वास्तवि तैं व्यवहारी हौई। पैं यातैं वास्तवि नहिं कौई ॥
ज्यौं कारन तैं कारिज उपजै। पैं नहिं यातैं कारन निपजै ॥ ३८ ॥
व्यावहारिक लीला ब्रह्मण्ड। भूमी लोक मैं भारत षण्ड ॥
तामैं मथुरा मंडल सारा। ताहुँ मैं ब्रजमहिमा अपारा ॥ ३९ ॥
तामैं तत्व गोप्य परि राष्यौ। प्रभु जू श्रीमुष अपनैं भाष्यौ ॥
प्रेम पूरि रहै बिस्वाबीसैं। तिन्हकौं तत्व कछू इक दीसै ॥ ४० ॥
लीला ओत प्रोत आभासी। पैं न्यारी वास्तवि सुषरासी ॥
अधिकारी कुँ बास्तव सब मिलै। करैं बिनती तब नवरस झिलैं ॥ ४१ ॥
तब तिनह सहित लैहिं अवतारा। द्वापर संध्या प्रगट बिहारा ॥
व्यावहारिक लीलाहुँ कै जन। प्रगट हौहि ब्रह्मादिक सुरगन ॥ ४२ ॥
सबनि सहित लीला अवगांहीं। सब भगतनि की पूरे चाहीं ॥
द्वैत लीला दीसै इक अर्थ। सबहीं योग माया सांमर्थ ॥ ४३ ॥

अंतरहित तब ह्वै भगवांनहिं। निति परिकर 'जन' सहित सुजांनहिं ॥
तहँ जन भेद सुँ तीन प्रकारा। 'नित्य' 'तद्वाञ्छक' 'देव' निहारा ॥ ४४ ॥
नंद गोप गोपी जनादि नित्य। उद्धवादिहिं तद्वाञ्छक सत्य ॥
देवादिक द्वारावति बासी। चतुरथ व्यवहारिक जनरासी ॥ ४५ ॥
देवादिकहिं दिवि प्रापति करै। मूसल मिसिहिं प्रभास ह्वै तरै ॥
जे तद्वाञ्छक निज अनुरक्तहिं। कियै प्रेम आंनदमय भक्तहिं। ॥ ४६ ॥
निति बिहार मैं प्रापति कीयै। चरन रेनु आसाफल दीयै ॥
जे जन नित्य सुनित्य बिहारी। तिन्ह संग क्रीडा करत बिहारी ॥ ४७ ॥
ह्वै गयै तद्वाञ्छकहूँ नित्य। प्रेमानंदमय बिग्रह सत्य ॥
आपु सहित ए कियैं अदृस्य। लैकिक जनहिं कौ भयौ अवस्य ॥ ४८ ॥
यातैं नरपति मथुरा देसू। निरजन वन लषिभयौ असेसू ॥
निति लीला कौ निति बृजधामं। रमैं नित्य जहँ आतमरामं ॥ ४९ ॥
ज्यौं प्रभू मानुष लीला गही। पैं मानुषता न्यारीहुँ रही ॥
ज्यौं ब्रजभूमि अन्यभुव अैकूं। दीसत हैं पैं पृथक विवैकूं ॥ ५० ॥

दोहा - जापैं पूरन क्रिपागति, हरि हरि जन की होय ॥
ताहीं कौ दीसै भलै, रहन पाय है सोय ॥ ५१ ॥

चौपाई - निरजन चिंता जिय जिन धरीहौं। पुर ग्रामनि की रचना करीहौं ॥
मो आग्यां तैं सब सिद्धि ह्वै हैं। मानस व्यथा कबहुँ नहिं छूहैं ॥ ५२ ॥

दोहा - श्रीकृस्न चंद्रलीला करी, बाल पौगंड किसौर ॥
ता लीला सम ताहँ कौं, नाम धरहुँ तिहिं ठौर ॥ ५३ ॥

चौपाई - कंड कूप गिरि नदी सरोवरू। ग्रांम धामंवन कुँज गुफातरू ॥
करहुँ नांम लीला अनुसारा। सेवहुँ करि अनुकरन उदारा ॥ ५४ ॥
मथुरा बृंदावन गोवरधन। नंद ग्राम बरसांनु महाबन ॥
दीरघ पुरहूँ अैं सब ठामां। मुष्य राजस्थिति करौ सुधामां ॥ ५५ ॥
प्रजा बुद्धि सुष संपति ह्वै हैं। कृस्न भजन प्रेमामृत च्वै हैं ॥
भूमि सच्चिदानंद मई इहुँ। अननिभाव सौं सेवन करियहुँ ॥ ५६ ॥
मो असीस तैं हौहुँ सफूरति । कृष्नचंद्र लीलास्थल मूरति ॥
अरू उद्धव जू सौं तुम्ह मिलिहौं। ब्रज रहस्य लै अति रस झिलिहौं ॥ ५७ ॥

दोहा - यों कहि कहि सांडिल्य जू, निरजन देस प्रकार ॥
समाधान करि चलै तब, सुमरि कृस्न सुषसार ॥ ५८ ॥
सुनत दोउ नृप मुदित मन, आनंद बढ्यौ अपार ॥
क्यौं न हौंहि सतसंग तैं, संसय सागर पार ॥ ५९ ॥

(इति श्री स्कन्द पुराणोक्त श्रीभागवत माहात्म्य सांडिल्य-परीक्षित-बज्रनाभ संवादे भाषा ब्रजदासी कृते श्रीब्रजभूमि तत्व निरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(उद्धवजी को भजनानंद प्राप्ति)

॥ श्री सौनक उवाच ॥

दोहा- सांडिल्य मुनि कैं वाक्य सुनि, सौनक बूझत गाथ ॥
ता पाछैं अहो सूत जु, का कीनुँ दोउ साथ ॥ १ ॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

तब बोलै श्री सूत जू, सौनक सुनुँ चितलाय ॥
परम भागवत नृपति की, कथा परम सुषदाय ॥ २ ॥

चौपाई - इंद्रप्रस्थ तैं नृपति परीछित। मुष्य प्रजा जे जे मन ईछित॥
लइ बुलाय मथुरा जु बसायै। बहु धन मांन दांन मन भायै॥ ३ ॥
जे मथुरा बासी जु पुरातन। ब्राह्मन वैस्नव जे बांनर जन॥
तिन्हकौं मुष्य सथापन सुभयौ। औरनि कौ साधारन सुठयौ॥ ४ ॥
विष्णुरात मुनि क्रिपा सहायक। भासै लीला स्थान सुभायक॥
तिन्हकैं जथा जोग्य दिय नामां। जहँ तहँ बउत बसायै ग्रामां॥ ५ ॥
कुंड कूप सिवलिंग सथापन। श्रीगोविंद हरिदेव सनातन॥
मदन मुहन श्री गिरिधर पायै। सिद्ध रूप मंदरिनि पधरायै॥ ६ ॥
बउत प्रीति कियौ भक्ति बिचारा। आपु सहित सब प्रजा अपारा॥
बरषौ छबि अनुकरण उदारा। जहँ जन तनमय होत निहारा॥ ७ ॥

॥ श्रीकृष्णपत्न्य ऊचुः ॥

अैक समैं भद्रादिक रांनी। अति तरंग जुत जमुना जांनी॥
पूछत भइ अहो हर्ष कहा है। कृस्न बिरह हम्ह दुषी महा हैं॥ ८ ॥
तेरै दुष काहै नहिं होती। जइसी हम्ह तइसी तुम्ह सौती॥
इहि सुनि मंद मंद मुसक्याती कालिंदी बौली सकुच्याती॥ ९ ॥

॥ कालिन्दी उवाच ॥

सरल-भाव लषि दया जु आई। जा करि सब हरि विरह मिटाई ॥
आत्मरांम संग आत्मा राधा। करत केलि सम कूल अगाधा ॥ १० ॥
तिन्हकैं दास्य भाव हरि दर्स। बिरह तनकहूं हौत न स्पर्स ॥
राधा अंसकला बिसतारी। कृस्न नायका रूप प्रचारी ॥ ११ ॥
सबमैं मुष्यातमा श्री राधा। बिहरत नित्य बिहार अगाधा ॥
राधा कृस्न कृस्न श्रीराधा। राधा बिनां कृस्न तत्व आधा ॥ १२ ॥
ए इन्हकौं ए इन्हकीं रूपा। अैक प्रेम बिबि अंग अनूपा ॥
जो इन्ह कैं बिच प्रेम संधिगत। सो भई बंसी हरि अधरनि गत ॥ १३ ॥
दुहुँ सेवा लालसा मन ठई। द्वितीय रूप चंद्राबलि भई ॥
हरि कर नष चंद्रावली संगा। तातैं भयौ सुनांम सुधंगा ॥ १४ ॥

रूक्मिण्यादिक रूप बिसेसा। तैं सब दैषी इहां प्रवेसा॥
यातैं तुम्हकौं सबै प्रकारा। नांहिं बियोग मन इहि निर्धारा॥ १५॥
अबलौं इहि रहस्य नहिं जांनी। तातैं तुम्ह तन मन अकुलांनी॥
पैं श्रीराधा दास्यभाव बिनु। निति बिहार प्रापति तुम्ह नांहिंनु॥ १६॥
यातैं संसय सबैं ही तज्यौ। राधा जु दास्य करहिं जिहँ सजौ॥
उद्धव जू कौ दरसन हौयहिं। तब उर बाधा रहै न कौयहिं॥ १७॥
पहिलैं ब्रज भय बिरहाभासा। अक्रूरागम सबै सुषनासा॥
सोइ दुष मैंटन कौ श्री उद्धव। पठयै निज समांन ब्रज उच्छव॥ १८॥
तिन्ह तहँ बिरह सान्ति बहु कीयौ। स्वर्ग वैद्य ज्यौं सब सुष दीयौ॥
निज हरि तन्मयता लषि गोपी। निति बिहार मैं इकरस वोपी॥ १९॥
यातैं वै सब वैद्य महा हैं। हरि समांन तहिं और कहा हैं॥
जौ तुम्ह सौं मिलि हैं सुषदाई। निति बिहार हरि संग दरसाई॥ २०॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

इहि सुनि सबि पतनी हरषांनी। उद्धव दरस करन ज़िय ठांनी ॥
पिय संगम लालस चित लौलू। बौलत भई अनंदित बौलू ॥ २१॥

॥ श्री कृस्न पत्नय ऊचुः ॥

धनि कालिन्दी तू बड़ दांनी। बिरह समुद्र पार दरसांनी ॥
तैरै नांहिं श्रीकृस्न बियोगू। राधा दास्यभाव सुषभोगू ॥ २२॥
ताकैं दास भाव जिय धरिहैं । पैं उद्धव प्रापति क्यूं करिहैं ॥
सो उपदेस करौ समझायी। जातैं सकल अर्थ ह्वै जायी ॥ २३॥

॥ कालिन्दी उवाच ॥

तबि बोली कालिंदी रांनी। कृस्न चंद्र सुमिरन जिय ठांनी ॥
सकल कला कौ राधा रूपहिं। ताकौ सुमिरन कियौ अनूपहिं ॥ २४॥
अब बृतांत सुनौ चित्त लायी। गोप्य तत्व सबै कहौ सुनायी ॥
जबै हरि अन्तरहित मन दीयौ। निज अनुभव विचार इक कीयौ ॥ २५॥
म्हेरौ ग्यांन भागवत जु कहिय। सौ म्हैरै आश्रयहिं ही लहिय ॥
मो पीछै कौ जांनन हारा। इक उद्धव हैं परम उदारा ॥ २६॥
जानि इहै उद्धव निज रूपा। दियौ भागवत परम अनूपा ॥
कह्यो बदरिकाश्रम तू जाहूं। उहां भागवत प्रवृति कराहूं ॥ २७॥
साधन भूमि बदरिका जांनौ। ताकौ फल ब्रजभूमि बषांनौ ॥
इहि आदेस पाय तांह गयै। कितिकहिं जीबु हरि आश्रय कियै ॥ २८
बसत ताहिं बै प्रत्यछ रूपा। उपदेसत हरि भक्ति सरूपा ॥
पुनि अलछि रूप ब्रजहीं बसै। गुल्मलता ह्वै निति सुष विलसै ॥ २९॥

लपै ताहिं निति कृस्न बिहारा। जुगपद अंकित भूमि निहारा ॥
सो इहां औरनि अंतरधाना। रसिक जननि कौ है विधि माना ॥ ३० ॥
उद्धव नित्य बसत इह ठांमां। गौवर्द्धन ढ़िंग सषी स्थल नांमां ॥
हरि राधा सषियनि पद अंका। सो पूरी रज आस निसंका ॥ ३१ ॥
जिन्ह कौ हरि उछव निजी रूपा। दियौ मुकुट कुंडल सु अनूपा ॥
ताकै दरस हित उछव हौऊ। विरह सोक भ्रम रहै न कौऊ ॥ ३२ ॥
बज्रनाभ जुत सकल समाजा। जाहुँ जांह भजनानंद काजा ॥
बीणा बेणु मृदंग ताल ध्वनि। करहुँ भजन आनंदहिं पुनि पुनि ॥ ३३ ॥
कीरतन काव्य सरस संगीता। जांह हरि तत्पर परम पुनीता ॥
तिन्ही जुत करौ महारस उछव। दै हैं दरस रीझि तांह उद्धव ॥ ३४ ॥
अैकहिं अलौकिक अदभुत सिद्धि। ह्वै हैं कृस्न प्राप्ति रस वृद्धि ॥
फिरि नहिं दरसै जग बिवहारा। रमहुँ नित्य जहँ नित्य बिहारा ॥ ३५ ॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

दोहा - इही सुनि कालिंदी वचन, हरषित भई नितान्त ॥
बज्रनाभ बिस्नुरात सौ, कहत भई वृत्तान्त ॥ ३६ ॥
उद्धव प्राप्ति उपाय सुनि, नरपति मन आनन्द ॥
करन लगै रस मगन जहँ, रसमय भजनानन्द ॥ ३७ ॥

चौपाई - बृन्दावन गौवर्धन जाहाँ। सषी सथल कुसुमोषर ताहां ॥
नंद नंदन वृषभानु नंदिनी। गायै नांम आनन्द कंदिनी ॥ ३८ ॥
केउ ताल लियै केउ मृदंगा। बीणा बेणु सरस इक संगा ॥
प्रेम मगन नाचत अरु गावत। तैसेई भक्त रसिक संग आवत ॥ ३९ ॥
गई लाज तहिं सकल पलांयी। पीवत भजनासव चित्त लांयी ॥
उभै नृपति छकि गै अनुरागा। रांनिन कौ कहा कहिय भागा ॥ ४० ॥
भजनानन्द की छई महावृष्टि। सबकी अनन्य भई तांह द्रिष्टि ॥
तब तहँ कुसुमोषर उपवन तैं। प्रगटै उद्धव तृण गुलमनि तैं ॥ ४१ ॥
बन माला धर गुंजमाला धर। स्यांम रूप सुभग पीताम्बर ॥
कुंडल रतन पेच सुमनोहर। मुष कहै गोपी बल्लभ सुन्दर ॥ ४२ ॥
तिन्हकैं आगम भजन समाजू। सौभित ज्यौं तारनि उडुराजू ॥
जौह्न फटिक मणि जगमग हौतू। त़्यौं सब कै मन भयै उदौतू ॥ ४३ ॥
प्रेमानंद भयौ ताहँ संभ्रम । सब तनमन सुधि बिसर गयै क्रम ॥
सुष समुद्र मांहीं भयै जु मग्न। उद्धव दरस रसामृत सुलग्न ॥ ४४ ॥
छिनक मांझ संज्ञा तबि आंई। कृस्न रूप उद्धव दरसांई ॥
अहौ भाग्य धनि भाग्य धन्य धन। कहत भयै दरसत तृपति न मन ॥ ४५ ॥

दोहा - पायनि परि रज मैं लुटत, बज्रनाभ बिस्नुरात ॥
गदगद सुर पुलकित हृदय, पूजन कीनौं तात ॥ ४६ ॥
जहँ भजन तहँ कृस्न जन रु, जन जहँ भजनानंद ॥
भावि सूचक दोउ मिलै, प्रगट हौहिं नंद नंद ॥ ४७ ॥

(इति श्री स्कन्द पुराणोक्त श्री भागवत माहात्म्य भाषा ब्रजदासी कृते भजनानंद उद्धव प्राप्ति वर्ननं नांम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(श्री भगवद् प्राप्ति निरूपण)

॥ श्री सूत उवाच ॥

दोहा - अब उद्धव तिन्ह कौं लषैं, कृस्न भजन आसक्त ॥
करि सत्कार मिलै नृपहिं, भुज भरि हरि अनुरक्त ॥ १ ॥
कह्यौ परीछित सौं सबै, धन्य नृपति हरि भक्त ॥
अति निमग्न चित्त भजन मैं, जा सम और न जक्त ॥ २ ॥
बज्रनाभ हरि तियन हित, भली करी यहि बात ॥
इन्ह सौं अति हित करन कौं, कहा अचंभौ तात ॥ ३ ॥

॥ श्री उद्धव उवाच ॥

चौपाई - गर्भ मांझ हीं रिछा जिनी करि। ताहीं दरसन दीनौं निज हरि ॥
तिन्ह कौं दीन्हौं तुव अंग वैभव। भजन मगन भयै तजि जग कैतव ॥ ४ ॥
हरि परिकर सेवा मन दैनूं। या सम और न है सुभ ऐनु ॥
मान्यौ जिन हरि भजनहिं स्वारथ। तै जन जीवत भयै कृतारथ ॥ ५ ॥
सबहीं धनि द्वारावति बासी। नित्य कृस्न मुष चंद्र उपासी ॥
पैं ब्रज प्रठयै अरजुन संगा। तै अति धन्य रंगे ब्रज रंगा ॥ ६ ॥

दोहा - कृस्न चंद्र मन चंद्रमा, राधा आनन जोति ॥
तातैं परकासित सबै, वृन्दावन भुब होति ॥ ७ ॥
कृस्न पूर्ण बिध राधिका, षोडस कला सरूप ॥
इन्ह बिनु इन्हकी पूर्णता, अनुभव ह्वै न अनूप ॥ ८ ॥
सहस्र कला चिद्रूप कौ, ए सब रांनी रूप ॥
जाय मिलै तिहं ठां सबै, हरि ईछा अनुरूप ॥ ९ ॥
बज्रनाभ हूं बज्र कौ, चिह्न दाहिनैं चर्न ॥
भक्तननि की रिछया करै, जो अनन्य ह्वै सर्न ॥ १० ॥
तनमय ए श्रीकृस्न सौं, भिन्न न कबहूं जांन ॥
पैं माया विस्तृत करैं, हरि ईछा अनुमांन ॥ ११ ॥

तातैं विरहाभास भय, सीदत ए दिन रैंन ॥
अब उपाय बरनन करौं, निति अषंड सुष दैंन ॥ १२ ॥
निराबरण श्रीकृस्न हैं, मायाबृत सब जीव ॥
हरि प्रकास बिनु आतमा, ग्यांन न हौत सदीव ॥ १३ ॥
अष्ट बिंस कलि आदिक मैं, कृस्न लैहिं अवतार ॥
दूरि करै मायाबरण, ह्वै सुरूप बिसतार ॥ १४ ॥
सो अब समैं बितीत भौ, और उपाय न कोय ॥
निज सरूप परकास कर, श्री भागवतहिं सोय ॥ १५ ॥

चौपाई - अहै जांनी हरि ईछा करी। निज सरूप गति जामैं धरी ॥
सो मोहि दियौ क्रिपा करि स्यामं। मायावरण निवारण कामं ॥ १६ ॥

दोहा - सुश्रोता बक्ता भागवत, ह्वै यामैं अनुरक्त ॥
तार्कें हिय श्रीकृस्न जू, रहै सदा आसक्त ॥ १७ ॥
जांह भागवत स्लोकहू, हौतहुँ प्रीति समेत ॥
तांह कृस्न निजगण सहित, राजत तिहिं निकैत ॥ १८ ॥
भरत षंड नर जनम लैं, जाहि न श्रवन सुहात ॥
तें नर पाप अधीन है, कीनौं आतम घात ॥ १९ ॥
निति सेवत जें भागवत, तिन्हहुँ कुल तारि तीन ॥
आयु भक्ति अधिकार लै, हरि पद मैं ह्वै लीन ॥ २० ॥
जे सकाम सेवत तिन्हहिं, मन वांछित फल देत ॥
द्विज विद्या नृप विजय धन, वैस्य सूद्र सुधि हेत ॥ २१ ॥
पुत्र सुहाग सुतियनी कौं, सिद्धि करत अनयास ॥
पैं निष्कामहिं भजन बिनु, हौत जु सबै प्रयास ॥ २२ ॥
अैसै श्री भागौत मैं, क्यूं न करहुँ आसक्ति ॥
जातैं सब सिधि हौत हैं, भुक्ति मुक्ति अरू भक्ति ॥ २३ ॥
बऊत जनम कै पुण्य तैं, हौत भागवत श्रौंन ॥
ताहू मैं श्रीकृस्न की, भक्ति दुरलभा हौंन ॥ २४ ॥
संप्रदाय भागौत की, सुनौ सबै चित्त लाय ॥
इक सेषी इक स्वयंमुष मैं, पाई दुहूँ सुभाय ॥ २५ ॥

॥ बृहस्पतिरुवाच ॥

चौपाई - सेष सनक सांष्यायन गायौ। उन्ह सुर गुरु तिन्ह मोहि सुनांयौ ॥
दूजै श्री मुष आपु बतायौ। जबि जदुकुल संहार करायौ ॥ २६ ॥
कथा कही यक मोहि बृहस्पति। सो तुम्ह सुनौ भागवत श्रुति गति ॥
आदि पुरूष श्रीनित्य किसोरां। चितै जबै माया की औरां ॥ २७ ॥

छौभित है माया गुन तीनां। प्रगट किये त्रय पुरूष नवीनां ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस ए नामां। सृष्टि स्थिति संहारहिं कामां ॥ २८ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

दोहा - प्रथमहिं ब्रह्मा प्रगट ह्वै, करी अस्तुति कर जोरी ॥
अहो आदि प्रभु पुरूष मनि, तुव पद प्रणवौं कोरि ॥ २९ ॥

चौपाई - म्है प्रगट्यौ राजस परधानां। सृष्टि प्रेरणा करी निदानां ॥
सोइ आग्या पालन हूं करौं। पैं राजसतैं बऊतहिं डरौं ॥ ३० ॥
तुव सुरूप तैंहिं अंतर करैं। गर्व ईसताई हिय मैं धरैं ॥
तातैं इहि मो दैहिंन बाधा। क्रिमा राबरी हौहि अगाधा ॥ ३१ ॥

॥ बृहस्पतिरुवाच ॥

दोहा - इह सुनि प्रभु बाधा हरन, बिधि पैं भयौ क्रिपाल ॥
निज सरूप श्रीभागवत, किय उपदेस रसाल ॥ ३२ ॥
तब बिधि श्री भागौत ल्है, सप्ता बरन निवारि ॥
सात दिवस सेवन कियौ, हरि आग्यां अनुसारि ॥ ३३ ॥
सात दिवस के जिग्य तैं, भयौ मनोरथ सिद्ध ॥
तां दिनतैं या लोक मैं, सात दिनहिं पर सिद्ध ॥ ३४ ॥

चौपाई - जब जबहिं मोहावेसहिं हौत। तब तबहिं श्री भागौत उदौत ॥
दूरि भये मोहादि रजोगुण। तबि उपदेसे नारद मुनि जन ॥ ३५ ॥

॥ बिस्नुरुवाच ॥

दोहा - बिस्नुदेव श्रीकृस्न सौं, विनयै निज सुष हैत ॥
जग पालक अधिकार मैं, पायौ गुननि समेत ॥ ३६ ॥
मारग प्रवृति निवृत्ति कै, जीव सुउभै प्रकार ॥
स्वर्ग मुक्ति दै पालि हौं, कर्म ग्यांन निरधार ॥ ३७ ॥
जबहिं धर्म उछन्न ह्वै अधरम बढै अपार ॥
धर्म संत रिछया करन, तबहिं धरौं अवतार ॥ ३८ ॥
भोग सकामी जननि कौं, अरु विरक्तनि कौं मुक्ति ॥
सोधौं पांच प्रकार हैं, ष्याति सुतिन्हकी युक्ति ॥ ३९ ॥
सालौक्य सामिप्य सायुज्य, सारूप्य अरु सारिष्ट ॥
इन्ह तैं निस्पृह ह्वै भजै, तिन्हकौं कहा अरिष्ट ॥ ४० ॥
निज आत्मा अरु रमा कौं, धारौं कौनुं प्रकार ॥
प्रेमी जन पालन करौं, किहिं बिधि कहौ निर्द्धार ॥ ४१ ॥

चौपाई - याहि सुनि बिस्नु देव कै प्रस्न। आदि पुरूष बोलै श्रीकृस्न ॥
श्रीभागौत तैं लेहु सुषवृद्धि। या माहिं सबैं अर्थनिकी सिद्धि ॥ ४२ ॥
सोइ लै परमानंदित भयै। निज सरूप अनुभव सुष लयै ॥
अनन्य भक्त कौं पोषन दीयौ। अैक मास आस्वादन कीयौ ॥ ४३ ॥

लछमी जू श्रोता जबै भयै। श्री भागवत सरसी अनुभयै ॥
जब तैं अैक मास पारायन। ष्यात भयौ सात्विक जन चायन ॥ ४४ ॥
जब श्री लछमी जू बक्ता भयै। बिस्नु देव जू श्रोता सुठयै ॥
तबहिं अैक मास भय संबादू । कछुक अपूरब इहिं आस्वादू ॥ ४५ ॥

॥ रुद्र उवाच ॥

दोहा - महादेव जू प्रगट ह्वै, बिनती करी निज अर्थ ॥
हे जन पालन सुषकरन, सब तम हरन समर्थ ॥ ४६ ॥
प्रलय जु च्यारि प्रकार कैं, प्राकृत नित्य निमित्त्य ॥
इन्ह मैं भो अधिकार बल, कहौ आत्यंतिक कृत्त्य ॥ ४७ ॥
तामस कौ अधिकार है, महा आवरण सुरूप ॥
तामस नहिं बाधा करै, तुब बल क्रिया अनूप ॥ ४८ ॥

॥ बृहस्पतिरुवाच ॥

इहि सुनि श्री भागौत कौ, कियौ उपदेस चारु ॥
सो लै तम विजयी भयै, करयौ भक्ति विस्तारु ॥ ४९ ॥
पारवती श्रोता भयै, कियौ वर्ष आस्वाद ॥
आत्यंतिक - संहार बल, भयौ गयौ सुविषाद ॥ ५० ॥
जब जब तामस प्रबल ह्वै, मायाकृत बलवांन ॥
तबै भागवत वर्ष लौं, कंरै संभु सुषदांन ॥ ५१ ॥
यातैं पारायन प्रगट, बर्षा बधिक हूँ हौय ॥
परमारथ व्यौहार कौ, साधन ह्वै तहँ दौय ॥ ५२ ॥

॥ उद्धव उवाच ॥

चौपाई - अैसै कहि बृहस्पति मोकौ। सो मैं त्रिविधि सुनाई तोकौं ॥
कहै उद्धव जू अहो परीछित। बज्रनाभ याहि समझौ सिछित ॥ ५३ ॥
यौं श्री भागवत प्रापति भयौ। ह्वै कृतार्थ सुर गुरु पद नयौ ॥
पाछै सात्विक बैस्नव रीति। कियौ भागवत मासहिं वितीति ॥ ५४ ॥
बऊत आनंदित ह्वै सुष लयौ। तिहिं प्रसादहिं यहिं जन्महिं भयौ ॥
सषा परम हरि कौ अंतरंगा। सबि ठां सर्बकाल रह्यौ संगा ॥ ५५ ॥
जबि ब्रज बिरह निवारन पठयौ। मोहिहिं भागवत ग्यांन जु दयौ ॥
सो लै गौंपिन कौं समझायौ। निति संयोग हरि कौ लपि पायौ ॥ ५६ ॥
गौपिन कै भयौ परमानंद। निति बिहार प्रापति नंद नन्द ॥
सकल भागवत मुषहिं तैं कह्यौ। म्हैं तब कछुक चमत्कारहिं लह्यौ ॥ ५७ ॥
याकौं सकल रहस्य न जान्यौ। हरि की कहनि अधीक बषान्यौ ॥
वै सबहिं समझि रहसिमय भई। अतिहिं विचित्र सुगति हरि निरमई ॥ ५८ ॥

॥ ताहं युक्ति कविबचन छप्पय ॥

उद्धव जू ब्रज तियनि, ग्यांन भागौत सुनायौ ॥
सुनत ही जांनि रहसि, संग नन्द नन्दन पायौ ॥
तिन्हकी पदरज क्रिपा, हार्द कछु लेसहिं जांन्यौं ॥
इन्हतें ए बदि गई, चतुरई कहा बषांन्यौ ॥
निज तत्व ग्यांन भागौत दै, पठयौ हरि आभरन जुत ॥
अति बिचित्र नागर जु चतुर, रसिक राय ब्रजराज सुत ॥ ५९ ॥

॥ या पर दृष्टांत छप्पय ॥

अतिहीं विचित्र द्वै मित्र, सुनेह संदेस पठावैं ॥
न्यारै न्यारै रहै, मध्य जन कौ समुझावै ॥
कह न रीति पर सिद्ध, रहसि कोउ जान न पावै ॥
इक नेही कै हीय, सुनत अति छकनि छकावै ॥
नहिं कहनहार बह छकछकै, ताकौ साधन क्रिपाबल ॥
है सुबक्ता उद्धव गये पैं, श्रोता भयै अतिहिं प्रबल ॥ ६० ॥

चौपाई - जादवास्त्र कै आदि देवगन। अस्तुति करि गयै तहँ सब मुनिजन ॥
म्हैं तहँ औरहिं रीति लषि गयौ। अति संभ्रमजुत हरिपद नयौ ॥ ६१ ॥
तब मोकौं हरि जी अपनायौ। दयौ रहसि भागौत जनायौ ॥
पीपर तरु तर फिरि दरसायौ। तब रहस्य द्रिढ़ पूरन पायौ ॥ ६२ ॥
हरि आदेस बदरिका जु गयौ। तिहिं साधन तैं इहि सुतनु लयौ ॥
स्वेच्छा रूपहिं नित्य बसत हौं। निति बिहार नैंनहिं बिलसत हौं ॥ ६३ ॥

दोहा - यातै श्री भागौत सौं, ह्वै हैं कृस्नं प्रकास ॥
जइसैं भानु प्रकास बिनु, हौत न तमकौं नास ॥ ६४ ॥

चौपाई - बज्रनाभ सबै हरि की पतनी। ह्वै हैं निति बिहार नव सुतनी ॥
म्हैं भागौत सुनाऊँ रसमय। जासौं बिरह नास ह्वै अतिसय ॥ ६५ ॥
पैं सहाय तुम्ह नृपति परीछित। हौहुँहिं तबै ह्वै इन्हकौं इछिन ॥

॥ परीछित उवाच ॥

सुनि नृप मुदित कहै कर जौरी । करहुँ याहि तजि अर्थ करौरी ॥ ६६ ॥

॥ उद्धव उवाच ॥

तब बोलै उद्धव हरि प्यारै। तुम्हहिं जोग्य इहि रीति पियारै ॥
जब अदृस्य भये भुव भगवानं। तब कलि प्रगट भयौ बलवानं ॥ ६७ ॥
दंड देहूँ ताको दिग जीती। तब निर बिघ्न श्रवन परतीती ॥
सतकारज मांहिं बिघ्नहिं करै। ताकैहुँ दोषहिं कौ नर तरैं ॥ ६८ ॥
तुव सहाय अै है हरि प्रापति। अैक मास मैं कहौं जथामति ॥

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई – यहि सुनि नृपति परीछित हरषै । भली भई करूणारस बरषै ॥ ६९ ॥
कलिजुग दंड दैंन नहिं सोचू । नांहिं दिगविजय सत्रु संकोचू ॥
तुव सहाय तैं सब सिधि ह्वै हैं । तनकहुं बाधा इहाँ न छ्रू हैं ॥ ७० ॥

॥ परीछित उवाच ॥

अंतर म्हैरौ कथा श्रवन मैं । सौ क्यूं सही जात तन मन मैं ॥
मौ परि अति करूणा रस ढरौं । दीनहिं जांनि सरणागत करौं ॥ ७१ ॥

॥ सूत उवाच ॥

दोहा – यहि कहि नृप पायन पर्यौ, गहबराहिं अति षेद॥
करि अति हित बोलै सुषद, सब हिय संसय छेद॥ ७२ ॥

॥ श्री उद्धव उवाच ॥

चौपाई – नरपति चिंता तजहुँ विषादा। इन्हहिं भागवत दै आस्वादा ॥
अधिकारी तुम्हहिं याकै मुष्य। जग तारणहुं कौं अैक मनुष्य ॥ ७३ ॥
अबलौं सबहिं सुकर्म परायन। नहिं समझत भागौत परायन ॥
तुव परसाद तैं भारत षंड। पीवैंगै इहि अमृत अषंड ॥ ७४ ॥
नंदनंदन विग्रह सुक देवू। तै कहिहैं याकौ सब भेवू ॥
तिन्हतैं तुम्हहिं भागौत पुरांन। सुनि हौं कथा जु परम सुषदांन ॥ ७५ ॥
जगत मोह माया तजि दैहौं। नित्य धांम वृंदावन अैहौं ॥
तब तैं यहि भागवत स्वादू। ष्याति हौय तुव सुक संवादू ॥ ७६ ॥
यामैं तुम्ह जिन करहुँ संदेहू। कही सत्य धरि जिय अति सनेहू ॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

सुनि उद्धव पद नायौ सीसू । मिलि सबसौं लै सबनि असीसू॥ ७७ ॥
चलै दिग्विजय करन परीछित । उद्धव वचन मानि मन ईछित॥
बज्रनाभ कौ सुत प्रतिबाहूँ । ताहि कियौ मथुरा कौ नाहूँ॥ ७८ ॥
बज्रनाभ सब रांनीं मंडल। बैठे कुसुमोषर जु सषी स्थल॥
तांह उद्धव जु कियौ उचारा। श्री भागौत सकल सुषसारा॥ ७९ ॥
सबही सुनत आनंदित भयै। अैक मास लौं अतिहि सुष छयै॥
चिदानंद मय लीला भासी। कृस्नं चंद्र प्रगटै सुष रासी॥ ८० ॥
अद्‌भुत अनुपम रूप अलौकिक। ताहि कहा बरनैं नर लौकिक॥
तबं तिहिं ठां निजि आत्म सरूपा। रांनी लषै चांदनी रूपा॥ ८१ ॥
चंद चांदनी अैकहिं अंगा। त्यौं राधा बिहरत हरि संगा॥
तिन्हकी जोती रूप ह्वै गई। अंतरंग सहचरि जु निरमई॥८२ ॥
बज्रंनाभ भयौ बज्र सुलछिन। ताछिन कृस्नं चंद्र पद दछिन॥
यौं निज रूप हीं प्रापत भयै। बिरह बऊत दिनकैं सब गयै॥ ८३ ॥

व्यावहारिक तन भयै अद्रस्यं। इहै प्रताप भागौत रहस्यं ॥
याहि लषि अपनौ बिस्मय भयौ। ज्यौं जागतहिं सुपनौं मिटि गयौ ॥ ८४ ॥
तिहिं ठां जेहिं समाज कै जीवू। भयै अद्रस्य जग नैन सदीवू ॥
अबलौं बिहरत श्री वृंदावन जु। जमुना तीर कुंड गौबर्द्धन जु ॥ ८५ ॥

दोहा - निति बिहार तहँ हौत है, बीतत कलप अनैक ॥
निति परिकर लीला सु नित, रहै सदा रस अैक ॥ ८६ ॥
जे ब्रजभूमि उपास द्रिढ़, रसिक अनन्य सुप्रेम ॥
ते दसरत निज रहसि कौं, औरन कौं नहिं नेम ॥ ८७ ॥
कहत महातम सूत जू, कृस्नं प्राप्ति सुषसार ॥
पढत सुनतहूं हौत नर, ब्रजलीला अधिकार ॥ ८८ ॥

॥ कवि वचन ॥

कुंडलिया - श्री भागौत प्रताप बिनु, मिटै न माया बर्न ॥
अनन्य भक्ति सतसंग बिनु, लहै न हरि पद सर्न ॥
लहै न हरिपद सर्न, बर्न की कहा चलाई ॥
परिकर सुजनहूं हरि, इछा बस अति अकुलाई ॥
उद्धव से जन संग तैं, कहा हौहि नहिं भागवत ॥
समैं भागवत देस, जो मिलिहैं श्रौता भागवत ॥ ८९ ॥

(इति श्री स्कन्द पुराणोक्त श्रीभागवत माहात्म्य भाषा श्री ब्रजदासी
कृते श्री भगवत्प्राप्ति निरुपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

(श्रीसूत - शौनक संवाद तथा पारायण विधि निरूपण)

॥ ऋषय उवाच ॥

दोहा - इहि सुनि सौनक रिषि सकल, पूछत अति मनमोद ॥
धन्य धन्य तुम्ह सूत जू, सुष बरष्यौ चहुँ कोद ॥ १ ॥

चौपाई - अैसौ श्री भागौत पुरानं। वाणीमय मूरति भगवानं ॥
तासु अपूरब कह्यौ प्रभावू। अब इक सुनिबै कौं मन चावू ॥ २ ॥
का प्रमांन क्यूं सुनिबै की विधि। श्रौता वक्ता बिनूं क्यूं ह्वै सिधि ॥
सौ वृतान्त कहौ समझायी। जहिं समान जौ ह्वैं सुषदायी ॥ ३ ॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

दोहा - तब बोलै श्री सूत जू, श्री भागौत विधांन॥
सुबक्ता श्रौता रूप गुन, सुलछिन अरु परमांन॥ ४॥
रूप भागवत कृस्नं हैं, सच्चिदानंद सरूप॥
अछर अछर रमि जू रह्यौ, बांग्मय जोति अनूप॥ ५॥
गुन यामैं अगनित कहे, लछिन ग्यांन रु सुभक्ति॥
पुनि सुविरक्ति विग्यांन हूं, जो हरिपद आसक्ति॥ ६॥
जामैं हरि माधुर्य कौ, सुनत हौत उद्यौतू॥
सो जु वाक्य भागौत अरु, मर्दन माया तौतू॥ ७॥
अब प्रमांन भागौत कौ, कहै कौंनु कविरांय॥
जु अछर ब्रह्म अनन्त कौ, बीज बृछि लौं गाय॥ ८॥
तासु सकल अवगाह मैं, पहिलैं कहै जु तीन॥
ब्रह्मा बिस्नुं सिव रूप ए, धारन कहत प्रवीन॥ ९॥
मित आषर बहु अर्थ मैं, चारि स्लोक गुनरास॥
सात दिवस इक बर्ष इक, धारै इक इक मास॥ १०॥
अैं सरूप श्री कृस्नं कौ, इन्हकी कही न जाय॥
औरनि कौं मित बरन मैं, कहा अर्थ दरसाय॥ ११॥
लषी अलप मति नरिन की, हरि लीनौं अवतार॥
व्यास रूप ह्वै भागवत, कियौ दस अष्ट हजार॥ १२॥
सुक परीछित संवाद मैं, प्रगट भयौ सुष मूल॥
अनसन लै बैठे जबै, मुनि जुत गंगा कूल॥ १३॥
कलि जुग ग्राह ग्रहीत नर, तिन्हकौं मौष उपाय॥
याहि याहि आश्रय सही, सेवहुँ निति चितलाय॥ १४॥
अैं सरूप सुलछिन कहै, जथा ग्रंथ अनुसार॥
सु श्रौता बक्ता बरनि हौं, प्रवर अवर बिसतार॥ १५॥
क्रम तैं दोउ चारि हैं, चातक सुक हंस मीन॥
बृक भूरूंड बृष ऊंट, इहैं सगुन गुन हीन॥ १६॥

॥ अथ प्रवर श्रौता लछिनं बर्ननं॥

चौपाई - कथा रूप घन बहु जल बरषै। पैं यहिं कृस्नं रसामृत करषै॥
सब तजि लैं निज रसहीं स्वातिक। सौ श्रौता कहियै सुत चातिक ॥१७॥
सब रस मिली सुकथा निति सुनैं। पैं इक कृस्नं कथामृत चुनैं॥

पृथक बिवैक करैं जल अंसा। षीर अंस लैं ज्यौं कल हंसा ॥ १८ ॥
बक्ता जो कहैं सु सब जिय धरैं। श्रौतननि के मन हरषित करैं ॥
बोलै मधुर अलप पद जे तुक। रस आस्वादी सो श्रौता सुक ॥ १९ ॥
सुनतहिं बात करै न परसपर। रहै झूमि मन इक वहि रस पर ॥
निधि बसि गंगा रस मैं लीनूं। सो श्रौता कहियै हैं मीनूं ॥ २० ॥

॥ अथ अवर श्रौता लछिनं बर्ननं ॥

राग सुनत बन मृग चमकावै। ज्यौं रसिकनि कटु बैंन सुनावैं ॥
जाहि कहै सबही मन धिक धिक। कथा भंग कौं सो श्रौता बृक ॥ २१ ॥
औरनी कौं सिछा दै नीकैं। आपुन चलै पंथ हठ हीं कैं ॥
चौंच धरै निज नाहर तूण्ड। सो श्रौता पंछी भूरूण्ड ॥ २२ ॥
औरनी दैषि आपहूँ सुनैं। स्वाद ना धारै सबहीं लुनैं ॥
षलि अरु दाष षाय इक गैलं। उदरं भरै श्रौता सौ बैलं ॥ २३ ॥
रसमयी कथा छांडि दै सही। बिषै कुतर्क कुबात लै गही ॥
आंब बौर तजि कंटक बूंट। पावै सो श्रौता है ऊंट ॥ २४ ॥
और भैद दुहुँ द्यां बहुँ भांति। केउ प्रवर केउ अवर निपांति ॥
निज आचरन प्रकृति अनुसारा। प्रवर अवर जानहूं निर्द्धारा ॥ २५ ॥
तिन्हमैं इक इक कहै जु आनूं। भृंग प्रवर षर अवरहिं जानूं ॥
पुष्पसार सौरभ लैं सु भृंगा। षर लौटत रज मांहिं उतंगा ॥ २६ ॥
प्रवरहिं उपादैय बिधि जांनौं। अवर निषेध हैय हीं मांनौं ॥
श्रौता श्रवन कह्यौ परकारा। सुनुं अब सुलछिन बिधि उपहारा ॥ २७ ॥

॥ अथ सुद्ध श्रौता लछिनं बर्ननं ॥

छप्पय - **सनमुष बिधि सौं करी, प्रनांम नहिं बदि आन नर ॥**
हरिलीला अभिलाष, निपुण अति नम्र जोरि कर ॥
सिष्य रूप बिसवास, श्रबन रस अनुचिंतन पर ॥
प्रसनं मांझ अनुरक्त, नित्य सुचि प्रियजन गिरिधर ॥
निति नवधा भजनानंद मैं, दसधा रस लैं अनुसरैं ॥
ऐसौ श्रौता जो रसिक मनि, बक्ता कै मनि बसि जु करैं ॥ २८ ॥

॥ अथ बक्ता कैं लछिनं बर्ननं ॥

छप्पय - **अति सुसील हरि लीन, चाह तिनका ज्यौं तोरैं ॥**
भांति भांति समझाय, भगति मैं सब मति मोरैं ॥
सुहृद सबनि पैं दीन, जननि पैं अति करुणा बृत ॥
बचनामृत सौं सींचि, बीचि बरषैं प्रेमामृत ॥
निति जांसु दरस कलि कलुष तृन, जारत जइसै आगवत ॥
ऐसो रसिक बक्ता जो मिलैं, ह्वै अनुकंपा जु भागवत ॥ २९ ॥

चौपाई - अैं बक्ता श्रौता सबै मान्यं। इन्ह बिनु इतर हौय सामान्यं ॥
साधन करत सिद्ध ह्वै जायी। इक श्रद्धा इन्हमैं अधिकायी ॥ ३० ॥

॥ अथ यांकौ अस्थान बर्ननं ॥

अस्थानक यांकौं सु भारत षंडं। तीर्थनि मैं ब्रजभूमी अषंडं ॥
दैवस्थल उपबन निज सुगैहा। जहिं उपजैं हरि पद मैं नैहा ॥ ३१ ॥

॥ अथ विधि बर्ननं ॥

अब विधि कहैं सकल समझायी। जांह सुप संपति हौत अघायी ॥
च्यारि प्रकार कही पारायन। त्रय गुन निरगुन परम रसायन ॥ ३२ ॥
सात दिवस जो ब्रह्मा जु करी। सोइ राजस तप डंबर भरी ॥
बक्ता रु श्रौता पेदहिं भारी। सीघ्र हौहिं सब बिघनहिं टारी ॥ ३३ ॥
मास अैक मैं हौंहि सु सात्विक। ह्वै अछिर पद अर्थ हीं तात्विक ॥
धीरज धारि सुषपूर्वक सुनैं। बिच बिच कीरतन आनंद गुनैं ॥ ३४ ॥
बर्षा बधिक जो ह्वै सो तामस। निति आनंद छाय रहै हरिजस ॥
आलस बिस्मृति स्मृतिहूं लहैं। बिघन प्रबल ब्यावहारिहिं गहैं ॥ ३५ ॥
बरष मास दिन कौ नहिं नेमू। सो कहीय निरगुन जुत प्रेमू ॥
इहि आस्वाद प्रधांन है कथा। सुनैं जांह लौं मन सुरति जथा ॥ ३६ ॥
बिस्नुरात सुक केइ संवादा। भयौ इहां निरगुन आस्वादा ॥
इन्ह कैं आयु अवधि दिन कारन। सब राज सता क्लेस निवारन ॥ ३७ ॥
त्रिगुनमयी कहा निरगुन मयी। करै सुभागवत भगवत मयी ॥
सदा सेइए जिहिं तिहिं भांती। सबकी सब बिधि पूरै सांती ॥ ३८ ॥
भुक्ति मुक्ति जिन्हीं आसा तजी। तिन्हकैं इहीं सुसंपदा सजी ॥
जिन्हकैं कृस्नं बिहार भजन रस। लंपट ताकौं क्यूं न हौहि जस ॥ ३९ ॥
जे संसार ताप सौं न डरैं। चाहत भुक्ति मुक्ति नाहिं टरैं ॥
इहि औषधि तिन्ह सेवन जोग्य। भव रोगनि तौं ह्वै नैरोग्य ॥ ४० ॥
जे संसारी विषै आरामी। बिबिधा चाह जुत महा सकामी ॥
तिन्हकैं सुकर्म मार्ग तैं सिद्धि। सोई सब यातैं ह्वै परसिद्धि ॥ ४१ ॥
जे सामर्थ्य बुद्धि धन दुल्लभं। तिन्हकौं यहि रस नाहीं सुल्लभं ॥
पैं इन्हहूं कै सेव्य जू कहै। श्रवण मात्र तैं सदगति सुलहै ॥ ४२ ॥
धन सुत दारा बाहन राजू। सत्रु नास सुजस कांम समाजू ॥
सो सब यातैं ह्वै परिपूरन। पै इन्ह रोगनि कौ इहि चूरन ॥ ४३ ॥
अरु यामैं इक अधिक बडाई। भोग दैहिं पुनि मुक्ति पठाई ॥
सुनत सुनत उपजै बैरागा। लषि अषंड हरि पद अनुरागा ॥ ४४ ॥
जो है कृस्न चंद्र की कृपा। गावै मगन हौहि तजि तृपा ॥
तब सब बिधि बनि आवै सुसही। सूत सौनकनि प्रति इहि जु कही ॥ ४५ ॥

कृस्नं अर्थ बिनु और सबै धन। मुक्त्यादिक कहा और लोकगन ॥
तिन्हकौं नहिं मांगै निज दासा। केवल मन हरि चरन निवासा ॥ ४६ ॥
श्रौता बक्ता कहीयै दोई। कृस्नांर्थी धन अर्थी सोई ॥
कृस्नार्थी जो केवल हरिभक्त। धन अर्थी जो हरि मायासक्त ॥ ४७ ॥
दुहुँ घां ह्वै ज़ो अर्थहिं अैका। तौ फल पावै सुषहिं अनैका ॥
जो बिपरीत अर्थ कौ भासा। तौ ह्वै रसाभास फल नासा ॥ ४८ ॥
कृस्नांर्थी श्रौता अरु सुबक्ता। सुनैं कहै मिलि हरि जु आसक्ता ॥
तबै दोउन के ह्वै आनंदा। कटै दुहूँन कैं माया फंदा ॥ ४९ ॥
पैं कृस्नांर्थी ह्वै सिद्धि बिलंबू। बीतै बऊत काल अवलंबू ॥
दुर्लभ सुगम नाहिं यौं पईयै। सुलभ साधनाधीन लहीयै ॥ ५० ॥
धन अर्थी कै सिधि ह्वै तूरन। जो ह्वै बिधि बिबेक संपूरन ॥
आदि अंतलौं हौहिं अषंडित। तन मन बचन वेद बिधि मंडित ॥ ५१ ॥
कृस्नांर्थी कौं बिधि है प्रेमू। अैक प्रेम ही याकौं नेमू ॥
निर्गुन यहि गुन कौ कहा कामां। गुण यामैं हरिगुण अभिरामां ॥ ५२ ॥
अब सकाम बिधि करियै बर्ननूं। अर्थीन कैं या बिनु मन हर्ननूं ॥
तिन्ह कौं सुनियम यथा रुचि करैं। बऊत प्रीति हरि जन अनुसरैं ॥ ५३ ॥
देसकाल सबै सोधन करैं। प्रात कृत्य हरि सेवन सुढरैं ॥
सबै समाज जुत ह्वै अनुरक्ता। आसन पैं पधरावै सुबक्ता ॥ ५४ ॥
गीत बाद्य जुत सबै मन हरैं। पुसतक अरु गुरु सु पूजन करैं ॥
परिक्रमा अष्टांग परणामां। करै अंजुली सु बिनती कामां ॥ ५५ ॥
अहौ दयानिधि श्री सुक रूपा। कहौ भागवत परम अनूपा ॥
त्रिबिधि ताप कौं दूरि ही करौं। भगति सुधारस सौं हीय भरौं ॥ ५६ ॥
यौं कहि सनमुष बैठे श्रौता। बक्ता बहै सुकथा रस स्त्रौता ॥
बक्ता बोरहिं प्रवाह इक टकी। देह गेह की नाहिं धक धकी ॥ ५७ ॥
मधि अरु अंत कीरतन बिश्रामां। श्रवन सुषद रसमय हरिनामां ॥
कामादिक तजि प्रिथवी सैनूं। भौजन हविष्यान्न सुष दैनूं ॥ ५८ ॥
संपूरन दिन करै जु जागर। भजनानंद बढ़ै सुष सागर ॥
जथा कृपणता पूजनहिं करैं। बिंताक् सांठा तजि गुरु अनुसरैं ॥ ५९ ॥
ब्राह्मन बैस्नव भोजन दैहीं। इन्हकी क्रिपा आसिषा लैहीं ॥
जथा बिभौ दै औरहिं दानां। सबि श्रौतनि कौ करैं सनमानां ॥ ६० ॥

दोहा - **जो नर या बिधि भागवत, श्रवन करत चितलाय ॥**
ताकैं मन बांछित सकल, पूरै श्री हरि राय ॥ ६१ ॥
कहां सकामी तुच्छ जन, कां भागौत धनेस ॥
जाकैं रीझैं रंक ज्यौं, मांगत तुस जव भेस ॥ ६२ ॥

लाज धनेसहिं आवहीं, पैं याकौं अपनाय ॥
त्यौं सकाम सिधि पावहीं, श्री भागौत मनाय ॥ ६३ ॥
कृस्नं अर्थ मन मैं धरैं, सेवैं श्री भागौत ॥
नहचै श्री ब्रजराज सुत, हृदै हौत उदौत ॥ ६४ ॥

चौपाई - याहि सुनि सौनक पूजा करी। जइसी बिधि यामैं जो उच्चरी ॥
लीनौं वरष सहस कौ नेमू। केवल हरिगुन श्रवन सुप्रेमू ॥ ६५ ॥
तांह जे प्रस्न कियै बहुभांती। बैठे निमिषारन्य मुनि पांती ॥
तिन्हकैं सु उत्तर दीनैं सूत जु। जो बरनैं श्रीसुक अवधूत जु ॥ ६६ ॥
जो इहि पढै सुनै रु सुनावै। ताकौं फल हरि चरनहिं पावै ॥
श्री भागौतहिं अति सुरति बढ़ै। माया मोह कीच तैं जु कढ़ै ॥ ६७ ॥

दोहा - (श्री) भागौत माहात्म्य की, बरनी भाषा अैह ॥
छिमा करौ सुनि संत सबै, ढरौं क्रिपा रस नैह ॥ ६८ ॥
व्यंग गूढ सु लछिन नांहिं, नांहिं कविता चातुर्य ॥
लगै तात तुतरान बच, ज्यौं तातहीं माधुर्य ॥ ६९ ॥
संस्कृत अनुगत अर्थ है, कछु ताकै अनुसार ॥
कछुक छंद अनुकरन हैं, लीज्यौ रसिक सुधार ॥ ७० ॥
अछर जुरनी सु अर्थ कछु, करि लीनौं मन हेत ॥
सोधनि बाकी रहि गई, सौ चतुरनि कैं हेत ॥ ७१ ॥
महाभाग धीरज सुजन, हित निदेस चितधारि ॥
कीनौं अलि हरि लाल कछु, संस्कृत भाषा चारि ॥ ७२ ॥
समत अष्ट दस सत जु पुनि, पंचदस रीतु हेम ॥
(श्री) भागवत माहात्म्य की, भाषा पूरन छेम ॥ ७३ ॥
(श्री) राधाबर रिझवार मनि, दैहुँ रीझि इहि नेम ॥
धीरज जुत बिलसौं सदा, उच्छव दरसन प्रेम ॥ ७४ ॥
जे नर उत्तम जुगल हितु, लाल किसौर सरूप ॥
दानी गौबर्द्धन सदा, प्रीति करौं अनुरूप ॥ ७५ ॥

(इति श्री स्कन्द पुराणोक्त भागवत माहात्म्ये श्री सूत-सौनक संवादे भाषा ब्रजदासी कृते -पारायणविधि निरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥)

(श्री भागवत माहात्म्य सम्पूर्णम् ॥)

(॥ पोथी को सं. १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ॥)

(कुल छन्द - २७० - छन्द योग क्रम -२७०)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यांनमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राजराजेश्वर राजा श्री राजसिंघ जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुंवरी जी बांकावती "श्री ब्रजदासी" जी कृत श्रीमद्भागवत भाषा प्रथम स्कंध लिष्यते)

॥ प्रथम - स्कंध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(श्री सूत जी से शौनकादिक ऋषियों का प्रश्न)

(मंगलाचरण)

छप्पय - (ॐ) नमो नमो श्री हंस, नमो सनकादि रूप हरि ॥
नमो नमो नारद जु, रिषि जिनि निम्बारक सिष करि ॥
नमो नमो श्री व्यास, नमो सुकदेव जु स्वांमी ॥
नमो परीछित राज, रिषिन मैं मुष्य जु नांमी ॥
ॐ नमो नमो श्री सूत जु, नमो नमो सौनक सकल ॥
ॐ नमो नमो श्री भागवत, कृस्नं रूप छिति मैं अकल ॥ १ ॥

दोहा - (श्री) गुरु बृंदावन बंदन करौं, प्रथमहिं भरी उछाह ॥
दम्पति प्रभु तिहुं की क्रिपा, करौ सफल मो चाह ॥ २ ॥
बार बार बंदन करहुँ, श्री बृषभानु कुँवारि ॥
जय जय श्रीगोपाल जू, कीजै क्रिपा मुरारि ॥ ३ ॥
बंदौ नारद व्यास सुक, स्वामी श्रीधर संग ॥
भक्त क्रिपालु बंदौ सुषद, फलै मनौरथ रंग ॥ ४ ॥
कियौ प्रगट श्री भागवत, व्यास रूप भगवांन ॥
इहि कलितम निरबार हित, जगमगात ज्यौं भांन ॥ ५ ॥
कह्यौ चहत श्री भागवत, भाषा बुद्धि प्रमांन ॥
कर गहि मुहि सामर्थ हरि, दैहौं क्रिपा निधांन ॥ ६ ॥

॥ अथाख्यान ॥

चौपाई - (श्री) व्यास भागवत आरंभ माहीं। प्रभु कौ ध्यांन हिर्दै सरसाहीं ॥
ऐसौ बचन कहत मुनि ग्यांनी। प्रभु सौं परम प्रेम उर ठांनी ॥ ७ ॥
परम सत्य परमेस्वर स्वांमी। हम्ह तिहिं ध्यांन धरत हिय ठानी ॥
इहै त्रिबिधि झूंठौ संसारा। भांति भांति बहु बिधि निरधारा ॥ ८ ॥
अरु सांचौ सो देत दिषांई। सो सत्यता प्रभु ही की छांई ॥
जइसै रेत चमक म्रिग देषैं। जल कौं भ्रम मन माहीं पेषैं ॥ ९ ॥
जल भ्रम झूठहिं रेतहिं सत्य। भ्रम सौं दीसि परत जल सत्य ॥
जल भ्रम काच मांहिं ज्यों हौता। सो झूंठौ सति काच उदौता ॥ १० ॥

यों झूंठौं सवहीं संसारा। सांचौ है स्वांमी करतारा ॥
प्रभु में नांहि माया संबन्धा। न्यारौ हरि तैहिं माया धन्धा ॥११॥
उपजन पालन प्रलै संसारा। हौत सबै प्रभु सौं बिसतारा ॥
व्यापत ह्वै रह्यौ प्रभु सब ठौरा। जगमगात जग में जगमौरा ॥१२॥
सवहिं बस्तु कौ प्रभुहिं ग्याता। आप प्रकास रूप सुषदाता ॥
हदै बीच विधि कैं जिन आया। दीनें च्यारौं बेद पढाया ॥१३॥
जिन्ह वेदन में सुवड्डे पंडित। मोहित हौंहि रहैं गुन मंडित ॥
प्रभु की माया अपरंपारा। वाहि सत्य जो करै करतारा ॥१४॥

दोहा - सज्जन जांनन जोग्य है, बस्तु भागवत बीच॥
अब बर्नन हौं करत हौं, सुभ ह्वै टरि दुष नीच॥ १५॥
अबैं व्यास जू कहत हैं, यहै भागवत मांहिं॥
धर्म सबै निहकाम अब, बर्नन करि सुष पांहिं॥ १६॥
यहै सुषद श्री भागवत, अति संछेपहिं भाय॥
नारायन मुष तैं प्रगटि, बिधि सौं कह्यौ सुनाय॥ १७॥
और पुरांन सुनैंसबै, प्रभु न बेगि हिय मांहिं॥
सुनन मनोरथ भागवत, हौतहिं हरि दरसांहिं॥ १८॥
पैं इच्छा सुकृत कै मिलै, सुनन भागवत हौत॥
जनम जनम कैं पाप टरि, हौंहि सुधर्म उदौत॥ १९॥
अहौ रसिक श्री भागवत, फल है इहि रसरूप॥
छिलका गुठली नांहिं कहुँ, अदभुत अमित अनूप॥ २०॥
बेद कलपतरु वृछ है, सुफल भागवत जास॥
श्री सुक मुष तैं प्रगटहिं, वर्षत आनंद प्रकास॥ २१॥
सूवा कैं मुष तैं गिरत, फल सुमिष्ट अति हौत॥
(श्री) सुक मुष तैं भागवत फल, सुभयौं प्रगट उदौत॥ २२॥
मुक्त भयै लहि परमपद, वाहिक्रिमाहिं सुनंत ॥
तातैं श्रौता रसिक सब, पांन करहुँ यहि तंत॥ २३॥
तत्वभेद याहि कहि प्रथम, श्रौता जनन सुनाय॥
अबैं कहत हैं व्यास जू, कथा प्रसंग सुभाय॥ २४॥
नइमिष बन अति ठौर सुभ, बिस्नुं षैत्र कहि ताहि॥
ता मधि सौनक आदि रिषि, बैठै धरि हरि चाहि॥ २५॥
सहस बरष परमान जिहिं, अैसौ जिग्य रचाय॥
ईस्वर प्रापति कैं निमित, सौनक करत बनाय॥ २६॥
करि बैठे रिषि इक दिनां, प्रात अगनि मधि हौम॥
तहँ पौरानिक सूत जु, आयै वाही भौम॥ २७॥

रिषिगन सब मिलि सूत कौ, अतिही आदर कीन ॥
पूछत भयै सुबोध कौं, सूतहिं जानि प्रवीन ॥२८॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

सब पुरांन भारथ सहित, धर्म सास्त्र बहु भाय ॥
पढै सुनै हैं तुम्ह भलै, अवगाहे मुष गाय ॥२९॥
धर्म सास्त्र जितनैंन कौं, जांनत है श्री व्यास ॥
मुनि त्रिकाल दरसी बड्डे, तिन्हहूं कौ अभ्यास ॥३०॥
तिन्ह कै कृपा कटाछि तैं, तुम्ह जांनत सब सूत ॥
धर्मसास्त्र कहियै जितै, अरु पुरांन अदभूत ॥३१॥
तुम्ह हौ सिष श्री व्यास कैं, लोक तिहूं बिषयात ॥
गोपी बात गुरु आपनि, प्यारे सिषहिं जतात ॥३२॥
तिन्हहिं पुरांनन मधि तुम्ह, निसचै कीनौं हौय ॥
बिन परिस्त्रम प्रांनी तिरै, सोकहि अंतर षौय ॥३३॥
अलप आयुधानीन की, या कलिजुग कैं बीच ॥
अतिरोगी अति आलसी, भाग्यहीन मति नीच ॥३४॥
अरु है सास्त्र बड्डे बहु, हम्ह जु सुनैं किहुँ भाय ॥
फिरि प्रभु मिलन उपाय हूँ, उन्हमैं कठिन बताय ॥३५॥
तातैं जो कछु सास्त्र मधि, सार भेद जो कौय ॥
अबैं सुनावहुँ सूत जू, हम्ह बुद्धि निर्मल हौय ॥३६॥
अहौ सूत बसुदेव गृह, उदर देवकी मध्य ॥
किहिं कारन प्रभु अवतरै, कहियै बात प्रसध्य ॥३७॥
हम्हहिं सुनन इच्छा बडी, बरनहुँ सूत बनाय ॥
कहियै प्रभु कौ जस अमित, सब बिधि भेद जताय ॥३८॥
यहै जगत पालन निमित, बुद्धि जगत की हौंन ॥
प्रभु अवतार जु हौत है, बार बार भुव भौंन ॥३९॥
बिनु जानैंहुँ कबहुँ कोउ, प्रांनी लै हरि नांम ॥
तऊ घोर संसार तरैं, तरि पावै सुभ ठांम ॥४०॥
जनम मरन संताप तैं, प्रांनी तुरत छुटाय ॥
जिहिं ईस्वर कै नांम तैं, भयहूं आप डराय ॥४१॥
जिन्ह प्रभु पद आश्रय रहत, सु बड्डे मुनि जन साधि ॥
तै मिलि करत पवित्र जग, मैटत पाप उपाधि ॥४२॥
गंगा जल पावन करत, कीनैं अतिही सेव ॥
तुरत मुक्ति करि दैत है, साध देव मणि देव ॥४३॥

तातै जस भगवांन कौं, कौंनु सुनैं नहिं कांन॥
सुबड्डे जन भगवान कौ, गावत सुजस - सुजांन॥४४॥
जस गायै भगवांन कौ, हौय मैल कलि दूर॥
हृदै भयै उज्जल महा, उपजै ग्यांन सपूर॥४५॥
ब्रह्मा बिस्नुं महेस तिहुँ, रूप धारि भगवांन॥
उपजन पालन प्रलै जग, किहिं बिधि करत प्रमांन॥४६॥
हम्ह कौं अति सरधा बढ़ी, हरि गुन कहियै सूत॥
मुक्ति हौंहि हरि गुन सुनैं, टरै कुटिल कलि धूत॥४७॥
और जितै अवतार प्रभु, धरै हौहि भगवांन॥
कहियै तिन्हकी सब कथा, आछैं भेद बषांन॥४८॥
ईस्वर ईछा आप तैं, आपहिं धरि अवतार॥
लीला करत अनैंक बिधि, ताकौ वार न पार॥४९॥
हम्ह कबहूं न अघात हैं, सुनतहिं सुजस सुनाद॥
रसिकन कौं छिन छिन सुनत, निति नवेलौ सुवाद॥५०॥
सब अवतारन मद्धि बलि, सहित कृस्नं अवतार॥
जे चरित्र सुलीला करी, कहियै भलै प्रकार॥५१॥
या नइमिष बन मांहिं हम्ह, कलिजुग आयौ जांनि॥
बिस्नुं षैत्र मैं जिग्य कौ, मिस करी बैठे आंनि॥५२॥
हम्हकौं अवसर है अबैं, हरि गुन कहौ बषांनि॥
बिधि मिलाय इहि रावरौ, दियौ क्रिपा करि ठांनि॥५३॥
कलिजुग मैं चाहत तर्यो, हम्ह सागर संसार॥
तुम्ह सै षेवट मिलि गयै, क्रिपा करी करतार॥५४॥
जोगीन कैं ईस्वर प्रभु, ब्रह्मण्य देव हरि आप॥
जे नित सुरछक धर्म कै, मैटन त्रिविधि संताप॥५५॥
प्रभु अंतरहित हौत ही, किहिं बल रह्यौ जु धर्म॥
हम्ह सौ कहियै सूत जू, यहि सबही बिधि मर्म॥५६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य)

॥ श्री व्यास उवाच ॥

दोहा - सूत रिषिन कौं प्रस्नं सुनि, हिय अति हरषि उमांहि ॥
ज्वाब दैंन आरंभ कियौ, उन्हकौं बचन सरांहि ॥ १ ॥

॥ सूत उवाच ॥

ऐसै श्री सुकदेव कौ, हौं अब करत प्रनांम ॥
निकसि गर्भ तैं बन चलै, ह्वै विरक्त अभिरांम ॥ २ ॥
बिना जग्यउपवीत बिधि, रहै बिना सब कर्म ॥
सुत सुत कहि संग ही लगै, व्यास नेह कैं धर्म ॥ ३ ॥
बृछिन मैं परवेस करि, श्री सुक मुनि तिहिं बार ॥
देत भयै सु उत्तर प्रगट, व्यासहिं भलै प्रकार ॥ ४ ॥
बोलि उठै सब बृछि यौं, हम्हहीं तुम्ह सुत व्यास ॥
ऐसै पितू अग्यांन कौ, जिन्ह सुक कीनौं नास ॥ ५ ॥
गुरु सबही मुनि जनन कै, व्यास पुत्र सुकदेव ॥
हौं तिन्ह चरननि सरनि हौ, गहि किंकरता भेव ॥ ६ ॥
जिन्ह प्रानिनि पैं क्रिपा करि, प्रगट भागवत कीन ॥
गोपि पुरांन जु भागवत, बड्डु प्रताप नवीन ॥ ७ ॥
सकल वेद कौ सार है, दूरि करन अग्यांन ॥
ग्यांन दीप श्रीभागवत, सुक किय प्रगट प्रमांन ॥ ८ ॥
नरनारायन व्यास जू, देवी रससति वंदि ॥
अब पुरांन आरंभ हौं, करत हृदै आनंदि ॥ ९ ॥
भलौ प्रस्नं मुनि तुम्ह कर्यौ, जिहिं जग मंगल हौत ॥
कृस्नं संबंधी प्रस्नं कियै, जिहिं मन ग्यांन उदौत ॥ १० ॥
परम धरम जिहिं भगति हरि, प्रगट हौत निहकांम ॥
हौहि बुद्धि निरमल अधिक, लहै महासुष धांम ॥ ११ ॥
जब उपजै हरि भगति हिय, प्रगटै ग्यांन बिराग ॥
भगति ग्यांन बैराग तिहुँ, अैं जानहुँ इक लाग ॥ १२ ॥

चौपाई - अरु जो धर्म भलौहूं कीनौं। सहत कामना चित्त अधीनौं॥
बिच हरिकथा प्रीत नहिं जातैं। सो सब धर्म बृथा उतपातैं॥ १३ ॥
दिव्य सकामं धर्मफल युक्ता। अरु निहकामं धर्म फल मुक्ता॥
बिषै भोग सुष फल कौ जांनैं। सोनहिं बुध फल धर्म प्रमांनैं॥ १४ ॥
कौ कहै षांन पांन फल यहै। इंद्री सबै प्रसंनताइ लहै॥
सो नहिं सत्य झूंठ यहि कहनौं। षांन पांन फल जीवत रहनौं॥ १५ ॥

जीवैं कौ फल कौउ बतावै। कर्म सकामनि सुभ तन पावै॥
सो नहिं जीबैं कौ फल याही। परम तत्व पहिचानैं सौही॥ १६॥
तत्व कहत ग्यांनी सुप्रमांना। परमातमा ब्रह्म भगवांना॥
सर्द्धा जुक्ति साधै जो मुनिजन। परम ग्यांन बैराग धारि मन॥ १७॥
ब्रह्म तत्व कौं भुक्ति जुक्ति सौं। देषैं अपनैं विषै उक्ति सौं॥
अहौ बिप्र ह्वै नर तन कौऊ। आश्रम बर्न किहूं मैं हौऊ॥ १८॥
ताही कैं अनुसार बिचारी। धर्म करै निहकांम सम्हारी॥
प्रसंन करै करता भगवांना। बडौ धरम फल इहै प्रमांना॥ १९॥
तातैं चित एकाग्र जु करिकैं। प्रभु कै सुनैं चरित्र सुमरिकैं॥
अरु उन्हहीं कौ कीरतन करैं। पूजा ध्यांन भली बिधि धरैं॥ २०॥
पंडित प्रभु कौ ध्यांन बडगलहिं। जगबंधन कर्मनि काटत गहि॥
ता प्रभु की कथा सुष भौनूं। जासौं प्रीत करैं नहिं कौनूं॥ २१॥
सर्द्धा जुक्त नरन कै हीं चित्त। कृस्नं कथा की रूचि ह्वै नित्त॥
सो संतन रैं बातैं हौऊ। और न हित समझियै कौऊ॥ २२॥
अरु तब साध सेव बनि आवै। बडौ पुण्य कौऊ सरसावै॥
बड्डे सुतीरथ कियै सनांना। हौत साध सैवन सुबिधानां॥ २३॥
हरि की कथा श्रवन बिच धारै। हियै मध्य श्रीकृस्नं बिहारै॥
याकी सकल वासना कामां। दूरि करत हरि बसि हिय धामां॥ २४॥
ह्वै श्रीकृस्न साध हितकारी। बिरद भगत बच्छलता धारी॥
उन्ह गुन श्रवन कीरतन सारा। सबनि पवित्र करै निरधारा॥ २५॥
साधन की सतसंगति जु करैं। सुधा भागवत श्रवननि धरैं॥
हिय तैं करम बासना जायै। द्रिढ़ हरि भगति तबै सरसायै॥ २६॥
रज तैं अरु तम गुन तैं हौतहिं। काम लोभ कौ अधिक उदौतहिं॥
याकै चित्त तैं सब टरि जांहीं। हौंहि प्रसंन सत्वगुन मांहीं॥ २७॥

दोहा -परम विमल हरि भक्ति सौं, जब ज्यांकौं मन हौय ॥
तबै संग संसार कौ, छूटि सहज सुष हौय ॥ २८॥
अरु ज्यांकौ भगवांन कौ, ग्यांन तत्व सरसाय ॥
ज्यांकी हिय की गांठि अरु, सब संदेह टलि जाय ॥ २९॥
छीन हौंहि सब करम तब, प्रभु कौ दरसन हौत ॥
छूटि संसारी विपत्ति तैं, ह्वै आनंद उदौत ॥ ३०॥
याकैं परमानंद सौं, बड्डे बड्डे मुनि साध ॥
बासुदेव भगवांन की, करहीं भगति अगाध ॥ ३१॥
परम ब्रह्म करतार प्रभु, वासुदेव भगवांन ॥
तिन्हकैं भगति प्रभाव तैं, मन ह्वै सुद्ध प्रमांन ॥ ३२॥

तम रज सत माया गुननि, ह्वै प्रभु बिधि सिव बिस्नुं॥
उत्पति पालन प्रलै सब, करत आप जग बिस्नुं॥३३॥
अरु तिन्हीं मधि सतो गुनी, रूप बिस्नुं भगवांन॥
तिन्ह तैं सब प्रांनी लहत, महामुक्ति कौ ध्यांन॥३४॥
जइसै पहलै काठ तैं, हौत धूम तिहिं ठांम॥
ता पाछैं उपजति अगनि, जासौं ह्वै सब कांम॥३५॥
तातैं सबहूं बस्तु मधि, अगनि श्रेष्ठ यहि जांनि॥
त्यौं ही रज तम तैं अधिक, सतगुन उत्तम मांनि॥३६॥
तातैं रूप सतोगुनी, बिस्नुं श्रेष्ठ सब जुक्ति॥
सिव ब्रह्मा तम रज गुनी, तिन्हहिं भजै नहिं मुक्ति॥३७॥
आगैहूं जो मुनि बड्डे, मुक्ति चाह चित्त धारि॥
रूप सत्वगुन बिस्नुं हैं, तिन्हकौं भजैं सुढारि॥३८॥
जे कोउ अबहुँ करत है, बिस्नुं भजन चित चांहिं॥
ते जन बिच संसार कै, सबै मुक्त ह्वै जांहिं॥३९॥
जे चाहत है मुक्ति कौ, तौ तजि आन उपास॥
प्रभु अवतारनि ही भजत, छौडि ईरषा आस॥४०॥
राजस तामस प्रकृति सौं, पितर प्रजापति भूत॥
भजत देव रज तम गुनी, राजस तम करि तूत॥४१॥
जोग जागि जग्य तप बिधि, क्रिया ग्यांन अरु धर्म॥
वासुदेव कै मिलन कौं, यहि सब करियत कर्म॥४२॥
स्वर्गहुँ मधि आनंद सौं, वासुदेव कौ अंस॥
मूरति जु नित्यानंद की, प्रभू करता सर्वंस॥४३॥
अपनीं माया त्रिगुन करि, आप अैक भगवांन॥
सूछिम स्थूल उपाय जग, निरगुन प्रभू निदांन॥४४॥
तिहिं माया गुणवांनि तजि, बीच बसै भगवंत॥
दीसि परत हैं सगुण सै, चैतन सक्ति अनंत॥४५॥
बहुल काष्ठ मधि भाय बहु, दीसत अगनि जु अैक॥
ज्यौं सरीर मैं आतमा, सौभित भांति अनैंक॥४६॥
पंचभूत कै तन बनैं, हरि प्रवेस तिन्ह मांहिं॥
अंतरजामी रूप है, जीवनि भोग करांहिं॥४७॥
सतगुन करि अवतार हरि, सुर नर पसु मधि धारि॥
जग कौं पालन करत है, बिबिधि भांति बिसतारि॥४८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(भगवान के अवतारों का वर्णन)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - प्रथम तत्व चौबीस कौं, धरि सरीर भगवांन ॥
नारायन औतार हुव , सिरजन जगत बिधांन ॥ १ ॥
नारायन जल मद्धि जे, सौवत ईच्छा आपु ॥
जोग निंद्रा बिसतारहीं, सज्या सेषहिं सथापु ॥ २ ॥
जिन्हकैं नाभी कंज तैं, ब्रह्मा उतपति पाय ॥
सबहीं परजापतिन कैं, पति बिधि भयै सुभाय ॥ ३ ॥
जिहिं नारायन अंग तैं, भयौ लौक बिसतार ॥
सुद्ध तत्वगुनमय सुभग, प्रभू रूप आकार ॥ ४ ॥
या नारायन रूप मधि, अमित सहस अंग थांन ॥
चरन जंघ भुज सीस मुष, नैत्र नासिका कांन ॥ ५ ॥
मुकुट बस्त्र कुंडलनि जुत, प्रभु कौ अद्‌भूत रूप ॥
ग्यांन द्रिष्टि करि लषत है, ग्यांनी पुरुष अनूप ॥ ६ ॥
बीज सबहिं अवतार कौ, यहि हरि रूप उदार ॥
याही मध्य समात हैं, सब प्रभु कै अवतार ॥ ७ ॥
जा नारायन रूप तैं, उपज्यौ बिधि मुष च्यार ॥
मरीचादि रिषिगन लही, ब्रह्मा सौं बढ़वार ॥ ८ ॥
मरीचादि जे रिषी सुर, प्रभु ईच्छा कैं भाय ॥
सुर नर पसु पंछीनि कौं, बहू भांति उपजाय ॥ ९ ॥
बे नारायन प्रथमहीं, रूप धरै सुभ च्यार ॥
सनक सनंदन सनातन, चौथे सनत कुमार ॥ १० ॥
अैसे नांम भयै प्रगट, सनकादिक औतार ॥
ब्रह्मचर्ज ही सौं रहै, बाल भेष निरधार ॥ ११ ॥
हुव औतार जु दुतिय फिरि, जिग्य पुरुष बाराह ॥
प्रिथवी रसातल मद्धि गत, ताहि उधारन चाह ॥ १२ ॥

चौपाई - रिषिननि मध्य नारद मुनि ठयै। सो औतार तृतीय प्रभु भयै॥
नारद पांचरात्र यहि नामां। रच्यौ ग्रंथ अतिही अभिरामां॥ १३ ॥
प्रगट कियौ सुभ बैस्नंव तंत्र। जामैं प्रभु मारग कौ मंत्र॥
चौथौ प्रभु औतार धरमधर। दौय रूप लय नारायन नर॥ १४ ॥
मन अपनौं बसि है जा मांहीं। अैसो तप आरंभ किय चांहीं॥
पंचम कपिल देव अवतारा। प्रगट जगत बिच धरम अधारा॥ १५ ॥
सांष्य सास्त्र जन सृजन भर्यो। ग्यांन सुआसुरी रिषी कौं दयौ॥
दत्तात्रैय छैठौ औतारा। अत्रि रीपि सुर सुत सुष सारा॥ १६ ॥

आत्मग्यांन बिद्या उपदेसा। दियौ प्रहलाद अलक नरेसा॥
जिग्य नांम सप्तम अवतारा। रुचि रिषि कैं सुत भयै उदारा॥१७॥
स्वायं भूव मनंतर मांहीं। इंद्र भयै वै सुरपुर ठांहीं॥
राजा नाभि मेरु दैवी तिय। रीषभ देव रूप अष्टम लिय॥१८॥
परमहंस कौ धरम दिषायौ। ग्यांनी जननि सुनत सुष पायौ॥
रिषि बिनती सुनि कैं सुष पाया। प्रगटै नवम रूप पृथु आया॥१९॥
सबहीं बस्तु प्रथीविहि मांहीं। दुहत भयै ज्यौं चित्त मैं चांहीं॥
मच्छ रूप दसबौं अवतारा। प्रलै समैं मधि सींग मझारा॥२०॥
नाव मध्य वैवस्वत मनु कौं। रच्छा करि राष्यौ प्रभु जन कौं॥
अैकादस अवतार सुढारा। कच्छप रूप भयै करतारा॥२१॥
चाहत रहै मंथन कौ सागर। देव असुर किय मतौ उजागर॥
मंदराचल परबत तिहिं समयै। कच्छप धरत पीठ परी भयै॥२२॥
द्वादसवौं अवतार धनंतर। देवनि पावै सुधा सुतंतर॥
अरु प्रभु रूप मौहनी सुभयै। सौ औतार तैंरहौं सुठयै॥२३॥
मोहित कियै असुरगन सारे। देवतांनि कै काज संवारे॥
फिरि औतार चौदहौं सुलयौ। श्री नरसिंह रूप प्रभु सुभयौ॥२४॥
हरनकसिपु कौं उदर बिदार्यौ। तिनका चीरन की गति फार्यौ॥
पंचदसम बांवन औतारा। गयै जिग्य मधि नृप बलि द्वारा॥२५॥
वाहां जाइ जांचना कीनी। तीन चरन धरती प्रभु लीनी॥
षौडसमौं औतार फरसधर। बेर इकीस निछत्री करीधर॥२६॥
छत्रीन बिप्रन कौं बहू बैरा। दैत रहै दुष है अति सेरा॥
तातैं धारि क्रौध द्विज रामां। बिनु छत्रीन कीनौं भुव ठामां॥२७॥
हुवै औतार सत्रहौं व्यासा। कीनैं सास्त्र पुरांन प्रकासा॥
जिन्हकैं सत्यवती सौ माता। पिता पारासर रिषि बिष्याता॥२८॥
बुद्धिहीन मांनुष कलि जानैं। च्यारि भाग इक वेद बषानैं॥
अष्ट दसम प्रगटै अवतारा। दसरथ घर श्रीराम कुमारा॥२९॥
सैतुबांधि सागर कैं मांहीं। दैवतांनि कैं काज निबांहीं॥
बल औतार उनींसवौं भयौ। कृस्नं भ्रात जदुकुल बिची ठयौ॥३०॥
पूर्ण कला बीसवं औतारा। भयै कृस्नं बृजराज कुमारा॥
दुष्ट मारि भुवभार उतार्यौ। साध जननि कौं कष्ट निवार्यौ॥३१॥
फिरि कलयुग कैं समयै मांहीं। मोहित असुरकरन कौं चांहीं॥

प्रभू बुद्ध अवतार जु भयैं। कीकट देसी वोर कौं ठयै॥३२॥
कलि कें अंत नृपति जे ह्वै हैं। चौर अधर्मी धर्महीं पैहैं॥
तव इक विप्र विस्नुं जस नामां। कलकि रूप ह्वै हैं तिहिं धामां॥३३॥

दोहा - प्रभु औतार अनेंक हैं, गनती करी न जाहिं॥
जइसै अैक तडाग मैं, बहु प्रवाह सरसांहिं॥३४॥
रिषि मुनि सुरगन प्रजापति, अरु मनु पुत्र जितैक॥
अैहुँ कला औतार हैं, हरि कैं रूप अनैंक॥३५॥
अंसकला औतार सब, इन्हहीं मैं भगवांन॥
अरु प्रगटै श्रीकृस्नं प्रभू, पूरन रूप प्रमांन॥३६॥
जब जब हीं या जगत कौं, दैत्य महादुष देत॥
धरत तबै अवतार प्रभु, जग रिच्छा कैं हेत॥३७॥
सायं प्रात जु काल मधि, प्रभु औतार सुनांम॥
जो कोउ नर किहुँ भाय लै, लहैं मुक्ति कौ ठांम॥३८॥
रूप रहित यहि जीव है, चैतन सक्ति अनूप॥
सबतैं न्यारौ है सदा, पूरन ब्रह्म सरूप॥३९॥
ताहि तत्व चौबीस कौ, प्रगट सथूल सरीर॥
प्रभु माया गुन सौ लग्यौ, जीव बंध्यौ तिहिं भीर॥४०॥
मेघ रहत नभ मांहिं ज्यौं, पैं निरलेप अकास॥
रज आवत ज्यौं पवन मैं, न्यारौ पवन प्रकास॥४१॥
अैसें जीव सरीर मैं, रहत जु न्यारे भाय॥
अग्यांनी जे जीव है, समझ्यौ तिन्हें न जाय॥४२॥
न्यारौ देह अस्थूल तैं, सूछिम एक सरीर॥
सो है सत्रह तत्व कौ, लग्यौजीव कै सीर॥४३॥
छूटै स्थूल सरीर तउ, सूछिम नाहिंन जाय॥
जीव संगति नितहि रहै, सौ लिंग सरिर कहाय॥४४॥
प्रभु अवतारन कौ जबैं, नांम लेय करि ध्यांन॥
जात रहै अग्यांन सब, प्रगटैं तत्वहि ग्यांन॥४५॥
ग्यांन भये यहि जीव के, सूछिम स्थूल सरीर॥
माया तन दोऊ छुटै, होय ब्रह्म सुषसीर॥४६॥
प्रकृति दूर ह्वै जीव तैं, प्रगटैं ग्यांन उजास॥
तब जांनैं निज रूप जिय, लहै मुक्ति सुष रास॥४७॥
जनम रहित भगवांन हैं, प्रभू अकर्ता जांनि॥
पालन जगत निमित्त हरि, धरत जनम सुष दांनि॥४८॥

बड़े बड़े रिष कहत हैं, वेद कर्म सब भाय ॥
प्रभुजग मधि अवतार धरि, वेऊ करत बनाय ॥४९॥
उतपति पालन प्रलै जग, करत वही भगवांन ॥
लिप्त नाहिं सब ठौर हैं, निज आधीन निदांन ॥५०॥
षटगुन कै प्रभु ईस हैं, अंतरजांमी रूप ॥
करवावत यहि जीव कौ, विषै भोग सु अनूप ॥५१॥
निहचैं करि जांनत नाहि, प्रभुलीला नर कोय ॥
ज्यौं नट कला न समझियै, गोपि कछूजे होय ॥५२॥
अति समर्थ भगवांन हैं, चक्रहिं धारत पांन ॥
अपरम्पार अनादि हरि, करता कृपा निधांन ॥५३॥
चरन कमल प्रभु के भजत, रहित कपट जन होय ॥
हरि की गति जांनत वहै, और न जांनत कोय ॥५४॥
तातैं रिषि धनि तुम्ह सबै, करत भगति भगवांन ॥
जनम मरन जासौं छुटै, पावै मुक्ति निदांन ॥५५॥
तत्व भागवत कौ यहै, तुम्ह सौं कह्यौ प्रकास ॥
वेद समान जु भागवत, प्रभुचरित्र कियै व्यास ॥५६॥
लोकन कै कल्यांन धन, दायक बड परताप ॥
वेद सार इतिहास कौ, बरन्यौ व्यास जु आप ॥५७॥
व्यास देव श्री भागवत, सुककौं दयौ पढाय ॥
नृपति परीछित सौं कह्यौ, श्रीसुक देव सुनाय ॥५८॥
अनसन व्रत लेकैं नृपति, गंगा तट सुभ षेत ॥
रिषिनि सहित बैठे रहे, महा मुक्ति कैं हेत ॥५९॥
जब तैं अंतरध्यांन श्री, कृस्न भये सुषसार ॥
तबतैं अग्यांनी सबै, प्रांनी हुव निरधार ॥६०॥
तातैं यहि श्री भागवत, दूरि करन अग्यांन ॥
प्रगट भयो अब जगत बिच, जगमगात ज्यौं भांन ॥६१॥
कह्यौ भागवत सुक जबै, नृपति परीछित काज ॥
म्हैं हूँ उन्हकी कृपा तैं, तवै सुन्यौ सुषसाज ॥६२॥
म्हैं हूँ जिहँ विधि ते सुन्यौ, अपनी बुद्धि अनुसार ॥
सो कहि हौं तुम्ह सौं अबै, आछैं करि विस्तार ॥६३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्याय: ॥

(महर्षि व्यास - महिमा और उनका असंतोष)

॥ श्री व्यास उवाच ॥

दोहा - सूत वचन सुनि वृद्ध जे, सउनक रिषि गन मांहि॥
स्तुति करिकैं बोलै भलै, राषि मनहिं इक ठांहिं॥ १ ॥

॥ सौनक उवाच ॥

श्रेष्ठ बडे बकतान मैं, महाभाग तुम्ह सूत॥
कहौ हम्हहिं श्री भागवत, प्रभू सुजस अदभूत॥ २ ॥
नृपति परीछित सौं कह्यौ, जो कछु श्री सुकदेव॥
सोई भलै बषानिये, तत्व भागवत भेव॥ ३ ॥
भई कौंन जुग यहि कथा, अरु स्थांन कौ चीन्ह॥
कौंनु हित कीहँ कै कहैं, व्यास भागवत कीन्ह॥ ४ ॥
व्यास पुत्र सुकदेवजू, समदरसी जोगेस॥
प्रभु मैं मति माया रहित, जगसौं छिपे विसेस॥ ५ ॥
नगन मगन सुषदेव जू, जातहु तैं मग मांहिं॥
तिन्हकौं लषिकैं अपछरा, न्हात वस्त्र लिय नांहिं॥ ६ ॥
पाछैं तैं आवत लषै, व्यासहिं अपछर नारि॥
लज्जाजुत ह्वै कैं सबैं, लीने वस्त्र सम्हारि॥ ७ ॥
व्यास तवै पूछत भये, सुनहुँ अपछरा बात॥
सुक किसोर लषि नाहिं लजी, क्यौं मुहिं देषि लजात॥ ८ ॥

॥ अपछरा उवाच ॥

सुनहुँ व्यास सुककै नाहिं, पुरुष नारि कौ ग्यांन॥
तुम्ह जु वृद्ध तउ तजत नाहिं, विविधि विचार निदांन॥ ९ ॥
नृपति परीछित की अवनि, कुर जांगल सुभदेस॥
कइसै सुक आये सबनि, जांनैं क्यौं जोगेस॥ १० ॥
वे जड बौरे से सदा, देत दिषाई मत्त॥
बीच हस्तनापुर सबनि, पहचांनैं किहिं बत्त॥ ११ ॥
नृप श्री सुक मुनि सौं भयौ, कौनु भांति संवाद॥
सुन्यौ कौन विधि भागवत, कहहु सुनैं अहलाद॥ १२ ॥
गाय दुहत इतनैं समैं, सुक किहुँ गृह ठहराय॥
तनकहीं मांहि गृहस्त, गृह करत पवित्र सवाय॥ १३ ॥
अति वैष्णव अभिमन्यु सुत, नृपति परीछित राय॥
जन्म कर्म ताकै कहौ, आदि अंत लौं गाय॥ १४ ॥

भूप परीछित चक्कवै, राज लछमी त्यागि॥
अनसन लै तटि गंगरिषि, जुत बैठे किहिं लागि॥१५॥
पंग चौकी जिहँ नृपतिकी, ताकौं बड़े नृपाल॥
लैले भेटहिं आवहीं, सबै नवावत भाल॥१६॥
सौ नृप तरुनापन विषैं, अपनौ राज रु प्रांन॥
क्यौं छोड्यौ सो कहहुँ अब, आछैं सूत बषांन॥१७॥
वहि राजा वैस्नव परम, जिहँ जीबौ जग मांहि॥
हेत जगत कल्यान कैं, भये भलै भुव ठांहिं॥१८॥
तातैंराजा परीछित, क्यौं तजि दयौ सरीर॥
नृप कौ तौ जीबौ भलौ, रह्यौ हरन पर पीर॥१९॥
कहौ सबै यहि सूत तुम्ह, जांनत सबै पुरांन॥
नहिं जांनत चहुँ वेद तउ, दीरघ सक्ति प्रमांन॥२०॥

॥ सूत उवाच ॥

सत्यवती रिषि परासर, तिन्हकैं गृह भुव आय॥
बिच द्वापुर अवतार प्रभु, व्यास भये सुषदाय॥२१॥
व्यास आसरम बदरिका, बैठे समैं एकंत॥
अचवन करिजल सरस्वती, सूर उदै कैं तंत॥२२॥
ग्याता भूत भविष्य कै, व्यास ग्यांन कैं जोर॥
जांन्यौ समैं प्रताप सो, जुग कै धर्म निचौर॥२३॥
बीच सरीर जनकै रहि, थोरी सक्ति सु आय॥
संसारी है जीव जै, महा अभागे भाय॥२४॥
जिन्हकै नहिं सर्द्धा कछु, बुद्धि सामर्थ विहीन॥
ग्यांन दिष्टि करिकैं लषै, अैसे व्यास प्रवीन॥२५॥
तब हित आश्रम बर्न कैं, कीनौं व्यास विचार॥
मारग जग्य चलायबै, किय चव बेद सुढार॥२६॥
यजुर्वेद ऋगवेद अरु, सामवेद ये तीन॥
चौथो वेद सु अथर्वन, व्यास विभाग सुकीन॥२७॥
भारत और पुरांन सब, फिरि पाछैं किय व्यास॥
बिच सागर संसार कै, नवका रची प्रकास॥२८॥
पईलरिषि श्री व्यासजू, दिय रिगवेद पढाय॥
सांमवेद जईमुनि रिषि, दीनौं भलै दिढाय॥२९॥

वैसम्पायन रिषि कौं सिष, यजुरवेद दिय व्यास॥
वेद अथर्वण कौ कियो, रिषि सुमन्त अभ्यास॥३०॥
रोमहर्षण म्हेरौ पिता, बहुरि सिषाये ताहि॥
भारत और पुरांन सब, व्यास भलै अवगाहि॥३१॥
फिरि सब रिषि अप सिषनकौं, भये सिषावत वेद॥
अैसे साषा वेद की, भये अनेकन भेद॥३२॥
हुतै कोउ रिषि लघु बुधी, सीषि सकै नहिं वेद॥
च्यारि बेद भये अैक तैं, अधिक पढन मिटि षेद॥३३॥
व्यास देवजू कृपा करि, यहि कीनौं सुभ काज॥
कठिन बात कीनी सुगम, महामुक्ति कौ साज॥३४॥
स्त्री सूद्र नहिं जोग्य हैं, कहन सुनन कौ वेद॥
मुक्ति हौंहि किहुँ भांति ये, व्यास विचार्यौ भेद॥३५॥
स्त्री सूद्र उद्धार कौंउ, भारत रच्यौ अनूप॥
व्यास कियौ यौं जग भलौ, नहिं प्रसन्न चित रूप॥३६॥
अैक समैं एकान्त मैं, नदी सरस्वती तीर॥
बैठें हैं श्री व्यास जू, बोलै सोचि सधीर॥३७॥
ब्रह्मचर्ज मैं साधि अति, वेद पढे सुषरास॥
पूजि अग्नि गुरसेव किय, गुर आग्या विस्वास॥३८॥
और महा भारत कह्यौ, सब वेदन कौ अर्थ॥
स्त्री सूद्र हूँ तिहीं सुनैं, लहै धर्म सामर्थ॥३९॥
तउ म्हेरौ चित्त प्रस्न नहिं, आत्मग्यांन मुहि नांहिं॥
धर्म भागवत कै कहा, म्है न कहै किहिं ठांहिं॥४०॥
परमहंस कै धर्म जे, म्हैं सब कहे विचारि॥
वे ई धर्म भगवान कौं, अति प्रिय लगत निहारि॥४१॥
सोच करत यौं व्यास जू, आपहिं मांनत हीन॥
नारद जू ताही समैं, आये कर गहि बीन॥४२॥
आये लषि नारद मुनी, उठि ठाढे हुव व्यास॥
पूजा वेद विधांन किय, सहित प्रीति अभ्यास॥४३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्याय : ॥ ४॥)

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

(भगवद्-यश-कीर्तन-माहात्म्य तथा देवर्षि नारद जी का पूर्व चरित्र)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - नारद कर वीनां लियै, मंद कछू मुसकाय॥
बोलै वचन रसाल विधि, व्यासहिं कहत सुनाय॥ १ ॥

॥ नारद उवाच ॥

पुत्र पारासर कै अहो, महाभाग श्री व्यास॥
यहि सरीर है रावरौ, आछै सहित हुलास॥ २ ॥
धर्म आदि जु पदारथ सबि, पूरन हैं तुम्ह माहिं॥
धर्म अर्थ अरू कांम पुनि, रचै जु भारत ठांहिं॥ ३ ॥
ब्रह्मग्यांन पूरन तुम्हहि, वेद पढै सब भाय॥
तौहू यहि जांनि न पर्‌यौ, तुम्हहिं सोच क्यौं आय॥ ४ ॥
कछू कृतारथ सौ नहिंन, मानत हौं मन मांहिं॥
यहि काहे तैं है कहहुं, सोच दुरावौ नाहिं॥ ५ ॥
यहि सुनि बोलै व्यास जू, नारद जू सौं बैंन॥

॥ श्री व्यास उवाच ॥

तुम्ह जु कहत हम्हमैं सही, सर्व पदारथ अैंन॥ ६ ॥
नहिंन हम्हारौ प्रसंन चित, नाहिंन जांन्यौं जात॥
कहहुँ आप नारद मुनी, कारन जो दरसात॥ ७ ॥
ग्यांन वांन विधिपुत्र हौ, प्रभु कै भक्त अनूप॥
गोपि बात जांनत सबै, तुम्ह नारद रिषि भूप॥ ८ ॥
आपहिं मनतैं वे प्रभू, भंजन घड़न सपोष॥
जग रचना करिकैं रहत, ह्वै अलैप संतोष॥ ९ ॥
नारद तुम्ह रवि पवन सम, फिरत त्रिलोकी मांहिं॥
हम्ह मैं घटती हौय सौ, कहियै राषहुँ नांहिं॥ १० ॥
ब्रह्मरूप सुभ जोगकरि, हम्ह लीनौ पहचांनि॥
सबै वेदन को तत्व हूँ, जान्यौं भांति सुठांनि॥ ११ ॥

॥ श्री नारद उवाच ॥

नारद बोलै सुनि इहै, प्रभू सुजस सुषदाय॥
सो बर्नन कीनौं नाहिं, तुम्ह कहुँ नीकैं भाय॥ १२ ॥
प्रभु प्रसंन जिन्ह सौं नहिं, सौ न धर्म किहुँ कांम॥
जासौं प्रभू प्रसन्न ह्वै, वहै धर्म अभिरांम॥ १३ ॥
च्यारि पदारथ तुम्ह सबै, कहै जु भारत मांहिं॥
एते अधिक बषांन तुम्ह, कह्यौ प्रभू जस नांहिं॥ १४ ॥

जो कछु ग्रन्थ बनाइयें, रचि कविता बहु भाय॥
प्रभु जस करन पवित्र जग, जामैं नहिं सरसाय॥१५॥
महापुरस जे भक्त जन, तै नहिं ताहिं सुनंत॥
बिषई नर श्रवननि सुनत, जिनहिं न सुधि भगवंत॥१६॥
जइसैं कनिका अंन कै, परै जु मोरी बीच॥
चुनि चुनि षात जु काग मिलि, मगन होय कैं नीच॥१७॥
ता सम विषई जीव जै, सुनत जु वइसी बात॥
साध हंस हरिगुन सुनत, प्रभु कै सरन रहात॥१८॥
कविताहूं सोही भली, जामैं ह्वै हरिजाप॥
साधू जन गावैं सुनैं, दूरि हौहिं सब पाप॥१९॥
छंद वंद आछौ नाहिं, तौ कछु दुसन नांहिं॥
कइसैं हू हरिनांम लैं, जीव मुक्त ह्वै जांहि॥२०॥
बिनु हरिभक्ति जु ग्यानहूं, कछू कांम नहिं आय॥
कर्म कामना जुक्त जै, तिन्हकी कहा चलाय॥२१॥
ग्यांनवंत महाभाग हौ, बडौ सुजस तुम्ह व्यास॥
ब्रह्मचर्ज सौं रहत हौ, बकता विधि अभ्यास॥२२॥
तातैं तुम्ह बर्नन करहुँ, प्रभु कौं सुजस सुढार॥
जासौं या संसार कै, बंधन छुटैं अपार॥२३॥
हरिगुन बिनु कछु औरको, बरनैं वस्तु बनाय॥
ताकी बुद्धि न किहूँ विधि, कहूँ ठिकांनां पाय॥२४॥
इत उ त डोल्यौ ही करै, थिर नहिं कबहूँ होय॥
ज्यौं बयार मैं नाव नहिं, लहै ठिकानां कोय॥२५॥
भारत मैं बरनन करैं, तुम्ह सब धर्म सकांम॥
ताही मैं या जगत कै, लागि रहै नर वांम॥२६॥
करहुँ न धर्म सकाम तुम्ह, कौऊ करै उ पदेस॥
तौ वे काहू कौ कह्यौ, नाहिंन ल्यावत पेस॥२७॥
भारत मैं श्री व्यासजू, बरनैं धर्म सकांम॥
अैसे कहत मनुष्य सबै, जानैं वइ सुभ ठांम॥२८॥
यौं जीवन की बुद्धि तुम्ह, दई व्यास बहकाय॥
धर्म अर्थ अरू कांम बिच, किय अनीति उरझाय॥२९॥
और धर्म सब छोड़ि कैं, कियैं भजन भगवंत॥
प्रापति जो सुष हौत है, विरले लहत सुतंत॥३०॥
तातैं या संसार कै, जीव उधारन हेत॥
प्रभु लीला बर्नन करौ, वेद कहत जिहँ नेत॥३१॥

और धर्म सब छोडि हरि, भजन करै जो कोइ॥
विघन परैं जन्महुं धरैं, अंत भलौ त उ होइ॥ ३२॥
आंन धर्म फल तुच्छ है, नहिं हरि भजन समांन॥
अतुलित सुष हरि भजन मैं, प्राणी लहै निदांन॥ ३३॥
सब स्वर्गादिक लौक मैं, जीव फिर्यौ बहुवार॥
तातैं लोकन कैं अरथ, कछु नहिं करै विचार॥ ३४॥
अरू सुष ही कै जतन कौ, नांहिंन करै उपाय॥
जइसै पहलै कर्म हैं, तइसौ मिलत जु आय॥ ३५॥
जइसैं दुष बिनु जतनहीं, होत हैं प्रापति आय॥
त्यौं ही सुष बिनहीं जतन, आवत औसर पाय॥ ३६॥
जासौं प्रभु की भक्ति कौ, निस्चै करै उपाय॥
और ठौर तजि प्रभु मैं, राषै चित्त लगाय॥ ३७॥
प्रभु कौ सेवक कदाचित, परैन बिच संसार॥
जहँ उपजै तहँ ही करै, प्रभू भक्ति निरधार॥ ३८॥
जिन पायो है भक्ति सुष, तासौं छुटैं न फैर॥
नित प्रति है बढवार हीं, लहै अतुल सुष ढैर॥ ३९॥
जग प्रभु ही कौ रूप है, पैं न्यारौ भगवांन॥
उतपति पालन प्रलै सब, वे ई करत निदांन॥ ४०॥
तुम्ह जांनत हौ ही सबै, हम्ह दिय तनक जिताय॥
आप प्रभू अवतार हौ, जगत भलै हित आय॥ ४१॥
तातैं तुम्ह बर्नन करौ, प्रभु चरित्र अभिरांम॥
विघन हरन मंगल करन, सुषदायक हरिनांम॥ ४२॥
पुरसनि कैं तप श्रवन जगि, वेदपाठ फल दांन॥
नृणै कविनि किय बुधि भली, बर्निय जस भगवांन॥ ४३॥
पूर्व जनम मैं हौहुँ तौ, विप्रदासिन कौ पूत॥
गृह आयै तिहुं विप्र कैं, महापुरुस अवधूत॥ ४४॥
चौमासैं जोगेस जन, बसै आंनि तिहिं वास॥
म्हैं तिनकी सेवा भलैं, कीनी सहित हुलास॥ ४५॥
बाल वयस कै षेल अरु, चंचलता दिय त्यागि॥
अन बोलै बैठो रहूँ, साधुनि सौं अनुरागि॥ ४६॥
ऐसी लषि म्हैरी दसा, क्रिपा करि सब साध॥
सींथ दयो मुँहि आपनौं, दुर्लभ वस्तु अगाध॥ ४७॥
तासौं म्हैरे पाप मिटि, भयौ सुद्ध मो चित्त॥
तब उन्हीं कै धर्म मैं, बाढी रूचि मो नित्त॥ ४८॥

वे कहते हरि की कथा, नित्य श्रवन मैं कीन॥
तब म्हैरे हिय मैं भई, प्रभु सौं प्रीत नवीन॥४९॥
प्रभु मैं मति निश्चल भई, मुँहि उपज्यौ यहि ग्यांन॥
ब्रह्म रूप है सत्य जग, झूठौ प्रकृति विग्यांन॥५०॥
वरषा ऋतु अरु सरद ऋतु, च्यार महीनां चाहिं॥
भक्तन कै मुष मैं सुन्यौ, प्रभू सुजस अवगाहि॥५१॥
तातैं पूरन भक्ति मो, उरमैं प्रगटी आय॥
रज तम दूरि भये तबै, रहयौ सत्व गुन छाय॥५२॥
तबैं वोर जोगेस्वरनि, उपज्यौ मो अनुराग॥
नम्र भयौ मन वसिभयौ, गयौ पाप मद भाग॥५३॥
अैसो मोकौं देषि कैं, करी क्रिपा जोगैस॥
चलत बेर मोसौ कहयौ, गोप्य ग्यांन उपदेस॥५४॥
वँही ग्यांन सौं म्हैं लष्यौ, प्रभु माया परताप॥
सौ म्हैं अब तुम्ह सौं कहत, सुनौ श्रवन सुभजाप॥५५॥
जासौं त्रिविधि संसार कै, दूरि होय संताप॥
कर्म कछू जो कीजियै , प्रभुहिं समर्पित आप॥५६॥
कीहूँ वस्त कै षांन तैं, प्रगट होय जो रोग॥
औषद मेलि जु षाइये, वही होय सुष भोग॥५७॥
बंधन सबही कर्म हैं, जिते कांमनां भाय॥
पैं हरि कौ अर्पन कियै, जग बंधन मिटि जाय॥५८॥
अैसे कर्म सकांम सब, बन्धनकर्त्ता हौय॥
प्रभुकौं कर्म समर्पियैं, तौ नहिं बंधन कौय॥५९॥
ग्यांन भक्ति उर प्रगट है, कर्म सुकर्म कहाय॥
यहि मारग प्रभु सबन कौं, आगैं दियौ बताय॥६०॥
कह्यौ मंत्र जोगेस्वरनि, मोकौं कर धरि सीस॥
कृपा करि अपनायकैं, दिय बताय जगदीस॥६१॥
वासुदेव प्रद्युमन बहुरि, संकरषन अनिरुद्ध॥
इन्हकौ करत प्रनांम हम्ह, ध्यांन चहूँ धरि सुद्ध॥६२॥
जो को इन चहुँ मूर्ति कौ, नांम लैय धरि ध्यांन॥
प्रगट होय ताकै हदै, पूरन अद्भूत ग्यांन॥६३॥
म्हैं इनही चहूँ मूर्ति कौ, धर्‌यौ हिय मधि ध्यांन॥
तासौं प्रभु ह्वै प्रसनं मुहि, भक्ति ग्यांन दिय दांन॥६४॥

तुम्ह हूँ जस भगवांन कौ, बर्नन करौ सुदेस॥
दूरि जांहि जासौं अषिल, जो कछु हौंहि कलेस॥६५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे व्यासनारद संवादे भाषा ब्रजदासी कृते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(नारद जी का पूर्व चरित्र)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - जनमकर्म इहिं भांति सुनि, नारद जू कौं व्यास॥
सत्यवती कै पुत्र तबै, बोलै वचन प्रकास॥१॥

॥ व्यास उवाच ॥

तुम्हहिं ग्यांन दाता जबै, गयै विदेस सुभाय॥
करत भये तब तुम्ह कहा, आप सुकहौ बनाय॥२॥
हुती अवस्था बाल तुम्ह, कइसै दई बिताय॥
किहुँ विधि तज्यौ सरीर बह, हम्हकौं कहौ सुनाय॥३॥
अरु सुधि पहले कल्प की, तुम्हहिं रही किहिं भाय॥
पूर्व जन्म की सुधि सबै, दैत जुकाल गमाय॥४॥

॥ नारद उवाच ॥

यहि सुनि कैं उत्तर दयौ, नारद मुनि तिहिं बार॥
सब सन्देह श्री व्यास कौ, दूरि करन निरधार॥५॥
ग्यांन दीप जोगेस मो, गवन कियौ किहुँ ठौर॥
तबै कुमार हीं अवस्था, सुनहुँ कहूँ सबतौर॥६॥
हौं मो माता कै हुतौ, अैक पुत्र निरधार॥
विप्रन की दासी रही, म्हैरी मा तिहुँ बार॥७॥
मूढ हुती अग्यांन अति, म्हैरी माता आप॥
मो सौ अधिक सनेहउर, राष्यौ हौं निजु थाप॥८॥

चौपाई - पराधीना मो माता रही। विधि सबैही पहलैं म्हैं कही॥
करि न सकै मो पालन माता। प्रभु आधीन जगत बहु त्राता॥९॥
काठ पूतरी सम संसारा। प्रभु सब भांति नचावन हारा॥
अरु हौं पांच बरस कौ बाला। देस दिसा की नहिंन सम्हाला॥१०॥
तातैं मातूं नेह सौं नह्यौ। केतिक दिनहौं गृह ही रह्यौ॥
इक दिन गाय दुहन मौ माता। निसिकौं निकसी लेष विधाता॥११॥

परयौ पंथ में अहि पैं पावा। सर्प डस्यौ विचि काल कुदावा ॥
माता मरनहुँ तें म्हैं जांन्यौं। प्रभू अनुग्रह भयो जु पिछान्यौं ॥ १२ ॥
तबै चाल्यौ उत्तर दिसपायन। अति प्रसंन चित्त चायन चायन ॥
इतनी वस्तूलपी मग माहीं। बड्डे देस ग्राम पुर ठांहीं ॥ १३ ॥
केउ पर्वततर वसत सुगांव। केउ हारिन के कहिये ठाँव ॥
केउ फुलवाद भरि बन देषैं। तिन्हकी सौभा अनत अलेपैं ॥ १४ ॥
चित्र विचित्र सुधातुमय गिरीवर। तिन पैं लसत सु बड्डे तरवर ॥
बडडे सरवर अरु सरोवरी। अलि पंछीन सरस धुन जु करी ॥ १५ ॥
वन सरोवर देपतहुँ अैसें। चल्यौ जात हौं मग बिनु बैसें ॥
ताहिं देष्यौ म्हैं इक गहबर वन। नल सर बांस जांहि अति है घन ॥ १६ ॥
सर्प उलूक स्याल केउ तांमैं। वहत नदी इक ही तिहँ ठांमैं ॥
हुँ हार्यौ भयौ भूषौ प्यासौ। थकित देह भैं किहुँ उहूँ बासौ ॥ १७ ॥
न्हाय नदी बहिं जल म्हैं पीन्हौं। तन कौ दूरि परिश्रम कीन्हौं ॥
बैठौ पीपर वृछि तरैहौं। किय विचार हरिध्यान धरैहौं ॥ १८ ॥
जइसैं गुर कीनौं उपदेसा। ज्यौं म्हैं धार्यौ ध्यांन सुदेसा ॥
प्रेम जुक्त म्हैं प्रभु चरनन कौं। ध्यांन धर्यौ असरन जु सरन कौ ॥ १९ ॥
प्रेम जुक्त दृग जल भरि आयौ। हिय मैं प्रभु दसरन दरसायौ ॥
हु रोमांचित प्रेमकेतन मैं। आनंद मगन भयौ अति मन मैं ॥ २० ॥
ध्यानहुँ कौ जब भूल्यौं ग्यांना। छिनमैं प्रभु भये अन्तर ध्यांना ॥
प्रभु कौ रूप हदै विच देपैं। उठि ठाढि भयौ विकल विसेपैं ॥ २१ ॥
ध्यांन वाहि विधि फिरि म्हैं धर्यौ। पैं नाहिं प्रभु कौ दरसन कर्यौ ॥
अैसें विकल दसा लपि म्हैरी। प्रभु वांणी आकासी प्रेरी ॥ २२ ॥
प्रभु वांणी आकासी बौली। मो हिय कौ दुप डार्यौ छोली ॥
हे नारद यहि जनम जु मांहीं। म्हैरौ दरसन तोकौं नांही ॥ २३ ॥
दूरि न भयो मैलतौ मन कौ। तातैं अनतर मोहिं दरसन कौ ॥
येक बेर तुहि दरसन जु भयौ। सो मो चाह बढन सुकृत ठयौ ॥ २४ ॥
जाकैं हदै चाह मोह बढै। मैल सबै तिहुँ हिय कै सुकढै ॥
तैं किय साध सेव दिन थौरै। तातैं भक्ति भई मोह थौरै ॥ २५ ॥
जबै सरीर यहि छुटिहि तेरौ। तबै पारपद है हैं म्हैरौ ॥

म्हैरी भक्ति सु तू दृढ़ लहिहैं। पूर्व जनम कीहूँ सुधि रहिहैं ॥२६॥
इतनौं कहि प्रभु फेर न वोलै। म्हैं प्रनाम करि सुष उर छोले ॥
ता दिन तै हूँ प्रभु कै कांमा। नितप्रति पढत रहत हरि नांमा ॥२७॥
लज्जा तजि हरि गुनहों गावत। प्रसंन भयो बिच पुहमी धावत ॥
मद मत्सरता जात रहै सब। महा चैंन पायो म्हैं हिय तब ॥२८॥
अैसें करतहिं प्रभु की सुभक्ति। वितये केऊ दिन निज सुसक्ति ॥
बिजुरी सम प्रगट्यौ मो काला। पंचभूत तन गिर्यौ विसाला ॥२९॥
हौं प्रभुकौ पार्षद जबै ठयौ। प्रलैकाल फिरि प्रापत भयौ ॥
प्रभु ब्रह्मंड उदर में राषी। सोय रहै इच्छा अभिलाषी ॥३०॥
विधि हूँ लीन भयौ उन मांहीं। हौं हूँ बस्यौ उदर हरि ठांहीं ॥
फेरि रची विधि सृष्टि नवीना। मरीचादि प्रगट रिषि कीना ॥३१॥
तबै हौं हूँ प्रगट्यौ तिहुँ बारा। फिरत त्रिलौकी बिच निर्धारा ॥
रहत ब्रह्मचर्य कौं सुधारैं। सबै माया परपंच बिसारैं ॥३२॥
प्रभु सुअनुग्रह सौं कोउ कहूँ। रोकि न सकै फिरौं ज्यौं जु चहूँ ॥
यहि बीना मैं हरि गुन गावत। सबहीं प्रथ्वी बिच फिरि आवत ॥३३॥
हौं जबहीं प्रभु कौ गुन गाऊँ। हिय मैं तिन छिन दरसन पाऊँ॥
मो हिय प्रभू रूप प्रगटावै। मनौं बुलाये तै जु उठि आवै ॥३४॥
बिच संसार जीव विषयन मैं। आतुर ह्वै है अपनै मन मैं ॥
तिनकौं तिरन याहि है नांवा। हरि गुन वरनहुँ चित धरिचांवा ॥३५॥
जम नेमनि मन नहिं बस होई। होय सुबस प्रभु सेयैं सोई ॥
याहि अपनौं हम्ह जन्म रु कर्म। तुम्ह सौं सब आछै कह्यौ मर्म ॥३६॥

॥ सूत उवाच ॥

यौं कहि नारद जू श्री व्यासहिं। आग्या मांगि चलन हुलासहिं ॥
बीन बजावत अपनैं धांमा। गवन कियो नारद निहकांमा ॥३७॥
धनि धनि ये जग नारद सुमुनी। करत बीन मैं हरिगुन जु धुनी ॥
हरि गुन गाय प्रसंन फिरि हौं हीं। औरन प्रसंन करत फिरि त्यौंहीं ॥३८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे व्यासनारद संवादे भाषा ब्रजदासी कृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का मारा जाना और अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन)

॥ सौनक उवाच ॥

चौपाई - सउनक सूतहिं पूछन लागै। हरिगुन कथा सुनन रस पागै॥
नारद जब अपनैं गृह गयै। तब कहा करत व्यासजू भयै॥ १॥

॥ सूत उवाच ॥

पछिम तटि सरस्वती नदी कै। सोभित व्यास आसरम नीकै॥
सम्याप्रास यहि जाकौ नांमा। जिग्य करत केउ रिषि तिहँ ठांमा॥ २॥
वृछि बेर कै आसैं पासैं। अति सोभायमान जहँ भासैं॥
तहँ बैठी श्री व्यास द्विपायनं। करत भये मन निस्चल भायनं॥ ३॥
श्री हरिभक्ति प्रभावहिं साछैं। निर्मल महा व्यास मन आछैं॥
ता मधि मायाजुत भगवांना। दरसन दीनौं क्रिपा निधांना॥ ४॥
प्रभु माया बसि जीव अनूपा। आपहिं मानत सगुन सरुपा॥
अरु मायाकै दुष मैं लीना। ह्वै जिय आप सहत अति दीना॥ ५॥
सबै अनर्थ कौ टारन हारा। प्रभु कौ भक्ति जोग निर्धारा॥
सो यहि जगत जु जानत नांही। भरमि भरमि प्रानी बहि जांहीं॥ ६॥
अैसो सुभेद व्यासजु जान्यौ। सुषद भागवत भलैं बषान्यौ॥
श्रवननि सुनैं भागवत कोई। जिहिं उर प्रगट भक्ति प्रभु होई॥ ७॥
सोक मोह भय सब मिटि जांहीं। अति आनन्द हियै प्रगटांहीं॥
व्यास भागवत भलैं बनांई। सुक मुनिकौं फिरि दयौ सिषांई॥ ८॥

॥ सौनक उवाच ॥

यहि सुनिकैं सउनक रिषि बोलैं। उर संदेह हुँतै सौ षोलैं॥
सुक सु निवर्त्ति मारगमैं जु रहै। और कछू इछा नाहिं जु चहै॥ ९॥
आत्म विचार अैक चित धारैं। रहत सदा माया निरवारैं॥
जिन यहि इतनौं बडौ पुरांना। कइसैं सीष्यौ कहहुँ बषांना॥ १०॥

॥ सूत उवाच ॥

बोलै सूत यहै सुन बांनी। जे कौं महा पुरस हैं ग्यानी॥
जे नित आतम सु तत्व विचारैं। ते निहकाम भक्ति हिय धारैं॥ ११॥
बीच भागवत हरि गुन सुनिकैं। निर्मल ह्वै गई बुधि सुक मुनिकैं॥
तातैं पढ्यौ भागवत रुचिधरि। हरि गुन अैसौ ही कौ समसरि॥ १२॥
हुतौ भागवत कौ जो श्रौता। नृपति परीछित धर्म उदोता॥
पाण्डव गति श्री कृष्ण कथा जुत। अब हौं कहौं सु सुनिये अद्भुत॥ १३॥

कउरव पाण्डव जबै जुथ जुटै। बड्डे सु जोधनि कै तनहुँ छुटै॥
गदा भीम करकी लागी जब। दुर्योधन जंघा टूटी तब॥ १४॥
विप्र अस्वत्थामा अति पापी। बुद्धि अकर्मी हीय मैं थापी॥
द्रौपदि कै सुत पांचौं सोये। बालक निसा नींद सुप भोये॥ १५॥
तिन कैंउ सीस काटि लै गयो। अति अकर्म याहि करतौ भयौ।॥
पुत्रन की लषि द्रौपदि याहि गति। रुदनू करत ह्वै दुषित चित्त अति॥ १६॥
समाधांन अर्जुन तबै कीनौं। द्रौपदिकौं अति धीरज दीनौं॥
सबही बिप्रवंस कै जो बीचू। अधम अस्वत्थामा है नीचू॥ १७॥
ताकौं सीस काटि हौं ल्यांऊँ। तबतौं आंसू पौंछि सिहांऊँ॥
द्रौपदि बैठि सीस उहिं ऊपर। स्नांन सुतनिकौं कीजौ तिहू थर॥ १८॥
अैसे कही अर्जुन बैठो रथ। कृस्न सारथी लै अपनैं सथ॥
गहि गाण्डीव धनुष कर आंछैं। लाग्यौ अस्वत्थामा कैं पांछैं॥ १९॥
अर्जुन कौं देष्यौ जबै आवत। भज्यौ अस्वत्थामा अति धावत॥
ज्यौं सिव डरसौं भज्यौ प्रभाकर। त्यौं ही भज्यौ विप्र अर्जुन कैं डर॥ २०॥
जबै अस्वत्थामा मन मैं लही। भाजै बचौं नाहिं अब सही॥
थकै अस्व रथहूँ कै चार्यौ। चित्त ब्रह्मास्त्र चलावन धार्यौ॥ २१॥
जल आचमन तिहिं छिनलीनौं। गहि ब्रह्मास्त्र चलावन कीनौं॥
जानत रह्यौजु सस्त्र जु चलावन। आवत हुँतौ न उलटि फिरावन॥ २२॥
तातैं जोगि न हुँतौ चलावन। तदपि चलायौ प्रान बचावन॥
प्रगटी उहि सस्त्र तैं जो ज्वाला। बढी गगन भुव बीच कराला॥ २३॥
सोई लषि अर्जुन हरि सौं कही। उर मैं उपजी बात मुष बही॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

हो श्री कृस्न कृस्न जु महाबांहूँ। मो बिनती सुनियै नरनांहूँ॥ २४॥
भक्त रावरे जेई विष्याता। तुम्ह हौं तिनकौ अभय सुदाता॥
जरै जीव संसारी दुष मैं। देत तिन्हैं तुम्ह मुक्ति जू सुष मैं॥ २५॥
आदि पुरुष ईस्वर तुम्ह स्वांमी। माया तैं न्यारै बहु नांमी॥
माया कौं निरवारन करिकैं। रहत रूप निजमैं चित धरिकैं॥ २६॥
जीव लोक यहिं माया मोहित। तुम्ह कल्यांन नित कर्ता सोहत॥
अरु जो परम धर्म उपदेसू। ताहूँ कै कर्ता तुम्ह अषिलेसू॥ २७॥
अरु तुम्ह यहि लीनौं अवतारा। सुतौ उतारन कौं भुवभारा॥
भक्त जनन कौं ध्यांन बढांवन। प्रगटै पृथ्वी करन तुम्ह पांवन॥ २८॥
देव देव हौं यहि नहिं जांनौं। चहुँ दिस अगनि प्रबल सरसानौं॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

यहि सुनिकै बोलै नारायण। अर्जुन कौं लषि आप परांयण॥ २९॥
यहि ब्रह्मास्त्र चलांवन कीनौं। कहै अस्वत्थामा बुधिहीनौं॥

यहि ब्रह्मास्त्र चलाय जु जानत। फिरि समेट लीनौं न पिछानत ॥३०॥
या ब्रह्मास्त्र तुल्य नाहिं औरा। येक विचार करौं यहिं ठौरा ॥
तू अपनौं ब्रह्मास्त्र चलायू। वाकौ तेजसु देहुँ मिटायू ॥३१॥
सुनि श्री कृस्न वचन अर्जुन तब। प्रभु परिक्रमण आदि कीनौं सब्र ॥
गहि ब्रह्मास्त्र जु चलावत भयौ। मिलि दुहुँ अस्त्र अगनि ज्यौं बढ़ि गयौ ॥३२॥
भुव आकास बीच ब्रढ़ि ज्वाला। रवि सम प्रगट्यौ तेज विसाला ॥
तेज दुहूँ अस्त्रनकौं जो छयौ। तीनौं लोक जरावत जु भयौ ॥३३॥
प्रजा सबै ऐसें जबि देष्यौ। प्रलैकाल सौं चित्त सपेष्यौ ॥
देषि उपद्रव बीच प्रजा सबै। अर्जुनबसि प्रभु आग्यां कै तबै ॥३४॥
दोनौं अस्त्र पैंचि तबे जु लये। कृस्न कृपा तैं उच्छव सु ठये ॥
क्रोध जबै अर्जुन उरी भयौ। बांधि अस्वत्थामा कौ जु लयौ ॥३५॥
गहिलै सत्रुहिं चलै सु सथांना। क्रोधयुक्त बोलै भगवांना ॥
अर्जुन तुम्ह नाहिं करहुँ इहिं रछ्या। विप्रन मधि याहीअधम पतछ्या ॥३६॥
अधम कर्म इन्हीं कियौ हत्यारै। सुतै निसंग बालक सबि मारै ॥
मदिरा मत्त असावधानहिं पुनि। बोरौ बालक सरनागत सुनि ॥३७॥
स्त्री द्विज जड डरप्यौ जो होई। रथ तूटैं स्वारी बिनु कोई ॥
ऐसें सत्रुहिं मारै जु नाहीं। होइ अधर्म जाकै मन माहीं ॥३८॥
जो लेंकै औरन कैं प्रांनू। पालैं अपनैं प्रान निदांनू ॥
ऐसौ निर्दय ह्वै जो कोई। तिहूँ मारे कल्यानजु होई ॥३९॥
नृप जो दुष्टनि दण्ड न दैहीं। तौ राजा तिहुँ पातिक लैहीं ॥
दुष्टनहूं की होय बुरी गति। धर्म भलौ न लहै न लहै पति ॥४०॥
अरु तैं बहुरि प्रतंग्या कीनी। दैषि द्रौपदी सुत दुष भीनी ॥
तौ सुत हननहार कौं सीसा। काटिल्याय हौं बिस्वा बीसा ॥४१॥
तातैं या पापी कौं मारूँ। यहि तेरै सुत मारन हारुँ ॥
श्रीकृष्ण की आग्यां न टारी। विप्र अधमनि कौं हौं जु मारी ॥४२॥

दोहा -**दुर्योधन हूँ कौं भलौ, इन्ह कछु नाहिं न कीन्ह॥**
और न कछू विचारियै, कुल कलंक यहि चीन्ह॥४३॥
ऐसै अर्जुन की जबै, प्रभू परीछा लीन॥
धर्मधार अर्जुन महा, मारन द्विज नहिं कीन॥४४॥
गहै अस्वत्थामा द्विजें, अर्जुन निज गृह आय॥
बंध्यौ आनि ठाढौ कियौ, द्रौपदि आगै ल्याय॥४५॥
बंध्यौ पसू ज्यौं दाम सौं, लज्जित सीस नवाय॥
बालक बध निंदीत करम, आतताय पद पाय॥४६॥

चौपाई - बंध्यौ विप्र द्रौपदि निरष्यौ जबि। किय प्रनाम कर जोर दुहूँ तबि ॥
बंध्यौ विप्र लपि द्रौपदि जु कहि। बंधन जोग विप्र याहि है नहिं ॥४७॥

याहि ब्राह्मण गुरपुत्र तिहारौ। छोडौ छोडौ सु धर्म विचारौ॥
धनुर्वेद जिनीसौं तुम्हहिं पढ्यौ। और हूँ अस्त्र विद्या गुन तुम्ह मढ्यौ॥ ४८॥
जो गुर द्रोणाचार्य तुम्हारौ। उन सम याहि गुरु पुत्र निहारौ॥
यांकि माता कृपी जियत हैं। भई न पति संग याकें हित हैं॥ ४९॥
पुत्रवती जो पति संग न होई। तउ वाकौ नहिं दूपण कोई॥
गुरकुल पूज्य दोप जुत न जऊ। तिहिं अपराध जु करियै न तऊ॥ ५०॥
ज्यौं हौं रोवत आप सुतन कौं। त्यौं इहिं मात न रोवै इनकौं॥
छोड़ि देहु यांकौ मति मारौ। अपनैं मनमैं धर्म सम्हारौ॥ ५१॥
जिन नृप कियो ब्रह्म अपराधा। ताकौं होय धर्म की बाधा॥

॥ सूत उवाच॥

नीत जुक्त अरु धर्म संजुक्त। करुनाहि भर्‌यौ कपट विनु उक्त॥ ५२॥
समरु महत द्रौपदी बचन सुनि। करत सराह जुधिष्ठिर नृप गुनि॥
सातिक बहुरि नकुल सहदेवू। अर्जुन जुत श्री कृस्नं सभेवू॥ ५३॥
तियगन सबनि तांहिं सुनि लयै। द्रौपदि जु बचन सराहत भयै॥
बोले भीम क्रौध करि बांनी। मारहुँ मारन जोगि ग्यांनी॥ ५४॥
बिनु अपराध नींद सब बालक। जिन मारै पापी घर घालक॥
भीम द्रौपदी दुहूँ कै बैंनां। सुन चतुबाहु कमलदल नैंनां॥ ५५॥
अर्जुन वोर देषि भगवाना। हंसि बोलै कृपा निधाना॥

॥श्री कृष्ण उवाच॥

ब्राह्मण कै बध कहयौ जु नाहीं। सुनी यहै वेदन कैं माहीं॥ ५६॥
आपहिं मारै बिनु अपराधा। ताकौ कह्यौ करन हूँ बाधा॥
ए दौनौं ही आग्या म्हैरी। दुहुँ विधि सधै सु कीजै हैंरी॥ ५७॥
सत्य प्रतंग्यां अपनी जोइ करौ। भीम द्रौपदी आग्या सुं धरौ॥

॥ सूत उवाच॥

अर्जुन प्रभुकौ वांछित जांनी। तीछन षड़ग सुलीनौं पांनी॥ ५८॥
सीस अस्वत्थामा कै मांहीं। हुतौ मांसमय मणि तिहँ ठांहीं॥
मूंडिबार मणि काटि सुलीनौं। बंधन पोलि निकासिजुदीनौं॥ ५९॥
विप्रबाल घाती जो होई। ताकौं दण्ड और नाहिं कोई॥
कैस मूंडि तिहँ द्रव्यहिं लीजै। देह दण्ड ताकौ नाहिं दीजै॥ ६०॥
पांडव मनहिं सोकाकुल सबै। तदपि वेद धर्म छोड्यौ नहिं बै॥
जुत द्रौपदि रु पाण्डव मिलि सबै। कियै सुतबन्ध दाह विधि तबै॥ ६१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा, कुंती द्वारा भगवान की स्तुति और युधिष्ठिर का शोक)

॥ सुत उवाच ॥

दोहा - बन्धु पाण्डवन कें जितैं, मरै बीच घमसान॥
त्रियजुत गंगा तटि चलै, तिनहिं दैन जलदान॥ १ ॥
मृतकनिकौ जल अंजुली, दै विलाप अतिकीन॥
करि असनान गंगा सबनि, प्रभु चरननि चित दीन॥ २ ॥
गांधारी धृतराष्ट्र धर्म, द्रौंपदी कुन्ती माय॥
समाधान सब मुनिन सौं, कृस्न दयो करवाय॥ ३ ॥
जतन कछू नहिं काल कौ, प्रानी सबहि न मांहिं॥
करवायो उपदेस प्रभु, पैठि मुनिन मुष ठांहिं॥ ४ ॥
राज युधिष्ठिर नृपति कौ, लियौ हुतौ कपटीन॥
भारत बिच हति दुष्ट नृप, थपन फेर प्रभु कीन॥ ५ ॥
उत्तम सामग्रीन सौं, अस्वमेध जिग्य तीन॥
नृपति युधिष्ठिर पैं प्रभू, करवाये परवीन॥ ६ ॥
जस पवित्र नृप कौ प्रगट, प्रभू इन्द्र सम कीन॥
चलन द्वारिका कौं बहुरि, पाण्डव आग्यां लीन॥ ७ ॥
उद्धव सातिकि सहित तबै, कृस्न देव सुषदाय॥
पूजा व्यासादिकनकी, करत भये सबि भाय॥ ८ ॥
चलन द्वारका कृस्न जू, रथ पैं भये सवार॥
आय तिहीं समैं उत्तरा, प्रभु सौं करी पुकार॥ ९ ॥

॥ उत्तरा उवाच ॥

देव देव हे जगतपति, तुम्ह मो करौ सहाय॥
मृत्यु लगी जग परसपर, अभय दैन तुम्ह पाय॥१०॥
आवत म्हैरे सामुहें, एक लौह कौं बांन॥
सो मति जारौ गर्भ कौ, जारहुँ म्हेरौ प्रान॥११॥

॥ सूत उवाच ॥

बचन उत्तरा कौ यहे, सुनि जान्यौ भगवांन॥
यहि पाण्डव कुल नास हित, अस्वत्थामा कौ बांन॥१२॥
बांन पांच ताही समैं, पाण्डव सामुह आय॥
सो लषि अपनै सस्त्र करी, लीय पाण्डव सुभाय॥१३॥
यहि कलेस अति पाण्डवन , देषि कृस्न करतार॥
चक्र सुदरसन सौंकरी, उन रछ्या तिहुँ बार॥१४॥

चौपाई - सबि जीवन कै अन्तरजामी। और सकल जोगिन कै स्वामी॥
ऐसैं हरि पूरन प्रतिपाला। भक्ति सहायक दीन दयाला॥ १५॥

गर्भ उत्तरा रछ्या जु करी। पाण्डवन वंस राषिवैं हरी ॥
ब्रह्म अस्त्र कित निर्फल जु होई। तापैं अस्त्र चलत नाहिं कोई ॥१६॥
तऊ भगवांन तेज कैं जोरा। समित ब्रह्म अस्त्र कियौ जु घोरा ॥
अचिरज रूप आप भगवांना। करता पुरुष जु कृपा निधांना ॥१७॥
तिन करनी कौ अचिरज नांहीं। करत वहै जो निज मन चाहीं ॥
हरि माया तैं या जगत समस्त। उतपति पालन करत जुई अस्त ॥१८॥
तिनहिं गर्भ रछ्या कौ करनौं। कितक बात कौ अचिरज धरनौं ॥
यौं पाण्डवन रछा करि हरी। चलन द्वारिका इच्छा जो धरी ॥१९॥
अस्तुति कीनी कुंती जु तबै। प्रभु कै प्रेम पुलक तनहिं सबै ॥

॥ कुंत्युवाच ॥

आदि पुरुष ईश्वर तुम्ह स्वांमी। परे प्रकृति तैं अन्तरजामी ॥२०॥
सब ठां व्यापक बाहरि अंतर। नमस्कार हौं करत निरंतर ॥
माया रूपी चिद मैं आपू। छिपि बैठे निरलेप अपापू ॥२१॥
मूढन कौं नहिं देत दिषाई। संतन कै हिय बसत सदाई ॥
ज्यौं नट स्वांग बउत धरि आवै। नहिं पहिचानि कोउ तिहिं पावै ॥२२॥
हौं तो अतिहि अग्यांन सहित हौं। तुम्हकौं करन प्रनांम चहत हौं ॥
परमहंस मुनि निर्मल जिन चित। भक्ति दैन तिन प्रगटे भुवथित ॥२३॥
हम्ह तौ हैं तिय जाति निदांनैं। सो तुम्हकौ कइसैं पहिचांनैं ॥
वासुदेव तुम्ह देवकी नंदन। नन्द गोप कै सुत अघ क्रंदन ॥२४॥
नमसकार हौं बारम्बारहिं। तुम्हहिं करत स्वामी करतारहिं ॥
कमल नाभि गर कमल जु माला। कमल नयन पद कमल रसाला ॥२५॥
तुम्ह पद पंकज सुप कै धांमा। तिनकौं हौं निति करत प्रनांमा ॥
मातु देवकी तैं तुम्ह म्हैंरी। कीनी प्रभु रछ्या अधिकैरी ॥२६॥
कंस देवकी कै सुत मारैं। बन्धन देवकी किय जरि तारैं ॥
तबि प्रभु तउ तुम्ह औसर पाई। मातु पिता की करी सहाई ॥२७॥
हम्ह मैं विपति जब कछु आन परि। तुरतहिं स्वामी आ रछया करि ॥
पुत्र देवकी कै न बचाये। मो जुत म्हैरे पुत्र जीवाये ॥२८॥
विष अरु अगनि असुर कै गनतैं। किय सहाय बनवास दुपन तैं ॥
सूरवीर बड्डे जुध जु मारैं। तिनकै अस्त्रनहिं तैं जु उबारैं ॥२९॥
अस्त्र अस्वत्थमा को जु टार्यौ। गर्भ उत्तरा प्रभू उबार्यौ ॥
जितौ सहाय कियौ तुम्ह स्वांमी। गनि न सकौं सुनियैं सब नांमी ॥३०॥
विपति सदा प्रभु रहौ हम्हारैं। भली बात है यहि निरधारैं ॥
विपति भये तुम्ह बारम्बारा। दरसन देत सहाय प्रकारा ॥३१॥
जन्म अरु प्रभुता सुंदरताई। लछमी की गृह म्हैं अधिकाई ॥
इतनैं मद जब प्रानी पावै। नाम तिहारौ नहिंन सुहावै ॥३२॥
निरधन जीव जिते भू गांमी। तिनकै हौ तुम्ह ही धन स्वांमी ॥

निरगुन तुम्हजु आतमा रांमा।मुक्ति दैन हौं करत प्रनांमा॥ ३३॥
काल रूप तुम्ह ही गोविन्दा।आदि अन्त वर्जित सुपकन्दा॥
प्रानी सबै काल बसहिं भयै।मिलि मिलि कलह करन कौं जु ठयै॥ ३४॥
आप मनुष रूप प्रभु धर्‌यौ।तुम्ह वंछित किहूँ जानि न पर्‌यौ॥
सत्रु मित्र नाहिं कोऊ तुम्हारै।अरु तुम्ह जन्म हूँ नहिं निरधारै॥ ३५॥
कछू कर्म कर्ता तुम्ह जा नाहीं।जग हित जनम धरत भुव माहीं॥
जन्म धारि केउ कर्म करत हौ।मछ कछ बहू सरूप धरत हौ।॥ ३६॥
तव जसुमति ऊपल सौं बांधै।छूटि न सकै भक्त बल सांधै॥
दसा तिहिं समैं भई तिहारी।कही परै नहिं अचिरज भारी॥ ३७॥
अंजन जुत अंसुवन की धारा।चली नैन तैं भूमि अपारा॥
यहि लीला प्रभु देपि तिहारी।मोहित मो मन होत जुभारी॥ ३८॥
डर हूँ तुम्हीं तैं डरपत रहै।सो प्रभु भक्तन कौ डरहिं गहै॥
कोऊ कहत प्रभु प्रगट जुभये।सुजस युधिष्ठिर बढावन ठये॥ ३९॥
कौ कह जदुकुल करने कृतारथ।कै वसुदेव देवकी हित पथ॥
कोउ कहै संतन रछ्या काजा।मारन दुष्ट जु दैत्य समाजा॥ ४०॥
कौ कहै विधि बिनति करि आंनै।दूरि भार भुव करन प्रमांनै॥
कोउ यौं कहत कियां जग थांन।कर्म कामना बढि अग्यांन॥ ४१॥
रहत जु जीव दुपित सबि ठाहिं।तिन कारन प्रगटै भुव माहीं॥
लीला करन सबनि मन भाई।प्रगटै तुम्ह स्वामी सुप दाई॥ ४२॥
तुम्हहूँ चरित्र साधूजन सुनैं।गावै कहै कहा है रु गुनैं॥
ते सब जन या जग कै माहीं।सो प्रभु तुम्ह चर्नन कौं पाहीं॥ ४३॥
आजु अपनूं कारिज कौ स्यांमं।चलन कहत तजि हम्हकौं धांमं ॥
हम्हहिं तुम्हारै चरन छुटांई।और कहूँ नहिं आश्रय भांई॥ ४४॥
जबि दरसन न तिहारौ होंई।जादव पाण्डव मधि जै कोई॥
तिन सौं कछू का नाहिं बनैं।है जड़ दसा सोच चितउ सनैं॥ ४५॥
जइसें प्रांनन बिना सरीरा।काहू विधि नहिं होइ सधीरा॥
अद्‌भुत सुन्दर चरनउ तिहारै।तिन मधि चिन्ह बीस चंर्वधारै॥ ४६॥
तिन सौं याह जु देस कीर्ति बनी।सोभित है रही चहुँदिस घनी॥
जो प्रभु इहँ तैं आप पधारौ।रहि हैं तौ नहिंसोभ विस्तारौं॥ ४७॥
देस नदी पर्वत बन राँईं।क्रिपा दृष्टि तुम्हरी सरसांई॥
विस्व ईस हरि देवन जु देवा।अहो जगतपति स्वामि अजेवा॥ ४८॥
इनि जादवनि पाण्डवनि मांहीं।म्हैरौ अधिक नेह दुहुँ ठांहीं॥
सो सब दूरि प्रभू अब कीजै।अपनै चरन सरन गहि लीजै॥ ४९॥
तुम्ह चरनन सौं म्हैरी प्रीती।बाढै होय अनन्यता रीती॥
ज्यों समुद्र मधि सुगंग प्रवाहा।जाय मिलत है एक निबाहा॥ ५०॥
कृस्न कृस्न अरजुन कैउ सषा।श्रेष्ठ आप सबै जादव रषा॥

प्रथवी कौं दुष दैंन नृपाला। तिनकौ वंस जरा बन काला॥ ५१॥
दाता मुक्ति अहो जु गोविन्द। सुर गौ ब्रह्म हरनउ दुष दन्द॥
सबकै गुर जोगिन कै ईसा। तुम्हहिं नमति हौं विस्वाबीसा॥ ५२॥

॥ सूत उवाच॥

सूत कहतइ कुन्ती जू अैसैं। असतुति करी जोगिता जइसैं॥
मंद मंद श्री कृस्न हसै जब। मोहित ह्वै गई कुन्ती जू तब॥ ५३॥
कुन्तीजू की आग्यां मनै धरि। फेरि हस्तिनापुर जु आयै हरि॥
चलन द्वारिका जु फिरि प्रभु भयै। नृपति जुधिष्ठिर जांन नहिं दयै॥ ५४॥
व्यासादिक रिषि वर अरु श्री कृस्न। कीय नृप समाधान तिहँ प्रस्न॥
तउ नृप कौ बांधव अपनन कौं। सोक न मिट्यौ किहूँ विधि मनकौं॥ ५५॥

दोहा - अपनैं बन्धु मरैन कौ, सुमरन चित्त विचारि॥
दुषित होत राजा महा, बौलै वचन सम्हारि॥ ५६॥
देषौ मो अग्यांन सबै, झूठै तन कैं काज॥
मारि बऊत अछौहनी, मैं कुल सैंन समाज॥ ५७॥
ब्राह्मन गुरू अरु सुहृद जन, मित्र पिता बहू बन्धु॥
इनकौं कीनौं द्रोह मैं, नरक परनकौ धन्धु॥ ५८॥
हौं जानत ह्वै हैं नाहिं, म्हेरौ कहौ उधार॥
लाष बरसहूँ नरक तैं, सहि हौं कष्ट अपार॥ ५९॥
होय प्रजा पालक नृपति, धर्मजुद्ध कै माहिं॥
सत्रुन कौं मारैं जु तऊ, ताकौ दूसन नाहिं॥ ६०॥
धर्म सास्त्र कौ वचन यहि, तासौं म्हैरे चित्त॥
क्यौं हूँ नाहिंन गहत हैं, समाधान पुनि नित्त॥ ६१॥
जो कोउ पुन्य प्रजानकौं, देतउ सत्रु दुष होय॥
ताही कौं मारन कह्यौ, नहिं अजोगिता कोय॥ ६२॥
दुरजोधन तौ प्रजानकुँ, देत रह्यौ नहिं दुष्ष॥
म्हैं हति लीनौं पाप तिहिं, राज लोभ कै सुष्ष॥ ६३॥
जिन पति सुत मारै गयै, तैं रोवत हैं नारि॥
इहै पाप जिग्य हूँ करैं, उतरत नहिं निरधारि॥ ६४॥
जइसैं धोयैं कीचसौं, कीच ना धोई जाय॥
सुरा पियैं कौ पाप नहिं, सुरा पियैं विनसाय॥ ६५॥
जीव हते बहू जुध सौं, पाप जिग्य हूँ कीन॥
नहिं उतरै बिच जिग्य तबू, हति यैं जीव जुदीन॥ ६६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्याय: ॥

(युधिष्ठिरादि का भीष्म के पास जाना और श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये भीष्म जी का प्राण त्याग करना)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - प्रजा द्रोह तैं अति डरैं, चित्त जुधिष्ठर राज ॥
धर्महेत कुरुषेत मधि, आये सहित समाज ॥ १ ॥
सरसज्या पौढे जांहँ, भीष्म पितामह भूम ॥
तांह पधारत निरभये, लियैं संग रिषि धूम ॥ २ ॥

चौपाई - चहुँ बीर जुत नृपति सुहाये। व्यास धौम्य प्रोहित संग आये॥
रथ नग जटित नहिं पै चढ़ि चलै। अद्भुत अस्व लगै हैं सु भलै॥ ३ ॥
अर्जुन जुत भगवांन जु पधारै। लहत कोउ तिन वार न पारै॥
बढि सोभा नृप अति छवि छायौ। मनु कुबेर जछिन जुत जु आयौ॥ ४ ॥
भीष्म पितामह सोये भूपर। जनु नभ तैं सुर आय गिर्‌यौ धर॥
यौं भीष्मजू पौढे भूपर। कीनैं सबनि प्रनांम जोरिकर॥ ५ ॥
आयै भीषम दरसन काजैं। ब्रह्म रिषि रु सुर रिषि रिषि राजैं॥
नारद धोम्य व्यासजू पर्वत। भरद्वाज द्विज राम असित त्रित॥ ६ ॥
इंद्र प्रमद अरु रिषि विस्वामित्र। कषीवांन बृहदस्व रु अत्र॥
कस्यप गौतम वसिष्ठ सुदर्सन। रिषिजु आंगिरस सुक गृत्समद गन॥ ७ ॥
सिषिनहिं सहित मिलि रिषिगन सबै। भीषम जू पैं आये जु तबै॥
जथा जोग्य तिन आदर दीनां। बिधवत बिधि सौं पूजा कीनां॥ ८ ॥
पूरन ब्रह्म जगत कै ईस्वर। माया करि जिन वपु धार्‌यौ नर॥
जे श्री कृस्न ह्दै मधि राजैं। असरन सरन गरीब निवाजैं॥ ९ ॥
तिनकी पूजा करी विसेषा। भीषम जू विधिवत विधि लेषा॥
ठाढे पाण्डव निकटहिं जाई। भीषमजू कौं सीस नवाई॥ १० ॥
तिनहि प्रीति जुत भीषम दैषी। अश्रुधार दृग चलै अलैषी॥

॥ श्री भीष्म उवाच ॥

भीषम जू बौलै ऐसैं तब। पांडव सोच करहुँ मति तुम्ह अब॥ ११ ॥
अहो कष्ट अहो बड़ अन्यायू। जीब्हा जोग्य नहिं दुष पायू॥
तुम्हहिं सहायक है भगवांना। अरु ब्राह्मन हैं प्रस्नं निदांना॥ १२ ॥
नृपति पांडु जब सुरपुर गयै। तुम्ह तबै छोटे दुषित जु भयै॥
बऊत कलेसनि कुन्ती माता। तुम्ह पालनहिं कीनौं विष्याता॥ १३ ॥
तुम्हं सै महा धर्म कै धारी। तिनहूँ दुष पायो अतिभारी॥
पुन्य षीन धरी आवत जोई। करम गति जानेउ नहिं कोई॥ १४ ॥

ऐसी ही है यहि गति काला। जगत काल आधीन बिहाला ॥
जइसैं मेघ पवन आधीनां। सब विधि समझत साध प्रवीनां ॥ १५ ॥
बड़े धर्म धर नृपति जुधिष्ठिर। भीम महाबलवंत वीरवर ॥
अर्जुन सौं देषौं धनु धारी। बहूरि मित्र श्री कृस्न मुरारी ॥ १६ ॥
प्रबल विपति तिनहूँ कौं भई। लषौं समैं जो रावरी ठई ॥
यै श्री कृस्न चंद नारायन। सेवत सब जग इन्हैं परायन ॥ १७ ॥
इन्हकौ वंछित येई जांनै। बड जोगेस्वर हूँ न पिछांनैं ॥
तातैं इहै सकल संसारा। है आधीन दैव निरंधारा ॥ १८ ॥
यहै विचार चित सोच न धरौ। पालन भलैं प्रजा कौउ करौ ॥
कृस्न चंद नारायन रूपा। परम ब्रह्म करतार अनूपा ॥ १९ ॥
यै अपनी माया सौं स्वामी। मोहित करत सु अंतरजामी ॥
प्रगट भये जादव कुल मांहीं। इन्हकौं कोऊ जानत नांहीं ॥ २० ॥
इन्हकीं महिमा कौं सिव जांनैं। नारद कपिल देव पहिचानैं ॥
तुम्ह मातुल सुत मंत्री सु मानत। दूत साथी रु मित्र जु जानत ॥ २१ ॥
यैहि सर्वातम हैं समदरसी। यै निरदोष न माया परसी ॥
इन्हकौं कोउ कैइसैंहुं जानैं। तउ यै नैक बुरौ नहिं मानैं ॥ २२ ॥
अरु यहि समैं कृपायुत देषौ। दीरघ पुन्य भाग मोहिंलेषौ ॥
प्रान तजन जु चाह्यौ म्है अबै। आप आय दरसन दियैं तबै ॥ २३ ॥
प्रेम जुक्त इन्हमैं मन लाया। जोगेस्वर निज प्रान न साया ॥
ते वे लहत मोछ अभिरांमां। और भांति नहिं तिनकौं ठांमां ॥ २४ ॥
हौं सरीर छोड़ौं जब ताईं। कृस्न रहौ मो सामुह ठाईं ॥
धरै सु चारि भुज मंद हसंत। अद्भुत सुंदर रूप यौं लसंत ॥ २५ ॥

॥ सूत उवाच ॥

सूत कहतहुँ हैं ताही तंता। सबै रिषि गन जु श्रवन सुनंता ॥
पूछत भये जुधिष्ठिर भूपा। भीषम जू सौं धर्म सरुपा ॥ २६ ॥
वर्ण धर्म अरू आश्रमहूँ धर्म। धर्म गृहस्थ विरक्तन कैहूँ मर्म ॥
जग्य दान धर्म राजन कै धर्म। मोछ धर्म अरु त्रिय धर्म जु कर्म ॥ २७ ॥
बैस्नव धर्म जोइ पूछत भये। चित संदेहूँ सबै मिटि गये ॥
धर्म अर्थ अरु मोछ जू कांम। इनी उपाय हुँ पूछे ठांम ॥ २८ ॥
भीषम जू सबै भेद सु कहै। नृप संदेह कछू नहिं रहै ॥
ऐसैं धर्म कहत तिहिं बेरा। भयो समय उत्तरायन फेरा ॥ २९ ॥
भीषम जू लीनौं तब मौंनूं। कृस्न चरन मैं करि चित गौंनूं ॥

रूप चतुर्भुज धरैं जु पीत पट। आगैं ठाढे मुष घुंघरी लट॥ ३०॥
भीषम दृग भू वोर लगाये। अरु भगवांन ध्यान हिय छायै॥
सस्त्र विथा तन तैं सब मिटि गई। समैं सुतन छोड़न की जु भई॥ ३१॥
भीषम जू असतुति तिन कीना। कृस्न गुणानुबाद रस लीना॥

॥ भीष्म उवाच॥

श्रेष्ठ जादवन बिचि भगवांना। अति आनंद मगन सुषदांना॥ ३२॥
लीला करि धार्यौ अवतारी। अैसै हैं श्री कृस्न मुरारी॥
तिन मधि मैं अपबुद्धि लगाई। सौ निस दिन ह्यां रहौ सदाई॥ ३३॥
यहँ त्रिलोक बिच सुंदर स्यांमं। पीतांबर धारैं अभिरांमं॥
कच घुँघरारे मुष पैं सोहैं। अरू अर्जुन कै सषा सु छोहैं॥ ३४॥
अैसैं कमल नैन श्री कृस्न। तिन मैं मो चित्त रहौ सतृस्न॥
अस्वषुरननिं की रज जुध माहीं। जिनकै केसन सौं लपटाहीं॥ ३५॥
बूंद पसीना की आंनन पर। आंय रहीं मानहूँ सोभा सर॥
म्हैरै बान देह मैं सुलगै। पहरै कवच वीर रस सु पगै॥ ३६॥
अैसैं प्रभू कृस्न भगवांना। तिन सौं मो मन लगौ निदांना॥
जुद्ध समैं विनती कियै पारथ। सत्रु दिषावहुँ मुँहि बिच भारथ॥ ३७॥
यहि सुनि वचन बीच दुहुँ सैंना। रथ कौं राषि कृस्न सुष दैंना॥
अर्जुन कौ तांह सत्रु दिषांई। उन्हकौं आर्वल हरी सुभांई॥ ३८॥
अैसैं हरि अर्जुनउ कै सषा। म्हैरी प्रीति होऊ तिन्हु पषा॥
अर्जुन वचन कह्यौ जबै अैसैं। हौं निज बंधुननि मारौं कइसैं॥ ३९॥
तब गीता कौ करि उपदेसू। कियै अग्यांन दूरि अषिलेसू॥
अैसैं कृस्न चरन सौं म्हैरी। प्रीत बढौ नित प्रति अधिकैरी॥ ४०॥
याहि श्री कृस्न प्रतंग्या कीनूं। भारत बीच सस्त्र नाहिं लीनूं॥
अरु म्हैं याहि जू प्रतिग्यां करी। अस्त्र लिवाऊँ हाथनि हौं हरी॥ ४१॥
छौडी प्रतिग्यां आपनी जबै। रथ तैंउ उतरि अवनि पर तबै॥
रथ कौं चक्र सु आपनैं कर धरि। म्हैरैं सामुहँ दौरे प्रभु हरि॥ ४२॥
पीतांबर हूँ उतरि जु परयौ। अैसैं मो प्रन पूरन करयौ॥
म्हैं वा समैं जु बांन प्रहारै। तुटि गयौ तनउ कवच मुरारै॥ ४३॥
कियै श्री अंगहिं बान प्रहारा। निकस चली तब लौहू धारा॥
प्रभू तब अैसौं रूप बनायौ। मुहि मारन मो सामुँह आयौ॥ ४४॥
अैसै हैं श्री कृस्न जु मो गति। तिनमैं म्हैरी प्रीति बढौ निति॥

अर्जुन रथहिं रछ्या यों करैं। इक करउ मध्यहिं पुरांनी धरैं॥ ४५॥
जुद्ध बीच अैसौं प्रभु दरसन। जिन कीनौं तैं मुक्त भये जन॥
जिन्हकी गति अरू विविध बिलांसं। प्रीति जुक्त देषनि अरु हांसं॥ ४६॥
इन्हसौं गोपीन मोहित भई। बढ्यौ नेह तन्मय ह्वै गईं॥
होय विरह बस परम सुसीला। करन लगी प्रभु की सी लीला॥ ४७॥
अैसें कृस्न प्रभू पद मांहीं। बढहूँ म्हैरी प्रीति अथांहीं॥
नृपति जुधिष्ठिर जिग्य मझारा। बैठे नृप रिषि धरि बड भारा॥ ४८॥
पहलैं तांह जुधिष्ठिर राजा। पूजै हरि आनंद जिहाजा॥
अैसै कृस्नं कंवल दल नैनां। रहौ दृगनि आगै सुष दैनां॥ ४९॥
मध्य सरीर जू आतम रूपा। प्रभू विराजत येक अनूपा॥
दीसि परत ज्यौं रवि सब ठौरां। नहिंन कहूँ कछु औरहिं औरां॥ ५०॥
अैसै हैं श्री कृस्न कृपाला। हौं तिन सरन नवावत भाला।॥

॥ सूत उवाच॥

यौं मन बच क्रम करि मधि कृस्ना। भीषम प्रीति कीन जिय तृस्ना॥ ५१॥
प्राणायाम करि आप सरीरा। छौडतहिं भये पंच तत्व भीरा॥
भीषम भये कृस्न म्हैं लीनां। जानिउ सबै चुप रहै प्रबीनां॥ ५२॥
जइसैं सांझ समैं जब होई। पंछी बौलत नाहिंन कोई॥
तबहिं तिहिं समैं मनौं घन गजैं। जु सुर नर लोक नगारे बजैं॥ ५३॥
भीषम जू कौ सबही साधूं। भयै सराहत भांति अगाधू॥
नभ तैं वृष्टि पुहपन की भई। जै जै सब्द देव धुनि की छई॥ ५४॥
भीषम जू की क्रिया जुधिष्ठिर। करवाई सबै वेद जुक्त फिर॥
आप बऊत दुष करत जु भयै। तबै अश्रुजलहिं सौं दृग छयै॥ ५५॥
प्रभु गुन गन रिषि वरहुँ उच्चारे। अप अपनैं आश्रमनि पधारैं॥
नृपति युधिष्ठिर हरि जुत सबै। आयैं हस्तिनापुरहिं मधि तबै॥ ५६॥

दोहा - गांधारी धृतराष्ट्र कौं, समाधान अति कीन॥
नृपति जुधिष्ठिर धर्मधर, वेद पंथ आधीन॥५७॥
धृतराष्ट्र रु श्री कृस्न कै, बचन युधिष्ठिर राय॥
नृप सिंहासन बैठि जांह, कीनौं राज सुभाय॥५८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

(श्रीकृष्ण का द्वारका गमन)

॥ सौनक उवाच॥

दोहा - श्रेष्ठ धर्मधारीन मैं, निपट युधिष्ठिर राय॥
मारिउ सत्रु कीनौं कहा, हम्हकौं देहु बताय॥ १ ॥

॥ सूत उवाच॥

कौरव पांडव बंस जबै, नास लह्यौ इक बार॥
जइसैं बन मैं बांस मिलि, होत अगनि सौं छार॥ २ ॥
येकेंउ पांडव बंस मैं, कृस्न परीछित राषि॥
राज ज़ुधिष्ठिरहिं कौं दयौ, अतिचित हित अभिलाषि॥ ३ ॥
भीष्म अरु श्री कृस्न सौं, लह्यौ जुधिष्ठिर ग्यांन॥
दूरि भयौ अग्यांन सबै, इछा बलउ भगवांन॥ ४ ॥
प्रथिवी की रिच्छा बहूरि, नृपति इन्द्र समकीन॥
भाई हूँ सबहिं धर्म जुत, नृप आग्यां अधीन॥ ५ ॥
अरु राजा कै राज्य मै, बरसत आछैं मेह॥
प्रथिवी हूँ सब कामना, देत भई नर गेह॥ ६ ॥
गायन कैहूँ थनन मैं, होत जु दूद्ध अनंत॥
षरिकन बिच वहि वहि चलत, पावत नाहिं न अंत॥ ७ ॥
नदी सिंधू गिरवरनि मैं, सोभा नित सरसाय॥
वृछिन मैं फलफूल दल, प्रगटत अति अधिकाय॥ ८ ॥
नाहिं मन चिन्ता रोग तन, नाहिंन त्रिविधि संताप॥
किय सुष रूपी राजनृप, दिन दिन सरस प्रताप॥ ९ ॥
कृस्न चंद्र केतक दिवस, बसे जु गजपुर चांहि॥
मित्र सोक हरिबे बाहन, प्रिय करिबै हित तांहि॥ १० ॥
बहुर्यौं मिलि पांडवनि सौं, नमसकार करि स्यांम॥
आग्यां लै रथ पैं चढै, चलन द्वारिका धांम॥ ११ ॥
अरु जै लघु भाई हुतै, तिन किय प्रभुहिं प्रनांम॥
विरह विकल ह्वै एक टक, निरषत मुष अभिरांम॥ १२ ॥
द्रुपदी सुभद्रा रु उत्तरा, कुन्ती अति हितहुँ भेव॥
गांधारी धृतराष्ट्र जुत, भीम नकुल सहदेव १३ ॥
कृपाचार्य पुनि नृपति कै, प्रोहित धौम्य सुचित्त॥
इन्ह सबहीं प्रभु कौ विरह, बाढ्यौ भये दुषित्त॥ १४ ॥

जै सज्जन हुँ श्री कृस्न कौ, जस गावत सुष पाय॥
तिनहूँ कौ कबहूँ विरह, क्यौं हूँ सह्यौ न जाय॥१५॥
सौइ प्रतछि श्री कृस्न तिन, विरह सहन क्यौं होय॥
इच्छा दैव वलिष्ट कछु किहुँ, कौ बस नाही कोय॥१६॥
जिन दरसन नित ही रह्यौ, काज रहै मुषबात॥
भोजन बैठन सोवनौं, हौ इक ठौ विषयात॥१७॥
पलक लगायैं बिन सबै, देषि रहै प्रभु वोर॥
चित लगाय ठाढे निकट, बंधे नेह की डोर॥१८॥
आंसू सब त्रिय दृगनि मैं, उमड़ि रहे तिहुँ बार॥
चलतहिं अमंगल कैं लियैं, बाहरि सकत न डार॥१९॥
मृदंग नगारे बीन अरु, संष घंट सहनाय॥
ए बाजै बाजन लगै, चलन समैं सुष छाय॥२०॥
चढी गृहन मैं नगर की, प्रेम लाज जुत नारि॥
देषि देषि श्री कृस्न कौं, बरषति पुहप अपारि॥२१॥
अर्जुन प्रीय श्री कृस्न कै, भये छत्र कर लेत॥
मुक्ता झालरी नग जटित, दंड महा सुछवि देत॥२२॥
उद्धव सातिक कर चँवर, ढूरवत जुक्त सनेह॥
ऊपर तैं बरषत कुसुम, प्रभुकी सोभ अछेह॥२३॥
सगुन रूप श्री कृस्न जू, धर्‌यौ आप चित चाय॥
तातैं आसिरवाद द्विज, देत जु भलैं बनाय॥२४॥
निर्गुन रूपहिं नाहिं बनत, आसीर्वाद विचार॥
सब सुष दाता सगुन हरि, भक्तन हित निरधार॥२५॥
सबहि नगर की तियनकौं, मन लाग्यौ हरि माहिं॥
तैं मिलि लषि श्री कृस्न कौं, आपस मैं बतराहिं॥२६॥
उपजी हुँ तीन सृष्टि जबै, तब यै प्रभु करतार॥
पारब्रह्म है रूप इक, अब लिय भुव अवतार॥२७॥

चौपाई - अपनै अंस भूत जै जीवू। तिहिं आछादित करत सदीवू॥
जग रचबै की वांछा करती। अपनी काल सक्ति करी बरती॥ २८॥
माया व्है प्रभू अंगीकारा। करी कौनउ इच्छा करतारा॥
नांम रूप जीवन कैं नाहीं। नांम रूप धरिबै की चाहीं॥ २९॥
जीवनि कै क्रम रचिबै काजू। वेद प्रगट कीनै ब्रज राजू॥
हे सषी जिनि इंद्री बसि कीनूं। बसि जिनि प्राण जोग करिलीनूं॥ ३०॥

करी भक्ति सौं निरमल जो बुद्धि। प्रभू पद सेवा सूं राषत सुद्धि॥
अैं श्री कृष्ण अपनौं जो ग्यांनू। नास न करौं बसौं हिय थांनू॥ ३१ ॥
हे सषी इनकुँ वेदनि गांयै। अति अपार किहुँ पार न पांयै॥
ए आपन हीं करी संसारा। उतपति पालन करत संघारा॥ ३२ ॥
नृपति तमो गुन जुत जब भयै। दुरित बउत प्रथ्वी पर ठयै॥
तब उन्हकौं मारन निरधारा। जुग जुग मधि प्रगटत अवतारा॥ ३३ ॥
हे सषी धन्य धन्य यहै जदु वंस। तामैंहिं प्रगटेठ प्रभू प्रसंस॥
धन्य मधुपुरी हूँ जगहिं मांहीं। बसै कृस्न करता तिहिं ठांहीं॥ ३४ ॥
अधिक स्वर्ग तैहिं धन्य द्वारिका। परम पवित्र सो पाप हारिका॥
जिहँ बासी प्रभु दरसन नितप्रत। करत रहत मानत निज क्रत क्रत॥ ३५ ॥
हे सषी धन्य सु धन्य वै नारी। पुन्य असनान दान किय भारी॥
पानिग्रहन जिन इन्हसौं कीनौं। अधरामृत अमृत रस लीनौं॥ ३६ ॥
जिहँ अधरामृत रसमई। गोपीन हरि सौं मोहित भई॥
आप पराक्रम कैं बसि स्यांमां। हरि हरि लै आयै जे वांमां॥ ३७ ॥
दुष्ट कितैं सिसुपालहिं आदिका। तिनकै गर्व जू भानि अनादिका॥
प्रद्युमन सांब आदि सुत जिनकैं। भये बहू गनि जात न तिनकैं॥ ३८ ॥
अरु भौमासुर कौउ संघारी। ले आयै तेऊ धनि नारी॥
पराधीना अपवित्र जनम तिय। तिन्हकौं इन्ह नारिनि सोभा दिय॥ ३९ ॥
जिन गृह नित श्री कृस्न जु बसैं। तिन्हहीं प्रसंन्न करी नर सरसैं॥
अैसैं सब त्रियगन कै बैनां। सुनि कैं कृस्न कमल दल नैनां॥ ४० ॥
उन्हकी और चितै मुसक्यांई। आगै चलै स्याम सुषदांई॥
पूरन ब्रह्म तऊ हित भाया। नृपति जुधिष्ठिर अरिडर छाया॥ ४१ ॥
ठाकुर की रछ्या कैं काजा। संग सेना चतुरंग दिय साजा॥
पांडव प्रभू प्रीति रसहिं रलै। बऊत दूरि पहुँचाविन चलै॥ ४२ ॥
तिनहिं विदा करिकैं भगवांना। चलै द्वारिका ग्यांन निधांना॥
कुर जांगल पांचाल सुबीरां। सूरसेन यामुन आभीरां॥ ४३ ॥
ब्रह्मावर्त कुरूषेतहिं सुथांनं। मत्सि सारसुतहीं पुन्य निधांनं॥
मरुधनु देस लांघि मग मांहीं। गयै देसू आनर्त सुठांहीं॥ ४४ ॥
सोवहि देस निकट द्वारावति। पहुँचै तहँ प्रभु आप इच्छागति॥
जिहिं जिहिं पुर ह्वै कैं हरि आंए। तहँ तहँ कै बासिन सुष पांए॥ ४५ ॥
भलैं प्रभू की पूजा कीनू। अपनौं जनम सफल कैं लीनू॥
सूर्य अस्त भयें तैं श्री कृस्नां। परसे जल संध्या किय प्रस्नां॥ ४६ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

(द्वारिका में श्री कृष्ण का स्वागत)

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई - प्रभू कैं जे आनर्त जु देसा। तिन मैं आप पधारि जु बेसा॥
संषनादहिं कीनौं सुषदांई। दुष्ष प्रजाकौ दयौ मिटाई॥ १॥
पांचजन्य सित संषजु रसाला। हरि कर लाली तैं भौं भाला॥
कंज षंड ऊपरी मनू हंसा। बोलत सब्द अनूपहिं प्रसंसा॥ २॥
संषनाद जग कैइ भय मेटन। सुनत प्रजा आई हरि भेटन॥
है श्री कृस्न आतमा रांमा। परब्रह्म प्रभू पूरन कांमा॥ ३॥
तिन्ह कौं ले ले भेट सुहाई। द्वारावती प्रजा सबि आई॥
दीपदान सूरिज कौं जइसैं। वह सोभा सोभित विधि तइसैं॥ ४॥
चित्त प्रसंन तासौं सबकै मुष। फूलि रहे लहि स्वामि मिलन सुष॥
होय प्रजा जन गदगद बांनी। बोलै प्रभु सों असतुति ठांनी॥ ५॥
हो श्री कृस्न कृपाल अनूपां। तुम्ह सब कै पालक सुष रूपां॥
तुम्ह चरनन कौं सिव वासव विधि। नमसकार नित करत हेत सिधि॥ ६॥
विस्व चराचर सकल अपारा। ताकै तुम्ह रछकहिं करतारा॥
सरन तुम्हारै आवै कोई। तांकु नाहिंन काल भय होई॥ ७॥
चरन कमल प्रभु सुषद तिहारै। तिनहिं प्रनाम जु नित्य हमारै॥
तुम्हहिं विस्व कै पालक सुवामी। अहो श्रीकृस्नं जु अंतरजामी॥ ८॥
तुम्ह हौ माता पिता हमारै। सदगति सुहृद इष्ट निरधारै॥
किये तुम्हारी सेवा चायन। भये कृतारथ हम्ह सब भायन॥ ९॥
प्रभु तुम्ह रछ्या करौ हमारी। दीनबन्धू श्री कृष्ण मुरारी॥
जान्यौं हम्ह बड भाग हमारौ। दरसन करत अनूप तिहारौ॥ १०॥
सुंदर सु रूप परम सुषरासी। जुक्त मंद मुसक्यांन सुधासी॥
देवतांन कौ दुरलभ देषन। सो छवि हम्हलषि वारत तन मन॥ ११॥
मिलै पांडवन कौ तुम्ह जब तैं। प्रभु कुरुदेस पधारे तब तैं॥
कोटि कोटि जग सम इक इक छिन। हम्हकौं बीतत भये रैंन दिन॥ १२॥
सूरिज बिना नयन जुग जइसैं। तुम्ह बिनु हम्ह सब भये सु अैसैं॥
अैसैं वचन प्रजा कै सुनि हरि। कह्यौ अनुग्रह चित अति हित धरि॥ १३॥
निकट द्वारिका जु प्रापत भये। सुनत तांह अति मंगल जु ठये॥
मधु अंधक भोज दसारह बंसा। कुकुर वृष्णि जदु जाति प्रसंसा॥ १४॥
यैं सबहि रछिक द्वारावती। भोगवती कै जइसैं अहि पति॥
सब रितू माहिं फूल फल लगैं। अइसैं वृछि मधुर रसहिं पगैं॥ १५॥
जांह अनेक बाग अरु बारी। फूलै कंजहिं सरस सुषकारी॥

द्वार द्वार पर बांदर वाला। धुजा धरनि पैं लसत रसाला॥ १६॥
तिन तैं छाया होत सु आछैं। रंग बिरंगी बांदर की ताछैं॥
हाट बाजार चौहटै गली। सबैं सँवारै भांतनि जु भली॥ १७॥
भयो सुगंधनि कौउ छिरकावा। पुहप अछत फल धरै सुभावा॥
दुर्वा अछित फल जल सौं पूरा। धरे कलस गृह द्वार न मूरा॥ १८॥
धूप दीप जुत मंगल सु साजैं। कीनैं सबै उछव विधि काजैं॥
आंगन मोतिन चौक बिराजैं। केलिषंभ तौंरन छवि छाजैं॥ १९॥
बाजत ठौर ठौर नीसांन। करतहिं नारि मिलि मंगल गांन॥
उग्रसेन बलि जुतहिं वसुदेवा। अरु अक्रूर भक्त जुत सु सेवा॥ २०॥
प्रद्युमन चारुदेष्ण सुत सबै। भूलै भोजन हर्षित हूँ तबै॥
संषनाद गज जुत जु वेद धुंनि। चतुरंगनि सेना साजैं पुंनि॥ २१॥
चढि सींदन पैं प्रेम जुक्त सब। प्रभु कै सामुह चलै भलैं तब॥
हरिदरसन हित हूँ नृतकारी। आयै रूप धरैं मनुहारी॥ २२॥
कला कुसल नट मागध सूतहिं। बंदी जन गंधर्व जातक बउतहिं॥
गांवन हारे गावन जु लगै। प्रभू चरित्र हूँ उत्तम रस पगै॥ २३॥
पुरवासी सेवक जनहिं जितै। अरू आपनैं बंधू गनहिं तितै॥
सबकौं आदर यथा जोगिविधि। करत भये प्रभु अति आनँद निधि॥ २४॥
किहुँ कौ नमसकार हरि कीनां। जे गुरजन गन प्रभु सौं लीनां॥
किहूँ सौं मिलन हंसन कर गहनौं। किहुँ सौं दृग चितवन ही चहनौं॥ २५॥
इन्ह बातन करिकैं भगवांना। करत भये सबकौ सनमांना॥
गुरु ब्राह्मन कुल आसिष लेता। द्वारामति मधि आय विजेता॥ २६॥
बिच बाजार श्री कृस्न पधारै। अद्‌भुत सोभ सबै दुष टारै॥
जै कुल त्रियांन लज्या सौं मढी। सदन सीस हरि देषनहिं चढी॥ २७॥
मनहुँ विमाननि ऊपर चंदा। आय निहारत आनंद कंदा॥
जे द्वारावति कै नरनारी। दरसन करत सदा सुषकारी॥ २८॥
तउन त्रिपति उन्हकै दृग होंती। छिन छिन देषन चहै उदोती॥
जिनहिं प्रभु कौ देष्यै मुष चंदा। भयो दृगनिकौं अति आनन्दा॥ २९॥
संपूरण प्राणीहिं हरिदासा। तिन्हकै नैत्रनि मैटन प्यासा॥
सुंदरताई अमिरत सम ठयी। प्रभू कै मुष सौं पातर भयी॥ ३०॥
श्री लांछन जिन्हकै उर सोहै। भुजा सुरन की सु रछिक जो है॥
भक्तहिं रहत जिनी चर्नन आश्रय। ऐसैं कृस्न सदा करुनामय॥ ३१॥
छत्र चँवर तिनी ऊपरहिं फिरैं। पीतांबर बनमाला सुधरैं॥
कुसुमनि वरषा होत सुहाई। अद्‌भुत सोभा अति सुषदाई॥ ३२॥
रवि नछत्र दामिनी सुरपति धनु। मानहुँ इन जुत सोभित है घनु॥
मात पिता कैं गेह पधारै। जग व्यौहार प्रभू बिसतारै॥ ३३॥

मात देवकी आदि जु सातहिं। तिनहिं प्रनांम कियै ढिंग जातहिं॥
मातनि लीनैं गोद उठाई। स्तन तैं दूध बह्यौ अधिकाई॥ ३४॥
नैत्रन मैं तैं जल आनंदा। आंसू बहै मिट्यौ दुष दंदा॥
ता पाछैं अपनैं गृह आयै। सुंदर स्यांमू अधिक छवि छायै॥ ३५॥
सोरह सहस आठ जे वांमा। भये पधारत तिन कै धांमा॥
सब तिय पिय गृह आए देषी। अपनौं जनमहिं सफल करि लेषी॥ ३६॥
लाज सहित आसननि निवारी। सबही उठि ठाढी भइ नारी॥
पति परदेस चलै तिहँ बारा। तिन्हकौं करनन कह्यौ सिंघारा॥ ३७॥
तातैं प्रीतम आयै जांना। करनहिं लगी सिंगार विधांना॥
पहिलै हरि पुत्रन सौई मिलै। धर्म प्रीति रस रीतहीं रलै॥ ३८॥
फेरि दृष्टि अरू तन मन करिकैं। मिलै तियन सौं आनंद भरिकैं॥
तब तिय नैन सजल ह्वै आयै। चित उछाह अति आनंद छायै॥ ३९॥
जुदे जुदे प्रभु रूप बनायै। नारिनि निकट पधारन चायै॥
तऊ श्री कृस्न चरन जब देषैं। नूतन नित्य सकल त्रिय सुलेषैं॥ ४०॥
जिनी चरनन कौं चंचल जु रमा। तजत नहिं क्यौं हूँ काहू समा॥
जे करि रहै हुतै भु भांरां। बड्डी संग सैना बिसतारां॥ ४१॥
तिन्हकैं मध्य बैरहिं उपजाई। आप समाहिं जुद्ध करवाई॥
भार दूरि प्रथवी कौ कीनौं। सब संसारहिं प्रभू आधीनौं॥ ४२॥
परमब्रह्म परमैसर जु आपू। उत्पति प्रलय न व्यापै संतापू॥
पूरन ब्रह्म अपनी माया बल। धारि सगुनअवतार महीतल॥ ४३॥
केउ त्रियन सौं सहित विवेकूँ। कियै विलास जु भांति अनैकूँ॥
प्रेम लाज जुत सुंदर हासहीं। चितवनी अंग अनंग प्रयासहीं॥ ४४॥
तिनी सौं सिव जू मोहित भयौ। करतैं धनुषडारि तिनी दयौ॥
नारि मोहनी रूप सु आंहिं। तउ तिन सौं हरि मोहे नांहिं॥ ४५॥
तै प्रभु सब लोकनि यौं जांनैं। त्रिय आधीन भये पहचानैं॥
जइसैं लोक सहितहिं अग्यांनां। आप तिया आधीन निदांनां॥ ४६॥
यैं ही प्रभू की प्रभुता सु सहिं। माया मधि हैं पैं लिपत जु नहिं॥
त्यौं ही जन प्रभु आश्रय पांई। माया मैं नहिं बुद्धि लिपटांई॥ ४७॥
तिया जाति जो मूढ मति ठई। अपनैं बसी हरि जानत भई॥
प्रभुकौ रूप न उनि पहिचान्यौं। जइसैं बुधि ईसुर न पिछान्यौं॥ ४८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अैकादशोऽध्याय: ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

(परीक्षित का जन्म)

॥ सौनक उवाच ॥

दोहा - अस्वत्थामा चलत भयौ, ब्रह्म अस्त्र तिहिंबार॥
गर्भ उत्तराकौ जरतहीं, राष्यौ हौ करतार॥ १॥
तिहिं बालक कौ कह हुँ अब, जन्म कर्म अरु अंत॥
मरन भये किहिं गति भई, सोउ बषानौं तंत॥ २॥
याहि चरित्र हम्हकौं सुनन, सर्द्धा उपजी आय॥
तातैं वह बालक दसा, कहौ भलैं समझाय॥ ३॥
श्रेष्ठ सकल मुनि जनन मैं, श्री सुक मुनि जोगेस॥
जिन जिहिं बालक कौं दयो, ग्यांन तत्व उपदेस॥ ४॥

॥ सूत उवाच ॥

नृपति युधिष्ठिर प्रजाकौ, पितु सम पालन कीन॥
जगत कामना चाह बिनु, कृस्न सेव आधीन॥ ५॥
जिग्य जो सुरग जस संपदा, रानी अरु चहुँ बीर॥
प्रथिवी जंबू द्वीप कौ, राज्यभोग की भीर॥ ६॥
इते पदारथ नृपहिं कछु, भये न आनंद देत॥
ज्यौं भूषै कौ अंन बिनु, और न सुषकौ हेत॥ ७॥
अैक कृष्ण चरनहिं सरन, नृप मन रह्यौ लुभाय॥
ताही मैंहिं आनंद अति, मानत चित सुष पाय॥ ८॥
हुतौ जु मातकै गर्भ मधि, जवै परीछित राय॥
जारत हौ ब्रह्मास्त्र तब, प्रभु दिय दरसन आय॥ ९॥
सम अंगुष्ट तन चार भुज, कमल नैन घनस्यांम॥
कंचन कै कुंडल मुकट, पीत बसन अभिरांम ॥१०॥
गदा भ्रमावत कर गहें, अपनैं चारौं वोर॥
धार्‌यौ अदभुत रूप हरि, करन भक्त की गौर॥ ११॥
करत भये ब्रह्मास्त्र कौ, तेज दूरि भगवांन॥
ज्यौं द्यौं-हरि कौं टारि कैं, करत उजारौ भांन॥ १२॥
अैसौ सुंदर रूपहिं हरि, अद्‌भुत परम उदार॥
नृपति परीछित गर्भ मधि, लषत भये तिहुँ बार॥ १३॥
पूर्न भये दस मास जब, धर्म रिछिक भगवांन॥
गर्भ मध्य तैं तब प्रभू ह्वै, गयै अंतरी ध्यांन॥ १४॥
भलै ग्रहन मैं सुभ समै, नृपति परीछित राय॥
ता पाछैं प्रगटत भयै, राजा पांडु सुभाय॥ १५॥

नृपति जुधिष्ठिर जिहिं समैं, भये मुदित सुषपाइ॥
कृपाचार्य अरु धौम्य सौं, जातक कर्म करवाइ॥१६॥
गौ सुवर्ण भुवी अस्व गज, उत्तम भोजन रु अन्न॥
करत भये राजा तबै, इतौ पुन्य हो प्रसन्न॥१७॥
पुत्र होत हैं सौइ समैं, कहिये तीर्थ समांन॥
तातैं ताहि समैं उचित, करनौं सबकौ दांन॥१८॥
दान मान जुत लै सबै, द्विज पंडित तिहूँ बार॥
राजा सौं बोलत भये, वानी भलैं प्रकार॥१९॥
बंस तुम्हारौ काल करि, लग्यौ समापत हौंन॥
तुम्हहिं दियो करतार नै, बालक इहि समकौंन॥२०॥
तातैं ह्वै हैं बालकौ, बिस्नुरात याहि नांम॥
अरु यहि बालक होयगौ, अति वैस्नव निहकांम॥२१॥
सुनि अैसै ब्राह्मनन कै, बचन युधिष्ठिर राय॥
धर्म धारक अमृत बचन, बोलै आप सुभाय॥२२॥

॥ युधिष्ठिर उवाच॥

ज्यौं रिषि राज बडै भये, बंस हम्हारै मांहिं॥
त्यौं या बालक कौ सुजस, ह्वै हैं अथवा नांहिं॥२३॥

॥ ब्राह्मण उवाच॥

पालन करि हैं प्रजानन, कुं ज्यौं राजा इक्ष्वाक॥
ब्रह्म सहायक धरमधर, ज्यौं रघुपति सतिवाक॥२४॥
सरनाई रछक सुषदहुं, दाता सिवि सम ग्यांन॥
जिग्य करन नृप भरत सौ, ह्वै हैं यहै प्रमांन॥२५॥
हिमगिर सौं सुष सेव्य, य धन्वी पार्थ समांन॥
सागर समां गंभीरता, तेजहिं सु अग्नि प्रमांन॥२६॥
समताइ अज सम कृपा, सिव जीव आश्रय विस्नु॥
रंति देव उदारता सब, गुण समान श्री कृस्न॥२७॥
समर सिंघ ज्युँ पराक्रमी, छमा प्रथी ज्यौं सोभ॥
सत्य सेवक प्रह्लाद ज्यौं, कृस्न भक्ति हींय गोभ॥२८॥
नृप जजाति सौं देषिय, अति उदारता मांहिं॥
धरम धीर दानी बडौ, बलिसम दूजो नांहिं॥२९॥
अस्वमेध करि हैं केई, और बडन की सेव॥
ह्वै है सुत इह राज रिषि, सबलहि है सुभ भैव॥३०॥
चलि है जे मारग बुरे, तिनहिं भलै समझाय॥
दयाधारि हिय देयगौ, मारग सुभजु लगाय॥३१॥
कलि निग्रही करता इहै, कारण प्रिथ्वी धर्म॥

थापि कलौं हरि कीरतन, तुच्छ जाणि सबै धर्म॥३२॥
तछक रूपि मृत्यु कौ फिरि, लहिहैंहीं रिषि श्राप॥
राज साज परित्याग करि, लैहैं अनसन आप॥३३॥
श्री सुक सौं सुनि भागवत, लहिहैं आतम ग्यांन॥
गंगा तटि तजि देहहिं फिरि, पै हैं मुक्ति निदांन॥३४॥
कहि बिनय जुत नृपति कौ, जोतिषी कोविद विप्र॥
बहु पूजा कौं पायकैं, गृह गवनें तैं छिप्र॥३५॥
नांव परीछित यौं भयौ, ताकौ सुनिये हेत॥
प्रभु दरसन कियै गर्भ मधि, निरषै ताहि सचेत॥३६॥
सुकल पछि ससिहिं उदय ज्यौं, बडौ भयौ सौ बाल॥
कुल लछिनउ सीषत भयो, छत्री धरमं कै ष्याल॥३७॥
अस्वमेध जिग्यहिं करन कौं, मतौ युधिष्ठिर कीन॥
पैंधन नाहीं गेह मैं, भो चित चिन्ता लीन॥३८॥
प्रभु आग्यां सौं तिहिं समैं, राजा कै चहुँ बीर॥
उत्तर दिस तैं धन बऊत, ल्यायै महा सधीर॥३९॥
तिहिं धन सौं रचि सौंज नृप, जिग्य तीन कियै फेरि॥
तबै पधारै कृस्न जू, अति हित कैं उर झेरि॥४०॥
रहे कितै दिन तांह प्रभु, फिरि नृप आग्यां पाय॥
भयै पधारत द्वारिका, जादव संग लिवाय॥४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

(विदुरजी के उपदेश से धृतराष्ट्र और गांधारी का वनगमन)

॥ सूत उवाच ॥

निकस गयै हैं विदुर जु, तीरथ करन सनांन॥
रिषि मैत्रेय मिलाप करि, सीषे आतम ग्यांन॥ १ ॥
पहलैं तौ मैत्रेय सौं, विदुर प्रस्न बहू कीन॥
उत्तर रीषि मैत्रेय नैं, कछूक प्रस्न कौ दीन॥ २ ॥

चौपाई - पूर्न भक्ति तिहूँ तनकहिं मांहीं। विदुर हदै प्रगटी चित चांहीं॥
तासौं सबै संदेह मिटाये। बहुरी हस्तनापुर कौं आये॥ ३ ॥
इन्हकौं आये लषि कैं राजा। भायन जुत लै सकल समाजा॥
धृतराष्ट्र अरु युयुत्सू संजय। कृपाचार्य गांधारी कुंतिय॥ ४ ॥

दुपदी सुभद्रा उत्तरा किरपिय। पुत्रनि जुत कुटंब की सब तिय॥
मिलै विदुरकौं सामुहँ धाई। प्रान समुषी ज्यौं इंद्री जाई॥ ५॥
मिलत विदुर सौं विधिवत भाई। चलैउ अश्रु सुष कै सरसाई॥
नृपति युधिष्ठिर आसन दीनां। पूजा भलैं विदुर जु की कीनां॥ ६॥
भोजन जबै विदुर जू लैकैं। आसन बैंठेउ निस्चल ह्वै कैं॥
तबै विदुर सौं राजा बोलै। नमित बचन अमृत अमोलै॥ ७॥

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

विदुर पलै हम्ह कृपा तुम्हारी। कबहुँक सुधि हूँ करत हम्हारी॥
विष अरु अगनि आदि विपतिनि तैं। तुम्हीं रिच्छा कीनी सबहिनि तैं॥ ८॥
तीर्थ छैत्र बड तुम्ह किहूँ भाई। सेवन किय सौकहौ सुनाई॥
तुम्ह तौ तीर्थ रूप हौ आंपू। बसत हृदै हरिहरन सँतांपू॥ ९॥
जिन तीर्थन तुम्ह करौ सनांना। होत पवित्र जु सोई सथांना॥
जादव बंसी बंधू जु हम्हारै। तिनकै प्रभू श्रीकृस्न मुरारै॥ १०॥
तैं सब कुसल सहित द्वारावति। बसत निरंतरहिं आनँद जुत अति॥
देषैं सुनै हौंहि तुम्ह तइसैं। हम्ह सौं कहौ सकल विधि जइसैं॥ ११॥
ऐसैं वचनहिं युधिष्ठिर कै सुनि। तीरथ बातूं कही सबै गुनि॥
अरु जो जादव कुल छय छायौ। सौ नहिं क्यौं हूँ विदुर जितायौ॥ १२॥
जादव छय जौ सुनैं जूधिष्ठिर। तौ अतिही दुष पै हैं दुस्तर॥
विदुर याहि गति हियउ म्हैं लहीं। अप्रिय बातननि तातैं कहीं १३॥
नृप अति आदर विदुरहिं दये। विदुर कितक दिन तिहीं हित छये॥
धृतराष्ट्र कौ भलौ करन कौं। अंध हीये कौ दुष्ष हरन कौं॥ १४॥
विदुर जु धर्मराजा अवतारा। मांडवि रिषि कैं श्राप प्रकारा॥
सूद्र जनम दासी सुतहिं भये। सत वर्षन लौं नर तनूंहिं ठये॥ १५॥
तबलौं पितरौ अर्यमा नामां। जम की ठौर रह्यौ जम धामां॥
दंड देत पापिन कौ जु भयौ। जम कारिज सब उनहीसु ठयौ॥ १६॥
नृपति युधिष्ठिर भायन जु जुक्ता। लगै राज भोगनहिं अघ मुक्ता॥
सावधान सब कारज माहीं। भयो परीछित पोता ठाहीं॥ १७॥
ऐसैं नृपति युधिष्ठिर आदी। मग्न सबै ही संसार अनादी॥
बऊत काल यौं भयो बितीता। विदुर भयै लषि समयो भीता॥ १८॥
सबकौं काल निकट लषि आयौ। धृतराष्ट्र कौ ग्यांन सुनायौ॥
गृह तैं बेगै निकसौ राजा। आयो निकट काल दुष साजा॥ १९॥
जाकौ जतन न कछु जग माहीं। आयो काल निकट सब ठाहीं॥
प्राननि हूँ कौ काल हरत हैं। काहू तैं नहिं नैंक डरत हैं॥ २०॥
भाई सुहृद पुत्र सब तैंरै। मारै गये काल कै घैरै॥
तरुन अवस्था वृथा बिताई। वृद्ध अवस्था हूँ अब आई॥ २१॥

अरु तुम्ह रहत परायै घरमैं। मानत हौं तामैं का धरमैं॥
या प्रानी की जीवन आसा। ताकौ कबहुँ न होत विनासा॥ २२॥
भीम अनादर सौं तुहि भोजन। देत सुषाय जियत है तो तन॥
तुम्ह जिनी पंड सुतनि विष दीनौं। लाषा गृह मैं दाह जु कीनौं॥ २३॥
द्रौपदी कौं वैसौ दुष दयौ। तिनकौ राज छिनाय जू लयौ॥
अंन तुम्हहीं वै पांडव देतहिं। रहनौं भलौ नहिं बिनू हेतहिं॥ २४॥
तू नृप जीवौ चित्त विचारै। तौ तन गिर्‌यौ चहत निरधारै॥
बिना काम कौं जब तन देषैं। भगवत भजन न होत सुपेषैं॥ २५॥
तब गृह कौ त्यागन करिजांई। लोकनि सौं नहिं होय जताई॥
सो वहि पुरुष जु धीर कहावै। तासौं धीर्ज्ज भलौ बनि आवै॥ २६॥
अरु जो काहू कै सु कहेतै। कैं अपनै हीय चित्त चहेतैं॥
धरि हरि ध्यानहिं बिरकत होई। लै सन्यास नर उत्तमहिं सोई॥ २७॥
अबै तुम्हहिं उत्तर दिसि छिपि चलौ। समयो आयो यांहि अन भलौ॥
सुनि धृतराष्ट्र विदुर कै बैनहिं। काटि नेह बंधन लहि सु चैनहिं॥ २८॥
गृह तजि चल्यौ भई त्रिय साथां। विदुर अंध कौ पकर्‌यौ हाथां॥
तिहूँ हिमाचल और हीं गयै। ठौर इकंतहिं बसत तांह भयै॥ २९॥
लगै बिरकतनि बह ठांह भली। सस्त्र लागै ज्यौं सूरनहिं रली॥
इत गृह माहिं जुधिष्ठिर राजा। प्रातहि नित्य नेम करि काजा॥ ३०॥
बिधिवत होमजु अग्नि मधि करिकैं। धर्म रीति मैं भलैंउ समुरिकैं॥
प्रिथ्वी गाय तिल सुबरन दानहिं। दयो द्विजन कौं जुक्त विधानहिं।॥ ३१॥

दोहा - **गांधारी धृतराष्ट्र कौं, राजा करन प्रनांम॥**
गृह भीतर आये तबै, वै न लहै उहँ ठांम॥३२॥
तांह संजय बैठे हुतै, कहै नृपति तिहुँ बैन॥
दुषित होय कैं सोच करि, अति चित पाय अचैन॥३३॥
हे संजय दृग हीन वृध, म्हेरैं पिता समान॥
ते धृतराष्ट्र कहां गयै, तुम्ह सौ कहौ बषांन॥३४॥
अरु गांधारी विदुरहू, निकसि गयै किहिं ठोर॥
हम्हहिं कहौ समझाय तुम्ह, यहि सबही बुधि जोर॥३५॥
स्त्री संजुत धृतराष्ट्र कछु, हम्ह अपराध विचार॥
गिरि न परे कहुँ गंग बिचै, समझि न परत प्रकार॥३६॥

चौपाई - राजा पांडु हम्हारै ताता। हुव पर लोक काल किय घाता॥
तबै विदुर धृतराष्ट्र हम्हारी। रछया करत भये विधि भारी॥ ३७॥
तै वै कहाँ गये ह्वै हैं अब। संजय कहियै सोचि भेदू सब॥

॥ सूत उवाच ॥

बचनहिं जुधिष्ठिर कै सुनि संजय। बोल्यौ नाहिं धृतराष्ट्र दुषमय॥ ३८॥

धरि हरि ध्यांन पौंछि आँसू फिरि। बोल्यौ नृपसुँ छाती दृढ़ करी ॥

॥ संजय उवाच ॥

हे राजा हौं जानत नांहीं। वै तिहुं कांहँ गये किहुँ ठांहीं ॥३९॥
धृतराष्ट्र जू विदुर गांधारी। मो सौं बात कही न बिचारी ॥
तुंबर संगी लियें तिहूं बारा। आयै नारद परम उदारा ॥४०॥
तिनकी पूजा करि फिरि बोले। दुष कपाट हिय जरें सु षोले ॥

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

विदुर धृतराष्ट्र अरु गांधारी। कहाँ गये मुनि कहौ बिचारी ॥४१॥
षेवटउ करै सिंधु ज्यौं पारा। त्यौं मो दुष तें करौ उधारा ॥

॥ नारद उवाच ॥

किहुँ कौ सोच नृपति मतिठानौ। जगत सबै ईस्वर बस जानौ ॥४२॥
इंद्रादिक सुरहूँ जाकैहिं बस। नेति नेति कहत निगम जू जस ॥
काल देत प्रानीन मिलांई। देत सु किहूँ समैं बिछरांई ॥४३॥
जइसैं वृषभ रसी इक माहीं। बांधि राषियै कारिज ठाहीं ॥
त्यौं ही वेद पंथहिं मैं प्रांनी। राषै बांधि प्रभू जग मांनी ॥४४॥
जइसैं केउ प्रकार षिलौना। इकठैं कर राषै नर छौना ॥
कबहुँक सब न्यारै करि देतहिं। त्यौं प्रानिन प्रभु कुटंब समेतहिं ॥४५॥
तनू अनित्य है आतमा नित्या। सोच काल कौ करि नहिं चिंत्या ॥
तातैं नृप तूँ दुष मति करै। सोच वृथाहिं चित उन्हकौ धरै ॥४६॥
या कारनहिं अग्यांन विबसिता। ताकौ छोडिउ जानि कैं असता ॥
कृपन अनाथ आसिरैं म्हेरै। तै वरतैं कइसैं दुष घेरैं ॥४७॥
काल कर्म गुनहिं कै आधीना। पंचभूत तनहिंलषौ प्रवीना ॥
यहि प्रानी पुनि अपनै काला। लहि न बचाय सकै सुष साला ॥४८॥
अहि कै मुष मूसौ ज्यौं सोचै। आपन छुटै का बंधुनि मोचै ॥
ज्यौं लघु जीवनि बिचू संसारा। बड़ै जीव करि जात अहारा ॥४९॥
हथधारि भषै बिनु हथवारै। पगधारि भषै बिनु पगवारै ॥
एक एक कौ भछन जो ठयौ। सोई प्रभु की इच्छा बस भयौ ॥५०॥
हे नृप वे प्रभु माया करिकैं। या जग रहै रूप बहु धरिकैं ॥
कालरूप ह्वै असुरनि मारन। प्रगटे भुव सुरकाज सुधारन ॥५१॥
सो हरिकाल रूप निरधारा। चहत तुम्हारौ कर्‌यौ संघारां ॥
अरु धृतराष्ट्र विदुर गांधारी। गये हिमाचल जहँ हिम भारी ॥५२॥
सप्त रिषिन के आश्रमहिं जाहाँ। पहुँचै वै तीनौंहुं सु ताहाँ ॥

जुदे जुदे रिपि आश्रम साता। सात प्रवाह गंगहिं सरसाता॥ ५३॥
धृतराष्ट्र करि गंग असनांना। होम करत करि जलहीं पांना॥
अब उनकै कछू इच्छा नांहीं। प्रानायाम करत उहि ठांहीं॥ ५४॥
इंद्री जीति ध्यांन जो हरि धारि। मनकै मैल करैहिं निरवारि॥
जीवहिं ब्रह्म रूप पहिचांन्यौ। माया धंध झूठ सबै जांन्यौ॥ ५५॥
जइसैं फूटि जात सु घट सबै। नभ दीरघहिं नभ मिलित सु तबै॥
तइसैं ही छूटैं सब देहा। जीव ब्रह्म मैं मिलैं अछेहा॥ ५६॥
धृतराष्ट्र कै अैसौं ग्यांन। प्रगट्यौ मिटिगौ प्रकृति गुमांन॥
इंद्री मनहिंआहार जीति कैं। रहै जु हैं अब वृच्छ गैति कैं॥ ५७॥
तातैं उहाँ जाय तुम्ह राजा। विघन करौ मति उन्हकै काजा॥
पंचम दिवस आजू कै छेहा। धृतराष्ट्र तजि देहै देहा॥ ५८॥
भस्म होयी है जोग अगनि करि। गांधारी हूँ जरिहैं सत धरि॥
विदुर दुहुँन की यहि गति लषि तहँ। सेवन करि रहिंहें जु गंगा जहँ॥ ५९॥
इतनौ कहि नारद तिहुँ बारा। गयै स्वर्ग हरि गुन आधारा॥
राजा सुनिकैं उन्हकै बैनां। टार्‌यौ अपनौ सोक अचैनां॥ ६०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृत त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

(अपशकुनों से युधिष्ठिर को शंका तथा अर्जुन का द्वारिका से लौटना)

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई - अर्जुन बंधु आपनै देषन।अरु श्री कृस्न चरित्र सु पेषन॥
गयै हुतै द्वारावति ठांहीं।भये कितै दिन आयै नांही॥ १॥
असुगन बऊत लषे नृप जबै।जानी बुरी काल गतिहिं तबै॥
रितु सुभाव उलटै सब देषे।अधिक सोच राजा मन लेषे॥ २॥
काम क्रोध अति झूठ नरन मैं।पापही कौ उद्दिम मनुषन मैं॥
कपट बहू व्यौहारहिं माहीं।मित्रन हूँ मैं सत्य जो नाहीं॥ ३॥
मात पिता सुहृद जन भाई।त्रिया पुरष रिस रहै मचाई॥

ऐसें असुगन देषिहिं जुधिष्ठिर। भीमसेन सौं बोलै नृपवर॥ ४॥

॥ युधिष्ठिर उवाच॥

हरि कै दरसन मिलन जु बंधुन। हम्ह द्वारावति पठयौ अर्जुन॥
सात महीना भये न आयौ। सो यहि कहा हेत नहिंपायौ॥ ५॥
नारद जू हम्हसौं यौं जु कही। कालहि निकट तुम्ह आयौ सही॥
बात वही अब देत दिषाई। बिकट काल गति कहीं न जाई॥ ६॥
अंतरध्यांन हौंहीं प्रभू जबै। हमरौ हूँ हैं कालहिं सु तबै॥
संपति सुराज प्रान कुल नारी। अरिजय रन जिहिं कृपामुरारी॥ ७॥
प्रिथ्वी देह दिव असुगन होतू। जिन सौं भय कौ होत उदोतू॥
फुरकत बाम जंघ भुज नैनां। कंप हृदै मधि होत अचैनां॥ ८॥
स्यारी सूर्य सामुहें बोलैं। अरु मुष मैं तैं अगनि जु षोलैं॥
स्वान सब्द मोही सामुंहँ करैं। असु गज सबै रुदनूं बिस्तरै॥ ९॥
जे पसु चहियै दाहिंन औरा। तै आवत हैं बायें मोरा॥
अरु जै और चाहियै बांमा। जै सब होत दाहिनी ठांमा॥ १०॥
मृत्यु दूत कपौतउ जुइ कोलै। अरु कागहिं निसि समैं जु बोलै॥
उलूक दोयी सब्द निसी करैं। बिस्व सूनिताई चाहनि धरैं॥ ११॥
पूछल तारौ चमकैं नभ मैं। मोर कुलावण भय ह्वै सब मैं॥
दिसा धुँधरी लषि भूचाला। होत सब्द नभ बिनू घन जाला॥ १२॥
दरसत वज्रपातहिं सौं होतू। घटी कांति रवि होत उदोतू॥
चलत पवन अति लोहू बरसत। हुव अंधियार समरग्रह सरसत १३॥
भुव नभ बीचु अगनि सी जगी। वन उपवन की सोभाहिं भगी॥
सज्जन मन नद नदी सरोवर। मैले हौय रहै हैं धर पर॥ १४॥
करियत होम अगनि कै माहीं। बुझी रहत सो बरत जु नाहीं॥
बछरा नहिं पीवत हैं छीरां। पय न देत गो दृग मधि नीरां॥ १५॥
बैल न हरषित मनहिं मलीनां। ग्राम नगर हूँ सोभा छीनां॥
सुर प्रतिमा रोवत ह्वै चंचल। चलत पसीना अंगनि जु पल पल॥ १६॥
इन असुगननि परत है जांन। बिना कृस्न पद प्रिथी निदांन॥
जो वै प्रभु भये अंतरध्यांन। भुव सुहागकौ मिट्यौ प्रमांन॥ १७॥
यौं नृप सोच तिहिं समैं पायै। अर्जुन द्वारावती तैं आयै॥
अर्जुन नृपकै पायनहिं परै। बिकल भयै मुष दृग जल ढरै॥ १८॥

सोभ रहित अर्जुन नृप देषिहिं। बोले नारद वचन सपेषिहिं॥

॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

हे अर्जुन द्वारावती देसा। हैं जदुकुल सब कुसल बिसेसा॥ १९॥
सूरसेन नाना जु हम्हारै। ते तुम्हहूँ सुष सहित निहारै॥
बंधुनहिं जुत मामा वसुदेवां। वे हैं आछैं कुसल अभेवां॥ २०॥
देव की आदि मामी सातूं। बंधु पुत्रनि जुतहिं हैं कुसलांतू॥
उग्रसेन देवक तुम्ह दैषे। प्रदुमन अनिरुध गदबल पैषे॥ २१॥
हृदिक अक्रूर जयंत कृतवर्मा। सत्रजित सारण दृढनिज धर्मा॥
सांबु सुषेन जु चारुदेस्न जुत। रिषभ आदि हैं सुषी कृस्न सुत॥ २२॥
जसोदा देवकी मातूजन। बलभइया श्रीदामां मित्रगण॥
ऊधौ जू श्रुत देव सुनंदा। नंद और जादवनि अनंदा॥ २३॥
हरिबल भुज बल जादव सबहीं। हम्ह सुधि तै कहूँ करत कि नहीं॥
भक्त बछल श्री कृस्न सु छोहैं। द्वारावति आनंदाति सोहैं॥ २४॥
लौकनि मंगल आनंदहिं होतउ। प्रगटे हरि बलदेव समेतउ॥
जिन कृपा तैं अति आनंदति। जादव सबै बसत द्वारावति॥ २५॥
सोरह सहस नारी हित धरै। जिनी चरनन की सेवा करै॥
इंद्रलोक कै जोगहिं कलपतरु। तिनकौं आदि करत भुव ऊपरु॥ २६॥
अरु जु बासब की सभा सुधर्मा। तामैं बैठतहिं अति सुष कर्मा॥
निर्भै जादव कृस्नं कृपा करि। अैसै करत सुभोग अवनिपरि॥ २७॥
हे अर्जुन है तो सब कुसलांतं। तेरौ तेजहिं रह्यौ क्यौं जांतं॥
बहु दिन रहन द्वारका सु ठयौ। तातैं तोउ अपमान कि भयौ॥ २८॥
कै दुरवचन तोहि किहूँ कह्यौ। तातैं तेज जात तोउ रह्यौ॥
कै तैं किहुँ कछु दैनौं कीयौ। सौ तौं बहूरि नाहिं न दीयौ॥ २९॥
विप्र गाइ सरनागतहिं कोई। बाल बृध रोगीजन होई॥
तू न करि सक्यौ तिनकी रछ्या। तेज गयो तातैं परतछ्या॥ ३०॥
बिनु अपराध निकट त्रिय आई। कै तिहूँ त्याग कियौ न सहाई॥
कै लघुजन सौं तू जुध मांहीं। हार्‌यौ तातैं तेज सु नांहीं॥ ३१॥
कै वृद्ध बालक बिनु भोजन लिय। कै कौ और बुरौ कृत तो किय॥
कै सम प्रान मित्र बिनु जो भयौ। तांतै तेज घट्यौ दुष छयौ॥ ३२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्दसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पञ्चदसोऽध्याय: ॥

(श्री कृष्ण विरह व्यथित पांडवों का परीक्षित को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना)

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई – नृप संदेह कै अैसैं बैंन। अर्जुन सौं बोलै बिनु चैंन॥
अर्जुन कृस्न विरह मैं दुष दह्यौ। प्रबल सोक बस तैं लटिरह्यौ॥ १ ॥
सूक्यौं मुष सोभाउ मिटि गई। धरत ध्यांन मति तनमय जु भई॥
सोकहिं थांभि पैं कष्ट अतिरिकैं। आंसू पौंछत नीठि समरिकैं॥ २ ॥
सष्य मित्रतादिक अति सुषदाई। सबैं बतैं प्रभु की सुधि आई॥
अति उतकंठा सु विरह बढायौ। अर्जुन हीयैं अधिक दुष छायौ॥ ३ ॥
गद गद कंठ होय मुष सुं बोल्यौ। अर्जुन राजा सौं दुष षोल्यौ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

हे माराज ठग्यौ हरि मोकौं। महा प्रबल दुष कइसैं रोकौं॥ ४ ॥
मोप्रताप हौ सरस सुरन तैं। सो प्रभु हर लीनौं मो तन तैं॥
जिहँ प्रभु कैं छिन मात्र वियोगू। जगत बुरौ लागत ज्यौं रोगू॥ ५ ॥
जइसैं प्रानन बिना सरीरा। काहू विधि नहिं रहत सधीरा॥
द्रुपदिउ स्वयंवर बिचि जिन आश्रय। सभा लषत म्हैं लह्यौ भलैं जय॥ ६ ॥
बड्डे बड्डे राजा आयै जहँ। तिनकौ तेजहिं हरयौ म्हैं तहँ॥
बेध्यौ मछहीं द्रौपदी बरी। तै अबै मोहि गयै ठगि हरी॥ ७ ॥
षांडव बन मैं अगनिहिं दीनां। बासव सौं जुध करि जय लीनां॥
सभा बनाय दानव मय दई। यै बातैं प्रभु कै बलसुं भई॥ ८ ॥
भाई भीम कृपा हरि पांई। दस हजार गज बल सरसांई॥
जरासंध कौं मारतहुँ भये। नृपति छुडाय बंधन तैं दये॥ ९ ॥
भैरव तबै चढावन काजा। कियै हुतै गहि इकठै राजा॥
कृस्न कृपा तैं जिग्य तिहारैं। आयै हे नृप भेंटनि धारैं॥ १० ॥
द्रौपदि केस गहन दुष्टन कियै। तिनकौं हंति अरि नारिन दुष दियै॥
अैसी विधि हम्ह पलटौ लीन्हौ। सौ सब प्रभु कृपाबल चीन्हौं॥ ११ ॥
दस सहस्त्र सिषिनजुत दुर्वासा। जैंवन आयें बिच बनवासा॥
हम्ह कौं आश्रय उरि भय भारी। धर्यो ध्यांन हरिकौ सुषकारी॥ १२ ॥
करत चिंतबन श्री कृस्न पधारै। सहजहिं काज हम्हारे सारै॥
साक पत्र भोजन करी स्यांमं। रिषिगन त्रिपति कियै तिहुँ ठांमं॥ १३ ॥
जिन प्रताप सौं म्हैं जुध मांहीं। महादेव सौं हार्यौ नांहीं॥
सिवू प्रसंन तामधि ह्वै लीनां। सस्त्र पासुपत मोहिंकौं दीनां॥ १४ ॥
जिहिं बल स्वर्ग लोक माहिं जाई। थित हौतो इंद्रासनूं पाई॥
स्वर्ग लोक मांहि म्हैं जातौ जब। रहतैं सुरगन मो आश्रय सब॥ १५ ॥

जिहीं प्रताप सौं अैसौ भयौ। सो हरि अबै मोकौं ठगि गयौ॥
गृह विराट जिहँ कृस्न कृपाबल। जुध जीत्यौ हूँ हति कौरव दल॥ १६॥
बैरनिकैं सु पाग सिर पर तैं। हौं उतारि ल्यायौ निज करतैं॥
अरु श्री हरि निज भारत मांहीं। भये सारथी मो रथ ठांहीं॥ १७॥
द्रौण सह्लि भीषम से वीरा। बडे कितै जो धारन धीरा॥
तिनकौं मोहि दिषावन मिसकरि। तिनकी आयु प्रभूलीनी हरि॥ १८॥
भीष्म द्रौण कर्ण अरु अस्वथामा। सह्लि बाल्हीक जैद्रथ सुसूर्मा॥
उन्ह जोधा निजू सस्त्र चलायैं। मो तन तिनतैं कृष्ण बचायैं॥ १९॥
आयु मन उतसाह बल उन्हकैं। सब छीनैं तौडे ज्यौं तिनकैं॥
बऊत सस्त्र असुरन कैं तीछन। नहिं लागै प्रह्लादहि मधि तन॥ २०॥
त्यौंही हरि की कृपा प्रतांपू। मो तन भयौ नहिं अस्त्र संतांपू॥
जिहँ प्रभू चरन मुक्ति कैं लियैं। सेवत साधहिं सदा चित लियैं॥ २१॥
देषौ म्हैं जू कुमति मति हीनौं। अैसे प्रभुहिं सारथी कीनौं॥
अरु श्री कृस्न कृपातैं जबै। रथहिंतैं उतर्यौ देषत तबै॥ २२॥
बान गंग तीरथ जु प्रगटायौ। प्यासै अस्वनिहुँ नीर पिवायौ॥
कोहु सत्रु मुहि मार नहिं सकै। रहैहिं सत्रुगनहिं सबि थकि जकै॥ २३॥
हे अर्जुन कुरू नंदन जू सषा। यौं हंसि बोलत हौ हितू पषा॥
अब वै वचन हृदे मो मांहीं। देत महादुष भूलत नांहीं॥ २४॥
भोजन बैठन अरु सज्या सैन। इक ठौंर करतै हरि सुषदैन॥
अैसी क्रिपा करत हैं मोपैं। कही जात नाहिं न है सोपैं॥ २५॥
अरु म्हैं हूँ जबे होई निसंक। कहतौ सषा रु मित्र भरि भरि अंक॥
बांके वचन केहुँ विधि कहतौ। संगी बंधु हितु भाव चित चहतौ॥ २६॥
मो अपराध सहैं प्रभु अैसैं। सहते वै मित्र मित्र कैं जइसैं॥
तिहँ प्रभुसौं म्हैं जब भो हीनां। गोपिन बसन छीन मो लीनां॥ २७॥
द्वारावति तैं तियगन बाला। हौं लै चल्यौ जबै इहिं काला॥
जइसे नारिहूँ लूटैं कौंय। सौ भई मो मैं अति अनहोंय॥ २८॥
वहि गांडीव धनुष वइहै बांनां। वहि रथ वइहै हौं नहिं आंनां॥
बडै बडै नंवतै नृप आंनि। पराक्रमी मोकौं पहिचांनि॥ २९॥
पैं उन्ह प्रभु बिना सब बल गयौ। कारिज सिद्ध कछू नाहिंन भयौ॥
बिनु श्रीकृस्न मिटी सब कांणि। तियं कांगा लुटि अर्जुन वइ बांणि॥ ३०॥
भूत द्रव्य कोउ पाबौं जइसैं। ऊसर बीजन ऊगै तइसै॥
ज्यौं बिनु अग्नि होम जो नर करै। तासौं काम कछू नाहिं सरै॥ ३१॥
तुम्ह जिनीं बंधुन की कुसलातहिं। मोकौं पूछत हौ सुष बातहिं॥
तिनकौं लागि विप्रन कौ श्रापू। करन लगे जुध आपही आपू॥ ३२॥
पीयैं वारुणी भयैउ सुमत्त। करिकै जुध पायै सबै पंचत्व॥

चारि पांच जादव कौउ बचै। सो कछु ईस्वर ईच्छा सचै ॥३३॥
लरै मिलै औसर लहि प्रांनी। हरि अैसी ही लीला ठांनी ॥
जइसैं जल मैं छोटे मच्छिनं। बड़े मच्छ करिजात है भच्छिनं ॥३४॥
बडै मच्छ मिली आपस माहीं। सब लरिलरि ही कैं मरि जाहीं ॥
लघु नृप हुतै जितै इहिं भूपर। ते मरवायें जदुकुल कैंकर ॥३५॥
जोरावर जादव हुवै सबै। आपसहि मैं हतवायै अबै ॥
अैसें प्रभु प्रिथवी कौ भारा। दूरि कीयौ सबहिं निरधारा ॥३६॥
ताप हृदे के टारन हारै। अैसै कृस्न प्रानतैं प्यारै ॥
तिनकै वचन जबै सुधि आवत। मन हराय उर दुष सरसावत ॥३७॥

॥ सूत उवाच ॥

यौं हरि चरन कमल कौ ध्यांना। अर्जुन किय बुद्धि बिसोक निदांना ॥
तासौं बुद्धि सात्विक निरमल ह्वै। धरी भक्ति मन मैल दूरि रष्वै ॥३८॥
गीता ग्यांन समैंहिं संग्रामा। कह्यौ हुतौ हरि अति अभिरांमा ॥
भूल्यौ हौ जौ समैं प्रभांवा। ताकौ भयौ फेरि प्रगटांवा ॥३९॥
ब्रह्मरूप कौ जानि विचारा। मार्यौ सोक सबै निरवारा ॥
मिटी अविद्या गयौ मोहू टरि। तन अभिमान हुँ दीनौं परहरि ॥४०॥
प्रभु की रीति यहै श्रवननि सुनि। अरु छय भयौ यादवनि कौ गुनि ॥
नृपति जुधिष्ठिर सुरग राह कौ। करत भयै चित चलन चाह कौ ॥४१॥
सुनि प्रभु अरु जादव गति बातां। तुरत तज्यौ तनउ कुंती मातां ॥
जो सरूप धारि कैं करतारा। दूरि कर्यौ प्रिथिवी कौ भारा ॥४२॥
फिरि वही रूप गुप्त अपनौं करि। अरु निज लोक पधारे श्री हरि ॥
कांटै सौं कांटौ जु निकारी। कांटौ सोऊ दीजै डारी ॥४३॥
नट अनैक ज्यौं रूप बनावै। छोडिहु देत बार नहिं लावै ॥
त्यौं अनैक प्रभु धरि अवतारा। एकहूँ रहत फेरि किहुं बारा ॥४४॥
अंतरध्यांन भये हरि जब तैं। महा कुटिल कलि प्रगट्यौ तब तैं ॥
देस नगर तन अपनैं मांहीं। लष्यौ जुधिष्ठिर कलि सबै ठाहीं ॥४५॥
तासौं क्रोध लोभ अरु कांमा। झूठ अधर्म बढ्यौ भुव ठांमा ॥
यहि लषि निकसन कियो मनोरथ। बिनु कृष्ण गृह रहनौं दुष पथ ॥४६॥
राज हस्तनापुर सबै साजा। देत परिछित कौं भयौ राजा ॥
बज्रनाभू अनिरुध कौ नंदा। राज्य दयौ मथुरा सुष कंदा ॥४७॥
होम जू करि प्रजापति नांमा। अग्नि जु पान कीनौं तिहिं ठांमा ॥
डारै भूषन वस्त्रहिं उतारी। ममता अहंता बंधनहिं टारी ॥४८॥
वाणी कौं मन मैं धरि दीनां। मन कौं कियौ प्रान मैं लीनां ॥
प्रानहिं अपानहिं मध्य मिलाई। अरु अपानमृति मध्य बसाई ॥४९॥
मृत्यु पंच भूतहिं मधि मैली। पंचभूत त्रय गुण बिचू भैली ॥

त्रिगुण प्रकृति माहीं संचारी। बहु प्रकृति आत्मा मैं धारी॥ ५०॥
वलकल पहरै सुलप अहारा। साध्यौ मौन षोलि दिय बारा॥
जड बौरौ सौ अपनौं रूपा। दिषयौ जगहिं जुधिष्ठिर भूपा॥ ५१॥
कछु देषैं न सुनै बोलैं मुष। पांचौं बीर चलै उत्तरहिं रुष॥
धृतराष्ट्र गांधारी आगैं। गयै हुतै गृह तजि जिहिं जागैं॥ ५२॥
करतैं हदै ब्रह्म कौ ध्यांना। पांचौं बीर चलै सु ग्यांना॥
प्रिथवी बीच ठौर ही ठौरां। फैल्यौ देषत कलिजुग तौरां॥ ५३॥
पांडव अपनी मृत्यु जानि जिय। कृस्नं चरन कौ ध्यान हदै किय॥
प्रभू कौ ध्यांन धरत बढि भक्ति। निरमल होई गई बुधि सक्ति॥ ५४॥
हेमाचल मैं छोडि सरीरा। पहुंचै भगवत लोक सधीरा॥
जो गति दुरलभ वेदनि गाई। सो गति पांचौं पांडव पाई॥ ५५॥
छेत्र प्रभास विदुर तजि देहा। गयै धर्मपुर अपनैं गेहा॥
पति गति लषि द्रौपदी तन तज्यौ। हरिपुर पहुँची जग दुष भज्यौ॥ ५६॥
याहि भांति सब गयै समाहीं। कृस्न ध्यांन करि गहि सरणाई॥
इहै पांडवन की गति कौई। कहैं सुनैं तिहँ सदगति होई॥ ५७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा बृजदासी कृते पंचदशोऽध्यायः ॥ १५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(परीक्षित की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वी का संवाद)

॥ सूत उवाच॥

चौपाई - परम भागवत नृपति परीछित। करन लगै भुव रच्छ्या जुत सत॥
जनमत नृप गुन विप्रनहिं कहै। तै सब आछी बिधि नृप गहै॥ १॥
उत्तर कुंवर जु सुता ईरावति। बरी परीछित सोमनि भावति॥
जनमेजय जुत सुत चार भये। अति ही सुबुद्धि निज कुल गुनमये॥ २॥
अस्वमेध त्रय जिग्यहिं गंगतट। कीनैं नृप बहुसामग्री थट॥
प्रतछि देवता बैठे जाहीं। कृपाचार्य विधि कीनौं तांहीं॥ ३॥
सूद्र जाति कौ नृप कै रूपा। प्रगट भयौ भुव पैं कलि भूपा॥
वृषभ गाय कौं लातनि मारत। गह्यौनृपति दिगविजै बिहारत॥ ४॥

॥ सौनक उवाच॥

कलि कौं गह्यौ परीछित कइसैं। सो विधि कहौभई हैं जइसैं॥
सूद्रवृषभ गो कौ दुष दीनौं। कहौ वहै अधरम जो कीनौं॥ ५॥

कृस्न कथा जो यामैं होई। हम्हहिं कहौ तौ रषहुँ न गोई ॥
अरु हरि जु पद पंकज कै मधुकर। श्री कृस्न प्रेम मैं मत्त भक्तवर ॥ ६ ॥
पुनि तिनहूँ कौ जस जा मांही। ह्वै तौ हम्हहुँ कहौ इहिं ठांहीं ॥
और कथा सौं वृथा आयुबल। यौं ही जात न होत कछू भल ॥ ७ ॥
मनुषन कीउथोगी आयुर्वल। बडौ मृत्यु डर घटत सु पल पल ॥
तातैं हम्ह यहि जिग्यहीं माहीं। कर्यौ आवाहन जम इहिं ठांहीं ॥ ८ ॥
मृत्युहिं जिग्य मैं बैठयौ जबलौं। कोऊ इहाँ मरैं नहिं तबलौं ॥
रिषिनि बुलाये तुम्हकौं यांतैं। हरि गुन अमृतहिं प्यावौ जांतैं ॥ ९ ॥
मनुप लोक याहि धन्य कही जै। तामैं हरि जस अमृत पीजै ॥
निसा सैंन दिन विरथां काजै। मूरष आयु जात नहिं साजै ॥ १० ॥

॥ सूत उवाच ॥

नृपति परीछित जुत सुष साजा। करत देस कर जांगल राजा। ॥
तिन यहि सुनी देस हम्ह मांहीं। कलिजुग आयो डरत सुनांहीं ॥ ११ ॥
तव कर धनुष उठाय नृपाला। चल्यौ दिगविजै कौ ततकाला ॥
रतनंनू मंडित सुसिंदन साजै। सिंघ धुजा तिहूँ ऊपर राजै ॥ १२ ॥
कारे अस्व लागे हैं जाकैं। बैठ्यौ नृप मनुवर सौ भाकैं ॥
संगहिं सैन चतुरंगनि लैकैं। चल्यौ काज नृप दिसा बिजै कैं १३ ॥
केतुमाल भद्रास्व अरु किंपुरष। भारतउ उत्तर कुर लौं धरपष ॥
इन्ह षंडन कै राजा जीतिई। सब पैं दंड लियौ ज्यौं रीतिई ॥ १४ ॥
अरु जिन षंडन मैं पुनि जो गयै। पांडव सुजसहिं सुनत नृप भये ॥
अस्त्र अस्वत्थामाहुँ कैं तैं हरि। करी गर्भरछया करुनाहिं करि ॥ १५ ॥
द्रुपदी कुंती कै हित हूँ हरी। पांडव संग ही भारतहिं लरी ॥
पंडुनि यदुवनि कैंउ हितू बहा। कृस्न भक्ति पांडुनि कैहूं महा ॥ १६ ॥
यह हूँ कथा आपनी राजा। सुनत भयो मुष लोक समाजा ॥
जै जन जस मुषहिंगावत भयै। तिन लषि नृपति मोद मन छयै ॥ १७ ॥
भूषन वस्त्र बऊत धन दीनां। काहू भांति कमी नहिं कीनां ॥
बसै पांडवनि कै हरि गेहां। भये दूत सारथि वस नेहां ॥ १८ ॥
तिनकी मुष स्तुति धरतै स्यांमा। अरु प्रभु करतै जिनहिं प्रनांमा ॥
अैसी बातैं सुनि सुनि भूपा। कृस्न भक्ति उर बढी अनूपा ॥ १९ ॥
पुरुषन कौ वर्तत नृप मारग। सबही भांति धर्मकौ पारग ॥
अचिरज निकट तिहँ समैं अैकां। राजा देष्यौ सहित विवेकां ॥ २० ॥
बैल सरूप धर्म इक पाई। अरु प्रिथवी धारैं तन गाई ॥
सोभा हीनूं ताकौ लषि धर्म। पूछत हूँ भयौ बिपति कै मर्म ॥ २१ ॥

॥ धर्म उवाच ॥

हे भुव तेरैं नहिं कुसलाई। मुष मलीन घटि कांति लषाई ॥

कछू दुष्य हैं मन मैंहिं तेंरैं। कैं कोऊ बंधु नहिं तौ नेंरैं॥ २२॥
कै म्हेंरें इक पगहिं रहि गयौ। ताकौ दुष तेंरैं उरहिं छयौ॥
सूद्रराज कैइ तो मधि करै। जाकौ सोचहिं अधिक चित धरै॥ २३॥
देवतान कौं जग्य ना होंही। जासौं अति दुष बाढ्यौ तोही॥
कै नहिं वरषा तोपरि होतहिं। तासौं तो हिय सोच उदोतहिं॥ २४॥
कै निज तीय अरु बालक रच्छ्या। करनन राषत है कोउ इछ्या॥
कै नाहिं विप्र कुसल आचारहिं। नाहिं तिनमैं विद्या अधिकारहिं॥ २५॥
कै राजनि द्विज गौ सेवा तजि। कै कलिकाल करि छत्री बुधि भजि॥
कै उत्तम द्विज हैं आदर बिनूं। तूँ दूषित भई निरषत तिनूं॥ २६॥
कै छत्री देसन कौंउ लूटत। तिहिं दुष सौं तेरौ हिय तुटत॥
कै संसारी भोगनहिं माहीं। लगि नर भक्ति करत जग नाहीं॥ २७॥
तिनकौ तू चित सोच करत हैं। तातैं दुष उर अधिक भरत हैं॥
कै हरि दूरि करन तौ भारा। लियौ हुतौ तो पैं अवतारा॥ २८॥
तै प्रभु अब भये अंतरध्यांना। तिहँ दुष तैं तू विकल निदांना॥
अपनैं मन कौ दुष कहि मोही। जाकै मिटै बढै सुष तोहि॥ २९॥
कै कोउ अबै समैंहिं पांय। सुष सुहाग तो गयै पलांय॥

॥ पृथिवी उवाच॥

तूहीं सब जानत ही है धर्म। मोहिं सौं कहा पूछत है मर्म॥ ३०॥
तेंरैं हुतै चार पग पूरैं। सौ इक रह्यौ तीन हुव दूरैं॥
सत्य दया संतोष अरु सरलता। बल पवित्रता धीरज रु समता॥ ३१॥
सांति त्याग तपस्या सहि रहनौं। सास्त्र श्रवन इंद्री मनहिं गहनौं॥
तेज ग्यांन बैराग सांतता। सब सुधि रषन कांति कोमलता॥ ३२॥
अपबसता अईस्वर्य्य सूरता। बिनै अस्थिरता अरु प्रगल्भता॥
वोज चातुरी भलौ सुभावा। कीर्तिमान अहंकार न भावा॥ ३३॥
उपरति सर्धा धरैं जगदीसा। भगबल सह जुत गुण चालीसा॥
इतनैं गुन केऊ गुन औरां। तिन जुत सदा कृस्नं जगमौरां॥ ३४॥
श्री निवास पूरन सब गुनकरि। अंतरध्यांनभयै अैसैं हरि॥
तातै सोच जगत कौउ करौं। तेरौ अपनौं हियहिं दुष धरौं॥ ३५॥
अरु रिषि पितर देवता साधा। वर्णाश्रम दुप इनहूँ अगाधा॥
ब्रह्मागन सुरगनहूँ जु जितै। तपस्या करत श्री लीयैं तितै॥ ३६॥
सो लछमी जिहँ प्रभु कै पाया। सेवत रहत प्रीति सरसाया॥
संष चक्रहीं अरु गदा सु पद्म। औरहिं चिन्ह जै सोभा सद्म॥ ३७॥
जो हरि पद पंकज मंडित तिनकरि। तै जब परत रहत है मो परि॥
बडौ गर्व बाढ्यौ हौ मोही। कही जात नहिं बात सुतोही॥ ३८॥
तै अब अंतरध्यांन भये हरि। महा दुष्य मोहिं सोच तिहिं करि॥

जिन प्रभु मारि असुर नृप अबैं। म्हेरौ भार उतारयौ सबैं ॥३९॥
तो चहुँ पग किय फेरि सथापन। जदुकुल मांझ प्रगट हरि आपन ॥
प्रभु कौ विरह सहि सकैं कौनूं। पैं कछु बस हरि ईच्छा सौंनूं ॥४०॥
मंद हंसनि बोलनि चितवनि जु करि। मान त्रियंन कौ हरत भये हरि ॥
मो मैं उन पद प्रगटत है जब। होते मो तन मैं जु पुलक तब ॥४१॥
अैसैं धर्म प्रिथवी बतरांहीं। तट सरस्वति कुरुछेत्रहिं ठांहीं ॥
तांह परीछित राजा आयौ। तम टारत ज्यौं रवि जग भायौ ॥४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(राजा परीक्षित द्वारा कलियुग का दमन)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - निकट सरस्वती सूद्र इक, राजा चिन्ह प्रकार॥
गाय वृषभ दोऊन कौं, करत जु दंड प्रहार॥ १॥
वृषभ रंग उज्जल महा, मूत्र करत भय पाय॥
अति कांपत पग येक यौं, लष्यौ परीछित राय॥ २॥
गाय दुषित रोवत अधिक, बछरा ता संग नाहिं॥
त्रिन चाहत है लटि रही, हतत सूद्र पग ताहिं॥ ३॥
कंचन रथ पैं नृप चढ्यौ, बोल्यौ धनुष चढाय॥
पूछन लागै सूद्र कौं, कौ तू पाप सुभाय॥ ४॥
बलधरि म्हैरे राज मैं, निबलनि हतत कुपात॥
नटज्यौं नृप कौ रूप किय, सुद्र करम दरसात॥ ५॥
अर्जुन अरु श्री कृस्न कौं, अंतरहित तूहि जांनि॥
दुष भलैनकौं देत तूं, मारन जोगि निदांनि॥ ६॥

चौपाई - बैलहिं यौं पूछत नृप भयौ। तेरै इक पग क्यौं रहिजु गयौ॥
तूं कौ है है हैं कौ देंवहिं। लषी दसा तुव कहिये भेंवहिं॥ ७॥
मौ भुज बल धरनी दुष हरयौ। सबहीं ठौर दिगविजै करयौ॥
तामैं तुम्ह बिनु लषै न औरहिं। आंसू डारत काहू ठौरहिं॥ ८॥
सुनि तूं सुरभि गाय कै नंदा। सोच करै मति तजि दुष दंदा॥
हे गउ मति रोवै तूं माता। म्हैं हूं दुष्टनहिं कौं भय दाता॥ ९॥
जाकै राजप्रजा कै बीचूं। देत साध कौं दुष नर नीचूं॥
जाकी जातहिं आर्वल कीरति। अरु ईस्वर्यताइ जुक्त भली गति॥ १०॥

धर्म इहै राजनहिं कौं कहियै। दुष जु दुषी कौ टार्यौ चहियै॥
यातें सूद्र दुष्टन कौं मारी। तुम्ह दुष हौं अब दैतहुं टारी॥ ११॥
अहो बैल तेरै तिहुँ पाई। कौंनै तौरै मोहि बताई॥
कृस्न भक्त नृप राजहिं माहीं। तो सौं दुषी हौं कोउ नाहीं॥ १२॥
जिन तेरे पग तोरे तीनौं। तिनी कलंक हम्ह कुलकौं दीनौं॥
कौ बह हौं नहिं जानौं वाकौं। मोहि बताय देहुं तुम्ह ताकौ १३॥
निर अपराधी जन कौं कोई। काहू बिधि दुषहिंदेतो होई॥
ताकौं सबहिं ठौर दुष होई। मो करि झूठ न समझो कोई।॥ १४॥
दुष्टनि दंड दीयै बहु भांई। सत पुरसनिहुँ कै आनंद थांई॥
निर अपराधिन कौ दुष देतहिं। तिहूँ भुज षंडों मूल समेतहिं॥ १५॥
राज दंड दुष्टनी के तांई। धर्म सथापन इहि जू कहांई॥
नृप कौ धर्म वेद यहि कहै। धरम धरन की रछयाहिं चहै॥ १६॥
जै बिनुहिं विपति कुमारग चालै। तिनहीं दंड दे धर्म ही पालै॥
अैसें नृप के सुनिकैं बैनहिं। बोल्यौ वचननि धर्म सुष दैनहिं॥ १७॥

॥ धर्म उवाच॥

हे नृप तुम्ह हौहिं पांडव बंसी। सुजसहिं रावरौ जगत प्रसंसी॥
अैसौ वचन अभय कौ दाता। तुम्ह कौं कहनौं जोगि सुग्याता॥ १८॥
बडे तुम्हारे पांडव जु भये। जिनकै बसि श्री कृस्न जू ठयै॥
दूत सारथी हरि ह्वैहिं रहै। अैसै सुभग गुन पांडव लहै॥ १९॥
जो कौ प्रानी कौं दुष ठानत। ताकौ नहचैंहूं नहिं जानत॥
इक दुष दाता कौ न बतावै। कहन भेद सो कइसैं आवै॥ २०॥
कौ आतम ही हेतु बतावत। कौं दईव कोउ कर्महिं गावत॥
कौ दुषदाता कहत सुभांवु। कौ ईस्वर कौ कहत उपांवु॥ २१॥
सौ वहि ईस्वर सुनन कहन मैं। आवत नाहिंन कछू लहन मैं॥
तातैं जौ कौ सुष दुष देतहिं। तुम्हहिं विचारौ ग्यांन समेतहिं॥ २२॥
हम्ह किहुं कौं अब तुम्हहिं बतावैं। दुष सुष हेत न निरनौं पावैं॥
अैसें वचन धर्म कै सुनि सबै। अपनैं मन निस्चै करिकैं तबै॥ २३॥
राजा वचनहिं धर्मसौं बोल्यौ। दीरघ बोझ वृषभ कौ तोल्यौ॥
हे धर्मज्ञ धर्म कै सुबोलहिं। तूं बौलत है समझि सतोलहिं॥ २४॥
तूंही है धर्म मर्म हम्ह जान्यौं। रूप वृषभ कौ तै यहि ठान्यौं॥
मारन बारैकौ तू यातैं। नहिं न बतावै जानी बातैं॥ २५॥
जो गति जगतहिं अधर्मी लहै। कहन हारहू पावै सु वहै॥
बातैं प्रानिन कै चित औरहिं। अरु वचनिन मैं औरहिं तौरहिं॥ २६॥
दैवी माया कीहुं गति किहूँ। जानी नाहिं बिच लोकनि तिहूँ॥
तपस्या सौच दया सतिभावउ। यै चारौं हैं तेंरै पावउ॥ २७॥

गर्ब संगम दये जोई तीनन। है अधर्म कें अंसहिं नवीनन॥
तिनकरि तेरैं तीनौं पायनि। टूटि गयै तोकौं दुष भायनि॥ २८॥
येक सत्यकौ पाव सुइ तेरैं। सौ रहि गयौ अबै इहिं बेरैं॥
झूठ सहित कलिजुगहिं अब इहै। ताहू पगकौं तौरयौ चहै॥ २९॥
अरु यहि गाय प्रिथ्वी हैं सही। हम्ह मनमैं हुँ निस्चै याहिं लही॥
भार दूरि यहि कर्यौ हुतौ हरि। मंडित ही प्रभू चरनन चिन्ह करि॥ ३०॥
अब यहि रोवत सोच करत है। अति दुष प्रभु कैं विरह भरत है॥
कहत प्रभु मोहि छोडि पधारै। सूद्रभोगि हैं मो यहिं बारै॥ ३१॥
धर्म प्रिथ्वी कौं धीरजहिं दीनौं। समाधान राजा अति कीनौं॥
फेरि नृपति कलिजुग कौं मारन। कीनौं तीछन षड़ग निकारन॥ ३२॥
अैसौ लषिकैं कलिजुग डरयौ। राज चिन्ह तजि पायनहिं परयौ॥
अपनैं बंस सुधर्म मग चालत। राजा सरनागत कौं पालत॥ ३३॥
पांय पर्यौ कलि लषि नहिं मार्यौ। क्रोध टारि मुष वचन उचार्यौ॥

॥ राजोवाच॥

अर्जुन बंसी जोइ नृप होयहिं। सरनागत कौं हतैं न कोयहिं॥ ३४॥
तातैं हौं तोकौं नहिं मारत। कुल मरजादा हिये विचारत॥
तूंहिं जो अधर्मी धर्महिं जु दहै। देस हम्हारै मैं मतिहिं रहै॥ ३५॥
जब तैं तेरौ आवन जु भयौ। अधिक अनर्थ जगत मैंहीं छयौ॥
झूठ अधर्म लौभहिंअरु चोरी। दंभ दारिद्र नीचता जोरी॥ ३६॥
पाप कलह जुत इतनी बातैं। प्रगट भईजग तौ सरसातैं॥
ब्रह्मावर्त छेत्र कुरुषेतहिं। याहि तीरथ धर पुन्य समेतहिं॥ ३७॥
प्रभू कै लियै जिग्य की ठौरहिं। सब कौ करत साध सिरमौरहिं॥
तूं अधर्मी कौ संगी जु कहियै। तेरौ रहनौं इहिं नहिं चहियै॥ ३८॥
इन्ह ठौरन प्रभु पूजन करियै। तैरी संगति कौंउ परहरियै॥
पूर्व मनोरथ प्रभू सब करैं। सबकै साछी मायाहिं परैं॥ ३९॥

॥ सूत उवाच॥

सूत कहि राजा षड़ग लीनैं। कलि सौं बचन कहै रिस भीनैं॥
तबै कांपि कलियुग थरहरयौ। बोल्यौ बचन महाभय भरयौ॥ ४०॥

॥ कलिरुवाच॥

हे राजा सब प्रिथी तिहारी। हौं कहँ रहौं सोच यहि भारी॥
रहौं जांह हूं तांह तुम्ह कहौ। तो क्यों रहत निकासनहिं चहौ॥ ४१॥
तातैं दीजै ठौर बताई। बसौं तिहारी आग्यां पांई॥

॥ सूत उवाच॥

कलि जबहिं यौं प्रार्थना कीनीं। चार ठौर राजा तिहुँ दीनी॥ ४२॥
मदिरा जूवा हिंसा नारी। दई ठौर यै चारि बिचारी॥

कलियुग कीय प्रार्थना फेरी। हेम ठौर तब नृप दिय हेरी॥ ४३॥
जांह सुवर्न तांह सब उतपांत। त्रिय मद जूवा जीव की घांत॥
यै सबही इक ठौरे होतू। बहुरि बैर हूं करत उदोतू॥ ४४॥
कलिकौ नृप दिय पंच सथांना। बसन लग्यौ तजिकैं अभिमांना॥
इन्ह ठौरनि मैं लषि उतपातू। तजै धर्मधारीन विष्यातू॥ ४५॥
अरु राजा तौउ पालक धर्महिं। तिन्हैं तजै तौउ बचै सुकर्महिं॥
तूटै तीनौं धर्म कै पांईं। तै राजा पुनि दये बनांईं॥ ४६॥
वृषभ गायकौ समाधान करि। नृप आयै घर चित आनंद धरि॥
अबहूं वाही नृपही कैं अंस। करतहिं राज भूव सहित प्रसंस॥ ४७॥
ऐसौ भयौ परीछित राजा। राषैउ धर्म प्रिथ्वी कै काजा॥
राजनि मैं रिषि राज परीछित। कुरु बंसीनिकी श्री जुत सोभित॥ ४८॥
चक्रवर्ती हथनांपुरहिं राजा। महाभाग जस जगी अवाज़ा॥
जप तप तीरथ कौं विसवासी। गौ ब्राह्मण रु त्रियन दुषनासी॥ ४९॥
यो अभिमन्यु सुत यसौ प्रभावा। माराज परीछित लौ स्वभावा॥
जिहँ राजा कै राज्यहिं माहीं। दिछा जिग्य लही तुम्ह मन चाहीं॥ ५०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदसोऽध्यायः ॥ १७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टादसोऽध्यायः ॥

(राजा परीक्षित को ऋषि श्रृंगी का शाप)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - कृस्न कृपाकरि जो नृपति, बच्यौ गर्भ बिच मात॥
ब्रह्म अस्त्र निष्फल भयौ, मिट्यौ महा उतपात॥ १॥
ब्रह्म श्राप सौं प्रगटभौ, तच्छिक कौ भय आय॥
परम भक्त अरु धीर नृप, डर्यौन हरि चित लाय॥ २॥
संग छोडि सब ठौर तैं, प्रभु सरूप मधि पागि॥
श्री सुक सौं सुनि ग्यांन नृप, गयौ मुक्ति तन त्यागि॥ ३॥
कथा अमृत भगवान कौ, पान करै जौ कोय॥
अरु सुमरन उन चरन कौ, जिनकै निस्चै होय॥ ४॥
तिनकौं मरन हुँ कै समैं, डर उपजत कछु नाहिं॥
चित थिर करिकैं आपनौं, प्रभू सरन ठहराहिं॥ ५॥
नृपति परीछित जबहिं लौं, राज जगत बिच कीन॥
कलि आयोभुव पैं तऊ, तबलौं रह्यौ सुदीन॥ ६॥

भये हुतै श्री कृस्न प्रभु, जबतैं अंतरध्यांन॥
कलिजुग ताही दिवस तैं, प्रगट्यौ हौ भुवथांन॥७॥
कलि कौं नृप मारयौ नहिं, येक बडौ गुन देषि॥
अघ न लगै मनसौं कर्यौ, लागत पुन्नि बिसेषि॥८॥
कलिजुग अग्यांनीन कौं, दुषदाताहिं निर्द्धार॥
ग्यांनिन तैं डरपत रहै, जानि बोध बल भार॥९॥
नृपति परीछित कौ यहै, सुभ चरीत्र सुषदाइ॥
जामैं हरिहूँ की कथा, हम्ह कहि तुम्हहिं सुनाइ॥१०॥
प्रभू गुन कर्मनिकी कथा, ते सब कहबै जोग्य॥
चाह धारि चित जो सुनैं, पावैं सुष आरोग्य॥११॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

इहि सुनि रिषि बौलत भयै, बैठि आय तुम्ह सूत॥
कृस्न कथा अमृत हम्हहिं, तुम्ह जु कहत अदभूत॥१२॥
इहाँ जिग्य कै धूम तैं, हौय रहै हम्ह स्यांम॥
तिनकौं हरिपद कमल रस, तुम्ह प्यावत अभिरांम १३॥
साधन कै सतसंग सम, सुष नाहिंन कहुँ और॥
राज स्वर्ग अरु मुक्ति जुत, जितनें गनिये ठौर॥१४॥
कर्ता पालक सबैनि कै, प्रभु मूरति आनंद॥
सुनि तिन कथा न फिरि सुनैं, अैसौ को मति मंद॥१५॥
नेतिनेति भाषत निगम, गुन गोविंद अनंत॥
सिव विधि हूँ नाहिंन लहत, जाकै गुन कौ अंत॥१६॥
तातैं तुम्ह हौ वैसनव, कहिये हरि की गाथ॥
हम्हकौं अति इच्छा बढी, सुजस सुनन कौं नाथ॥१७॥
बैस्नव राजा परीछित, बुद्धिवंत सुबिसेस॥
दीनौं श्री सुक देव जू, जाहि ग्यांन उपदेस॥१८॥
जासौं हरिकै चरन मधि, मिलै परीछित राय॥
सौ अब तुम्ह हम्ह सौं कहौ, तत्व ग्यांन समझाय॥१९॥
हरि चरित्र जुत जोग जुत, अति ही परम पवित्र॥
नृपति परीछित कौं कह्यौ, अैसौ सुभग चरित्र॥२०॥

॥ सूत उवाच ॥

सूत कहत है जनम हम्ह, सफल भयो है आज॥
यहि भवसागर तरन कौ, पाई सुषद जिहाज॥२१॥
कुल जु हम्हारौ उच्च नहिं, अब भौ भाग उदोत॥
तुम्ह सै साध प्रसंग तैं, नीच हुँ ऊँचे होत॥२२॥
जो हरिनांम उचारहीं, सो पवित्र ह्वै जात॥

गुन अनंत भगवान कै, सो अनंत विष्यात॥२३॥
तातैं वा भगवान सम, नहिं कोऊ निरधार॥
उन्हसै वे ही है प्रभू, दीनबंधु करतार॥२४॥
करत जु लछमी प्रार्थना, ब्रह्मादिक सब देव॥
तिनकौं तजि जिन चाह नहिं, करत प्रभू की सेव॥२५॥
गंगा तिनकैं चरन तै, प्रगटी परम पवित्र॥
ताकौं सिर राषत सदा, सिव गुन जानि विचित्र॥२६॥
जिनकी हरि सौं प्रीति है, तै त्यागत संसार॥
अरु ममता तजि देह मैं, चित धरि तत्व विचार॥२७॥

चौपाई - तुम्ह हम्ह सौं पूछी हरि जु कथा। अपणी बुधि सम कहिहौं सु तथा॥
जो नभकौ है बडौहिं प्रमांन। उड़त जु षग निजू सक्ति समांन॥ २८॥
येक दिनां सु परीछित जु राजा। निकसै मृग सिकार कै काजा॥
भयौ सुइभूषौ प्यासौ तहीं। सोचत बन मैं जल हौहिं कहीं॥ २९॥
रिषि समीक कै आश्रम जु गयै। ध्यांन मगन तिहिं देषत भयै॥
इंद्री मन बुधि प्रांन समेतहिं। बसि कीनैं मुनि धरि हरि हेतहिं॥ ३०॥
जागत सपन सैंन तैहिं परैं। तूर्य्या नांम जो अवस्था धरैं॥
मानहुँ ब्रह्म रूपही है रिषि। तांह परीछित नृप अैसौ दिषि॥ ३१॥
जटा धरैं वोढैं मृगचर्महिं। ध्यांन मगन और न सुधि मर्महिं॥
तासौं राजा माँग्यौ पांनी। ध्यांन मगन रिषि सुनी न बांनी॥ ३२॥
नृपकौं आसन अर्घ न दीनौं। राजा भयौ क्रोध आधीनौं॥
अरु कछु भूष प्यास बस न रह्यौ। तातैं कोपू विप्र पर चह्यौ॥ ३३॥
धनुष नोक पैं लै अहि मरयौ। रिषि ग्रीवा धरि आवन करयौ॥
यहि संदेह नृपति मन धरयौ। झूंठ कि साँच ध्यांन मुनि करयौ॥ ३४॥
सो करिबै कौं ठीक परीछित। डारयौ सरप कंठ रिषि अनुचित॥
जो कहुँ ह्वै हैं झूठौ ध्यांना। तौ यहि परि हैं चौंकि निदांना॥ ३५॥
ता रिषि कौ बालक रिषि श्रृंगी। षेलत हुतौ जु बालक संगी॥
तिन यहि बात सुनी श्रवनन जब। बोल्यौ महाकोप करिकैं तब॥ ३६॥
राजा भये हुँ अधर्मी देषौ। अति ही करत अकर्म अलेषौ॥
है छित्री विप्रनकैं ही दांसां। दैन लगे दुष अधिक सत्रांसां॥ ३७॥
द्विजन करन रषवारी आपन। द्वारपाल कीनैहुँ छत्रीगन॥
पुरुषै ज्यांकै विप्र चरन गहै। गौ ब्राह्मण कैं सुरछकहिं रहै॥ ३८॥
वे अब स्वान समांन सु पापी। पातर जूठत आतम थांपी॥
अंतरध्यांन भये प्रभू आपू। दैन लगै षल जगहिं संतापू॥ ३९॥
तबतैं दुष्टनि दंडहिं दाता। नाहिंन कोऊ भुव विष्याता॥
अब म्हैं दुष्टनि दै हौं दंडहिं। म्हेरौ बल सब लषौ अषंडहिं॥ ४०॥

यौं कहि वचन बालकन रिसभरि। नदी कौसिकी कौंजल करधरि॥
अधिक क्रोध श्रृंगी उरहिं ठयौ। श्राप देतू राजा कौं भयौ॥ ४१॥
जिन जग मरजादा तजि दीनां। द्रोह पिता म्हेरै कौं कीनां॥
सातैं दिवस क्रोध सरसांई। तछिक ताहि जरावनी जांई॥ ४२॥
यौं दै श्राप पिता पैं आयौ। पिता कंठ अहि लषि दुष पायौ॥
तांह पुकारिकैं रोवन लग्यौ। सुनि रिपि जोग नींद तैहिं जग्यौ॥ ४३॥
नेत्र षोलिकैं मुनिवर देष्यौ। मृतक सर्प अपनैं गर लेष्यौ॥
सर्प कंठ तैं रिषि करि दूरी। मन मैं क्रोध न आन्यौं मूरी॥ ४४॥
पूछत भयौ पुत्रहीं सौं जबैं। तूं क्यौं रोवत सो कहउ सबैं॥
सुत नृप की कहि बात सुनाई। श्राप भेद हूँ दयो जताई॥ ४५॥
राजा श्राप जोग्य नहिं रह्यौ। ताकौं पुत्रहिं श्राप दृढ कह्यौ॥
तातैं रिपि राजी नाहिं भयौ। ताकै मन मैं अति दुषहिं छयौ॥ ४६॥
कह्यौ पुत्र थोरे अपराधा। दयौ दंड तै अधिक अगाधा॥
और मनुष सम नृप न जानियैं। राजनि मैं हरि अंस मानियैं॥ ४७॥
नृपति प्रजाभय आप हरत है। सबनि अरथ कल्यांन करत है॥
जब हरि अंस जात नृप रहि हैं। लोक बहू विधि तैं दुष लहि हैं॥ ४८॥
राजा बिनु सब लोग डरैंगे। आपस मैं लरि आप मरैंगे।॥
वहि सब पाप हम्हहिं कौं ह्वै हैं। सो अघ कौन भांति तैं जैहैं॥ ४९॥
आश्रमवर्ण धरमं बिनू राजा। जात रहेंगै सब सुभ काजा॥
विषै भोग ही मैं नर रहि हैं। मनुष स्वांन बंदर व्रतहिं गहि हैं॥ ५०॥
बडौ धर्मधर नृपति परीछित। चक्रवर्ती जस जुत वैस्नवमित॥
जगत राज रिषि जाकौ नांमा। अस्वमेध कर्ता गुन धांमा॥ ५१॥
राजा भूष प्यास दुषहिं दह्यौ। ताकौ श्राप नहि दैनौं कह्यौ॥
अरु जामैं नाहिंन कछु पांपू। अति वैस्नव जिहँ उर हरि जांपू॥ ५२
तिनकौ इहै अलप बुधि बालक। किय अपराध छमहुँ जग पालक॥
हरि कै भक्तन कौं जो कोई। करै अनादर निज मति षोई॥ ५३॥
अरु मारैं तिनकौं झिझकारैं। वे पलटौ चित मैं न बिचारैं॥
रिषि यौं वचन पुत्र हीं सौ कह्यौ। नृप अपराध क्रोध नहिं गह्यौ॥ ५४॥
करयौ पुत्र नृप कौ अपराधा। सो पछितावो करत अगाधा॥
साधुनकी यहि रीति सदाई। रहत सदा सबकौं सुषदाई॥ ५५॥
उन्हकौं जो कौ सुष दुष दैहीं। वै कछु मन मैं मानि न लैहीं॥
जुदो देह तैं आपहिं जानत। प्रकृति भेद कौं नहिं मन आनत ॥ ५६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अष्टदसोध्यायः ॥ १८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथएकोनविंसतितमोऽध्यायः ॥

(परीक्षित का अनशन व्रत और श्री शुकदेव जी का आगमन)

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई – कियौ विचार नृपति गृह आयै। कियो नीच कृत म्हैं बन जायै॥
बिनु अपराध द्विजहिं दुष दयौ। ब्रह्म अवग्या करि अघहिं लयौ॥ १ ॥
ह्वैगो कष्ट जो मोकौं कोई। उपजै भली बात तौ होई॥
तातैं हौं डरि मन मैं हेरी। अैसौं काज करौं नहिं फेरी॥ २ ॥
बल भंडार राज सबै म्हेरौ। भस्म हौहुँ द्विज श्राप जु प्रेरौ॥
जातैं गौ द्विज देवन माहीं। म्हैरै दुर्बुधि उपजै नाहीं॥ ३ ॥
ताही समैं सुनत नृप भयौ। श्रृंगी रिषि नैं श्राप जू दयौ॥
दिवस सातवैं तछक डसिहैं। नृप जानी सब भावी बसि हैं॥ ४॥
श्राप नृपति आछौ करि जांन्यौ। मन मैं कछू बुरौ नहिं मांन्यौ॥
अब या सब जग तैं वैरागा। उपजैगौ म्हैरै बड भागा॥ ५ ॥
पहलै ही संसार तजनूं कौं। चहत रह्यौ नृप थिरकरि मन कौं॥
तामैं श्राप लग्यौ फिरि अैसैं। निद्रावस कौंऊ सज्या जइसैं॥ ६ ॥
राज छोडि अनसन व्रत लीनौं। कृस्नं चरन अपनौं चित दीनौं॥
नृप बैठ्यौ गंगातट जांई। सबै जगत जंजाल जु मिटांई॥ ७ ॥
तुलसी जुत हरिपद रज गंगा। जो राषत अपनै जल संगा॥
सो जिहिं हरिपद रजकैं वोकूं। करत पवित्र जू तीनौं लोकूं॥ ८ ॥
अैसी गंगा जू कौ सैवन। कौन ना करै समैं त्यागतै तन॥
अनसन व्रत लै यहि विचारकरि। गंगा तट बैठ्यौ सब परहरि॥ ९ ॥
जग अरु तीरथहुँ करन पवित्रहिं। फिरत भूमी मैं सबकै मित्रहिं॥
अैसै रिषिवर आयै तहँही। नृप गंगा तट बैठ्यौ जहहीं॥ १० ॥
अत्रि विसिष्ट अरु नारद व्यासा। कृपाचार्य्य भृगु ग्यांन निवासा॥
नेमी अरिष्ट अरु विस्वामित्रहिं। उतितथ पारासर चिवन पवित्रहिं।॥ ११ ॥
अंगिरा देवल अरु भारद्वांजा। कवष अगस्ति अरु लियै समांजा॥
इध्मबाहु मेधातिथि गौतमहुँ। परसराम पिपलाद रहित तमहुँ॥ १२ ॥
इंद्र प्रमद मैत्रेय सु औरब। आर्ष्टिषेण अरुपादिक यै सब॥
राजदेव ब्रह्म रिषि आयै सब। बिना भागियन कौं मिलनौं कब १३ ॥
तपस भेष मैं तिन नृप देष्यौ। गंगा तट जिनी आश्रम पेष्यौ॥
नमसकार तिनकौं नृप कीनौं। नम्र वचन कहि आदरहिं दीनौं॥ १४ ॥
रिषि सब आछैं बैठेउ जबै। बोल्यौ नृपति जोरि कर तबै॥

॥ राजोवाच ॥

म्हैं हूँ धन्य जगत कैं हिं मांहीं। मो सौं दूजो और कौ नांहीं॥ १५ ॥
तुम्ह से परम साध मो ऊपर। करत अनुग्रह जानिउ दीन नर॥

ब्राह्मन पाव धोय कैं जोजल। डारि देत गृह कै बाहरि थल॥ १६॥
हम्हसै जै नर ताहू ठौरा। ठाढे रहि न सकैं निस भोरा॥
हम्ह ता जलहूँ कै सम नाहीं। निर्दय धर्म हम्हारौ जु नाही॥ १७॥
म्हैं जग माहिं आसकतहिं रह्यौ। हरि करिकृपा हाथ मोहिंगह्यौ॥
श्राप दिवाय जगत छुड़वायौ। मो हिय मैं वैराग उपायौ॥ १८॥
म्हेरौ चित हरि चरनन मांहीं। अब लाग्यौ ह्वै कैं इक ठांहीं॥
श्री गंगा भगवति यौं जांनौं। हरिकै सरनै आयौ मांनौं॥ १९॥
जाकै द्रिढ़ हरि की सरणांहीं। ताकै कौभय उपजे नाहीं॥
तछक काटन कौ भय म्हेरैं। नाहिंन आवत हैं सो नेरैं॥ २०॥
तुम्ह मो कौं हरिकथा सुनावो। रिषिवर सब प्रभु कौ गुन गावो॥
हौं अब वर माँगत हौं येकू। प्रभू निबैहैं म्हैरी टेकू॥ २१॥
हरि हरिदासन मो सौं प्रीती। बढत रहौ नित अधिकी रीती॥
अैसैं कहि रिषिगन सौं राजा। सुषद वचन साधन निज काजा॥ २२॥
गंगा कै दछिन तट ऊपरहिं। उत्तर दिसकी बोरैं मुष करिहिं॥
कुस आसन पैंहिं बैठत भयो। राज सबै निज सुत कौहिं दयौ॥ २३॥
अैसी रीति नृपतिकी देषी। वरषै पुहप सूदेव बिसेषी॥
अस्तुति करि दुन्दुभि मुदित बजायै। नृपकौ सुजस देव मुष गायै॥ २४॥
जै रिषि बडडे पर उपगारी। आयै है जितनै तिहुँ बारी॥
मुदित होय तै नृप सौं बोलै। वचन सुधा तैं सरस अमोलै॥ २५॥
राजा तुम्ह वैस्नव हो लायक। कहत न अचिरज अैसै बायक॥
मिलन प्रभू सौं बडे तुम्हारे। तजि तजि राजनि बननि सिधारे॥ २६॥
फिरि रिषि आपस मैं बतरांहीं। सब मिलिकैं रहि हैं इहँ ठांहीं॥
यहि वैस्नव राजा जब ताईं। तन त्यागन करि हरि पुर जाईं॥ २७॥
अैसे वचन रिषिनकै सुनि सब। राजा पुनि बोलै उन्हसौं तब॥
हे ब्राह्मन तुम्ह वेद मूर्ति हौ। पर उपकारहिं करन पूर्ति हौ॥ २८॥
हूँ तुम्ह कौ पूछत यहि बाता। तुम्ह सो मोहि कहौ विष्याता॥
मृत्यु निकट जिहिं आई होई। ताकौ कर्तव्य कहियै कोई॥ २९॥
सुक आयै तबहीं तिहिं ठांहीं। फिरत फिरत प्रिथिवी कै मांही॥
जिनकै कोऊ ईच्छा नांहीं। मगन आतमा ध्यांन जु मांहीं॥ ३०॥
अति अवधूत रु दिगंबर जै हैं। फैली जटा महा छवि देहैं॥
बोरे सै लषि बालक संगा। वय किसोर रु कुमार सु अंगा॥ ३१॥
नैन बिसाल कमलदल मांनौं। अतिही बिसाल बष्य स्थल जानौं॥
सुंदर स्यांम मंद मंद मुसिक्यांते। लषिकै त्रिय मन मोहे जांते॥ ३२॥
लसत उदर पैं त्रिवली भांती। कृस्न देव की सी जिन कांती॥
रिषिवर सबै तिनकौं लषि गयै। आसन तैं उठि ठाढे जु भयै॥ ३३॥

नृप सुक पूजा विधि सौं कीनां। बैंठन कौ बड आसन दीनां॥
सोभित सुक रिषिगन मैं तइसैं। तारन कै बिचु चंदा जइसैं॥ ३४॥
श्री सुक मुनि ग्यांनी अभिरांमा। तिनकौं करिकैं नृपति प्रनांमा॥
हाथ जोरि पुनि बोलै बांनी। मधुर वचन कौमल सुषदांनी॥ ३५॥

॥ परीछित उवाच॥

आज कृतारथ भयो हूँ सही। तुम्ह दरसन पायो बिचू मही॥
तुम्ह से अतिथि हम्हारै आई। मोहि पवित्र कीयो रिषि राई॥ ३६॥
सुमरन करै तिहारौ कोई। तऊ पवित्र गेह तिहूँ होई॥
अर जु तिहारौ दरसन पावै। चरन धोय गृह मैं बैठावै॥ ३७॥
तौ पवित्रता अतिहि अधिकाई। सफल गेह नर जन्मू कहाई॥
हे रिषि बैठे निकट तुम्हारै। दूरि होत सब पातक भारै॥ ३८॥
आज प्रसंन भये प्रभु मो पर। तुम्ह दरसन दीनौं इहँ अवसर॥
प्रभू पाण्डवन कै हितकारी। मो उन कुल कौ जानि मुरारी॥ ३९॥
कीनी कृपा कृस्न करतारा। पाण्डव प्रीति निवाहन हारा॥
रहनहार तुम्ह तौ बीच हिं बन। कहाँ इन्ह समैं तिहारौ अबन॥ ४०॥
सो याहि प्रभू कृपा तैं भयौ। मोही पैं महा अनुग्रह ठयौ॥
बिनु प्रभु कृपा मरन की बैरा। सिध उदार आयै बिनु नैरा॥ ४१॥
परम सिद्ध प्रभु कृपा तैं आयै। अन्त समैं जू दरसन पायै॥
तुम्ह सब मुनि गुर हौ विष्याता। हूँ तुम्ह सौं पूछत इक बाता॥ ४२॥
या प्रानी कौं मरती बारा। कर्तव्य कहा सु कहियैं सारा॥
जो कछु सुननौं अरु जप करनौं। कहियै भेद जु है सुधि धरनौं॥ ४३॥
गो दोहन कौ लागत बारा। इत रहत तुम्ह गृही कै द्वारा॥

॥ सूत उवाच॥

सूत कहत सुनि नृप कै बैनां। बोलै श्री सुक मुनि सुष दैनां॥ ४४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अैकोन विंसतितमोऽध्यायः ॥ १९॥)

॥ इति प्रथम स्कन्ध संपूर्णम् ॥

(पोथी को संवत् १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री)

(कुल छंद १९७४ - छंद योगक्रम १२४४)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राजराजेश्वर राजा श्री राजसिंघजी की महाराणी जी श्रीमती ब्रजकुंवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी' कृत श्री मद्भागवत भाषा द्वितीय स्कंध लिष्यते ॥)

॥ द्वितीय स्कन्ध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(ध्यान विधि और भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन)

॥ मंगलाचरण ॥

❁ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ❁

छप्पय- जयति जयति सुकदेव, भैद भागौत प्रकासन।
नंदनंदन साछात, रूप रस ही कौ बासन॥
नगन मगन उनमत्त, सदा कैसौर सुंदर बर।
जीत कांम मद मोह, हियैं राजत लीलाधर॥
अतिदयाल बक्तानि मैं, गृही कलह उद्धार हितहुं।
ब्रजदासी कर वंदन करत, बार बार सिर लाय छितहुँ॥ १॥

दोहा- गुरु बृन्दावन राधापति, जय राधे जु उच्चारि॥
बरनौं दुतीय स्कंध हौं, निज मति कैं अनुसारि॥ २॥

॥ अथाख्यान ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

चौपाई - कहत नृपति सौं श्री सुक देवां। अति हि उत्तम तौ प्रस्न सभेवां॥
हैं सब लोकनि कौ हितू कर्ता। सबैहिं सराहत जो दुष हर्ता॥ ३॥
आत्म तत्व कौं जै नहिं विचारैं। प्रानी भूलि प्रकृति बिबहारैं॥
तिन्हकै सुनिवै जोग्य अनेकहिं। हैं संसारी बातैं जिते कहिं॥ ४॥
या मनुषि की आयुषहिं जैंती। वृथा जात है सब ही तैंती॥
निसकौं कबहूं सोय रहत हैं। कबहूँ विषै मोदहुँ गहत हैं॥ ५॥
दिनकौं द्रिव्य कमावन की चिंता। पौषण करन कुटंब कै निमिंता॥
अैसैं वृथा आयु नर जांई। झूठी माया मति भरमांई॥ ६॥
देह पुत्र त्रिया मिथ्या सबहीं। आपां कौं छ नांहिं याहि सहीं॥
तिय सुत याकै आगै मरहीं। पै परि कछू ग्यांन नहि धरहीं॥ ७॥
तातैं हे नृप जै भगवांनू। तिनहिं भजैं लहियै सुभ थांनू॥
तिहिं चरित्र ही जु श्रवननि सुनौं। उनहीं कौ सुमिरन उरहिं गुनौं॥ ८॥
गहि हरि सरन कीरतन जु करैं। तौ नरकौ सबैही भय टरै॥
सांष्य सास्त्र अरु योग सास्त्र फल। मनुष्य जनम कौ लाभ यही भल॥ ९॥

अंतकाल कैं समैं राषि सु बुधि। जो नारायन की धारैं सुधि॥
ग्यांनी विधि निषेंध तैहिं परैं। तेऊ हरि गुनहि मुष उच्चरैं॥ १०॥
बात पुरान भागवत की यहि। सो तुम्ह सौं हम्ह दीनी यहि कहि॥
व्यास देव सौं द्वापुर आदिक। पढ़यौ भागवत सकल अनादिक॥ ११॥
हम्ह तौ मांनहु पंथ कै मांहीं। लगै हुतै चित करि इक ठांहीं॥
पैं हरि गुन सुनि बीच भागवत। हर्यो गयौ चित लषि अदभुत मत॥ १२॥
तातैं हम्ह जु भागवत पढ़यौ। परम भक्ति मारग सौं मढ़यौ॥
राजा तूं है हरि कौ दासा। तौ हिय मैं प्रभु भक्ति प्रकासा॥ १३॥
तातै तोहि भागवत कहि हौं। तैरे हियकौ सब दुष दहि हौं॥
प्रानी कै किहूँ पुन्य उदोतू। सुनन भागवत श्रद्धा होतू॥ १४॥
तौ हरि भक्ति वेग प्रगटावै। तजि संसार परम पदहिं पावै॥
जो विरक्त सब जग सौं होई। चाह मुक्ति हौंन कौंउ कोई॥ १५॥
जो कहीं वस्तु कामना चाहीं। जे ग्यांनी तिन फल यहि कहांहिं॥
सौ हरि गुनकौं कीरतन करैं। यहि मत सबही सास्त्रजु धरैं॥ १६॥
वृथाहिं बहु दिन जीवत रहै। बै दिन कछू काम कैउ नहै॥
जो हरि भजन घरी है कीजै। सोई निश्चै भली जु कहीजै॥ १७॥
नृप षटवांग बीच द्वै घरी। करि हरि भजनूं मिलै पद हरी॥
राजा तौ आयुष दिन सांता। होय सुगति कीजै सो बांता॥ १८॥
अपनौं मरन निकट जब देषै। भय तजि नर वैराग सपेषै॥
तिय सुत अरु अपनैं तन मांहीं। ममता तनकौ राषै नांहीं॥ १९॥
गृह तैं निकसै लै संन्यासहिं। करै सनान तीर्थ कहुँ बासहिं॥
बैठे आसन पैं येकंतहिं। प्रणव मंत्र जप करें सुतंतहिं॥ २०॥
प्राणायामहिं करि जीतैं चित। इंद्री सु बसि करि राषै जो नित॥
चंचल मनकौं गहि सब भांई। प्रभु ध्यांन मैं देय लगांई॥ २१॥
येक येक प्रभु अंग सथांना। मन लगाय धारै तिन ध्यांना॥
रज तम गुन तैं बिगरि रह्यौ चित। अमल होत हरि ध्यांन धरत नित॥ २२॥
करैं धारणां प्रभुकी तातैं। मन कै मल मिटै सबै जातैं॥
प्रभू की करैं धारणा जबैं। भक्ति जोग उर उपजैंहि तबैं॥ २३॥

॥ राजोवाच॥

राजा बोलै फेरि यहै सुनि। भेद कहौ समझाय मोहि मुनि॥
यहि प्रानी मन बसि करि जइसैं। प्रभु की धरैं धारना कइसैं॥ २४॥
जासौं दूरि होय मन मैला। देहुँ बताय भलैं सो गैला॥

॥ श्री सुक उवाच॥

यहि सुनि बोलै श्री सुकदेवूं। कहत धारणा विधि कौ भेवूं॥ २५॥
बैठि सुदृढ है आसन ऊपरि। इंद्री जीति रु प्रानायाम करि॥

प्रभू कौ सरूप विराट स्थूंला। अपनौं मनहिं लावै तिहिं मूंला ॥ २६॥
अति दीरघ यहि रूप विरांटं। याही मैं सब जग कौ थांटं ॥
ब्रह्मांड सु अंडा आकारा। सात आवरन कौ विसतारा ॥ २७॥
रूप विराट प्रभु कौ जानैं। तिहीं धारना मैं चित आनैं ॥
है धारनां ध्यांन तैं आगैं। जिहँ विचार मैं मन अनुरागैं ॥ २८॥
अबै विराटकौ बर्ननहुँ सुनौं। लोक पाताल पगथली गुनौं ॥
पांय अग्र एडी जू रसातल। गुलफ महातल जंघहुँ तलातल ॥ २९॥
द्यौ अरु सुतल चित मैं सु जानौं। वितल अतल उरू करि जु मानौं ॥
सकल महीतल जघन सथांना। कहत सबै रिषि वेद प्रमांना ॥ ३०॥
नाभी प्रभु कै है आकासा। जोति चक्र वछ स्थल सोह भासा ॥
महरलौक सौ ग्रीवा जानौं। अरु आनन जनलोक प्रमानौं ॥ ३१॥
तप जु लोक है ठांम ललाटा। सत्यलोक हैं सीसूं विराटा ॥
इंद्री सब्द दिसायैं हैं काना। जल तालू रस जिह्वा सु जाना ॥ ३२॥
सोभित नासा अश्विनिकुमारा। तिहीं इंद्रीय हैं गंध प्रकारा ॥
सुवर्गलोक दृग इंद्री दिंनू मनि। निसा दिवस दुहुँ जानौं पलकनि ॥ ३३॥
ब्रह्मस्थान जू भौंह बिलासा। माया प्रभुकौ हास प्रकासा ॥
चारों वेद दसम हैं द्वारा। दांत सनेह प्रगट संसारा ॥ ३४॥
जम दांढ्रा सबैं सृष्टि कटाछिह। कुक्ष्य समुद्रहीं अस्थि नग साछिह ॥
लज्या भेद होठ ऊपरहिं कौ। समझहुँ लोभ होठ सो तर कौ ॥ ३५॥
स्तन सु धरम है पीठि अधर्महिं। विधि इंद्रीय संसार जो कर्महिं ॥
मित्रा वरूण जु वृषण कहीजै। आबौं यादि प्रह्लाद सहीजै ॥ ३६॥
जग्य करिबौ सौ प्रभु कौ कारिज। वसुरूद्रादिक देव उपारिज ॥
अपनैं हुत द्रव्य साधन भूंतं। जग्य भाग ग्रहवै कौ सूंतं ॥ ३७॥
नाडी नदी रौम तरू तांकें। पवन उसास चंद मन जांकैं ॥
गति सु अवस्था रु मेघ सुकैसा। संध्या सोही वस्त्राउ सुदेसा ॥ ३८॥
चित महतत्व अरू रुद्र अंहकारा। चवदह मनु तैहिं बुद्धि सुढारा ॥
असु गज षच्चर ऊंट जू नष हैं। पसु सबै और नितंब जू कहैं ॥ ३९॥
सब पंछी प्रभु की चतुराई। मनुष्य निवास कहत सुषदाई ॥
चारन सबै विद्याधर गंधर्व। अपछरा स्वर्ग जु राग कै सर्ब ॥ ४०॥
मुष हैं ही अग्नि रु विप्र अजेवा। भुज छत्री इंद्रादिक जू देवा ॥
वैस्य जघन अरु सूद्र चरन हैं। आपहिं मधि हरि जगत धरन हैं ॥ ४१॥
प्रभु कौ यहि है स्थूल सरूपां। बरनि कह्यौ हम्ह तुम्ह सौं भूपां ॥
मनहिं धारना कीजै यामैं। अपनौं मन बसि करि इक ठामैं ॥ ४२॥
है आनंद रूपहिं भगवांना। अंतरजामी कृपा - निधांना ॥
तिनकौ भजन करे जो कोई। ताकौं महा मुक्ति सुषहुँ होई ॥ ४३॥

सुक जू कहें याहि हैं सारा। तत्व ग्यान समुझायौं संसारा ॥
और ठौर तैं नेह नहिं तूटै। तबलौं जनम मरन नहिं छूटे ॥४४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(भगवान के स्थूल-सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति सद्योमुक्ति का वर्णन)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - याही रूप विराट की, विधिहुँ धारना कीन ॥
ताही कै बल सौं सबै, जग किय प्रगट नवीन ॥ १ ॥
अरु प्रवर्ति मारग कह्यौ, वेदहिं माहिं उदोत ॥
पैं पूरन आनंद नहिं, ता मधि प्रापति होत ॥ २ ॥
तातैं जे बुधि वंत हैं, प्रानी जग के मांहिं ॥
है प्रवर्ती मारग विषै, चितहिं लगावै नांहिं ॥ ३ ॥
माया भेद विचारि कैं, जगसौं रहे उदास ॥
भजन येक भगवांन कौ, करे धरैं विस्वास ॥ ४ ॥
जामैं अपनी देह कौ, होय निबाहु निदांन ॥
उतनौं ही कारिज करै, अधिक न करै विधांन ॥ ५ ॥
भूमि सोयबे कौं यहै, प्रभु नैं दई बनाय ॥
तौ काहे कौं षाट कौ, आपन करै उपाय ॥ ६ ॥
दैकैं बाँह सिरांहनैं, सोय रहै सुष मानि ॥
औरे तकिया को जतन, करे न अपनैं जानि ॥ ७ ॥
और पात्र नाहिंन चहै, अंजूलि पात्र विचारि ॥
तन ढांपै वलकलन सौं, मलिन चीर कै धारि ॥ ८ ॥
पीवै नीर नदीन मैं, रहै वृछ फल चाषि ॥
सोवै बीच गुफनि कैं, प्रभु भरौसो राषि ॥ ९ ॥
द्रिव्यवंत नर जै कोऊ, तिन पैं मागै नाहिं ॥
करत रहे प्रभु कौ भजन, जै याकै चित मांहि ॥ १० ॥
प्रिय आतम सत्य अनंत हरि, भजै जु अविद्या नास ॥
निर्वृत ह्वै निश्चल रहै, धारैं हिये हुलास ॥ ११ ॥
छोडि ध्यांन हरि कौ सुषद, भूलिहूं काहू बार ॥
झूठी चिंता जगत की, करै नहिं निरधार ॥ १२ ॥

कोई इक वैष्णव करत, प्रभुको ध्यांन अनूप ॥
बसत बिलांहिउ यैक जौ, अपनैं हिर्दे सरूप ॥१३॥
सुन्दर स्यांमू रसाल छवि, प्रस्न वदन भुजचार ॥
संष चक्र नीरज गदा, आयुध धरें सुढार ॥१४॥
नेत्र कमलदल सै लसैं, मंद मंद मुसकात ॥
घूंघर वारै कैस छुटि, अति सोभा सरसात ॥१५॥
सीस मुकट बनमाल उर, पीत बसन अभिरांम ॥
रतन जटित भूषण बनैं, अंग अंग सुषधांम ॥१६॥
कौस्तुभ मनि श्री चिन्ह हिय, ठौर रहे पलकाय ॥
हंसि चित्तवत सेवकनि दिस, प्रभु अति कृपा जताय ॥१७॥
मन थिर करि अैसौ धरै, हरि कौ ध्यांन विचारि ॥
चरनन तैं मुसक्यांन लौं, इक इक अंग सम्हारि ॥१८॥
अैसै ध्यांन प्रकार सौं, बुद्धि सुद्ध ह्वै जाई ॥
छुटै विकार सु जगत कै, तत्व लेय सबै पाय ॥१९॥
जबलौं करि नाहिंन सकै, प्रेम भक्ति जुत ध्यांन ॥
तबलौं रूप विराट कौ, साधै ध्यांन निधांन ॥२०॥
जब जोगेस्वर आप निज, छोड्यौ चहै सरीर ॥
तब इंद्री बसि करि सबै, प्रान करैं बसिधीर ॥२१॥
बुधि करि मनकौं बसि करै, बुद्धि मिलवै जिय मांहि ॥
जीव मिलाबैं ब्रह्म मैं, रषै भेद कछु नांहिं ॥२२॥
तबै परम आनंद निज, रूप इहै ह्वै जाय ॥
कछू कारिज कर्तव्यता, फिरि न रहै किहुँ भाय ॥२३॥
जांह काल महतत्व अरू, तीनों गुन अहंकार ॥
माया जुत यै भेद सब, नाहिंन हैं निरधार ॥२४॥
ततवेता जाको परम, वैष्णव पद कौ गाय ॥
देह बुद्धि अति अनन्य हित, हरिपद छिन छिन ध्याय ॥२५॥
अैसो है भगवांन कौ, सुद्ध रूप सुषदानि ॥
और न चाह कहै कछू, ताही कौं पहचानि ॥२६॥
दरसन तिहीं स्वरूप कौ, जोगीस्वर कौं होय ॥
ग्यांन दिष्टि करि बासनां, तब मन रहैं न कोय ॥२७॥
अपनी एडी लै तबै, मूल द्वार सौं लाय ॥
ऊपर कौ षटचक्र मैं, ल्यावै प्रान चढाय ॥२८॥
प्रान नाभि मैं रहत हैं, तहँ तैं लै हिय मांहिं ॥
फेरि उरस्थल मधि धरैं, ह्वाँ तैं तालू ठांहिं ॥२९॥
ह्वाँ तैं भौंहन बीच लै, येक घरी ठहरांय ॥
सात द्वार ऊपर तिनहिं, राषै रोकि सुभांय ॥३०॥

बहुरयौं दसमैं द्वार ह्वै, छोड़ै अपनै प्रांन॥
होय ब्रह्म कौ रूप यहि, सद्यौ मुक्ति बिधांन॥ ३१॥
रचना जो ब्रह्मंड की, माया रची अनित्त॥
होयहिं मनोरथ देषवै, जो जोगेश्वर चित्त॥ ३२॥
तौ मन इंद्री नहिं तजै, मरन समैं कै मांहिं॥
लषि कैं लोक प्रकार सब, रहै बासनां नांहिं॥ ३३॥
अध उरध ब्रह्मंड कै, जोगिन की गति होत॥
अैसी गति तौं होत नहिं, कर्मनि करैं उदोत॥ ३४॥
सिर पर नाडी सुषमना, है विलस्त की येक॥
जोतिमई है दीसत न, प्रभु कै षेल अनेक॥ ३५॥
जोगेस्वर ऊँचे चलै, ह्वै तिठँ नाडी मांहिं॥
अग्नि अभिमानी देवता, ताकै लोक सुजाहिं॥ ३६॥
फेरि होय प्रापति इहै, जोति चक्र मैं जाय॥
महरलोक ताकै परैं, रहै तांह थिर धाय॥ ३७॥
जांह देवता बसत हैं, एक कल्प की आयु॥
इछा बसी भगवांन कैं, सकल सृष्टि सरसायु॥ ३८॥
सेसनाग मुष मांहि तैं, महा अगनि सरसात॥
बिधि कै दिन पूरन समैं, सब त्रिलोक जरि जात॥ ३९॥
उही अगनि की तिहि समैं, अधिक आंच सरसाय॥
महरलोक त्रय लोक परि, तांह सु पहुँचै जाय॥ ४०॥
महरलोक तैं निकसि कैं, जोगेस्वर तिहँ बार॥
ब्रह्मलोक मैं जात पुनि, जहँ आनंद अपार॥ ४१॥
सोक जरा अरु मृत्यु भय, नाहिंन हैं तिहि ठांम॥
ब्रह्म लोक वासी सबै, सुषी रहत निस जांम॥ ४२॥
ब्रह्मा कै दिन अंत मैं, जरतौ देषि त्रिलोक॥
उन्हकै मनकौं होत हैं, इहै एक तब सोक॥ ४३॥
जोगेस्वर आगैं चलत, ब्रह्म लोक तैं फेरि॥
भेदिजात ब्रह्मंड कौ, आवागवननि बेरि॥ ४४॥
प्रगट इहै ब्रह्मंड है, अंडा कै आकार॥
ताहि आबरन सात है, रचै प्रभु करतार॥ ४५॥
प्रथम आबरन प्रिथ्वी कौ, जोजन कोटि सुजांनिं॥
तातैं दस गुन तिंह परै, जल आवर्न हि मांनिं॥ ४६॥
तातैं आगें दस गुनौं, अग्नि आवरन जांनिं॥
तिहँ तैं आगैं आवरण, दस गुन पवन प्रमांनिं॥ ४७॥

तासौ दस गुन आबरन, है आगै आकास ॥
तासौं दस गुन आवरन, अंहकार परकास ॥ ४८ ॥
तातैं दस गुन आबरन, महतत्व कौ सौलेषि ॥
माया कौ आबरन है, तिहँ आगैं अवरेषि ॥ ४९ ॥
प्रथमहिं प्रथ्वि आबर्न है, सात आबरन मांहिं ॥
लांघन जोगी ताहि ह्वै, प्रिथी रूप बहिं ठांहिं ॥ ५० ॥
जल मैं जल ह्वै जात अरु, अग्नि हीं अग्नि मैं होत ॥
वायु रूप है वायु मैं, नभ मैं नभ ऊदोत ॥ ५१ ॥
ता आगैं अहंकार मैं, रूप होय अहंकार ॥
मन इंद्री अरु विषै कौं, तजैं तहहिं निरधार ॥ ५२ ॥
फेरि मिलैं महतत्व मैं, ह्वै महतत्व सरूप ॥
मिलि माया मैं तिहिं परैं, निकसैं जीव अनूप ॥ ५३ ॥
माया तैं न्यारौ भयें, ब्रह्मरूप ह्वै जाय ॥
यहि है जोगीस्वरन की, गति कौ पूर्न उपाय ॥ ५४ ॥
मुक्ति जु जोगीस्वरन की, कहिये दोय प्रकार ॥
सो आगैं बिधि सौं कही, दुहूँ भेद करतार ॥ ५५ ॥
इक तौ तुरतहि त्यागि कैं, जोगेस्वर निज देह ॥
ब्रह्म रूप ह्वै पावहीं, अदभुत मुक्ति अछेह ॥ ५६ ॥
अरु लोकनि लषि दूसरैं, भेदि सकल ब्रह्मंड ॥
मिलै जु ब्रह्म सरूप मैं, पावैं मुक्ति अषंड ॥ ५७ ॥
मारग नाहिंन और कौ, प्रभु की भक्ति समांन ॥
वेद सोधि विधि वेदत्रय, निस्चै कियौ निदांन ॥ ५८ ॥
प्रीति होय भगवांन सौं, वेद तत्व यहि बात ॥
यहँ सम नाहिंन और कछु, सुषद भेद विष्यात ॥ ५९ ॥
बसत आप भगवान हैं, सब प्रानिन कै मांहिं ॥
उनहीं सौ इंद्री सबै, जड चेतन ह्वै जाहिं ॥ ६० ॥
तातैं नृप भगवांन कौ, सुमरन करियै नित्त ॥
उनहीं कै सुनियै चरित, थिर करि अपनौं चित्त ॥ ६१ ॥
जे श्रवनन सौं करत है, हरि गुन अमृत पांन ॥
सुद्ध करत हैं तैं भलैं, अपनौं हृदे स्थांन ॥ ६२ ॥
चरन कमल भगवांन कै, सब भांतिन सुषदाय ॥
तिनकौं प्रापति होत वै, जग बिच धन्य कहाय ॥ ६३ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा श्री ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्याय :॥

(कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति के प्राधान्य का निरूपण)

दोहा - हम्ह सौं तुम्ह पूछी हुती, यै हो नृपति प्रवीन॥
मरन समैं करतव्य कहा, हम्ह तिहिं उत्तर दीन॥ १॥
एकहि एक पदार्थ सब, और देवता देत॥
प्रभु भजन तैं पाइये, सब सुष मुक्ति समेत॥ २॥
ब्रह्म तेज बढ़वारि कौं, विधि सेवै ह्वै दास॥
इंद्री सुष कौं पूजिये, इंद्रहिं सहित हुलास॥ ३॥
प्रजापतिन कौं पूजिये, प्रजा चाह कै काज॥
दुर्गा देवी कौं भजैं जो, चाहै लछमी साज॥ ४॥
करै जु धन की कामनां, आठ वसुन की सेव॥
इनहीं तैं पावै अरथ, सब जग जानत भेव॥ ५॥
वैस्वांनर पूजन करे, बढै तेज विष्यात॥
सेवा कीनै रुद्रन की, बलबीरज सरसात॥ ६॥
भछय भोज की चाह तैं, करै अदिति की सेव॥
अदिति तनय पूजन करैं, लहै स्वर्ग सुष भेव॥ ७॥
बिस्व देवताहिं पूजियैं, राज मिलन कैं काज॥
साध्य देव आराधियैं, रिझवन लोक समाज॥ ८॥
अधिक आयु की चाह सौं, भजियै अस्विनि कुमार॥
पुष्टि चाह सौं पूजहीं, मन बच भुव निरधार॥ ९॥
निश्चल लहै सथानं सो, स्वर्ग रु भूमि विचारि॥
करै भजन गंधर्व कौ, रूप कामना धारि॥ १०॥
घरनी सुष जो नर चहैं, करै उरबसी जाप॥
अधिक चहै अधिकार सो, सेवै ब्रह्मा आप॥ ११॥
जग्य रूप पूजन कियैं, जस सब ही बिधि होय॥
बढै बउत भंडार धन, भजै वरून जो कोय॥ १२॥
महादेव पूजन कियैं, विद्या लहै अनंत॥
गौरा पूजन कीय तै, तिय पिय नेह बढंत॥ १३॥
भजै जु उत्तम श्लोक कौं, धर्म वृद्धि कैं हेत॥
पितरन कौं पूजन करैं, बाढ़ै पुत्र निकेत॥ १४॥
रिछया जो तन की चहै, सैवैं जछ समाज॥
मरूतन की सेवा करै, निज तन बल कै काज॥ १५॥
राज काज ईच्छा करै, भजै सुनर मनु देव॥
अरि मारन कारन सुनहुँ, पूजै निरति सभेव॥ १६॥

सेवै बिधिवत इंदू कौं, कांम कांमना जाहि ॥
बिना कांम पुरुषहिं भजै, प्रकृति परै जो आहि ॥ १७ ॥
चाहै सब सुष जो कोउ, आदि अंत अन छेह ॥
परम पुरुष कौं तो सदा, भजियै निस्संदेह ॥ १८ ॥
या जग मैं इंद्रादिकनि, पूजत तिंन फल सोय ॥
हरिभक्तनि सत संग ह्वै, अचलभाव प्रभु होय ॥ १९ ॥
दूरि करैं चहुँ और तैं, गुण लहरी अनपार ॥
अैंसौ ग्यांन जु तामहीं, आतम प्रसन प्रकार ॥ २० ॥
लोक दुहूँ कै भोग मैं, उपजे दृढ़ वैराग ॥
मुक्ति भुक्ति सुन तैं कथा, कौनु करैं अनुराग ॥ २१ ॥
तत्व बसत संसार मैं, श्री हरि भजन विचार ॥
जै न भजैं करतार कौं, हीन भाग निरधार ॥ २२ ॥
कृस्नं भजन कैं करत ही, सुष समाज सरसाय ॥
आन भजन जानैं बिना, वृथा कछुन सुषदाय ॥ २३ ॥
सुनियैं गुनियैं हरि कथा, करियैं प्रभु की भक्ति ॥
सब भांतिन सुष पाइयै, प्रभू भजन की सक्ति ॥ २४ ॥

॥ सौनक उवाच ॥

चौपाई - सुनियैं बात परीछित राजा। कहा प्रस्नं किय सुभ कै काजा ॥
सब सत पुरुष समाज मिलैं जहँ। प्रभु गुन चरचा होय भलै तहँ ॥२५॥
सो हम्हकौं सब भांति सुनांवो। गुन गोबिन्द सुधा रस पांवो ॥
बालापन तैं भक्त परीछित। दरसन प्रभुकौ कियो गर्भ स्थित ॥२६॥
अरु श्री सुक भगवांन सरूपां। भक्तराज रिषिबर हरि रूपां ॥
सूरिज उदित होत अरु अस्तहिं। हरत सबन की आयु समस्तहिं ॥२७॥
सुनैं कथा सौ समैं न जाई। और वृथा ही जनम विहांई ॥
जो कुछ प्रभु भजन नाहिं करै। जड़ ज्यौं जन्म वृथा सोधरै ॥२८॥
बिनु हरि नांव स्वांस जो आवै। उपमा चर्म लुहार सु पावै ॥
षर सूकर ज्यौं पालै देहहिं। जिनकौं नांहि प्रभु सौं नैहहिं ॥२९॥
परै न कबहूं कर्न नांम हरि। षर सूकर सु ऊँट बरोबरि ॥
हरिगुन जिन श्रवननि नाहिं सुनैं। तिन करननि कौं बिल समहिं गुनैं ॥३०॥
जिहँ रसना हरि नांम न होई। दादुर सम जु कहावै सोई ॥
कृस्नं चरन नहिं सीस नवांवै। मुकट भार धरि सोभ न पांवै ॥३१॥
हरि सरूप जिन दृग नहिं देषै। जै दृग मोर चंदवा लेषै ॥
जिन कर होय न प्रभु की सेवूं। मृतक करन सम जानौ भेबूं ॥३२॥
प्रभु तीरथ मग परै न पांव। जनम वृछि सम धारि स्वभावूं ॥

हरि गुन सुनि हुलसै नहिं हीयौ। सौ पषान सम विधनां कीयौ॥ ३३ ॥
नर तन धरि हरि भजन नहिं करे। भक्त चरन रज सीस नहिं धरै॥
प्रभु पद तुलसि घ्राण नहिं परै। जीवत मृतकहिं सम अनुसरै॥ ३४ ॥
जै जनहिं करै प्रभू की भक्ति। तै हरि पद पावै तिहिं सक्ति॥
प्रभु अनुरक्ति अमरता पावै। जनम सफल करि भगत कहावै॥ ३५ ॥

दोहा - **नृपति परीछित सौं कह्यौ, हरि गुन श्री सुक देव ॥**
सो हम्ह सौं अब सूत तुम्ह, सहै सुनावौ भेव ॥ ३६ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

(राजा का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्री सुकदेव जी का सृष्टि कथारम्भ)

॥ सूत उवाच ॥

चौपाई - सूत कहत अहो सौनक जु मुनि। सुक कै वचन परीछित नृप सुनि॥
प्रभू मैं चित्र लगावत भयै। सुनन कृस्न गुन अति हित छयै॥ १ ॥
अपनी देह बंधू सुत नारी। असु गज द्रव्य राज्य सुष भारी॥
इन्हमैं तैं ममता तजि दीनी। सरप कांचली की गति लीनी॥ २ ॥
हरि गुन मैं रूचि जिहिं अधिकांई। अैसौ भक्त परीछित रांई॥
हम्हकौं तुम्ह पूछत हौ सोई। पूछी सुकहिं परीछित जोई॥ ३ ॥
अपनी मृत्यु जानि कैं राजा। सबही और छोडि कैं काजा॥
दृढ़ अपनी बुधि करि तिहँ बारा। प्रभु मैं दई लगाय सुढारा॥ ४ ॥

॥ राजोवाच ॥

नृप बोलै हौ श्री सुकदेवूं। तुम्ह हरिकथा कहत रस भेवूं॥
तातैं म्हेरौ सब अग्यांनहिं। भयौ जात है दूरि निदानहिं॥ ५ ॥
हूँ तुम्ह सैं पूछत याहि अबैं। मोहि कहौ मुनि तत्वनूँ सबैं॥
प्रभु अपनी माया कैं ढारा। कइसैं रच्यौ यहै संसारा॥ ६ ॥
अरु जग कौ पालन संघारा। कौनु भांति करहीं विसतारा॥
प्रभु जगत मैं क्रीड़ा करहीं। रूप अनेक आप हरि धरहीं॥ ७ ॥
जै हैं बडे बडे कौ ग्यांनी। हरि लीला गति तिनहुँ न जानी॥
माया कै तिहुँ गुन करतारा। करत कौनु विधि अंगीकारा॥ ८ ॥
यैकहिं बेर किं क्रम क्रम सौंकरि। सो तुम्ह कहौ कृपा निज उर धरि॥
तुम्ह हौ वेद ब्रह्म कै रूंपां। जानत सबही तत्व अनूंपां॥ ९ ॥

॥ सूत उवाच ॥

सूत कहत अैसै जब राजा। पूछै हरिगुन सुष कै साजा ॥
श्री सुक ह्वै प्रभु जस मैं लीनां। तबहिं आरंभ कहन कौ कीनां ॥ १० ॥
स्तुति प्रभु की मुनि करन जु लागै। उर आनंद रूप अनुरागै ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

जै प्रभु तिहुँ गुन करि संसारा। उतपति पालन करत संघारा ॥ ११ ॥
पूरि रह्यौ सबही घट मांहीं। पैं ताकौं कौ जानत नांहीं ॥
ता प्रभु कौं हौं करत प्रनांमा। हिय मैं ध्यांन धारि अभिरांमा ॥ १२ ॥
साधन के दुष टारन वारै। दुष्ट जनन के मारन हारै ॥
तजि संसार चरननि अनुसरैं। पूर्न मनोरथ तिनकै करैं ॥ १३ ॥
जै हरि परम जादवनि मांहीं। जिन्हकी ईश्वरता सब ठाहीं ॥
जिन अपनौं मन बस नहिं कीन्हौं। तिन बा प्रभु कौ भेद न चीन्हौं ॥ १४ ॥
निज स्वरूप मैं जै भगवांना। मगन रहत हैं कृपा निधांना ॥
पूरन ब्रह्म महा सुषेधांमा। तिन प्रभुकौं म्हेरौ परिनांमा ॥ १५ ॥
कीर्तन सुमरन दरसन बंदन। जिनकौं पूजन गुन अभिनंन्दन ॥
है सबही जग कौउ अघहर्ता। जिनकौ जस है मंगल जु कर्ता ॥ १६ ।
परमानंद रूप निहकांमा। तिहँ प्रभु कौं म्हेरौ परिनांमा ॥
जन प्रवीन जिंह प्रभु पद सेई। सब तजि जनम सफल करि लेई ॥ १७ ॥
तत्व सरूप ब्रह्म लहिग्यांना। पहुँचत मुक्ति ऊँच प्रभु थांना ॥
भक्तन कै सुषदाता स्यांमा। तिन प्रभु कौं म्हेरौ परिनांमा ॥ १८ ॥
बड़े तपी दाता रु जस कर्ता। वेद मंत्र बिधि हिय मधि सुधर्ता ॥
अैंसै हूँ जै हरि कै मांही। अपनैं करमं समर्पेय नांहीं ॥ १९ ॥
तो वे मुक्ति नाहिंनैं पावत। तिहुँ प्रभु कौ हूँ सीस नवावत ॥
नीच जाति चंडालनि ताईं। प्रभू चर्ननिकैं सरन रहाईं ॥ २० ॥
अरु साधनन की संगति गहैं। तब वै महा मुक्ति कौं सु लहैं ॥
असरन सरन प्रभु अभिरांमा। उन्हकौं है म्हेरौ परिनांमा ॥ २१ ॥
सर्वातमा वेदमय ईश्वर। धर्म सरूप अंनादि जगतबर ॥
बिधि सिव जिनकौं करत विचारा। हूँ बन्दौं तिनहूँ पद निर्धारा ॥ २२ ॥
जगपति श्रीपति परजा कै पति। बुधिपति प्रिथवीपति सबकी गति ॥
जादवपति भक्तन कै दुषहर। प्रसंन होहु सो प्रभु मौ ऊपर ॥ २३ ॥
जिनी चरनन की सेवा करै। तबै बुद्धि निरमलताइ धरै ॥
तब उपजै हिय आतम ग्यांनू। होहुँ प्रसंन्न वहै भगवांनू ॥ २४ ॥
जिहँ प्रसाद बल तैं चतुरानन। हियै सरस्वती प्रगटी तिहिं छन ॥
पंच महाभूतन की देहा। जीवन कैं रचि प्रभु अछेहा ॥ २५ ॥

आप रूप करि अंतरजांमी। भयै बिराजमान जग स्वांमी ॥
चेतन करत भयै तन जोई। धन्य धन्य कर्ता प्रभू सोई ॥ २६ ॥
ते प्रभु म्हैंरै बचनन मांही। प्रगट करौ कविता अधिकांही ॥
हरिकी असतुति जिहिं कविता सौं। हूँ आछी भांतिहिं परिकासौं ॥ २७ ॥
व्यास देव जू कौं दंडौंतू। जिन मुषतैं भयौ ग्यांन उदोंतू ॥
पुनि सुकदेव जू सुकथा कही। उन तैं सुनिकैं रिषि मुनि जु लही ॥ २८ ॥
नारद पहिलैं याही बाता। ब्रह्मा सौं पूछि विष्याता ॥
तब ब्रह्मा उत्तर जो दीनां। सो म्हैं कहत सुनौं परबीनां ॥ २९ ॥

(इति श्री भागवते महा पुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्थोऽध्याय: ॥ ४ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्याय: ॥

(सृष्टि का वर्णन)

॥ नारद उवाच ॥

चौपाई - बिधि सौं नारद जु पूछत बांत। कहैं जोहैं परमतत्व विष्यांत॥
देव देव हें हौ मुषचारा। प्रानिन कै उपजावन हारा॥ १ ॥
सकल विस्व कै तुम्ह हौ जु ताता। बडै जानिहूँ पूछत बाता॥
आतमतत्व जानियै हुँ जांतैं। सौ उपाय कहियै सब भांतैं॥ २ ॥
या जग कौं जु प्रकासक कौंनू। अरु किहूँ आश्रय यहि जग भौंनू॥
जगत सकल सिरजन किहुँ कीनां। होत जगत यहि किहँ मैं लीनां॥ ३ ॥
अरु कहा है जगत कौ रूंपां। मोहि कहौ सब भेद अनूंपां॥
होय चुक्यौ ह्वै हें अरु होतहिं। सबकौ तुम्हकौं ग्यांन उदोतहिं॥ ४ ॥
लियैं आंवरै कौ फल करमैं। जानि परत आछैं तिहँ मरमैं॥
जइसैं तुम्ह अपनैं करि ग्यांना। जानत सब ब्रह्मंड निदांनां॥ ५ ॥
कौनु तुम्हारौ है बुधि दाता। अरु तुम्ह किहिं आधार बिधाता॥
रहत कौनु कै तुम्ह आधीनां। कहा तुम्हारौ रूप प्रवीनां।॥ ६ ॥
यहि सब भेद कहौ समझांई। मौ मन कौ संदेह मिटांई॥
पंच महा भूतन कै नरतन। तुम्हहीं भलैं करत हौ सिरजन॥ ७ ॥
अरु पालन संघारन करिकैं। आपन न्यारै रहत सम्हरि कैं॥
जइसैं मकरी तारहिं मांहीं। क्रीड़ा बिबिधि भांति सरसांही॥ ८ ॥

वही तारकौं आपुन फेरी। निगलि जात नहिं करत अँवेरी ॥
तुम्ह समान हम्ह या जग मांहिं। और किहूँ कौ जानत नांहीं ॥ ९ ॥
रूप नांम गुण सुछिम सथूलां। भांति भांति जग भेद समूलां ॥
तुम्ह ही तैं सब यहि संसारा। प्रगटनि पावत है निर्धारा ॥ १० ॥
तातैं हम्ह तुम्हकौं ईस्वर करि। जानत रहे चित्त निस्चै धरि ॥
पैं तुम्ह हूं आगैं तप करयौ। तातैं हम्ह संदेह जु धरयौ ॥ ११ ॥
है कौ ईश्वर और निदांना। तिहँ लीनैं तुम्ह किय तप ग्यांना ॥
तुम्हहूं कौं पूछत यहि बाता। सो मोकौं समझावौ ताता ॥ १२ ॥
ईस्वर वहै कौनु निर्धारा। कहौ सकल तिहँ भेद प्रकारा ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

ब्रह्मा कहत कि सुनि सुत नारद। तौ संदेह भलौ सुष कौ नद ॥ १३ ॥
हम्ह पैं हरि गुन चहत कहायौ। सुनिबैकौं तैं मन उमगायौ ॥
तेरौ वचन असत्य न क्यौंही। तू जू कहत है म्हैं हूँ त्यौं ही ॥ १४ ॥
पैं कौउ और बडौ भगवांन। ता करि अैसौ म्हैं उनमांन ॥
जिहं प्रभु अैसौ सकल संसारा। कियौ प्रकासित अति विसतारा ॥ १५ ॥
ज्यौं अर्क अग्नि नषित्र रु सोमग्रही। तारनि जुत प्रकास करतहिं वही ॥
प्रभु प्रकासित तेज प्रकासै। त्यौंहूं सिष्टि रचत याहि आसै ॥ १६ ॥
तिहँ प्रभु कौं अति हिय उमगाई। नमसकार हूँ करंत बनांई ॥
जिन्हकी माया मोहित प्रांनी। ईस्वर मुनि मानत अग्यांनी ॥ १७ ॥
माया प्रभु कैं सामुहँ आयी। ठाढी रहि न सकै किहुँ भायी ॥
प्रानी माया मोहित जु भयै। ममता अहंता सौं अति छयै ॥ १८ ॥
जीव कर्म अरु काल स्वभांवू। प्रभु तैं न्यारौ कछु न उपांवू ॥
निगम चारि प्रभु आप बनांयै। सुरहूँ निज तन तैं उपजांयै ॥ १९ ॥
स्वर्गादिक लोकनि कैं जु मांहीं। आनंद हरि तैं न्यारौ नांहीं ॥
जिग्य हूँ नारायन कै हेतू। करत सबै जन प्रीति समेतू ॥ २० ॥
ग्यांन जोग तप फल उद्योता। सो सब नारायण तैं होता ॥
वै भगवांन सबन कै द्रष्टा। निरविकार अरु जग कै श्रष्टा ॥ २१ ॥
हौंहूं उन प्रभु ही उपजायौ। वा प्रसाद म्हैं जगत बनायौ ॥
सत रज तम माया गुन भारा। तिन कौं प्रभु करि अंगीकारा ॥ २२ ॥
उतपति पालन प्रलय संसारा। करत आप स्वामी करतारा ॥
माया गुन तैं प्रगट सभेवूं। तन इंद्री इंद्रि न कै देवूं ॥ २३ ॥
तामैं जीव सु ममता मांनी। सब बंधि रहै होई अग्यांनी ॥
जीव गुनन करि मोहित होई। प्रभु स्वरूप जानत नहिं कोई ॥ २४ ॥
काल रु करम स्वभाव सबैं हीं। जगत बनाय सकैन जबैहीं ॥
काल रु करम स्वभाव बीचि जब। मिलत भये भगवांन आप तब ॥ २५ ॥

जगत उपजावन कुं उन मांही। प्रगट भयै सामरथ सुठांहीं ॥
सबतौं वै पहलै जड जु रहैं। हलन चलन कछू समरथ नहैं ॥ २ ६ ॥
काल रच्यौ माया गुन छोभा। किय स्वभाव परिनांम सुभोवा ॥
करी करम महतत्व की उतपति। सत रज रूप ग्यांन मय जिहँ गति ॥ २ ७ ॥
सत रज तम त्रय गुन संसारा। तातैं होतहिं प्रकृति प्रसारा ॥
तातैं तम प्रधांन अहंकारा। सत रज तम सौं तीन प्रकारा ॥ २ ८ ॥
द्रव्य सक्ति तामस अहंकारा। क्रिया सक्ति राजस गुनधारा ॥
सात्विक क्रिया ग्यांन आधारा। अहंकार गुन तीन प्रकारा ॥ २ ९ ॥

दोहा – ता तामस अहंकार तैं, प्रगट भयो आकास ॥
सब्द जू गुन आकास कौ, जांसौं सबै प्रकास ॥ ३० ॥
पवन भयौ आकास तैं, द्वै गुन पवनहिं मांहिं ॥
इक सपरस अरु सब्द पुनि, यै दोन्यौं सरसांहिं ॥ ३१ ॥
अग्नि प्रगट हुव पवन तैं, ताकै मधि गुन तीन ॥
यैक सब्द सपर्स दुतिय, रूप तीसरौ चीन ॥ ३२ ॥
अरु जल प्रगटयौ अग्नि तैं, जाकैं मधि गुन चार ॥
सब्द रु सपर्स रूप रस, अैसैं लषौं प्रकार ॥ ३३ ॥
प्रिथी प्रगट जल तैं भई, तिहँ मधि पंच प्रकार ॥
गंध रूप रस सब्द अरु, सपरस गुन निर्धार ॥ ३४ ॥
अरु सातिक अहंकार तैं, उपज्यौ मन इह जानि ॥
इंद्रिनी के दस देवता, ताही तैं यै मानि ॥ ३५ ॥
दिसा पवन सूरिज बरुन, बासव अस्वनि कुमार ॥
मित्र अग्नि ग्रह प्रजापति, यै दस नांम प्रकार ॥ ३६ ॥
हुव राजस अहंकार तैं, दस इंद्री बुधि प्रान ॥
पांच कर्म इंद्री अवर, पांच जु इंद्री ग्यांन ॥ ३७ ॥
जुदे जुदे चौबीस यै, तत्व रचन ब्रह्मंड ॥
धरत भये सामर्थिनहिं, बिनु प्रभु जोति अषंड ॥ ३८ ॥
तब चौबीसौं तत्वकौं, करि इकठै करतार ॥
अंग रच्यौ सु बीच जल, रह्यौ जु वर्ष हजार ॥ ३९ ॥
अच्युत फेरि चैतन्य करि, जुदे होय हरि आंप ॥
किय विराट अवतार जिहिं, अंग हजारन थांप ॥ ४० ॥
जिनकैं अंगन तैं भये, चवंदह लोक सथांन ॥
सात लोक कटि कै तरैं, ऊपरि सात प्रमांन ॥ ४१ ॥
मुष तैं द्विज भुज तैं भये, छत्री गण उद्दोत ॥
वैस्य जंघ तैं प्रगट अरु, सूद्र चरन तैं होत ॥ ४२ ॥

काहू के मत माहिं है, सात लोक विष्यांत ॥
तिनकी रचना कहत हौं, सुनौ चित्त दै बांत ॥४३॥
प्रभु कै पायन तैं भयो, भूरि लोक परकास ॥
भयो नाभि तैं प्रगट यहि, भूव लोक सविलास ॥४४॥
हृदै ठौर तैं प्रगट हुब, स्वर्गलोक विसतार ॥
अरु बछिस्थल तैं भयौ, महर्लोक आकार ॥४५॥
ग्रीवा तैं जनलोक हुव, स्तनजुग तैं तप लोक ॥
सत्यलोक प्रगटत भयो, हरि मस्तक मम धोक ॥४६॥
अरु न्यारौ सब लोक तैं, है बैकुण्ठ सथांन ॥
सो कहियत हैं पांवनौं, दुर्लभ भांति निदांन ॥४७॥
अरु कोऊ अैसें कहत, लोक जु है दस चार ॥
तिनकी रचना कहत हौं, सो सब सुनौं प्रकार ॥४८॥
कटि तैं प्रगटयौ अतल अरु, बितल जंघ तैं जांनि ॥
अरु घौंटन तैं सुतल भौ, पिंडरि तलातल थांनि ॥४९॥
पुनि टिंकुननि तैं महातल, प्रगट्यौ निहचै जांनि ॥
पांय अग्र तैं रसातल, उपज्यौ है यहि मांनि ॥५०॥
उपजत भौ पगथली तैं, सुनौं लोक पाताल ॥
प्रभुकै कटि तरलोक यै, सातौं लसत रसाल ॥५१॥
सात लोक कटि ऊपरैं, तैं अब कहूं जतांय ॥
प्रभु लीला अनपार है, सकैं पार कौ पांय ॥५२॥
प्रभु विराट के कटिन तैं, भूर्लोक विसतार ॥
भुवर्लोक भयो नाभि तैं, यहि जानौं निरधार ॥५३॥
स्वर्ग लोक भौ हृदय तैं, जहँ आनंद अनंत ॥
बच्छिस्थल तैं उपजि लहि, महर्लोक सोभंत ॥५४॥
ग्रीवा तैं जन लोक हुव, स्तन जुग तैं तपलोक ॥
सत्यलोक उतपति लही, सिर तैं बिधि कौं वोक ॥५५॥
कोऊ बतावत लोक त्रय, सो बिधि कहूँ बषांनि ॥
प्रभु कै पाइन तैं भयो, भूरलोक यौं जांनि ॥५६॥
उपज्यौ नाभी ठौर तैं, भुवर्लोक विष्यात ॥
स्वर्गलोक प्रभु सीस तैं, उतपति लहि सरसात ॥५७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते पञ्चमोऽध्याय ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षठोऽध्यायः ॥

(विराट स्वरूप की विभूतियों का वर्णन)

॥ ब्रह्मोवाच ॥

चौपाई - ब्रह्मा कहै विराट बिसतारा। अकथ रुप कौ नांहिं निसतारा ॥
अग्नि वाक इंद्री यै दोऊ। मुष विराट तैं परगट होऊ ॥ १ ॥
सात छंद गायत्री आदिक। सात धात तैं रचै अनादिक ॥
हव्य कव्य अमृत अंन पट रस। वरूण जिह्वा तैं प्रगटे प्रभुबस ॥ २ ॥
प्रान वायु नासा तैं दोई। प्रगट भये जानत सब कोई ॥
सब सुगंध औषधी प्रकारा। अरु अति सुंदर अस्वनि कुमारा ॥ ३ ॥
प्रभु घ्रांण इंद्री तैं उपजै। रूप तेज चष इंद्री जु सजै ॥
रवि दृग गोलक तैं प्रगटयै। दिसा तीर्थ श्रवननि सौं भये ॥ ४ ॥
अरु आकास सब्द दोनों ही। प्रगट श्रोत इंद्री तैं हौं ही ॥
सुंदरता वस्तुनकौ सारा। प्रगटै प्रभु तन तैं निरधारा ॥ ५ ॥
सपरस वायु जिग्य तीनौं ही। प्रभू त्वचा इंद्री तैं हौं ही ॥
मेघ केस रोमनि तैं तरु गुनि। डाढी तैं प्रगटी बिजुरी पुनि ॥ ६ ॥
सिला लौह प्रगटे जु नषनि तैं। लोकपालगन भुजा जुगनि तैं ॥
पेम सरन तिहुँ लोक प्रकारा। प्रभु कै चलबै कौ आधारा ॥ ७ ॥
सर्व कामना कौ जो दांनां। हूव विराट चर्नन तैं जांना ॥
जल अरु वीर्य्य मेघ की वृष्टि। ब्रहमा बीज भोग पुनि श्रृष्टि ॥ ८ ॥
प्रभु कै इंद्रीय तैं यै सबैं। पावत भये प्रगटताइ तबैं ॥
जम परिमोछ मित्र ये तीनां। पायु थांन तैं उतपति लीनां ॥ ९ ॥
हिंसा निरित मृत्यु इन तीनौं। गुद इंद्री तैं जनम सु लीनौं ॥
पीठ तैं परिभव अघ अग्यांना। नाडी तैं नद नदी प्रमांना ॥ १० ॥
माया प्राणी अरु संघारा। अन्न आदि यै सबै प्रकारा ॥
रस अरु जलधि उदर तैं उपजै। अस्थिन तैं पर्वत सब सजै ॥ ११ ॥
नारायण ही हैं सृष्टि विरांटा। अप्राकरत अलिपत तत्व कुँ थांटा ॥
विधि नारद सत धर्म विधांना। चहुँ सनकादिक सिव विग्यांना ॥ १२ ॥
यै विराट कै चित तैं भयै। ह्दै ठौर तैं मन प्रगटयै ॥
म्हैं तू सिव सुर रिषि असुर रु नर। अरु राछस चारन विद्याधर ॥ १३ ॥
पितर सिद्ध गंधर्व भूत जिछि। पसु पंछी मृग नाग सर्प ब्रिछि ॥
जलथलनभवासी घन गरजन। ग्रह नछत्र बिजुरी तारागन ॥ १४ ॥
होय चुक्यौ है हैं अरु होतू। सब प्रभु ही कौं रूप उदोतू ॥
सकल जंतु व्यापक भगवांना। इक बिलांत पुनि अधिक प्रमांन ॥ १५ ॥
जइसैं जग कौं भांन प्रकासैं। अरु अपनै मंडल जु उजासैं ॥
त्यौं विराट कौ बाहिर अंतर। करत प्रकास प्रभू सु निरंतर ॥ १६ ॥

काहू कैं मत माहिं है, सात लोक विष्यांत ॥
तिनकी रचना कहत हौं, सुनौ चित्त दे बांत ॥ ४३ ॥
प्रभु कै पायन तैं भयो, भूरि लोक परकास ॥
भयो नाभि तैं प्रगट यहि, भूव लोक सविलास ॥ ४४ ॥
हृदै ठौर तैं प्रगट हुव, स्वर्गलोक विसतार ॥
अरु बछिस्थल तैं भयौ, महर्लोक आकार ॥ ४५ ॥
ग्रीवा तैं जनलोक हुव, स्तनजुग तैं तप लोक ॥
सत्यलोक प्रगटत भयो, हरि मस्तक मम धोक ॥ ४६ ॥
अरु न्यारौ सब लोक तैं, है बैकुण्ठ सथांन ॥
सो कहियत हैं पांवनौं, दुर्लभ भांति निदांन ॥ ४७ ॥
अरु कोऊ अैसैं कहत, लोक जु है दस चार ॥
तिनकी रचना कहत हौं, सो सब सुनौं प्रकार ॥ ४८ ॥
कटि तैं प्रगटयौ अतल अरु, बितल जंघ तैं जांनि ॥
अरु घौंटन तैं सुतल भौ, पिंडरि तलातल थांनि ॥ ४९ ॥
पुनि टिंकुननि तैं महातल, प्रगट्यौ निहचै जांनि ॥
पांय अग्र तैं रसातल, उपज्यौ है यहि मांनि ॥ ५० ॥
उपजत भौ पगथली तैं, सुनौं लोक पाताल ॥
प्रभुकै कटि तरलोक यै, सातौं लसत रसाल ॥ ५१ ॥
सात लोक कटि ऊपरैं, तैं अब कहूं जतांय ॥
प्रभु लीला अनपार है, सकैं पार कौ पांय ॥ ५२ ॥
प्रभु विराट कै कटिन तैं, भूर्लोक विसतार ॥
भुवर्लोक भयो नाभि तैं, यहि जानौं निरधार ॥ ५३ ॥
स्वर्ग लोक भौ हृदय तैं, जहँ आनंद अनंत ॥
बच्छिस्थल तैं उपजि लहि, महर्लोक सोभंत ॥ ५४ ॥
ग्रीवा तैं जन लोक हुव, स्तन जुग तैं तपलोक ॥
सत्यलोक उतपति लही, सिर तैं बिधि कौं वोक ॥ ५५ ॥
कोऊ बतावत लोक त्रय, सो बिधि कहूँ बषांनि ॥
प्रभु कै पाइन तैं भयो, भूरलोक यौं जांनि ॥ ५६ ॥
उपज्यौ नाभी ठौर तैं, भुवर्लोक विष्यात ॥
स्वर्गलोक प्रभु सीस तैं, उतपति लहि सरसात ॥ ५७ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते पञ्चमोऽध्याय ॥ ५ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षठोऽध्याय: ॥

(विराट स्वरूप की विभूतियों का वर्णन)

॥ ब्रह्मोवाच ॥

चौपाई - ब्रह्मा कहै विराट बिसतारा। अकथ रुप कौ नांहिं निसतारा॥
अग्नि वाक इंद्री यै दोऊ। मुष विराट तैं परगट होऊ॥ १॥
सात छंद गायत्री आदिक। सात धात तैं रचै अनादिक॥
हव्य कव्य अमृत अंन पट रस। वरूण जिह्वा तैं प्रगटे प्रभुबस॥ २॥
प्रान वायु नासा तैं दोई। प्रगट भये जानत सब कोई॥
सब सुगंध औषधी प्रकारा। अरु अति सुंदर अस्वनि कुमारा॥ ३॥
प्रभु घ्रांण इंद्री तैं उपजै। रूप तेज चष इंद्री जु सजै॥
रवि दृग गोलक तैं प्रगटयै। दिसा तीर्थ श्रवननि सौं भये॥ ४॥
अरु आकास सब्द दोनों ही। प्रगट श्रोत इंद्री तैं हौं ही॥
सुंदरता वस्तुनकौ सारा। प्रगटै प्रभु तन तैं निरधारा॥ ५॥
सपरस वायु जिग्य तीनौं ही। प्रभू त्वचा इंद्री तैं हौं ही॥
मेघ केस रोमनि तैं तरु गुनि। डाढी तैं प्रगटी बिजुरी पुनि॥ ६॥
सिला लौह प्रगटे जु नपनि तैं। लोकपालगन भुजा जुगनि तैं॥
षेम सरन तिहुँ लोक प्रकारा। प्रभु कै चलबै कौ आधारा॥ ७॥
सर्व कामना कौ जो दांनां। हूव विराट चर्नन तैं जांना॥
जल अरु वीर्य्य मेघ की वृष्टि। ब्रहमा बीज भोग पुनि श्रृष्टि॥ ८॥
प्रभु कै इंद्रीय तैं यै सबैं। पावत भये प्रगटताइ तबैं॥
जम परिमोछ मित्र ये तीनां। पायु थांन तैं उतपति लीनां॥ ९॥
हिंसा निरित मृत्यु इन तीनौं। गुद इंद्री तैं जनम सु लीनौं॥
पीठ तैं परिभव अघ अग्यांना। नाडी तैं नद नदी प्रमांना॥ १०॥
माया प्राणी अरु संघारा। अन्न आदि यै सबै प्रकारा॥
रस अरु जलधि उदर तैं उपजै। अस्थिन तैं पर्वत सब सजै॥ ११॥
नारायण ही हैं सृष्टि विरांटा। अप्राकरत अलिपत तत्व कुँ थांटा॥
विधि नारद सत धर्म विधांना। चहुँ सनकादिक सिव विग्यांना॥ १२॥
यै विराट कै चित तैं भयै। हदै ठौर तैं मन प्रगटयै॥
म्हैं तू सिव सुर रिषि असुर रु नर। अरु राछस चारन विद्याधर॥ १३॥
पितर सिद्ध गंधर्व भूत जिछि। पसु पंछी मृग नाग सर्प ब्रिछि॥
जलथलनभवासी घन गरजन। ग्रह नछत्र बिजुरी तारागन॥ १४॥
होय चुक्यौ है हैं अरु होतू। सब प्रभु ही कौं रूप उदोतू॥
सकल जंतु व्यापक भगवांना। इक बिलांत पुनि अधिक प्रमांन॥ १५॥
जइसैं जग कौं भांन प्रकासैं। अरु अपनै मंडल जु उजासैं॥
त्यौं विराट कौं बाहिर अंतर। करत प्रकास प्रभू सु निरंतर॥ १६॥

अभय अमृत कै प्रभु ही दाता। उनहिं कर्म फल नहिं परसाता ॥
जिनकी महिमा कौ नहिं चिह्नैं। लोक सबै उनहीं प्रभु कीन्हैं ॥ १७ ॥
जे हैं लोक त्रिलोकी ऊपरि। तिन मैं हरि अपनी इछया करि ॥
अमृत रु अभय षेम राष्यो जहँ। पुरुष परम ग्यांनी पहुँचत तहँ ॥ १८ ॥
अरु गृहस्थ जै जीव अग्यांनी। तै त्रिलोक मैं विचरत प्रांनी ॥
इन्ह जीवन कौ यहै प्रकारा। होत दोय गति निति निरधारा ॥ १९ ॥
सुविद्या और अविद्या जानौं। लगी रहत तै जीवनि मानौं ॥
अैसैं यहि विराट भगवांना। प्रगट कह्यौ सबै विस्व विधांना ॥ २० ॥
ब्रह्मा कहत सुनौ नारद अब। नाभि कमल तैं हौं प्रगटयौ जब ॥
जिग्यकरन कौं म्हैं मन कीन्हौं। धर्म उपाव चित्त मैं चीन्हौं ॥ २१ ॥
तबैं जिग्य सामग्रीउ लेषी। प्रभु अंग तैं जुदी न देषी ॥
पसु कुस समी यौं सकल वनस्पति। धन औषधी लौह रस गति मति ॥ २२ ॥
चातुर होत्र मृतिका जल व्रत। रिगु यजु साम दच्छिनां बिधवत ॥
नांम मंत्र संकल्प देवता। कल्प समर्पन तंत्र जोगता ॥ २३ ॥
ए पदार्थ सब प्रभु कै अंगा। इकठै किय मन राषि असंगा ॥
अैसैं सामग्रीउ सरसाया। प्रभु निमित्त किय जिग्य बनाया ॥ २४ ॥
मरीचादि रिषिहूँ ता पांछैं। जिग्य करत भयै सबही आंछैं ॥
तिन पीछैं मनु रिषि नर देवूं। पितर असुर किय जिग्य सभेवूं ॥ २५ ॥
तातैं यहै जगत सब भाया। नारायन आश्रय ठहराया ॥
सगुन अगुन दोनों आकारा। नारायन हूं हैं निरधारा ॥ २६ ॥
अरु उनहीं प्रभु की आग्यां सौं। हूँ याहि सबहिं जगत प्रकासौं ॥
रुद्र देव ताकौं जु संहरै। विस्नुं सक्ति निजू पालन करै ॥ २७ ॥
हेनारद जग सूछिम थूलां। प्रभु तैं न्यारौ नहिंन समूलां ॥
व्यापक है जग मैं भगवांना। तिन प्रभु कौ कीनौं म्हैं ध्यांना ॥ २८ ॥
मौ मन इंद्री अरु सब बांतां। सफल भये हैं सबहिं विष्यांता ॥
वेद तपस्यामय मोहि मूरति। अरु सब प्रजापतिन कौं हौं पति ॥ २९ ॥
पैं जासौं उपजनि म्हैं पांई। ताकी गति समझी नहिं जांई ॥
अैसौ कठिन लहन प्रभु तंता। अपरमपार अनादि अंनंता ॥ ३० ॥
जग कैं सब दुष हारनहारा। मंगल रूप महा सुषसारा ॥
अैसैं प्रभु चरन अभिरांमं। तिनकौं हूं निति करत प्रनांमं ॥ ३१ ॥
अपनी ही माया कौ अंता। आपहूँ जानत नाहिं अनंता ॥
हे नारद तुम्ह हम्ह सिव आदिका। जानत नाहिं सरूप अनादिका ॥ ३२ ॥
तौ सुर और कौनु तिहुँ जानैं। अरु नरगन तिउ का उन मानैं ॥
जितै जीव जग जनम सूं लये। प्रभु की माया मोहित जुभये ॥ ३३ ॥

यैक जगत ही कौं सब जानत। रचनहार प्रभु कौं न पिछांनत ॥
उन्ह प्रभु कै अवतारन कै गुन। हम्ह सब गावत हैं नारद सुन ॥३४॥
अरु उन्ह प्रभु कौ जानत नांहीं। नमसकार करि करि थकि जांही ॥
वेई प्रभू सकल संसारा। उतपति पालन करत संघारा ॥३५॥
सुद्ध सत्यनित्य सब तैं न्यारौ। केवल ग्यांन अनंत प्रकारौ ॥
निर्गुन पूरन असंग अनादिक। सो प्रभु रूप सबनकौ आदिक ॥३६॥
जाकौ जानैं रिषिवर जोई। इंद्री मन जाकै बस होई ॥
मन तैं षोटी तर्क न जावै। तब लौं प्रभु कौ रूप न पावै ॥३७॥
सिव अवतार आदि नारायन। ताहि लहत करि भक्ति सु भायन ॥
काल सुभाव विकार जीव मन। गुण इंद्रीय विराट रूप घन ॥३८॥
जंगम सथिर सबै परिकारा। है उनहीं प्रभु कै अवतारा ॥
हे नारद सिव बिस्नु प्रजापति। म्हैं तूं सुर इंद्रादिक की थिति ॥३९॥
अरु पाताल लोक कै वासी। पालक मानुष लोक निवासी ॥
विद्याधर गंधर्व अरु चारन। तिन मैं जै प्रभु ताकै धारन ॥४०॥
यछ रछ मैं जै सिरदारा। पितर रिषिनि मैं मुष्य उदारा ॥
दानव दइति सिद्ध तिन मांही। धरत श्रेष्ठता जै अधिकांही ॥४१॥
जल कै जीव प्रेत पसु पंछी। इनहूं मैं जिनकी मति अंछी ॥
तेज लछमी बलहुँ अरु कांती। जिनमैं यै लषियै बहु भांती ॥४२॥
ते सब ही हैं प्रभु कौ रूंपा। अति अगाध करतार अनूंपा ॥
मुष्य प्रभू कै जै अवतारा। कहत रिषिस्वर भलै प्रकारा ॥४३॥
तेहिं अवतार कहत हौं अबैं। हे नारद सुत सुनियैं जु सबैं ॥
जिनकैं सुनैं पाप मिटि जातैं। निर्मल हिय मैं सुष सरसातैं ॥४४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्याय : ॥

(भगवान के लीलावतारों की कथा)

॥ ब्रह्मोवाच ॥

दोहा - प्रिथ्वी उधारन हित भये, जिग्य रूप बाराह॥
हत्यौ दइत हिरनाछ कौं, करी सुरन की चाह॥ १ ॥
रूचि रिषि त्रिय आकूति कै, भये जिग्य अवतार॥
तिनकैं नारी दछिनां, हुव श्री रूप सुढार॥ २ ॥
यांम नांम सुरगन भये, तिन सौं उतपति पाय॥
जिग्य रूप पीड़ा हरी, लोकन की सब भाय॥ ३ ॥

स्वांयभू मनु नृपति की, रिछा करी क्रिपाल॥
भक्त सहायक पूर्न प्रभु, असरन सरन दयाल॥ ४ ॥
देवहूति कर्दम तिया, प्रगट भयै तिन गेह॥
कपिलदेव अवतार हुव, पूरन ब्रह्म अछेह॥ ५ ॥
सांष्य सास्त्र के ग्यांन कौ, किय मातहिं उपदेस॥
जासौं जननी जीति गुन, पाई मुक्ति विसेस॥ ६ ॥
तप करि पुनि भगवांन सौं, सुत मांग्यौ रिषि अत्र॥
दत्तात्रेय अवतार हुव, जिनकै प्रभु पवित्र॥ ७ ॥
राजा जदु तिन सेवतैं, सहसबाहु नर नाह॥
दोउ कृतारथ है गये, लह्यौ मुक्ति सुष लाह॥ ८ ॥
हे नारद म्हैंनैं बउंत, ऊग्र तपस्या कीन॥
सनकादिक अवतार प्रभु, तब म्हैरै ह्याँ लीन॥ ९ ॥
सनक सनंदन सनातन, सनंत कुमार स्वरूप॥
ग्यांन मार्ग भौ नष्ट सौ, उन किय प्रगट अनूप॥१०॥
मूर्ति मात पित धर्म कै, प्रगट आप भगवांन॥
नर नारायन रूप द्वै, हुव अवतार प्रमांन॥११॥
जिनकै तप कौं अपछरा, मेटि सकी नहिं आई॥
विद्या बल बहू भांति सौं, करि करि थकि उपाई॥१२॥
जै कोऊ रिषि तप करत, तिनहिं मोहिबै काज॥
आवत है जब अपछरा, लियैं संग रितुराज॥१३॥
तब वै रिषि अति क्रोध करि, उन्हहिं देत है श्राप॥
जातैं काम रु जीति नहिं, सकै क्रोध कौ ताप॥१४॥
नर नारायन जू दुहूँ, काम क्रोध लिय जीति॥
महासील सत सौं भये, साधत तप की रीति॥१५॥
माई कै कटु वचन सौं, अधिक दुष्ष ध्रुव पाय॥
करन तपस्यां बनहिं गयै, प्रभू सरन चितलाय॥१६॥
ध्रुव बरदाई नाम तब, प्रभु धारि अवतार॥
ध्रुव कौं वर दीनौं भलैं, सबही सुषकौ सार॥१७॥
अबलौं जिनकी क्रिपासौं, सब ऊपर जो लोक॥
राज करत निस्चल तांह, जांह न भय अरु सोक॥१८॥
चल्यौ कुमारग बेणु नृप, मर्यो श्राप द्विज पाय॥
प्रगट भये तिहँ अंग तै, पृथु अवतार सुभाय॥१९॥
सकल पदारथ भूमि तैं, दुहि लीनैं पृथु राय॥
राजनीत राषी जगत, का पैं बरनी जाय॥२०॥
हुती मेरु देवी तिया, नृपति नाभि कै धांम॥
रिषभ देव अवतार तिहुँ, गर्भ भये निहकांम॥२१॥

जड़ से यहिं जग माहिं जै, भये दिषाई देत ॥
धर्म जु संन्यासीनि कै, प्रगट दिषावन हेत ॥२२॥
सांत दांत संसार तैं, न्यारै रहे सभाय ॥
आपहिं अपनैं ध्यान मैं, मगन रहैं सुषपाय ॥२३॥
म्हैरे जिग्य विषै भये, हयग्रीवं अवतार ॥
रूप अश्व कै वेद मय, रंग सु बर्न प्रकार ॥२४॥
प्रगटै जिन्हकै स्वांस तै, चारि वेद बिष्यात ॥
अस्व रूप आसुर बली, ताहि हन्यौं जगतात ॥२५॥
प्रलै काल कै समय मैं, भये मच्छ अवतार ॥
वेद हुतै जल मैं छिपै, तिन्हकौ कियै उधार ॥२६॥
अरु राजा सत्यव्रत विदित, ताकी रिछयां कीन ॥
भक्त बछल तिन्हकौ विरद, रहत सदा आधीन ॥२७॥
देव दैत मिलि करत हे, छीर सिंधु मथांन ॥
हुव कच्छप अवतार तिहिं, समैं मध्य भगवांन ॥२८॥
मंदर पर्वत पीठ पर, धर्यो आप करतार ॥
फिरनैं लाग्यौ पीठ पैं, सो वह मथती वार ॥२९॥
कच्छप जू जान्यौं इहै, षुजत हम्हारी पीठ ॥
तासौं सुष मन मानि कैं, आई निद्रा नीठ ॥३०॥
श्री नृसिंह अवतार हुव, षंभ फारि भगवांन ॥
हरनकस्यपु मार्यो असुर, राषि दास कौ मान ॥३१॥
प्रहलादहिं दिय अभय पद, दीन सहायक नाथ ॥
टार्यो दुष तिहुँ लोक कौ, भक्त भीर कै साथ ॥३२॥
ग्राह ग्रह्यौ गज कौ चरन, सक्यौ न ताहि छुडाय ॥
बोल्यौ गज लै कमल कौं, ऊँचे सूंडि उठाय ॥३३॥
आदि पुरूष अषिलेस प्रभु, तुम्ह जस तीर्थ समांन ॥
नांम रावरौ है सही, मंगल रूप निदांन ॥३४॥
हाथी कौ यहि वचन सुनि, धरि प्रभु हरि अवतार ॥
चक्र सुदर्शन हाथ लै, आयै गरुड़ सवार ॥३५॥
चक्र सुदर्शन सौं तांह, काटि ग्राह कौ सीस ॥
गज कौ कियौ उधार हरि, आदि पुरुष जगदीस ॥३६॥
कस्यप की तिय अदिति कै, वामन उतपति लीन ॥
जोर चल्यौ नहिं भक्त पैं, मांगि लोक लिय तीन ॥३७॥
बामन जू कौ बलि नृपति, चरनोदक सिरधारि ॥
प्रभुहिं अपनपौ दै चुक्यौ, महा सुजस विस्तारि ॥३८॥
ह्वै हैं आगैं इंद्र तूं, बलि कौ यहि वर दीन ॥
हुतौ न वर बलि जोगि यहँ, प्रभू ठग विद्या कीन ॥३९॥

धारि हंस अवतार प्रभु, हम्हहिं तुम्हहिं दिय ग्यांन ॥
जानत हैं जिहिं ग्यांन कौं, हरिकै भक्त सुजान ॥४० ॥
अरु चबदह मनु होत हैं, बिधि कै इक दिन मांहिं ॥
चवदह ही अवतार हूँ, ईश्वर कै प्रगटांहिं ॥४१ ॥
ते रिछ्या भुव की करत, दुष्टन कौं दे दंड ॥
प्रगट करत हैं जगत मैं, अपनी कीर्ति अषंड ॥४२ ॥
धन्वन्तर अवतार ह्वै, किय वैदक विषयात ॥
जिनकैं नांम प्रताप सौं, रोग नरन कौ जात ॥४३ ॥
जिनकौं सब कौ देत हैं, भाग जिग्य कै मांहिं ॥
प्रभु लीला अनपार हैं, पार लहत जग नांहिं ॥४४ ॥
छित्री द्विज द्रोही भये, निजु मारग तजि दीन ॥
परसराम अवतार तब, द्विज रिछया कौं लीन ॥४५ ॥
फरसी लै करि हाथ मैं, प्रभु आप जगदीस ॥
करत भये छित्री रहित, प्रिथवी बेर इकीस ॥४६ ॥
हम्ह पैं प्रभु अति क्रिपा करि, नृप इक्ष्वाकु कै वंस ॥
भये राम अवतार भुव, दसरथ गेह प्रसंस ॥४७ ॥
सिय लछिमन जुत बन बसे, पितु अग्यां प्रभु पाय ॥
रावन पायौ नास कौं, तिन्हसौं बैर बढाय ॥४८ ॥
मारग दयो समुद्र नैं, जिन्हकौं भय उर आन ॥
तिनकै नांम प्रभाव तैं, जल पर तिरै पषान ॥४९ ॥
तनक क्रोध प्रभु कै करत, ज्वाला बढी कराल ॥
जासौं जीव समुद्र कै, जरन लगै तिहुँ काल ॥५० ॥
जिहँ रावन कै ह्रदै लगि, ऐरावत कै दंत ॥
तूटि गिरे रद दिसन मैं, ऐसौ षल बलवंत ॥५१ ॥
सीताजू कौ हरन जिन, पापी किय छल ठांनि ॥
ताकौं हति रघुपति सिया, लै आए निज थांनि ॥५२ ॥
दुषित होत है अवनि जब, असुरन कै अघ भार ॥
ह्वै हैं मेटन तिहुँ विपति, रामकृस्नं अवतार ॥५३ ॥
जिन्हकी प्रभुता जगत कौं, जांनी परि हैं नाहिं ॥
प्रगट होइगी चरित सौं, ईस्वरता उनमांहिं ॥५४ ॥
छठी दिवस हति हैं बकी, सकटासुर त्रय मास ॥
घुंटवन चलितैं तारि हैं, लषि जमलार्जुन दास ॥५५ ॥
करि है बृज कैं गौप पसु, काली विष जल पांन ॥
तिनहिं जिवैहैं क्रिपा करि, ब्रज पति क्रिपा निधांन ॥५६ ॥
सुद्ध करन कौ जमुन जल, दै हैं नाग निकारि ॥
काली बिन भय गरुड तैं, करि है निज पद धारि ॥५७ ॥

ताहीनि समैं प्रगटि हैं, दावानल अधिकाय॥
तासौं गोपी ग्वाल सब, लै हैं कृस्नं बचाय॥५८॥
ग्रीषम मैं बन बिच बहुरि, अगनि प्रगटि है आय॥
अग्नि पान करि हैं प्रभू, ग्वालनि दृग मुदवाय॥५९॥
प्रभु कौं बांधन ल्याय हैं, माता सब ब्रज दांम॥
तऊ न बांधे जाय है, क्यौंहूँ सुंदर स्यांम॥६०॥
लेत उबासी मुषहिं मधि, सब ब्रंहमंड निहारि॥
ह्वै हैं संका माय मन, कछु धरि ग्यांन बिचारि॥६१॥
वरून लोक तैं ल्याय हैं, बाबा नंद छुडाय॥
व्यौमासुर तैं करहिंगे, गोपन की जु सहाय॥६२॥
दिन मैं गृह कारज करत, निसा नींद मैं जाय॥
अैसै गोपन दैहिंगे, प्रभु बैकुण्ठ दिषाय॥६३॥
करि है नहिं जब इंद्र कौ, जिग्य सबै वृज गोप॥
करन नास बृज बरसिहैं, महा इंद्र करि कोप॥६४॥
तब बृज की रिछया करन, मैटन घन उतपात॥
गोबर्धन प्रभु हाथ पैं, राषैंगे दिन सात॥६५॥
सरद समैं प्रभु करहिंगै, अदभुत लीला रास॥
सुनत बैन गोपीन कैं, ह्वै हैं मदन प्रकास॥६६॥
हरि लै चलि हैं गोपिका, संषचूड़ तिहिं बार॥
तब करि हैं श्री कृस्नं प्रभु, तिहूँ षल कौ संघार॥६७॥
बक प्रर्लंब केसी वृषभ, धेनुक मल गज कंस॥
कालजिवन साल्व रु द्विविद, संवर रुकमि नृसंस॥६८॥
भौमासुर बल्बल असुर, दंत बक्र जुत भ्रात॥
बासुदेव मिथ्या सहित, प्रभु हति किय विष्यात॥६९॥
कैकय कुरु कांबोज अरु, मत्स आदि जै देस॥
ऐ हैं प्रभु सौं जुध करन, तिनकै सकल नरेस॥७०॥
जिनहिं आप प्रभु मारि हैं, अरु कैं और नृपाल॥
तै सब अर्जुन भीम पैं, बिनसै हैं सुर साल॥७१॥
अलप आयु बुधि नरनकी, ह्वै हैं समय प्रताप॥
जासौं पूरन वेद चहुँ, करि न सकेंगे जाप॥७२॥
सत्यवती कै व्यास प्रभु, तब ह्वै हैं अवतार॥
यैक वेद के करहिंगै, बांटि बिभाग सु चार॥७३॥
जबै असुरहूं चालि हैं, वेद पंथ कै मांहिं॥
तासौं बल लहि असुर गन, बय पावैंगे नांहिं॥७४॥
अरु विमानमय असुर त्रय, दै हैं भलैं बनाय॥
तिन्ह पैं चढि दुष दैहिंगै, लोकनि कौं अधिकाय॥७५॥

उनहिं मोहिबेकौं तबैं, ह्वै हैं बुध अवतार ॥
जैन मार्ग प्रगटाय हैं, हरि लै हैं बुधिसार ॥७६॥
अरु जब प्रभु की कथा हूं, कहूँ रहैगी नांहि ॥
द्विज पाषंडी हौंहिंगे, सूद्र राज अधिकांहिं ॥७७॥
तब कलि जुग कै अंत मैं, धरि किलकी अवतार ॥
थापि धर्म मरजाद कौं, करि हैं दुष्ट संघार ॥७८॥
सृष्टि उपज कै समैं मधि, इतनै लहत उदोत ॥
तप अरु ब्रह्मा रिषि अमर, नव परजापति होत ॥७९॥
पालन ताकै समैं मनु, जिग्य धर्म भुवपाल ॥
प्रलै समैं सिव सर्प अरू, असुर अधर्म बिसाल ॥८०॥
यै बिभूति भगवांन की, समझि लेहु मन मांहिं ॥
प्रिथिवी रज कन गिनि सकैं, प्रभु गुन गनैं न जांहिं ॥८१॥
वामन ह्वै ब्रह्मांड जिन, मापि चरन सौं लीन ॥
चरन वेग तैं विस्व सबै, कंपित थंभन कीन ॥८२॥
म्हैं हूँ अरु रिषि सप्त हूं, लहत न प्रभु कौ अंत ॥
पाय सकै को पार कौं, प्रभू अपार अनंत ॥८३॥
सेस सहस मुष सौं कहत, नित नव गुन चित धारि ॥
तऊ पार पावत नाहिं, थकित होत सु बिचारि ॥८४॥
छांडि कपट जै पदकमल, सेवत है भगवांन ॥
तिन्हपर प्रभु कृपा करै, दैहिं अभय पद दांन ॥८५॥
ग्यांन पाय हरि भक्ति कौ, तैं माया तरि जांहिं ॥
स्यार स्वान भष देह मैं, ममता मानत नांहिं ॥८६॥
प्रभु माया कैं तत्व कौं, जानत इतै सुजांन ॥
तिनकौं अब हौं कहत हौं, तो सौं भलै बषांन ॥८७॥
म्हैं तू सिव प्रहलाद ध्रुव, स्वायंभू हनुमान ॥
सति रूपा रानी जनक, प्रियव्रत पाद उतान ॥८८॥
रिभु रघु गाधि पुरूरवा, अंबरीष इक्ष्वाकु ॥
अंग सगर मुचकंद गय, आर्ष्टिषेण महावाकु ॥८९॥
मान्धाता रु अलर्क्क बलि, सतधन्वा रँतिदेव ॥
भृगु जजाति भीष्म विर्दु सुक, अमूर्तरय अन भेव ॥९०॥
नृप दिलीप सौभरि उधव, सिवि उतंक पिपलाद ॥
भूरिषेन अरु परासर, देबल अरु बर्हिषाद ॥९१॥
पांडव अर्जुन विभीषन, पुनि ब्राह्मन श्रुतदेव ॥
इतनैं जानत हैं भलैं, प्रभु माया कौ भेव ॥९२॥
अंतिज नारी सूद्र पुनि, पापी जीव अनैंक ॥
पसु पंछीलौं जात तरि, सतसंग पाय विवैंक ॥९३॥

सदा सांत अरु भय रहित, ग्यांन सुद्ध सम रूप॥
कारिज कारन तैं परैं, पूरन ब्रह्म अनूप॥ ९४॥
वेदहू जाकौ कहत है, नेति नेति भगवांन॥
माया हूँ जिहिं सामुँहैं, रहत न सकुचि निदांन॥ ९५॥
सोक रहित सुष रूप निति, ब्रह्म कहत है जांहि॥
मन बस करि ग्यांनी सबै, पावत हैं पुनि तांहि॥ ९६॥
तब सब साधन छोडि कछु, किहुँ सूँ रहै न कांम॥
कूपादिक साधन तजै, आप मेघ ह्वै तांम॥ ९७॥
अरु निर्धन उद्यम तजै, होय इंद्र तिहिं जांम॥
प्रभु सबकै कल्यान कैं, दाता हैं बहु नांव॥ ९८॥
करम फलन कैहुं वेई, दाता हैं भगवांन॥
गिरत सरीर तउ नाहिंन, आतम नासन वांन॥ ९९॥
हम्ह तुम्ह सौं बरन्यौं इहै, प्रभु कौ भेद अनूप॥
जै पदार्थ जग माहिं तैं, सबै ब्रह्म कौ रूप॥ १००॥
इहँ भागवत पुरांन कौ, प्रभु किय मौ उपदेस॥
सो म्हैं सब संछेप करि, बरनन कियो असेस॥ १०१॥
जासौं प्रभु की भक्ति सब, जगमाहीं सरसाय॥
ऐसी विधि बर्नन करौ, अति बिसतार बनाय॥ १०२॥
प्रभु की माया कौ करै, सुनैं जु बर्नन कोय॥
तौ माया सौं जीव यहि, मोहित कबहूँ न होय॥ १०३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्याय : ॥ ७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(राजा परीक्षित के विभिन्न प्रश्न)

॥ राजोवाच॥

दोहा - हरिगुन वर्नन करन की, जब विधि आग्यां दीन॥
तब नारद किहिं किहिंन सौं, हरिगुन वर्नन कीन॥ १॥
हे सुक वकता वेद कै, मोहि जानन जु चाहि॥
सो आछैं समझाय कैं, कहौ बात अवगाहि॥ २॥
अदभुत जिन्हकौ पराक्रम, ऐसे जै जगदीस॥
तिन गुन मंगल करन सब, लोकनि बिस्वाबीस॥ ३॥
तुम्ह मौसुं कहो हरि कथा, करि कैं भलैं बषांन॥
हूँ मन दै जिहिं कथा मैं, छोड्यौ अपनैं प्रांन॥ ४॥

कहैं सुनैं हरिगुन कोउ, तौ ताकै हिय ठांहिं॥
प्रभु बिराजै आय कैं, थोरे ही दिन मांहिं॥५॥
हिर्दै कमल मैं श्रवन मग, प्रभु विराजै आंय॥
तब ता नर मन कै सबै, दैहि पाप बिनसांय॥६॥
ज्यौं पानी कौं सरद रितु, अति निर्मल करि देय॥
तइसैं अपनैं दास कौं, प्रभु सुद्ध करि लेय॥७॥
जबै मनुष मनकौ सबै, मैल दूरि ह्वै जात॥
तब कलेस बहु भांति तैं, मिटि अति सुष सरसात॥८॥
अरु हरि चर्ननकौं तबैं, नर फिरि छोड़ै नांहिं॥
राहगीर गृह आय कैं, ज्यौं नचिंत ह्वै जांहिं॥९॥
काहू कारन सौं लग्यौ, जीवहिं यहै सरीर॥
कै लाग्यौ है सहज ही, सौ कहियै मति धीर॥१०॥
अरु ईश्वर ही कैं सुन्यौं, हो सरीर उनमांन॥
नाभि कमल जिनकै बनैं, चवदह लोक सथांन॥११॥
जीवहिं लग्यौ सरीर त्यौं, ईश्वरहुं अनुसार॥
तौ ईश्वर अरु जीव मैं, कहा भेद परकार॥१२॥
अरु ईश्वर की तौ सुनी, महिमा अैसैं भाय॥
बिधिहूं उनकी क्रिपा सौं, दियो जगत प्रगटाय॥१३॥
पुनि उन नाभी कंज तैं, बिधि जब उतपति लीन॥
तब प्रभु ही की क्रिपा सौं, प्रभु कौ दरसन कीन॥१४॥
उतपति पालन प्रलय जग, कर्ता जै भगवांन॥
अपनी माया छोडि कैं, सोय रहत किहिं थांन॥१५।
कहुं तुम्ह कह्यौ विराट कै, अंगनि करियै लोक॥
अरु कहूँ कह्यौ विराट कै, अंगहिं लोकनि वोक॥१६॥
कल्प विकल्प विचारिए, जासौं लषियत काल॥
अरु सुर नर की आयु कौ, कहौ प्रमांन विसाल॥१७॥
हे द्विज सत्तम काल की, वर्तनी सूछिम थूल॥
कर्मनि करि जिन थांनकनि, प्रापति कहौ समूल॥१८॥
सत रज तम धारन करम, करिकैं जीव उपाय॥
कौन देव अधिकार कौं, पावत कहौ सुनाय॥१९॥
माया कै गुन कौन सौं, जन्म कौन सौं होत॥
मोहि कहौ समझाय कैं, सबही भेद उदोत॥२०॥
भुव पताल ग्रह नभ दिसा, पर्वत नदी नछित्र॥
सिंधु द्वीप वासीनन की, उतपति कहौ विचित्र॥२१॥
बाहरि मधि ब्रह्मंड है, कितौ बडौ विस्तार॥
और चरित्र बडेन कौ, कहियैं भलैं प्रकार॥२२॥

निश्चै वर्णाश्रमनीकौ, आछैं करौ बषांन॥
हरि अवतार चरित्र अरु, चहुँ जुग कौ परिमांन॥२३॥
साधारन रु विसेस नर, धर्म कहौ समझाय॥
राजरिषिन कै धर्म सब, तेऊ कहौ गनांय॥२४॥
अरु जु विपति मैं धर्म विधि, कइसैं साधी जांय॥
तत्वन की गनतीक है, अरु तिहुँ लछिन सुभाय॥२५॥
प्रभु आराधना विधि कहौ, अरु विधि जोग बिचार॥
प्रभुता जोगेस्वरनि की, तनकौं त्याग प्रकार॥२६॥
जितै बेद उपबेद जै, अरु पुरांन इतिहास॥
तिनकौं कहौं प्रकार सब, तुम्ह कौं है अभ्यास॥२७॥
अरु उपजनि प्रानीनिकी, पालन प्रलय प्रकार॥
पूर्नकाम अरु इष्ट गति, कर्म धर्म बिसतार॥२८॥
अर्थकाम पाषंड बिधि, जीवन जन्म उदोत्त॥
आत्मा कौं बंधन अवर, मोछ भांति किहिं होत॥२९॥
अपनी माया करि प्रभु, ज्यौं अपनैं आधीन॥
क्रीड़ा करै रु तजि प्रकृति, न्यारौ रहैं अलीन॥३०॥
म्हैनैं प्रस्नं कियै जितै, तुम्ह सब कहौ सुनाय॥
हूं जु सरन हौं रावरै, यै हौ सुक रिषि राय॥३१॥
विधिसम ज्यौं सब बात कैं, तुम्ह हौ जांननहार॥
बचन तिहारौ रिषिसबै, मांनत हैं निरधार॥३२॥
अन सन व्रत लीनौ तंऊ, म्हैरे प्रांन न जात॥
हरि गुन अमृत पांन करि, मोकौं सुष सर सात॥३३॥
सूत कहत अभिमन्यु सुत, पूछी कथा पवित्र॥
तब प्रसंन अतिही भये, श्री सुक देव बिचित्र॥३४॥
ब्रह्मा कल्प मैं भागवत, विधिहिं कह्यौ भगवांन॥
सोइ भागवत नृपहिं सुक, लागै करन बषांन॥३५॥
भूप परीछित जिहुँ क्रमनि, कीनैं प्रस्नं सुभाय॥
ताही विधि उत्तर सबै, दैंन लगै मुनिराय॥३६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कंधे भाषा ब्रज दासी
कृते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्याय : ॥

(ब्रह्माजी का भगवद्धाम दर्शन तथा भगवान के द्वारा उन्हें चतुश्लोकी भागवत का उपदेश)

॥ सूत उवाच ॥

दोहा - कहत भये सुक जीव कौं, झुठौ देह संबन्ध॥
ईश्वर की माया बिना, होत नहिं याहिं धन्ध॥ १ ॥
जितनौं माया कौ बन्यौ, देह समंध विधांन॥
सौ सब झूठौ है सही, सुपन पदारथ मांन॥ २ ॥
जूवा वृध बालक तिहूँ, देहहि कै हैं रूप॥
मानि लेत है जीव यहि, मोह्यौ प्रकृति अनूप॥ ३ ॥
जीव आपनैं रूप कौं, जबै लेत पहिचांनि॥
अहंता ममता छोडि तब, होत उदास निदांन॥ ४ ॥
ग्यांन होत है जीव कौं, हरि कै भजन प्रताप॥
अरु माया तैं जीव कौं, भयो सरीर सथाप॥ ५ ॥
परमानंद सरूप है, ईश्वर कौ जू सरीर॥
सोइ रूप बिधि कौ प्रभु, दिषयौ गुन गंभीर॥ ६ ॥
प्रभु कह्यौ मो भजन तैं, होत जीव कौं ग्यांन॥
सोइ कथा विस्तार सौं, अबहूँ कहत बषांन॥ ७ ॥
प्रभु कै नाभी कंजतैं, एक समैं मुष चार॥
प्रगट होय ईच्छा करी, रचना सृष्टि उदार॥ ८ ॥
पैं सामर्थि न बिधि लष्यौ, रचन सृष्टि अपमांहिं॥
तबैं सोच करिकैं रह्यौ, चतुरानन उहिं ठाहिं॥ ९ ॥
फिरि विधि इक दिन जल विषै, तप तप सुन्यौ जु बैन॥
सोच कियो या वचन कौ, बकता है किहिं अैन॥१०॥
चतुरानन तिहिं ठौर तब, देष्यौ नहिं कौ आंन॥
तपस्या तब लागै करन, ह्वै प्रभु सरन सुजांन॥११॥
ग्यांन वंत बिधि आपनौं, स्वांस रोकि तिहिं बार॥
जीति सबै इंद्री कर्यो, बहु तप भलै प्रकार॥१२॥
ब्रह्मा पैं भगवांन तब, अति प्रसंन्न ह्वै आप॥
अपुन लोक बैकुंठ प्रभु, दिषयौ मेटि संताप॥१३॥
मोह कलेस रु काल भय, रज तम प्रकृति जहाँन॥
सुद्ध सत्वगुन बैष्णव, बसत नित्य तिहुँ थांन॥१४॥

बसत सदा बैकुंठ मैं, जितै प्रभु कै दांस॥
जिनकी पूजा करत है, सुरगन मानि हुलांस॥१५॥
वासी जै बैंकुंठ कै, सब हैं सुंदर स्यांम॥
नैन कमल सै चतुरभुज, भली कांति अभिरांम॥१६॥
मकराकृत कुंडल श्रवन, पीत बसन सुकुमार॥
धरैं मुकट बनमाल अरु, मनि आभर्न अपार॥१७॥
तिय जुत देव विमान सौं, यौं सोभित वहि लौक॥
ज्यौं सोभित आकास अति, घन बिजुरी कौ चौक॥१८॥
रमा हिंडोरैं झुलति हैं, गावत पीय चरित्र॥
भ्रमर करत गुंजार जांह, अदभुत ठौर पवित्र॥१९॥
प्रभु कै चरन सरोज कौं, लछमी पूजत नित्त॥
तिनहीं मैं निसद्यौस पुनि, लाय आपनौं चित्त॥२०॥
नंद सुनंद अर्हण प्रबल, पार्षद अैसै नांम॥
आसपास ठाढै करत, प्रभु सेवा सुष धांम॥२१॥
भक्तन कै पति जिग्यपति, लछमी तासौं रक्त॥
तिहिं प्रभु कौ वैकुंठ मैं, दरसन किय विधि भक्त॥२२॥
मंद हँसनि दृग अरुन सुभ, प्रभु आनन अभिरांम॥
सीस मुकट कुंडल श्रवन, भुजा चारि तन स्यांम॥२३॥
पीताम्बर अद्‌भुत धरैं, रमा चिन्ह उर मांहिं॥
सुषद सिंघासन परि तहँ, बैठे छबि सर सांहिं॥२४॥
ह्वै प्रसंन बिधि वोर प्रभु, देषत परम कृपाल॥
चित्त मैं अपनौं दास करि, जानत दीन दयाॅल॥२५॥
अैस्वर्यादिक छह गुननि, जुत सोभित भगवांन॥
सेवा जिन्हकी करत हैं, तत्व पच्चीस प्रमांन॥२६॥
विधि कैं अति आनन्द भयो, अैसै प्रभु कौं देष॥
भये सजल दृग प्रेम करि, तन रोमांच बिसेषि।२७॥
प्रभु कै चर्नन कौं कियौ, चतुरानन परिनांम॥
हाथ पकरि बिधि कौ प्रभू, कहै बचन अभिरांम॥२८॥
यहि विचार हरिहूं कियौ, जोगि बनावन सृष्टि॥
निस्चै ब्रह्मा ही सही, और न आवत दृष्टि॥२९॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

प्रभू कहत विधि साधि तप, मुदित कियौ तैं मोंहिं॥
कियैं तपस्यां कपट सौं, मौ चित प्रसंन न होंहिं॥३०॥

हे ब्रह्मा वर मांगि तूँ, हूँ पूरन वरदांनि॥
सकल तपस्यां फल याही, मौ दरसन यहि जांनि॥ ३ १ ॥
म्हैंरी ईच्छा सौं करी, तैं तपस्यां मुषचार॥
अरु मौ लोकहुँ कौ भयौ, दरसन तोहि सुढार॥ ३ २ ॥
तोकौं तपस्यां करन की, म्हैं हीं आग्या दीन्ह॥
म्हैरो आत्मा अरु हिर्दै, तपस्यां तू चित चीन्ह॥ ३ ३ ॥
उतपति पालन पुनि प्रलय, तिहूँ भांति बिबहार॥
तपस्यां कै बल सौं करत, हौं कारज संसार॥ ३ ४ ॥

॥ ब्रह्मोवाच॥

यहि सुनि विधि बोलै अहौ, प्रभु सबकै हिय मांहिं॥
अंतरजामी रूप हौ, तुम्ह तैं अंतर नांहिं॥ ३ ५ ॥
अपनै ग्यांन प्रताप सौं, हौं स्वांमी करतार॥
सकल मनोरथ सबनि कै, तुम्ह जानत निरधार॥ ३ ६ ॥
हूँ वर जाचनां करतहुं, दीजै मोहि सु नाथ॥
तुम्ह जानत हौं हीं सबै, कहा कहौं म्हैं गाथ॥ ३ ७ ॥
सूछिम और सथूल है, जगत तिहारौ रूप॥
ताकौं हूँ जानौं भलैं, अद्भुत भेद अनूप॥ ३ ८ ॥
अरु जइसैं तुम्ह आपनैं, माया जोग प्रकार॥
उतपति पालन प्रलय जग, करत रूप बहुधार॥ ३ ९ ॥
जइसी बिधि सौं आपही, मकरी तार उपाय॥
क्रीड़ा करि बहुभांति तैं, आप निगलि पुनि जाय॥ ४ ० ॥
त्यौं ही तुम्ह रचि जगत यहि, क्रीड़ा करि अनपार॥
ईच्छा अपणी तैं बहुरि, करौ जगत संघार॥ ४ १ ॥
तत्व यहै बिबहार कौ, मोहि परै सबि जांनि॥
अैसौ वर दीजै प्रभू, मो बिनती मन आंनि॥ ४ २ ॥
लहि आग्यां म्हैं रावरी, रचि हौं सृष्टि प्रबंध॥
यामैं मोकौं होय नहिं, अहंकार सनमंध॥ ४ ३ ॥
तुम्ह मोकौं अपनौं सषा, कीनौं है करतार॥
अरु आग्या दीनी प्रभू, उपजावन संसार॥ ४ ४ ॥
इन्ह बांतन सौं मोहि कछु, होय नाहिं अभिमांन॥
करहूँ अनुग्रह अस कछू, मो ऊपर भगवांन॥ ४ ५ ॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

याहि सुनिकै बोलै प्रभु, विधि सौं अमृत बांनि॥
कृपासिंधु करिकै क्रिपा, दास आपनौं जांनि॥ ४ ६ ॥

भक्ति सहित अनुभव सहित, परमतत्व सुभग्यांन॥
म्हैं तोसौं अब कहत सौ, सुनि मुषचारी सुजांन॥४७॥
जइसी सता मौंम अवर, रूप करम गुन रीति॥
तत्व ग्यांन सोइ तौहि सब, ह्वै हैं मानि प्रतीति॥४८॥
म्हैरे कृपा प्रभाव तैं, तू लहि हैंसबै तत्व॥
यहि वर तोकौं म्हैं दयौ, अति प्रसंन ह्वै चित्त॥४९॥
हूँ पहलैं या सृष्टि कै, रह्यौ येक यहि जांन॥
अरु मो माया ही रही, मोमैं लीन निदांन॥५०॥
पाछैं हूं या जगत कै, हूँ ही रहि हौं येक॥
अरु म्हैरौ ही रूप हैं, सब जग भांति अनेक॥५१॥
कछू नाहिं अरु दैषियै, बस्तु झूठ अनुभाव॥
जइसै ससि द्वै नाहिंनै, दृष्टि दोष दरसाव॥५२॥
अरु सांचौ है पैं तऊ, देत दिषाई नांहिं॥
जइसै राहु न देषियै, है नव ग्रह कै मांहिं॥५३॥
देत दिषाई ब्रह्म मैं, जूठौ जग विस्तार॥
सौ यहि निश्चै जानियैं, माया रूप प्रकार॥५४॥
अरु सांचि है ब्रह्म कौ, रूप सदा निहकांम॥
दीसि परत है सो नाहिं, प्रकृति वोट तिहँ धांम॥५५॥
छौटे बडै पदार्थ मैं, महाभूंत ज्यौं पंच॥
पैंठै सैं लषि परत हैं, पैंटै हैं नहिं रंच॥५६॥
तइसैं म्हैं सब माहिं हौं, अरु न्यारै हूं भांय॥
म्हैरौ आदि न अंत कोउ, सकैं पार नहिं पांय॥५७॥
जान्यौं चाहै तत्व जौ, इतौ जानिबौ तांहि॥
परमैस्वर सब ठौर है, सबकौं कारन आंहि॥५८॥
न्यारौ हूं हैं सबनि तैं, सत्य अैक भगवांन॥
और प्रकृति कौ षेल है, झूठौ जगत विधांन॥५९॥
म्हैरौ मत जो जानि हैं, कल्प बिकल्पन मांहिं॥
ब्रह्मा तू क्यौं हूं कबहुँ, मोहित ह्वै हैं नांहिं॥६०॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि बिधि कौं प्रभू, आग्या दै इहिं भाय॥
अंतरध्यांन जु आप हुवे, तत्व ग्यांन दरसाय॥६१॥
ब्रह्मा जू भगवांन कौं, नमसकार करि फेरि॥
करत भयै रचना भलैं, सबै सृष्टि उरझेरि॥६२॥

परजा कैं पति धर्मपति, अैसै विधि तिहुँ थांन॥
करत नेम यम भली विधि, बैठे रहै सुजांन॥६३॥
पुत्रनि मैं प्यारै अधिक, नारद जू तिहिं बार॥
करन लगै सेवा तबैं, पितुकी भलैं प्रकार॥६४॥
प्रभूमाया कै तत्व कौ, नारद जानन हेत॥
करत भयै संतुष्ट पितु, चित अति प्रेम समेत॥६५॥
नारद जू पूछत भये, बिधि प्रसंन अति देषि॥
जो कछु तुम्ह पूछी हम्हहिं, अद्‌भुत बात बिसेषि॥६६॥
दस लच्छिन संजुक्त तब, श्री भागौत पुरांन॥
नारद सौं ब्रह्मा कह्यौ, जो प्रभु कियो बषांन॥६७॥
व्यास सरस्वती नदी तट, कहत रहै हरि ध्यांन॥
नारद जू तिनसौं कर्यौ, श्री भागौत बषांन॥६८॥
प्रस्नं कियौ हौ तैं नृपति, या विराट कै रूप॥
कइसैं उपजै लोक सब, सोहूँ कहूँ अनूप॥६९॥
औरहुँ सब तुम्ह प्रस्न कौ, उत्तर देहुँ बनांय॥
राजा सुनियै श्रवन दै, आछैं चित्त लगांय॥७०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते नवमोऽध्याय: ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽधयाय: ॥

(भागवत के दस लक्षणों का वर्णन)

॥ श्री सुक उवाच॥

दोहा - सुक कहत कि या भागवत, बिच दस लच्छिन सार॥
सोइ कहौं बषांनि अबै, आछैं करि विसतार॥ १ ॥
सर्ग विसर्ग स्थान अरु, पोषन ऊति सुजांनि॥
मन्वन्तर ईशानुकथा, और निरोध जु मांनि॥ २ ॥
मुक्ति और आश्रय दसौं, ए सब लच्छिन नांमि॥
नव लच्छिन सौं जानियैं, आश्रय अति अभिरांम॥ ३ ॥
भई प्रकृति अरु पुरुष तैं, उतपति तत्व चौबीस॥
सर्ग जु याकौ नांम हैं, सुनि लीजै अवनीस॥ ४ ॥

ब्रह्मा तैं संसार की, उतपति भई सुढार॥
याकौ नांम विसर्ग हैं, सुनि नृप बुद्धि उदार॥ ५ ॥
प्रभू चतुर्दस लोक की, पालत हैं मरजाद॥
स्थिति जु नांम ताकौ कहत, सुनत होत अहलाद॥ ६ ॥
सब परि हरि अनुग्रह करत, पोषन ताकौं जांनि॥
ऊति 'वासना' 'धर्म सुभ', मन्वन्तर पहिचांनि॥ ७ ॥
चरित जु पुरुष बडेनकौ, समझि कथा ईसांन॥
जीवनि जुत हरि कौ सयन, सौ निरोध पहिचांन॥ ८ ॥
तजि सरीर अभिमांन कौं, जानैं अपनौं रूप॥
ताकौ नाम जु कहत हैं, पूरन मुक्ति अनूप॥ ९ ॥
जासौं उतपति प्रलय विधि, सबै जगत की हौय॥
जोई ब्रह्म परमातमा, आश्रय कहियै सोय॥१०॥
अधि दैविक अध्यातमिक, अधिभूतिक तिहुँ भाय॥
प्रगट भयो सब जगत यहि, प्रभु ईच्छा कौं पाय॥११॥
द्रष्टा इन्ह तीनौंन कौ, सो परमातम जांनि॥
ताही कौं आश्रय कहत, अब तिहुँ कहूँ बषांनि॥१२॥
हुव न्यारै ब्रह्माण्डतैं, जबैं आप भगवांन॥
तब अपनैं बसिबै लियैं, प्रगट कियौ जलथांन॥१३॥
बसै आप करता पुरूष, जब वाही जल ठांम॥
ताही तैं भगवांन कौ, हुव नारायन नांम॥१४॥
काल कर्म रु स्वभाव द्रव्य, जीव जुक्त यै पंच॥
जिहँ नारायन कृपा तैं, तब कछु करत प्रपंच॥१५॥
वै नारायन जब चहैं, धारत रूप अनंत॥
तब माया करि वीर्य अप, त्रिविधि रच्यौ भगवंत॥१६॥
अधि दैवक अध्यातमक, अधिभूतिक तिहुँ रूप॥
बीर्ज भयौ आगैं सोइ, बर्नन करौं अनूप॥१७॥
चेष्टा किय इन्ह पुरुष जब, तातैं उपज्यौ प्रांन॥
प्रानहिं तैं इंद्री सबै, है चैतन्य निदांन॥१८॥
जब विराट कै प्रांन भौ, लगी भूष अरु प्यास॥
ताकैं लीनैं प्रथमहीं, प्रगट्यौ मुष सु प्रकास॥१९॥
तालू जिह्वा मुषहिं मधि, प्रगट भये फिरि दोय॥
जिनकौं रस बहु भांति कौ, आछैं लैनौं होय॥२०॥

अरु विराट बोलन चह्यौ, जबही ताही बेर॥
प्रगट्यौ मुष कौ देवता, अग्नि सु जानौं फेर॥२१॥
जब निरोध प्रगटत भयौ, याकौ जल कै मांहिं॥
घ्राण नासिका पवन गंध, प्रगट भये इहिं ठांहिं॥२२॥
जबै देषिबै की भई, याकौं ईच्छा आय॥
दृग चक्षु इंद्री प्रगटि तब, रवि सौं रूप लषाय॥२३॥
अरु जब सुनबै की भई, ईच्छा याकैं चित्त॥
श्रोत्र इंद्री रु करन दिस, जासौं सुनियत नित्त॥२४॥
सीरौ उष्ण कठौर अरु, कोमल लघु गुरु भार॥
जान्यौं चाहत कौं लग्यौ, यहि विराट निरधार॥२५॥
तबैं त्वचा इंद्री भई, याकैं प्रगट सुभाय॥
जासौं सबही बस्तु कौ, सपरस होत जु आय॥२६॥
कारिज करिबै की जबैं, ईच्छा उपजी यांहि॥
हाथ रु बल पुनि देवता, इंद्र भयो तिन मांहि॥२७॥
अरु चलिबौ चाहित भयौ, तब प्रगटै पगदौय॥
विष्णु देवता चरन कौ, जिहँ बल सौं गति होय॥२८॥
स्वर्ग पुत्र रति चाहि भई, प्रगट्यौ सिस्न सुभांय॥
इंद्री लिंग प्रजापती, देव बस्यौ तहँ आंय॥२९॥
जब मल त्यागन करन की, याकौ उपजी चांह॥
प्रगट्यौ पायु गुदा तबै, मृत्यु देव तिहिं मांह॥३०॥
अैक देह तैं दुतिय मैं, कियौ मनौरथ जांन॥
नाभिद्वार प्रगट्यौ तबैं, तिहँ तैं मृत्यु प्रमांन॥३१॥
अनपानी संग्रहन की, ईच्छा भई सभेव॥
कूक्षि अंतनाडी भई, नदी सिंधु हुव देव॥३२॥
अपनी माया कौ जबैं, चाह्यौ करन विचार॥
हृदौ भयौ इंद्री जु मन, ससि सुरति हूँ उदार॥३३॥
त्वचा चर्म मज्जा अस्थि, मांस रुधिर अरु मेद॥
प्रिथ्वी अग्नि जल अंस यै, सात धात कै भेद॥३४॥
प्रगट भयो है प्रान सौं, चेतन सक्ति प्रसंस॥
जल आकास रु वायु इन, तिहूँ ठौर कौ अंस॥३५॥
यहि सुभाव इंद्रीन कौ, रहत विषै मधि लागि॥
सबै विषै अहंकार तैं, प्रगट भयो है जागि॥३६॥

अरु मन तैं उपजनि लहत, जितै प्रकार विकार॥
जग मैं सबही बात कौ, करत बुद्धि निरधार॥३७॥
यहि विराट भगवांन कौ, तुम्हहिं कह्यौ हम्ह रूप॥
अरु या रूपहिं कौ लगै, अष्टाबर्नउ अनूप॥३८॥
कारन थूल सरीर कौ, सूछिम दुतिय सरीर॥
लिंग सरीर जु कहत हैं, तासौं ग्यांनी धीर॥३९॥
यै दोन्यौं ही रूप हम्ह, तुम्ह सौं बर्नन कीन॥
माया करि भगवांन मैं, दोऊ लगै नवीन॥४०॥
बहि ब्रह्मा कौ रूप धरि, आदि पुरुष भगवांन॥
प्रगट करत हैं जगत सब, भांतिन केउ निदांन॥४१॥
मनु रिषि सुरगन प्रजापति, पितर सिद्ध गंधर्व॥
चारन विद्याधर गुह्यक, किंनर अपसर सर्व॥४२॥
नाग सर्प किंपुरुष पसु, पंछी पर्वत वृच्छि॥
राकस उरग रु मातृगृह, प्रेत बिनायक जच्छि॥४३॥
कूषमांड उन्माद अरु, यातुधान बेताल॥
भूत पिसाच मनुष्य पुनि, असुर सुरन कै साल॥४४॥
स्थावर जंगम जल जु थल, नभ बासी जु जितेक॥
स्वेदज अंडज जरायुज, उदभिज जीव अनेक॥४५॥
सत्वगुणी रु रजोगुनी, तमोगुनी सब सृष्टि॥
बिधहि कीनें तिनहिं मधि, भेद अनेक सु दृष्टि॥४६॥
सतौ गुनी ऋषि देवता, रज तैं मनुष उद्योत॥
तम तैं थावर जन्म लह, बहुयौं नर्क ही होत॥४७॥
वेई विस्नु भगवांन प्रभु, धरि अनेक अवतार॥
पालन सबही जगत कौ, करत है भलै प्रकार॥४८॥
वेई रुद्र कौ रूप धरि, जग कौ करत संघार॥
पवन बषेरत मेघ कौं, ज्यौं लावत नहिं वार॥४९॥
भगवत भगवांन सो म्हैं, कह्यौ तोहि बिचार॥
अैसें सब भगवांन कौं, बरनत है निरधार॥५०॥
अरु ग्यांनी मानत सदा, प्रभुहिं अकर्त्ता भाय॥
उतपति पालन प्रलय जग, माया तैं दरसाय॥५१॥
ब्रह्म कल्प की यहि कथा, लीला सृष्टि बिचार॥
हम्ह तुम्ह सौं बर्नन करी, आछैं करि बिसतार॥५२॥

पद्म कल्प की कथा अब, सुनियैं करौं बषांन॥
तौमें लछन कल्प कौं, अरु है काल प्रमांन॥५३॥

॥ सौनक उवाच॥

सौनक रिषि पूछत भये, यहै सूत सौं बात॥
विदुर तज्यौ क्यौं निज सदन, कहौ भेद विष्यात॥५४॥
तीरथ यात्रा करि विदुर, आयै मैत्रे पास॥
कछू तत्व पूछत भये, अति चितधारि हुलास॥५५॥
कहा ग्यांन उपदेस किय, रिषि मैत्रेय बिचारि॥
सौ कहियै हम्ह सौं सबैं, सूत अबैं निरधारि॥५६॥
बंधु त्याग कीनौं विदुर, कहौ सु कारन कांहि॥
हथनापुर आयै बहुरि, कारन कहीय तांहि॥५७॥

॥ सूत उवाच॥

सूत कहत सुक देव सौं, प्रस्न परीछित कीन॥
तिनकौ उत्तर फिरि कछू, जो कछु सुक मुनि दीन॥५८॥
ताही क्रम सौं हम्ह अबैं, बर्नन करत बनाय॥
सौ तुम्ह आछी विधि सुनौं, अपनौं चित्त लगाय॥५९॥

(॥ इति श्री भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते दसमोऽध्यायः ॥ १०॥)

॥ इति श्री द्वितीय स्कन्ध संपूर्णम्॥

(कुल छन्द ५४१ - छंद योग क्रम १७८५)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राजराजेश्वर राजा श्री राजसिंह जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुंवरी जी वांकावती 'श्री ब्रजदासी' जी कृत श्रीमद्भागवत भाषा तृतीय स्कंध लिष्यते)

॥ तृतीय - स्कंध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(उद्धव और विदुर जी की भेंट)

(मंगलाचरण)

छप्पय - नमो नमो भगवांन, रहै जगिमगि जग मांहीं।
कोटि कोटि ब्रह्मांड, बसत चरनन की छांही॥
भंजन रचन समर्थ, रछिक हूं अंतर जांमीं।
अर्धनांम जिहुँ लेत, तरैं क्रोधी अरु कांमीं॥
जग आदि मधि अरु जु अंत है, अैक आप करतार हरि।
आरंभ जु तृतीय स्कंध के यहिं, प्रनांम ब्रजदासी करि॥ १ ॥

॥ अथाख्यान ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक जु कहत गृह आपनौं, छोडि विदुर तिहँ बार॥
तीरथ जात्रा काज कौं, निकसि गये निरधार॥ २ ॥
तिहीं समैं मैत्रेय सौं, पूछत भये जु बात॥
जो हम्ह सौं अब तुम्ह नृपति, पूछत भेद विष्यात॥ ३ ॥
परमभक्त प्रभु के विदुर, करियै कहा वषांन॥
उमगि पधारे गेह जिन, आप कृस्न भगवांन॥ ४ ॥

॥ राजोवाच ॥

पूछत भये श्री सुक मुनि, बहुरि परीछित रांय॥
रिषि मैत्रेय रु विदुर सौं, हुव मिलाप किहुं भांय॥ ५ ॥
विदुर प्रस्न मैत्रेय सौं, जो कछु है हैं कींन॥
सौ आछें ही होहिगौं, मोहि कहौ जु प्रवींन॥ ६ ॥

॥ सूत उवाच ॥

सूत कहत है यहि वचन, नृपकौं सुनि सुकदेव।॥
बोलै अबहूँ कहत हौं, राजा सुनहुँ सभेव॥ ७ ॥

॥श्री सुक उवाच॥

नृप धृतराष्ट्र जु तिहँ समैं, महा अधरमी अंध॥
पालन अपनैं सुतन कौ, करत भयौ गृह बंध॥ ८ ॥
जे सुत अपनैं भ्रात के, पांडव परम पुनीत॥
जिनकौं लाषा गेह मैं, जारै करि अघ रीत॥ ९ ॥
द्रुपदसुता कौं ता समैं, राजसभा कै बीच॥
लै आयौ कर केस गहि, दुस्सासन बुधि नीच॥१०॥
तब द्रौपदि रौवन लागि, ह्वै दुष कै आधीन॥
तऊ धृतराष्ट्र जु आपनैं, सुतहिं मनैं नहिं कीन॥११॥
नृपति जुधिष्ठिर आपनौं, राज जुवा मैं हारि॥
द्वादस बरसनि बन बसै, सत्य भलैं निज पारि॥१२॥
मांगन लागै राज कौ, बांटा पुनि उनपास॥
तउ इनकौं उन नहिं दियौ, चाहि पांडकुल नास॥१३॥
तब पठे कुंती तनय, करि श्री कृस्न वसीठ॥
प्रभु आये धृतराष्ट्र पैं, कहै वचन सुभ ईठ॥१४॥
अमृत सम हरिकै वचन, आनंद मय सुषदाय॥
पापी धृतराष्ट्र नाहिंन, मानैं काहू भाय॥१५॥
प्रभु गवनैं तब विदुर कौं, पूछयौ अंध बुलाय॥
मंत्र बिचारयौ विदुर तब, सब तैं उत्तम भाय॥१६॥
नृपति जुधिष्ठिर कौं अबैं, दीजै राज बंटाय॥
उन्हकैं भाई भीम सौं, अरु श्री कृस्न सहाय॥१७॥
जिहँ दिस रही है कृस्न जू, आप सहाइक होय॥
द्विज सुर जादव नृप सबैं, तिन वोरैं सब कोय॥१८॥
पापी दुरजोधन कुमति, हरि कौहि सत्रु कुपात॥
महादुष्ट अति निरदई, करनहार कुल घात॥१९॥
तू हित धरि सुत जानि कैं, पालत है पुनि तांहि॥
भलौ चहत जौ बंस कौ, तौ तजि दीजै यांहि॥२०॥
वचन सुन्यौ यहि विदुर कौ, दुरयोधन मति ठोठ॥
तब ताकै अति क्रोध सौं, कांपन लागै होठ॥२१॥
करन दुसासन सकुनि मिलि, सबहिन ताहीं बार॥
करी अवग्यां विदुर जु की, बोलै वचन कुढार॥२२॥
है दासी कौ पुत्र यहि, इहिं ठां ल्यायौ कौंन॥
पल्यौ हम्हारै अंन तैं, तऊ भलौ हम्ह सौंन॥२३॥
चहत हम्हारौ ही बुरौ, सत्रु वोर चित्त धारि॥
तातैं याकौ नगर तैं, दीजै अबैं निकारि॥२४॥

यौं आगें धृतराष्ट्र कै, कुवचन बांन प्रहार॥
किय दुरजोधन बिदुर पै, पापी बिना बिचार॥२५॥
दरवाजै उन्हकै धनुष, विदुर ता समैं डारि॥
निकसै गृहतजि आपनौ, माया प्रबल विचारि॥२६॥
गेह छोडि तीरथ बिबिधि, रहै बिदुर पुनि आय॥
जांह अनेकनरूप धरि, राजत प्रभू सजाय॥२७॥
नगर बाग पर्वत नदी, सरोवर कुंज अनंत॥
चक्र सुदर्सन सु चिन्ह हरि, मन्दिर मधि सोभंत॥२८॥
बिदुर अकेले फिरत बन, इन्ह ठौरन कै मांहि॥
भोजन करै पवित्र अति, सोय रहै भुवठांहि॥२९॥
करै त्रिकाल सनांन तन, धरैं भेष अवधूत॥
कोई पहचानै नाहिं, इन्हकौं काहू सूत॥३०॥
भरत षंड मैं यौं फिरत, आयै मद्धि प्रभास॥
राज जुधिष्ठिर कौ भयौ, कौरव कुल कौ नास॥३१॥
बन्धु नास यहि विदुरजू, तांह सुन्यौविष्यात॥
जइसैं बन मैं बांस घसि, अगनि उपजि जरि जात॥३२॥
आपस माहि विरोध करि, यौं सब भये जु नष्ट॥
यहि सुनिकैं अति सोच करि, लहत भये चित कष्ट॥३३॥
यौं फिरि आयै विदुर जू, नदी सरस्वती तीर॥
तांह सरस्वती कै बिचैं, बहु तीरथ की भीर॥३४॥
त्रित मनु पृथु उसना अग्नि, असित जु पवन सुदास॥
गौ गुह श्राद्धदेउ पुनि, सबकै तीर्थ निवास॥३५॥
तिन्हमैं विदुर सनांन करि, कियौ पवित्र सरीर॥
प्रभू ईच्छा लषि बंधु कौ, टार्यौ सोच सधीर॥३६॥
हरि मन्दिर सुर मुनि रचै, ह्वै कैं धरमाधीन॥
चक्र सुदरसन चिन्ह जहाँ, दरसन विदुर सुकीन॥३७॥
लांघि फिर सौबीरु अरु, मत्सि जु जांगल देस॥
आयै जमुना निकट तहँ, उद्धव मिलै सुबेस॥३८॥
उद्धव प्रभु कैं सेवक रु, जो सुर गुरु कै सिष्य॥
तिनहिं गुरु पूछत भयेउ, विदुर हितू अन भिष्य॥३९॥
बिधि विनती सौं अबनि कौ, दूरि करन कौ भार॥
प्रगट भये बसुदेव गृह, वलि रु कृस्न करतार॥४०॥
दोऊ है अति कुसल सौं, अरु आछैं वसुदेव॥
तै साधत है धर्म की, पूरन रीति सभेव॥४१॥

अरु प्रदुमन जोधा बड्डे, तै हैं कुसल सुभाय॥
काम रूप प्रगटें अबें, सुत रुकमनि कै आय॥४२॥
श्रेष्ठ जादवनि माहिं नृप, उग्रसेन सु बिजेत॥
जिन्हकौं दीनौं राज प्रभु, तै हैं कुसल समेत॥४३॥
साम्ब स्कंद कुमार कै, महारथी अवतार॥
जामवती तैं प्रगट हुव, तै हैं कुसल प्रकार॥४४॥
परम भक्त भगवांन कै, तत्वहिं जाननहार॥
तैं सात्यकि हैं कुसल सौं, भली भांति निरधार॥४५॥
सुफलक सुत अक्रूर ह्वैं, प्रेममत्त ब्रजजात॥
कृस्न चरन रज मैं लुटै, कहुँ तिन्हकी कुसलात॥४६॥
अदिति समान जु देवकी, कहुँ तिहिं कुसल वषानि॥
प्रगट भये करतार प्रभु, जाकै गर्भहि आंनि॥४७॥
भक्त कामना कै हितू, सब्द उपावनहार॥
कहु मनकै जै देवता, अनरुध कुसल प्रकार॥४८॥
चारुदेष्ण जु हृदीकमल, सुकुल सबै इन्ह आदि॥
सावधान प्रभु सेव मैं, हैं संजुत अहलादि॥४९॥
अर्जुन अरु श्रीकृस्न जू, जिनकै भुजा समांन॥
अैसे राजा जुधिष्ठिर, कहु तिन कुसल बिधांन॥५०॥
चरन धरन जिन जुद्ध मैं, प्रिथी सहि सकी नांहिं॥
भीमसेन अैसैं बली, कहुं तिन कुसल सु ठांहिं॥५१॥
महारथी अर्जुन कियौ, जिन सब सत्रु संघार॥
प्रभु भुजबल सौं जय भई, भारत बिच निरधार॥५२॥
भील रूप धरि आय सिव, तिनसौं करि संग्रांम॥
प्रसंन भये तै कुसल सौ, है अर्जुन निज धांम॥५३॥
और नकुल सहदेव लै, सत्रुन पैं तैंहि राज॥
अबैं कुसल आनंद सौं, करत भलै गृह काज॥५४॥
बडे बीर नृप पांडु जिन, दिसा जीति सब लीन॥
तिन बिन कुंती आपनैं, प्रान रपै ह्वै दीन॥५५॥
सुतौ जानियत है यहै, अचिरज की है बात॥
तातैं अब कहा पूछिय, उद्धव तिहिं कुसलात॥५६॥
अरु म्हैं वा धृतराष्ट्र कौ, सोच करत हौं चित्त॥
जो आंधौ है दृगन तैं, अरु बुधि आंधौ नित्त॥५७॥
द्रोह पांडवन सौं कर्यौ, मोकौं दियौ निकारि॥
दुरजोधन कौ बसि भयौ, उर मैं पाप बिचारि॥५८॥

सो म्हैं जानत नरन की, बुधि प्रेरक भगवांन॥
जो उन चाह्यौ सो कर्यौ, दोपन कहूं निदांन॥५९॥
नृप मदमत्त भये बऊत, बढ़्यौ प्रिथी कौ भार॥
कौरव पांडव मधि बिरुध, तातैं किय करतार॥६०॥
दुष्टन कौ मारन निमत, प्रगटै कृस्नं कृपाल॥
औरनि सिषवनि कौं कियौ, आपन धर्म रसाल॥६१॥
नहिं तौ प्रभु कौ जन्म अरु, कर्मन सौं कहा कांम॥
जो ईस्वर सरवग्यं हैं, परम पुरुष निहकांम॥६२॥
इंद्रादिक सब देवता, जै हैं हरिकै दास॥
तिनकै कारज कौं धरत, प्रभु अवतार प्रकास॥६३॥
जिन प्रभु की सब जगत कौं, कीरति करत पवित्र॥
सौ हम्ह सौं बर्नन करौ, तुम्ह हौं परम विचित्र॥६४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(उद्धव द्वारा भगवान की बाल लीलाओं का वर्णन)

॥ श्री सुक उवाच॥

दोहा - सुक कहत कि जब विदुर जू, प्रस्न कियौ इहिं भाय॥
तब उद्धव बोलि न सकैं, हियैं रहे हरि छाय॥ १ ॥
पांच बरस कै जब हुतै, उद्धव परम पुनीत॥
प्रभु प्रतिमा की करत हे, सेवा दृढ़ सुभ रीत॥ २ ॥
माता हूँ जु बुलावती, भोजन करनैं काज॥
तऊ तांह तैं नहिं उठत, लगि प्रभु सेवा साज॥ ३ ॥
अैसैं उद्धव भक्त वृध, भये करत हरि सेव॥
तिहँ प्रभु कै अति विरह सौं, बोलि न सकै सुभेव॥ ४ ॥
दु घरी लौं चुप ह्वै रहै, प्रभु पदकौ करि ध्यांन॥
तन रोमावलि दृग सजल, बूड प्रेम नदि थांन॥ ५ ॥
जबै प्रभू कै ध्यांन तैं, छुटि न्यारौ भौ चित्त॥
उद्धव आंसू पूछि तब, बोलै प्रभु कै मित्र॥ ६ ॥

॥ उद्धव उवाच॥

उद्धव कहैं श्री कृस्न हीं, अस्त भये जब भांन॥
काल रूप तब सर्प्प नैं, सब ग्रसि लिये निदांन॥ ७ ॥

कहौं कुसल मैं कौन की, दीरघ भयौं अनर्थ॥
प्रभु ईच्छा अद्भुत महा, कह्यौ जात नहिं अर्थ॥ ८ ॥
भाग्यहीन जग जीव हैं, प्रभु कौ दरसन नांहिं॥
अरु तिनमैं जादव निपट, भाग्यहीन दरसांहिं॥ ९ ॥
बसै प्रभू कै निकट तउ, रहै मोह मद छाय॥
ईस्वर मानुष करि लषै, माया मैं लिपटाय॥१०॥
जइसैं धीर समुद्र कै, मच्छ बसती अग्यांन॥
मानत हैं वै मच्छ ही, ससि कौं आप समांन॥११॥
जादव हुतै प्रवीन जन, रहनहार प्रभु पास॥
तउ तिन मानुष ही लषै, ईस्वर भेदन भास॥१२॥
प्रभु माया करिकैं कितै, मोहित ह्वै निरधार॥
सिसुपालादिक कृस्न सौं, कीनौं बैर बिचार॥१३॥
अरु जिन पर प्रभु की कृपा, हम्ह सै जन की बुध्य॥
चली न वह भगवान तिन, लषै यैक हीं सुध्य॥१४॥
हरि तपस्या लषि नरन की, पांच बिंस सत वर्ष॥
दरसन दीनौं जगत कौं, उपजायौ चित हर्ष॥१५॥
अपनी माया करि प्रभू, नर वपु धर्यौ अनूप॥
दर्पन मधि लषि रीझतै, सौ प्रति सुंदर रूप॥१६॥
अरु जब भूषन पहरतै, तबै अंग कैं संग॥
बढती सब भूषनन की, अदभुत सौभ तरंग॥१७॥
जिग्य जुधिष्ठर नृपति कै, मधि लषि प्रभु कौ रूप॥
रीझि लोक बोलै सबै, बांनी यहै अनूप॥१८॥
विधि इनहीं कै रूप मैं, अपनी सब चतुराय॥
प्रगट करी है चाह सौं, भांति भांति अधिकाय॥१९॥
जिन्हकै चितवनि हास सौं, गोपीजन अनुरागि॥
मोहित ह्वै कैं थकित अति, सकी न कारिज लागि॥२०॥
भक्त अनैंकन कौं जबै, लगै दुष्ट दुष दैन॥
तबै साध रिछया करन, प्रगटै हरि सुष अैन॥२१॥
प्रगट होय बसुदैव गृह, बसत भयै बृज आंनि॥
मथुरा तैं गय द्वारिका, काल जिवन भय मांनि॥२२॥
कंस मारि आयै जबैं, मात पिता कै पास॥
करि प्रनाम बोलै प्रभू, तिन्ह सौं धारि हुलास॥२३॥
हे पितु माता कंस कै, ह्वै हम्ह उर आधीन॥
बसै और ही ठौर कछू, टहल न तुम्हरी कीन॥२४॥

सौ अपराध छिमा करौ, बिनवत हैं करजोरि॥
माता पिता मानैं न इक, चूक करै सुत कोरि॥२५॥
यै लीला अदभुत करी, जिन स्वामी करतार॥
हम्ह हूं जाके तत्व कौ, पावत नाहिंन पार॥२६॥
जिन प्रभु यैक कटाछि मैं, दूरि कर्यौ भुव भार॥
तिहँ चरनन कै ध्यांन कौं, कौ भूलै निरधार।२७॥
जिग्य राज सूय मैं करी, प्रभु निन्दा सिसुपाल॥
गति दिय जोगैस्वरन की, ताहू कौं ततकाल॥२८॥
तिहँ परमेस्वर कौ विरह, सह्यौ कौनु पैं जाय॥
पैं भावी बलवान है, ताकौ कछु न उपाय॥२९॥
भारत बिच जै नृप जुरै, मृति अर्जुन कर पाय॥
दरसन करि श्री कृस्न कौ, मुक्ति लही सुषदाय॥३०॥
जिन सम नाहिंन और जग, जै प्रभु पूरन कांम॥
इंद्रादिक हूं करत तिन, चरनन कौं परनांम॥३१॥
उग्रसेन नृप कै निकट, ठाढे ह्वै भगवांन॥
करतै लोकनि की अरज, आप जोरि दिबि पांन॥३२॥
वकी स्तनन मैं लाय विष, आई करन जु घात॥
माता की सी गति दई, ताकौं प्रभु विष्यात॥३३॥
दयावंत अैसे प्रभू, कृस्न चंद सुष भौन॥
तिन्हकौं तजि कहुँ और कौं, भजै सु मूरष कौन॥३४॥
बैरभाव प्रभु सौं कर्यौ, दैत्यनि मारत भक्त॥
धरैं चक्र तापरि चढै, गरुड लषत रहै थक्त॥३५॥
दूरि करन कौं भार भुव, विधि बिनती कै भाय॥
प्रगट भये वसुदेव गृह, उदर देवकी आय॥३६॥
कैद मांहिं वसुदेव जू, हिर्दै कंस भय आंनि॥
लै राषै बृजनंद गृह, सुत जे प्रांन समांनि॥३७॥
तांह कृस्न बलदेव जू, बसैजु ग्यारह वर्ष॥
बृज जन मन उछाह किये, अति बढाय चित हर्ष॥३८॥
ग्वालनि मधि जमुना निकट, वत्स चरावन कीन॥
बाल केलि अपनी सुभग, दिषाई ब्रज वासीन॥३९॥
कबहुँ रुदित कबहूं मुदित, अैसैं लीला बाल॥
बृजवासिन दिषवत भयै, सुन्दर लाल गुपाल॥४०॥
बड़े होय सोई प्रभू, मुरलीधर सुष कंद॥
बन बन धेनु चराय दिय, गोपिन सुष बृजचंद॥४१॥

कंस बऊत पठयै असुर, तिनकौ कियौ संघार॥
बाल षिलौना जु फौरहीं, जइसैं षेल मंझार॥४२॥
काली विष कौ नीर करि, पान मरै सब ग्वाल॥
प्रभू जिवाये तैं सबैं, भक्तन कैं प्रतिपाल॥४३॥
जिग्य इंद्रकौ मैटि कैं, परबत पूजा कीन॥
तातैं कोप्यौ इंद्र तब, कर गोवर्धन लीन॥४४॥
सरदकाल की चांदनी, तामैं सहित हुलास॥
मिलि कैं प्रभु गौपीन सौं, कीनी लीला रास॥४५॥

(इति श्री भागवते महा पुराणे तृतीय स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(भगवान के अन्य लीला चरित्रों का वर्णन)

॥ उद्धव उवाच ॥

दोहा - उद्धव बोलै फिरि प्रभू, आयै मथुरा मांहिं॥
संग लियैं बलदेव जू, मात पिता सुष चांहि॥ १ ॥
रीस करि ऊंचै मंच तै, पकरि कंस तर डारि॥
मारि षैंचि लेकैं गयै, बउतकि दूरि मुरारि॥ २ ॥
सांदीपन गुरु पास तैं, पढि विद्या सब भाय॥
मृतक पुत्र दिय ल्याय प्रभू, वाकौं फेरि जिवाय॥ ३ ॥
रूकमनि जू कैव्याह मैं, आयै बउत नृपाल॥
तिनकै सीसहिं पाव दै, ल्यायै तिया रसाल॥ ४ ॥
सात सांड कौं नाथि कैं, नागनिं जिती बिवांहि॥
जुद्ध जीति सब नृपनि कौं, आयै निज पुरि मांहि॥ ५ ॥
कलप वृछ ल्यायै धरनि, सत भामा गृह थांन॥
मान दूरि किय इंद्र कौ, जुद्ध जीति भगवांन॥ ६ ॥
भौमासुर कौ मारि वहिं, पुत्रहिं दै प्रभू राज॥
अंतह पुर बाकै गयै, जिहिं ठां तिया समाज॥ ७ ॥
भोमासुर कीनी हुती, नृप कन्या इक ठांहिं॥
तै लषिकैं श्री कृस्न कौं, मुदित भई मन मांहिं॥ ८ ॥
तिन्हकौं द्वारावति प्रभू, लै आयै निज धांम॥
यैक मुहूरत मधि बरी, बउत रूप धरि स्यांम॥ ९ ॥

इक इक तिय सौं प्रगट किय, दस दस सुत भगवांन॥
तें उत्तम गुन रूप करि, सबहीं प्रभू समांन॥१०॥
कालजिवन सालव द्विविद, जरासंध मुर वांन॥
संबर वल्बल दुष्ट बहु, हते बीच रणथांन॥११॥
अपनैं लोगन पैं केउ, षल दीनैं मरवांय॥
अरु कितनेऊ आप कर, मारे प्रभु जिदुरांय॥१२॥
फिरि तुम्हरे भाईन कैं, कौरव पांडव पूत॥
बडे बडे आये नृपति, जिन वोरैं अदभूत॥१३॥
कर्ण दुसासन सकुनि कै, बुरे मंत्र मति छाय॥
दुरजोधन की आयु तौ, प्रथमहिं दई घटाय॥१४॥
सो दुरजोधन षेत मैं, पर्यौ देषि भगवांन॥
प्रभु अपनै मनमांहिं नहिं, भये प्रसंन निदांन॥१५॥
अष्टादस अक्षौहनी षपि, सारी धरनी मांहिं॥
प्रभू विचार्यौ भार तऊ, मिट्यौ प्रिथी कौ नांहिं॥१६॥
इन्ह सबहीं जदुवंस कौ, ह्वै हैं जबै संघार॥
तबै जानियैंगौ भयौ, दूरि प्रिथी कौ भार॥१७॥
जादव मदिरा पांन करि, लरिहैं आपस मांहिं॥
तबै ह्वै हैं संघार इन, और जतन कौ नांहिं॥१८॥
यौं विचार करि कैं प्रभू, थापि जुधिष्ठिर राज॥
दै आनंद प्रजानिन कौं, सिषवत भये सुकाज॥१९॥
रिछया परीछित की करि, गर्भ उत्तरा ठौर॥
समित कियौ ब्रह्मास्त्र प्रभू, दयावंत सिरमौर॥२०॥
करवाये अस्वमेध त्रय, प्रभू युधिष्ठिर पास॥
जुत भायन प्रभु सेवनृप, किय धरि हियैं हुलास॥२१॥
आय द्वारिका मधि प्रभू, करत भये अति भोग॥
तउ आसक्त नाहिं भये, कबहूं काहूँ जोग॥२२॥
दृग चितवनि अमृत वचन, अदभुत रूप चरित्र॥
इन्ह बातनि करि सबन कौं, दिय आनंद पवित्र॥२३॥
अरु अपनी बहु तियन सौं, करत जु भोग विलास॥
बिते बऊत दिन जब प्रभू, गृह तैं भये उदास॥२४॥
प्रभु कै सुष तौ है सदा, प्रभुही कै आधीन॥
तउ संसारी सुषन तैं, प्रभु उदास चित कीन॥२५॥
अरु जु दैव आधीन हैं, जीवन कै सुषभोग॥
प्रांनी होत उदास नहिं, मूरषता कै जोग॥२६॥

प्रभु ईच्छा सौं इक समैं, जादव बंसी बाल॥
क्रोध दिवायौ रिषिन कौं, श्राप दियौ ततकाल।२७॥
दूरि करन दृढ श्राप कौं, छोडि द्वारिका बास॥
आयै करन सनांन सब, जादव छेत्र प्रभास॥२८॥
करि सनांन सुर पितर कौं, तर्पन करि तिहिं ठौर॥
भांति भांति कै दान दिय, पूजै द्विज सिरमौर॥२९॥
असु गज रथ गौ वस्त्र मणि, सज्या रजत सुवर्न॥
मनवांछित भोजन कन्या, अरु अनंत आभर्न॥३०॥
अैसें बहुविधि द्विजन कौं, दैकैं जादव दांन॥
करि प्रनांम संतुष्ट किय, राषि भली विधि मांन॥३१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते तृतीयोऽध्याय: ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्याय: ॥

(उद्धव से विदा होकर विदुर जी का मैत्रेय ऋषि के पास जाना)

॥ उद्धव उवाच ॥

दोहा - तहँ बैठे जादव कियौ, भोजन मदिरा पांन॥
कहै परसपर दुरवचन, ह्वै बुधिहीन निदांन॥ १ ॥
मदिरा सौं ह्वै नष्ट मति, भयै सबैं अग्यांन॥
आपस माहीं कलह कौ, कियै आरंभ निदांन॥ २ ॥
निज माया की देषि गति, तट सरस्वति भगवांन॥
बैठे पीपर वृछ तर, करि तिहिं बेर सनांन॥ ३ ॥
पहलै ही भगवांन नैं, बचन कह्यौ हौं मोहि॥
तू जा बद्रीनाथ दिसि, म्हैं दी आग्यां तोहि॥ ४ ॥
जानि गयौ जब म्हैं रहै, प्रभु करि कुल संघार॥
आपहुँ अंतरध्यांन फिरि, भयो चहत करतार॥ ५ ॥
द्वारावति तैं म्हैं तबै, तातैं लाग्यौ संग॥
पीछैं पीछैं ही गयौ, दरसन करन अभंग॥ ६ ॥
प्यारा पति हरि तिनहिंहूं, देषत भयो सुजाय॥
श्री निकेत तट सरस्वती, किय निकेत बहुभाय॥ ७ ॥

सुन्दर स्यांम जु चतुरभुज, पीताम्बर अभिरांम॥
धरैं दाहिनौं चरन प्रभु, बाईं जंघा ठांम॥ ८ ॥
बैठे पीपर वृछ तर, कमल नैन करतार॥
दरसन कीनौं म्हैं तांह, ऐसौ परम उदार॥ ९ ॥
सिष्य व्यासजू कै तांह, आयै रिषि मैत्रेय॥
किय प्रनाम प्रभु चरन कौं, जै सबकौ है धेय॥१०॥
सुनत कह्यौ मैत्रेय कै, प्रभु हम्ह सौं यहि बैन॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

तुव वांछित उद्धव सबै, छिप्यौ कछू हम्ह तैंन॥११॥
अबहूँ दुर्ल्लभ ग्यांन तुहि, आछैं कहत जिताय॥
तू है अगलै जनम कौ, वसु देवता सुभाय॥१२॥
तैं आगैं अति भजन किय, म्हैरी प्रीति निमित्त॥
तोहि न धरनौं जनम यहि, अंत जनम है मित्र॥१३॥
चह तप धारन कौं अबै, म्हैं बैकुंठ जु धांम॥
तोहि भाग्य सौं या समैं, दरसन हुव यहि ठांम॥१४॥
नांभिकमल मधि पटल मैं, विधि कौं किय उपदेस॥
सोइ भागवत तोहि अब, कहत ग्यांन सुविसेस॥१५॥
ऐसैं आदर करि प्रभू, कहै कृपा करि बैन॥
तब म्हैरैं रोमांच भौ, हूँ बोल्यौ भरि नैन॥१६॥
तुम्ह चरनन कै सेवकनि, चार पदारथ मांहिं॥
क्रिपा रावरी तैं प्रभू, कछू दुर्लभ है नांहिं॥१७॥
तौ हूँ म्हैं औरैं कछू, नहि चाहत हौं चाह॥
इक तुम्ह चरनन सेव मैं, मानत हौं मन लाह॥१८॥
तुम्हरे कछु ईच्छा नहिं, अरु सब कीनैं कर्म॥
जन्मै नहिं पै धार्यौ जन्म, हूँ न लहत सो मर्म॥१९॥
सत्रुन तैहिं भजि द्वारिका, रहै कोट मधि आय॥
व्याही तिय सोरह सहस, आत्माराम कहाय॥२०॥
इन्ह बातन कौं देषिकैं, होत हम्हहिं संदेह॥
ऐसी लीला क्यौं करी, हे करतार अछेह॥२१॥
अति ग्यांनी तुम्ह होय मुहि, पूछत मंत्र बिचार॥
इन्ह बातन सौं होत भ्रम, म्हैरे मन निरधार॥२२॥

आगैं ब्रह्मा कौं कियौ, तुम्ह जु ग्यांन उपदेस॥
सो ही मोकौं दीजियै, अबै ग्यांन विस्वेस॥२३॥
अैसै मोरे वचन सुनि, प्रभू कृस्नं करतार॥
मोहि आपनै रूप कौ, दीनौं ग्यांन विचार॥२४॥
अैसैं प्रभु तैं ग्यांन लहि, उनकौ करि परिनांम॥
होय विरह व्याकुल अबै, हूं आयौ यहँ ठांम॥२५॥
अब म्हैं बदरीनाथ कौं, विरह विकल ह्वै जात॥
नर नारायन करत हैं, जहँ तपस्या विष्यात॥२६॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि अैसै विदुर, सुनि बन्धुन कौ नांस॥
दूरि करत भौ सोक अति, हिय धरि ग्यांन उजांस॥२७॥

॥ विदुर उवाच॥

उद्धव सौं बोलै विदुर, फिरि सुभ बोध विचांरि॥
ह्वै उदास सब जगत सौं, प्रभु की सुरति सम्हांरि॥२८॥
उद्धव जो तुम्हकौं कह्यौ, रहसि ग्यांन हरि मित्त॥
सैवक जांनि कहौ हम्हहिं, ह्वै प्रसंन अति चित्त॥२९॥

॥ उद्धव उवाच॥

उद्धव बौलै सुनि इहै, जु मोहि किय उपदेस॥
सोई रिषि मैत्रेय कौ, कह्यौ ग्यांन विस्वेस॥३०॥
अरु उन्हकौं आग्यां दई, विदुरहिं कहियौ ग्यांन॥
तातैं उन्ह पैं जाहु तुम्ह, करिहैं वेइ वषांन॥३१॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि बर्नन करत, प्रभु कै चरित सुभाय॥
रहै यैक निस विदुर पैं, उद्धव जिय हित पाय॥३२॥
उद्धव गवनैं प्रात ही, बद्रीनाथ जु सुथांन॥
अति ही व्याकुल चित्त मैं, हरि कै विरह निदांन॥३३॥

॥ राजोवाच॥

नृप बौले द्विज श्राप सौं, हुवो जादव संघार॥
उद्धव कइसैं बचि रहै, कहिये सौ निरधार॥३४॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि द्विज श्राप मिस, करिकैहुँ कुल संघार॥
प्रभू आपनैं चित्त मैं, कीनौं यहै विचार॥३५॥

भयो चहत हौं प्रिथी तैं, हूं अब अंतरध्यांन॥
मो पाछैं उद्धव जगहिं, जोग्य दैंन कौं ग्यांन॥३६॥
यौं विचारि हरि उद्धवहिं, श्राप लगन नहिं दीन॥
सो उद्धवहूं बदरिकां, आश्रम वास जु कीन॥३७॥
अंतरध्यांन भयै प्रभू, सुनै विदुर तिहिं बार॥
अरु सुधि कीनी विदुर की, सौ सुनि प्रीति बिचार॥३८॥
व्याकुल ह्वै रोवन लगै, विदुर महादुष पाय॥
गयै गंग कै निकट तांह, मैत्रेय जु रिषि राय॥३९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्याय : ॥ ४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्याय: ॥

(विदुर जी का प्रश्न और मैत्रेय जी का सृष्टिक्रम वर्णन)

॥ श्री सुक उवाच ॥

तट गंगा हरद्वार रिषि, मैत्रइ बैठे तांहि॥
विदुर श्रेष्ठ कुरुवंस मैं, पूछत भये सुचांहि॥ १ ॥

॥ विदुर उवाच॥

दोहा - विदुर कहत सुष कै लियै, जबैं करत यहि कर्म॥
तिन्हसौं सुष ह्वै नाहिंनैं, उलटि होत दुष मर्म॥ २ ॥
तातैं जो कछु होय या, प्रांनी कौ करतव्य॥
तुम्ह जानत हौ तत्व सब, कहौ धरम जो भव्य॥ ३ ॥
कृस्न विमुष इहि जीव ह्वै, अधरम करत अचेत॥
तुम्ह सै प्रभू कै भक्त हौ, तिहिं उद्धारन हेत॥ ४ ॥
तातैं हम्हकौं पंथ वहि, तुम्ह अब देहुं बताय॥
आराधन भगवांन कौ, जासौं कीनौं जाय॥ ५ ॥
आराधन कीनैं प्रभू, याकैं हिय मैं आय॥
प्रगट करै अति कृपा करि, पूरन ग्यांन सुभाय॥ ६ ॥
लेकैं प्रभु अवतार जै, करम करत हैं आप॥
अरु उतपति पालन जगत, करत सु कहौ प्रताप॥ ७ ॥
अरु जइसैं जग प्रलय करि, मध्य उदर कै राषि॥
सोय रहत है आप प्रभु, मोहि सुनावो भाषि॥ ८ ॥

गौ द्विज सुर रिछया लियैं, प्रभू धारि अवतार॥
लीला करत सु सब कहौ, आछी भांति विचारि॥ ९ ॥
मो मन होत पवित्र सुनि, प्रभु कै सुभग चरित्र॥
कौनु कौनु सै तत्व सौं, रचै लोक सरवत्र॥१०॥
रूप करम गुन नांव इन्ह, जीवन कै भगवांन॥
जुदे जुदे कइसै कियैं, सौ सब करौ बषांन॥११॥
व्यास वचन सब हम्ह सुनैं, चहूँ बर्न कै धर्म॥
मो मन सुनिवौ चहत अब, कृस्न कथा कौ मर्म॥१२॥
कृस्न चरित्र नीकौ सुनत, त्रिपति सु होय जु कौनु॥
होय ग्यांन हरि गुन सुनैं, गृह मैं प्रीति न हौंनु॥१३॥
भारत माहीं व्यासजू, कथा बउत करि और॥
बीच बीच श्री कृस्न कै, चरित कहै बहु ठौर॥१४॥
उपजाई प्राणीनि कैं, हरि की भक्ति अनूप॥
कृस्न कथा सब तत्व हैं, अति आनन्द सरूप॥१५॥
हरि सौं जो प्राणीनि कैं, प्रीति बढै किहुं भाय॥
होय हियै वैराग अरु, सबही दुष मिटि जाय॥१६॥
विमुष प्रभू की कथा तैं, वृथा आयु तिन जाय॥
तिन जीवन कौ सोच म्हैं, करत हियैं अधिकाय॥१७॥
तातैं श्री हरि की कथा, है सब ही बिधिसार॥
सो हम्ह सौं आछैं कहौ, तुम्ह अब भलैं प्रकार॥१८॥
प्रथम विस्व पालन उपज, नास करन कै हेत॥
ते वै अब भयै कृस्न तिन, चरित कहौ ध्रम सेत॥१९॥

॥ श्री सुक उवाच॥

पुरसनिकै कल्यांन हितैं, पूछे रिषि मैत्रेय॥
बउत मांन दै विदुर कौं, प्रस्न कहत भय तेय॥२०॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

कहत जु मुनि यौं विदुर तुम्ह, प्रस्नं कियो सुषदाय॥
जासौं लोकनि कौ भलौ, जस कीरति सरसाय॥२१॥
करौ प्रभू की भक्ति तुम्ह, यामैं अचिरज नांहिं॥
वेद व्यास कै पुत्र हौ, परम भक्त जगमांहिं॥२२॥
रिषि मांडव्य सराप तैं, धरमराज अवतार॥
गर्भ दासि कैं व्यास तैं, प्रगटै आप सुढार॥२३॥
परम भक्त भगवांन कै, तुम्ह हौ विदुर प्रवीन॥
तुम्हहिं ग्यांन देवे प्रभू, मोकौ आग्या कीन॥२४॥

उतपति पालन प्रलय जग, यहि प्रभु लीला भेद॥
सुनहुँ अबै हूँ कहत हौं, मिटै सकल मन षेद॥२५॥
आगैं सबही सृष्टि तैं, यैक रहै भगवांन॥
अरु माया हूंलीन ह्वै, प्रभु मैं रही निदांन॥२६॥
यहि विचार भगवांन कै, जब उपज्यौ मन मांहिं॥
देषनवारौ दूसरौ, कोऊ म्हेरौ नांहिं।२७॥
कारिज कारण रूप सौं, होत भई चैतन्य॥
माया नांमहिं तास करि, जग रचना तिहुँ वन्य॥२८॥
पुरुष रूप ह्वै तब प्रभू, वीर्य प्रकृति मधि राषि॥
अपनी माया करि महत, उपजायो अभिलाषि॥२९॥
ग्यांन रूप अपनैं विषैं, प्रथम विस्व हौ ताहि॥
प्रगट करत पीवत माहिं, करत प्रकास सुचाहि॥३०॥
अंस काल गुण वसि भयो, प्रभू दृष्टि बल पाय॥
विस्व सृजन ईच्छा करैं, रूपांतर भय आय॥३१॥
कारन सब जग कौ भयौ, अहंकार महतत्व॥
अहंकार सौं फिरि भयो, त्रैविधि रज तम सत्व॥३२॥
सात्विक राजस तामस रु, अहंकार कै भेव॥
सात्विक तैं प्रगट्यौ जु मन, अरु इंद्रिन कै देव॥३३॥
ग्यांन कर्म इंद्री द्विविधि, यैं राजस तैं जांनि॥
अरु तामस अहंकार तै, प्रगट भयौ नभ मांनि॥३४॥
नभ माया अरु काल तै, सपरस भयौ सुभाय॥
सपरस तैं बहुर्‌यौ पवन, प्रगट भयौ नभ छाय॥३५॥
रूप प्रगट भौ पवन तैं, तातैं अग्नि प्रकास॥
रस हुव बहुर्‌यौ अगनि तैं, जल जीवन कौ वास॥३६॥
जल तैं उपज्यौं गंध पुनि, तातैं प्रिथवी जांनि॥
अधिक यैक तैं येक मै, पंचतत्व गुन मांनि॥३७॥
जुदे जुदे चौबीस ए, सकैन जगत बनाय॥
तब प्रभु की अस्तुति भलैं, लागै करन सुभाय॥३८॥

॥ देवौवाच॥

हे प्रभु तुम्ह पद कमल कौं, करत जु हम्ह परनांम॥
दूरि करन संताप कैउँ, यैहिं चरन सुषधांम॥३९॥
जै इन चरनन कौ गहत, सरन पुन्य परताप॥
तै जन सब दुष टारिकै, रहत मोद जुत आप॥४०॥
प्रानी याहि संसार मैं, त्रिविधि ताप कौं पाय॥
सदा दुषित अति रहत हैं, सुष न लहत किहुं भाय॥४१॥

तातैं हम्ह तुम्ह चरन कैं, आश्रय हैं निरधार॥
असरन सरन कृपाल प्रभु, हे स्वांमी करतार॥४२॥
बड़े बड़े रिषि जन सबै, करिकैं वेद विचार॥
तुव चरनन ही कौं सदा, ढूंढत लषि सुषसार॥४३॥
हे प्रभु जिनही चरन तैं, प्रगट भई भुव गंग॥
हम्ह तिन चरनन कै सरन, आये सहित उमंग॥४४॥
श्रद्धा ग्यांन वैराग जुत, तुम्ह पद हिय मैं राषि॥
भये कृतारथ बउंत जन, आगैं तिनकी साषि॥४५॥
उतपति पालन अरु प्रलय, करन इहै संसार॥
बार बार तुम्ह लेत हौ, प्रभू आप अवतार॥४६॥
तुम्ह हौ दाता अभय के, बसत सबनि हिय मांहिं॥
पैं अहंता ममता बंधे, जीव लहत है नांहिं॥४७॥
जिनकौ मन इंद्रीन सौं, चंचल है जग मांहिं॥
तै तुव चरनसरोज की, जानत महिमा नांहिं॥४८॥
तुम्ह गुन अमृत पांन सौं, जिन्हहिं भक्ति सरसाय॥
हृदौ होय निर्मल महा, तत्व ग्यांन कौ पाय॥४९॥
जै जन प्रापत हौत हैं, लोक रावरै ठांहिं॥
कौ इक जोगाभ्यास करि, मिलत जु है तुम्ह मांहिं॥५०॥
पैं उन्हकौं श्रम सौं मिलत, तुम्ह सब के सुषसार॥
भक्ति करन मैं सहज ही, मिलत जु तुम्ह निरधार॥५१॥
हम्ह कौं तुम्ह कीनें प्रगट, सृष्टि उपावन काज॥
सो हम्ह उपजाय न सकत, सबै सृष्टि कौ साज॥५२॥
हम्ह जु समर्पै वलि तुम्हैं, हम्ह भोजन सौं काज॥
तुम्हैं हम्हैं वलि देत जग, इन्ह भोजन तुम्ह लाज॥५३॥
सकैं सृष्टि उपजाय हम्ह, जइसैं आछैं भाय॥
सो सामर्थि सबै हम्हैं, देहुँ प्रभू सुषदाय॥५४॥
तुम्हहीं अपनौं प्रकृति मैं, राष्यौ तेज प्रकास॥
हे प्रभू माया तैं सबै, हम्ह जु भये तुव दास॥५५॥
तुम्हहीं हम्हरै हौ प्रभू, देहुँ हम्हहि वहि ग्यांन॥
जासौं हम्ह या जगत कौं, सकैं बनाय बिधांन॥५६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(विराट शरीर की उत्पत्ति)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा - अैसैं तत्व चौबीस की, सुनि असतुति भगवांन॥
काल सहित उनमैं प्रभू, भय प्रविष्ट निदांन॥ १ ॥
जुदै जुदै है तत्व वै, सौ प्रभु करि अैकत्र॥
तब उन तत्वन प्रगट किय, रूप विराट पवित्र॥ २ ॥
सबै चराचर प्रगट किय, तत्वनि सुं याहि संसार॥
सो ब्रह्मांड परयौ रह्यौ, जल बिच वरष हजार॥ ३ ॥
सब प्राणिनि कौ आतमां, परमांतम कौ अंस॥
आदि पुरुष अवतार सबि, प्राणी बसत नृसंस॥ ४ ॥
जाकै मधि कीनें प्रगट, तीन रूप भगवांन॥
अधिभूतक अध्यातमक, अधिदैवक जु विधांन॥ ५ ॥
दस विधि वामैं प्रान धरि, इक विधि हदौ रचाय॥
प्रभु नैं रूप विराट कौ, चैतन कियौ सुभाय॥ ६ ॥
तिहँ विराट मैं बउँत विधि, भयेजु देव सथांन॥
मुष मैं अग्नि सथांन किय, जासौं वचन विधान॥ ७ ॥
तालू भयो विराट कै, वरुन बस्यौ तहँ आय॥
जासौं सब रसकौ इहै, स्वादु लेत बहु भाय॥ ८ ॥
भई नासिका तामहीं, बसै जु अस्वनिकुमार॥
जासौ सूंघत है इहै, सबही गंध प्रकार॥ ९ ॥
नेत्र भये तहँ रवि बस्यौ, जासौं देषत रूप॥
चर्म ठौर रह्यौ पवन तिहिं, सपरस होय अनूप॥१०॥
करन भये जु तहँ दिसि बसि, सुनत सब्द जिहँ पाय॥
त्वचा ठौर औषधि भई, तासौं अंग षुजाय॥११॥
प्रगट भई इंद्री तांह, बसत भयो मुषचार॥
जासौं प्रापति होत है, अति आनन्द सुढार॥१२॥
प्रगट भई इंद्री गुदा, बस्यौ मिरति तिहिं थांन॥
जासौं करनौं होत है, मल कौ त्याग विधांन॥१३॥
परगट याकैं कर भये, इंद्र बस्यौ जिहिं ठांम॥
लेत देत जिन सौं इहै, करत हैं सबही कांम॥१४॥
चरन प्रगट याकैं भये, विस्नुं बसै तिहँ ठौर॥
चलत फिरत जिन्हसौं इहै, करन चहै जहँ दौर॥१५॥
हिर्दै प्रगट याकैं भयौ, तांह चन्द्रमा बास॥
जासौं सब विधि होत है, बउत विकार प्रकास॥१६॥

अहंकार याकैं भयौ, रुद्र बांस तांह कीन॥
जासौं सब कछु करत यहि, कारिज नित्त नवीन॥१७॥
याकै चित प्रगटित भयौ, तांह महतत्व बसंत॥
जातैं सबही वस्तु की, आछैं सुधि राषंत॥१८॥
बुद्धि प्रगट याकै भई, तांह बसे मुषचार॥
जासौं सबही बात यहि, समझत भलै प्रकार॥१९॥
स्वर्ग विराट सरूप कै, सिर कै बिच किय थांन॥
पायन तैंभय भूमि नभ, नाभी तैं यौं जांन॥२०॥
सतोगुणी ह्वै देवता, रजोगुणी नर देह॥
तमोगुणी ह्वै रुद्र कै, पारषद बिनु संदेह॥२१॥
मुषतैं वेद रु द्विज भये, वृति तपस्या जुत ग्यांन॥
अरु भुजान तैं वृति सहित, छित्रिय भयै बलवांन॥२२॥
वैस्य भयो जंघांन तैं, वृत्ति षेती व्यौपार॥
गौरष्या प्रगटी प्रथम, कहत सूद्र वृति सार॥२३॥
सुश्रूषा प्रगटी प्रथम, सूद्र पगन सौं जांनि॥
चहूँ वर्न सेवत प्रभुहिं, निज निज धर्महिं मांनि॥२४॥
प्रभु विराट कै रूप कौ, बरनि सकै विसतारि॥
निज पवित्र रसना करन, बरनत मति अनुसार॥२५॥
इहै वचन कौ लाभ है, करियै हरि गुन गांन॥
श्रवन लाभ हरि गुन सुनैं, और जु वृथा विधांन॥२६॥
विधिहूं वर्ष हजार लौं, तपस्या किय निज ठौंरु॥
प्रभु की गति समझी नाहिं, तोकौ जानैं औंरु।२७॥
माया है भगवांन की, सबकौं मोहन हार॥
प्रभुहूं वहिं पार न लहत, और लहै कौ पार॥२८॥
जाकौ नाहिंन करि सकत, मन अरु वचन वषांन॥
नमसकार ताकौं कियौ, जिन यहि जगत विधांन॥२९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(विदुर जी के प्रश्न)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक कहत कि मैत्रेय कैं, सुनि कैं अैसें बैन॥
फैरि विदुर बोलत भयै, महा ग्यांन के अैन॥ १ ॥

॥ विदुर उवाच ॥

निरविकार निरगुन प्रभू, पूर्न ब्रह्म करतार॥
कौन भांति लीला करी, सगुन सृष्टि परकार॥ २ ॥
बालक क्रीड़ा करत हैं, वाकै ईच्छा होत॥
कछु ईच्छा भगवांन कैं, तौ नहिं चित उदोत॥ ३ ॥
प्रभु ही अपनी प्रकृति करि, इहै सकलहुँ संसार॥
उतपति पालन पुनि प्रलय, करत आप करतार॥ ४ ॥
ग्यांन रूप निरलैप है, जीव आत्म भगवांन॥
माया सौं कइसैं मिले, सो कहुँ भेद बषांन॥ ५ ॥
इहै जीवप्रभु रूप तौ, याहि लगै क्यौं कर्म॥
अरु दुष याकौं क्यौं लगै, सो समझावहुँ मर्म॥ ६ ॥
यहै जगत उपजाय क्यौं, अैसी लीला कीन॥
मोमन या संदेह मैं, होय रह्यौ है लीन॥ ७ ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

इहै वचनसुनि विदुरकौ, बौले रिषि मैत्रेय॥
आछी भांतिन कहत हौ, लीला प्रभु की गेय॥ ८ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

इहै जीव भगवांन कौ, निश्चै ही अंस सरूप॥
ताकौं झूठैं ही प्रकृति, बंधन कियौ अनूप॥ ९ ॥
जइसैं सुपनैं मैं लषै, कट्यौ आपनौं सीस॥
त्यौंही झूठौ तन लग्यौ, जीवहिं बिसवाबीस॥१०॥
ज्यौं ससि कौ प्रतिबिम्ब जल, माहिं परत है आंय॥
जल हालत मैं चंद हूं, हालत सौ दरसांय॥११॥
अैसी भांति सरीर कै, सुष दुष बउंत प्रकार॥
लगै दिषाई दैत हैं, जीव मद्धि निरधार॥१२॥
प्रभू भक्ति करि जीव कौ, दूरि होय अग्यांन॥
जीव रहै निज रूप जबि, टरैं कलेस निदांन॥१३॥
सुनैं कथा भगवांन की, रहै कलेस न कोय॥
अरु जो सेवै चरन उन्ह, सुतौ क्रितारथ होय॥१४॥

॥ विदुर उवाच ॥

यहि सुनिकैं बौले विदुर, म्हैरौ मिट्यौ संदेह॥
ईस्वर अरु या जीव कौ, जान्यौं रूप अछेह॥१५॥
झूठौ है यहि जगत सबि, सौहू हम्ह लषि लीन॥
रचनां बउंत प्रकार सौं, सांचे प्रभु नैं कीन॥१६॥
मूरष अरु पंडित दोऊ, है जु सुषी जग मांहिं॥
अरु अध बिचलै नरन कौ, टरै संदेह जु नांहिं॥१७॥
जानि परत झूठौ जगत, सांचौ सौ परकांस॥
क्रिपा रावरी तैं यहु, मो भ्रम ह्वै हैं नांस॥१८॥
साधुन की सेवा कियैं, उपजत है हरि भक्ति॥
जासौं लहिये परमपद, पाय ग्यांन की सक्ति॥१९॥
साधु सेव दुरलभ तिनहिं, जिनी कियौ तप नांहिं॥
सुनी जात है हरि कथा, साध संगहीं मांहिं॥२०॥
प्रभू तत्त्व चौबीस कौ, रच्यौ विराट सरूप॥
ताकौं आपहिं पैठि कैं, चेतन कियो अनूप॥२१॥
यहै पुरुष अवतार है, जाकै अंगहिं हजार॥
या विराट ही मैं बसत, सकल लोक विस्तार॥२२॥
इही विराट सरूप मैं, हैं दस भांतिन प्रांन॥
अब तुम्ह इहीं विराट की, करौ विभूति वषांन॥२३॥
विधि कै सुत नाती सबै, प्रगट भयै किहुं भाय॥
सो हम्ह सौं आछै कहौ, मुनि तुम्ह भेद जिताय॥२४॥
मन्वंतर मनु प्रजापति, नृप अनुसर्ग रु सर्ग॥
कौनुं कौनुं कियं प्रगट विधि, सोउ कहौ सब वर्ग॥२५॥
प्रजापतिनि अरु मनुन कौ, कहौ वंसही विष्यात॥
भुवतर उपर लोक कहौ, कौनुं कौनुं सरसात॥२६॥
स्थिति लोकन की सब कहौ, जितनौं होय प्रमांन॥
सौ हूं कहियै मुनि सबै, करिकैं भलैं बषांन।२७॥
स्वेदज अंडज जरायुज, उदभिज चारि प्रकार॥
उपज सरीरन की कहौ, करि मुनि भलै बिचार॥२८॥
जग उतपति पालन प्रलय, कौनुं भांति सौं होत॥
यहि चरित्र प्रभू कौ कहौ, निज मति कैहिं उद्योत॥२९॥
वर्णाश्रम अरु वेद कौ, किहिं विधि भयो विभाग॥
जनम करम रिषि गननकौ, कहौ सहित अनुराग॥३०॥
सांष्य सास्त्र जिग्य जोग कौ, आगम अरु पाषंड॥
सब जीवन की गति कहौ, प्रलै होत ब्रह्मंड॥३१॥

चारि पदारथ कै कहौ, कारन सबै सुनाय॥
दंड नीति अरु वारता, श्रवण जु विधिहिं जिताय॥३२॥
उतपति पितरन की कहौ, विधि सराध बहु भाय॥
ग्रह नछत्र तारानकी, स्थिति काल समझाय॥३३॥
दान तपस्यां बाग कौ, फल जिग्य कहा प्रमांन॥
कुवा षुदावन कौ जु फल, कहौ सु मुनि बुधिमांन॥३४॥
परदेसी कौ धरम अरु, कहौ विपति कौ धर्म॥
जिहिं सौ होय प्रसंन हरि, सो हम्हसौं कहुं मर्म॥३५॥
पुत्रन सौं अरु सिष्य सौं, करहिं न बड्डे छिपांव॥
बिनु पूछैहूं कहत हैं, आछैं भेद प्रभांव॥३६॥
तातैं तुम्ह हम्हसौं कहौ, सकल भेद सब भांय॥
भली बात जो है कछू, राषहुँ सौ न दुरांय॥३७॥
नष्ट होत हैं कौनु सै, तत्व बीस चव मांहिं॥
अरु कहियै समझाय कै, कौनुं कौनुं रहि जांहिं॥३८॥
पुरुष रूप गुरु ग्यांन सिष, कहौ प्रयोजन भांय॥
ग्यांन भक्ति वैराग कौ, तत्व कहौ जु समझांय॥३९॥
जान्यौ माया कौ चहत, इतै प्रस्न म्हैं कीन॥
नष्ट दृष्टि अग्यांन तिहिं, कहियै क्रिपा प्रवीन॥४०॥
दिये ग्यांन उपदेस कै, जितनौं इक फल होत॥
जिग्य तपस्यां के कियैं, तितनौं फल न उदोत॥४१॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि मैत्रेय जू, विदुर वचन सुनि येह॥
बहुरि आप बोलत भयै, चित धरि महा सनेह॥४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(ब्रह्माजी की उत्पत्ति)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - बौले मुनि यौं धन्य है, राजा कुरु कौ बंस॥
जा मैं तुम्ह प्रगटै विदुर, वैस्नव परम प्रसंस॥ १ ॥

पूछत हौं तुम्ह प्रीति जुत, हरि की कथा उदार॥
बडभागी तुम्ह सौ कवन, बीच यहे संसार॥ २ ॥
थोरे सुष कौं जगत कै, मूरष जीव अपार॥
दीरघ दुष मैं रहत है, परै सदा निरधांर॥ ३ ॥
दुष्ष निवारन कहत हौं, अब भागवत पुरांन॥
सेसनाग सनकादिसौं, कीनों कछु जु बषांन॥ ४ ॥
सेसनाग जू इक समैं, करत रहै हरि ध्यांन॥
तिन सौं पूछ्यौ ब्रह्म सुत, श्री भागवत पुरांन॥ ५ ॥
सनकादिक विधि कै सुवन, करिकैं गंग सनांन॥
ब्रह्मलोक तैं गयै पुनि, बिच पाताल सथांन॥ ६ ॥
नमसकार करि सेस कौं, पूछ्यौ ग्यांन उदार॥
करत भये कर जोरि कैं, असतुति भलैं प्रकार॥ ७ ॥
सेसनाग कहि भागवत, सनकादिकनि सुनांय॥
सांष्यायन रिषि सौं कह्यौ, सनत कुमार सुभांय॥ ८ ॥
फिरि सांक्यायन रिषि दयौ, परासरहिं वहि ग्यांन॥
और बृहस्पति कौं कियौ, ग्यांन भागवत दांन॥ ९ ॥
हम्हहिं परासर रिषि कह्यौ, बहुरि ग्यांन उपदेस॥
सोइ भागवत हूं अबैं, कहिहौं तुम्हहिं बिसेस॥१०॥
प्रलय जगत कौ करि प्रभु, नीर प्रलय कै मांहिं॥
यैक समै पौढे हुतै, सेस सज्या कै ठांहिं॥११॥
प्रभु जल मैं सोयै रहै, कइ हजार जुग चौक॥
ता पाछैं अपनैं हिर्दै, बीच लषै सबि लौक॥१२॥
प्रगट भयो तिन नाभि तैं, येक कमल तिहिं बार॥
हुव प्रकास वहिं कमल कौ, रवि समान निरधार॥१३॥
प्रगट भयो ता कमल मैं, ब्रह्मा जू तिहिं ठांम॥
पैं कछु नाहिंन समझियै, कौ म्हैं कौ मो नांम॥१४॥
बैठि कमल कलिका उपरि, ब्रह्मा जू तिहिं बार॥
चहूँ बोर चितये तबै, प्रगट भये मुषचार॥१५॥
प्रलय समैं कै नीर की, प्रबल तरंग जु झकोर॥
हालन लाग्यौ कमल वहि, तिन झकोर कैं जोर॥१६॥
बैठे विधि तिहिं ऊपरैं, लागै करन विचार॥
कमल कहां तैं हूं कवन, किहिं आश्रय निरधार॥१७॥
यहि विचार करि विधि गयै, बीच कमल कै नाल॥
फिरत तहँ सत वर्ष हुवै, लह्यौ न अंत विसाल॥१८॥

फेरि वांह तैं कमल पैं, बैठि जोग कैं जोर॥
मन वसि करि हरि ध्यांन किय, विधि अपनै हिय ठौर॥१९॥
ध्यांन करत सौ बरस मैं, ब्रह्मा कै हिय ठांम॥
दर्सन हुवै भगवान कौ, अदभुत अति अभिरांम॥२०॥
सोभित स्वेत मृनाल सै, सेस भलै परकार॥
ताकै फन गन रतन सौं, मिटि जु रह्यौ अंधियार॥२१॥
ता अंग पर सोवत रहै, नारायन जल मांहिं॥
ऐसौ प्रभु दरसन भयौ, ब्रह्मा कौ तिहिं ठांहिं॥२२॥
नीलमनी गिरि सम प्रभू, मुकट सिषर सम सीस॥
लता फूल बनमाल मनु, हाथ पाव तरु दीस॥२३॥
अरु जामैं ब्रह्मंड सब, पूरन रह्यौ समांय॥
इतनौं बडो सरूप प्रभु, अति सोभा सरसांय॥२४॥
सोभा आभ्रन वस्त्र की, बढी पाय अंग संग॥
सेवत है जै भक्त जन, तिन सुष दैन अभंग॥२५॥
तिन चर्नन के मध्य नष, मनि समान छवि देत॥
दरसन तिनी पद कंज कौ, विधि कौं दियो सहेत॥२६॥
मंद हंसनि जुत मुष सुभगहिं, ताकौं आप दिषांय॥
ब्रह्मा कौं प्रभू करत हैं, मुदित क्रिपा कैं भांय।२७॥
कदम्ब केसर सै लसत, पीत वस्त्र अभिरांम॥
चिन्ह लछमी कौउ सुभग, झलमलात हिय धांम॥२८॥
चंदन तरु प्रभू मूल ब्रह्म, अंस सकंध श्रृप सेस॥
साषा बाहु अनंत फल, पुष्प पत्र मणि भेष॥२९॥
पर्वत तन श्रृंग कीट जल, व्याप्त नग आभर्न॥
विधि प्रभु ऐसौ दरस किय, चर अचरन कौ सर्न॥३०॥
कीर्ति रूप बनमाल हैं, वेद रूप अलि संग॥
आगैं आयुध कांति कै, रवि ससि सोभा पंग॥३१॥
अरु प्रभु नाभी मधि कमल, ता मधि ब्रह्मा थांन॥
जल समीर आकास जुत, लषि विधि कर्यौ निदांन॥३२॥
रजोगुनी लषि विधि इती, जगत रचन की सौंज॥
प्रभु की असतुति करत भौ, चित धरि हरिपद कौंज॥३३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टमोऽध्यायः ॥८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

(ब्रह्मा जी द्वारा भगवान की स्तुति)

॥ ब्रह्मोवाच ॥

दोहा - प्रभु की असतुति तब कही, ब्रह्मा भलैं बनाय॥
बउंत दिनन में तुम्हहिं म्हैं, जान्यौं प्रभु सुषदाय॥ १ ॥
जानि परत हौ नहिंन तुम्ह, सौ प्रानिन कौ दोष॥
जानन लायक हौ जु तुम्ह, हे स्वामी जग पोष॥ २ ॥
अरु सबहीं है और सौ, झूठौ प्रकृति विलास॥
ग्यांन रूप हौ तुम्ह प्रभू, तुम्ह तैं जगत प्रकास॥ ३ ॥
तुम्ह नारायन रूप किय, दया जगत पैं धारि॥
जिनकै नाभी कंज तैं, हूं प्रगट्यौ इहँ वा रि॥ ४ ॥
निर्गुन ब्रह्म सरूप तैं, जुदौ रूप यहि नांहिं॥
तातैं हूँ या रूप कै, आयो सरन उमांहिं॥ ५ ॥
भक्तन कैं कल्यान हित, तुम्ह अपनौं यहि रूप॥
ध्यांन मांहिं दिषवत प्रभू, सुंदर परम अनूप॥ ६ ॥
मंगल करता जगत कै, हे स्वामी करतार॥
नमसकार तुम्ह कौं करत, मन वच क्रम निरधार॥ ७ ॥
भागिहीन जै जीवं हैं, करत न सज्जन संग॥
तेई नांहिंन करत हैं, प्रभु तुव ध्यांन अभंग॥ ८ ॥
हे प्रभु तुव पद कंज की, महिमा गाई वेद॥
ताकौं जै श्रवनन सुनत, तजि झूठौ जग भेद॥ ९ ॥
अरु पद सेवत रावरे, चित धरि भक्ति प्रभाव॥
तासौं अपने रूप कौ, उनहिं न रहत दुराव॥१०॥
ईच्छा ममता लोभ ए, रहत जीव कौं लागि॥
जबलौं तुम्ह चरनन सरन, आवत नहिं अनुरागि॥११॥
दूरि करन सब पाप कौं, तुम्ह चरित्र सुभ तंत॥
ताकौ तजि जग विषै कै, सुषकौ लोभ करंत॥१२॥
तै जु दैव मारै पुरुष, मुरष है जगमांहिं॥
बहैप्रकृति गुनरंग मैं, भली समझि कछु नांहिं॥१३॥
भूष प्यास पित वात कफ, गरमी वरषा सीत॥
वायु काम की अग्नि अरु, क्रोध नीच की रीत॥१४॥
तिन्हसौं प्रानी दुषि है, सबही बिचू संसार॥
तिन्हकौं लषि कैं दुषित है, म्हैरौ मन निरधार॥१५॥
माया रूप सरीर सौं, जबलौं राषत प्रीति॥
तबलौं मिटै न जीव की, जनम मरनता रीति॥१६॥

करि तपस्यां दिन कै समैं, रहत कलेसहिं मांहिं॥
जुत अभिलाष जु सुपन निसि, देषैं सोवैं नांहिं॥१७॥
जाय स्वर्ग हूं गिरि परत, फेरिलोक भुव ठांहिं॥
रिषि हुं रावरी क्रिपा बिनु, भ्रमत फिरत जग मांहिं॥१८॥
प्रेम तिहारे सौं प्रभू, निर्मल जिन उर ठांम॥
बसत रहत तामैं सदा, तुम्ह प्रभु पूरन कांम॥१९॥
भक्त मनोरथ करत हैं, जइसैं तइसैं भाय॥
तइसैं ही तुम्ह धरत हौ, प्रभू रूप सुषदाय॥२०॥
जै कोउ राषत है दया, तुम्हहिं लषत सह ठौंर॥
तिन्हसौं तइसैं होत हौ, मुदित सकल सिरमौंर॥२१॥
बउंत.. सी सामग्रीन सौं, पूजत तुम्हकौं कोय॥
तिनसौं तइसौ प्रसन चित, नहिं न तिहारौ होय॥२२॥
तातैं तब जिग्य दान विधि, करै प्रसनं तुम्ह हौंन॥
फिर चित अपनैं मैं कछू, करै कामना कौन॥२३॥
अपनै रूप प्रकास तैं, तुम्ह जु सदा भगवांन॥
दूरि करत हौ जीव कौ, महा मोह अग्यांन॥२४॥
उतपति पालन प्रलय जग, करत जु त्रिगुन प्रकार॥
ग्यांन रूप हौ तुम्ह प्रभू, करत प्रनति बहु बार॥२५॥
तुम्ह गुन कर्महिं गावहिं, अंत समैं हूं कोय॥
तिनकै पाप मिटै सबै, तुम्हरी प्रापति होय॥२६॥
नारायन वृछि रूप हौ, तुम्हहिं करत परिनांम॥
ब्रह्मा विस्नु महेस तिहुँ, डार तिहारी स्यांम।२७॥
यहि जग लग्यौ जु पाप मैं, करत भलै कृत नांहिं॥
अरुचि धरत तन आपनौं, सेव तिहारी मांहिं॥२८॥
कालरूप तुम्हहीं प्रभू, ग्रसि जु लेत हौ यांहिं॥
नमसकार जू कर जोरि, तुम्हहिं करत हौं चांहिं॥२९॥
द्विपरारध की आयु मो, तुम्ह हौ काल सरूप॥
तातैं म्हैं डरि बउंत दिन, तपस्यां करी अनूप॥३०॥
पसु मनुष्य अरु देवता, तिन्हकैं मधि बहुवार॥
पालन जग मरजाद कौं, धारत तुम्ह अवतार॥३१॥
हे स्वांमी करतार तुहिं, प्रकृति लगी है नांहिं॥
तऊ सेष सज्या उपरि, तुम्ह सोये जल मांहिं॥३२॥
जनम मरन सौं जीव ये, दुषित तिन्हहिं सुषदैंन॥
राषि सबन कौ उदर मैं, आप करत हौ सैंन॥३३॥

नाभि कमल जो रावरो, प्रगट हौंहिं तिहुँ ठांहिं॥
याहि सबही ब्रह्मांड है, उदर रावरे मांहिं॥३४॥
प्रभू तुम्ह निद्रा त्यागि अब, निज ईच्छा तैं कीन॥
नेत्र पफुल्लित कंज से, सोभित सोभा लीन॥३५॥
हे स्वांमी अनुग्रह करौ, अैसौ मो पर आप॥
बढ़े मोहि सामर्थ जग, रचौं मिटै जु संताप॥३६॥
करता सबही जगत कै, तुम्ह ही हौ भरतार॥
तुम्ह आग्यां ही सौं रचत, म्हैं हूँ सृष्टि प्रकार॥३७॥
सरन भयें वरदान कै, देन धरत अवतार॥
तव प्रभाव रूपी जगत, रचन सक्ति द्यौ सार॥३८॥
उपजन म्हैं पाई प्रभू, नाभिकमल तुम्ह ठांहिं॥
सृष्टि रचौं पैं चित रहौ, वेद सक्ति चित मांहिं॥३९॥
करुनावंत बडै प्रभू, तुम्ह जु अनादि अछेहु॥
बौलिसु प्रेम संजुक्त ह्वै, षेद टारि मो देहु॥४०॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

कहत जु रिषि मैत्रेय जू, इन भांतिन मुषचार॥
स्तुति करि भगवांन की ह्वै, रहै चुप तिहूँ बार॥४१॥
प्रलै काल कै नीर सौं, ब्रह्मा अति भय पाय॥
बैठे वाही कंज पैं, प्रभु आश्रय चितलाय॥४२॥
विधि ईच्छा सृष्टिहिं रचन, लषि बौले भगवांन॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

ब्रह्मा काहू भांति तुम्ह, करहुं न सोच निदांन॥४३॥
सृष्टि रचन उद्यम करहुं, बुधि मो मैं करि लींन॥
जो चाहत सामर्थ तू, सौ हम्ह पहलहिं दींन॥४४॥
करहुं तपस्यां फेरि तुम्ह, अरु संजुत ह्वै ग्यांन॥
हिर्दै विषै लषि हौ सबै, तासौं लोकं सथांन॥४५॥
भक्ति जुक्त एकाग्र ह्वै, जग सु अपन पै मांहिं॥
लषि हैं तब सब जक्त ए, मोही मैं दरसांहिं॥४६॥
अग्नि काष्ट कै मद्धि है, तइसैं म्हैं सब ठौर॥
यौं जानैं तम मिटत हैं, नहिं उपाय कछु और॥४७॥
न्यारौ जबै सरीर तैं, आत्मा जानैं कोय॥
तब सागर संसार तरि, जीव मुक्त यहि होय॥४८॥
प्रजा अनैकनि रीति सौं, तू स्त्रजि है मुषचार॥
तउ तौ मद नहिं होयगौ, यहि मो क्रिपा प्रकार॥४९॥

हे विधि निस्चै चित्त तौ, लागि रह्यौ मो मांहिं॥
तातैं तो कौं रजोगुन, बंधन करि है जु नांहिं॥५०॥
सर्व पदारथ सौं बउंत, दुर्लभ है मो ग्यांन॥
जान्यौ है तैं मोहि सौं, म्हैरी क्रिपा पिछांन॥५१॥
कंजनाल बिच सतवरष, फिर्यौ जु जानन मोहि॥
तब म्हेरौ दरसन यहै, मैं दीनौं है तोहि॥५२॥
बउंत तपस्यां तैं करी मो, असतुति हित जू मांनि॥
सो यहि हूं बहु भांति तैं, महा अनुग्रह जु जांनि॥५३॥
म्हैं तो भलै प्रसंन अति, तेरौ होहुं कल्यांन॥
निर्गुन सगुन विधांन सौं, किय म्हेरौ गुनगांन॥५४॥
तैं असतुति कीनी यहै, ताहि करै जो पाठ॥
दैहुँ कामना सकल मैं, और सिद्धि जै आठ॥५५॥
तपस्यां जोग समांधि जिग्य, क्रिया करम अरु दांन॥
सबकौ फल मो कौं लहै, मन वच प्रसंन निदांन॥५६॥
म्हैं प्रिय आत्मा सबनिकौं, मो सौं प्रीति लगांउं॥
मोही मैं है प्रजा सब, विधि तू प्रजा उपजांउं॥५७॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

अैसी भांतिन वचन कहि, ब्रह्मा सौं भगवांन॥
दास मनोरथ पूर्न करि, भये सु अंतरध्यांन॥५८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

(दस प्रकार की सृष्टि का वर्णन)

॥ विदुर उवाच ॥

दोहा - पूछत विदुर कि जब प्रभू, ह्वै गये अंतरध्यांन॥
तब ब्रह्मा निज देह तैं, अरु मन कैं उनमांन॥ १ ॥
कै प्रकार की सृष्टि कि सो, मोहि देहु जु जिताय॥
अरु हम्ह कीनैं प्रस्न जै, कहौ संदेह मिटाय॥ २ ॥

॥ सूत उवाच॥

सूत कहत हैं विदुर कौं, सुनि यै वचन सु गेय॥
अति प्रसंन ह्वै कै बहुरि, बौले रिषि मैत्रेय॥ ३ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

अहो विदुर सौ वर्ष लौं, बहुर्यौ विधि तप कीन॥
तपस्यां बल अरु कैं, पवन नीर पिय लीन॥ ४ ॥
सृष्टि रचन ब्रह्मा चह्यौ, वाहिं कंज कै मांहिं॥
विधि किय वाही कंज के, त्रय विभाग वहिं ठांहिं॥ ५ ॥
फेरि रचत वाहिं कंज कै, विधि किय चव दह षंड॥
लोक चतुर्दस रूप भौ, वहै कंज ब्रह्मंड॥ ६ ॥
इनही चवदह लोक मैं, जीव फिरत है नित्य॥
छूटै जग जंजाल तैं, प्रभु सौं लगयैं चित्त॥ ७ ॥

॥ विदुर उवाच ॥

विदुर कहत यहि काल है, पूर्न ब्रह्म कौ रूप॥
कहियै रिषि मैत्रेय जू, ताकौ लछिन अनूप॥ ८ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कहै मैत्रेय प्रगट हुव, जासौं महतत्व आदि॥
जाकौ आदि न पाइये, जानहुँ ताहि अनादि॥ ९ ॥
जाकरि कैं भगवांन यहि, करत हैं सृष्टि उपाव॥
ऐसौ है वहि काल तिहिं, नहिंन परत समझाव॥१०॥
यहै जगत प्रभुरूप है, काल देत उपजाय॥
चलि आयो है सदा तैं, हरि ईच्छा कै भाय॥११॥
है सरूप भगवांन कौ, यहै सकल जु संसार॥
और तरह कौ लषि परत, सौ माया परकार॥१२॥
प्राकृत बैकृत भेद सौं, सृष्टि भांति नौ होत॥
काल द्रवि गुन करि प्रलै, तीन प्रकार उदोत॥१३॥
प्रथम सृष्टि महतत्व की, अहं सृष्टि दुव जांन॥
तन मात्रा तीजी जु है, चौथी इंद्रिय ग्यांन॥१४॥
मन अरु सुर इंद्रीन कै, पंचम सृष्टि विचारि॥
पंच जु पर्व अग्यांन की, सृष्टि जु छठे प्रकारि॥१५॥
छह प्रकार की सृष्टि यहि, प्राकृत भेद सुजांनि॥
लीला है भगवांन की, अदभुत अति ही मांनि॥१६॥
सृष्टि सातईं वृछिन की, है ताकै छ प्रकार॥
लता औषधी वनसपति, द्रुम वीरुध त्वक्सार॥१७॥
तमोगुणी इह सृष्टि हैं, इन्हकौ उच्च अहार॥
समझि लीजिये चित्त मैं, आछी विधि निरधार॥१८॥
सृष्टि आठईं पसुन की, भेद अठाइस जांन॥
नासा इंद्री मुष्य तिन, तमोगुनी अग्यांन॥१९॥

बकरा भैंसा गाय मृग, सूकर गवय रुरु जांनि॥
ऊँट भेड इन पायकै, चिरै हौंहि षुर मांनि॥२०॥
तातेंइन सबहींन कौ, द्विसफ कहत है नांव॥
जइसी भांतिन म्हैं सुनैं, तइसैं तुम्हहिं बतांव॥२१॥
षर षच्चर असु सुरभि गौ, अष्टापद अरु गौर॥
चिरै नाहिंनै होत हैं, इनकै षुर की ठौर॥२२॥
तातें इन जु पसून कौ, इक सफ नांव सुजांनि॥
अबै पंचनष पसुन कै, कहतहिं नांव सुमांनि॥२३॥
स्वान स्याल वृक अरु ससा, सेहरु व्याघ्र विडाल॥
वानर गोधारु सिंह गज, कछवा मगर कराल॥२४॥
अब पंछी बरनन करतहुं, तिनहूंकौं सुनि लेहु॥
प्रभु रचना कीनी अनत, ताकौ नाहिंन छेहु॥२५॥
गीध बाज चकवा उलू, सारस कउवा मोर॥
भास भलू कहि आदि दै, पंछी अगनित कोर॥२६॥
नवमी सृष्टि मनुष्य की, सो है एक प्रकार॥
तिन मनुषन कौ है प्रगट, नीचै कौ जु अहार।२७॥
रजोगुनी है नर सबै, लागि रहै बिच करम॥
मानि दुःष मैं सुषहिं महा, बिनु जानैं हरि धरम॥२८॥
कहै प्रकार जु सृष्टि कै, सुर सृष्टि हुँ इहि मांहिं॥
सो अब बर्नन करत हौं, तिनमैं रज तम नांहिं॥२९॥
विवुध पितर सुर अपसरा, जछ रछ गंधर्व॥
चारन भूत रु प्रेत लौं, आदि और हूँ सर्व॥३०॥
सनक सनंदन सृष्टि यहि, प्राकृत बैकृत जांनि॥
जानहुँ अैसें सृष्टि यहि, दस विधि कही बषांनि॥३१॥
अब हम्ह तुम्हकौ कहत हैं, सबकै वंस सुनाय॥
अरु मन्वन्तर कै कहौं, आछैं भेद बताय॥३२॥
अैसौ विधिकौ रूप धरि, आपहि प्रभु करतार॥
रचना या सब सृष्टि की, रचत अनैंक प्रकार॥३३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते दसमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

(मन्वन्तरादि काल विभाग का वर्णन)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा - कहत है रिषि मैत्रेय जु, अवगति काल बषांनि॥
निरमय प्रथम प्रमांन कौ, सुनियैं भलैं विधांनि॥ १ ॥
अति सूछिम परिमांनु है, द्वै न एक तैं दोय॥
ऐसौ सूछिम अरु मिल्यौ, नहिं न किहूँ तैं होय॥ २ ॥
भुव जलकन अरु अगनि कन, अंतिभाग परिमांन॥
इहै भेद परिमांनु कौ, भलैं लेहुं पहिचांन॥ ३ ॥
द्वै इकठै परिमांनु ही, जबै मिलत हैं आंय॥
तबैं स्थूल ब्रह्मांड यहि, होत न बरनौं जांय॥ ४ ॥
ज्यौं सूछिम परमांनु है, तिहिं करि प्रिथी सथूल॥
त्यौंही सूछिम स्थूलता, लषौ काल गति मूल॥ ५ ॥
जितनैं मैं परिमानु सम, रवि लांघत आकास॥
सोई सूछिम काल गति, सुनियैं सहित हुलास॥ ६ ॥
अरु रवि बारह रासि पैं, फिरि इक वरषहिं मांहिं॥
बडौ काल तासौं कहत, आवैं फिरि उहिं ठांहिं॥ ७ ॥
द्वै परिमांनु जु मिलत है, जब तब इक अनु होत॥
तीन मिलै अनु समझियै, इक त्रिसरेनु उदोत॥ ८ ॥
तीन मिलै त्रिसरेन जब, सुनहुं होय त्रुटि येक॥
सो त्रुटि द्वै मिलि वेध इक, समझहु बुद्धि विवेक॥ ९ ॥
तीन वेध कौ येक लव, त्रय लव कौ जु निमेष॥
तिहुँ निमेष कौ येक क्षिण, काष्टा पंच क्षिण पेष॥१०॥
काष्टा पंच दस मिलै जब, तब लघु येक कहाय॥
पंद्रह लघु ताकी बहुरि, येक घडी सरसाय॥११॥
येक महूरत होत है, दोय घडी कैं मेल॥
पहर घड़ी छह सात कौ, इहै काल गति मेल॥१२॥
बावन द्वै अठ पहर की, आठ घड़ी सँधि दोइ॥
साठि घड़ी कै दिवस निति, यहै भेद लै जोइ॥१३॥
पात्र टका छह भरि बनैं, तातैं नहिं अधिकाय॥
सोरह टका जु माय जल, ऐसी रचै बनाय॥१४॥
सुवरन मासा चार की, अंगुल चव उनमांनि॥
रचै सलाई येक तिह, छिद्र पात्र विच ठांनि॥१५॥

वहै पात्र जल मैं धरै, जल भरि वुडि जू जाय॥
भेद घरी इक भये कौं, लीजै अैसैं पाय॥१६॥
चार पहर कौ दिवस निस, चार पहर की होय॥
पंद्रह पंद्रह दिवस कै, सुक्ल कृस्नं पछ दोय॥१७॥
द्वै पछ कौ इक मास सो, पितर दिवस निस जांनि॥
द्वै मासन की येक रितु यहै, समझहूँ चित्त आंनि॥१८॥
उत्तरायन दछिनायन रु, षट षट मासनि होत॥
देवतांन कै जानियैं, सो निस दिवस उदोत॥१९॥
बरस जु बारह मास कौ, सौ बरसहि नर आयु॥
प्रभू भजन तैं अमर ह्वै, नहिंन मृत्यु भय पायु॥२०॥
ग्रह नछत्र तारा प्रभु, काल चक्र आधार॥
बारा रासनि भ्रमत रवि, बिच ब्रह्मांड अपार॥२१॥
संवत पंचन कै कहत, अब हौं नाम गनांय॥
ते सुनियै श्रवनन भलैं, लेहु भेद यहि पांय॥२२॥
इक संवत्सर प्रथम ही, परिवत्सर बिवतांनि॥
इडा वत्सर है तीसरौ, चव अनुवत्सर जांनि॥२३॥
वत्सर नाम जु पंचमौ, भेद कहै समझाय॥
बार बार आवत सदा, निज निज औसर पाय॥२४॥
नभ परिमांन समांन कौं, लांघत सूरिज फेरि॥
आवत वाही रासि पैं, बरस दिवस कैं घेरि॥२५॥
काल रूप रवि जगत मैं, फिरत रहै निरधार॥
हूँ प्रनांम ताकौ करत, मन बच बारम्बार॥२६॥

॥ विदुर उवाच ॥

पितर देवता मनुष्य कौ, आयुष दिवस प्रमांन॥
कह्यौ अबैं करियै अवर, आछैं भेद वषांन।२७॥
जोग दृष्टि करि रिषि सबै, जानत हौ गति काल॥
तातैं हूँ पूछत तुम्हहिं, भेद जु सकल रसाल॥२८॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

सत त्रेता द्वापर रु कलि, ए जुग चार प्रमांन॥
द्वादस सहस जु सुर बरस, पूरन होत निदांन॥२९॥
बरस सहस चव आठ सै, सत जुग संध्या जांनि॥
तीन सहस छह सै बरस, त्रेता संध्या मांनि॥३०॥
वरष सहस द्वै चार सै, द्वापुर संध्या तांन॥
यैक सहस बिबसत बरष, कलि संध्या उनमांन॥३१॥

धर्म जुगन कै कीजियै, भलैं जुगनहीं मांहिं॥
अरु जुग मध्यम धर्म जै, होत है मध्यम नांहिं॥३२॥
चार चरन जुत रहत है, धर्म जु सातजुग मांहिं॥
और जुगन मैं धर्म कै, इक इक चरन घटांहिं॥३३॥
चव हजार जुग चौकरी, जबही होत बितीत॥
तब बिधि कौ इक दिवस पुनि, उतनी ही निस रीत॥३४॥
ब्रह्मा कै इक दिवस कौ, येक जु कल्प सु होत॥
तामैं चवदह इंद्र अरु, मनु कौ होत उदोत॥३५॥
इकहत्तर जुग चौकरी, करत येक मनु राज॥
मनु मनु सुत रिषि इंद्र तिहँ, समैं नये सब साज॥३६॥
इहै त्रिलोकी सृष्टि सब, विधि कै दिन मैं होत॥
नर सुर पसु पंछी सकल, पावत भलैं उदोत॥३७॥
चवदह मनु चवदह जिसनु, चवदह प्रभु अवतार॥
ब्रह्मा कै दिन कै समैं, होत प्रगट निरधार॥३८॥
अंत होँत जब दिवस कौ, रचत सृष्टि विधि नांहिं॥
बैठि रहत चुप होय कैं, साधि मौन इक ठांहिं॥३९॥
तवै सृष्टि लहि नास ससि, सूरिज हूं न रहात॥
अग्नि निकसि मुष सेस तैं, सब त्रिलोक जरिजात॥४०॥
तासौं सब भृगु आदि रिषि, गन अतिही भय पाय॥
महरलोक तजि वै सबै, रहत जु ऊपर जाय॥४१॥
सिंधु उमड़ि कैं तिहीं समैं, देत त्रिलोकी बोर॥
सेस पीठ पैं सोय रहै, नारायन इक ठौर॥४२॥
ब्रह्मा की सौ बरस की, आयुरबल अति पूरि॥
प्रबल काल यहि ताहि हूं, काटि करत है दूरि॥४३॥
विधि कै वरष पचास कौं, येक परारध होत॥
आयुर्बल द्विपरार्ध की, ब्रह्मा देह उदोत॥४४॥
विधि आयुर्वल मैं भयो, पहल परार्द्ध बितीत॥
अब आरंभ द्वितीय कौ, काल प्रबल जग जीत॥४५॥
जा दिन ब्रह्मा प्रगट हुव, ब्रह्म कल्प कहै जांनि॥
प्रथम परार्द्ध बितीत भौ, पदम कल्प इहिं मांनि॥४६॥
जादिन लग्यौ परार्द्ध बिव, सो अब कल्प वराह॥
अंत होय बिधि बितहिं जब, दोय परार्द्ध निवाह॥४७॥
दोय परार्ध नांम जिहिं, ऐसो काल बषांन॥
अव्यय अनादि जग आतमा, तिहिं निमेष परवांन॥४८॥

दोय परारध लौं कह्यौ, लैकैं आदि प्रमांन॥
सूछिम और सथूल इहि, कीनौं काल वषांन॥४९॥
सोइ सबन की आयु कौ, करत काल यहि नास॥
अरु नारायन पैं कछू, चलत न जोरा तास॥५०॥
पूरन यहि ब्रह्मांड सबै, भांति अनैक प्रकास॥
सात आवरन सहित हैं, जोजन कोटि पचास॥५१॥
अैसै केइ ब्रह्मांड प्रभु, रोम कूप कैं मांहिं॥
रज समान वे फिरत हैं, उडे गनें नहिं जांहिं॥५२॥
परम पुरुष साक्षात वहि, नारायण करतार॥
आदि अंत जिन्हकौ नाहिंन, पूरन ब्रह्म अपार॥५३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(सृष्टि के विस्तार का वर्णन)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा – हम्ह महिमा यहि काल की, तुम्हसौ कही सुनाय॥
रचि सृष्टि विधि भाय जिहँ, सो अंब कहूँ जताय॥ १ ॥

चौपाई – प्रथम अविद्या पंच प्रकारा। रचत भये ब्रह्मा निरधारा॥
अंधतामिस्त्र तामिस्त्र जु औरा। महामोह मोह रु तम घोरा॥ २ ॥
सृष्टि पापमय यहि बिधि देषिहिं। चित न प्रसंन भयो अबरेषिहिं॥
बिधि फिरि करिकैं प्रभु कौ ध्यांना। और रचत भौ सृष्टि निदांना॥ ३ ॥
मन तैं पुत्र चारि जु प्रगटाये। सनकादिक रिषि प्रभु सुनि गाये॥
सनक सनंदन तृतिय सनातन। चौथे सनत कुमार जानिमन॥ ४ ॥
रचौ सृष्टि तुम्ह विधि यौं कह्यौ। वे जोगी यहि नाहिंन चह्यौ॥
हम्ह हूं हैं निवृत्त वीतरागी। प्रभु चरणनहीं कै अनुरागी॥ ५ ॥
बिधि आग्या उन मानी नांही। तब विधि कोप कर्यौ चित ठांहीं॥
थांभत भये बउंत ब्रह्मा रिसी। तउन थंभी निकसिं भौंहनि दिसी॥ ६ ॥
तिहि जो क्रोध कौ बालक ठयौ। उपजत ही वहि रोवत भयौ॥
कहत भयो मो भांम बतावो। अरु सथांन म्हेरै समझावो॥ ७ ॥
यहि सुनि विधि बोले रोवो जिनि। तुम्हरै नांम सथांन कहूँ गिनि॥
तुम्ह उपजत ही रुदन जू कियौ। रुद्र नांम तातैं हम्ह हिं दियौ॥ ८ ॥
इंद्री हिर्दै प्रान आकासा। वायु अग्नि जल मही प्रकासा॥

रवि अरु चन्द तपस्यां जाना। एक हम्ह तुम्हकौं दये सथांना॥ ९ ॥
महिनसु मनु मन्यू अरु महांना। ऋतु ध्वज सिव उग्ररेता जांना॥
काल और भव धृब्रत आना। वामदेव ए नांम निदांना॥१० ॥।
घी वृत्ति उसना उमा प्रमांना। नियुत सर्पि अरु इला बषांना॥
अरु अंबिका सुधा पुनि इरावति। दीछा रु रुद्राणी तिय भावति॥११ ॥
इतनी तिय जुत बैठी स्थांना। प्रजा उपजांवु आप निदांना॥
सिव ब्रह्मा की आग्या पाई। अधिक हरष चित मैं उपजाई॥१२ ॥
अपनै ही जु स्वभाव समांना। लागै करन सृष्टि उपजांना॥
सिव कोटिन गण उपजायै तब। लागै षान जगत कौं वै सब॥१३ ॥
ब्रह्मा तबै अधिक भय पाई । बौले ऐसैं वचन सुनाई॥
सिव ऐसी मति सृष्टि उपजावौ। तुम्ह आछैं तपस्यां सरसावौ॥१४ ॥
करिहौं तुम्ह तपस्यां इक बेरा। भली सृष्टि रचिहौं तब फेरा॥
अरु तपस्यां ही के उद्दोतही। जीव प्रभु कौ प्रापति होतहीं॥१५ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

इहै वचन ब्रह्मा कौ मांनिहुँ। सिव वन मैं बैठे तप ठांनिहुँ॥
फिर ब्रह्मा कीनौं हरि ध्यांना। उपजै तबहिं दस पुत्र निदांना॥१६ ॥
जै सुत प्रजा उपजावन हांरा। प्रगट भये आछैं तिहीं बांरा॥
नारद मुनी गोद सौं प्रगटै। कर अंगुष्ट तैं दछि जू थटै॥१७ ॥
प्राननि सौं रिषि भयेउ बसिष्ट। भयेउ त्वचा तैं भृगु रिषि इष्ट॥
पुलह नाभि तैं क्रतु रिषि करतैं। रिषि पुलस्त्य पुनि भये श्रवन तैं॥१८ ॥
मुषतैं प्रगट अंगिरा मांनिउ। अत्रि नेत्र तैंहिं उपजै जांनिउ॥
अरु मरीचि मन तैं उपजाए। ए दस पुत्र सबै विधिहुं भाए॥१९ ॥
धर्म हृदै तैं प्रगट जु भयो। नारायन तहँ वास जू लयो॥
भयो अधर्म पीठ सौं जांनौं। जासौं जगकी मृत्यु प्रमांनौं॥२० ॥
काम हृदै तैं प्रगट जु भयौ। क्रोध जनम भौंहन सैहिं लयौ॥
अधर तैं जु प्रगटायौ लोभहिं। मुष तैं लई सरस्वती सोभहिं॥२१ ॥
गुद इंद्री तैं निरीति भयंकर। कर्दम हुव छाया तैं रिषिवर॥
विधि मन अँग तैं अइसै भायै। भई सृष्टि सब उतपति पायै॥२२ ॥
सुता सरस्वती कौ लषि रूपा। ब्रह्मा मोहित भये अनूपा॥
यहि अधर्म तिहिं बेर निसेषी। मरीचादि सुत सबही देषी॥२३ ॥
ब्रह्मा कौं समझावत हुँ भये। देषि अनीत क्रोधहिं तम छये॥
हे विधि पिता सुनुं महाराजा। किहूँ न कीनौं ऐसौ काजा॥२४ ॥
अरु कौं ऐसौ करि हैं नांहीं। महाअधर्म होय जा मांहीं॥
भलौ न मोहित होत सुतासौं। अति कलंक लागत है यासौं॥२५ ॥
तुम्ह हौं बडेन तुम्ह कौं दोषा। तऊ धर्म कौ करिबौ पोषा॥

तातैं भलौ कर्म यहि नांहीं। देषौ समझि आप मन मांहीं॥२६॥
जाहिं प्रभु कौं हम्ह करत प्रनांम। जिन यहि जगत रच्यौ अभिरांम॥
वे ई राषि हैं धर्म तुम्हारौ। जिन प्रभु तैं सबकौ निसतारौ॥२७॥
सुनि अैसैं पुत्रननि कै बैना। विधि छोडत भये देह सुषिना॥
देह वहै जु सौधौ हरि भई। ताकौं सबै दिसा लैइ गई॥२८॥
यैक समै विधि लगै विचारन। रचिहौं सृष्टि सु कौन प्रकारन॥
तब विधि मुष तैं वेद जु चारा। प्रगट भये जु भलै तिहुँ बारा॥२९॥
चातुरहोत अवर उपवेदा। नियम धर्म कै चरन सभेदा॥
धर्म आश्रमन कै सरसाये। येऊ सबही प्रगटनि पाये॥३०॥

॥ विदुर उवच॥

दोहा - पूछत रिषि मैत्रेय सौं, इहै विदुर फिरि भेद॥
किहिं आनन सौं प्रगट किय, कौन चारि मुष वेद॥३१॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

बौले रिषि मैत्रेय रिग, वेद वेद पुनि साम॥
जजुरवेद अरु अथरवण, वेद चहूँ सुष धाम॥३२॥
पूरवादि मुष तैं सबै, प्रगंट भये ये जान॥
सस्त्र इज्या स्तुति स्तोम अरु, प्रायस्चित्त सूमान॥३३॥
अयुवेद धनुवेद पुनिउ, तृतिय वेद गांधर्ब॥
वेद सथापति यै चहूँ, प्रगट भये मुष सर्व॥३४॥
अरु इतिहास पुरान जै, पंचम वेदहुँ सुजांनि॥
सो सबहीं मुष तैं प्रगट, ब्रह्मा किये प्रमांनि॥३५॥
अग्निष्टोम षोडस उकथ, गोसव रु बाजपेय॥
इत्यादिक चहूँ मुषन तैं, उपजै सुमति सुगेय॥३६॥
विद्या तप सत्य दान अरु, आश्रम चार प्रकार॥
विधि मुष तैं प्रगटे येउ, समझि लेहु निरधार॥३७॥
प्राजापत्य सवित्र अरु, ब्राह्म बृहत ये चार॥
धर्म ब्रह्मचारीन कै, जानहुं भलै प्रकार॥३८॥
वार्ता पुनि संचय सुनौं, अरु सिलौञ्छ सालीन॥
धर्म गृहस्थन कै भए, हम्ह आछैं कहि दीन॥३९॥
वालषिल्य वैषानस रु, उदुम्बर फेनप जांनि॥
वानप्रस्थ कै ए सबै, प्रगटे धर्म जु मांनि॥४०॥
कुटीचक बहूदक रु हंस, निष्क्रिय याही चार॥

धर्म जु संन्यासीन कै, प्रगटे चहुं मुष द्वार॥४१॥
आन्वीक्षिकी त्रयी अरु, सुभवार्ता दंडनीति॥
यै प्रगटै विधि हिर्दै तैं, पुनि ऊँकार पुनीति॥४२॥
प्रगट्यौ उष्णिक लोम तैं, गायत्री त्वचा ठौर॥
त्रिष्टुप उपज्यौ मांस तैं, स्नायु अनुष्टुप और॥४३॥
जगती प्रगट्यौ अस्थि तैं, मज्जा पंकति जांनि॥
बृहती भई जु प्रान तैं, इह निहचै करि मांनि॥४४॥
सपरस भये जु जीव तिहिं, तन तैं स्वर सरसात॥
इंद्री तैं उषमा भये, बल अंतस्थ विष्यात॥४५॥
प्रगट भये जु विहार तैं, जे प्रसिद्ध सुरसात॥
देह और धरि करत भौ, विधि पुनि सृष्टि विष्यात॥४६॥
अधिकी भई नहिं सृष्टि जब, ब्रह्मा चिन्ता कीन॥
देषौ करत हुं म्हैं जतन, तउ कछु प्रजा बढीन॥४७॥
चवमुष ऐसी भांति सौं, करत हुतै जु विचार॥
दोय विभाग सरीर कै, ह्वै गये ताहिं बार॥४८॥
प्रगटै आधै अंग तैं, स्वायंभुव मनु भूप॥
प्रगटी आधै अंग तैं, सतरूपा त्रिय रूप॥४९॥
सृष्टि मैथुनी तब बढी, तिन्हसौं अति अधिकाय॥
हरि ईच्छा अदभुत कछू, पार लह्यौ नहिं जाय॥५०॥
स्वायंभुव मनु कै भये, दोई पुत्र सुभगात॥
प्रियव्रत अरु उतानपाद, जगत मांहिं विष्यात॥५१॥
अरु भइ कन्या तीन जै, अब हूं कहत जु नांम॥
देवहूति आकूति द्वै, अरु प्रसूति सुभ धांम॥५२॥
देवहूति कर्दमहिं दिय, रुचि रिषि कौं आकूति॥
दछि प्रजापति कौं दई, तीजी सुता प्रसूति॥५३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

।। अथ त्रयदशोऽध्यायः ।।

(वाराह अवतार की कथा)

।। श्री सुक उवाच ।।

दोहा - सुक कहै रिषि मैत्रयि कै, सुनि कैं ऐसें बैन।।
विदुर फेरि बोलत भये, वचन महा सुष दैन।। १ ।।

।। विदुर उवाच ।।

हे मुनि विधि कै पुत्र प्रिय, स्वायंभुव मनुराय।।
करत भये कारिज कहा, सौ कहु हम्हहिं सुनाय।। २ ।।
आदिराज हरिकौ भगत, प्रभु आश्रय है जाहि।।
म्हैं धारत सरधा सुनन, मुनि चरित्र कहौ ताहि।। ३ ।।
प्रभु कै भक्तन कौ सुजस, जो सुनियै किहुँ भाय।।
बडौ लाभ यहि संसार म्हैं, इह ही है सुषदाय।। ४ ।।

।। श्री सुक उवाच ।।

सुनिकै वचन जु विदुर कै, मैत्रेय जु रिषिराय।।
रीझि फेरि बौलत भये, हरि मैं निज चित लाय।। ५ ।।

।। मैत्रेय उवाच ।।

स्वायम्भुव मनु नृपति वर, बिधि सौं प्रगट निपाय।।
यौं बोले कर जोरि कैं, पितु कौं सीस निवाय।। ६ ।।
हे विधि तुम्ह हम्हरै पिता, कहा करैं तुम्ह सेव।।
दुहुँ लोकन मैं होय गति, सो कृति कहौ सुभेव।। ७ ।।

।। ब्रह्मोवाच ।।

ब्रह्मा बौले पुत्र ए, तैरे सुनि कैं बैन।।
हूं तो पैं परसन भयौ, मोहि दियौ तैं चैन।। ८ ।।
धर्म यही है सुतन कौ, रहै जु पितु आधीन।।
सोही सोभा है बडी, समझहुँ पुत्र प्रबीन।। ९ ।।
तुम्हकौं आग्या है इहै, उपजावहु संतांन।।
अरु भुव की रछ्या करहुँ, कीजै जिग्य विधांन।।१०।।
तुम्ह रछ्या सब प्रजा की, करहुं भलै प्रकार।।
जासौं हौं ही प्रसंन हरि, सो मो सेव सुढ़ार।।११।।
जिन कीनैं हरि प्रसंन नहिं, वृथा सबै तिन काज।।
अरु जिन कीनें प्रसंन हरि, तिनकै संवरै साज।।१२।।

।। मनुरुवाच ।।

स्वायंभुव बौले करौं, तुम्ह आग्या सु प्रमांन।।
पैं हम्हकौं अरु प्रजा कौं, देहुँ बताय सथांन।।१३।।

बूडि रही है बीच जल, सब प्रिथवी निरधार॥
तिहीं उधारन कौ जतन, अबै करहुँ मुषचार॥१४॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कहत है रिषि मैत्रेय जु, ब्रह्मा कियौ विचार॥
बनिहैं कइसी भांति सौं, प्रिथवी कौ जु उद्धार॥१५॥
प्रजा सृजत मैं प्रिथी यहि, जल मैं भई जु लीन॥
अब विचार उद्धार कौ, कहा करैं हम्ह दीन॥१६॥
जिन प्रभु तैं करता जगत, भयो जु उतपति पाय॥
करिहैं म्हैरो काज यहि, वे प्रभु कृपा जिताय॥१७॥
ऐसौ करतैं सोच अति, विधि नासा कैं राह॥
छौटो सो अंगुष्ट सम, प्रगट भयो वाराह॥१८॥
सो इक छिन मैं बढि गयौ, करी पहार समांन॥
लीला अगम अपार हरि, कौ करि सकै बषांन॥१९॥
मरीचादि रिषि अरु नृपति, स्वायंभुव तिहिंबार॥
वा स्वरूप कौं देषि कैं, लागै करन विचार॥२०॥
विधि नासा तैं प्रगटि कैं, लही तुरत बढवार॥
जानि परत हैं यै प्रभू, जिग्य रूप करतार॥२१॥
ऐसौ उन्हकौ वचन सुनि, गर्जन लगै वराह॥
सौ गर्जनि सुनि विधि भयै, हर्षित रिषि जु उमाह॥२२॥
सत्यलोक जनलोक तप, लोक मद्धि करि चाह॥
रिषि लागै असतुति करन, सुनि गर्जनि वाराह॥२३॥
असतुति सुनि वाराह जू, कूदि परै जल मांहिं॥
पूँछ उठाय रु षुरन सौ, मेघ रहन दिय नांहिं॥२४॥
सबै रिषिन कैं देषतैं, सूँघत प्रिथी वराह॥
प्रभु जल मधि पैठत भये, पूरन सुरमन चाह॥२५॥
इन्हकै कूदन मैं उठी, जल तरंग अधिकाय॥
कर उठाय जनु कहत हैं, प्रभु मो करौ सहाय॥२६॥
चीरत चीरत षुरन सौं, देषी प्रिथवी जाय॥
ल्यायै भुवधरिदाढ पर, हिरण्याक्षहिं विनसाय।२७॥
रुधिर असुर कौ लगि रह्यौ, प्रभु वराह कै अंग॥
तासौं सोभा बढि रही, अद्भुत अधिक उतंग॥२८॥
कबहुं दाढ कै उपरितैं, प्रभु भू देत उछाल॥
कबहुं कि फिरि धरि लेत हैं, ऐसौं करहीं ष्याल॥२९॥
यहि लीला प्रभु की सबै, लषि रिषिवर तिहिं बार॥
करत भये असतुति भलैं, बहु भांतिन सुषसार॥३०॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

नमसकार तुम्हकौं करत, हम्ह प्रभू बारंबार॥
रोम रोम मैं रावरैं, बसत जिग्य निरधार॥३१॥
दरसन इह तुम्ह रूप कौ, दुरलभ है पापीन॥
बडै भाग तैं पाइयैं, बडौ सुकृत हम्ह कीन॥३२॥
तुम्हरे त्वच मधि छंद है, कुस हैं रोमनि मांहिं॥
अरु नेत्रन मैं आज्य है, चातु होत्र पद ठांहिं॥३३॥
श्रुक मधि तुंड विराजहीं, श्रुव नासा कै मांहिं॥
इडा उदर कै मध्य अरु, चमस करन कै ठांहिं॥३४॥
अग्निहोत्र चर्वण लसत, ग्रह है ग्रसन मझार॥
दीक्षा जन्म जु रावरौ, उपसद कंठ सुढार॥३५॥
दाढ प्रायणिय उदैनिय, जिभा है जू प्रवर्ग॥
सभ्यः आवसथ्य सीस है, अरु प्राणहिं चित सर्व॥३६॥
वीर्य तिहारौ सोम है, सवन अवस्थित सीर॥
धातु संस्था जु रावरी, संधि जू सत्र सरीर॥३७॥
विद्या गुरु हौ आप प्रभू, जिग्य रूप करतार॥
सबैं सामग्री जिग्य की, तुव अँग मैं निरधार॥३८॥
प्रभू तुम्हारी दाढ पैं, भुव अइसी दरसाय॥
जइसै गज की सूँड मैं, पंकज सोभा पाय॥३९॥
प्रिथ्वी दाढ पर धरैं हौ, प्रभू वेदमय रूप॥
मानहुं परवत सिषर पैं, सोभित मेघ अनूप॥४०॥
भुव राषहुं जल पैं प्रिथी , इह लोकन की मात॥
नमसकार तुम्हकौं प्रभू, हौ लोकन कै तात॥४१॥
इहै कौन जानत रह्यौ, तुम्ह अइसै जु प्रकार॥
जल मैं धर लै आय हौ, हे स्वांमी करतार॥४२॥
तुम्ह कंपायौ अंग कौं, हे स्वांमी इहिं बार॥
तातैं उडि उडि कैं परी, सब ठां नीर फुहार॥४३॥
सतिलोक रु तपलोग जन, लोक बसत निरधार॥
तासौं भये पवित्र हम्ह, सबहीं भलैं प्रकार॥४४॥
मूरष प्रानी जानियैं, वाहै बीच संसार॥
जो कौं चाहैं लैन कौं, तुम्ह माया कौ पार॥४५॥
तुम्हरी माया तैं जगत, रह्यौ जु मोहित होय॥
वे छूटै है फंद तैं, तुम्हहिं भजत जै कोय॥४६॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कहै मैत्रेय जु रिषि सबनि, ऐसैं असतुति कीन॥
प्रिथवी कौं वाराह जू, जल ऊपरि धरि दीन॥४७॥
ऐसी लीला करि प्रभू, जिग्य रूप वाराह॥
आप पधारै लोक निज, विधि मन भयो उछाह॥४८॥
जो कोउ सुनैं चरित्र ये, आछैं चित्त लगाय॥
तासौं होत प्रसंन हरि, लैहिं भलैं अपनाय॥४९॥
जासौं होत प्रसंन हरि, तिहिं न रहैं कछु चाह॥
वे ई उत्तम देत गति, टारन त्रय विधि दाह॥५०॥
हरि गुन अमृत पान करि, होत न विपति उदोत॥
हरि कै उत्तम गुनन की, पसु कौं चाह न होत॥५१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदशोऽध्यायः)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

(दिति का गर्भ धारण)

॥ श्रीसुक उवाच ॥

दोहा - कहत जु श्री सुक देव जू, यहि वाराह चरित्र॥
सुनि कैं रिषि मैत्रेय सौं, बौले विदुर पवित्र॥ १ ॥

॥ विदुर उवाच ॥

हत्यौ असुर हिरनाक्ष हरि, जो हौ पाप निकेत॥
प्रिथवी लै आवन समैं, जुद्ध भयौ किहिं हेत॥ २ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कहत जु रिषि मैत्रेय जू, अहो विदुर तुम्ह धन्य॥
हरिगुन सुनिवै की हिर्दै, भई चाह उतपन्य॥ ३ ॥
पूछत हौ मो हरि कथा, जासौं मृत्यु भय जाय॥
जिहिं हरिगुन परताप ध्रुव, दियो मृत्यु सिरपाय॥ ४ ॥
येक सुन्यौं इतिहास हम्ह, सौ अब कहत जताय॥
अहो विदुर सुनि लीजियैं, आछैं चित्त लगाय॥ ५ ॥

चौपाई - संध्या समैं त्रिया दिति भामा। भइ महा उर पीडित कामा॥
आई रिषि कस्यप कै पासा। धारैं संतति की उर आसा॥ ६ ॥
कस्यप अग्निहोत्र कै गेहा। बैठे सांझ ध रैं हरि नेहा॥

॥ दितिरूवाच॥

बौली तिय तिहिं आइ निकेतू। मुनि मो काम अधिक दुष देतू॥ ७ ॥
स्वांमी और सपतनी म्हैरैं। तै सब हैं संतति उर झेरैं॥
हूँ विन संतति चित्त मलीना। गर्भ आस तुम्ह भई अधीना॥ ८ ॥
जाकौं पति अति आदर देते। अरु जो त्रिय है पुत्रहिं समेते॥
तौ ताकौं बहू जस बिस्तरै। बीच जगत कैंउ सोभा धरै॥ ९ ॥
पहिलैं दछ जू पिता हम्हारे। पूछी बात हम्हहिनिरधारे॥
सत्यहुँ कहौ हे पुत्री बाता। काहि वरन चित तुम्हरौ जाता॥१०॥।
हम्ह तैं रहूँ की तुम्ह पैं इच्छा। जानि तुम्हहिं दिय व्याही प्रतिच्छा॥
तातैं तुम्ह मो करौ कल्यांनहिं। मोकौं दुष है अधिक प्रमांनहिं॥११॥
सुनिकैं दिति कै अैसें बैनां। कस्यप कहै वचन सुषदैना॥
अहो प्रिया करिहौं तुव कह्यौ। भलैं साधि हौं तुम्ह चित चह्यौ॥१२॥
धरम गृहस्थ सधत है तिय सौं। करैं कह्यौ कौ तिहुँ नहिं जिय सौं॥
जाकै त्रिय ह्वै गृहस्थ सोई। सबहि दुषन कै पार जु होई॥१३॥
स्त्री है पति कौ आधौ अंगहि। सुष पावत पति तियकै संगहिं॥
तियकौं सौंपि सबै गृह भारा। पुरुष नचिंत होतहुं निरधारा॥१४॥
गृहस्थ तिय़ कौ आश्रय पाई। इंद्रीन कौ जीति बहु भाई॥
ज्यौं गढ कौ वासी सुष पायै। जीतै चोरन कौं बहु भायै॥१५॥
तातैं हम्ह काहू विधि पलटौ। तुम्हकौं दैन सकत हैं उलटौ॥
इहि अवसर है संध्या काला। ताहि वितीत हौन दै बाला॥१६॥
तुम्ह वंछित हम्ह करिहैं पूरनु। नैंकु धरहुँ धीरज अपनैं मनु॥
भूत प्रेत या संध्या बारा। फिरत रुद्र कै गन विकरारा॥१७॥
चढै वैल पर सिव इहँ काला। लियैं संग गन फिरत कराला॥
भस्म लगायैं जटा विषेरैं। सबनि लषत डोलत इहँ बेरैं॥१८॥
जिनकै सत्रु मित्रु नाहिंन कोई। लछमी कीहूँ चाह न होई॥
जै कोइ मुक्तिहिं चाहन हारा। जिनकैं मारग चलत सुढारा॥१९॥
सबतैं वे हैं बडे सुभायै। अरु हैं साधन कै सुषदायै॥
गहना वस्त्र पहरी बहु भांतिहुं। जै सरीर की करत जु कांतिहुं॥२०॥
स्वांनन कौ भोज है देहू। ताकौ गर्व मानि अनछेहू॥
जे चरित्र सिव कै कौउ हंसै। तैं मनुष महा मूरष लसै॥२१॥
माया हूं उन्ह आग्यां मांहीं। लीनैं भूत फिरत सब ठांहीं॥
यौं कस्यप सिव कै गुन गावत। इहिं विधि दितिहिं भये समझावत॥२२॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दिति समझी न लाज तजि दीनां। पकरी वस्त्र कस्यप कौ लीनां॥
चाहि कस्यप तब तिय कीऔरहिं। लै बैठे अैकान्त जु ठौरहिं॥२३॥
दिति ईच्छा रिषि पूरन कीनी। गर्भ स्थिति जब भई नवीनी॥
कस्यप न्याहय आचमनहिं लीनौं। जब गायत्री मंत्र जू कीनौं॥२४॥
दिति लज्जित ह्वै मुष नीचौ करि। कस्यप सौं बौलत भई फेरिंकरि॥
म्हैं सिवकौ कीनौं अपराधू। ताकौं मुहि भय पाप अगाधू॥२५॥
सिव करिहैं मो गर्भ विनासा। जतन विचारहुँ स्वांमी तासा॥
सिवकौं करत जु म्हैं परिनामा। वे सबकै हैं बडे अकामा॥२६॥
प्रसंन होहु स्वि म्हैंर ऊपरि। मो अपराध छमहुं अनुग्रह करि॥
है बहनेऊ मोर सतीपति। तिय सुभाव की जानत वे गति।२७॥

॥ कस्यप उवाच ॥

धीरज भयौ नाहिंनैं तैरे। मानैं बचन नाहिं तुम्ह म्हैरे॥
किय सबकौ अपराध अपरिमित। गर्भ रह्यौ है बुरै मुहूरत॥२८॥
तातैं द्वै सुत तैरे ह्वै हैं। तीन लोक कौं अति दुष दैहैं॥
प्रानी दीन और तिय जनकौं। दै हैं पीडा इनकै तनकौं॥२९॥
अरु अति साध अवग्यां करिहैं। महा विरोध प्रभू सौं धरि हैं॥
तवै प्रभू धरिकैं अवतारा। क्रिर हैं तब तिनकौं संघारा॥३०॥

॥ दित उवाच ॥

दिति बौली हरि मोर पुत्रन कौं। हति हैं तौ गति ह्वै हैं इनकौं॥
विप्र कोपतैं मृत्यु न चाहत। नर्क जीव भी दूरि पलायत॥३१॥

॥ कस्यप उवाच ॥

याहि सुनि कस्यप उत्तर दियौ। दिति तैं अतिहिं पछतावो कियो॥
तातैं तो पुत्रन कैं यक सुतहिं। आछौ ह्वै हैं परम भक्ति जुतहिं॥३२॥
नांम होय हैं तिहिं प्रहलादहिं। सो दैहैं भक्तन अहलादहिं॥
बडे बडे जे कोउ साध जन। तै अप मनकौ मैलहिं टारन॥३३॥
वहि प्रहलाद रीति कै मांहीं। चलि हैं भली समझि मन मांही॥
विश्व प्रसंन होयगौ जासौं। प्रभू अनुग्रह करिहैं तासौं॥३४॥
वहि प्रहलाद सु तेरौ नाती। करिहैं भक्ति सु तौ बहुभांती॥
सब तजि इक प्रभु मैं चितलाई। पहुँचैगौ बैकुंठहीं जाई॥३५॥
वहि बालक न होयगौ लंपट। ह्वै हैं जामैं बहु गुन संघट॥
औरन कै दुष दुरि करैगौ। ससि सम जग कौ ताप हरैगौ॥३६॥

भक्त बछल स्वांमी करतारा। असरन सरन सबनि आधारा॥
ता प्रभुकौ बहि दरसन करिहैं। बडौ विरद जुग जुग लौं धरि हैं॥३७॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

यौं सुनिकैं कस्यप कै बैनां। पुनि दिति प्रसंन भई लहि चैना॥
मो सुत होहि बडो बडभागी। जाहि प्रभु चरण नित लौं लागी॥३८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्दसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः॥

(जय विजय को सनकादिक का शाप)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - कहत हैं रिषि मैत्रेय जु, सुर भय दिति उर आंनि॥
सौ वरषन लौं गर्भ निज, राषत भई निदांनि॥ १ ॥
तासौं सब संसार मैं, फैल्यौ अति अंधियार॥
तब विधि सौं सब देवता, कीनी जाय पुकार॥ २ ॥

॥ देवा ऊचुः॥

अैहौ विधि अँधियार अति, फैल्यौ सब जग मांहिं॥
सो वृतांत कहौ छिप्यौ, कछु तुम्ह तैं जग नांहिं॥ ३ ॥
देव देव है जगत कै, करता तुम्ह ही राज॥
जानत हौ सब बात कौं, सारन सबै सुकाज॥ ४ ॥
तुम्ह सरूप हौ ग्यांन कै, माया करि धरि रूप॥
धारैं हौ रज गुन तुम्ह जु, है परिनांम अनूप॥ ५ ॥
न्यारै हौ तुम्ह सबन तैं, अरु सब जग तुम्ह मांहिं॥
तुम्हरी बानी वेद मधि, बँधि ये जग ठहरांहिं॥ ६ ॥
मन इंद्री कौ जोग करि, जीति धरत तुम्ह ध्यांन॥
प्रापति तुम्हकौं होय सो,. इहै सत्य उनमांन॥ ७ ॥
कृपादृष्टि करि और हम्ह, चितवो परम कृपाल॥
हम्हरौ करहुँ कल्यांन अब, मेटहुं दुष्ष कराल॥ ८ ॥

गर्भ यहै दिति कौ बढत, तासौं सब जग मांहिं॥
अंधकार रह्यौ छाय कैं, सूझत है कछु नांहिं॥ ९ ॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

पुनि बोलै मैत्रेय रिषि, हंसि बोलै विधि आप॥

॥ ब्रह्मोवाच॥

सनकादिक मो पुत्र सबै, फिरत लोक बिन ताप॥१०॥
येक दिनां बैकुंठ मैं, भये जु प्रापति जाय॥
धरैं सत्वगुण रूप प्रभू, सोभित हैं सुषदाय॥११॥
जहँ कै वासी हैं सबै, प्रभु ही की अनुहारि॥
जिन हरि आराधन कियौ, तै पहुँचैं डर डारि॥१२॥
जहँ नेः स्त्रेयस नाम कौ, बन है अति अभिरांम॥
कल्प वृछ ही लगि रहे, अति गहरे तिहिं ठांम॥१३॥
लगे रहत फल फूल दल, जहँ सबही रितु मांहिं॥
अति सोभित सोभा कछू, उपमा कही न जांहिं॥१४॥
अरु जहँ कै वासी सबै, निति प्रति चढै विमांन॥
प्रेम मगन मन मोद जुत, करत जु हरि गुन गांन॥१५॥
आवत सुमन सुगंध जुत, त्रिविधि पवन सुषदाय॥
ताहू की नहिं चाह चित, हरि मैं रहे लगाय॥१६॥
मोर कबूतर कोकिला, सारस चकवा हंस॥
सुवा पपीहा ए रहत, चुप ह्वै पंछी बिबंस॥१७॥
हरिगुन गावत भ्रमर सौ, सुनत श्रवन मनलाय॥
हरिगुन मधि है मगन जहँ, पंछी हूं सुषदाय॥१८॥
कुंद कँवल चंपा कदंब, बकुल अंब मंदार॥
जहँ सराहत तुलसी तप, सब ही भले प्रकार॥१९॥
तुलसी दल की माल उर, धारैं हैं भगवांन॥
सबै सराहत या लियैं, तुलसी तप उन मांन॥२०॥
बासी जिहिं बैकुंठ कै, बैठे रतन विमांन॥
हरि मैं लगयौ चित उन्है, तउ नहिं गर्व निदांन॥२१॥
बाजत नूपर कर कमल, श्री तजि चंचलताय॥
देत सोहनी सदन हरि, विधि करैह न उपाय॥२२॥

रतनन की जहँ बावडी, तामैं लिछमी न्हाय॥
प्रभु कै पद पूजन करत, तुलसी दलनि चढाय॥२३॥
नरक दायनी विषय की, कथा सुनत जो कोय॥
तिनकौ क्यौंहू जावनौं, वहै लोक नहिं होय॥२४॥
मनुष्य जनम जै पाय कै, भजत नहिं करतार॥
तै उन माया मैं सदा, मोहित हैं निरधार॥२५॥
अरु नर सुनत जु हरि कथा, प्रेम पुलिक तन होय॥
तै प्रापति वहिं लोक कौं, होत सबै दुष षोय॥२६॥
वा सुंदर वैकुंठ पुर, मधि सनकादिक जाय॥
लहत भये आनंद अति, मन वाञ्छित सुषदाय।२७॥
लांघि गयै सनकादि यै, वैकुंठ कै छह द्वार॥
गयै सातवैं द्वार पर, आनंद हियैं अपार॥२८॥
तहँ बैठे द्वै पारषद, गदा लियै निज पांन॥
सीस मुकुट बनमाल उर, सुंदर रूप सुजांन॥२९॥
बनमाला ऊपरि भ्रमर, भ्रमत स्यांम भुज चारि॥
प्रफुल्लित नासा लाल दृग, क्रोध कर्यौ यौं धारि॥३०॥
बिनु पूछैं ही पारषद, सनकादिक जोगेस॥
निडर भयै भीतर चलै, दरसन करन विस्वेस॥३१॥
नगन मगन ग्यांनी बडै, पांच बरस कै बाल॥
जान न दीनैं प्रभु निकट, तिन्हैं द्वार प्रतिपाल॥३२॥
रोकन मैं प्रभु मिलन कौ, इनहिं भयो अंतराय॥
तब रिस करि बोलत भये, सनकादिक अनषाय॥३३॥

॥ मुनय ऊचु॥

इहै लोक बैकुंठ मैं, बसिकैं तुम्हहिंसुभाव॥
भयो विषम किहिं भांति तैं, सौ नहिं परत लषाव॥३४॥

चौपाई – तुम्ह कपटी हौ बहु विधि जातैं। औरनि कपटी जानत तातैं॥
सब जग प्रभु कै उदरहि मांहीं। तिनकौं डर काहू कौ नांहीं॥३५॥
तातैं तुम्ह इहिं ठां तैंहिं गिरौ। मनुष्य लोक कैं मधि अवतरौ॥
काम क्रोध रु लोभ जू जांहा। तीन सत्रु प्राणी कै जु तांहा॥३६॥
यहै श्राप सुनिकैं अतिहि डरै। उन्हकै पायहुं पारषद परै॥
बौले हम्ह अपराध जू कियौ। जोगि दंड हम्हकौं तुम्हहिं दियौ॥३७॥

पैं अबै हम्ह मांगत हैं इहै।जहँ उपजै तहँ हरि सुधिहिं रहै॥
ताही समैं रमा सँग लीनैं।आयै प्रभू मुनिन सुष दीनैं॥३८॥
छत्र चँवर अतिहि अदभुत धरै।कृपा दिष्टि मुनिउ दिसि अनुसरै॥
ऐसै प्रभुकौ करिकैं दरसन।सनकादिक अतिभये मगन मन॥३९॥
सोभित पीताम्बर बनमाला।छुद्र घंटिका बनी रसाला॥
अँग अँग भूषन जोग्य विराजै।अदभुत सुंदर सोभा साजै॥४०॥
कौस्तुभ मणि श्री चिन्ह उर धरै।चितवन हासि भक्तहिं मन हरै॥
इक कर धरै गरुड़ कै ऊपर।अरु फेरत पंकज दूजै कर॥४१॥
ऐंसै सुंदर रूप प्रभा तैं।पुर बैकुंठ सोभ उफनातैं॥
देवन कौ प्रिय ऐसौ रूपा।सो सनकादिक लष्यौ अनूपा॥४२॥
प्रभु कौं लषि कीनौं परिनांमा।सनकादिक लहि सुष अभिरांमा॥
कमल दलन सै नैत्र विराजै।तिनकै चरन तुलसि गंध भ्राजै॥४३॥
नासा द्वार प्रवेस भयो तब।चित भयो हरष रोमु भरै जब॥
अछर ब्रह्म उपासत हे रिषि।भजनानंद मगन भये हरि दिषि॥४४॥
नील कमल मुष हासि अधर छवि।कुंद कली से दसन रहै फबि॥
ताकौं देषि चरन मन लायै।चरन ध्यान मैं मन ठहरायै॥४५॥
अष्ट सिद्धि ता करिकैं जुक्तहिं।थानक जिनकौ चाहत मुक्तहिं॥
जोगेस्वर जिहिं प्रभु को ध्यांनहिं।करत लहै पूरन तत्व ग्यांनहिं॥४६॥
सनकादिक जिहिं प्रभु कौ देषी।लागै असतुति करन विसेषी॥

॥ सनकादिक ऋषय ऊचुः॥

श्रवनन मग तैं रूप तिहारौ।विधि मुषतैं हम्ह सुन्यौ सुढारौ॥४७॥
अरु दरसन तौ आजहिं कीनौं।नैनन कौ फल अब यहिं लीनौं॥
परमातमा ब्रह्म तुम्ह स्वांमी।अषिलेस्वर हौ अंतरजांमी॥ ४८॥
भक्त जनन कौं देवै चैनहिं।रूप धर्यौ हैं तुम्ह सुष दैनहिं॥
जै तुम्ह करत कथा रस पांनहिं।मुक्ति हुतै नहिं चहत निदांनहिं॥ ४९॥
हम्ह तुव कियो भक्त अपराधैं।तातैं जन्म नर्क हम्ह लाधैं॥
परि तुम्ह चरण कमल कै मधुकर।भयै रहै तौ लाभ याहि वर॥ ५०॥
तुम्ह मैं चित हम्हरौ लागि रहैं।कथा रावरी सुनिहुं अरु कहैं॥
यहै चहत औरैं कछु नांहिंन।ध्यांन लगैं तुम्ह चरनन मांहिंन॥ ५१॥
सुंदर रूप तिहारौ देषी।हम्हहिं भयौ अहलाद अलेषी॥
नमसकार हम्ह तुम्हहिं करत हैं।ध्यांन तुम्हारौ हिर्दै धरत हैं॥ ५२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते पञ्चदसोऽध्यायः ॥ १५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

(जय विजय का बैकुंठ से पतन)

॥ श्री सुक उवाच ॥

चौपाई - कोमल मुनि के अैसें बैनां। सुनि बौले प्रभु पंकज नैनां॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

हे मुनि म्हैरे सेवक द्वैअैं। तुम्हसौं अब प्रतिकूल भए जै॥ १ ॥
कीनौं है अपराध तिहारौ। तुम्ह दिय जो दंड निंरधारौ॥
तातैं म्हैं अति प्रसंन जु भयौ। पारषदन्रि अपकृत फल लयौ॥ २ ॥
म्हैं तुम्हकौं अब प्रस्नं करत हौं। परमदेव ब्राह्मननि कहत हौं॥
अपनैं दास करै अपराधहिं। अपकृत मानत हैं सो साधहिं॥ ३ ॥
सेवक करै किहूँ अपराधहिं। होय स्वांमि कौ तेज सुबाधहिं॥
मो जस जगत पवित्र करतहिं जौ। तुम्ह सम विप्र कृपा कौ फलहिं सौ॥ ४ ॥
करै अवग्या कोऊ तुम्हारी। ताहि दंड हूं देत जु भारी॥
जा लिछमी कौ सबै जग चहै। सो लिछमी मोहि निकटहिं रहै॥ ५ ॥
अैसौ म्हैं द्विज सेवा करिकैं। बडौ भयौ हूं सोभा भरिकैं॥
हूं भोजन जग कैं मधि तइसैं। करौं द्विजन कै मुष तैं जइसैं॥ ६ ॥
हूँ जिन पदरज सीसहि धरहीं। तिन्हकी पूजा कौनु न करहीं॥
द्विज अरु गाय अनाथ जु प्रांनी। ताकौ दुष देत जू अग्यांनी॥ ७ ॥
ताकौं जमकै गीध पंछी गन। चूंचन सौं दुष देंत बीच तन॥
मो स्वरूप द्विजकौं कोउ जांनि। पूजा करत बुलाँइ निज थांनि॥ ८ ॥
सो मोही कौ मनहुं बुलावत। अपनी आयुष कीर्ति बढ़ावत॥
तातैं मो पारषद इहिं बांरा। मनुष्य लोक लेहैं अवतांरा॥ ९ ॥
आवै निकट जु फेर हम्हारै। इतनी कृपा करौ निरधारै॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

सुंदर अैसे हरिकैं बैनां। सुनि मुनि प्रसंन भये लहि चैनां॥१०॥
प्रभू की बानी अति गंभीरा। सुनि सनकादिक चारौं बीरा॥
ताकौ अरथ विचारन लागै। हम्ह असतुति म्हैं प्रभु क्यौं पागै॥११॥
माया जोग प्रगट बहु करिकैं। ब्रह्मा कौ अैस्वर्य जु धरिकैं॥
ता प्रभु की असतुती करत मुनि। हाथ जोरिकैं ध्यांन मगन पुनि॥१२॥

॥ ऋषय ऊचु ॥

फिरि बौले द्विज है मारांजा। तुम्ह यहि कहत जु कौनै कांजा॥
द्विज तुम्ह क्रिपा करौ हम्ह ऊपर। लहिं न परत सौ तत्व जगत वर॥१३॥
जानि परत तुम्ह जगतहिंनु धर्म। सिषावत हौ मैटन अघ कर्म॥
हे प्रभु तुम्ह हौ धर्म सहाई। तातैं करत जूं विप्र बडाई॥१४॥

क्रिपा रावरी तैं करतारा। तरत मृत्यु कौं जरा निरधारा॥
तुम्ह ऐसैं प्रभू माया परैं। तिन पर कहा क्रिपा हम्हहिं करैं॥१५॥
विप्रनि तुम्ह जानत निज देवहिं। देव देव तुम्ह विप्रनि कुं सेवहिं॥
धर्म सनातन तुम्ह उपजावत। अवतार लहिं तैं राषि आवत॥१६॥
विरकत अनुकंपा मृत्युनजय। नहिं औरन की अनुकंपा मय॥
लछमी पदरज ब्रह्मादिक चह। सौ लछमी चरननि सेवत रह॥१७॥
ज्यौं पद तुलसि गंध चाहत अलि। यौं लछमी मिलि चरन चहत बलि॥
रमा तुम्हारैउ पदनि सेवति। तुम्ह लछमी कौ चहत न जगपति॥१८॥
अरु तुम्ह इहै कहत हौ है हरि। रमा लही हम्ह विप्र कृपा करि॥
तुम्ह जुग जुगमधि धरि अवतारा। पालन करत जु धरम प्रकारा॥१९॥
द्विज महिमा तुम्हनहिं विसतारौ। होय जु नष्ट वेद मग सारौ॥
तुम्ह विप्रनकी करतहुं बडाई। तातैं तुम्हरौ कछु न घटाई॥२०॥
तुम्ह सब जग कै प्रभु हौ स्वांमी। करता पुरस जु अंतरजांमी॥
हम्ह तुम्ह पारषदनि दिय श्रापू। ताँकौ हम्हहिं लग्यौ हैं पापू॥२१॥
तातैं कछु उचित जोई होई। हम्हहिं दंड सौ दीजै कोई॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

यहि सुनिकैं बौले भगवाना। राषि रिषिन कौ अधिकौ माना॥२२॥
तीन जनम यै सैवक म्हैरे। ह्वै हैं असुर श्राप उर झेरे॥
सत्रुभावहि हम्हसौं अनुसरि हैं। निति प्रति ध्यांन हम्हारौ धरिहैं॥२३॥
ध्यांन प्रताप फेरि मो पासा। अैहैं भुक्ति श्राप कौ त्रासा॥
इन्हकौं म्हैं अपनी ईच्छा तैं। श्राप दिवायौ तुम्हरि जिह्वा तैं॥२४॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

दोहा - विधि कहत कि इन्ह भांति सौं, सनकादिक सुषपाय॥
प्रभुकौं अरु वैकुंठ कौं, लषि आनंद अघाय॥२५॥
परिकरमा करि प्रभू की, नमसकार करि आप॥
आग्या मांगि रु गवन किय, लषि अैस्वर्य अमाप॥२६॥
पारषदन सौं फेर प्रभु, बौले यौं लौकेस॥
विप्र वचनहिं झूठौ कबहुँ, हम्ह नहिं करहिं विसेस।२७॥
असुर जनम तैं छूटि कैं, थौरें ही दिनमांहिं॥
अैहौ म्हैरै पास तुम्ह, भय मानहुँ कछु नांहिं॥२८॥
पारषदनि सौं यौं प्रभू, कहिकैं रमा संजुक्त॥
भयै पधारत आपनैं, वंदित सेवत मुक्त॥२९॥
पारषदन कौ तेज मिटि, गयो श्राप द्विज पांय॥
गिरै लोक वैकुंठ तैं, परे लोक भुव आंय॥३०॥

गिरत दोउ बैकुंठ तैं, सुनौं तात यहि बात॥
हाहाकार भयो बउत, देवलौक यहि ष्यात॥३१॥
बेई पारषद दुहुँ दिति, प्रगटैउ उदर जु आय॥
तिनन तिहारै तैज सब, छिन मैं दयो मिटाय॥३२॥
उतपति पालन प्रलय जग, करनहार करतार॥
जिन्हकी माया कौं कोउ, तरत न बिच संसार॥३३॥
बेई प्रभु करिहैं भलैं, सबहिंन कौ कल्यांन॥
तातैं हम्ह या बात कौ, करहिं न सोच निदांन॥३४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

(हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष का जन्म तथा हिरण्याक्ष की दिग्विजय)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा - कहत जु रिषि मैत्रेय यहि, सुनि विधि वचन सुभाय॥
धीरज धरि उर देवता, बैठे निज घर आय॥ १ ॥
दिति उपद्रव सौं डरि जनैं, बाल वर्ष सत मांहिं॥
अधिक उपद्रव तिहिं समैं, भये लोक तिहुँ ठांहिं॥ २ ॥
प्रिथी कंप दिग दाह अरु, भयो जु उलका पात॥
पवन प्रबल चलि तरु गिरै, अंधकार दरसात॥ ३ ॥
अधिक तडित चमकत मही, ऐसौ घटा अंधार॥
ता करिकैं आकास बिचि, सूझत नाहिं अगार॥ ४ ॥
सिंधु बावडी सरनि कौ, रह्यौ नाहिं जल सुद्ध॥
सूरज ससिकौ ग्रहन हुव, करत भये ग्रह जुद्ध॥ ५ ॥
अरु सिंदन कौ सौ सबै, प्रगट्यौ बिच पाताल॥
उलू सब्द मुष सिवा तैं, निकसन लागी ज्वाल॥ ६ ॥
ऊँची गरदन स्वांन करि, बोलत जिहि तिहि ठौर॥
दौरत जित तित सब्द करि, गर्दभ चारौं और॥ ७ ॥

निज निज गृह तैं उठि चले, पंछी गन अकुलाय॥
अरु मल मूत्र पसू सबै, करन लगै भय पाय॥ ८ ॥
रुधिर कढ्यौ गौ कुचन तैं, घन बरसै बहु राधि॥
रोवत प्रतिमा सुरन की, प्रगटी कई उपाधि॥ ९ ॥
ऐसै लषि उपद्रव सबनि, जान्यौं प्रलय प्रकार॥
वे दुहुँ बालक होतहीं, बढै समान पहार॥१०॥
मुकुट अग्र परसत सुरग, बाजूबंद भुजांन॥
अंग दिसा रोकी मही, कंपि लंघि गय भांन॥११॥
हरन कस्यप हरनाछि यै, नांम धरै मुषचार॥
महाबली आसुर दुहूँ, प्रगट भए निरधार॥१२॥
हरनकस्यप तप साधि कैं, ब्रह्मा सौं वर पाय॥
करत भये वसि आपनैं, सब लोकनि बल छाय॥१३॥
गदाधारि कैं हाथ मैं, असुर बली हिरनाषि॥
जुद्ध करन कौं सुरन सौं, गयौ सत्रुता राषि॥१४॥
कांधै पर लीनैं गदा, देषि असुर बलवंत॥
भागि गयै सब देवता, जित तित डरपि इकंत॥१५॥
देवतांन कौं भजत लषि, असुर पाय अहलाद॥
प्रसंन होय चित माहिं अति, गरजि करत भौ नाद॥१६॥
करत भयौ गजमत्त ज्यौं, बीच समुद्र विहार॥
जाकै डरसौं जीव सब, जलकै भजै अपार॥१७॥
बउंत वरष क्रीड़ा असुर, करिकैं जलकैं मांहिं॥
वरुन पुरी जु विभावरी, गयो फेरि तिहिं ठांहिं॥१८॥
कह्यौ वरुन सौं जाय षल, हम्हसौं करहुँ संग्रांम॥
लोकपाल तुम्ह अति बली, कहियत हौ इहँ ठांम॥१९॥
यहि सुनिकैं बौले वरुन, करैं नहिंन हम्ह जुद्ध॥
पुरुष पुरातन जुद्ध करि, हति है तो कहुँ क्रुद्ध॥२०॥
तौसौं लरिवै कौ समर्थ, कौनुं बिना भगवांन॥
तिनसौं लरि तुम्ह षेत मैं, परिहौं भषि हैं स्वांन॥२१॥
मारन तुम्हसै षलनकौं, वै प्रभु लै अवतार॥
साधुन की रछया करत, कै प्रकार बहुबार॥२२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

(हिरण्याक्ष और वाराह भगवान् का युद्ध)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

चौपाई- वरुन वचन सुनिकैं हिरनांषिं। मनमैं कछू नाहिं भय रांषिं॥
नारद सौ हरिंकी गति जांनी। गयों रसातल कौ मुद मांनी॥ १ ॥
तहं कीनौ दरसन बाराहू। प्रभु पुरुषोत्तम सब जग नाहू॥
दसन अग्रप्रिथवी कौ जु धरैं। जल तैं बाहरिउ आंवन करैं॥ २ ॥
लषिहुँ हिरनाषि हस्यौ तहँ तबै। बुरे वचन बौलत भयो सबै॥
ए वाराह जु है जलवासी। यौं बोल्यौ षल कुमति प्रकासी॥ ३ ॥
कहत भयौ प्रभु सौं फिरि अैसें। तुम्ह भूवी लै जै हौं कइसें॥
हम्हकौं प्रिथी चतुर्मुष दीनी। प्रिथी सबें हम्ह बसि करि लीनी॥ ४ ॥
छोड़ि भूविं जो नाहिंन दैहौं। तौ घर नांहिं कुसल सौं जैहौं॥
अधम रूप तुम्ह देवन मांहीं। धर्यौ रूप सूकर इहिं ठांहीं॥ ५ ॥
सबै देवता सत्रु जु हम्हारे। रहन सरन तैं सदा तुम्हारे॥
तुम्ह छल बल करि असुरनि मारत। माया अति बल थोरौ धारत॥ ६ ॥
अब हौं तुम्हहिं मार सुष पैहौं। बैर कुटंब अपनकौं लै हौं॥
तुम्हहिं गदा सौं हतिहौं जबहीं। सुरगन रिषि मिटि जै हैं सबहीं॥ ७ ॥
जै हैं तुम्हरै पूजन बारै। आपहि तैं नहिं रहि हैं सारै॥
यौं दुरवचन जु प्रभू सौं कहै। प्रबू सुनिकैं पुनि चुप ह्वै रहै॥ ८ ॥
दसन अग्र प्रिथवी हरि धारैं। आयै निकरि वारि तैं बारैं॥
पाछें लग्यौ दैति हैं आयौ। ज्यौं गज संग ग्राह बलि छायौ॥ ९ ॥
श्री बराह जू जब नहिं बौले। दुष्ट गर्व बायकु मुष षौले॥
बडे निलज है ए बाराहू। इनकौं नहिंन लाज की चाहू॥१०॥
हूं जुध काज लग्यौ संग आवत। भजै जात यै सरम न पावत॥
बाण समान लागै इहि बचन। गज बन सहै ग्राह दइ चोटन॥११॥
थपी बराह प्रिथी जल ऊपर। अप सामर्थि धारि प्रभू भूपर॥
तातैं जल मधि भुवन छुडाई। सुरन पैषि बरषा बरषाई॥१२॥

दोहा - देष्यौ श्री बाराह जू, आवत संग हिरनाषि॥
पहिरैं बगतर कनक कौ, गदा हाथ मैं राषि॥१३॥
मुष बौलत बायकू कटु, सुनि बराह भगवांन॥
हंसि बौले तासौं प्रभू, उर धरि क्रोध अमांन॥१४॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

सत्य कहत हिरनाक्ष हम्ह, जलबासी बारांह॥
तौसैं स्वांन श्रृंगाल कै, हतनहार भुव मांह॥१५॥

आई मृत्यु नजीक तौ, इहै जांनि मनमांहिं॥
तातैं तैरी बात हूं, चित्त धरत हुँ हम्ह नाहिं॥१६॥
तैरी ही है इह प्रिथी, चोर लियैं हम्ह जांत॥
लाजहु हम्हकौं नाहिं तौ, निरषत गदा डरांत॥१७॥
हम्ह तौसै बलवंत सौं, बैर बांधि कित जांहिं॥
तातैं ठाढैं हैं अबैं, जुद्ध चाह मन मांहिं॥१८॥
तू जोरावर है अधिकुं, तू सम और न कोइ॥
जिहिं विधि होय कल्यांन तौ, जतन विचारहुँ सोइ॥१९॥
अब आँसू अपनैन कै, पौंछ हुँ हम्हकौं मांरि॥
करहुँ प्रतग्या पूर्न तुम्ह, अब अपणी निरधांरि॥२०॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

ऐसी विधि बाराह जू, वचन कहै करि हांस॥
क्रोध बढ्यौ हिरनाछि कौं, ह्वै ग्यौ विकल सत्रांस॥२१॥
षैल किये ज्यौं सरप कैं, क्रोध बढत चित मांहिं॥
त्यौं रिस करिकैं असुर बह, जरत भयौ उहिं ठांहिं॥२२॥
क्रोध सहित हिरनाछ ह्वै, लेत स्वांस परि स्वांस॥
अंग अंग कांपन लगै, लग्यौ जुद्ध की आंस॥२३॥
कीनौं प्रभु वाराह पैं, दैत्य जु गदा प्रंहार॥
चौट बचाई गदा की, ह्वै तिरछै धरंधार॥२४॥
जोग सक्ति करि आपनी, जइसैं कौं जोगेस॥
मृत्यु बचावत सहज ही, तप बल धरैं विसेस॥२५॥
फिर बाराह जु आपनी, लै कर गदा भ्रमांय॥
दौरे ऊपर दैत्य कै, महा क्रौध उर छांय॥२६॥
काटत अपनैं ही अधर असुर भयौं उर रीस॥
भौंह दाहिनी पैं दई, गदा चोट जगदीस।२७॥
दैत्य आपनी गदा तैं, प्रभू गदा दइ टारि॥
होत जुद्ध यौं परसपर, ईच्छा छइव विचारि॥२८॥
श्री वराह हिरनाछ मिलि, करत गदानि प्रहार॥
तन पीडंत अति दुहुँन कै, होत गदा की मार॥२९॥
दाव घाव दोऊ करत, झरत रूधिर बिबदेह॥
मत्त सांड ज्यौं परसपर, होत संग्राम अछेह॥३०॥
जगपति अरु हिरनाछि कौ, देषन जुद्ध विहार॥
सब रिषि बर गन संगलै, आयै तहँ मुषचार॥३१॥
विधि जान्यौ हिरनाछि है, अति जोरावर सूर॥
भय कछु मानत नाहिनैं, पराक्रमी है पूर॥३२॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

कहत भयै भगवांन सौं, विधिवत वचन विचांरि॥
हो प्रभु यहि पापी दैत्य, अब यहि लीजै मांरि॥३३॥
भक्त विप्र सुर सुरभि कौं, इहै दैत्य दुषदाय॥
अपराधी है सबन कौ, राष्यौहुं विस्व डराय॥३४॥
लोकन कौ कंटक इहै, अरु हम्ह वर दिय यांहि॥
बिच लोकन यहि फिरत है, धरैं जुद्ध की चांहि॥३५॥
अति माया वीमत्त यहि, दुष्ट निरंकुस दैति॥
क्रीडा मति यासौं करौ, लहुँ याहि हति जैति॥३६॥
जइसैं बालक सरप सौं, क्रीडा करै सुभांय॥
भली बात या नाहिनैं, कीजै अमर सहांय॥३७॥
सांझ समैं जो आय है, बढिजैहैं इहिं जोर॥
दिवस समैं मारो दैत्य, ह्वै दासन की वोर॥३८॥
संझ्या अब आई निकट, हतियै आसुर वेग॥
होय सुरन आनंद अति, हिय कै मिटैं उदेग॥३९॥
अब या समैं महूर्त है, अभिजित नाम सुदेस॥
मारि दुष्ट सुष दीजियै, देवन कौं अषिलेस॥४०॥
तुम्हहीं मारनहार इहि, बन्यौ समैंयहु आंनि॥
भाग जोग इन्ह तुम्ह लहै, मारहुँ याहि निदांनि॥४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

(हिरण्याक्ष वध)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा - सुनि विधि वचन वराह जू, हँसि कियै अंगीकार॥
तबही दैत्य कपौल पैं, कीनौं गदा प्रहार॥ १ ॥
फेरि दइति निज गदा सौं, दिय प्रभु गदा गिराय॥
सस्त्ररहित हरि लषि असुर, रह्यौ तहँ थिर धाय॥ २ ॥
भयो सुरन मैं तिहिं समैं, अति ही हाहाकार॥
चक्र सुदरसन कौ जु प्रभू, किय समरन तिहुँ बार॥ ३ ॥

सुमरत ही प्रगटयौ तहँ, चक्र जु सुदरसन आंय॥
कहत अमर अब बेग प्रभु, हतौ असुर दुषदांय॥ ४ ॥
लषि सनमुष वाराह जू, भयो असुर उर क्रोध॥
काटत अपनैं अधर कौं, तिहिं ठां महा अबोध॥ ५ ॥
उछलि दैत्य हरि अंग पैं, कीनौं गदा प्रहार॥
वाम चरन सौं षल गदा, दिय वाराह उछारि॥ ६ ॥
दैत्यहिं कह्यौ बराह जू, लै तू गदा उठाय॥
असुर गदा गहि चोट किय, श्री वराह तन लाय॥ ७ ॥
असुर गदा प्रभु गहि लई, अपनैं कर वाराह॥
ज्यौं पकरत सांपनि गरुड, धारे भोजन की चाह॥ ८ ॥
दैन लगै बाराह प्रभु, गदा असुर कौं फेरि॥
उन्ह लीनी नाहिंन धरैं, मन मरोर तिहिं बेर॥ ९ ॥
लिय त्रिसूल कर अग्नि सम, प्रभु दिस दियो चलांय॥
काटि दियौ हरि चक्र सौं, ज्यौं जल अग्नि नसांय॥१०॥
श्री वराह जू कै हिर्दै, षल करि मुष्टि प्रहार॥
अंतरध्यांन जु ह्वै गयौ, असुर वली तिहुँ बार॥११॥
दैत्य मुष्ट सौं नैंकहूं, कांपै नहिं वाराह॥
पहुप माल गज कै लगै, दुष न होत तन माह॥१२॥
आसुर अंतरध्यांन भौ, अप माया प्रगटाय॥
पवन चलै वरषै उपल, रह्यौ जगत तम छाय॥१३॥
मेद रुधिर मल मूत्र यैं, बरषै मेघ अनंत॥
दैन दिषाई नग लगै, षल माया कै तंत॥१४॥
लियैं सूल कर राछसी, प्रगटि नगन तिहिं बेर॥
जछ राछस गज अस्व तहँ, करत भयंकर टेर॥१५॥
चक्र जु सुदरसन तिहिं समैं, श्री वाराह चलांय॥
प्रगट करी माया दैत्य, सौ सब दई मिटांय॥१६॥
दिति माता हिरनाछ की, अति कांपी चितमांहिं॥
रुधिर धार बिच कुचन कैं, निकसि बह्यौ उहिं ठांहिं॥१७॥
तबै दैत्य लपटत भयौ, प्रभू अंग सौं आंय॥
मुष्टि चोट हरि पैंहिं करि, आसुर बली रिसांय॥१८॥
प्रभु तमायचा दैत्य कै, कोपि करण तर दीन॥
गिर्यौ असुर तरु सम पछरि, नग सम मृत्यु अधीन॥१९॥

मर्यौ देषि हरनाछि कौं, ब्रह्मादिक तहँ आंय॥
बौले याकै भाग बड, मार्यौ हरि जु रिसांय॥२०॥
धरत ध्यांन जोगेस जिहिं, लषि तिहिं भंजी देह॥
मृत्यु सराहन जोगि यहि, पाई असुर अछेह॥२१॥
यै पारषद प्रभु कै भय, असुर श्राप कैं पाप॥
तीन जनम पाछैं बहुरि, लहिहैं सुभ पद आप॥२२॥

॥ देवा ऊचुः॥

देवतानि असतुति करी, लगै रूप भगवांन॥
दुष्ट असुर मार्यौ भलैं, राष्यौ हम्हरौ मांन॥२३॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

देवतानि असतुति करी, विविध भांति विसतांरि॥
प्रभू पधारै लोक निज, दुष्ट दैत्य कौ मांरि॥२४॥
कहत जु मुनि यौं विदुर सौं, याहि वाराह चरित्र॥
म्हैं निज मति सम उच्चर्यौ, तुम्ह सबै सुन्यौ पवित्र॥२५॥

॥ सूत उवाच॥

सुनि वाराह जु की कथा, विदुर प्रसंन भये चित्त॥
दीन दयाल कृपाल प्रभु, जिनकौ चरितहिं अमित्त॥२६॥
और हुँ साधनि कौं चरित, सुनैं प्रसंन मन होत॥
क्यौं न होय उर प्रसंनता, सुनि प्रभु सुजस उदोत।२७॥
कृपावंत हरि ग्राह तैं, गज कौं दियो छुडांग॥
सेवन ऐसे कृस्न कौ, कौनुं न करै सुभांय॥२८॥
सुनैं चरित वाराह तिहुँ, पाप दूरि सब होय॥
प्रभु चरित्र जू पवित्र अति, सुनि हिय धरियैं गोय॥२९॥
बढै पराक्रम बल अतुल, सुनैं चरित्र जु वराह॥
बहुरि मिलै भगवांन सौं, लहै परम पद लाह॥३०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकोनविंसोऽध्यायः ॥ १९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ बिंसोऽध्यायः ॥

(ब्रह्माजी की रची हुई अनेक प्रकार की सृष्टि का वर्णन)

॥ सौनक उवाच ॥

सउनक पूछत सूत सौं, स्वायं भुव मनुराय॥
श्रृष्टि बिस्तरी कौनुँ बिधि, राज प्रिथ्वी कौ पाय॥ १ ॥
परम भक्त हरि कै बिदुर, दुष्ट जांनि निज भ्रात॥
धृतराष्ट्र कौं छोड़ि दिय, ब्यास पुत्र बिष्यात॥ २ ॥
परम भक्त ऐसे बिदुर, जांनन हार सुग्यांन॥
फेरि कहा मैत्रेय सौं, पूछी कथा निदांन॥ ३ ॥
उन्ह दुहुँ कैं संवाद मैं, गंग समान पवित्र॥
भई हौहिगी हरि कथा, सौ कहौं हम्हहिं बिचित्र॥ ४ ॥
हरि गुन अमृत पांन करि, त्रिपति होय सौ कौंन॥
सुनिकैं सउनक कै बचन, बौले सूत सु ठौंन॥ ५ ॥

॥ सूत उवाच ॥

धारि रूप वाराह प्रभु, मारि असुर हिरनाषि॥
प्रथवी कौ उद्धार किय, मांन सुरन कौ राषि॥ ६ ॥
इह लीला सुनि प्रसंन ह्वै, बौले बिदुर प्रवीन॥

॥ बिदुर उवाच ॥

ब्रह्मा परजापतिन कौं, रचि कैं फिरि का कीन॥ ७ ॥
मरीचादि रिषिगन सबै, स्वायंभुव मनु राय॥
विधि की आग्यां सौं इहै, रची सृष्टि किहिं भाय॥ ८ ॥
अस्त्रिनि सौं मिलि कैं सृज्यौ, कै बिन अस्त्रिनि कीन॥
कै सबहिं मिलि कै सृज्यौ, एतिहुं कहौ प्रवीन॥ ९ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

बौले मुनि यौं दइव की, ईछा कै अनुसार॥
अरु माया संमिलत हुव, महतत्व भलै प्रकार॥१०॥
महतत्व तैं अहंकार हुव, तातैं पंच महाभूत॥
रचत भये ब्रह्मंड फिरि, यै सब ह्वै इक सूत॥११॥
सहस बरष ब्रह्मांड इह, पर्यौ रह्यौ जल मांहिं॥
चेतन कियौ प्रवेस करि, नारायन तिहिं ठांहिं॥१२॥
हरि कै नाभी कंज तैं, प्रगट भयो मुष च्यार॥
जथा जोग ब्रह्मांड रचि, सृष्टि भनैं परकार॥१३॥

चौपाई - प्रथम अविद्या पूर्वा पंचहीं। भयै बनांवत भलैं विरंचिहीं ॥
महामोह रु महातम जांनिइ। तम अरु अंधता मिश्र बषांनिइ॥१४॥

पंच वूं कहत तमिश्र सुनांमा। अै अग्यांन के हैं सब धांमा॥
कहे जु सबकैं नांम बषांनि। फिरि विधि तजिह देह उहिं जांनि॥१५॥
सो सरीर भयो निसास रूंप। जछ राछस सो लयो अनूंप॥
वा सरीर कौं दौरे षांनहिं। भूषे प्यासै ह्वै अग्यांनहिं॥१६॥
कोउ कहै यांकौ भछि न करौ। कोउ कहै यांकी रछ्या धरौ॥
जछ राछस जीवन के नांमा। ब्रह्मा धरैहु समझि हिय ठांमा॥१७॥
ब्रह्मा सुरनि रचत फिरि जु भये। आपनी देह प्रभा सु ठये॥
वहै तन तज्यौ मुदित ह्वै गयौ। सो तौ सबै देवतनि जु लयौ॥१८॥
प्रगट कियै विधि असुरन धन तैं। मोहित कांम भये तैं मन तैं॥
दौरे बिधि पांछै नाहिं लजै। ब्रह्मा हंसि उनतेहुँ डरि भजै॥१९॥
हरि कैं सरन चतुरमुष जु गयैं। हाथ जोरि कैं बोलतहिं भयैं॥
श्रृष्टि रची तुम्ह आग्यां हैंत। अब यै असुरनि मोहि दुष दैंत॥२०॥
तुम्ह सबकैं पालक करतारा। दुष्टनि दंड दैंन निरधारा॥
हरि बोलै ब्रह्मा सुनहिं लीजै। यहि सरीर अपनौं तजि दीजै॥२१॥
ब्रह्मा सुनि यैही हरि कैं बैंना। निजू सरीर तजि दियौ सुषैंना॥
बहि सरीर भयौ संध्या रूपा। चहरैं भूषन वस्त्र अनूपा॥२२॥
अंग अंग सुंदरताइ सोभित। ताकौं दैषि असुर भय मोहित॥
सब मिलि बोलै आपस मांहीं। यांकौ रूप अधिक सरसांही॥२३॥
यहि हम्हकौं चाहत हैं नांही। हम्ह यांकौ चाहत मन मांहीं॥
अैसें कहिउ आपस मैं सबै। संधया सौं फिरि बोलै जो तबै॥२४॥
तूं को है कहा कारिज तोंहिं। तिय तू हम्हहिं लेत है मोंहिं॥
कोउ होउ तू यै हौ नारी। लषत तोहि हम्ह चित सुषकारी॥२५॥
तू जु गैंद सौं क्रीडा जु करै। तातैं चित्त हम्हारौंहिं हरैं॥
गैंद उछारत रु दौरी फिरै। कटि लचकत सोभाहुँ विसतरै॥२६॥
केसन तैं षिसिं फूल जू परैं। तू सोभित अदभुत छबिहिं धरैं॥
अैसें संध्या कौ त्रिय जांनी। ले गय असुर अधिक सुषमांनी।२७॥
फिरि हंसि ब्रह्मा आप कांति तैं। रचि अपसरा गंधर्ब षांति तैं॥
फिरि विधि वहै सरीर तजि दयौ। सौंजु सरीर चांदनी जु भयौ॥२८॥
ताहि गंधर्व .अपसरा लैकैं। गये गेह निज अपसुष पैकैं॥
फिरि विधि आलस कै अनुसारी। भूत पिसाच रचेतिहिं बारी॥२९॥
आलस रूपी देह तजि दियै। ताकौं भूत पिसाच हर्षि लियै॥
तासौं भूतनि कैं इंद्रिननि कौं। श्राव होत है सब छिद्रननि कौ॥३०॥
सो उछिष्ट प्रांननि कौ बाधा। कहि उनमाद नांम तिहि साधा॥
अपनैं बल सौं ब्रह्मा फेरी। साध्या पितर रचै तिहूँ बेरी॥३१॥
वहै सरीर ब्रह्मा तजि दयौ। सोइ परोछि इहि नांम सुभयौ॥

ताकौं साधिहुं पितर लै गयै। प्रसंन अधिक अपनैं मन भयै॥३२॥
सिद्ध विद्याधर गन विधि सृज्यौ। बहुरी सरीर आपनौं तज्यौ॥
अंतरध्यांन रूप सोइभयौ। सु तौ सिद्ध विद्याधरहिं लयौ॥३३॥
फिरि किंनर किंपुरुष स्रजैअज। अरु सरीर आपनौं दयौ तज॥
सो सरीर प्रत्यात्म जु भयौ। सु तौ किंपुरुष किंनरहुँ लयौ॥३४॥
ताहीं रूप हीं जिहिं तिहिं ठौंरा। गावत भयेउ भलै सुभ तौंरा॥
फेरि सृष्टि जब बढनन लागी। तब विधि देह आपनी त्यागी॥३५॥
तिहुँ सरीर कैंसनि अनुसारी। सर्प नाग प्रगटै उहि बारी॥
विधि आपनकौं क्रतक्रत्य मांन। चवदह मनु सिरजै बुधिवांन॥३६॥
तिनकौ पुरुष सरूपीहिं करै। प्रथम प्रजा लषि आनंद भरै॥
विधि की अधिकी हुँ करी सरांह। चलि है अगनि होत्रादि उछांह॥३७॥
सबनि जीव केहि हितयै रचै। अरु तपस्यां करी रिषि जन सचै॥
जिग्य तपस्यां विद्या पुनि बैराग्य। दियौ रिषिन कौं बिधि बडभाग्य॥३८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते बिंसोऽध्यायः)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैक बिंसोऽध्यायः ॥

(कर्दम की तपस्या और भगवान का वरदान)

॥ बिदुर उबाच ॥

चौपाई – कहत बिदुर है मुनिस प्रसंसा। स्वायंभुव मनकौं कहौ बंसा॥
मनु केउ हिर्दे पुत्र विष्याता। पाद उतांन प्रियव्रत भ्राता॥ १ ॥
राज्य कियौ धरकौ किहिं भाई। सौं मोकौं मुनि कहौ सुनाई॥
अरू स्वायंभुव मनु की कन्या। देवहुति बहु विधि धनि धन्या॥ २ ॥
कर्दम रिषिहि बिवाहि जु दई। ताकैं कहा जु संतति भई॥
८ स्वायंभुव मनु की बैटी। रूप सील गुन लाज लपेटी॥ ३ ॥
तै रूचि दष्या प्रजापति वरी। तिनकैं कहा संतति विस्तरी॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै बिधि मुनि आग्यां पाई। कर्दम श्रिष्टि बढन कैं चाई॥ ४ ॥
नदी सरस्वति तट तप साध्यौ। वर्ष सहस दस प्रभु आराध्यौ॥
वेद विधांनि हरि सेवा किय। तब प्रसंन ह्वै प्रभु दरसन दिय॥ ५ ॥
कमल नयनहरि प्रसंन भये। सब्द ब्रह्ममय प्रभु दरसन दये॥
जिनकौं रवि सम तेज रसाला। पहरैं उर कमलन की माला॥ ६ ॥

कमल नैंन अति सुंदर स्यांमा। पीताम्बर धारै अभिरांमा॥
मुकुट सीस परि अदभुत राजहि। काननि कुंडल अधिक विराजहिं॥ ७ ॥
घंघुरारे कच मुष पर सोहे। मंद मंद मुसकनि मन मोहे॥
नीरज गदा संष अरु चक्र। चहुँ कर धरैं भौंह जिहि वक्र॥ ८ ॥
कौंस्तुभ मनि श्री चिह्न लसत हिय। चढे गरुड़हिं यौं दरसन दिय॥
लषि रिषि कर्दम कियो प्रनांमा। असतुति फिरि कीनी अभिरांमा॥ ९ ॥

॥ रिषि उबाच॥

नैत्र सफल हुव आजु हम्हारै। हे करता प्रभू तुम्ह निहारै॥
हे प्रभु इहै तुम्हरौ दरसन। जोगेस्वर चाहतहुँ देषन॥१०॥।
जे माया मोहितहिं प्रांनी। यहि संसार बीच अग्यांनी॥
ह्वै संजुक्त कांमनां भेव। तुम्ह चरनन की करत जु सेव॥११॥
सो म्है मूरष काज विवाहा। तुम्ह पद सरन गही धरिचाहा॥
सबनि मनोरथ कैहुँ दाता। दीनबंधु हौ बिरद विष्याता॥१२॥
बांनी बेद रावरी मांहीं। बंधि जग बउंत कांमना चांहीं॥
छोडि कांमनांजै सब ओरा। गही सरन तुम्ह चरन अकोरा॥१३॥
कथा रावरी अमृत पांनहिं। करत परसपर परम सुजांनहिं॥
काल चक्र मधि तैंरह आरा। पर्व तीन सै साठि प्रकारा॥१४॥
तीन नाभि छह नेम प्रमांना। अैसौ कालचक्र बलवांना॥
काटैनहिं भक्तन की आवू। हे प्रभु सो तुम्ह क्रिपा प्रभावू॥१५॥
उतपति पालन प्रलय संसारा। करतहुँ तुम्ह अप प्रकृति प्रकारा॥
सब जग कै प्रति पालक आपू। तुम्ह पद सेवा जोग्य सजापू॥१६॥
भजन करत हम्हसैंजु भक्त जन। माया कैंरी सुष विषै तिन॥
परि तुम्हरौ यहि वांछित नहिं। मो निमत्त तौ करियै सु सहि॥१७॥
सगुन रूप यहि है भिष्या तहिं। सौ है भुक्ति भक्ति कुं दातहिं॥
तुम्हहिं करत प्रभु हुँ परिनांमां। हे पुरुषोतम पूरन कांमां॥१८॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

कहै मैत्रेय फेरि भगवांना। बोलै बांनी सुधा समांना॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

हे रिषि तुम्ह जिहँ कारिज लीना। किय मोभक्ति अधिक चित दीना॥१९॥
सौ कारिज बिन कहँ तिहारहिं। हम्ह पहिलैंहिं किय निरधारहिं॥
भक्ति करै मो तुम्ह सै कोई। सो किहुँ बिधि निर्फल नहिं होई॥२०॥
हे रिषि स्वायंभुव मनुराई। ब्रह्मावर्त्त मधि बसत सुभाई॥
सप्त द्वीप कौ राज करत है। दैंन सुता चित तुम्हहिं धरत है॥२१॥
रांनी सति रूपा संगलै मनुँ। परसौं अै हैं तुम्हरै दरसनुँ॥
सहित रूप गुनी पुत्री चाहिं। दै हैं तुम्ह कौं भलैं विवाहिं॥२२॥

वहै राजपुत्री करि सेवा। तुम्ह कौं करि हैं प्रसंन सुभेवा॥
ह्वै हैं नौ कन्या जु तिहारहिं। तिनतैं बढि हुँ श्रृष्टि अपारहिं॥२३॥
अरु करि सबही कर्म समर्पत। मो प्रापत ह्वैह लषि सदगत॥
सब भूतनिहुं दया अभय दय। तुम्ह म्हैं मो लषि मोम तुम्ह पय॥२४॥
पुत्र तिहारैं हूँ अवतरि हौं। प्रगट सांष सास्त्र सुभ करि हौं॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

सुनियैं बिदुर आप भगवांना। ऐसैं कहि भये अंतरध्यांना॥२५॥
गरुड़ पंष तैं उडती बारा। सामवेद सुर कढ़े सुढ़ारा॥
कर्दम रिषि फिरि चित्तअनुसारा। लगै करन कौं इहै विचारा॥२६॥
स्वायंभुव मनु पुत्री चांहिं। अब हम्हकौं कब दैंहि बिबाहि॥
गृह तैं स्वायंभुव मनु राई। तिय पुत्री लै चलै सु भाई।२७॥
प्रभू दईही अवधि बताई। ताहि दिन आये मनुराई॥
रिषि कर्दम कौ तप जिहँ ठामा। लषि कर्त्ता प्रभु पूरन कांमा॥२८॥
दरसन दीनुं हुतौ क्रिपा करि। नेत्र सजलहिं हुतै दया धरि॥
आंसु ढरकि परे वहि अवसर। ताकौ प्रगट्यौ बिंद सरोवर॥२९॥
मिल्यौ सरस्वती सुं जल उज्जल। जांह बसत कर्दमबुधि निर्मल॥
केउ रिषि आश्रमहुं जिहिं पासा। अति सुंदर बन सोम प्रकासा॥३०॥
निति फल फूल तरुन मैं जांहां। कोकिल सब्द करत मिलि तांहां॥
गूंजत भ्रमर नचत है मोरा। पंछी विविध करत जांह सोरा॥३१॥
सारस चकवा हंस जु बौलहिं। गज मृग बक रु ससा किलौलहिं॥
वकुल करंज असोक कदंब। कुटज क्रुंद मंदार रु अंब॥३२॥
चंपा असनि बृछ जहँ ऐसहिं। कर्दम होम करततहँ बैसहिं॥
तपस्या सुं जिहँ तेज रह्यौ बढि। प्रभू मिलैं तन सुंदरता मढ़ि॥३३॥
नेत्र कमल दल सै छबि छहरैं। सीस जटा बलकल तन पहरैं॥
तिनकौं स्वायंभुव मनुराई। दरसन कीनौं उहि ठां आई॥३४॥
मनु नैं रिषिहिं प्रनांम जु कियौ। रिषिहूं नै अति आदर दियौ॥
मनु बैठे तबै रिषि बोलै। वचन मधुर सुषदाअमोलै॥३५॥
हे राजा तुम्ह प्रभु कौ अंसा। साधु कैं हौं रछिक प्रसंसा॥
धनुष हाथ लैहिं चढि रथ पर। बड़ी सैन लै संग बीरबर॥३६॥
तिनकौ अंस जुहै तुम्ह मांहिं। चहूं वोर प्रिथवी कै मांहिं॥
हे न्रप आप फिरौ जो नांहिं। द्विज सुरभि सुरछित नहिं रहांहिं॥३७॥
अरु रबितम अति प्रबल प्रतापा। जग बिच नहिं फैलावो आपा॥
तौ बरणाश्रम कै सब धरम। जग मरजादा हूं कैं करम॥३८॥
सब जात रहै ठहरै नांहिं। सब ठां अधरम अति सरसांहिं॥
दुष्ट किहुँ कौ डर नहिं मांनहिं। अधिक अकर्म करै बिन ग्यांनहिं॥३९॥

हुं तुम्ह सैं पूंछत इह राजहिं। इहिं आये तुम्ह कौनु काजहिं॥
कहउ तिहारै मन की बातहुँ। का तुमारेउ मन की चातहुँ॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकबिंसोऽध्याय। ॥२१॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वाविंसोऽध्यायः ॥

(देवहूति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

चौपाई-रिषि मैत्रेय कहत इह भाई। सुनि निज गुन बोलै मनुराई॥

॥ मनुरु वाच ॥

हे मुनि तुम्ह जुबेद की मूरति। महाभक्त अरु ग्यांन सहित मति॥१॥
सबकी रछया करत सम्हारी। तुम्ह से विप्रहुँ रचै मुष चारी॥
बिधि भुजांन तैं छत्री रचै। रछया करी द्विजन की सचै॥२॥
बिप्र हृदय ब्रह्मा कौं जांनौं। अरु छत्री बिधिहिं अंग प्रमांनौ॥
तातैं द्विज रछक हूं छत्री गन। छत्रिननि कैउ रछक हैं द्विज गन॥३॥
अरु सबकै रछिक जुकरतार। तिनीकौं बंदन बारहिंबारा॥
दरसन मोहिउ तिहारौ भयौ। तातैं मो संदेहु सबै गयौ॥४॥
तुम्ह जो धरमऊ दयौ बतांई। दरसन किय भागन तैं आंई॥
तुम्हरी चरन रेनु धरि सींसा। चैंन लह्यौ चित्त बिसबाबींसा॥५॥
तुम्ह हम्हकौं दीनैं उपदेसू। सुनैं भाग्य तैं बचन सुदेसू॥
अब म्हैरी बिनती सुनि लीजे। हे रिषि कह्यौ हमारौ कीजै॥६॥
प्रियव्रत अरु उतानपाद पुनि। द्वै भायन की भगनी इह गुनि॥
जुत गुन रूप हम्हारी बैटी। अति सुबुद्धि है लाज लपेटी॥७॥
नारद मुष गुन सुनैं तिहारैं। तुम्ह पै चाह धरीतिन बारैं॥
तुम्ह कौं कन्या देतहौं तातैं। करहूँ बिबाह आप रिषि यातैं॥८॥
गृह आश्रम कैं कर्म निमांहीं। सावधान रहि हैं इहि ठांहीं॥
बिषै भोगू आप हितैं आंयी। प्रापत होय जो आछै भांयी॥९॥
तौ वाकौउ छोडन नहिं कह्यौ। करैहुँ बिचार इहै प्रभु चह्यौ॥
आई बस्तु जू त्यागन करै। अरु फिरी पाछैं मांगत फिरै॥१०॥
तौ ताकौ जस रु मांन न रहै। सब जग हांसी करै उर दहै॥
अरु हम्ह सुनी कि चित्त तुम्हारै। चाह ब्याह की है निरधारै॥११॥
या कन्या कौ करौ अंगीकारं। तातैं ब्याह करौ इही बांरं॥

॥ रिषिरुबाच ॥

इह सुनिकैं कर्दम रिषि बोलै। बंछित अपनै चित्त कैं पोलै ॥१२॥
ब्याह करन कौं हमहिं मनोरथ। तातें याहि ब्याहि हैं हित पथ॥
इह जु तुम्हारी सुता सुभग तन। जाकौं होउ मनोरथ पूरन ॥१३॥
लछमी सम है सुंदर जु इहै। याकौं ब्याहन कौंनू न चहै॥
इहै कन्या इक समें गेह पर। षैलत हुती गेंद लीनें कर ॥१४॥
लषि जिहीं बिस्वावसु गंधर्व। मूर्छित गिर्यो धरनिहुँ तजि गर्व॥
रतन इहै कन्यानि के मांहीं। हे न्रप या सम दूजी नांहीं ॥१५॥
जिन जन पूजी लछमी नांहीं। अैसी तिय न लहैं जग मांहीं॥
याकै पुत्रन ह्वैहिहैं जबलौं। हम्ह गृह आश्रम करिहैं तबलौं ॥१६॥
उतपति पालन प्रलय संसारा। जिहँ प्रभू सौं सब है बिस्तारा॥
तिन्हकौ इहै बचन परकासहिं। सुत कै भये लेय संन्यास हिं ॥१७॥
तातें सुत कैं भये जु पाछैं। लै संन्यास बन जैहु आछैं॥
मधुर बचन अैसें सुनि कहिकैं। बैठे आपुन मौंन सुगहिकैं ॥१८॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

तिय अरु पुत्री की लषि जु चाही। रिषि कौं नृप दियी कन्या ब्याही॥
दायज भूषन वस्त्र समेता। दीनौं बउत नृपति करि हेता ॥१९॥
चलतै मनु पुत्री सौंजू मिलैं। सुता बिरहू तैं दृग जल चलैं॥
रिषि सौं आग्या लै मनुरायी। गयै आपनैं नगर सुभायी ॥२०॥
तीर तीर सरस्वती नदी कैं। आश्रम लषत रिषिन कैं नीकै॥
अै जबै ब्रह्माब्रतहिं आयै। देषि प्रजा अति आनन्द पायै ॥२१॥
नृप बर्हिषमति नगरी मांहीं। प्रापत भये आप निज ठांहीं॥
जहँ बाराह तन रोम सुझरै। तैं कुस कांस भयेउ त्रिन हरै ॥२२॥
उन्हहीं कुसतैं रिषि बहु भायै। जिग्य करैं बिधवत सुष पायै॥
स्वायंभुव मनुहूँ जिग्य कीनै। बिषै भोगन्हीं कौ सुष लीनै ॥२३॥
सब नृप कौ जस गावन लागै। मनु हरि गुनरस मैं नित पागै॥
कहत सुनत हरि कथा जु नृपाल। बृथा गमायौ नांहि पुनि काल ॥२४॥
इकहतरि चौगुनी हुं सुभाई। हरि गुन सुनत राज किय राई॥
त्रिविधि संताप बीचि संसारा। नृपकौं दुषन दियौ किहुँ ढारा ॥२५॥
धर्म सास्त्र जिन नृपति बनायै। बरणाश्रम कै धरम बतायै॥
इह हम्ह मनु कौं कह्यौ जु चरित्र। आछी भांतिनी परम पवित्र ॥२६॥
उन्हकी कन्या की गाथा सबै। कहुँ सुनौं दै बिदुर श्रवन अबै॥
देवहूती जो ही मनु कन्या। सुसेवहीं कर्दम रिषि सुधन्या ॥२७॥

(इति श्री भावगते महापुराणे तृतीय स्कंधे भाषा ब्रजदासी कृते द्वाविंसोऽध्यायः ॥२२॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोविंसोऽध्याय: ॥

(कर्दम और देव हूति का विहार)

॥ मैत्रेय उवाच ॥

दोहा - कहत जु रिषि मैत्रेय जब, पिता गयैं निज गेह॥
पति सेवा लागी करन, देवहूति धरि नेह॥ १ ॥
सिव की सेवा करति ज्यौं, तन मन सिवा लगाय॥
देवहूति तिहिं भांति किय, पति सेवा सरसाय॥ २ ॥
मधुर वचन कहिकैं भलैं, अरु चित धरि विस्वास॥
जुत पवित्रता सेवा किय, पति की सहित हुलास॥ ३ ॥
कांम क्रोध मद लोभ तजि, अधिक प्रसंन पतिकीन॥
देवहूति अति लटि गई, ह्वै सेवा आधीन॥ ४ ॥
तब रिषि बोलै दया करि, अति प्रसंनचित होय॥
हे नृप कन्या तैं करी, मो सेवा हित भोय॥ ५ ॥
म्हेरी सेवा मैं दई, तैं निज देह सुकाय॥
तौ असतुति कहँ लौं करौं, हूं अपनैं मुष गाय॥ ६ ॥
म्हेरी तपस्यां सौं भये, अति प्रसंन करतार॥
तातैं पूरन चाह तौ, करि हौं भलै प्रकार॥ ७ ॥
और लोक कै सुषनि कौ, होत छिनक मैं नास॥
हुं अैसें सुष देहुं तोहि, जिनकौ अचल बिलास॥ ८ ॥
अैसों पतिकौ बचन सुनि, सुधा समांन सुढार॥
देवहूति बोलत भई, हंसि कै फिरि तिहिं बार॥ ९ ॥

॥ देवहूतिरुबाच ॥

हे मुनि म्हैं जांनत भलैं, सब समर्थ हौं आप॥
पैं गृह आश्रम करि हरौ, मो मन तृष्णा ताप॥१०॥
मोहि चाह है पुत्र की, रचियै गेह अनूप॥
कोक सास्त्र पढि समझियैं, रस बिचार सुष रूप॥११॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

करन प्रिया कौ प्रसंन मुनि, जोग सक्ति कैं जोर॥
कर्दम रच्यौ विमांन इक, भोग करन की ठोर॥१२॥
दैंन हार सब कांमनां, रतननि जटत बिमांन॥
दिव्य सौंज अतिही सुषद, बउत भांत जिहिं थांन॥१३॥

सत षंडे ऊंचै महल, पलंग बिछै जिन मांहिं॥
सुषदायक सब रितुन मैं, ध्वजा बंधी तिहिं ठांहिं॥१४॥
भूमि नीलमनि की जांह, मनि कैं थंभ रसाल॥
सुबरन कै तोरन कलस, कुसमनि बंदन माल॥१५॥
कुसमनि बंदनमाल पैं, करत भ्रमर गुंजार॥
द्वार द्वार चंदवा तने, हीरनि जटित किंवार॥१६॥
पदम राग मणि लगि रहै, हीरा भीतनि मांहिं॥
भई चित्रकारी सुभग, ठौर ठौर गृह ठांहिं॥१७॥
पंछी रतनन कैं बनैं, साचै सै दरसात॥
विविधि विहारन कै स्थल, बउंत सोभ सरसात॥१८॥
पंछी नाना भांति कै, हंस कबूतर आदि॥
सब्द करत लागत भलै, सुनि प्रगटत अहलादि॥१९॥
बिन दासी लषि सोच भौ, देवहूति चित्त मांहिं॥
जांनि गयै कर्दम सुतौ, तांहीं छिन तिहिं ठांहिं॥२०॥
तब रिषि बोलै हे प्रिया, बिंद सरोवर मांहिं॥
करि सनांन चढियै अबै, इहिं बिमांन सुभ ठांहिं॥२१॥
देवहूति पति वचन सुनि, करिबै गई सनांन॥
बिंबरन कुच अंग पट मलिन, लट बंधि रहि कचसांन॥२२॥
बिंदु सरोवर सरस्वती, किय प्रवेस जुत मांन॥
तांह हजार कन्या लषी, अति सुंदर बुधिवांन॥२३॥
वे बोली कर जोरिकैं, हम्ह सब तुम्हारि दासि॥
कहौ जु तुम्ह सोई करैं, हे स्वांमिन सुषरासि॥२४॥
देवहूति सौं ए बचन, कहि सहचरि तिहिं बार॥
मिलि सनांन करवाय कैं, पुनि कीनौं सिंगार॥२५॥
अमृत सम भोजन सुषद, आछी भांति जिवांय॥
सुमन हार पहिराय कैं, अंग सुगंध लगांय॥२६॥
सहचरि स्वांमिन कौं निरषि, मगन भई सुषपांय॥
रीझि रीझि कैं अपनपौं, वारत चाव बढाय।२७॥
देवहूति निज रूप लषि, दरपन मांझ सुढार॥
कर्दम कौ सुमरन भलैं, करत भई तिहिं बार॥२८॥
सुमरन कीनौं तिहि समैं, पति कौं अपनैं पास॥
देवहूति देषत भई, उर अति बढ्यौ हुलास॥२९॥

कर्दम की प्रभुता अधिक, ऐसी देषि उदार॥
देवहूति कैं मन महा, अचिरज हुव तिहँ बार॥३०॥
विद्याधरीन जुत महा, सुंदर लषि निज नारि॥
कर्दम रिषि तब तिय सहित, चढे विमांन सुढारि॥३१॥
वा बिमांन पर त्रियन मधि, कर्दम यौं दरसात॥
ज्यौं उडुगन म्हैं चंद्रमां, महा सोभ सरसात॥३२॥
अमरनकुं मेरु नगनि मधि, कर्दम तियनि समेत॥
कियै बिहार कुबेर सम, बउंत भांति सुष लेत॥३३॥
बैश्रंभक अरु चैत्ररथ, बन नंदन सुषसार॥
अैंसै कांनन सुरन कैं, तिन मैं कियौ बिहार॥३४॥
सुंदर महा विमांन पैं, कर्दम तिया समेत॥
देवतान हूँ तैं सरस, सोभ दिषाई देत॥३५॥
जिनहिं गह्यौ हरिकौं सरन, दुर्लभ तिनहिं कछून॥
प्रापति होत पदार्थ सबि, चित चाहनिं तै दून॥३६॥
रचनां सबही लोक की, रिषि निज तियहिं दिषाय॥
आये आश्रम आपनैं, तिया सहित सुषपाय॥३७॥
बउंत बरष तांई कियौ, रिषि बहु भांति बिहार॥
तै वितीत छिन सम भयै, जात न लागी बार॥३८॥
देवहूति कैं गर्भ तैं, नौ कन्या सुभ रूप॥
प्रगट भई नवरतन सम, गुन गन सकल अनूप॥३९॥
लैंन लगै संन्यास जब, रिषि कर्दम चित चांहिं॥
देवहूति तब दुषित अति, भई आप उर मांहिं॥४०॥
मुष नवाय कैं पगन सौं, पुहमी लिषत सुभाय॥
अपनैं आंसूँ पूंछि कैं, बौली बचन सुनाय॥४१॥

॥ देवहूति रुवाच ॥

हे मुनि तुम्ह पूरन करी, मोमन की सब चांहिं॥
अबैं यैक पूरन करौ, जेहै मो उर मांहिं॥४२॥
ब्याहौ इन कन्यान कौं, अरुसुत म्हैरै होय॥
तबै लेउ संन्यास तुम्ह, मो उर कौं दुष षोय॥४३॥
विषै भोगहीं मैं गयै, इतनै दिवस बिहाय॥
आतम रूप न म्हैं लष्यौ, रह्यौ मो उर छाय॥४४॥
संग असाधन कौ करैं, बंधन सबही भाय॥
साध संग कैसैंहु किय, जीव मुक्ति ह्वै जाय॥४५॥

ग्यांन भक्ति जिहिं कर्म सौं, अरु बैराग न होय॥
अैसैं कर्महिं करत जो, जीव मृतक है सोय॥४६॥
मोहित माया सौं भई, म्हैं तुम्ह सैं पतिपाय॥
जग बंधनि तैं नहिं छुटी, सौ मूरषता भाय॥४७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते त्रयविंसोऽध्यायः ॥२३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्विंसोऽध्यायः ॥

(श्री कपिल देव जी का जन्म)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - रिषि सुनिकैं बैराग मय, देवहूति कैं बैंन॥
बोलै सुधिकरि हरि बचन, निज तियकौं सुषदैंन॥ १ ॥

॥ रिषि उबाच॥

हे नृप पुत्री मति करै, षेद हृदै मधि आप॥
पुत्र तिहारै होय हरि, मेटैंगे संताप॥ २ ॥
तपस्यां जुत यम नेम जुत, विधिवत हुँ दैं दान॥
श्रधा जुत हरि भजन करि, हृदै बिचारि सुग्यांन॥ ३ ॥
प्रभु तो सुत ह्वै मेटि हैं, तो उर कौ अग्यांन॥
म्हैरो सुजस बढाय हैं, दीनबंधु भगवांन॥ ४ ॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

कहत जु रिषि मैत्रेय यै, सुनि कर्दम कैं बैंन॥
देवहूति सेवत भई, प्रभु क्रपाल सुष दैन॥ ५ ॥
देवहूति कैं पुत्र प्रभू, भये बउंत दिन मांहिं॥
तबै बढ्यौ आनन्द अति, देवहूति उर ठांहिं॥ ६ ॥
देवतांन बाजि जबहूँ, बजयै ताहीं बार॥
गांन कियौ गंधर्व मिलि, अपसरा नचि सुढार॥ ७ ॥

चौपाई - सुमनहिं अमर गन वर्षत नयै। सज्जन मन जलहिं निर्मल भये॥
मरीच्यादि रिषि गनन सहित बिधि। आयै कर्दम कैं आस्रम मधि॥ ८ ॥
ब्रह्मा जू यहि जांनत सु बातहिं। ग्यांन देन प्रभु धार्यौ गातहिं॥
यै हरि रिषि कर्दम गृह आंई। लीनौं हैं अवतार सुभांई॥ ९ ॥
बउंत प्रसंन होय मुष च्यारहिं। रिषि सौं बोलै बचन उदारहिं॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

हे कर्दम रिषि तुम्ह जु हम्हारी। सेवा कीनी भलैं प्रकारी॥१०॥
हम्ह आग्यां किय सौ तुम्ह मांनी। टारी नांहि हम्हारी बांनी॥
सेवा बड़ी पिता की याही। बचन पिता कौ कीजै सोही॥११॥
अहो पुत्र यहि सुता तिहारी। श्रृष्टि बढ़ै है बउंत प्रकारी॥
तातैं कह्यौ हम्हारौ कीजै। इनहिं रिषिन निज कन्या दीजै॥१२॥
यै तुम्ह गेह कपिल अवतारी। प्रगट भये हैं प्रभु निरधारी॥
मातु ग्यांन उपदेस जु दैहैं। कर्म बासनां सकल मिटै हैं॥१३॥
फिरि चतुरानन बोलैं बैंनां। देवहूति सौं सुषकैं अैंनां॥
हे मनु की पुत्री तौहि गेहा। प्रगटेए भगवांन अछेहा॥१४॥
तोहि ग्यांन देबै भगवांनं। तेरौ दैहैं मेटि अग्यांनं॥
यै सिद्धन के प्रभु अभिरांमा। ह्वै हैं इनकौं कपिल जु नांमा॥१५॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

कहतउ षारव इहि जु प्रकारी। समाधांन करि कैं मुष च्यारी॥
संग लैंनारद सनत कुमारा। बिधि निज लोक गये तिहिं बारा॥१६॥
और रिषिन कौं ताहीं ठांमा। छोडि गयै ब्रह्मा निज धांमा॥
कर्दम रिषि अपनी बेटी सब। नवो रिषिन कौं ब्याहि दई तब॥१७॥
रिषि मरीचि कौं कला बिबाही। अत्रहिं अनुसूया दियै चाही॥
श्रद्धा अंगिरा रिषि कौं दीनी। क्रतु कौं क्रिया समर्पित कीनी॥१८॥
अरु हविर्भूताहि अगस्ति ही। दइ बिबाहि पुलह रिषि कुं गतिही॥
सांति अर्थवा कौं दी ब्यांहीं। भृगु कौं दीनी ष्याति उमांहीं॥१९॥
रिषि बसिष्ट कौं दई अरुंधतिहि। देवहुति पायो आनंद अतिहिं॥
नवौ रिषिन कौं अैसैं भायी। कन्या नवौं दईजु परनायी॥२०॥
वे रिषि करि कर्दमहिं प्रनांमा। गयै सबै अप अपनैं धांमा॥
रिषि कर्दम कपिलहिं प्रभु जांनिं। नमसकार करि बोलै बांनिं॥२१॥
अपनै पाप निंदाउत प्रांनी। देव प्रसंन तिनहूं दिन मांनी॥
जोगेस्वर करि जोगाभ्यासहिं। जिहँ प्रभु देषन करत तलासहिं॥२२॥
तै प्रभु हम्ह पर क्रपा बिचारी। हम्ह गृह तुम्ह लीनौं अवतारी॥
सत्य करन तुम्ह अपनै बैनां। प्रगट भये हौ म्हैरै अैनां॥२३॥
भक्त मनोरथ करहीं जैसौ। तुम्ह अवतार धरत हौ तैसौ॥
अैसै हौ तुम्ह प्रभु सुषधांमा। तिनकौ हूं जु करत परनांमा॥२४॥

परम श्रेष्ठ तुम्ह काल स्वरूपा। पूरन ब्रह्म भगवांन अनूपा॥
तातैं हूं तुम्ह सौं इहि बारजु। बिनवत हौं स्वांमी करतार जु॥२५॥
जो तुम्हरी आग्यां म्हैं पांऊं। तौ संन्यास लैकैं बन जांऊं॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

प्रभु बोलै तुम्हकौं बर दियौ। सौ निजू बचन सत्य म्हैं कियौ॥२६॥
जन्म लोक म्हेरौ या कारन। चाहत मोषि तिनहिं उद्धारन॥
ग्यांन मार्ग सबै नष्ट जु भयौ। प्रगट करन म्हैं जनम जू लयौ।२७॥
आत्मा अरु चौबीस तत्वन कौं। निरनौं करन मत्तौ मो मनकौ॥
आत्मा ग्यांन रिषिननि कुं दैहों। परम प्रापति सुलभहिं करैहौं.॥२८॥
तुम्ह बन जांऊं भक्ति सुष पैहौं। अंत समै मौ लोकिहि जैहौं।॥
आत्मरूप निज विषै बिचारहिं। पैं हौ मोक्षि महासुष सारहिं॥२९॥
माता कौ विद्या तप अध्यातम। करि हैं सुभ उपदेस इहां हम॥
आनन्द दायक प्रभु कैं बैंनां। अैसैं सुनि कर्दम लहि चैंनां॥३०॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

रिषि प्रभु की परकरमा करि कैं। बनकौ गयै मोद मन धरिकैं॥
फिरै मौन गहि प्रिथवी मांहीं। कुटीहुँ न कीनी किहुँ ठांहीं॥३१॥
ब्रह्म जू सबकौ करत प्रकांसा। ता मधि चित दियै जगत उदांसा॥
अहंता ममता दुहुँ तजि दीनी। सांत दांत बुधि अपनी कीनी॥३२॥
निस्चल चित करि रहै जु बन मैं। आतम ग्यांन भक्ति जुत मन मैं॥
सबै भांतिन बंधन छुटि गयै। आतम मधि जग देषतहिं भयै॥३३॥
अरु सब जग मधि आत्मा जान्यौं। ईछा द्वेष लोभ सब भान्यौं॥
सब ठां कीनौं चित्त समांन ही। प्रापति हरिकौं भय निदांन ही॥३४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्विंसोऽध्याय: ॥ २४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचबिंसोऽध्याय: ॥

(देवहूति का प्रश्न तथा भगवान कपिल द्वारा
भक्तियोग महिमा का वर्णन)

॥ सौनक उबाच ॥

दोहा - सौनक कहत जु जननि कौं, दैंन ग्यांन उपदेस॥
कपिल देव अवतार प्रभु, भये प्रकट अषिलेस॥ १ ॥
श्रेष्ट जु जोगेस्वरन मैं, कपिल देव अवतार॥
सुनत त्रिपति नहिं होत हम्ह, जिनकौ चरित उदार॥ २ ॥
प्रभू धारि अवतार जै, करतहिं चरित्र सुढार॥
तैं तुम्ह सब हम्हकौं कहौं, आछैं करि बिसतार॥ ३ ॥

॥ सूत उबाच ॥

सूत कहत यहि बिदुर सौं, कह्यौ चरित्र मैत्रेय॥
सोई हम्ह तुम्हसौं कहत, सुनौं श्रवन चित देय॥ ४ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

कर्दम रिषि जब वन गयै, तबै कपिल भगवांन॥
बैठे मातुहिं दैंन सुष, बिंद सरोवर थांन॥ ५ ॥
देवहूति पूंछत भई, इनकौं ग्यांनी जांनिं॥
अरु प्रभु कै अवतार सब, सुषदाता पहचांनिं॥ ६ ॥

॥ देवहूतिरुबाच ॥

विषै भोगतैं म्हैं भई, अबैं बिरक्त निदांन॥
बिषै भोगतैं होत हैं, प्रगट महाअग्यांन॥ ७ ॥

चौपाई - म्हैं अग्यांन अंधेरे मांहीं। परी कछु सूझत है नांहीं॥
तातैं करिबै कौं उद्धारहि। तुम्ह लीनौं म्हेरैं अवतारहिं॥ ८ ॥
आदि पुरुष ईस्वर तुम्ह स्वांमी। सबकौं करता अंतरजामी॥
लोक अग्यांन अंधेरै मांहीं। पर्यौ सु कछु प्रभु की सुध नाहीं॥ ९ ॥
दूरि करन कौं बह अग्यांनहिं। प्रगट भयै तुम्ह सूर्य समांनहिं॥
तातैं अहंता ममतां म्हैरी। दूरि करहुँ यहि हर्ष की बैरी॥१०॥।
बृछि संसार सरूपी आही। तुम्ह कूंठार हौं टारन ताही॥
प्रकृति पुरष कौ तत्व बिचारा। जान्यौचाहत हौं निरधारा॥११॥
अबहूं सरन तिहारैं आई। तीन तापतैं लेहुँ बचाई॥
अैसैं सुनि माता कैं बैंनां। बोलै कपिल देव सुष दैनां॥१२॥

॥ श्री भगवानुबाच ॥

अध्यातमक जोगहिं विष्याता। जौ है महामुक्ति कौ दाता॥
जग कैं दुषसुष मेटन हारा। जीवनि करन सिंधू भवपारा॥१३॥
कह्यौ रिषिनि म्हैं आगैं जोई। अबैं कहत तुम्हकौं हूं सोई॥
मुक्ति रु बंधन दुहूं उदोतहिं। जीवन कैं चितही तैं होतहिं॥१४॥
जौ संसार मधिहुं चित्त धरै। तौ प्रांनी कौ बंधनहुं करैं॥
अरु जो चित्त लगै हरि मांहीं। मुक्ति लहै तौ संसै नांहीं॥१५॥
अहंता ममतां कैं अनुसारा। कांम लोभ उपजै निरधारा॥
एई मन कैं मैंल कहावै। अमल होय मन यै जब जावै॥१६॥
अमल भयैं मन जग कै दुष सुष। यांकौ सबही लगै येक रुष॥
तब आत्मा अति सूछिम रूपा। माया परैं अषंड अनूपा॥१७॥
ताहि भक्ति बैराग ग्यांन करि। जांनैं यहै जीव माया तरि॥
भक्ति बराबरि ग्यांनहिं दाता। कोऊ पदारथ नहिं बिष्याता॥१८॥
काहू कौं करनौं है संगहिं। सोही जांनौ बंधन अंगहिं॥
अरु जो साध संग बनि आयै। तौ तजि बंध परम पद पावै॥१९॥
बात और की आप नहिं सहै। अरु सनेह सबसौं चितहिं चहै॥
क्रोध रहित अतिहि करुना करै। जो जग मैं कोऊ सत्रु न धरैं॥२०॥
मो निमंत जिन गृह सुत बंधू। कर्मनि जुत छोडै सब धंधू॥
म्हैरी अनन्य भक्ति ही गहैं। मो गुन नित्य सुनैहुं अरुकहैं॥२१॥
मोही मैं जिनकौं चित्त पगै। तिनकौं त्रिविधि ताप नाहिं लगै॥
माता तिनकौं कीजै संगहिं। तौ ह्वै जाय सकल दुष भंगहिं॥२२॥
जिन्हसौं मो गुन जानै जातहिं। म्हैरी चाह बढत नित प्रातहिं॥
साध संग सौं कथा हम्हारी। सुनी जात हैं श्रवन सुठारी॥२३॥
म्हैरी कथा सुनैं जब प्रांनी। श्रद्धा भक्ति होई सुषदांनी॥
भक्ति जीव कैं जब मौ प्रगटै। स्वर्ग राज्य हूं तै चितहिं फटै॥२४॥
तब म्हैरै मिलिबै कैं काजा। प्रांनी करै अनैंक इलाजा॥
विषै भोगू कौ त्यागन करैं। मोही मैं निज चितहिं अनुसरैं॥२५॥
ग्यांन भक्ति बैराग सुभायै। आत्मरूप मो जान्यौ जायै॥
सुनतहिं कपिल बांनी सुषमई। देवहूति फिरि पूंछतुहुँ भई॥२६॥

॥ देवहूति रुबाच ॥

मोही भक्ति कौ लछिन जु कहौ। तीनूं ताप कौं मो दुष दहौ॥

जासौं लोक तिहारे जांऊं। बसौं सदा म्है अति सुष पांऊं।२७॥
लछिनहिं कहौ जोग कौ हे मुनि। जासौं प्रगटै ग्यांन हियै पुनि॥
म्है तौ हूं तिय जाति अजांनी। हूं समझौं ज्यौं कहियै ग्यांनी॥२८॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

ग्यांनी परम कपिल तिहुँ बारहिं। सुनि माता कैं बचन सुढारहिं॥
लागै कहन भक्ति कै लछिनन। आछी भांतिन प्रभू बिचछिनन॥२९॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

मन इंद्री प्रभु कैं मधिहिं लगैं। अधिक प्रीति प्रभू सौं जगमगै॥
तासौं कहियै भक्ति उदोतहिं। जासौंमुक्ति जीव की होतहिं॥३०॥
जै आपस मैं परम सुपवित्र। कहत सुनत मोहि सदा चरित्र॥
मो चरनन कौं सेवतहिं रहै। तै मोहि भक्ति न मुक्तिहुँ चहै॥३१॥
म्हैरौ सुंदर जु सगुन सरुपा। मंद हास जुत परम अनूपा॥
ताहि निहारि सराहतहुं रहै। नित प्रति तिहैं देष्यौ ही चहै॥३२॥
म्हैरै सुंदर अंग सुढारू। हास विलास रु बचन उदारू॥
तिन्हीं सौं मौहि भक्तन कौं चित्त। हर्यौ जु गयौ मुंहि जान्यौ मित्त॥३३॥
अैसै म्हैरै भक्त उदारा। प्रापत होत मोहि निरधारा॥
जोग भोग लछमि जुत कछु और। भक्त चहत सौ लहतहिं सुठौर॥३४॥
पैं वै कछु चाहत है नांहीं। यैक भक्ति म्हैरी चित्त मांहीं॥
अैसै जै म्हेरे हैं दासा। तिनकौं कबहूं होत न नासा॥३५॥
म्हैं ही उनकै हु प्यारौ सषां। प्रीय आतमा गुर हितू पषां॥
लोक यहै रु सरीर सनेहा। तिया पुत्र जुत अरु धनू गेहा॥३६॥
सब तजि जै मो सरनैं आवत। तिन कौं मृति तैं म्हैं जु बचावत॥
म्हैं हूं प्रकृति पुरुष कौ इस्वर। सबकौ आत्मा मैटन मृति डर॥३७॥
म्हैरे चरन सरन बिनु आंयैं। भय न मिटै किहुँ और उपांयैं॥
म्हैरे भयसौं पवन चलत हैं। तपत भांन वासव बरषत हैं॥३८॥
अग्नि जरावत मृत्यु ग्रसत हैं। मो ईच्छा तैं जगत बसत हैं॥
ग्यांन भक्ति बैराग प्रतांपा। मोहि लहत नर मेटि संतापा॥३९॥
मोमैं अपनो चित्तहिंलगावै। इही बडो कल्यांन जु कहावै॥
भक्ति योग गुनी मोहि समावै। मो मैं सदा अस्थिर है जावै॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचबिंसोऽध्यायः ॥ २५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षटबिंसोऽध्यायः ॥

(महदादि भिन्न भिन्न तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन)

॥ श्री भगवानुबाच ॥

दोहा - अब म्हैं तत्त्व लछन कहत, जिनकौं लियैं पिछांनि॥
जीव प्रकृति कै गुनन तैं, पावत मुक्ति निदांनि॥ १ ॥
ग्रंथि जाय षुलि हृदय की, जांनैं आप स्वरूप॥
ऐसौ म्हैं तुम्ह सौं कहूं, अदभुत ग्यांन अनूप॥ २ ॥
आत्मा माया तैं परैं, हैं निरगुन जु अनादि॥
ब्यापक सब ठां ह्वै रह्यौ, अरु सबही की आदि॥ ३ ॥
प्रकृति सहज मैं प्राप्त हुव, मिलि आत्मा तिहिं मांहिं॥
भूलि रह्यौ तिहिं गुननि मैं, अपनी सुधि कछु नांहिं॥ ४ ॥
श्रजत जु प्रज्ञा अनैंक बिधि, ग्यांनहि मेटन हारि॥
आत्मा मोहित ह्वै गयौ, ऐसी प्रकृति निहारि॥ ५ ॥
ऐसैं मोहित होय कैं, माया सौं निरधार॥
करता मानत आपकौं, आत्मा सभी प्रकार॥ ६ ॥
तातैं आत्मा पुरुष कौं, बंधन होत संसार॥
आप अकर्त्ता है इहै, सब बिधि बिनां बिकार॥ ७ ॥
रचनहार इह श्रृष्टि की, है माया सब भाय॥
भोक्ता मानत आपकौं, पुरुष प्रकृति सम पाय॥ ८ ॥

॥ देवहूतिरुबाच ॥

देवहूति पूछत बहुरि, कपिल देव सौं बात॥
प्रकृति पुरुष कौं कह हुँ अब, मो सौं लछिन बिष्यात॥ ९ ॥

॥ कपिल देव उबाच ॥

कपिल कहत निति अरु त्रिगुण, कारिज कारन रूप॥
यहि माया लछिन कह्यौ, सुनियै भेद अनूप॥१०॥

चौपाई - भुव जल वायु अगिन आकासा। महाभूत यै पंच सभासा॥
सपरस सब्द रूप रस गंधा। यै तनमात्रा पंच प्रबंधा॥११॥
नैत्र श्रवन रसना त्वच नासा। गुद लिंग कर पद वाक प्रकासा॥
अंतहकरन जु च्यार प्रकारा। मन चित्त बुद्धि और अहंकारा॥१२॥
ये चौबीस तत्व लषि लीजै। तत्व पच्चीसौं काल कहीजै॥
पुरुष प्रभाव सबै यहि जानौं। जासौं उर उपजत हैं मानौ॥१३॥
माया मैं चेष्टा जो होतहिं। सो यहि कालहिं करै उदोतहिं॥
भीतर पुरुष रूप भगवांना। ऊपर काल स्वरुप निदांना॥१४॥
पुरुष वीर्य्य माया मैं राष्यौ। जगत प्रगट करनौं अभिलाष्यौ॥
तिहिंबीरज तैं महतत्त्व भयौ। श्रृष्टि प्रकासक रूपहिं सुठयौ॥१५॥

जा मधि सिगरौ बिस्व अनूपा। प्रकति पुरुष तैं अंकुर रूपा॥
पी गयौ माया कौं अंधियारं। चित्त रूप जो है निरधारं॥१६॥
सूछिम निर्विकार जोहै अति। उज्जल महा नीर सम जिहि गति॥
ऐसो चित महतत्त्व सुलसै। बासुदेव जांह अमर जु बसै॥१७॥
महतत्त्व तैं उपज्यौ अहंकारा। सत्त रज तम हुव तीन प्रकारा॥
तातैं प्रगटत भयै सभेवू। मन इंद्री इंद्रिन कै देवू॥१८॥
अरु महाभूत प्रगट सब भयै। तांह संकरषन जू सुर ठयै॥
म्हैं करता करनौं यहि मोही। सांत रु घोर मूडता जोही॥१९॥
अहंकार कै लछिनहिं जांनों। ते ये मात्र सत्यकरि मांनौं॥
सात्विक अहँ तैं मन उद्दोतहिं। जासौं संकल्प विकल्प होतहिं॥२०॥
इंद्रिन कौं मन ईस्वर जांनौ। अनिरुद्ध तांह देवता मांनौं॥
राजस अहंकार तैं भई बुद्धि। जासौं सबै पदारथ की सुधि॥२१॥
संसय अरु मिथ्या ग्यांन प्रमांनि। स्मृति अरु सैंन बुधि लछिन जांनि॥
अरु राजस अहं ही कै भाई। इंद्री प्रांन दये उपजाई॥२२॥
सबद जु तामस अहं तैहिं ठयौ। अरु तातैं नभ प्रगटतहिं भयौ॥
सबद स्रवन कौ बिषै प्रकारा। सबद अरथ कौ है आधारा॥२३॥
अरु नभ की तनमात्रा भासा। नभ सबहीनि देन अवकासा॥
इंद्री प्रांन हुं कौं आधारा। ऐसौं है आकास प्रकारा॥२४॥
नभतैं सपरस उपजत जु भयौ। तातैं पवन जु प्रगटत हुँ ठयौ॥
बिषै त्वचा को सपरस जांनौं। सब प्रभु ईछा भेद पिछांनौं॥२५॥
सीत्त उष्ण कोमल रु कठौरां। जांसौ जांनि परत बहु तौरां॥
चव प्रकार कौ सपरस जोई। तन मात्रा जु बाय की सोई॥२६॥
सब कछु बस्तू हलाय सु दैंनों। करि एकत्र मिलाय जू लैंनौं॥
सब्द दूरि तांई लै जांनौं। ए तिहुँ लछिन पवन कै मानौं।२७॥
रूप बाय तैं प्रगटजु भयौ। तेज रूप तैं जनमहिं सु लयौ॥
रूप नैत्र कौं बिषै कहावत। बुरी भली जु बस्तु दरसावत॥२८॥
रूप सु प्रगट दिषाई देतहिं। इहै रूपहुँ कौं लछिन हेतहिं॥
करन प्रकार अहार पचांवन। भूष प्यास एउहूं लगांवन॥२९॥
सीत लगै तिबहिं दूरि करनौं। धरम तेज कौ इह है बरनौं॥
प्रगट तेज तैं रस ह्वै जांनौं। रस तैं जल की उपजि प्रमांनौं॥३०॥
मधुर कषाय अम्ल कटु रु तिक्त। बउंत प्रकार विरस कीहुं विक्त॥
रस जिभा कौह बिषै प्रकारा। जांसौ हौतह स्वाद संम्हारा॥३१॥
पिंड बांधनौं तापहि मेटन। त्रिपति करन ए जलहिं कैं लछिन॥
जल तैं गंध लहत हैं उतपति। लही गंध तैं उतपति यहि छिति॥३२॥
विषै गंध नासा कौ जांनौ। प्रिथवी की तनमात्रा मांनौं॥

पूति कर्न सभ सुगन्ध प्रकारा। उग्र अमल अरु सांत सुढारा॥३३॥
इतनै भेद गंध के कहियै। प्रभु ईछा अदभुत चित चहियै॥
ब्रह्म भावना प्रतिमा मांहीं। जन्म धारिवौ स्थान कहांहीं॥३४॥
सबकौं धरनौ सबनि उपांवन। योहि लछिन भुव कै जांनत जन॥
नभ कोउ गुण बिसेष है कर्न। गुण बिसेष वायु त्वचा धर्म॥३५॥
तेजो गुण बिसेष है नैत्रहिं। जल बिसेष गुण जिह्वा छैत्रहिं॥
भुव बिसेष गुण नासा कहियै। मिलैं परसपर इन गुणि लहियै॥३६॥
सरस यैक तैं एकहि मांहीं। गुन इन पांचौ तत्त्वनि ठांहीं॥
काल कर्म संजुत भगवांनू। इनमैं भये प्रबिष्ट निदांनू॥३७॥
तब इन तत्त्वनि सु अंडा ठयौ। सोइ बह अंडा चेतनि भयौ॥
आठ आबरण जांकैं मांहीं। इक तैं इक दस गुन निज ठांहीं॥३८॥
जामैं चवदह लोक अनूपा। इहि बिराट है हरि कौ रूपा॥
थांन केउ तिहिं अंडा मांहीं। प्रगट भये हरि जब चित चांहीं॥३९॥
प्रगट भयौ मुष पहली बेरा। तातैं उपजी बांनी फेरा॥
प्रगटत भई नासिका जबैहिं। जासौं गंध भयौ पुनि तबैहिं॥४०॥
भये नेत्र रवि प्रगट्यौ जिनतैं। प्रगटै श्रवन दिसा भइ तिन तैं॥
अरु जब त्वचा जु उपजत भई। तातैं सबै औषधी जु ठई॥४१॥
बहुर्यौ इंद्रीय उतपति भई। वीरजहुँ तैं जल उतपति ठई॥
भई गुदा तांतै मृत्यु जांनौं। भयौ अंह तातैं सिव मांनौं॥४२॥
कर प्रगटे तांतै भयो जिस्नु। पांय भये तिन तैं भये विस्नु॥
नाडी रु उदर प्रगट द्वै भये। नदी समुद्र तांहांतै जु ठये॥४३॥
भयौ हिर्दै तांतैं मन सु भयो। मनहिं तैं फिरी चंद्रमां ठयौ॥
उपजत भई बुद्धि निरधारा। बुधि तैं प्रगटयौ मुष च्यारा॥४४॥
उपज्यौ चित्त जबै सुभ ठारा। बासुदेव सुरतिहँ सुष सारा॥
अभिमांनि रुद्र अहंकार सुं भयौ। फिरि चित्त तैं क्षेत्रज्ञ ठयौ॥४५॥

दोहा - **इतनै सबही देवतां, प्रगट जु भयै सुभाय॥**
तौउ चैतन्य बिराट करि, नाहिं सके उठाय॥४६॥
मुष मैं बैठ्यौ अग्नि अरु, सूरिज नैत्रन मांहिं॥
वायु नासिका मधि बस्यौ, सके उठाय न मांहिं॥४७॥
बसी औषधी त्वचा मधि, दिसा श्रवन कैं मांहिं॥
हाथन मैं बासव बस्यौ, सकै उठाय न यांहिं॥४८॥
नदी बसी नाड़ीन मैं, बिस्नु चरन की ठौर॥
तउ बिराट नहिं उठि सक्यौ, इनसौं काहू तौर॥४९॥

बस्यौ समुद्र जु उदर मैं, ससि बैठ्यौ मन मांहिं॥
तौहूं काहू भांति तैं, उठ्यौ बिराट जु नांहिं॥५०॥
बिधि बुधि सिव अहंकार जुत, बस्यौ हिर्दै मधि आय॥
तऊ बिराट न उठि सक्यौ, इन्ह सौं काहूं भाय॥५१॥
तब वामैं पैंठत भयौ, जीव आतमा आय॥
तब बैराट चैतन्य ह्वै, उठत भयौ सब भाय॥५२॥
जइसैं सोवत पुरुष कौं, मन बुधि इंद्री प्रांणि॥
जीव आतमा बिनु सबै, सकै उठाय न जांणि॥५३॥
तातैं वाही प्रभू कौं, धरियै ध्यांन सुढार॥
जीव होय जै सबन मैं, बसत प्रभू करतार॥५४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते
षटबिंसोऽध्यायः ॥ २६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तबिंसोऽध्यायः ॥

(प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन)

॥ श्री भगवानुवाच ॥

चौपाई - अैसें कहत कपिल जु भगवांनू। अविकारी आतमा सु निदांनू॥
निर्गुण ब्रह्म अकर्त्ता जांनौं। प्रकृति परै रु प्रकृति मधि मांनौं॥१॥
रवि प्रतिबिंब परत जल मांहीं। पैं रवि जलतैं जुदौ रहांही॥
आत्मा अहंकार संग पाई। आपहीं कर्त्ता कहत सुभाई॥२॥
तातैं जीव जु वीचु संसारा। जनम अनैंक धरत बहु बारा॥
सुपनैं मैं सुष दुष की प्रापति। नाहिं लाभ तिनसौं न कछू छति॥३॥
जीव हियहै उठौ संसारा। लागि रह्यौ अैसें जु प्रकारा॥
तातैं प्रांणी करै जू भक्ति। जग मैं नांहिन करै आसक्ति॥४॥
निज चित्त कौं अपनैं बसि करैं। बिषै मांहिं मनहिं नाहिंन धरै॥
जोग मार्ग बैराग भक्ति सौं। राषै दृढ़ चित्त जोग जुक्ति सौं॥५॥
दृष्टि समांन सबनि मैं धारै। बैर किहूं सौं नहिं बिचारै॥
अरु आसक्त होय किहूँ नांहीं। निस्पृह रहै सदा मन मांहीं॥६॥
ब्रह्मचर्य्य अरु मौंन सुधर्महिं। रहै आप संजुक्त सुकर्महिं॥
प्रापति होय कछू जो आंनिं। तामैं लेय संतोष सुमांनिं॥७॥
भोजन अलप इकान्त बसाहीं। सांत दांत जो रहै सदांही॥

नाहिं सरीर मैं ममता करैं। दया द्रिष्टि सबहीं पर जु धरै॥ ८॥
प्रकृति पुरुष कौं ग्यांन विचारैं। भेद सबै निजमन तैं टारैं॥
तिहूँ अवस्थाहिंमद्धि निदांनै। आपन कौं न्यारौ करि मानैं॥ ९॥
इते उपायन के अनुसारा। जानैं आतम तत्व निरधारा॥
वहि आत्मा व्यापक सब ठौरा। वा मैं नहिं उपाय किहुं तौरा॥१०॥
रबि प्रतिबिंब जू जल मैं परै। सौ प्रतिबिंब भीतिरी अनुसरै॥
अैसें आत्मा कौं पर कासा। अहंकार कैं मद्धि सभासा॥११॥
अरु अहंकार ही कौ प्रकासा। सकल सरीर मध्यहुं सविलासा॥
वह आतमा सौंवतहुँ मांहीं। जागत रूप लषत सब ठांहीं॥१२॥
सौवत होत नष्ट अहंकारा। आत्मा तिहँ संग कै अनुसारा॥
नष्ट भयौ आपहुँ कौ मांनैं। अपनौं रूप जुदौ नहिं जांनैं॥१३॥
जइसें कोउ भयैं धनहीना। लषै आपकौं नष्ट अधीना॥
बह आत्मा सबकौ परकासक। अरु सबहिंन कौं वही विनासक॥१४॥
तिहूँ आत्मा कौ प्रांनी इहै। सदा बिचार करत ही जु रहै॥

॥ देवहूतिरुबाच॥

देवहूति पूछत यहि बातहिं। माया अति बलवंत विष्यातहिं॥१५॥
पुरुषहिं कबहुं छोडतहुँ नांहीं। मिलै रहत यै आपस मांहीं॥
जइसी भांति प्रिथी अरु गंधा। न्यारै होत न किहूं प्रबंधा॥१६॥
जल अरु रस इक ठौरे जइसैं। प्रकृति पुरुष मिल रहे जु अैसैं॥
माया कै गुन बउंत प्रकारा। पुरषहिं बांधि रहै निरधारा॥१७॥
जिन्हसौं मुक्ति होय किहुं भाई। भेद हम्हहिं सौ देहुँ बताई॥
अरु कबहूं करि ग्यांन बिचारा। दीजै टारि अग्यांन अंधारा॥१८॥
तौहू बाहि अग्यांन उदेगहिं। आय लगत है बहुयौं बेगहिं॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

बोलै कपिल धर्म निहकांमा। अरु मो भक्ति परम अभिरांमा॥१९॥
तपस्या जोग ग्यांन बैरागू। यै साधै गहि मो अनुरागू॥
इन्हहिं उपायन कै जु उदोतहिं। प्रकृति सुदूरि पुरुष की होतहिं॥२०॥
भोग प्रकृति कैं करि कैंउ सबै। पुरुष याहि तजि देवैउ तबै॥
अरु माया कै गुन लषि जाई। तबि माया मैं नहिं लपटाई॥२१॥
पुरुष आपनूँ रूप पिछांनैं। तबि चैतन्य आपकौं मांनैं॥
जइसै निंद्रा तजि कैं जागैं। तबै दुष सुष सुपन कैं लागै॥२२॥
यौं जब प्रकृति झूठी जांनैं। तब माया नहिं लगै निदांनैं॥
जांण्यौं तत्त्व जाहि नैंहिं जबै। मन म्हेरैं मधि जोडतहुँ तबै॥२३॥
आत्मा रामी म्हेरौ भक्तहिं। नहिं बांधत तिहि मायासक्तिहिं॥
आत्म बिचार जवै यहि करैं। अरु बैराग सबनि सौंहिं धरैं॥२४॥

म्हैरै भजन बीचु चित्त लावै। तबहि मुक्ति कौं यहि जन पावैं॥
जनम मरन याकौं फिरि नांहीं। भक्ति प्रताप मिलै मो मांहीं॥२५॥
अरु कीनैं जु जोगहुं अभ्यासा। निस्चै पावै मुक्ति निवासा॥
पै नहिं जोग सिद्धि कौं धावैं। मोही में निज चित्त लगावैं॥२६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तबिंसोऽध्यायः ॥ २७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टविंसोऽध्यायः ॥

(अष्टांग योग की विधि)

॥ कपिल देव उवाच॥

दोहा – कपिल कहत अब तुम्हसुनौं, जोग सबीर्ज प्रकार॥
जासौं मन अति प्रसंन ह्वै, तजै षेद लहि सार॥ १ ॥
करियै अपनौं धर्म अरु, तजियै धर्म जु आंन॥
धरि संतोष ग्यांनिन कैं, पद सेवन सप्रमांन॥ २ ॥
धर्म सकांम न करन रुचि, मोक्ष धर्म सौं प्रीति॥
ह्वै पवित्र रहनौं अलप, भोजन भक्षन रीति॥ ३ ॥
करनी हिंसा जीव नांहिं, सत्य बोलनौं बैंन॥
संग्रह काहू बस्त कौ, अधिक नहिं न करि लैंन॥ ४ ॥
ब्रह्मचर्य्य तप साधनौ, अरु रहनौं एकन्त॥
मौन साधि गहि स्थिरता, पढ़नौ बेद सुत्तंत॥ ५ ॥
आसन इंद्री प्रानकौं, जीतै भलै प्रकार॥
हरि लीला कौं ध्यांन करि, मन बसि करै सुठारि॥ ६ ॥
अति पवित्र कहूं देसमैं, बैठे आसन ढारि॥
करै जोग अभ्यास मन, थिर करि भलै प्रकारि॥ ७ ॥
यहै मुष्य इन आदि लै, मारग जोग अपार॥
सावधांन होय दुष्ट मन, जीतै भलै प्रकार॥ ८ ॥
किहूँ पवित्र जु देस मैं, आसन जीतै आप॥
सूधी राषै देह कौ, प्राणायाम सजाप॥ ९ ॥
रेचक कुंभक पूरक रु, विधि करि प्राणायाम॥
जोगी रोकै प्राण तब, मन ह्वै उज्जल ठांम॥१०॥
जोगी जीतै स्वास कौं, मन सुविरज ह्वै जाय॥
अग्नि पवन संजोग ज्यौं, सुवरणलीजै ताय॥११॥

प्राणायाम प्रकार सौं, जीतै कफ पित्त वात॥
अरु धारै तैं धारणां, पाप दूरि ह्वै जात॥१२॥
जीतै कांम रु क्रोध कौं, धारि प्रभू कौ ध्यांन॥
जै सबही ब्रह्मंड मैं, व्यापक है भगवांन॥१३॥
जब मन निहचल होय तब, नासा परि धरि द्रिष्ट॥
करैं ध्यांन प्रभु रूप कौं, जांनि आपनौं इष्ट॥१४॥
प्रभु कौं रूप अनूप अति, प्रसंन बदन अभिरांम॥
अरुन कमल दल से नयन, नील कमल से स्यांम॥१५॥
संष चक्र नीरज गदा, आयुध लियै र साल॥
पीत वस्त्र भ्रुव बंक अति, उर सोभित बनमाल॥१६॥
जथा जौगि भूषन बनै, अंगनि अंगनि मांहिं॥
कौस्तुभ मनि श्री चिह्न दुहु, झलमलात हिय ठांहिं॥१७॥
क्रीट मुकट रतनन जटित, मंद मंद मुसक्यांन॥
घुंघरारी अलकैं लसत, बपु किसोर उनमांन॥१८॥
मन नैत्रनि आनन्द कै, दाता जै भगवांन॥
भक्तनि पैं अनुग्रह करन, प्रभु प्रानन कैं प्रांन॥१९॥
जिनकौं करत प्रनांम सब, जस पवित्र सुषसार॥
अैसैं प्रभु कौ ध्यांन उर, धारै भलै प्रकार॥२०॥
हृदै मध्य बैठे भलैं, कै ठाढै कैं सैंन॥
कै डोलत अैसैं करैं, चित्त सौं ध्यांन सुषैंन॥२१॥
प्रभु कौं अैसी भांति सौं, करिकैं ध्यांन अनूप॥
जुदे जुदे फिरि अंग कौ, धरै ध्यांन सुषरूप॥२२॥
चरन चिह्न चौबीस जुत, लसत अरुन नष पांति॥
जिन प्रकास तैं हिदैं कौं, तिमिर मिटत बहुँ भांति॥२३॥
जिन तैं प्रगटी गंग जिहँ, सिव राषत हैं सीस॥
अैसैं चर्नन कौ धरै, ध्यांन सु बिस्वांबीस॥२४॥
जिनकौं निज करसौं रमा, दाबत चित्त धरिचाय॥
अैसी प्रभु पिडुरीन कौ, धरै ध्यांन सुषदाय॥२५॥
सोभित ऊपर गरुड कैं, अलसी फूल कैं रंग॥
अैसी प्रभु जंघान कौं, धारैं ध्यांन अभंग॥२६॥
छुद्र घंटिका सहित कटि, सुभग नितंब सुढारी॥
जिनकौं आछी भांति सौं, करैं जु ध्यांन बिचारि।२७॥
कमल भयो जांतै बस्यौ, जांमैं विधि सुषपाय॥
अैसी नांभि कौं करैं, ध्यांन हिदैं सरसाय॥२८॥

नील मणि सम स्तननि पै, सोभित मुक्तामाल॥
बछिस्थल श्री चिह्न जुत, धरैं सु ध्यांन रसाल॥२९॥
कौस्तुभ मणिकी बढत है, जांसौं सोभ अपार॥
ऐसें सुंदर कंठ कौं, धरैं ध्यांन निरधार॥३०॥
कंचन बाजूबंध जुत, करै भुजा कौं ध्यांन॥
चहुँ आयुध जुत करनिकौं, करै ध्यांनसप्रमांन॥३१॥
मकराकृत कुंडल श्रवन, उर बन माल रसाल॥
मंद हंसनि जुत मुष इहै, धारैं ध्यांन विसाल॥३२॥
घूंघरवारे केस अरु, कमल दलन से नैंन॥
बंक भौंह उत्तंग अति, नासा छबि कौं अैंन॥३३॥
जग कें सोक समुद्र कौं, सोषन वारौ हास॥
अरुन अधर सुंदर दसन, अदभुत कांति उजास॥३४॥
तीन ताप संताप कौ, निश्चै टारनहार॥
ऐसै प्रभु दृग चितवनौं, दैन महासुषसार॥३५॥
ऐसें सुंदर बदन कौं, करैं ध्यांन अभिरांम॥
तामें रहै जु मगन ह्वै, निति प्रति आठौं जांम॥३६॥
ऐसौं प्रभु कौं रूप लषि, हियैं भक्ति बढि जांय॥
तन पुलकित अरु द्रिगन तैं, आंसू चलै सुभांय॥३७॥
जब बहि प्रभु कै ध्यांन तैं, करैं स्थिर निज चित्त॥
और ठौर कहुं नहिं चलै, गहै एक हरि व्रित॥३८॥
निराधार बिनु व्रति चित्त, होय भलै अनुसार॥
तब यहि लय कौं पायकैं, होय ब्रह्माकार॥३९॥
आत्मा कौं अनुभव भलैं, यहि होय तिहिं बार॥
तब तनकैं सुषदुष नाहिं, यांहिं लगै निरधार॥४०॥
अरु अपनैं जु सरीर की, याहि रहै सुधि नांहिं॥
जइसैं मदिरा मत्त कौं, बास सुधि न चित्त मांहिं॥४१॥
जोगेस्वर कौं तन रहै, बस प्रारब्ध जु कर्म॥
जीवत मुक्त जु होय तब, नाहिं लागै तन धर्म॥४२॥
तिय सुत तैं ज्यौं आपकौं, न्यारौ लषत निदांन॥
त्यौं जोगी निजरूप कौं, न्यारौ लषत सग्यांन॥४३॥
जइसैं अग्नि जु काष्ठ तैं, न्यारौ है निरधार॥
आत्मा न्यारौ देह तैं, जांनै तिहीं प्रकार॥४४॥
सूछिम थूल सरीर तैं, जुदौ आतमा आंहिं॥
सबमैं आपन कौं लषै, सबकौं आपन मांहिं॥४५॥

जइसै काष्ठ अनैंक मैं, दीसत अग्नि अनैक॥
बउंत देह मैं ज्यौं बउंत, दीसत आत्मा यैक॥४६॥
अैसैं माया दूरि करि, आत्मरूप पहिचांनिं॥
जोगेस्वर महामुक्ति कौं, प्रापत होय निदांनिं॥४७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे ब्रजदासी कृते
अष्टविंसोऽध्यायः ॥ २८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकोनत्रिंसोऽध्यायः ॥

(भक्ति का मर्म और काल की महिमा)

॥ देवहूति उबाच ॥

दोहा - देवहूति पूछति बहुरि, कपिल देव सौं बात॥
प्रकृति पुरुष अरु तत्त्व कैं, लछिन कहैं विष्यात॥ १ ॥
भक्ति योग कौ पंथ अरु, बरनौं गति संसार॥
जासौं अति बैराग उर, प्रगटै भलैं प्रकार॥ २ ॥
कहौ रूप तुम्ह काल कौ, आछै करि विस्तार॥
जांसौं डरि कैं जीव सुभ, करम करत निरधार॥ ३ ॥
अति अग्यांनी जीव परि, रहै मोहतम मांहिं॥
तुम्ह जिनकैं उद्धार हित, प्रगटै रबि इहि गांहिं॥ ४ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनि माता कैं बैंन॥
कपिल देव भगवांन फिरि, बोलै वचन सचैंन॥ ५ ॥

॥ श्री भगवानुबाच ॥

भक्ति जोग म्हेरौ सुषद, है अनैक परकार॥
सौ कीनैं तैं काल कौं, भय न हौहि किहुं ढार॥ ६ ॥
किहुँ कैं मारन काज अरु, दंभ ईरषा भाय॥
भक्ति करैं प्रांनी सुतौ, तामस भक्ति कहाय॥ ७ ॥
ईस्वर तामस विषै कै, लियै करैं मो भक्ति॥
सोहीं भक्ति रजोगुणी, संजुत मायासक्ति॥ ८ ॥
कर्म टारिबै अर्थ अरु, अर्पन करि प्रभु मांहिं॥
करतव्य भक्ति पूजन यहि, प्रांनी कौ चित्त चांहिं॥ ९ ॥

भक्ति करै यहि जांनिकैं, सात्विक भक्ति जांनिं॥
अंकुर म्हैरी भक्ति कौं, सुषदाता यौं मांनिं॥१०॥
सुनतहिं म्हेरे गुन श्रवन, मो मैं चित्त लगि जांय॥
करै कांमनां नहिंन सौं, निर्गुन भक्ति कहांय॥११॥
भक्ति जु पांच प्रकार की, चहै भक्त सौं नांहिं॥
अैसी उपजै भक्ति तब, जीव मिलैं मौं मांहिं॥१२॥
करैं धर्म निहकांम अरु, अैसै करै जु धर्म॥
जांमैं उपजै नांहिनै, कछु हिंसा कौं कर्म॥१३॥
म्हेरौ मंदिर होय जहं, दरसन करै उमांहिं॥
मो असतुति पूजा करै, भली भांति अवगांहिं॥१४॥
सब ठा देषै मांहिं अरु, करै न कहुँ कौ संग॥
आदर साधुन कौ करै, धरि संतोष अभंग॥१५॥
दीनन पर राषै दया, साधै यम अरु नेम॥
आत्म बिचार करै भलैं, साधन सौं धरि प्रेम॥१६॥
श्रवन करैं म्हैरी कथा, करैं कीरतन नांम॥
छोडि कपट अहंकार कौ, होय रहै निहकांम॥१७॥
इन्ह साधन सौं होत है, म्हैरी निर्गुन भक्ति॥
छूटै जग जंजाल दुष, होय मोह अनुरक्ति॥१८॥
गंध पवन कै संग ज्यौं बिन, भेद नासिका बास॥
अबिकारी रत जोग चित, आवै ह्वै मो दास॥१९॥
ब्यापक हूं सब ठौर मैं, ताकौं जांनै नांहिं॥
इक प्रतिमा हीं मैं लषै, मूरष सो जग मांहिं॥२०॥
होम कियैं ज्यौं राष मैं, कछू कांम कौ नांहिं॥
जइसी बांकी भक्ति है, यहि समझौ मन मांहिं॥२१॥
करै परायौ द्वेष अरु, करै मान बहुँ भांति॥
चित मैं राषै भेद सौ, नाहिंन पकरै सांति॥२२॥
जौ सब जीवनि कौं करैं, काहू विधि अपमांन॥
अरु मो पूजा करत सौ, मांनौ हूं न निदांन॥२३॥
प्रतिमा पूजै जबहिं लौं, सब ठां लषै न मोहिं॥
भेद दृष्टि राषै जु नर, ताहिं मृत्यु भय होहिं॥२४॥
म्हैं हूं सब प्रांनिन मैं, यहि निश्चै उनमांन॥
तांतैं सबै प्रांनिन कौ, भलै करैं सनमांन॥२५॥

जड़ जीवनि तैं श्रेष्ट हैं, चेतन जीव सुजांन॥
प्रानवंतता तैं अधिक, तातैं जै जुत ग्यांन॥२६॥

चौपाई - इंद्री वंत श्रेष्ठता तैं पुनि। सपरस बेदीता हूं तैं गुनि॥
स्रेष्ठ गंध बेदीता तैं पुनि। श्रेष्ठ सब्द बेदीता तैं गुनि॥२७॥
श्रेष्ठ भेद रूपीता तैं पुनि। उभै दंत श्रेष्ठता तैं सुनि॥
तिन्हमैं श्रेष्ठ जु बहुपद जांनौं। तिन्ह मैं श्रेष्ठ चतुस्पद मांनौ॥२८॥
तिन्हमैं द्वै पद वारे श्रेष्ठ। तिन्ह मैं च्यार वर्ण हैं ज्येष्ठ॥
तिन्ह मैं ब्राह्मण श्रेष्ठ कहांहिं। श्रेष्ठ बेद पाठी तिन मांहिं॥२९॥
तिन्ह मैं श्रेष्ठ अर्थ कौ ग्याता। सौ समझै बहु भेद विष्याता॥
अरु तिन्हकैं मधि श्रेष्ठ कहावै। जौ औरनि संदेह मिटावै॥३०॥
तिन्ह मैं जौ निज धर्महिं मांहीं। सावधान सौं श्रेष्ठ कहाहीं॥
तिन्हकैं मध्य श्रेष्ठ सुभ तौरा। जै आसक्त नाहिं किहूं ठौरा॥३१॥
तिन्ह मैं श्रेष्ट कहावै सोई। करै कर्म निहकांम जु कोई॥
तिन्हहूँ मैं जो सबै सुभ कर्म। मोही समरपै तजि जग भर्म॥३२॥
ताकौं सबतैं श्रेष्ठ जु जांनौं। तिहिं सम औरन कौंउ प्रमांनौं॥
यथा जोग्य इन सब जीवन कौ। करैं प्रनांम गहै इहि पनकौं॥३३॥
ईस्वर कौं सब ठौरहि देषै। ईस्वर बिना किहुँ नाहिं लेषैं॥
भक्ति रु जोग दोऊ म्है कहैं। माता जै तुम्हीं सुननैं चहैं॥३४॥
यकहुँ साधै इन्हहुँ हूंमांहीं। तौ यहि लीन होय हरि मांहीं॥
प्रकृति पुरुष दोन्यो तैं परैं। है प्रभू अपनी ईछा धरै॥३५॥
सो भगवांन देवहिं कहावै। काल रूप वैही दरसावै॥
महतत्त्व आदि पंच जै भूता। भिन्न दृष्टि भय करत अभूता॥३६॥
काल परसपर करत संहारा। वाही विस्नु जग्य फल सारा॥
अरि अरु मित्र काल कै नांहिं। सबकौ अंत करत इक ठांहिं॥३७॥
पाय कालभय पवन चलत है। सूरज तपत इंद्र बरषत है॥
तारागन जु काल भय पाई। बिच आकास रहै हैं छाई॥३८॥
जांकै भय सौं वृछ लता सब। फूलैं फलैं रहत हैं तैं अब॥
जिहं भय तैं जल नदी धरत है। मरजादा न समुद्र हरत हैं॥३९॥
जांकै भय तैं अग्नि बरत है। अरु प्रिथवी जल मांहिं तरत हैं॥
जाहिं कै भय तैं थिर आकास। देत हैं सब भांतिनि अवकास॥४०॥
अभिमांनी गुन कैं जु अमर हैं। तेहुँ काल कौं मांनत डर हैं॥

उतपति पालन प्रलय संसार। करत रहत हैं भलैउ प्रकार॥४१॥
अैसौं काल अन्त तिहूँ नांहिं। अंतकरन सबकौ जु जग मांहिं॥
काल सबनि उपजावै मारैं। है प्रभु कै इछा अनुसारै॥४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अकोंनत्रिंसोऽध्यायः ॥ २९॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रिंसोऽध्यायः ॥

(देह गेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन)

॥ श्रीकपिलदेवुबाच॥

छप्पय - कपिल कहत है काल, इहीं प्रांनिन भ्रमावत॥
अै परि काल प्रभाव, कछू प्रांनी नहिं पावत॥
जिहिं जिहिं बस्तू जीव, लेत हैं हित ईछा धरि॥
तिहिं तिहिं कौ यहि काल, करत है नास जोर करि॥
चंचल सरीर या जीव कौ, अरु चंचल है धांम धन॥
निहचल जु इहै जांनत सदा, अति मूरष यहि मनुष्य मन॥ १ ॥

चौपाई - यहि जीव बसत देही मांहीं। सुष मानत आपन तिहं ठांहीं॥
तन सूकर कूकर के जु लहै। तउ यहै जीवौही चित्त चहैं॥ २ ॥
तिया पुत्र दृव्य रु गृह बंधू। जितनौ एक जगत कौं धंधू॥
तामैं अधिक लगाय सनेहा। आपहि मानत बडौ अछेहा॥ ३ ॥
आप रहत है सदा दुषित नर। कुटुम्ब हेत अघ करत भुमि पर॥
तिय अरु पुत्रन के बचनन मैं। मोहित होय जो निजू मन मैं॥ ४ ॥
घर मैं सदा जु दुषी ही रहै। झूंठे सुष निज चित्त मैं गहै॥
बउंत पाप करि दृव्यहिं जोरी। षरचै कबहुंन धर्म अकोरी॥ ५ ॥
निज कुटुम्ब कौं देत षबाई। बचै सु पांछै आपन षाई॥
संगी कौउ कुटुम्ब कै नांहीं। जात अकेलौ नर्क जु मांही॥ ६ ॥
उद्यम बारहिं बार जीव का। नष्ट भयैं परधन चही वका॥
पालि नहिं सकै कुटुंबहिं जबै। भाग्य हीन तब कहत सु सबै॥ ७ ॥
आवत वृद्ध अवस्था ज्यौं ज्यौं। बाढ़त सोच अधिक उर त्यौं त्यौं॥
पालन जब न कुटुंब कौ करै। तब सुतहुँ आदर नहिं धरैं॥ ८ ॥
वृद्ध वृषभ कौं षेति वांरा। जइसैं नांहिन करै संभांरा॥
मरन नजीकहिं आयौं जांनैं। तउ बैराग न चित मैं आंनैं॥ ९ ॥
कुटंब अनादर सों दै रोटी। थकै देह वरियां अति षोटी॥

मरन समैं बहू पित्त कफ बांय। ऊपजै रोग भूषहू जांय॥१०॥
दम अतिहिं चढै महादुष भरै। घुर घुर सब्द कंठहुं मैं करै॥
घर कै याहि घेर जब बैठे। रुदन करै रु सोच मैं पैठे॥११॥
घर कैउ याहि बुलावत सबै। याहि नहिं बोलि सकत है तबै॥
रोवत घर के सबै अग्यांनहिं। यहि लषि भूलत है हरि ध्यांनहिं॥१२॥
द्वै जमदूत लैन इहिं आवत। जिनकौं देषि महाभय पावत॥
डर सौं यहि मलमूत्र करत है। अैसी भांति मनुष्य मरत है॥१३॥
या सरीर तैं याहिं निकारी। और सरीरहिं मांहि जु डारी॥
पासी बांधि गले कै मांहीं। द्वै यमदूत याहि लै जांहीं॥१४॥
मारग मैं जमदूत डरावत। स्वांन पंथ बिच काटन धावत॥
मग मैं बालू रेतहिं मांहीं। चलत इहै अति थकि थकि जांहीं॥१५॥
अरु जम दूत कोरड़ा मारत। जब यहि निज अघकर्म बिचारत॥
भूषो प्यासौ नीर न प्यावत। भांन अग्नि कौ तेज जरावत॥१६॥
अैसैं दुष सौं जमपुर जातहिं। भोगत पाप कर्म दुष गातहिं॥
निन्यांणवैं सहस जोजन पर। है जमलोक दंड दाता घर॥१७॥
जहं घरी छह च्यारक मांहीं। गहि जमदूत याहि लै जांहीं॥
कीनैं हौंहिं कर्म इन्ह जइसैं। याकौ दंड देति फिरि तइसैं॥१८॥
यांके तनकौं देत जुदांहीं। मांस षवावत याकौ यांहीं॥
गीध स्वांन इहिं आंत निकारत। काटत बीछू सांप फुकारत॥१९॥
तनकैं टूक टूक करि डारत। हाथिन सौं घिंसवावत फारत॥
ऊंचै पर्बत सौं पटकावत। अरु पांनीं कैं मांहिं बुडावत॥२०॥
आठ बीस है नर्क बिष्यांतहिं। तिन मैं महादुष्ष उतपांतहिं॥
जइसै कीयै हौंहिं इन्ह पांप। तइसैहिं नर्क भोगवै आंप॥२१॥
पुरुष रु तिया होय जो कोई। निज पापन कौं भोगै सोई॥
मातु नर्क अरु स्वर्ग इहांहीं। नर्क जातनां लषत इहांहीं॥२२॥

दोहा - अरु या पापी जीव कौं, जियतहुँ समैं निदांन॥
भांति भांति दुष होत है, गृह मैं नर्क समांन॥२३॥
पालत केवल कुटंब कौं, पेट भरत निज जोय॥
भलै करम नांहिंन करै, तांकी यहि गति होय॥२४॥
पौषत अपनैं कुटुंब कौ, भुगतै दुष्ष अपार॥
ईस्वर करिकैं यातनां, पावत नर्क मंझार॥२५॥
सुष दुष भोगै एकलौं, पाप पुन्य ही संग॥
केवल पापी जीव की, यहि गति होय कुढंग॥२६॥

नर्क भोगि ऐसैं बहुरि, यहि प्रांनी किहुं बार॥
पावत है मानुष जनम, भाग्य उदै अनुसार॥२७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रिंसोऽध्याय: ॥ ३० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकत्रिंसोऽध्याय: ॥

(मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन)

॥ श्री भगवानुबाच ॥

दोहा - कपिल देव यौं कहत यहि, जीव धरत पुनि देह॥
पुरष धात मैं होय तिय, उदर करत निज गेह॥ १ ॥

चौपाई - इक निस मैं ह्वै कलल उदोतहिं। पंचरात्रि मैं बुदबुद होतहिं॥
दस दिन मैं ह्वै बेर समांना। फिर ह्वै मांस पिंड परवांना॥ २ ॥
ता पाछै अंडा आकारा। होत जीवकौं तन निरधारा॥
एक मांस मैं मस्तक होयउ। दुतिय मास कर चरन उदोतउ॥ ३ ॥
बहुरि तीसरे मांसहिं मांहीं। अस्थि रोम अरु नष उपजांहीं॥
चौथे मांस धात तन पागत। पंचम मांस भूष तिस लागत॥ ४ ॥
छठै महीनै झिल्ली मांहीं। भ्रमत कछू दछिन उर ठांहीं॥
भोजन कछू करीहै माता। तासौं बढ़त जात है गाता॥ ५ ॥
गर्भ मूत्रमल कौ जु सथांना। तामैं रहत जु पर्यौ निदांना॥
यांकौ अंग महा सुकुमारा। काटत कीरा तांहिं अपारा॥ ६ ॥
तांसौं मूरछित होत जु रहै। बस कछु नांहिं अधिक दुष्ष लहै॥
कड़वौ षट्टौ उष्म अरु षारौ। माता भोजन करत जु भारौ॥ ७ ॥
जांसौं बिथा अंग अति पांवत। सौ दुष कछू न बरन्यौ आवत॥
ऊपर तैं मढि चांम जू रह्यौ। लपटयौ आंतनि अति दुष दह्यौ॥ ८ ॥
सीस क्रुछा मैं धरैं रहातहुँ। गरदन पीठ जु तूटी जातहुँ॥
अंग हलाय सकत यहि नांहीं। जइसैं पंछी पींजरै मांही॥ ९ ॥
तहँ सौ जनम रु निज करम निकी। याहि सुधि रहत सब मर्मन की॥
बउंत दुषन सुँ लैत है स्वांसा। बसत गर्भ बिच निपट सत्रांसा॥१०॥
पवन प्रसूति गर्भ मांहिं बहै। तांसौं यहि इक ठौर ना रहै॥
याहि सातवें मांस निदांना। प्रगट हौत है पूरन ग्यांना॥११॥
तब फिरि डरपि हाथ निज जोरी। प्रभु की असतुति करत निहोरी॥

॥ जीव उबाच ॥

सरनागत पालन अनुसारा। जे भगवांन धरत अवतारा॥१२॥

जिनकै चरनन केहूं सरनै। तै है चरन महा दुष हरनैं॥
म्हैं इह गर्भ बास कैं मांहीं। बंध्यौं पर्यौं हुं कछु बस नांहीं॥१३॥
वे प्रभु अंतरजांमीं रूपा। जिनकैं गुन हैं अधिक अनूपा॥
जौ सरीर मांहीं अरु न्यारौं। सुद्ध रूप सब सिरजन हारौ॥१४॥
जीव इहै माया उनकी तैं। भूलि रह्यौ निज रूप अभी तै॥
उन्हकी कृपा बिनां निज रूपं। जांनत नांहिं जो परम अनूपं॥१५॥
हम्हसै जीवनि ग्यांन प्रदाता। मेटन त्रिविधि ताप उतपाता॥
म्हैं माता कैं उदरहिं मांहीं। मल रु मूत्र कै कूपहुँ ठांहीं॥१६॥
पर्यौं आपनैं गिनत महीनां। इहां तैं निकसन चाह अधीनां॥
जिहि दयाल बिचि गर्भ सथांनू। मोहि दियौ है अैसौ ग्यांनू॥१७॥
अपनी करणी करिकैं वेहीं। प्रसंन होहुँ भगवांन अछेहीं॥
तिनकौं पलटौ दैंनूं समर्थ। म्हैं नाहिंनु कौ काहू अर्थ॥१८॥
नर तन लहि जिन क्रपा प्रकारा। पहचांनत हौं प्रभु करतारा॥
गर्भ मांहिं म्हैं अतिहिं दुष लहौं। तउ इहां तैं निकस्यौ नहिं चहौं॥१९॥
इहां तैं निकसि प्रकृति तुम्हारी। मोहित करत जु बडंत प्रकारी॥
तातैं म्हैं रहि यांहीं ठौरहुँ। करि हौं तुम्हरौ भजन सु तौरहुँ॥२०॥
जासौं हूं इहि गर्भहिं मांहीं। बहुर्यौं कबहूँ आंऊं नांहीं॥

॥ कपिल उबाच ॥

कपिल कहत जीव इहीं भांई। अस्तुति करत दस मांस बितांई॥२१॥
ता पांछै फिरि गर्भहिं मांहीं। पवन प्रसूति चलत अधिकांहीं॥
तासौं इह प्रांनी अकुलाहीं। माथौ नीचै कौं ह्वै जाहीं॥२२॥
स्वांस जु रुकी अतिकष्ट प्रकारैं। निकसत जीव गर्भ तैं बारैं॥
आंनि परत प्रांनीं भुव थांनू। जात रहत तब यांकौं ग्यांनू॥२३॥
तब यहि बालक रोवन लागत। घर कै पालन करवै लागत॥
अति असमर्थ बोलिऊँ न जानत। दुष सुष हुँ इहिं कौउ न पिछानता॥२४॥
पर्यौं असुद्ध षाट मैं जु रहै। बैठन ऊठन सक्ति हूं नहै॥
माछर षटमल काटतहिं जबै। सकत षुजाय न रोवतहिं तबैं॥२५॥
अैसैं बाल अवस्था बितवै। बहुर कुमार अवस्था संभवै॥
सौ बय बीतै षेलन मांहीं। अरु पितु मातु लाडकै चांहीं॥२६॥
तरुन अवस्था पुनि जबहोतहिं। कांम क्रोध तब करत उदोतहिं॥
बंछित मिलै नाहिं मन जु धरैं। मांनी कांमी बिग्रहूं करैं।२७॥
पंचभूत करि सिरजी देही। कर्म करत ताकै हित एही॥
अरु अहंता ममता अतिहिं बढै। जांसौ जगत बंधन मैं मढै॥२८॥
असत जनन कौं संग जब करैं। जिन संगति तैं नर्कहीं परैं॥
सौंच सत्य बुद्धि लज्जा रु मौंन। दया क्षमा धन सुजस सुठौंन॥२९॥

सम दम प्रभुता इतनीहुँ बांतं। असत जनन कैं संग सौं जांतं ॥
क्रोधी तिय कैं जे क्रीड़ा मृग। अति असाध जै चलत बुरे मग ॥३० ॥
अैंसन की संगति नाहिं करैं। सत्य ग्यांन जो निज उरहिं धरै ॥
विषयन की संगति तैं जइसौ। उपजत है अग्यांन अनैसौ ॥३१ ॥
तइसौं तिय संगतैं अग्यांन। उपजत नांहिन निहचैहिं जांन ॥
अपनी पुत्री देषी सुढारहिं। तांसौ मोहित हुव मुष च्यारहिं ॥३२ ॥
सुता भजी धरि हिरनी अंगा। बिधि मृग ह्वै दौरे तिहिं संगा ॥
बिधि कै रचै सु मनुष्य सुठौंन। तियसौं मोहित होय नहिं कौंन ॥३३ ॥
जगत बीच जो तिय कौ रूपा। सो मो माया है जु अनूपा ॥
नारी निज कटाछि अनुसारा। पुरुषहिं मोहत है निरधारा ॥३४ ॥
तातैं मिल्यौ चहै मुहि जोई। तिय कौ संग करै नहिं सोई ॥
नारी जाति नरक कौ द्वारा। तिहि संग कीजै नहिं निरधारा ॥३५ ॥
त्रिन सौं छायौ जइसौं कूपहिं। अैसौ नारी जाति सरूपहिं ॥
तियहीं ध्यांन तैं पुरुष सु यहै। नारी ही कौ जनम जू लहै ॥३६ ॥
अरु त्रिय चहै अपनौं उद्धारा। पुरुष लषै अैसौं निरधारा ॥
पुरुष रूप माया मो देषै। पति करि तांकौं कदै न लेषै ॥३७ ॥
बधिक गांन ज्यौं मृग दुषदाता। अैसै पुरुष कैं त्रिय न माता ॥
और जनम तैं जनम जु औरहिं। प्रांनी धरत याहिं जग ठौरहिं ॥३८ ॥
थूल सरीर तजत याहि जबै। सूछिम तन नाहिं छोडत तबै ॥
इक तजि दूजी देह लहत है। मरन जनम तासौ जु कहत है ॥३९ ॥
जनम मरन कौ त्रास जु तातैं। नाहिंन मांनिह काहूँ भांते ॥
समझि जीव की गति चित मांहीं। किहुँ आसक्त जु हूजै नांहीं ॥४० ॥
भक्ति जोग बैराग रु ग्यांना। इन्ह संजुक्त होय बुधिवांना ॥
अपणीं बुधि सौं ग्यांनी होई। फिरै जगत म निरधरक कोई ॥४१ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकत्रिंसोऽध्यायः ॥ ३१ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वात्रिंसोऽध्यायः ॥

(धूममार्ग और अर्चिरादि मार्ग से जाने वालों की गति का और भक्ति योग की उत्कृष्टता का वर्णन)

॥ श्री कपिल उबाच ॥

दोहा - कपिल देव जू कहत हैं, होय गृहस्थ जु कोय ॥
धर्म अर्थ अरु कांम कौ, आछे साधन होय ॥१ ॥

हीन होय हरि भक्ति सौं, पूजै पितर अजांन॥
सौ ससि लोकहिं जायकैं, फिरि गिरि परत निदांन॥ २ ॥
सेस नाग पैं हरि जबै, सैंन करत करतार॥
तबै नष्ट ह्वै जात हैं, तीन लोक निरधार॥ ३ ॥
अहंता ममता छोडि जे, करत कर्म निहकांम॥
सांत दांत ह्वै कैं रहत, मग निवर्ति सुभ ठांम॥ ४ ॥
तैं ह्वै कैं रवि लोक मैं, ब्रह्म लोक कौं जात॥
पावत हैं आनन्द अति, बउंत भांति बिष्यात॥ ५ ॥
दोय परारध है प्रगट, विधि आयुष अनुसार॥
तब लौं बै बहि लोक मैं, रहत सु पुन्य प्रकार॥ ६ ॥

चौपाई - जुत ब्रह्मांड तत्व चौबीसं। करता इहिं संहार जगदीसं ॥
अपन आयुर्बल पूरन जांनी। ब्रह्मालीन होत हरि आंनीं ॥ ७ ॥
जब बिधि लीन होत हरि मांहीं। तब वे मुक्ति लहत उहिं ठांहीं ॥
बसत सबन कैं हिर्दै मधि हरि। माता तिन्हकौं भजन जु तू करि ॥ ८ ॥
बिधि सिब सनकादिक बहु बारा। जनम धरत है बिच संसारा ॥
सौ औरन की कहा चलाई। जै जन जग मैं रहै भुलाई ॥ ९ ॥
जै नहिं भक्ति प्रभू की करै। तैं बिधि लोक हूं तैं गिरि परै ॥
जै कोउ इह संसारहि मांहीं। अति आसक्त ग्यांन हिय नांहीं ॥१० ॥
रजो गुनी इंद्रीनहिं जीती। पित्तर भजत सब आव बितीती ॥
प्रभू कथा तैं बिमुष जु प्रांनीं। भाग्यहीन हैं अति अग्यांनी ॥११ ॥
जे तजि परमेश्वर की जु कथा। बातैं औरहिं करत मति जथा ॥
तै फल तजि गुंठली कौ चाहत। ग्रांम सूर ज्यौं जनम निबाहत ॥१२ ॥
तै ह्वै कैं दछिन मगहुँ ओरा। जात जु पितर लोक जिहिं ठौरा ॥
वहि ठां पुन्य होत जब छीनू। गिरि कै पावत जनम नवीनू ॥१३ ॥
तातैं माता तू धरि प्रीती। हरि कौं भजन करहुँ सुभ रीती ॥
कीनैं हरि की भक्ति निदांना। उपजत है बैराग रु ग्यांना ॥१४ ॥
जै पदार्थ जग मैं विष्याता। तिन्हकौं चित आसक्त न माता ॥
जब इहि प्रांनी सबही ठौरा। होय समांन दृष्टि सुभ तौरा ॥१५ ॥
तब यहि आत्म सरूपहिं जांनैं। ब्रह्म ग्यांन कौं तत्व पिछानैं ॥
ब्रह्म ग्यांन अरु जोग सुजांनिं। इन्हकौं एक ही रूप पिछांनिं ॥१६ ॥
जोगहुं कौ फल पूर्न यांही। जगत बीच मन लावै नांहीं ॥
यहि सब जगत रूप भगवांनू। दीसत और सरूप अग्यांनू ॥१७ ॥
प्रकृति पुरुष कौ तत्वहिं प्रकारा। जांन्यौं जात ग्यांन अनुसारा ॥
संग रहित अरु जोगाभ्यासा। ब्रह्म लषै निति भक्ति प्रकासा ॥१८ ॥

म्हैं कह्यौ मातु ग्यांन सु जांनै। माया पुरुष तत्वहिं पहिचांनैं॥
ग्यांन भक्ति सौं ईस्वर लहियै। मारग दोय एक फल कहियै॥१९॥
जइसैं बस्तु एक है कोई। नैत्र रूप पहिचांनैं सोई॥
जीभ जु वांकै स्वादहिं जांनैं। त्वचा वोहुँ ताकौं पहिचांनैं॥२०॥
पावै श्रवन जु ताकौ नांमा। पावत गंध नासिका ठांमा॥
है वही बस्तु जू निश्चै एकहिं। भेद समझवौ भाय अनेकहिं॥२१॥
तइसैं एकहिं है भगवांना। पूरन ब्रह्म करता निदांना॥
सास्त्र अनेकन कैं अनुसारा। जांनै परत अनेक प्रकारा॥२२॥
जिग्य दांन तप संजम साधन। इंद्री जीतन कर्मनि त्यागन॥
भक्तिजोग अरु धर्म प्रकारा। आत्म ग्यांन बैराग सुढारा॥२३॥
इन्ह उपाय सौं सगुन जु निर्गुन। हरि पइयत है बात मात सुन॥
भक्ति जोग जो च्यारि प्रकारा। काल सरूप भलै प्रकारा॥२४॥
सौ तौहि हम्ह पहलैं ही कह्यौ। तुम्हहिं आछी भांतिनि सुनि लह्यौ॥
अरु कर्मन सौं जीवन की गति। होत सोउ हम्ह कही यथामति॥२५॥
जो कोऊ है पाषंडी दुष्ट। पुनि मो भक्ति न होयहिं सपुष्ट॥
मो भक्तन सौं बैर बिचारै। ह्वै आसक्त बीच संसारै॥२६॥
ताकौं यहि सुभ ग्यांन बिसेसा। क्यौंहुँ करनौं नहिं उपदेसा॥
सर्द्धा दया होयी उर जांकैं। म्हेरी भक्ति होय पुनि तांकै।२७॥
है बैराग जगत सौं जांहीं। कहियैं इहै ग्यांन सुभ तांहीं॥
कहै सुनैं इह ग्यांन जु कोई। ताकौं म्हेरी प्रापति होई॥२८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वात्रिंसोऽध्यायः ।। ३२॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयः त्रिंसोऽध्यायः ॥

(देवहुति को तत्वज्ञान एवं मोक्ष पद की प्राप्ति)

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - कहत जु रिषि मैत्रेय जू, कपिल बचन इह भाय॥
सुनि असतुति लागी करन, देवहूति सुष पाय॥ १ ॥

॥ देवहूति उबाच॥

छप्पय - तुम्ह नारायन रूप, करत हौ सैंन बीच जल॥
बिधि हूँ उतपन होय, तिहारौ ध्यांन करत भल॥
उतपति पालन प्रलय, बिस्व तुम्हहीं जु करत हौ॥
प्रलय समैं सब जगत, उदर निज मांहिं धरत हौ॥

है बालरूप बट पत्र पैं, आप बिराजत जगतपति॥
सोइ प्रगट भय म्हेरे उदर, यहि अचरज मय बात अति॥ २ ॥
प्रगट भयै अवतार, और तुम्ह जइसी भांतन॥
त्यौंहीं यहि अवतार, भयै हौ ग्यांन प्रकासन॥
करै तुम्हारौ नांम, कीरतन सुमरन आछैं॥
तुम्ह चरनन कौं करहिं, नमसकार हितू साछैं॥
तौ पवित्र चांडालहुँ होय, इहै जग मांहीं सोई॥
श्रेष्ठ कहा व सबनि मैं महा, मुक्ति सुषहुँ लहै जोई॥ ३ ॥

चौपाई - नाम तिहारौ लेय जु कोई। तिहँ तप तीरथ समफल होई॥
तुम्ह परब्रह्म जगत के नाथहिं। तुम्हहिं नवावत हौं म्हैं माथहिं ॥ ४ ॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

सुनि माता के अैसें बैंना। कपिल देव बोले सुष अैंना॥

॥ कपिल उबाच॥

यहि मग सर्द्धा राषऊ माता। यांसौं लहियैं मुक्ति बिष्याता॥ ५ ॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

कपिल देव अैसौं कहि ग्यांनू। भये पधारत और सथांनू॥
देवहूति चित्त ग्यांनहिं मांहीं। राषि बसत भइ वाही ठांहीं॥ ६ ॥
बलकल पहिरैं जटाधरैं सिर। तपस्यां कियैं आसन धरी थिर॥
कर्दम जू नैं पहली बारा। रच्यौ हुतौ जु बिमांन सुढारा॥ ७ ॥
दूध फैन सी सैय्या कोमल। दांत सुवर्ण रची सौ निर्मल॥
आसन कंचन बिछी बिछाती। भीति नील फाटिक मणि भांती॥ ८ ॥
स्त्री मुर्त रत्न दीपक सोभित जहँ। आंगन बाग कुसुम जुतहीं तहँ॥
पंछी भ्रमर सब्द मिलि करहीं। वापी कमल गंध बिस्तर हीं॥ ९ ॥
कर्दम करि जहँ देह लषायौ। ताकौ जस गंधर्वनि गायौ॥
जांमैं बउत भांत सुषहिं हुतै। राग भोग आनंदहिं संजुतै॥१०॥
और ठौर सुष नांहिन जैसौ। देवहूति भुक्तत भई तैसौ॥
तजि अैसौ गृह आश्रम कौ सुष। कीनौं ग्यांनहीं वारौ रुष॥११॥
अै परि बिछुरै कपिल देव सौं। व्याकुल भई वियोग भेव सौं॥
जइसैं बिछुरैं गाय बछातैं। व्याकुल होत दैबहुति भांतैं॥१२॥
कपिल देव जू ही कौं ध्यांनू। करत भई अपनैं हिय थांनू॥
कपिल देव हरि ध्यांन बतायौ। देवहुति सोइ हिय सरसायौ॥१३॥
उपज्यौ भक्ति ग्यांन बैरागा। ब्रह्म रूप जांन्यौं बड़भागा॥
ब्रह्म मांहिं निज बुद्धि लगाई। जीव भांवना सबै मिटाई॥१४॥
मिटि कलेसउ निति लगी समांधि। भई दूरि भ्रम भेद उपांधि॥
मलिन देह कछु सुधि नहिं धरहीं। और कोउ तन रछया करहीं॥१५॥

वस्त्र अंग की षबर जु नांहीं। लगत भयौ मन हरिपद ठांहीं॥
फिरि थोरेही दिवसन मांहीं। हरि मैं मिलत भई चित चांहीं॥१६॥
रही देवहूति सु जिहं ठांमा। भयो छेत्र सौ सिधपद नांमा॥
देवहूति की देह अनूपा। होय गयी सौं नदी सरूपा॥१७॥
कपिल देव उत्तर दिसी वोरैं। भये पधारत औरहिं ठौरैं॥
सिद्ध चारन गंधर्व जोरि कर। करत भयै असतुति बहि अवसर॥१८॥
अरु समुद्र तैं पूजा कीनी। बसबै काज ठौर पुनि कीनी॥
वे जु विराजमांन अब तांई। करनहुँ पवित्र इहै भुव ठांहीं॥१९॥
देवहूति अरु कपिल संवादू। तुम्हहिं कह्यौ हम्ह धरि अहलादू॥ -
कहै सुनैं यहि कथा जु कोई। सौ भगवांनहिं प्रापति होई॥२०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे तृतीय स्कंधे भाषा ब्रजदासी कृते
त्रय: त्रिंसोऽध्याय: ॥ ३३ ॥ इति तृतीय स्कंध संपूर्णम् ॥
पोथी को सं. १८३४ वि. ॥ श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ॥)
कुल छंद - १३१५ - छंद योगक्रम ३१००)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्रीराजराजेश्वर राजा श्रीराजसिंघ जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावत ''श्री ब्रजदासी'' कृत श्रीमद्भागवत भाषा चतुर्थ स्कन्ध लिष्यते ॥)

॥ चतुर्थ स्कंध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन)

(मंगलाचरण)

छप्पय - नमो नमो गुरदेव, परम हरि भक्त अनूपं ॥
नमो राधिका रवन, सदा आनंद सरूपं ॥
नमो नमो मम इष्ट, क्रिपा पूर्न सुष रासीय ॥
नमो नमो भागवत, भक्त हरि चरन उपासीय ॥
तिन्हकौं प्रनांम बहु बार करि, ब्रजदासी अति हर्षहीय ॥
चतुरथ स्कंध अबै कहन कौं, धरि उमाह आरंभ कीय ॥ १ ॥

॥ अथारव्यान ॥

चौपाई - बीच चतुर्थ स्कंधहिं जांनू। लीला भेद बिसर्ग बषांनू॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय सुभाई। बिदुरहिं आछी भांति सुनाई॥ २ ॥
स्वायंभुवहुँ कै कन्या तींन। सतिरूपा तैं भई जु नवींन॥
देवहूति आकूति प्रसूती। यै कन्या भई तिहुँ अदभूती॥ ३ ॥
रुचि रिषि कौं आकूति बिवांहीं। रिषि सौं किय करार न्रप चांहीं॥
याकै पुत्र प्रथमहिं जौ होई। रिषि तुम्ह हम्हकौं दीजौ सोई॥ ४ ॥
रुचि आकूति गेह सुषहुँ छए। इकहि कन्या इकहि सुत पुनि भए॥
जिग्य नांम सुत प्रभु अवतारा। सुता दछिना रु रमा सुढारा॥ ५ ॥
स्वायंभुव मनु अपनैं गेहा। सुतहिं लै गयै धरि चित नेहा॥
सुता दछिनां अतिहि अभिरांमा। रही सु रुचि रिषिहिं कैउं धांमा॥ ६ ॥
दिय सुदछिना जिग्यहिं जु ब्याही। करिकैं रुचि रिषि बउंत उछाही॥
भाई बहनि दोऊ यै रहै। पैं अवतार रमा हरि जु लहै॥ ७ ॥
तातैं दोष कछू पुनि नांहीं। भ्रम समझौ मति कछु मन मांही॥
बारह पुत्र जिग्य कैहूँ भयै। गर्भ दछिना कैं तैंजू ठयै॥ ८ ॥
सांति भद्र कवि तोष प्रतोषहि। इध्म इडस्पति विभु संतोषहिं॥
स्वह्न सुदैव पुनि रोचन नांमा। ए बारह सुत हुब अभिरांमा॥ ९ ॥
तुषित नांमू कै अमर जु भये। आदि मरीच सपत रिषीठये॥
जिग्य इंद्र हुव समैं जु ताही। प्रभु ईछा अपनी अवगाही॥१०॥

मनु जु कैं द्वै सुत हुव बुधिवांन। प्रियव्रत अबरहुँ पादउत्तांन॥
अरु प्रसूति कन्या मनु चांहीं। दछि प्रजापति कौं दीय ब्यांहीं॥११॥
ताकैं बउंत भांति की स्त्रिष्टी। प्रगट भई जगमांहिं प्रविष्टी॥
देवहूति जो मनु की बेटी। रुप गुनन जुत लाज लपेटी॥१२॥
सौ कर्दम कौं ब्याही जु रही। तांकी कथा पहल ही सुकही॥
देवहूति की सुता हुँती नव। तौ नवू रिषिन बरी करि उछव॥१३॥
जिनकैं प्रगट भयै संतांनहिं। सौ सुनियैं अबै करुँ बषांनहिं॥
रिषि मरीच कौं कला बिवांहीं। भयै पुत्र द्वै गर्भ सुतांहीं॥१४॥
कस्यप औंर पूर्निमा नांमा। यै दुहुँ सुत प्रगटै अभिरांमा॥
पुत्र पूर्निमां कै द्वै जु भये। कुल्या नांम रु कनियांहुँ ठये॥१५॥
विश्वग बिरज नांमउ अनुसारा। कुल्या रही गंग अवतारा॥
अनसूया ब्याही जु अत्रि मुनी। प्रगटे तीन पुत्र ताकै सुनी॥१६॥
हरिहर बिधि अवतार प्रकासा। दत्तात्रेय अरु ससि दुर्वासा॥

॥ बिदुर उबाच॥

बोलै बिदुर देवता तीनौं। क्यौं अवतार अत्रिग्रह लीनौं॥१७॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - सुनौ बिदुर रिषि अत्रि ह्वै, बिधि आग्या आधीन॥
मध्य कुलाचल बैठि कैं, तिय जुत तपस्या कीन॥१८॥
तहँ बृछि फल फूलहिं बहु, नदी निर्बिन्ध्या नांम॥
इक पग ठाढै सतबरष, तहँ करि प्राणायांम॥१९॥
पांन करत इक पवन ही, जल भोजन की ठौर॥
अैसैं कीनौं उग्र तप, तिय पति सब सिरमौर॥२०॥
हम्ह हैं हरि कैं सरन यौं, कहत प्रीति चित छाय॥
हरि अपनैं समपुत्र मुहि, देहुँ परम सुषदाय॥२१॥
जोग सक्ति सौं प्रगटयौ, अग्नि सीस रिषि मांहिं॥
तब आयै तिहुँ देवता, रिषि कै आश्रम ठांहिं॥२२॥
बैल गरुड़ अरु हंस पैं, जुदे जुदै असवार॥
मुनि अपसर गंधर्व बहौ, लीनै संगहिं अपार॥२३॥
उन्हकैं दरसन सौं रिषिहिं, हुव आनंद अपार॥
नमसकार रिषि अत्रि कियै, तिहु सुरनिहिं तिहुँ बार॥२४॥
उन्हकी ज्योति प्रकास तैं, मुदि गय रिषि कैं नैंन॥
करत भयै असतुति भलैं, रिषि कर जोरि सुषैंन॥२५॥

॥ अत्रि रुबाच॥

हे सिव ब्रह्मा बिस्नु हूँ, तुम्ह कौं करत प्रनांम॥
तुम्ह मूरति आनंद की, दैंन मुक्ति अभिरांम॥२६॥

माया कै तिहुँ गुननि तैं, यहै सकल संसार॥
उतपति पालन प्रलय तुम्ह, करत जु भलै प्रकार। २ ७ ॥
म्हैं तौ एकहि बिस्नु कौ, करत रह्यौ चित्त ध्यांन॥
तुम्ह तीनौं कइसैं प्रगट, भयै सु करहुँ बंषांन॥ २ ८ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनियै रिषि कै बैंन॥
बहुर्यौ तीनौं देवतां, बोलै बचन सचैंन॥ २ ९ ॥

॥ देवाऊचुः ॥

हम्ह तीनौं इक रुप हैं, अंतर हैं कछु नाहिं॥
तीन पुत्र हम्ह अंस तैं, ह्वै हैं तुम्ह गृह ठांहिं॥ ३ ० ॥
करि अनुग्रह रिषि अत्रि पैं, वरदै इहि उनमांन॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस तिहुँ, ह्वै गयै अंतरध्यांन॥ ३ १ ॥
ससि प्रगट्यौ बिधि अंस तैं, दुर्वासा सिव अंस॥
दत्तात्रेय उपजत भयै, बिस्नु अंस सप्रसंस॥ ३ २ ॥
श्रद्धा अंगिरा कौं दई, तांकै कन्याच्यार॥
पुत्र दोय प्रगटत भए, विद्यावंत उदार॥ ३ ३ ॥
सिनीवाली राका कुहू, अनुमति पुत्री च्यार॥
उतथ्य बृहस्पति ए भए, द्वै सुत परम सुढार॥ ३ ४ ॥
दीनी हुती पुलस्त्य कौं, सुता हविर्भू नांम॥
रिषि अगस्त्य अरु विश्रवा, ताकै सुत अभिरांम॥ ३ ५ ॥
पुत्र विश्रवा कै भयै, जे विष्यात संसार॥
रावण कुंभ विभीषण रु, सुत कुबेर सुषसार॥ ३ ६ ॥
गति ब्याही ही पुलह कौं, ताकै सुत भय तीन॥
कर्मश्रेष्ठ वरीयांस अरु, भयो सहिष्णु प्रवीन॥ ३ ७ ॥
क्रतु रिषि कौ ब्याही हुती, क्रिया नांम अनुसार॥
बालषिल्या रिषि प्रगट हुव, ताकैं साठि हजार॥ ३ ८ ॥
उर्जा बरी बसिष्टहुं रिषि, ताकै सुत हुव सात॥
चित्रकेतु तिनमैं बडौ, पुत्र भयौ विष्यात॥ ३ ९ ॥
चित्रकेतू सुरोचि अरु, बिरज अमित्र द्युमांन॥
उल्वण वसु भृद्यान जुत, भयै सातबहु जांन॥ ४ ० ॥
चित्ति अर्थवा कौं दई, हुती बिबाहि सुभाय॥
सुत दधीच ताकैं भयौ, बड़दांनिउ सुकहाय॥ ४ १ ॥
भृगुहिं बिबाहि ष्याति हुं व, ताकैं त्रय संतांन॥
सुत द्वै धात विधात अरु, लछमी सुता प्रमांन॥ ४ २ ॥

आयति नियति सुमेरु की, बेटी दोय सुढार॥
ब्याही धात बिधात कौ, दोऊ भलै प्रकार॥४३॥
दोय पुत्र तिनीं दुहुँनि कैं, भयै मृकंड अरु प्रांन॥
अब जिनकैं संतान कौं, सुनियै जु करूँ बषांन॥४४॥
मारकंडेय मृकंड कै, भयेउ पुत्र बिष्यात॥
अरु सुनियै भये प्रांन कैं, बेदसिरा सुभगात॥४५॥
भृगु कैं तिया जु दूसरी, ताकौं उसना नांव॥
पुत्र सुक्र प्रगट भयौ, जाकै गर्भहिं ठांव॥४६॥
कर्दम की कन्यान कैं, बरनैं बहु संतांन॥
बहु प्रकार के पाप सब, सुनतहिं करैं प्रयांन॥४७॥
स्वायंभुव मनु नृपत की, सुता प्रसूति सुनांम॥
ब्याही जु दछि प्रजापतिहिं, गुन जुत सुंदर भांम॥४८॥
सोरह कन्या प्रगट हुव, ताकैं अति अभिरांम॥
अब तिनकैं संतांन जुत, बरनि सुनांऊं नांम॥४९॥
तेरह कन्या धर्म कौं, दई बिबाहि उमांहिं॥
इक पितरनि इक अग्नि कौं, येक सिवहिं दी ब्यांहिं॥५०॥
श्रद्धा दया मैत्री क्रिया, बुधि मेधा ह्री तुष्टि॥
सांति तितिक्षा मूर्त्ति पुनि, उन्नति अवर जु पुष्टि॥५१॥
ए तेरह कन्या दई, हुती धर्म कौं ब्यांहिं॥
जिनकैं अब संतांन हूँ, कहत भलैं अवगांहिं॥५२॥

चौपाई – पुत्र श्रद्धा कैउ सुभ प्रगटयौ। सुतहिं प्रसाद मैत्री कै भयौ॥
उपज्यौ पुत्रहिं जु अभय दया कै। षेम पुत्र प्रगट्यौ तिर्तिछा कैं॥ ५३॥
सुष सुत सांति गर्भ प्रगटायौ। जोग किर्‌या नैं सुत उपजायौ॥
उपजत सौमुद पुत्र तुष्टि कै। स्मय पुत्र भौ प्रगट पुष्टि कै॥ ५४॥
उन्नति कै सुत दर्प जु प्रगट्यौ। मेधा गर्भ समृति सुत प्रगट्यौ॥
अर्थ पुत्र बुधि गर्भहिं सुं ठयौ। प्रश्रय सुत जु ह्री कौ उपजयौ॥ ५५॥
मूर्ति गर्भ हुव प्रगट सुढारहिं। नर नारायन प्रभु अवतारहिं॥
जिनकौं जनम सुभ समैं होतू। सबहिंन हुवै आनंद उदोतू॥ ५६॥
बजवत भये नगारै सुत गन। असतुति करन लगै सब मुनि जन॥
करत भयै गंधर्व सुगांनहिं। नचत भई अपसरा सु जांनहिं॥ ५७॥
ब्रह्मादिक जू देवता जितै। करत भयै असतुति मिलि तितै॥
जै माया प्रभु करि संसारा। प्रगट करत हैं सक्ति अपारा॥ ५८॥
तांकौ अबै पालवै कारन। प्रगट भयै हैं नर नारायन॥
नमसकार इन्हकौं हम्हहिंकरैं। क्रपा करहुँ ए हम्हहिं ऊपरै॥ ५९॥
बउंत दया करि हम्ह दिस देषौ। जग रछा हित स्रजै हम्ह पेषौ॥

ऐसी बिधि असतुति सुषदायी। देवतांन कीनी बहु भायी॥ ६०॥
तेई अर्जुन श्रीकृष्ण स्वरूपा। नरनारायण प्रगट अनूपा॥
सुता दछि कैं स्वाहा नांमा। ब्याहीं हुती अग्नि कैं धांमा॥ ६१॥
पुत्र तीन जिहिं गर्भ सथांनहिं। प्रगटै पावक सुचि पवमांनहिं॥
तिनकै पैंतालीस अग्नि हुव। कहियै जै बिष्यात बीचि भुव॥ ६२॥
यौं उनचास अग्नि जानौं सब। आवत कांमि जु जिग्यहौय तब॥
सुता दछि की स्वधा सुनांमा। ब्याहि दई पितरनि कौं भांमा॥ ६३॥
जांकै गर्भ सुता द्वैजु भई। नांम धारिणी वयुना ठई॥
सती दछि कीहिं बेटी चांहीं। दई हुती सौ सिवहिं बिबांहीं॥ ६४॥
ताकैं कछुन न भई संतांनहिं। यहि सब जांनत बात प्रमांनहिं॥
सिव की निंदा दछि जू कीनी। तब निज देह सतीतज दीनी॥ ६५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(भगवान सिव और दक्षप्रजापति का मनोमालिन्य)

॥ बिदुर उबाच ॥

दोहा - बिदुर कहत सिव रु दछि बिच, बैर भयो किहिं भाय॥
सौ हम्हकौं मैत्रेय रिषि, भेद कहौं समझाय॥ १ ॥
सिव जग कै गुर जास जग, सत्रु मित्र कोऊ नाहिं॥
बैर भयौ किहिं काज कौ, ससुर जबांई मांहिं॥ २ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जिग्य, विस्वश्रटांन कै मांहिं॥
रिषिगण अरु सब देवता, हुव इकठै इक ठांहिं॥ ३ ॥
दछि प्रजापति तिहिं समैं, आयैं भांन समांन॥
तबै देवतां रिषि सबै, उठि किय आदर मांन॥ ४ ॥
ब्रह्मा अरु सिव यै दुहुँ उठि, ठाढे भये जु नांहिं॥
बिधि कौं दछिहिं प्रनांम करि, बैठ्यौ लषि निज ठांहिं॥ ५ ॥
सिव कौं बैठे देषि कैं, बोलै दछि रिसाय॥
बचन कहै अति अनउचित, अधिक क्रोध उफनाय॥ ६ ॥
हे रिषि तुम्ह सब सुनत हौ, समझवार बिष्यात॥
म्है साधून की रीति सौं, सत्य कहत हौं बात॥ ७ ॥

लोकपाल इंद्रादि मैं, मेटत जस अवदात॥
साधुन की सुभ रीति कछु, इनमैं नहिं दरसात॥ ८ ॥
इन्ह ब्याही म्हैरी सुता, यै मो सिष्य समांन॥
विप्र अग्नि देषतहिं जिसी, सावित्री जुं गनुवांन॥ ९ ॥
मर्क्कट सै यांकै नयन, मृग सै वांकै जांन॥
उठि कीनौं न प्रनांम मो, इन्ह उर धरि अभिमांन॥१०॥
क्रिया हीन अपवित्र यै, रहत सुमारग भेद॥
इन्हहिं सुता म्हैं यौं दई, ज्यौं सूद्रहिंकर वेद॥११॥
नगन रहत है यै लियै, संग प्रेत बुधि नीच॥
हँसत कबहुँ रोवत कबहुँ, फिरत मसानन बीच॥१२॥
अस्थिन की माला गरै, चित्ता भस्म तन लाय॥
मत्त रहत है ए सदा, रुप अमंगल भाय॥१३॥
ऐसे अपवित्रहिं दई, म्हैं निज सुता सुढार॥
म्हैं कीनी संग बिधि यहै, बिधि आग्या अनुसार॥१४॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

ऐसे कहिकैं दछि फिरी, देत भए यहि श्राप॥
भाग जिग्य कौ आजितैं, लहिहैं न सिव सदाय॥१५॥
दछि प्रजापति श्राप दै, सिव कौं ऐसे भाय॥
उहाँ तैं अपनैं गृह कौं, उठि गवनै अनषाय॥१६॥
सबै बिप्रनि कौं रु दछि कौं, नंदी बैल रिसाय॥
देत भयौ तांहीं समै, श्राप महादुष पाय॥१७॥
द्वेष करत सिव कौं अधिक, दछि क्रोध उर आंनिं॥
बेद तत्व तैं होउँ यहि, निति ही बिमुष निदांनिं॥१८॥
कर्म मार्ग ही मैं इहै, लगै परहौं निर्धार॥
करि जांनौं अग्यांन कौं, इह निति ग्यांन प्रकार॥१९॥
साची बुधि जू देह मैं, यांतैं आपौ भूलि॥
पसु तुल्य चाहौं जो स्त्री, हौ मुष अज सौं सूलि॥२०॥
जे बैरी है सिंभु कैं, तैं अग्यांन संजुक्त॥
परै रहौं संसार मैं, होउँ कबहुँ मति मुक्त॥२१॥
बेद पढौ तपस्या करौ, पूर्न जीव काहौंन॥
सब कछु षाहि रु भीष पुनि, मांगौ भौंनहिं भौंन॥२२॥
ऐसै ब्राह्मण आजतैं, ह्वै हैं न बिच संसार॥
नंदी बैल जु दैत भौ, श्राप इहै परकार॥२३॥
ऐ नंदी कैं बचन सुनि, भृगु रिषि अधिक रिसाय॥
दैत भयो फिरि श्राप सौ, अब हौं कहत सुनाय॥२४॥

होव अनाचारी महा, सिव कैं भक्त जितैक॥
मग पाषंडहिं मांहिं जिनि, चित्त रहौ बिनु विवैक॥२५॥
भस्म हाड अरु जटा तुम्ह, राषहुँ करि मदपांन॥
होहुँ विमुष हरि भक्ति सौं, जिन उपजौ सुभ ग्यांन॥२६॥
पालक बेद सुपंथ कै, है द्विज भलै प्रकार॥
तिनकी तुम्ह निन्दा करत, अहै अजोग्य बिचार।२७॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, अैसौं सुनिकैं श्राप॥
महादेव उहिं ठौर तैं, उठि गवने गृह आय॥२८॥
जिग्य समापत करि भलैं, सब रिषिगन तिहिं ठांम॥
करि जिग्यांत सनांन सुर, रिषि गवने निज धांम॥२९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(सती का पिता के यहाँ यज्ञोत्सव में जाने के लिए आग्रह करना)

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय यौं, ससुर जवांई मांहिं॥
बैर करत बीतै दिवस, बउंत मिट्यौ सौ नांहिं॥ १ ॥
ब्रह्मा परजापतिनि कौं, कियै दछहिं सिरदार॥
बधत भयौ तबै दछि उर, अधिक गर्व अंधियार॥ २ ॥
दछि प्रजापति जिग्य कियै, बाजपेय जिहँ नांम॥
फिरि ब्रसपति सब जिग्य कौं, किय आरंभ सुठांम॥ ३ ॥
तामैं सुर रिषि ब्रह्म रिषि, आयै तियनि समेत॥
भयै एकठै जिग्य मधि, लैंन भाग निज हेत॥ ४ ॥
सती सुनत भइ जिग्य है, अपनै तात सथांन॥
सबै देवता जात हैं, तिय जुत चढै बिमांन॥ ५ ॥
कहत भई सिव सौं सती, तब है जुक्त सनेह॥

॥ सत्युबाच॥

आग्यां दीजै जाउं म्हैं, जिग्य ससुर तुम्ह गेह॥ ६ ॥
व्हां अैहै मो बहन सब, जुत निज निज भरतार॥
मो मिलाप तिन्ह सौं तांह, ह्वै हैं भलै प्रकार॥ ७ ॥

पिता पास तैं ल्याय हूँ, भूषन वस्त्र अपार॥
मिलि हौं अपनी मातु सौं, लषि हौं जिग्य सुढार॥ ८ ॥
दैषन जिग्य उछाह मौ, म्हैं तौ हूं तिय जाति॥
चढि बिमांन सुर अपसरा, जिगि मधि जात लषाति॥ ९ ॥
उच्छव सुनि पितु गेह मम, होत सुता कौ जांन॥
बिन बोलै हूं जाइयैं, पति अरु पिता सथांन॥१०॥
मौं वंछित पूरन करौं, दयावंत हौ देव॥
अरु अपनौं अरधांग तुम्ह, मुहि दै चुकै अभेव॥११॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

बचन सती कैं सिंभु सुनि, बोलै बचन सुढार॥
महा दुर्वचनहिं दछि कै, आयै सुधि तिहिं बार॥१२॥

॥ श्री रुद्र उबाच॥

सत्य कहत है तू सती, हूँ समझत मनमांहिं॥
बिन बोलै हूँ जाइयैं, निज बंधुनि गृह ठांहिं॥१३॥
बिद्या तप धन तरुन वपु, अवर बडौ कुल पाय॥
दुष्ट जनन कैं बढत हैं, अधिक गर्व उर आय॥१४॥
तांतै वै जन बड़नकौं, नहिं मांनत करि मांन॥
तिनकै घर नहिं जाइयैं, जांह आदर न निदांन॥१५॥
तीर लगै तैं देह मैं, अैसौं दरद न हौत॥
दुष्ट बचन तैं हौंत हैं, जइसौ दरद उदौत॥१६॥
दछि प्रजापति की सुता, तूं प्यारी निरधार॥
पैं मोसौं राषत बहै, दछि जू बैर अपार॥१७॥
अरु ब्याही है मौहि तू, समझि देषि मनमांहिं॥
तांतैं तांह आदर कछु, तेरौं ह्वै हैं नांहिं॥१८॥
जब समांनता बडेन की, दुष्ट सकै करि नांहिं॥
तब उनकी निंदा करैं, दोष भाव अवगांहिं॥१९॥
साधु परसपर करत हैं, अति आदर चित चांहिं॥
साधु साधु कौं करत है, प्रणति जु आपस मांहिं॥२०॥
अरु जेहै कोऊ साधु, जन बीचि इह संसार॥
तै प्रनांम नहिं करत हैं, मूढन कौं निरधार॥२१॥
प्रभू बिराजत सबनि मैं, हरि बिनु है कौं नांहिं॥
आत्म रूप करता पुरस, छाय रह्यौ जग मांहिं॥२२॥
तांतैं काहूकौं करत, नमसकार जो कौय॥
सौं हरि ही कौं करत हैं, इह निश्चै चित्त जौय॥२३॥

अर्थ यहै या बात कौ, दुष्ट पिता तुव जांनिं॥
म्हैरौ आदर उन कछू, कीनौं नांहिं निदांनि॥२४॥
तातैं दर्सन नमति करै, तू निज पितु कौ जाय॥
मौ सूं राषत बैर बह, चित मैं क्रोध बढाय॥२५॥
अरु जो म्हेरो बचन तू, सती मांनि है नांहिं॥
तौ तेरौ कछु भलौ हूं, ह्वै हैं नहिं बहिं ठांहिं॥२६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

(सति का अग्नि प्रवेश)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा- बोलै रिषि मैत्रेय जू, महादेव इह भाय॥
दैहिं उत्तर चुप ह्वै रहै, हरि सौं ध्यांन लगाय॥ १ ॥
सती चित द्विविधा बिचैं, पर्यौ सु तिहिं ही बार॥
जाऊँ पिता कैं गेह हूं, असौ करत बिचार॥ २ ॥
पैं सिव कौ डर मांनि कैं, जाय सकत हूँ नाहिं॥
दुषित होय सिव कौं लषत, क्रौध धारि चित मांहिं॥ ३ ॥
जिन्ह सिव दीय अर्धांग निज, तिनकौं तजि उहिं ठांम॥
तिय निज जाति सुभाव तैं, चली पिता कैं धांम॥ ४ ॥
नंदी बैलहिं आदर दै, सिव कै गन जु अनैंक॥
इन्हकैं संग ह्वै कै चलै, सती निबाही टैक॥ ५ ॥
छत्र चंवर संजुत सती, ह्वै नंदी पर सुवार॥
चली पिता कै गेह कौं, संग गण सेन अपार॥ ६ ॥
तांह करत है बेद धुनि, विप्र अनैंक सुभाय॥
अैसै जिग्य की ठौर मधि, सती जु पहुँची जाय॥ ७ ॥
इनकौं आदर दछिहूँ रु, औरनहूँ किय नांहिं॥
इक माता अरु बहन सब, मिली ऊठि उहिं ठांहिं॥ ८ ॥
माता अरु मासीन मिलि, सब पूछी कुसलात॥
और किहूँ इन्ह सौं कछू, नांहिंन कीनी बात॥ ९ ॥
भाग रुद्रहिं कौ जिग्य मैं, लष्यौ सती जबि नांहिं॥
पितु निंदा लागी करन, तबि रिसकरि मन मांहिं॥१०॥

॥ श्री देव्युबाच ॥

सती कहत ये हौ पिता, सिव सम है कौं नांहिं॥
सत्रु मित्र जिनकैं न है यहिं, संसारहिं कैं मांहिं॥११॥
कौंनु बैर उन्हसौं करै, तौ मूरष बिनु और॥
म्है पछिताई आइकैं, इहैं जिग्य की ठौर॥१२॥
दोषनहूँ के मांहिं तैं, गुनहीं लैत सम्हारि॥
इहैं बड़न की रीति है, देषहुँ सोचि बिचारि॥१३॥
अरु काढ़त है दोषहीं, बउंत गुनन कै मांहिं॥
इहै दुष्टन की रीति है, समझहुँ निज मन ठांहिं॥१४॥
जें अग्यांनी जीवहिं या, संसारहिं कै मांहिं॥
तैहिं निंदा बड जनन की, करै सु अचिरज नांहिं॥१५॥
द्वै अछिर जिहँ नांम कैं, पढ़ै पाप मिट जात॥
जा सिव कौ तूं द्वेष मति, करत अहो मो तात॥१६॥
निज पद सेवत मुक्ति कौं, जोगेस्वर चित लाय॥
सकल कामनादेत सिव, तिनसौं तूं अनषाय॥१७॥
ब्रह्मादिक जिन चरन की, रज राषत निज सीस॥
तिनसौं राषत बैर तू, मूरष बिस्वाबीस॥१८॥
निंदाहोय बडैन की, जो कहूँ काहूं तौर॥
कांन मूंदि उठि जाइयै, रहियै नहिं उहिं ठौर॥१९॥
जो अपनौं बस होय तौ, हतियैं निंदावांन॥
अरु जो वाहिंन मारियै, तौ तजियै निज प्रांन॥२०॥
तातैं तूं सिव सौं पिता, धरत बैर मन मांहिं॥
तौतैं भयो सरीर यहि, सौ म्हैं राषहुँ नांहिं॥२१॥
सिव ईस्वर जै नाहिंनै, बेद पंथ कै मांहिं॥
बेद बचन रु संसार कै, जीवनि पैं सरसांहिं॥२२॥
दोय तरंह कैं कर्म दिय, बेदनि मांहिं जु बताय॥
जे संसारी जीव ही, करत जु सबै सुभाय॥२३॥
सिव ईस्वर तातैं नहिंन, कर्मनि मैं जु आसक्त॥
कर्मन मैं आसक्त नहिं, जो सिवहीं अनुरक्त॥२४॥
कर्मनहिं मैं आसक्त हैं, तुम्ह से जीव अग्यांनि॥
तैं जांनत है नांहिंनै, सिवकौं रूप निदांनि॥२५॥

जो बिभूति हम्हरै सदा, कदै न तुम्हरै होय॥
जिग्य मांझ जे भागलै, जस गावत है सोय॥२६॥
सिव बिभूति गावत सुहृद, ब्रह्मवेता चित लाय॥
गर्वित ह्वै मति सिवन्निधन, हम्ह धनवांन कहाय॥२७॥
हे पितु तौ सौ दुष्ट तैं, उपजी मो यहि देह॥
तातैं लगत सकुचित मुहिं, यहि तजि हौं बिन नेह॥२८॥
मोहि बुलावै सिव जबै, दछिहिं सुता कहि नांम॥
तातैं उपजत लाज मुहि, तजि हौं तन तुव धांम॥२९॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

ऐसैं कहि उत्तर दिसा, वोर सती मुष राषि॥
बैठी लैंके आचमन, तन त्यागन अभिलाषि॥३०॥
प्रांन षैंचि कै जोग सौं, ऊँचै वोर चढ़ाय॥
जोग अगनि निज देह तैं, तिहँ बेरां प्रगटाय॥३१॥
अपनैं हिय मैं धरि सती, सिव कौं ध्यांन सुभाय॥
जोग अगनि सौं भस्म तन, करत भई अकुलाय॥३२॥
जे कौं व्हां बैठे तिननि, हाहाकार जु कीन॥
कह्यौ अनर्थ भयौ बडौ, सती देह तजि दीन॥३३॥
दछि मूरष जिन सती कौं, आदर कीनौं नांहिं॥
अप कीरति यहि दछि की, ह्वै हैं सब जग मांहिं॥३४॥
देह त्याग लषि सती कौ, सिव कैं गन तिहुँ बार॥
दछिहिं मारनहिं कौं उठै, अधिक क्रोध अनुसार॥३५॥
भृगु रिषि नैं जब मंत्र पढि, होम कियौ जिग्य मांहिं॥
ता समयै रिभु नांम कै, सुर प्रगटै वहिं ठांहिं॥३६॥
सिव गननिन कौं देवतनि, जरै काठि सौं मारि॥
दीनैं सबै भजाय कैं, उहिं ठांहिं तै निर्धारि॥३७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्याय: ॥

(वीरभद्र कृत दक्ष यज्ञविध्वंस और दक्षवध)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, सती देह दिय त्यागि॥
सिव सुनि नारद कै मुषहिं, उठ्यौ क्रोध उर जागि॥ १ ॥
महादेव करि क्रोध निज, पटकी जटा उषारि॥
बीर भद्रगन प्रगट हुव, तातैं ताहीं बारि॥ २ ॥
माल कपालन की गरैं, धरैं त्रिसूल जु हाथ॥
उनसिव सौं बिनती करी, कहा करौं म्हैं नाथ॥ ३ ॥
सिव नैं तब आग्या दई, महाक्रोध उफनाय॥
जिग्य सहित उहिं दछि कौ, नास करहुँ तुम्ह जाय॥ ४ ॥
बीर भद्र सुनि कैं तबै, सिव कैं ऐसै बैंन॥
दै परिक्रमां सिंभु की, लै संग सिव गन सैंन॥ ५ ॥
कर त्रिसूल धरि क्रोध करि, वीर भद्र किय गौंन॥
वेगैं हीं पहुँचति भयै, निकट दछि कै भौंन॥ ६ ॥
धूरि उडति अति देषि जे, हुतै बिप्र जिग्य मांहिं॥
लागै करन बिचार बै, सब अपनैं मनमांहिं॥ ७ ॥
नाहिंन चलत बयार अरु, चौरहुं दौरत नांहिं॥
राज्यबर्हि प्राचीर कौं, कित तैं धूरि उडांहिं॥ ८ ॥
दछि नारि जुत और तियन, बोली सब इह भाय॥
कियौ अनादर सती कौं, तिहुँ फल यहि दरसाय॥ ९ ॥
प्रलै काल कैं समैं मधि, जै सिव निर्त्त कराल॥
करत राषि जे सूल पर, छेदि अष्ट दिगपाल॥१०॥
तेज सह्यौ नहिं जात भ्रुव, दाढ भगण किय दूरि॥
कोप करावै अजहुं तौं, नहिं कल्यांन तिहिं मूरि॥११॥
ता सिव कौं अपराध इन, कीनौं दछि अग्यांनि॥
तातैं अब यांको भलौ, कित तैं होय निदांनि॥१२॥
ऐसैं सबही कहत हैं, दुष करि करि तिहँ बार॥
दछिहिं लागै हूं नहिं कौं, अति असुगन निरधार॥१३॥
लियैं भयंकर सस्त्र कर, सिव कैं गन उहिं बेरि॥
किलकि किलकि करतार दै, लियौ जिग्य थल घेरि॥१४॥
अग्नि साल तिय साल अरु, किहुँ गन कीनी दूरि॥
जिग्य थंभ कौ किहूँ गन, तोरि कियौ चकचूरि॥१५॥
पात्र जिग्य कै जे हुतै, तै डारे सब तौरि॥
मूत्र करत भय गन केउ, अग्नि कुंड की ठौरि॥१६॥

केउ गन रिषि रु रिषिन की, तियन लगै डर दैंन ॥
देवतांन कौं गन केउ, लागै दैंन अचैंन ॥१७॥
भृगु रिषि कौं पकरत भयौ, गन मनिमांन सुनांम ॥
अरु बांधत भयौ दछि कौ, बीरभद्र तिहिं ठांम ॥१८॥
पूषा कौ चंडी संग, बांधत भय अनषाय ॥
अरु बांध्यौ भग देवतहिं, नंदी बैल रिसाय ॥१९॥
और गननि रिषि देवतनि, दिय पथरन की मार ॥
सबहीं रिषि सब देवता, डरि भाजै उहिं बार ॥२०॥
भृगु की दाढी तोरि कैं, होमि अग्नि मधि दीन ॥
भग कै नैत्र उषारि लिय, वांकौं आंधौ कीन ॥२१॥
श्राप समैं मधि सिंभु कौ, हंसत रह्यौ मुष मोरि ॥
तातैं पूषा अमर कै, डारै दांत सुतौरि ॥२२॥
बीरभद्र गन आपनैं, मन मैं करि अति रीस ॥
गहि तरवारि जू दछि कौ, काटन लागौ सीस ॥२३॥
वाकौं सिर नहिं कट्यौ तब, सोच भयौ मनमांहिं ॥
वीरभद्र यांकौ तबै, जतन चलत कछु नांहिं ॥२४॥
अज सिर जइसैं जिग्य मैं, कर सौं डारहिं तौरि ॥
जइसैं दछि कैं सीस कौ, डार्यौ तोरि मरौरि ॥२५॥
वीरभद्र कैं विक्रम गण, कहत भलै सुष पाय ॥
ब्रह्मादिक कैं अति अनर्थ, होत भयौ दुष आय ॥२६॥
बीरभद्र दछि सिर दयौ, होम अग्नि कै मांहिं ॥
ह्वै प्रसंन सिव गन गए, सब कैलासहिं ठांहिं ।२७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्टोऽध्यायः ॥

(ब्रह्मादि देवताओं का कैलाश जाकर श्रीमहादेव जी को मनाना)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जे, सुर रिषि है जिग्य मांहिं ॥
सूल गदा सौं सिव गननि, मारै जे उहिं ठांहिं ॥ १ ॥
कटे अंग तिनकै तबै, सुर गन और द्विजेस ॥
विधि सौं जाय लगै कहन, सबही बात बिसेस ॥ २ ॥

आये नहिं बिधि बिस्नु दुहुँ, जिग्य दछि कैंउ मांहिं॥
यहि उपद्रव जांनत रहे, वे अपनैं मन ठांहिं॥ ३ ॥
विधि बोलै कि बडेन कौ, करै कोउ अपराध॥
निष्चै तिहिं कल्यांन कौ, होय जात है बाध॥ ४ ॥
सिवकौ भाग दियौ न तुम्ह, बड अपराध सुकीन॥
अब चलि प्रसंन करौ उनहिं, सब ह्वै कैं आधीन॥ ५ ॥
जिग्य जिवायौ चहत जो, तौ सब सिव पै जाय॥
छमा करावऊ गुन यहि, उनकौं सीस नवाय॥ ६ ॥
सिव कौं तत्व रु पराक्रम, हम्ह हूं जांनत नांहिं॥
तौ औरन की कहा चलि, मोहि मांया मांहिं॥ ७ ॥
यौं कहि बिधि सबहिंन सहित, चलै ठांम कैलास॥
जांह सिव गंधर्वहुं पुनि, बसत अपसरा बास॥ ८ ॥
धात अनेक रु मनिन कै, सोभित सिषर उदार॥
ठौर ठौर झरनां झरत, कंदरा केउ सुढार॥ ९ ॥
सिव जांह निज तियननि सौं, मिलि मिलि करत बिहार॥
वृछि तांह बहु भांति कैं, सोभित भलैं प्रकार॥१०॥
पारजात मंदार बट, गूलर पीपर ताल॥
आंब असोक कदंब अरु, चंपा सालि तमाल॥११॥
बेर सुपारी नारियर, ताड षजूरी कैलि॥
जुही कैंवरा केतकी, जाय चंबेली बैलि॥१२॥
सोभित अैसै बृछिनि सौ, नग कइलास सुढार॥
फूलै कमल सरोवरनि, तहं अलि करत गुंजार॥१३॥
हिरन सिंघ बानर सुवर, ससा रींछ गज सैह॥
क्रीडा करत जु फिरत जहं, अैसै जंतु अछैह॥१४॥
सुक पिक सारिक बोलहीं, कुहकत नाचत मोर॥
गंगा नंदा नामकी, बहत सुभग तिहं ठौर॥१५॥
अैसी सोभा संजुगत, लषि कइलास रसाल॥
देवतांनि कैं मन बढ्यौ, अचिरज महा विसाल॥१६॥
ताकै ढिंग अलका पुरी, वन सउगंध सुढार॥
नंदा अलकनंदा उहां, गंगा बहत उदार॥१७॥
तामैं तिय अरु पुरुष मिलि, जल मैं करत बिहारि॥
तिन कुच की केसरि बहत, गज पीवत सो वारि॥१८॥
रतनन जटित बिमांन जहँ, सोभित भलै प्रकारि॥
जिनमैं जछिहिं अरु जछिनी, करत बिलास अपारि॥१९॥

ऐसी अलका पुरी कौं, लषि तजि आगैं आय॥
अति अदभुत सौं गंध बन, देषत भयै सुभाय॥२०॥
कलप बृछि जामैं लगै, पंछी सब्द करंत॥
प्रफुलित सुंदर कमल जहँ, बिचसरवरनि अनंत॥२१॥
हरि चंदन सउगंध मिलि, चलत जु त्रिविधि समीर॥
सौं जछिन कौं मन हरतहिं, करत कांम की पीर॥२२॥
रतन जटित पैरीन की, वड़ वापी जिहं ठौर॥
ऐसै वन मांहीं लष्यौ, इक बट बृछि सुतौर॥२३॥
चौडौ जोजन पचहतरि, सौ जोजन जौ ऊंच॥
है छाया दीरघ जांह, पंछी की न पहूंच॥२४॥
बैठे सिव वांके तरैं, छोडे क्रोध सुभाय॥
जिनकौं दरसन देवतां, करत भयै तहँ जाय॥२५॥
जा सिव मैं तप जोग अरु, विद्या सक्ति जु अपार॥
सनकादिक रु कुबेर जिहिं, सेवा करतहुँ सुढार॥२६॥
सीस जटा तन भस्म धर, लसत बसनआरक्त॥
सोभित चंद ललाट पर, प्रभु कै पूरन भक्त।२७॥
बैठे कुस आसन उपर, हिय धरि ध्यांन सुबेस॥
नारद जू कौं करत हैं, तत्व ग्यांन उपदेस॥२८॥
जंघा दछिन परहुँ धरैं, वांम जु पांव रसाल॥
मुद्रा तर्क बिराजहीं कर, रुद्राक्षि जु गल माल॥२९॥
धरैं जोगहिं कछा भलै, महादेव अभिरांम॥
तिन्हकौं सबही देवता, जाय कियौं परिनांम॥३०॥
अरु ब्रह्मा जू कौं कियौ, नमस्कार महादेव॥
औरहुँ सबहिंन किय भलैं, विधिहिं प्रनांम सभेव॥३१॥

॥ ब्रह्मोबाच॥

कहत भयै बिधि सिंभु सौं, तबहिं अति उत्तम बात॥
परैं सक्ति सौं आप सिव, ब्रह्म रूपहिं दरसात॥३२॥

चौपाई - उतपति पालन प्रलय संजुक्ति। तुम्हहीं करत रूप सिव सक्ति॥
जिग्य जगत मरजादा जु धर्म। तुम्हहीं प्रगट कियै सब मर्म॥३३॥
भलै बुरै कर्मनि फलदाता। सबकौं हौ तुम्ह ही विष्याता॥
भक्त तुम्हारै जेहैं सुजांना। राषत तुम्हरै पदकौ ध्यांना॥३४॥
तिन्हकौं नांहिं क्रोध उदोतू। सो तुम्ह कौं तौ कहँ तैं होतू॥
है कोऊ दुष्ट भेद जे राषत। बचन जु बुरौ बडन कौ भाषत॥३५॥
जे हैं जीव दई कै मारै। जिन मारुहुँ तुम्ह नहिं निरधारै॥

प्रभु कै भक्त अग्यांनिन पैं अति। दया करत आयै हौ नित प्रति ॥३६ ॥
तुम्ह जीती प्रभु प्रकृति अजेवू। तातै क्रिपा करउ अब देवू॥
जिग्य दछि कौं देहूँ जिवाई। अबैं आप करि दया सुभाई॥३७ ॥
भाग तुम्हारौ उन नाहिं दियौ। सौ अपराधहुँ बडौ अति कियौ॥
हम्ह तुम्ह पैं मांगन यहि बेरा। दछि प्रजापति जीवैहिं फेरा॥३८ ॥
भृगु कीदाढी भग के नैंना। पूषा कैजु दंत सुष दैंना॥
अरु सब देवतांन के अंगा। फेरि हौंहि जे है गय भंगा॥३९ ॥
सामग्री जु बचै जिग्य मांहीं। सौ अबतैं तुम्ह भाग सदांहीं॥
संपूर्ण जिग्यौं कै तुम्हहिं कर्त्ता। जिग्य भाग पावौ अधिकर्ता॥४० ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(दक्ष यज्ञ की पूर्ति)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, असै बिधि कैं बैंन॥
सुनिकैं फिरि बोलत भए, महादेव त्रय नैंन॥ १ ॥

॥ श्री महादेव उबाच ॥

अग्यांनी अपराध मो, करै सु हौं मांनौंन॥
दंड दियौ है म्हें इहै, भलौ उनहीं कौ हौंन॥ २ ॥
दछि प्रजापति हेतू अब, दीजै अज सिर लाय॥
अरु भृगु कैहूं छाग की, दाढी देहुँ लगाय॥ ३ ॥
नैत्र मित्र कैं सौं लषौं, भग जिग्य भाग प्रकार॥
पूषा रद जजमांन कै, तिनसौं करहुँ अहार॥ ४ ॥
पूषा अश्वनि कुमार कै, हाथन कैं अनुसार॥
और सुरन कैं अंग जे, तूटै हौहुँ सुढार॥ ५ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

सिव कौं असौ बचन सुनि, सबहिंन लीनौं मांन॥
सब सुर अरु बिधि सिवहिं लै, गयै दछि जिग्य थांन॥ ६ ॥
सीस छाग कौ दछिहिं कैं, जोडि दियौ तिहिं बार॥
सिव कैं चितयै जी उठ्यौ, दछि तबैहुँ निरधार॥ ७ ॥

दछि कांति सिव बैरतैं, ह्वै गइ दुती मलीन॥
सो सिव अपनी क्रिपा तैं, ससि ज्यौं उज्जल कीन॥ ८ ॥
स्तुति सिव की चाह्यौ करन, पै न सक्यौ करि दछि॥
सती सुता की सुधि करैं, ब्याकुलहुँ भयौ प्रतछि॥ ९ ॥
दछि आपनैंउ चित्त कौ, समाधांन करि फेरि॥
स्तुति सिव की लाग्यौ करन, हुती जोग्य सौ हेरि॥१०॥

॥ दछ उबाच ॥

मोकौं दीनौं दंड सौ, कियौ अनुग्रहूँ नाथ॥
तुम्ह प्रतिपालक जनम कैं, जन नवावत जु माथ॥११॥
विद्यावंत द्विज तुम्ह रचै, राषत श्रुति मरजाद॥
पालत हौ तुम्ह हीं तिनहिं, दै सब बिधि अहलाद॥१२॥
म्हैं तुम्हरी अवग्या करी, धरि चित मैं अग्यांन॥
तासौं जातौ नर्क पै, तुम्ह किय रछा निदांन॥१३॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

अरु बोलै रिषि मैत्रेय, औंगुन छिमु करवाय॥
कियौ जिग्य आरंभ फिरि, आछी भांति नवाय॥१४॥
दियौ बिस्नु कौ भाग तब, प्रगटै वै जिग्य मांहिं॥
जिन्हकैं परम प्रकास सौं, रह्यौ तेज किहुं नांहिं॥१५॥
धरैं मुकट पीतांबरहिं, सुंदर स्यांम सरूप॥
घुंघरवारै केसहिं तै, सोभा देत अनूप॥१६॥
संष चक्र नीरज गदा, आयुध करनि रसाल॥
कौस्तुभ मणि श्री चिह्न उर, अरु राजत बनमाल॥१७॥
जथा जोग्य भूषन बनै, अंग अंग छबि देत॥
प्रगटै ऐसै बिस्नु तहँ, छत्र अरु चमर समेत॥१८॥
ब्रह्मा सिव सब देवता, करत भये जु प्रनांम॥
हाथ जोर असतुति करन, लागै अति अभिरांम॥१९॥
उन्हकी महिमा कौ कछू, पावत नाहीं पार॥
पैं तउ असतुति करत भयै, जथासक्ति अनुसार॥२०॥
सब पूजा को सुजल लै, उठि ठाढौ हुवै दछि॥
हाथ पात्र सब सौंज कौ, सनमुष राषि प्रतछि॥२१॥
पूजा करिकैं बिस्नु की, उमंगिहुँ दछि तिहिं बार॥
करि प्रनांम लाग्यौ करन, असतुति भलैं प्रकार॥२२॥

॥ दंछ उबाच ॥

पूर्न ब्रह्म सुद्ध तुम्ह, चेतन रूप अनंत॥
बुद्धि अवस्था तिहूँ तैं, परै आप भगवंत॥२३॥

॥ ऋत्विज ऊचुः ॥

रत्युज कहत सिव श्राप तैं, तुम्हारौ तत्व न जांनि॥
जिग्य कर्म कै मांहिं ही, हम्ह लगि रहै निदांनि॥२४॥
फिरि बोलै द्विज सभा कैं, प्रभु सौं वचन रसाल॥
दीन बंधु असरन सरन, तुम्ह करतार कृपाल॥२५॥
जामैं भय अहि मृत्यु कौ, सोक अग्नि की ज्वाल॥
अैसै मग संसार बिच, पर्यौ जीव बेहाल॥२६॥
सो तुम्ह चरनन कै सरन, जब आवै किहुँ भाय॥
तब वहि दुष्य अथाह तैं, छुटै मुक्ति सुष पाय॥२७॥

॥ रुद्र उवाच॥

सिव बोलै मो बुधि लगी, तुम्ह चरनन कै मांहिं॥
मूढन की निंदा स्तुतिहिं, म्हैं मांनत हौं नांहिं॥२८॥

॥ भृगुरुवाच॥

भृगु रिषि बोले बहुरि यौं, ब्रह्मादिक कहूं कोय॥
तत्व तुम्हारौ नाहिं लहत, माया मोहित होय॥२९॥

॥ ब्रह्मोवाच॥

ब्रह्मा बोलै फैरि यौं, हे प्रभु दीन दयाल॥
तुम्ह न्यारै हौ प्रकृति तैं, भक्तननि कैं प्रतिपाल॥३०॥

॥ इंद्र उवाच॥

बासब बोलै अष्टभुज, आयुध जुत अंनाद॥
यहै तुम्हारौ रूप है, दैंन महा अहलाद॥३१॥

॥ पत्न्य ऊचु :॥

तिय बोली तुम्हरै निमत, जिग्य दछिहिं नैं कीन॥
सौ यहि अतिही क्रोध सौं, सिव विधुंस करि दीन॥३२॥
ताकौं तुम्ह निज क्रिपा सौं, कर्यौ पवित्रिहिं सुभाय॥
हे प्रभु दीनन की सदा, करत जु आप सहाय॥३३॥

॥ ऋषय ऊचुः॥

रिषि बोलै यै हौ प्रभू, पूर्न ब्रह्म करतार॥
तुम्हहीं सब कछु करत हौ, अरु न्यारै निरधार॥३४॥

॥ सिद्धा ऊचुः॥

बोलै सिध तुम्हारि कथा, अमृत सरित कै मांहिं॥
मग्न भयौ हम्ह मन हिरद, लहि कैं सुष वहिं ठांहिं॥३५॥
पहलै अग्नि कलेस तैं, जर्यौ रह्यौ बहु बार॥
जासौं अब या नदी तैं, निकसत नहिं निरधार॥३६॥

॥ दछि तिया उबाच ॥

दछि तिया बोली जु प्रभू, भलैं पधारैं आप॥
नमसकार हूं करत हूं, तुम्ह तारन जग ताप॥३७॥
तुम्ह बिनु कछु जो जिग्य की, सोभ रही ही नांहिं॥
जइसैं सोभ सरीर की, सीस बिनां न लषांहिं॥३८॥

॥ लोकपाला ऊचुः ॥

लोकपाल बोलै प्रभू, सबकै दिष्टा आहि॥
माया करिकैं धरत हौ, बउंत रूप चित चाहि॥३९॥

॥ जोगेस्वर ऊचुः ॥

जोगेस्वर बोलै प्रभू, करौ अनुग्रहहिं आप॥
हम्ह जु रावरै भक्त हैं, करत तुम्हारौ जाप॥४०॥
उतपति पालन प्रलय कै, तुम्ह ही हौ करतार॥
नमसकार हम्ह करत हैं, तुम्हकौं प्रभू अपार॥४१॥

॥ बेद उवाच ॥

बेद कहै तुम्ह धर्म कै, हौ प्रगटांवन हार॥
जिन स्वरूप जांनत न हम्ह, और लहै कौ पार॥४२॥

॥ अग्नि उवाच ॥

अग्नि कहत यै हौ प्रभू, तुम्ह प्रताप अनुसार॥
भोजन करत जु हव्य कौं, म्हैं आछै परकार॥४३॥
जिग्य रूप अैसै प्रभू, तुम्ह स्वांमी करतार॥
नमसकार तुम्ह कौं करत, हूँ बहु बारंबार॥४४॥

॥ देवा ऊचुः ॥

अमर कहै तुम्ह प्रलय कैं, समैं सकल संसार॥
सैंन करत उर राषि कैं, निज ईछा कैं ढार॥४५॥
सौ तुम्ह हम्हकौं आजि दिय, दरसन अति अभिरांम॥
क्रतक्रत हम्ह सब भए, करतहिं बउंत प्रनांम॥४६॥

॥ गंधर्वाऊचुः ॥

फेरि सबै गंधर्व मिलि, बोलै बचन प्रसंस॥
मरीचादि विधि इन्द्र है, सबै तुम्हारै अंस॥४७॥
तुम्ह निज क्रीडा कैं लियैं, रचतहुँ इहै संसार॥
नमसकार हम्ह करत हैं, हे स्वांमी करतार॥४८॥

॥ विद्याधरा ऊचुः ॥

विद्याधरहिं बोलै सबै, माया मोहित होय॥
अहंता ममता देह मैं, जीव करत सब कोय॥४९॥

कथा तुम्हारी सम सुधा, जिन मधि श्रवन सु कीन॥
मुक्त होत प्रांनी सुतौ, मिटही ताप सु तीन॥५०॥

॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥

द्विज बोलै कुस जिग्य हबि, अग्नि पात्र पसु आदि॥
अग्रि हौत्र सुर रित्युज लौं, तुम्हहीं हौं जु अनादि॥५१॥
तुम्हहीं रूप बराह ह्वै, मारि दयत दुषदाय॥
किय सथाप निजसक्ति धरि, यहि प्रिथवी लै आय॥५२॥
जिग्य भ्रष्ट भयौ सुध करौ, अबै पधारौ आप॥
बिघन निवारन नांव तुम्ह, नमसकार हर ताप॥५३॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, ऐसी विधि करतार॥
जिग्य दछि कौ पूर्न किय, आप क्रपा अनुसार॥५४॥
भाग जिग्य कौं लै प्रभू, कहै दछिहिं सौं बैंन॥

॥ श्री भगवांनुबाच ॥

हम्ह बिधि सिव तिहुँ जगत कै, कारन हैं सुष दैंन॥५५॥
उतपति पालन अरु प्रलय, करन काज संसार॥
तीन रूप म्हैं धरत हौं, यहि जांनहुँ निरधार॥५६॥
इन तीनहुँ मैं मूरष जन, राषत भेद प्रकार॥
ज्यौं अपनैं अंगनि कौउ, लषत परायै ढार॥५७॥
करत जु तीनौं देव मधि, जौं जु भेद बिचार॥
इन तीनौं मैं भेद नहिं, यहि जांनौं निरधार॥५८॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

मैत्रेय बोले दछि सुनि, प्रभु कै बचन सुढार॥
हरि की पूजा करत भौ, भली भांति उहिं बार॥५९॥
बिधि सिव जुत सब अमर गन, पूजै करि सनमांन॥
जिग्य समापति करि कियौ, दछिहिं जिग्यांत सनांन॥६०॥
प्रसंन होय कैं देवता, सबही भलै प्रकार॥
आप आप कैं लोक मैं, गवन कियौ तिहुँ बार॥६१॥
सती जिग्य मधि त्यागि तन, फिरि हिमगिरी पितु पांय॥
मैंना कैं गर्भहिं भलै, प्रगट भइ ताहँ आंय॥६२॥
पार्वती हुव नांम अरु, सिवहिं ब्याही जु फेरि॥
कही कथा यहि तुम्हहिं हम्ह, भलैं वर्नि इहि बेरि॥६३॥

सिव चरित्र उद्धव यहै, हम्ह सौं कह्यौ सुनाय॥
कहै सुनै यहि चरित जिहिं, पाप सबैं मिटि जाय॥६४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्यायः ॥७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(ध्रुव का वन गमन)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय रिभु, यति सनकादिक हंस॥
नारद अरूणि विरक्त हुव, यै बिधि पुत्र प्रसंस॥ १ ॥

चौपाई - प्रगट अधरम भयौ ब्रह्मा कैं। मृषा नांम तिय भई जु तांकैं ॥
तिनकै दंभ रु माया भयै। तिय पति ह्वै तिनी जग सुष लयै ॥ २ ॥
तैं जु अपुत्र निरति नैं सौं लयै। अवसरहुँ पाय तरुन तैं भयै ॥
तिनकैं लोभ अरु सठता भयै। तिनतैं क्रोध रु हिंसा प्रगटयै ॥ ३ ॥
तिनकैंहिं कलि दुरुक्ति द्वै भये। तिनन मृत्यु अरु भयउ प्रगटयै ॥
तिनकैं नर्क जातना नांमा। श्रिष्ट अधरम सु हि दुष धांमा ॥ ४ ॥
याहि सुनैं त्रय बेर जु कोई। ताकैं पाप दूरि सब होई ॥
नृप स्वायंभुव मनु कौ वंसहिं। अबहूँ तुम्हकौं कहूँ प्रसंसहिं ॥ ५ ॥
स्वायंभुव मनु तिय सति रूपा। जिनसौ द्वै सुत भयै अनूपा ॥
प्रियव्रत पाद उतांन जु नांमा। प्रिथवी कै पालक अभिरांमा ॥ ६ ॥
नृप उतानपाद कै द्वै तिय। सुरुचि सुनीति नांम बर्नन किय ॥
नृप कैं सुरुचि तिया अति प्यारी। रु नहिं प्यारी सुनीति जुनारी ॥ ७ ॥
सुत सुनीति कैउ ध्रुव इक भयौ। उत्तम जनम सुरुचि कैउ लयौ ॥
उत्तम कौं इक दिन लै गोदहिं। रहै षिलावत नृप करि मोदहिं ॥ ८ ॥
ध्रुवहुँ पिता की गोदी मांहीं। बैठन चह्यौ नृपति लिय नांहीं ॥
सुरुचि तिहिं समैं गर्व प्रकारहिं। बोली बचन अनष अनुसारहिं ॥ ९ ॥
आसन राज जोगि तू कांहीं। राज पुत्र पै म्हैरो नांहीं ॥
तू बालक कछु समझत नांहीं। दुर्लभ सब बस्तु जु तैं चित चांही ॥१०॥
तू तपस्या करि भलै प्रकारहिं। हरि कौं करि प्रसंन निरधारहिं ॥
फिरि तू म्हैरै गर्भहिं आवै। नृप आसन तब बैठन पावैं ॥११॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

अैसैं सुरुचि वचन ध्रुव पेषी। अरु निज पितुहिं चुप भयौ देषी ॥

तब रोवत निज माता पासहिं। आये ध्रुव ह्वै निपट उदासहिं ॥१२॥
लैहिं पुत्रहिं निज गोदी मांहीं। सुत कौं दूष पूछत गृह ठांहीं॥
सौंति बचन सुनि औरन कै मुष। भौ सुनीति उर तबै महादुष॥१३॥
सौति बचन सुनि धीर बिसारी। लगी विलाप करन तिहुँ बारी॥
करि अति रुदनहिं पुत्र सौं बोली। दुष धरि ग्यांन वारता षोली॥१४॥
हे सुत दोसन किहुँ निरधारैं। अैसैहीं हैं करम हम्हारैं॥
सुरुचि कही है सांची बातहिं। कछु करहुं जिनी दुष तुम्ह तातहिं ॥१५॥
भौ अभागनीकैं उर मांहीं। तातैं तुहि नृप मांनत नांहीं॥
सुरुचि बचन है सत्य निदांना। नृप आसन हरि भजन बिनांना॥१६॥
विधिहूं हरि सेवा अनुसारा। बडौ भयो है भलै प्रकारा॥
स्वायंभुव मनु दादा तेरै। प्रभू निमित्त किय जिग्य घनेरै॥१७॥
उनहूं तबै परम पद पायौ। बहु भांतिन कौं दुष जु मिटायौ॥
वे ही प्रभु है दीन दयाला। उनकौं भजन सुकरि तू बाला॥१८॥
लछमी हूं उनहीं कौहिं चहैं। सोई हरि तेरौ दुषहिं दहैं॥

॥ मैत्रेय उबाच।

माता कै सुनि अैसैं बैंनां। ध्रुव बन चलै छोडि निज अैंनां॥१९॥
नारद ध्रुवहिं मिलै मग मांहीं। बोलै कर धरि ध्रुव सिर ठांहीं॥
लषौ तेज छत्रिन कौं इहै है। मांन भंग बालहुँ नहिं सहि है॥२०॥

॥ नारद उबाच॥

मांन और अपमांन बिचारा। ताकौं नहिं चहियै निरधारा॥
तू तौ अबहीं बालक कहियै। तौकौं तौ अनषनहिं न चहियै॥२१॥
अरु जु मांन अपमांन बिचारा। कीजै अपनैं मन निरधारा॥
सौ सब निज कर्मनि सौं होतहिं। ताकौं कहा अनषन उदोतहिं॥२२॥
तातैं कछु थोरे ही मांहीं। रहियै गहि संतोष उर ठांहीं॥
अधिक बस्तु कौं मन न ललचइय। पईयै ताहीं मैं ठहरइय॥२३॥
अरु तू सुनि कैं मातु बचन कौं। कियौ चहत हरि आराधन कौं॥
सौ तौ महा कठिन है बाता। तोसैं नहिं बनि हैं तप तापा॥२४॥
मुनिहूं तपस्यां जोग जु करैहु। जतनहिं करत बउंत दिन टरैहुँ॥
तउ वै प्रभु कौं पावत नांहीं। हरि मग कठिन जगत कैं मांहीं॥२५॥
तातैं पंथ गेह कौ लीजै। मांनि बचन चित हठ नहिं कीजै॥
बडे भयैं हरि आराधन कौं। जतन कीजियौ वसि करि मन कौं॥२६॥
छूटै दुष सुष रु भोगहिं करैं। टरैं अग्यांन हुँ समझि यहि धरै॥
जे गुनवंत होहिं नर कोई। तैं अधिकहिं लषि ब्रह्म जु होई।२७॥
निरगुन सौं अति दया जु करहीं। समगुन वारै सौं हित धरहीं॥
अैसौं जो कौ करै बिचारा। सौ नहिं दुष पावै निरधारा॥२८॥

॥ ध्रुव उबाच ॥

ध्रुव बोलै उपदेस तिहारौ। मौ मन मैं न रहत निरधारौ ॥
हे मुनि म्हैं छत्री कुल मैं भयौ। मोहि चित बचन बांन रिस छयौ ॥२९ ॥
सुरुचि बचन लगि वांन प्रहारा। मो उर बिंध्यौ गयौ इहँ बारा ॥
हे मुनि बचन तिहारै तातैं। म्हेरै हिय मैं नहिं ठहरातै ॥३० ॥
तातैं जो पद किहूं न पायौं। सौ पाऊं निज चित्त कौ भायौं ॥
ऐसौ जतन बिचार बतावौ। तुम्ह जु भलौ जांनत जु जितावौ ॥३१ ॥
तुम्ह बिधि पुत्र सुबोधहिं धरत हौ। भलौ जगत कौं करत फिरत हौं ॥
नारद ध्रुव के ऐसें बैंनां। सुनि बोलै लहि चित्त मैं चैनां ॥३२ ॥

॥ श्री नारद उबाच ॥

हे ध्रुव भक्ति मारग है सही। कह्यौ जु तौ माता तुहि जु बही ॥
प्रभु कै भजन बीचि चित्त लावौ। जासौं च्यारि पदारथ पावौ ॥३३ ॥
तातैं हे सुत जमुनां नेरैं। मधुबन जाहीं बसहुँ बसेरै ॥
तहँ जमुनां मधि करि जु सनांना। करौ भलैं निति कर्म बिधांना ॥३४ ॥
प्रांनायाम सौं मन कै मैल। दूरि करहुँ तिहुँ गुनहुँ कै फैल ॥
फिरि हरि गुर कौं ध्यांन बिचारौ। मन बसि करि हरि पद मैं धारौ ॥३५ ॥
हरिपालक हैं सरनागत कैं। करुना सिंधू हरन दुर्मति कै ॥
जिन्हकौं प्रसंन बदन अभिरांमा। अदभुत सोभा सुंदर स्यांमा ॥३६ ॥
चहुं भुजा सोभित अति अदभुतहिं। संष चक्र अरु गदा पद्म जुतहिं ॥
कुंडल मुकुट सु परम रसाला। पीत बसन बैजंतीमाला ॥३७ ॥
कटि कांछी पगनूपर सोहत । आनंद दै भक्तन मन मोहत ॥
चरननि मैं ससि सी नष कांति। हृदै बिराजत मनि अव दांति ॥३८ ॥
मंद हंसन ऐसै प्रभु प्रांन। चित एकाग्र करै धरि ध्यांन ॥
ऐसैं हरि मैं मनहिं लगावै। द्रिढ़ ब्रत धरि नहिं फेरि डुलावै ॥३९ ॥
अरु जो मंत्र बताँऊं तांहीं। जपै सात दिन लौं चित चांहीं ॥
वाहिदस अक्षर मंत्र प्रधांन। जपौ नित्यहुँ करि हरि चित ध्यांन ॥४० ॥
याहि जु मंत्र सौं षोडस भांय। प्रभू की पूजा करहुँ बनांय ॥
लै तुलसी दल जल रु फल फूंल। प्रभू कौं पूजै ह्वै अनुकूंल ॥४१ ॥
भोजन स्वलप होय सौहिं करैं। बडंत बोलबो नाहिं अनुसरैं ॥
प्रभू कै जे चरित्र सुष सारहिं। तिनकौं ध्यांन धरैनिरधारहिं ॥४२ ॥
पहिलै सामग्री करिकैं सिद्ध। पूजन द्वादस मंत्र जु प्रसिद्ध ॥
मन बच काया भलैं प्रकारा। पूज्यां थकां प्रभू करतारा ॥४३ ॥
तौ हरि याकै सकल मनोरथ। पूरन करै भली विध इक सात ॥
भाव निरंतर करिबहु भाई। प्रभु कौ भजन करै चितलाई ॥४४ ॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

नारद कै सुनि बचन रसालहिं। करि परिकरमा ध्रुव तिहँ कालहिं॥
जात भयै मधुवन सुभ धांमहुँ। चित्तहिं राषि हरि चरननि ठांमहुँ॥४५॥
नारद जू अति साध सुहायै। नृप उतानपाद पैं आयै॥
राजा रिषि की पूजा कीनहिं। बोलै नारद महा प्रवीनहिं॥४६॥

॥ श्री नारद उवाच ॥

राजा तुम्ह का सोचि बिचारौ। मुष क्यौं सूक्यौ जात तुम्हारौ॥

॥ राजा उवाच ॥

यहि सुनिकैं राजा फिरि बोलै। अपनैं हियकैं सब दुष षोलै॥४७॥
पांच बरस कौ बालक म्हेरौं। कियौ अनादर म्हैं तिहुँ केरौ॥
भूषौ प्यासौ यहि अति ह्वै हैं। जंतु षाय वाकौं कोउ जैहैं॥ ४८॥
म्हैं तिया कै बसि अतिही भयौ। सुत गोदी आवत नाहिं लयौ॥

॥ श्री नारद उवाच ॥

यहि सुनिकैं नारद जू बोलै। राजा कै उर कै दुष षोलै॥ ४९॥
नृप उहि सुत कौं दुष मति करौ। बात कहत हौं सौ चित्तहुँ धरौ॥
थोरै दिन मैं उत्तम क्रतकरि। बहि बालक अैहैं आछै धरि॥ ५०॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

सुनि अैसै नारद कैं बैंनां। राजा अपनै चित्त लहि चैनां॥
नृप निस दिन नित प्रति जु निदांनू। करत रहै सुत ही कौ ध्यांनू॥ ५१॥
ध्रुव कुमार मधुबन मैं जाई। करि सनांन व्रत कियौ सुभाई॥
तीन तीन दिन पाछैं फैरी। भोजन करत कपित्थ अरु बेरी॥ ५२॥
अैसी भांतिन सौं इक मासा। प्रभु पूजा किय सहित हुलासा॥
दुतिय मास मैं छठै छठै दिन। भोजन कीनै सुष्क पत्रत्रिन॥ ५३॥
फिरि नव नव द्यौंसन कै पांछैं। करि जलपांन रहत पुनि आछै॥
अैसैं त्रितीय महिनां मांहीं। प्रभु की पूजां भलैं निबांहीं॥ ५४॥
फिरि बारह बारह दिन मांहीं। भोजन केवल पवन करांहीं॥
अैसी विधि चौथे जु महीनां। सेवा प्रभु की आछै कीनां॥ ५५॥
तरु सम इक पाय रोपि गाढै। पंचम मास रहै पुनि ठाढै॥
सब ठौरनि तैं मनहिं छुडाई। किय हरि ध्यांन भलैं चित लाई॥ ५६॥
परब्रह्म जु सबकै आधारहिं। तिन मैं मन ल्यायौ निरधारहिं॥
ध्रुव कै पद अंगुष्ट कै जोरां। लागी डगमगान भुव ठौरां॥ ५७॥
ध्रुव रोक्यौ निज स्वास सजोरां। सबकै रुकै स्वास चहुँ वोरां॥
तबै देवगन सबै सुभाई। बोलै प्रभु कै सरनै आई॥ ५८॥

॥ देवाऊचुः ॥

प्रभु हम्ह सरन तुम्हारौ लयौ। स्वास हम्हारौ अति रुकिहि गयौ॥

तिहँ कारन गति हम्हनाहिं जांनी। यहि सुनिकैं बोलै प्रभु बांनीं॥ ५९॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

ध्रुव नैं करिकैं प्रांनायांमहिं। ध्यांन लगायौ मो पद ठांमहिं॥
तातैं रुकि गौ स्वास तुम्हारौ। और भेद मति कछू बिचारौ॥ ६०॥
ध्रुव कौं अब तपस्यां तैं जांई। वर देकैं म्हैं देहुँ उठांई॥
तब तुम्हारे सबहिं कैं प्रांना। समाधांन ह्वै हैं जु निदांना॥ ६१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टमोऽध्यायः ॥८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

(ध्रुव का वर पाकर घर लौटना)

॥ मैत्रेय उवाच॥

चौपाई - मधुर सुषद सुनि हरि कै बैंनां। तब सबहीं सुरगन लहि चैंनां॥
प्रभु कौं करि सब अमर प्रनांमा। जात भयै अप अपनैं ठांमा॥ १ ॥
प्रभू गरुड पै चढ़ि हित छायै। ध्रुव कै पास सुमधुबन आयै॥
ध्रुव जु जोग सौं हदै स्थांनहिं। करत रहै हैं हरि कौं ध्यांनहि॥ २ ॥
सौ बहि जात रह्यौ सुषदायी। तब द्रिग षोलि दयै अकुलायी॥
लषत भयौ तिहिं ठां भगवांना। ध्रुव प्रनांम किय प्रीति प्रमांना॥ ३ ॥
निरषत नैंन मनौं पी जातहुँ। मुष चुंबन भुज मिलि मनु गातहुँ॥
असतुति प्रभु की जु करन ध्रुव चह्यौ। अै परि कछू जात नाहिं कह्यौ॥ ४ ॥
तबै हस्त अपनौं संष वेद मय। ध्रुव कपोल सौं प्रभु लगाय दय॥
ध्रुव उर सरस्वति प्रगटी आई। हरि कौं तत्व लियौ सबै पाई॥ ५ ॥
ध्रुव हरि की असतुति बहु भांई। करत भयै अपनैं मुष गांई॥

॥ ध्रुव उबाच॥

पैठि हदै मैं जे भगवांना। चेतन करत अंग सब थांना॥ ६ ॥
तिन्हकौं मैं परिनांम करत हौं। दास पनौं निज चित्तहिं धरत हौं॥
प्रभु तुम्ह अपनीं ही माया करि। तत्व रचै जु चौबीस भेद धरि॥ ७ ॥
तिन्ह मैं पैठि अनैंक स्वरूपां। देति दिषाई भाव अनूपां॥
तुम्ह मोकौं दीनौं है ग्यांनू। जातैं मैं लिय तुम्हहिं पिछांनू॥ ८ ॥
तातैं तुम्ह पद अति सुषदायक। भूलूं क्यौंहुं नाहिं जग नायक॥
तुम्ह कौं भजि कछू और जु चहै। तिन्हकौं मूरष सबकौउ कहै॥ ९ ॥
अरु जै सुष संसारी चहियै। नर्क जानिहूं मैं तैं लहियै॥

ध्यांन तुम्हारौ धरै सुढारहिं। अरु तुम्ह गुन जन सुनैं उदारहिं॥१०॥
अति आनंद जू प्रापत होतहुँ। सौ न ब्रह्म मधि होत उदोतहुँ॥
अरु स्वर्गादिक लोकनि मांहीं। बहि सब प्रांनी पांवत नांहीं॥११॥
हौंहुँ तुम्हारौ भक्त अभंगा। हौऊँ मोहि साधन कौ संगा॥
सुनिकैं तुम्हारी कथा सुढारा। म्हे तरि हौं सागर संसारा॥१२॥
जिन्हकौं तुम्ह भक्तन कौ संगा। भयौ हौय लहि भाग्य उतंगा॥
तिन्हहिं कुटंब पुत्र अरु तिय मांहीं। काहूं भांति रहै हित नांहीं॥१३॥
जगत स्थावर जंगम जु इहै। रूप तुम्हारौ ही सबनि अहै॥
याहि निश्चै जांनत हौं बातहिं। क्रिपा तुम्हारी कैं अवदातहिं।॥१४॥
प्रलय समैं तुम्ह अंतरजामी। राषत जगत उदर मैं स्वांमी॥
सौय रहत हौ तुम्ह जल कै मधि। नाभि कमल जिहँ प्रगट भयौ बिधि॥१५॥
तिन्हकौं करत जू म्हैं परनांमं। तुम्ह पद दैन मुक्तिहुँ अभिरांमं॥
तुम्ह निति आत्मा सुधहुँ स्वरूपां। सबतैं न्यारै प्रभू अनूपां॥१६॥
जिन्ह मैं सक्ति अनैंक प्रकारा। हौ आनन्द रूप निरधारा॥
म्हैं तिन्हकैं हौं सरन सुभांई। करत प्रनांम जु सीस नवांई॥१७॥
तुम्ह अनुग्रह करि दया हम्हारी। करत हौ प्रभू भलै प्रकारी॥
प्रथम प्रसूता जइसैं गायहिं। बछ बृकादि करै रछा भायहिं॥१८॥
स्वतै सिद्ध पय पांन करावत। भक्तनि हितू तुम्ह क्रपा निबाहत॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

कहै मैत्रय जु बोलि तिहं भांय। ध्रुव असतुति कीनी चित लांय॥१९॥
तब हरि बोलै क्रपा निधांना। ध्रुव कौ निज सेवक पहिचांना॥

॥ श्रीभगवानुवाच॥

हे नृप सुत तौ मन की ईछा। म्हैं जांनत हौं सबै प्रतेछा॥२०॥
दुरलभ पद म्हैं ताकौं देतहुँ। म्हैरी अधिक क्रपा कैं हेतहुँ॥
जोति चक्र जांकै आधारै। तांकुँ करत चक्र नषतहिं सारै॥२१॥
ऐसौ है ध्रुव लोक सुधांमू। सब त्रिलोक ऊपर बह ठांमू॥
धरम अग्नि रु कस्यप पुरुहूंतं। सप्त रिषिनन जुतहिं लषि अदभूंतं॥२२॥
जाकी निति परकरमा देतहिं। तुम्ह पैहौ उहिं लोक निकेतहिं॥
अब तौ पिता छोडि निजधांमा। तपस्यां कौ जैहैं बन ठांमा॥२३॥
तू जू बरस बत्तीस हजारहिं। राज करैगौ भली प्रकारहिं॥
उत्तम कुँवर सौ तैरौ भाई। सौ आषेट काज बन जाई॥२४॥
जछिन सौं लरि मृत्यु जू पैहैं। माता बीच अग्नि जरि जैहैं॥
अरु तू जिग्य घनेरै करि हैं। अंत समैं मोकौं चितधरि हैं॥२५॥
तब तू पुनि ध्रुव लोकहिं जाई। प्रापति ह्वै हैं आछै भाई॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

ऐसें ध्रुव सौं कहि भगवांना। बर दैकें हुव अंतरध्यांना॥२६॥
ध्रुव यहि वर लहि प्रसंन नहिं भयै। फेरि आपनै गृह कौं गयै॥
हरि होय प्रसंन उच्च पद दीनैं। पै उन्हकौं नहि भावै हीनैं।।२७॥

॥ बिदुर उबाच ॥

बिदुर कहत थोरे दिन तप करि। ध्रुव कुमार पायौ दरसन हरि॥
अरु ऐसौं दीरघ बर पाई। प्रसंन न हुव सौ कहौ जताई॥२८॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि पुनि जें प्रभू, दाता मुक्ति अजेव॥
तिनसौं पाई मुक्ति नहिं, यहि अप्रसंनता भेव॥२९॥
अरु अपनैं मनमांहिं ध्रुव, कीनौं यहे बिचार॥

॥ ध्रुव उबाच ॥

जा हरिकौं जोगेस्वर हुँ, ध्यावत लहत न पार॥३०॥
ता हरि कौं षटमांस मधि, म्हैं करि प्रसंन सुभाय॥
अरु पाई नहिं मुक्ति म्हैं, रह्यौ चित्त मैं छाय॥३१॥
म्हैं अति मूरष आपनौ, कछु न संवार्यौ काज॥
जे प्रभु दाता मुक्ति कै, तिन पैं मांग्यौ राज॥३२॥
म्हेरी बुधि सब देवतनि, मिलि दीनी बहकाय॥
म्हैं कछु समझ्यौ नांहिं बड, स्वारथ दयौ गमाय॥३३॥
कही बात नारद मुनी, मोकौं यहि मन मांहिं॥
हरि की माया कठिन है, म्हैं मांनी सौ नांहिं॥३४॥
हूं माया मोहित भयौ, भलौं न कीनौं काज॥
भ्रात ईरषा भाय सौं, म्हैं मांग्यौ यहि राज॥३५॥
जे हरि दाता मुक्ति कैं, प्रसंन करै करि ध्यांन॥
मांगी बस्तु अनित्य याहि, मो सम कौ अग्यांन॥३६॥
ज्यौं निर्द्धन धनवंत सौं, मिलि मांगै तुस कोय॥
त्यौं हरि सौं मिलि राज म्हैं, मांग्यौ तुछ जू सौय॥३७॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनियै बिदुर सुजांन॥
जे प्रभु चरनन के परम, सेवक भलैं निदांन॥३८॥
तै पदार्थ संसार कै, कबहूं चाहत नांहिं॥
प्रभु पद मैं दासत्व कौं, वै चाहत मन मांहिं॥३९॥
सुनि आवत ध्रुव कुंवर कौं, हुव अति प्रसंन नृपाल॥
दई बधाई आय जिहँ, तिहं दिय मुक्तामाल॥४०॥

द्विज मंत्रीगन संगलै, राजा ह्वै रथ स्वार॥
गयैहुं सामुहें पुत्र कैं, गृह ल्यांवन अनुसार॥४१॥
मात सुरुचि सुनीति दोउ, उत्तम भ्रात समेत॥
चलै सांमुहें उमगि कैं, ध्रुव सौं मिलिबै हेत॥४२॥
संष नगारै तिहि समैं, बाजन लगै सुढार॥
ध्रुवहिं देषि रथतैं उतरि, नृपति मिलै तिहँ बार॥४३॥
नृप कै नैंननि तैं चलै, आंसू प्रेम प्रकार॥
भयै मनोरथ पूर्ण सब, राजा कै निरधार॥४४॥
प्रभु पद सपरस सौं बिमल, हौय रह्यौ ध्रुव अंग॥
किय प्रनांम पितु मातु कौ, ध्रुव नै सहित उमंग॥४५॥
जांसौ है हरि प्रसंन सब, तासौं प्रसंन सुभाय॥
सुरुचि कहै अैसें बचन, ध्रुव कौं गोद उठाय॥४६॥
ध्रुव अरु उत्तम दोउ मिलै, अधिक प्रीति उपजाय॥
माता मिली सुनीति पुनि, अति आनंद बढाय॥४७॥
कुच जुग तैं पय बढि चल्यौ, द्रिग तैं अश्रु प्रवाह॥
अंग अंग प्रफुलित भयै, बाढ्यौ अधिक उमाह॥४८॥
सबहिंन कह्यौ सुनीति सौं, तैरौ भाग्य विसाल॥
तोहि मिल्यौ सुत आय कैं, ह्वै हैं याहि नृपाल॥४९॥
तैं प्रभु की सेवा करी, आछैं चित्तहिं लगाय॥
प्रभु सेवा सौं लहत सुष, प्रांनी वंछित पाय॥५०॥
ध्रुव अरु उत्तम दुहुँनि इक, करनी पैं करि स्वार॥
लै आयै नृप नगर कौं, करि उछवहिं अधिकार॥५१॥
जांह तांह बिच नगर कैं, तोरन बंधै अपार॥
बृछि लगै कदलीन कै, सौभित द्वारहिं द्वार॥५२॥
आंबन कै पल्लव सहित, फूलमाल सुरसाल॥
बंधी लसत घर मुषन पैं, सोभित सौहिं विसाल॥५३॥
दही फूल फल कलस लै, सबै नगर की नारि॥
सनमुष आई उमगि सब, मंगल गीत जु उचारि॥५४॥
चंदन कौ छिरकाव हुव, गलिन गलिन कै मांहिं॥
पुर बासिन अदभुत रची, रचनां सब पुर ठांहिं॥५५॥
अैसी रचना लषत ध्रुव, आयै अपनैं धांम॥
देत भयै आसिष भली, सब ध्रुव कौं अभिरांम॥५६॥
गेह षचित मणि बउंत बिधि, सुंदर अदभुत भाय॥
ध्रुव आग्या लहि तात की, बसै तांह सुष पाय॥५७॥

दूध फैन सै पलिंग जहँ, रतन जटित बहु भांति॥
सिंघासन सौनेन कैं, कोमल बिछी बिछांति॥५८॥
रतनन कैं दीपक बरत, तिय कैउ फिरि सुढार॥
बउत बाग फुलवारि जहँ, भंवरहिं करत गुंजार॥५९॥
केउ बावडी नग जटित, पंछी करत किलौल॥
चकवा सारस हंस रु पिक, केकी बौलत बौल॥६०॥
उतानपाद जु राज रिषि, पुत्र प्रभाव सुनि देषि॥
बिस्मित ह्वै कैं चित्त मैं, हुव आनंद अलेषि॥६१॥
तरुन जांनि ध्रुव कौ नृपति, दियौ आपनौ राज॥
ह्वै निचिंत बन कौं गयै, आप तपस्या काज॥६२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽध्यायः ॥

(उत्तम का मारा जाना तथा ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, परजापति सिसु मार॥
ताकैं बेटी भ्रमि ध्रुवहिं, ब्याही परम सुढार॥ १ ॥
दोय पुत्र प्रगटत भये, जाकै गर्भ सुठांम॥
एक कल्प अरु दूसरौ, जांनहुँ बत्सर नांम॥ २ ॥
इला वायकी सुता ध्रुव, बरी दूसरी नारि॥
उतकल सुत इक कन्यका, तांकै गर्भ मझारि॥ ३ ॥
षैलन समैं सिकार कैं, उत्तम ध्रुव कौ भ्रात॥
जछिन जुधकरि तिहं हत्यौ, जरी अग्नि मधि मात॥ ४ ॥
यहि सुनि ध्रुव अति क्रोध करि, ह्वै कै रथ पर सवार॥
अलका नगरी जछिन की, तांह गयै उहिं बार॥ ५ ॥
उत्तर दिस की वोर कौ, हिम गिर कैं जो पास॥
ध्रुव नृप दैषी जाय कैं, अलका पुरी प्रकास॥ ६ ॥
संष नाद तब ध्रुव कियौ, सुनि डरपी जछि नारि॥
जुद्ध करन कौं जछि सबै, निकसै सस्त्र संम्हारि॥ ७ ॥
तीन तीन सर सबनि कैं, ध्रुव मारै बिचि माल॥
ध्रुवहिं सराहत सब भयै, सत्रु रु मित्र तिहूं काल॥ ८ ॥

तीस सहस इकलाष जछि, करत भये घमसांन॥
गदा सूल अरु सरना सौं, भयौं जुद्ध तिहँ थांन॥ ९ ॥
ध्रुव कौ च्यार्यौ वोरतैं, लियै सरन सौं छाय॥
हाहाकार लगे करन, सिध सुरगन अकुलाय॥१०॥
इतनैं ही मैं भांन सम, ध्रुव कौ रथ तिहं बार॥
दयौ दिषाई सबन कौं, नभ बिच भलैं प्रकार॥११॥
ध्रुव निज सरसौं जछिन कै, काटे वांन अपार॥
ध्रुव सर भेद सनाह हुव, जछिन अंगहिं सुमार॥१२॥
बांनन सौं कटि जछिन कैं, गिरैहुँ अंग उहिं बेर॥
भूषन जहँ तहं भूमि पैं, परै सुढेरम ढेर॥१३॥
बउत जछि मारैहुं गयै, बचै गयै तैं भाजि॥
ध्रुव तिहिं ठां ठाढे रहै, जुद्ध करन कैं काजि॥१४॥
अदभुत माया प्रगट किय, जछिन इतनै हुँ मांहिं॥
प्रगट भयौ ऐसौ सबद, मनु समुद्र गरजांहि॥१५॥
आंधी धूरि उडी बउत, घन बिजुरनि नभ छाय॥
पाहन रुधिर रु मूत्र मल, बरषत से दरसाय॥१६॥
लगै दिषाई दैंन नग, सिंधू बढ्यौ बहुचाय॥
ब्याघ सिंघ गज सर्प चहुँ, वौरनि फिरत जु धाय॥१७॥
ऐसी बिधि माया प्रगट, कियै जछिन तिहँ बार॥
आय तिहिं समै बचन मुनि, ध्रुव सौं कहै सुढार॥१८॥

॥ मुनयऊचुः ॥

ध्रुव तुम्हारी रिछ्या करी, इहिं बेरहिं भगवांन॥
हतौ तुम्हारे अरिन कौं, राषि तुम्हारौं मांन॥१९॥
प्रांनी बचत जु मृत्यु तैं, लीनै जिहँ प्रभु नांम॥
सुधरत जिन्हकी कृपा सौं, भलै भलै बड कांम॥२०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते दसमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ एकादसोऽध्याय: ॥

(स्वायंभुव मनु का ध्रुव जी को युद्ध बंद करने के लिए समझाना)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, यौं सुनि रिषि कै बैंन॥
ध्रुव नारायन अस्त्र कौं, सांधत भयै सुषैंन॥ १ ॥
तब नारायन अस्त्र सौं, माया गई बिलाय॥
जइसैं उपजत ग्यांन कैं, सब कलेस मिटि जाय॥ २ ॥
अरु नारायन अस्त्र तैं, छूटै बांन अपार॥
होत भयै वे बांन लगि, बउंत जछिन संघार॥ ३ ॥
कोऊ बचै है जछि सौ, फिरि रिस करि हिय मांहिं॥
जुद्ध करन ध्रुव सौं तबै, आए वाही ठांहिं॥ ४ ॥
ध्रुव निज बांनन सौं तिन्हैं, टूक टूक किय फेरि॥
तैं रबि मंडल भेदि कै, गयै सबै उहिं बेरि॥ ५ ॥
जछिन मरत लषि तिहि समैं, स्वायंभुव मनुराय॥
ध्रुव कौं समझांवन तबै, आए तांह सुभाय॥ ६ ॥

॥ मनुरुबाच ॥

मनु बोलै हे पुत्र ध्रुव, पाप रूप है क्रौध॥
तासौं मारै जछिन तुम्ह, अबै धरौं चित्त बौध॥ ७ ॥
अबै करहुं मति क्रोध यहि, हम्ह कुल जोगि न कर्म॥
जछिन मार वौ उचित नहिं, तुम्ह हौ जुत हरि धर्म॥ ८ ॥
तेरै भाई कौ कियौ, किहूँ इक जछि संघार॥
अरु तुम्हनै अति क्रौध करि, मारै जछिन अपार॥ ९ ॥
जीवन कौं दुष दीजियैं, साध पंथ यहि नांहिं॥
तुम्ह तौ हरि कै भक्त हौ, यहि समझौ मनमांहिं॥१०॥
तुम्ह प्रभु की सेवा करी, मन बच कैं निरधार॥
अब आगैं ध्रुव लौक तुम्ह, पैहौं भलैं प्रकार॥११॥
ध्यांन प्रभू कौ तुम्ह करत, सत पुरुसनि कैं मांनिं॥
तातविक मारग चलतहँ, कृत कियै कहा जांनिं॥१२॥
सहि रहनौं करूणां अधिक, सबसौं द्रिष्टि समांन॥
इन्ह बातन तैं हौत हैं, अधिक प्रसंन भगवांन॥१३॥
प्रसंन हौत भगवांन जब, जीव मुक्त है जात॥
दुष सबहीं संसार कै, ताहीं छिन बिनसात॥१४॥
उतपत्ति पालन प्रलय जग, प्रभु माया सौं जांनिं॥
अरु या जगतहिं निमत्त हरि, सब गुन पूरन मांनिं॥१५॥

पंचभूत कैं तन बनै, तिय अरु पुरुष स्वरूप॥
तिन्हसौं उपजत है इहै, सबही श्रिष्टि अनूप॥१६॥
काल सक्ति सौं करत प्रभु, सब रचना संसार॥
अरु न्यारे सबतैं रहत, तिनकैं चरित अपार॥१७॥
सौ बहि काल अनंत है, आदि अंत तिहि नांहिं॥
मारत उपजावत सदा, जीवनिकौं जग मांहिं॥१८॥
सत्रु मित्र कौऊ काल कै, नांहिंन काहू भाय॥
कालहिं कैं आधीन यहि, सब ही जगत सुभाय॥१९॥
आयुष कौ सब बात कौ, कालहिं प्रभू निदांन॥
अति अदभुतहुँ रचनां रचि, कर्त्ता उहिं जु भगवांन॥२०॥
कारन या संसार कौ, कोइ बतावत कर्म॥
कोई दइब सुभाव कोइ, कहत न जांनत मर्म॥२१॥
लीला जांनत नांहिंनै, उहिं ईस्वर की कोइ॥
उतपत्ति पालन प्रलय जग, ईस्वर ही सौं होइ॥२२॥
जछिनहिं मार्यौ नांहिंनै, हे ध्रुव तेरौ भ्रात॥
है दईब सब बात कौ, कारन जांनहुं तात॥२३॥
वै ईस्वर उत्पत्ति रु प्रलै, करत जगत बहुभाय॥
परि अहंकार जु रहित है, ता क्रम गुन लिप्त नाय॥२४॥
वाही ईस्वर की प्रकृति, सब कछु करत उपाय॥
है ईस्वर आधीन यहि, सबै जगत बहु भाय॥२५॥
अब तिन्हहीं कै सरन तुम्ह, रहौ सदा चित लाय॥
जासौं अति आनंद उर, प्रगट होय सुषदाय॥२६॥
अभगत मृत्यु भक्तनि अभय, देत सरन जिहिं जावु॥
नाथ बंध्यौ वृष बलि बहत, बह बलि देव सुभावु॥२७॥
पांच बरस कै तुम्ह जु ध्रुव, सुनि माता कै बैंन॥
बन मैं जाय कियै प्रसंन, जे प्रभु सब सुष दैंन॥२८॥
हरि मूरति आनन्दमय, तिनकी भक्ति सम्हारि॥
अहंता ममता सकल बिधि, तुम्ह देहौ सब टारि॥२९॥
क्रोध महाअघ मूर्ति है, दूरि करन कल्यांन॥
ताकौं अब तुम्ह वसि करौ, चित बिचारि सुभ ग्यांन॥३०॥
क्रौधी तैं डरपत सब, यहै बात सुप्रमांन॥
तातें क्रोध न करत है, जै कौं जन बुधिवांन॥३१॥
सिव कौ भक्त कुबेर है, जाकहुँ सेवक जछि॥
तिनकौ मारि कुबेर की, अवग्या करी प्रतछि॥३२॥

तुम्ह अब प्रसंन कुबेर कौं, करौ भलै अनुसार॥
नहिं तौ अति मय होयगौ, तुम्ह कुल कौ निरधार॥३३॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

यौं करि मनु उपदेस मुनि, सहित गयै निज ठांम॥
बचन मांनि कैं ध्रुव तबै, करत भयै परिनांम॥३४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते एकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(ध्रुव जी को कुबेर का वरदान और विष्णु लोक की प्राप्ति)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय ध्रुव, फिरै जुद्ध निरवेरि॥
तब सिध चारण संगलै, ध्रुव पै आय कुबेरि॥ १ ॥

॥ धनद उवाच॥

कहत भयै प्रसंन हुव ध्रुव, तुम्हहिंसौं हितू पागि॥
दादे की आग्यां तुम्ह सु, मांनि बैर दिय त्यागि॥ २ ॥
तुम्ह नहिं मारै जछि रु नहिं, जछिन हत्यौ तुम्ह भ्रात॥
कर्त्ता उतपति प्रलय कौं, निश्चै काल विष्यात॥ ३ ॥
झूंठहिं मांनत जीव इह, आपन कौं अहंकार॥
तातैं तुम्ह सब ठौर ध्रुव, जांनौ प्रभु करतार॥ ४ ॥
मुक्ति काज हरि चरन ही, भजौ भलैं चितलाय॥
वै हरि माया सौं मिलै, अरु न्यारै अनुभाय॥ ५ ॥
तुम्ह सेवक भगवांन कैं, हौ बर जोग्य सुढार॥
तातै हम्ह पै मांगियै, हे ध्रुव बर निरधार॥ ६ ॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय ध्रुव, सुनि कुबेर कै बैंन॥
मांग्यौ बर हरि भक्ति जो, पूर्न मुक्ति सुष दैंन॥ ७ ॥
बर कुबैर दै कैं ध्रुवहिं, भयै जु अंतरध्यांन॥
ध्रुव आयें निज नगर कौं, बाजत भयै निसांन॥ ८ ॥
कीनैं जिग्य अनैंक ध्रुव, अरु किय हरि की भक्ति॥
लषत भयै सब ठौर हरि, प्रभु सौ ह्वै अनुरक्ति॥ ९ ॥

परजा सब मांनत भई, ध्रुवहिं पिता कैं भाय॥
बरष हजार छतीस ध्रुव, कियौ राज सुष पाय॥१०॥
ता पीछैं दिय पुत्र कौं, अपनौं राज निदांन॥
ध्रुव जांन्यौ सब जगत कौं, झूठौ स्वप्न समांन॥११॥
तिय सुत गृह अरु राज्य धन, सबही झूठौ जांनिं॥
उदासीनता अधिक ध्रुव, अपनै मन मैं आंनिं॥१२॥
गयै जु बदरीनाथ दिस, तजि जग झूंठि विनांन॥
तहं सनांन करिकै कियौ, प्रभु सरुप कौ ध्यांन॥१३॥
भक्ति करत प्रभु की भलैं, रह्यौ प्रेम चित्त छाय॥
नैंन सजल रोमांच तन, दीनी सुधि बिसराय॥१४॥
ससि सम नभ तैं उतरतौ, ध्रुव इक लष्यौ विमांन॥
लैं आवत द्वै पारषद, सौभा जुत बुधिवांन॥१५॥
सुंदर स्याम रु चतुरभुज, लसत मुकट अभिरांम॥
अैसें हरि कैं पारषद, लषि ध्रुव कियौ प्रनांम॥१६॥
कृस्न चंद्र कै चरण मैं, चितहुँ नमित कर जोरि॥
अैसे ध्रुव कौं लषि तांह, पारषद कहिं निहोरि॥१७॥
पारषद ध्रुव हरिभक्त सौं, बोलै नन्द सुनन्द॥

॥ सुनंदनंदा ऊचतुः॥

पांच बरस कै तुम्ह ध्रुव, प्रसंन कियौ गोविन्द॥१८॥
ता प्रभु कै हम्ह पारषद, आयै सहित हुलास॥
तुम्ह कौं लै जावै निमित्त, अब ध्रुव लोक निवास॥१९॥
परिकरमा जिहिं लोक की, ससि नक्षत्र रबि जु दैत॥
तिहिं ठां चलौ उछाह धरि, तुम्ह ध्रुव भक्ति निकैत॥२०॥
बड्डे तुम्हारै जहँ कौउ, पहुँचन पायै नांहिं॥
प्रभु की क्रिपा प्रभाव सौं, तुम्ह बसिहौं उहिं ठांहिं॥२१॥
सब बिमांन मैं श्रेष्ठ हौं, इहां पठ्यौ प्रभु चांहिं॥
हे बड्डु आर्बल धरन ध्रुव, तुम्ह अब चढियै यांहिं॥२२॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

पारषदन कैं बचन यै, सुनिकैं ध्रुव सुषपाय॥
करि सनांन मुनि जनन सौं, अति मंगल करवाय॥२३॥
दै परिक्रमां विमांन की, करि पार्षदनि प्रनांम॥
लागै चढन बिमांन पर, पहुँचन कौ सुभ ठांम॥२४॥
तबहीं ध्रुव ह्वै चतुर्भुज, धरि तन सुंदर स्यांम॥
बैठे भलै विमांन पर, लहि सरूप अभिरांम॥२५॥

बाजै बजयै सुरगननि, किय गन्धर्वनि सु गांन॥
बरषै सुमन रु मुनिनि कियं, जय जय सब्द बषांन॥२६॥
अपनी मातु सुनीति की, ध्रुव सुध किय तिहिं बार॥
हूं ध्रुव लोकहि जात अब, तजि मातहिं निरधार।२७॥
पार्षदनि तब जांनिकैं, यहि ध्रुव कौं अभिप्राय॥
माता जात बिमांन चढि, ध्रुव कौ दई दिषाय॥२८॥
जिहं जिहं लौकनि हौय ध्रुव, जात भये उहिं बार॥
तिहं तिहं लौकनि देवता, बरषै पहुप अपार॥२९॥
ध्रुव देषै सूर्यादि ग्रह, उच्च अैक तैं अैक॥
ध्रुव पुर गयै त्रिलौक परि, सप्त रिषिन कौं छैक॥३०॥
सब ऊपर ध्रुव लौक है, रूप प्रकास प्रमांन॥
बड़े धर्म धारी कोउ, तैं पहुँचत उहिं थांन॥३१॥
हरि भक्तन कै दास अरु, समदरसी जें सांत॥
तैं पउँचत उहिं लौक करि, प्रभू भजन बहुँ भांत॥३२॥
तिहूँ पुर कैं चूडामणि, ध्रुव करि हरि की भक्ति॥
जोति चक्र सब फिरत हैं, ध्रुव फैरन की सक्ति॥३३॥
प्रचैतानि कैं जिग्य मैं, ध्रुव महिमा बहु भाय॥
नारद मुनि गावत भयै, आछै बीन बजाय॥३४॥

॥ नारद उवाच॥

नारद बोलै परम गति, ध्रुव पाई सुषरूप॥
सौ ग्यांनी हूं लहत नहिं, पावै कहां सुभूप॥३५॥
पांच बरस कैं ध्रुव बिंधे, मात दुरबचन बांन॥
मो आग्यां सौं जाय बन, प्रसंन कियैं भगवांन॥३६॥
बरष पांच छै मांहिं प्रभु, पदलह्यौ अल्पही द्यौंस॥
क्षत्री ह्वै दिन बहुं जतन, करि मन करत न हौंस॥३७॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय यहि , ध्रुव कौ चरित उदार॥
तुम्ह कौं कह्यौ सुनाय हम्ह, अपनी मति अनुसार॥३८॥
ध्रुव चरित यहि जो सुनैं, ताकै पाप मिटांहीं॥
तैज मांन धन जस बढै, प्रभू भक्ति सरसांहीं॥३९॥
ब्राह्मण बैष्णव की सभा, ध्रुव पवित्र जस जाप॥
प्रात रु संध्या ह्वै सुचित, पाठ करै सुभ आप॥४०॥
पूरन मांसी द्वादसी, अमावस्यां संक्रांति॥
इन्ह दिन कहै सुनै कोउ, लहै जु भक्ति बहुँ भांति॥४१॥

जो कोउ अग्यांनीन कौं, करैं ग्यांन उपदेस॥
तासौं हौंहीं प्रसंन अति, प्रभु कर्त्ता बिस्वेस॥४२॥
जे ध्रुव गृह तजि बन गए, प्रभू सरन मन राषि॥
तिनकौं याही चरित हम्ह, तुम्हहिं कह्यौ अभिलाषि॥४३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादसोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदसोऽध्यायः ॥

(ध्रुव वंश का वर्णन तथा राजा अंग का चरित्र)

॥ सूत उबाच ॥

दोहा - सूत कहत मैत्रेय कै, सुनियै बचन सुढार॥
फैरि बिदुर पूछत भयै, मन संदेह प्रकार॥ १ ॥

॥ बिदुर उबाच ॥

नारद जिनकैं जिग्य मैं, कीनौं ध्रुव गुनगान॥
रहै प्रचेता कौनुं वै, किहिंकै पुत्रहिं निदांन॥ २ ॥
बडै भक्त नारद मुनी, मुदित फिरत सब ठांहिं॥
प्रभु सेवा की विध जिन्हनि, प्रगट करी जग मांहिं॥ ३ ॥
अपनैं धर्म सुभाव जिहिं, अैसै पुरुष सचेत॥
जिन्हि प्रभु पूजै बात बह, नारद कही सचेत॥ ४ ॥
तिन्ह मुनि कथा जु जिग्य मैं, कही हौय कछु और॥
सौ सब तुम्ह हम्ह सौं कहौ, हे मुनि द्विज सिर मौर॥ ५ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय ध्रुव, सुत इक उतकल नांम॥
तिन्ह ध्रुव पांछै राज्य नहिं, लेत भयौ उहिं ठांम॥ ६ ॥
ध्रुव कौ सुत उतकल बहै, ग्यांनीं रह्यौ अनूप॥
सबही ठौरन मैं लषत, भयौ आतमा रूप॥ ७ ॥
आत्मा आनंद रूप अरु, ग्यांन रूप निरधार॥
करत रह्यौ ताकौ बहै, अपनै चित्त हुँ विचार॥ ८ ॥
जोग अग्नि सौं मैल मन, अरु सब कर्म जराय॥
ब्रह्म रूप निज जांनिकैं, तामैं रह्यौ समाय॥ ९ ॥
जड बहरौ अंध बावरौ, लोकनि जान्यौ वाहिं॥
ध्रुव सुत वत्सर दूसरौ, राज दियौ मिलि ताहिं॥१०॥

बत्सर कैं पतनी हुती, तिहिं स्वर वीथि जु नांम॥
प्रगट भयै षट पुत्रहिं सुभ, ताकैं गर्भ सु ठांम॥११॥
तिग्म केतु इष रु ऊर्ज वसु, जय तिनकै हूं नांम॥
पुष्पार्ण जुत छहुं कहीयत, है याही भुव ठांम॥१२॥
बडौ भयौ पुसपार्ण सुत, पुत्र छहुँन कैहि मांहिं॥
प्रभा रु दोषा द्वै भई, स्त्री तिहूँ गृह ठांहिं॥१३॥
प्रात मध्य दिन सायं हुव, पुत्र प्रभा कैहिं च्यार॥
निसिथ प्रदौष रु ब्युष्ट हुव, दोषाहुँ पुत्र सुढ़ार॥१४॥
व्युष्ट बिबाहत भयै तिय, पुस्करणी तिहूं ठांम॥
पुत्र सर्वतेजा सुंभयौ, ताकै अति अभिरांम॥१५॥
ताकै तिय आकूति तै, चक्षु सुत भयौ सुजांन॥
ताकै द्वादस पुत्रनि हुव, सुभ गुन रूप निधांन॥१६॥
कुत्स द्युम्न सत्यवंत पुर, अग्निष्टोम जु त्रित॥
अतिरात्र प्रद्युम्न अरु सिवि, उल्मुक रित अरु व्रति॥१७॥
पुनि उल्मुष ब्याहत भयौ, इक पुस्करणी बांम॥
ताकौ उपजै पुत्रनि छह, अब सुनि तिनकै नांम॥१८॥
अंग सुमन ख्याति अंगिरा, क्रतु गय जु सप्रमांन॥
तिया सुनीथा अंग की, तिह सुत बेणु अग्यांन॥१९॥
जाकै दुष सौं अंग नृप, निकसि गयै बन आप॥
रिषी सुरनि जा बेणु कौं, मार्यौ दैकैं श्राप॥२०॥
हाथ दाहिनौ फेरि उहिं, मथ्यौ रिषिनि तिहँ बार॥
तामैं तैं प्रगटत भयै, प्रथु प्रभु कै अवतार॥२१॥

॥ बिदुर उबाच॥

पूछत बिदुर जु अंग नृप, हुतै धर्म कैं अैंन॥
तिन्हकैं क्यौं उपजत भयौ, अति पापी सुत बैंन॥२२॥
अरु रिषि तो धरमातमा, कहियत है बहु भाय॥
तिन्हिनि श्राप क्यौं बेनु कौं, दियौ सुकहुँ समझाय॥२३॥
दिगपालन कौं अंस बहु, कहियतु है नृप मांहिं॥
ताकौं दैनौं श्राप तौ, उचित कह्यौ है नांहिं॥२४॥
चरीत सुनीथा पुत्र कौं, मोकौं कहौं बनाय॥
श्रद्धा जुत मैं भक्त तुम्ह, पर ज्वरवेता भाय॥२५॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, एक समैं नृप अंग॥
कियौ जिग्य अस्वमेध कौ, आरंभ धारि उमंग॥२६॥

चौपाई - तामैं भाग जिग्य कौ लैंनहिं। बेद मंत्र पढि रिषि बुधि अैंनहिं॥
देवतानि कौं लगै बुलांवन। तिन तहं कियौ नांहिनैं आंवन॥२७॥
तब सबही रिषि गन तिहं बारा। नृप सौं बोलै बचन सुढारा॥
भाग दैंन हम्ह सुरन निमित्तहिं। हौम अग्नि मधि करत जू नित्तहिं॥२८॥
भाग देवता लेत न आयी। सौ व्रतांत नहिं जान्यौ जायी॥
अरु तेरे सर्द्धा है नृप अति। हम्ह नहिं बेद मंत्र मैं चूकत्ति॥२९॥
अरु अपराध हुतौ जिग्य मांहीं। देवन कौं बनि आयौ नांहीं॥
किहं कारन सुर भाग न लेतहिं। जान्यौ जात न सौ कछु हेतहिं॥३०॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

पंडित बडे जु सभा कै मांहीं। तिन्ह सौं नृप पूछ्यौ उहि ठांहीं॥
भाग लैंन को सुरनहिं आवत। मो अपराध कहा दरसावत॥३१॥

॥ सदस्य तय ऊचुः॥

यहि सुनि सबै सभा कैं पंडित। नृप सौं बोलै अति गुन मंडित॥
नृप तुम्ह यहै जनम कै मांहीं। पाप कछू अब कर्यौ जु नांहीं॥३२॥
पूर्व जनम कौ पाप जु कोई। तातैं सुत न तिहारै होई॥
तातै तुम्हहू संतांन निमित्त। जिग्य रच्यौ आछै दै चित्त॥३३॥
प्रभु करि क्रपा तबै सुत दैहैं। भाग जिग्य कौं तब सुर लैहैं॥
सबै कामनां कैं हरि दाता। टारन बउत दुष्ष उतपाता॥३४॥
यहि बिचारि सुत हित आधीनां। भाग्य जिग्य मैं विस्नुहिं दीनां॥
अग्नि मांहिं तैं जोति स्वरूपा। निकस्यौ अैक जु पुरुष अनूपा॥३५॥
पात्र षीर सौं भर्यौ सुढारा। लीनैं कर मांहीं निरधारा॥
तबै रिषिन की आग्यां पायी। बहै पात्रहिं लियै सुषछायी॥३६॥
आप सूंघि निज तिय कौं दयौ। रांनी सौई जहँ भछिन कियौ॥
तांसौ गर्भ रह्यौ सुतहिं भयौ। नृप कैं गृह अति उछव ठयौ॥३७॥
अघ कौ सुत मृत्यु सुता सुवांनी। नृप की तियां सुनीथा रांनीं॥
ताकौपुत्र अधरमी जु भयौ। तिन जीव मार सुभाव सुलयौ॥३८॥
बालपनैं मैं बीच सिकारहिं। बउंत जीव कौ करै संघारहिं॥
तिहँ बालक कौ बेण जु नांमा। करही बउंत पाप कै कांमा॥३९॥
बालक जे कैउ षेलै संग। करै दाबि गरदिन कौऊ भंग॥
सिछा बउंत अंग नृपहिं दई। सौ कछू पुत्र मांनि नाहिं लई॥४०॥
राजा दुषित होय निरधारा। आप तबै यहि कियौ बिचारा॥
हरि की क्रपा होत जिहं ऊपर। नहिं संतांन होत जिनकैं घर॥४१॥
वे कपूत कौ दुष नहिं जांनत। पुत्र हौंन अभिलाष सुठानत॥

पुत्र कपूत हौय जो जांकै। कीरति धर्म रहै नहिं ताकै॥४२॥
होय बिरोध जु बंधुन मांहीं। बउत भांति तै दुष प्रगटांही॥
अैसै पुत्र कपूतहीं कोई। जानै अपनौं मूरष सोई॥४३॥
सुत सपूत तैं अरु इक भायी। भलौ जू पुत्र कपूत कहायी॥
जाकै दुष सौं तजि घर बारा। जइयै हरि कै सरन सुढारा॥४४॥
राजा करिकैं यहै बिचारा। पुत्रहिं सोवत तजिहुँ उहिं बारा॥
गोपिहिं समैं जांनीं अधरांतं। निकसि आप बनकौं भये जांतं॥४५॥
मंत्री नृपकौं ढूंढत फिरै। राजा नाहिं पायौ दुष भरै॥
परजा तबै रिषिनन सौं कह्यौ। अब कहा करैं जात नृप रह्यौ॥४६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दसोऽध्यायः ॥

(राजा वेन की कथा)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय भृगु, आदि रिषिन यहि जांनि॥
परजा सब राजा बिनां, निश्चै ही पसु समांनि॥ १ ॥
तबै रिषिनि नृप बेण कौं, कियौ राज अभिषेक॥
राज बेण कौ सुनि भयौ, भाजै चोर जितेक॥ २ ॥
राज पाय कै बैण नृप, होय मत्तहुँ निरधार॥
करन अवग्यां बडन की, लाग्यौ बउंत प्रकार॥ ३ ॥
रथ पै चढि कैं बेण नृप, मदमत्त करी समांन॥
फिरत भयौ बिच प्रिथी कैं, हिय अति धरै अग्यांन॥ ४ ॥
जिग्य दांन पूजा कोउ, करहुं न काहू भाय॥
डौंडी अपनै देस म्है, अैसी दई फिराय॥ ५ ॥
लषि अनीत नृप बेण की, द्विज मंत्री तिहं बार॥
सबै एकठै होय मिलि, लागै करन बिचार॥ ६ ॥
परजा कौं दुहुँ वोर तैं, दुष प्रापति भय आय॥
ताकौं कहा बिचार अब, लषियत कछु न उपाय॥ ७ ॥
बिनां नृपति दुष चोर कौं, तासैं राजा कीन॥
सौ राजाहूं नैं अधिक, दुष जु प्रजाकौं दीन॥ ८ ॥

बेण यहै अति दुष्ट है, ताकौ हम्ह दिय राज॥
सौ हम्ह हीं कौं देत दुष, करत महा अघ काज॥ ९ ॥
जइसै कोऊ सांप कौ, पय प्यावत करि प्यार॥
काटि षात वांकू बहै, चित मैं कछुन बिचार॥१०॥
अब यांकौ इक बेर जो, हम्ह देषैं समझाय॥
तौ हम्हकौं दोष न लगैं, नृप अधर्म कौं आय॥११॥
जो हम्हरौ उपदेस नहिं, मांनेगौ अग्यांन॥
तौ हम्ह यांकौं श्राप दैं, करिहैं भस्म निदांन॥१२॥
याहि बिचार करि जाय रिषि, बोलै राजा पास॥
जोग्य बात ही कहन सौं, लागै करन प्रकास॥१३॥

॥ मुनय ऊचुः ॥

आयु कीर्त्ति बल लछमी, जासौं अधिक बढाय॥
ऐसों कहत जु बचन हम्ह, सौ तू सुनि चितलाय॥१४॥
धर्म करै प्रांनीं कौऊ, उत्तम लोकहुँ सुजाय॥
धर्म करै निहकांम सौ, लहै मुक्ति सुषदाय॥१५॥
परजा पालन धर्म तो, सौं कीजौ नृप आप॥
बिनु परजा पालैं रहै, नहिंन राज परताप॥१६॥
परजा की रछया करै, जो राजा बहु भाय॥
सौ दोनूं ही लोक मैं, रहै सदा सुष पाय॥१७॥
जिग्य हौंहि जिहिं राज मैं, प्रभू निमत्त निरधार॥
ता राजा पर प्रसंन अति, हौंहिं भलै करतार॥१८॥
प्रसंन हौय भगवांन जब, कछु दुर्लभ है नांहिं॥
प्रभु कै सेवक सुर सबै, यहि जानौं मनमांहिं॥१९॥
सर्व देव मय बेदमय, अरु जिग्य मय भगवांन॥
करैं जग्य तिन निमत्त तिह्न, तूं मति बरजि निदांन॥२०॥
जिग्य कियैं तैं दैवतां, प्रसंन हौय निरधार॥
करैं मनोरथ पूर्न सब, बउँत भांति सुभ ढार॥२१॥

॥ बेणुबाच ॥

यहि सुनि बोल्यौ बेण तुम्ह, सबहीं हौंहिं अग्यांन॥
अति अधर्म कौं धर्म करि, जांनत हौ जु निदांन॥२२॥
तिया जु निज पति छोडि कै, करै और सौं प्रीति॥
ताकी गति नहिं होय त्यौं, तुम्हरी नहिं गति रीति॥२३॥
राजा है ईस्वर तिहँ जु, करै अवग्या कौइ॥
तांकी गति किहुं भाय तैं, कबहूं नाहिं हौइ॥२४॥

बह कौ हरि जहं की करत, तुम्ह जु भक्ति चितलाय॥
ताकौ हम्ह जांनत नाहिं, कहौ भेद समझाय॥२५॥
ब्रह्मा बिस्नु कुबेर सिव, इन्द्र वायु ससि भांन॥
मेघ रु अग्नि समुद्र जुत, सब यहि प्रिथी सथांन॥२६॥
इतै आदि सब देवता, बसत अंग नृप मांहिं॥
तासौं नृप ही देवमय, जांनौं निज उर ठांहिं।२७॥
तांतै म्हेरै ही लियैं, जिग्य करौ सुभ तौर॥
मोही कौं बलदेहुँ सब, मोतैं भलौ न और॥२८॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

अैसैं मद जुत बेन नैं, कहै बचन बिनु ग्यांन॥
रिषि आग्यां मांनी नाहिं, करिकैं अति अभिमांन॥२९॥
तब रिसाय रिषि बेण पैं, बोलै आप समांहिं॥
या पापी कौं मारियैं, राज जोग्य यहि नांहिं॥३०॥
जीवैगौ तौ जगत कौ, यहै करैगौ नास॥
निंदा करत जू बिस्नु की, यांहिं न ग्यांन प्रकास॥३१॥
जिन्हहीं प्रभु की क्रपा सौं, इन पायौ है राज॥
निंदत ताही प्रभू कौं, करत महा अघकाज॥३२॥
यौं कहि निजी फुंकार सौं, रिषिनि बेण कौ मारि॥
फिरि अपनैं आश्रम गयै, मन तैं क्रोध निवारि॥३३॥
मृतक देह ही बेण की, तिहिं रिछा कियै माय॥
जांनी रिषि ही करहिंगै, कछू क्रपा किहुं भाय॥३४॥
करि सनांन रिषि इक दिनां, बैठि सरस्वती तीर॥
करत रहै हरि की कथा, आपस मांहिं सधीर॥३५॥
हौत उपद्रव प्रजा मैं, बउँत लष्यौ तिहं बार॥
लूटत चोर प्रजांन कौ, जांह तांह निरधार॥३६॥
आपस मैं दुष दैत अति, प्रजा एक कौं एक॥
बढै उपद्रव नृप बिनां, प्रिथवी मांहिं अनैंक॥३७॥
राज्य न करनौं जोग्य है, ब्राह्मण बंस जु मांहिं॥
तातैं राज कियौ नाहिं, रिषीस्वरनि नृप ठांहिं॥३८॥
द्विज जन विचार्यौ अंग हौं, महा सुषद भूपाल॥
नष्ट भयौ तिहिं बंस नहिं, चहियै अब इहंकाल॥३९॥
यहि बिचार रिष बेण की, जंघा मथी तिहिं बार॥
तामैं तैं प्रगटत भयौ, यक बाहुक विकरार॥४०॥

कउवा सौं कारौ बहै, लघु लघु हाथ रु पाव॥
नैंन कैस ताकैं अरुन, अति कुरुप दरसाव॥४१॥
बचन कह्यौ उन रिषिन सौं, कहा करौ कहि देहुँ॥
रिषिनि कह्यौ वासौं तबै, बैठि यहै तुव गेहुँ॥४२॥
ताकौ नांव निषाद भौ, तिहं बंसी जें कौय॥
बसत भयै पर्वतन मैं, भील कहावत सौय॥४३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्दसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु का आविर्भाव और राज्याभिषेक)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - कह मैत्रय तब बेण की, भुजा मथि दुहूँ फेरि॥
तिन्हमैं तैं इक पुरुष इक, तिय प्रगटी उहि बेरि॥ १ ॥
तिन्हकौं प्रभु कौ अंस लषि, बोलै रिषि सुभढार॥

॥ रिषिय ऊचुः॥

पुरुष बिस्नु कौ अंस यहि, तिय लछमी अवतार॥ २ ॥
ह्वै हैं नृप बिष्यात अति, इहै पुरुष पृथु नांम॥
अरु इह तिय रांनी अरचि, ह्वै हैं पृथु कैं धांम॥ ३ ॥
जगतहिं पालन कैं निमत्त, राषन धर्म प्रकार॥
यै दुहुँ पतनी पुरुष हुव, हरि कमला अवतार॥ ४ ॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

उन्ह दुहुँ तिय अरु पुरुष की, कीनी द्विजन सराह॥
फूलन की बरषा भई, भुव बिचु भयौ उछाह॥ ५ ॥
नृत्य करत भई अपसरा, किय गंधर्वनि गांन॥
बजत भयै दुंदुभि भलै, सबही देव सथांन॥ ६ ॥
पितर देवता रिषि सबै, आयै पृथु कै पास॥
हरषित ह्वै आनंद जुत, हिय अति धरै हुलास॥ ७ ॥
चिह्न हरि कइसै बिधि लषै, पृथु कर दहनैं मांहिं॥
देष्यौ पंकज कौ चिहन, पुनि पायन कै ठांहिं॥ ८ ॥

इन्हहिं जांनि भगवांन कौ, अंस प्रगट निरधार॥
पृथुहिं राज अभिषेक सब, लगै करन तिहं बार॥ ९ ॥
नदी सिंधु नग नाग भुव, स्वर्ग पंछी मृग गाय॥
भेंट करी पृथु कौं सबै, अप अपनै समल्याय॥१०॥
भयौ राज अभिषेक जब, रांनी सहित नृपाल॥
सौ भावंत भयै बउँत, सब लषि होत निहाल॥११॥
सिंघासन सउबर्ण कौ, नृपहिं कुबेर सुदीन॥
छत्र चंद्रमा सौ बरुन, पृथु कौं भेंट जु कीन॥१२॥
पवन चंवर दीनौं सुभग, दई धर्म मणिमाल॥
जम दीनौं इक दंड दीय, इंद्र जु मुकट रसाल॥१३॥
अरु ब्रह्मा दीनौं कवच, दियौ सरस्वती हार॥
चक्र सुदर्सन हरि दियौ, लछमी सौभ अपार॥१४॥
महादेव दीनौं षड़ग, जिहं दसचन्द्र जु नांम॥
दिई भवांनी ढाल सत, चंद्र नाम अभिरांम॥१५॥
विस्वकर्मा नैं रथ दियौ, ससि असु दियै सुढार॥
आसीरबाद दयौ रिषिनि, सिंधु संष सुषसार॥१६॥
अग्नि धनुष रवि बांन दिय, पृथी षडाऊ दीन॥
स्वर्ग पुहप बरषा भली, भांति नृपति पर कीन॥१७॥
नृत्य गीत वादित्र बहु, दिय षेचरनि सुभाय॥
रथ पंथा पर्वत नदिन, दियौ अधिक सुषपाय॥१८॥
सूत रु मागध जै सबै, बंदीजन जु अनैंक॥
किय असतुति जब पृथु नृपति, बोलै सहित विवैंक॥१९॥

॥ पृथु उबाच ॥

हे मागध हे सूत हौ, सुनहुँ बंदी जन बात॥
अबही तौ हम्ह गुन कछू, प्रगट न किये बिष्यात॥२०॥
मौं असतुति करि हौ कहा, तुम्ह यहि बेर बनाय॥
बिनु गुन कीनैं ही कछू, असतुति सोभ न पाय॥२१॥
मो असतुति तौ करहुंगे, सब तुम्ह भलै बिचारि॥
पैं हरि कौ गुन बरनिबौ, आछौ है निरधारि॥२२॥
अरु जो तुम्ह यहि बरनि हौ, करि विचार हिय ठांहिं॥
अैसे अैसे हौंहिगैं, आगै गुन तुम्ह मांहिं॥२३॥
फिरि जो वै गुन हौंहि नहिं, होय जगत मैं हांसि॥
तांतै म्हैरे गुन लषौ, बरनहुँ जबै प्रकासि॥२४॥
अरु अपनैं आगैं बड्डे, स्तुति करवावै नांहिं॥
जो कोउ अस्तुति करै तौ, लज्जित है दबि जांहिं॥२५॥

हम्ह तौ अबहीं गुन कछू, प्रगट कियै हैं नांहिं॥
झूठी बडाइ कौंनु बिधि, करवांवै जगमांहिं॥२६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचदसोऽध्यायः ॥ १५ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(वन्दीजन द्वारा महाराज पृथु की स्तुति)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, यौं सुनि नृप कैं बैंन॥
प्रसंन भयै बंदीजन रु, मागध सूत सुषैंन॥ १ ॥
करत भयै अस्तुति तबै, नृप की भलैं बनाय॥
धरि उमंग हिय मैं अधिक, पृथु सौं चाह बढाय॥ २ ॥

॥ गायका उबाच ॥

हे नृप तौ गुन बरनवे, हम्ह समरथ सब नांहिं॥
तुम्ह हरि कैं अवतार हौ, प्रगट इहैं भुव ठांहिं॥ ३ ॥
सुरगुरहूं नहिं कहिं सकैं, तुम्हरै हुँ बिक्रम राय॥
जथा सक्ति कछु कहत हैं, हम्ह रिषि आग्या पाय॥ ४ ॥
यहि नृपति अति धरमात्मा, राषत सुभ मरजाद॥
दंड दाता पापिन हुँ कौं, साधजनन अहलाद॥ ५ ॥
लौक पालनकुँ अंस यहै, धरत आप तन भार॥
हितू करता प्रजान कैं, पृथु राजहिं निरधार॥ ६ ॥
समैं पाय यहि प्रजा कौ, द्रिव्य देतहिं अरु लेत॥
जिहं प्रकास है भांन सम, सब गुन पूर्न बिजेत॥ ७ ॥
यांकौ कौ अपराध जो, करै प्रजा कै मांहिं॥
तौ पृथवी ज्यौं सहि रहै, क्रौध धरै चित्त नांहिं॥ ८ ॥
बरसैंगे जब मेघ नहिं, तब नृप इंद्र समांन॥
रिछया करि हैं प्रजा की, सुष दैहैं जु निदांन॥ ९ ॥
मुष सीतल सम चंद्रमां, देषत जुत अनुराग॥
सुंदर उज्जल हास करि, सुषद प्रजा कै भाग॥१०॥
या राजा कै पंथ कौं, कौ जांनत हैं नांहिं॥
करि गुप्त कारिज भलै गुन, धरत बरुण जगमांहिं॥११॥
याकौ तेजहिं अग्नि सम, सहि न सकत है कोय॥
प्रसंन बदन नृप कौ लषै, सबनि मुदित मन होय॥१२॥

जांनत षबरि प्रजांन की, निज दूतन सौं राय॥
उदासीन ऊपर रहैं, जइसैं पवन सुभाय॥१३॥
दंड अदंडनकौं यहै, देत न किहूं प्रकार॥
दंड जोग्य निज सुतहुँ कौ, देत दंड निरधार॥१४॥
जहँ तांई रबि तपत हैं, तहँ लौं भलै प्रकार॥
या नृप की आग्या चलत, धरम रीति अनुसार॥१५॥
निजू चरित सौं प्रजा कौं, राजी करत नृपाल॥
तातें राजा कहत हैं, याकौं सबै बिसाल॥१६॥
यौहै सत्यवक्ता नृपति, द्विज सेवा आधीन॥
प्रति पालक हैं सबन कौं, दाता मांन प्रवीन॥१७॥
जांनत हैं पर तियन कौं, माता सम निज चित्त॥
पितु समहिं रछिक प्रजा कौ, ग्यांनिन सेवत नित्त॥१८॥
सबहिन प्रिय अरु सुहृिद कौं, दैंनहार आनंद॥
काहूं सौं आसक्त नाहिं, दुष्टनि हैं जमफंद॥१९॥
जगत दिषाई देत यहि, सब जिहं हरि कै मांहिं॥
ता हरि कौं अवतार है, यहि राजा भुव ठांहिं॥२०॥
रथ कै ऊपर स्वार ह्वै, रवि समांन पृथु राय॥
चहुँ दिस फिरि सब हींन की, करि है रिछा सुभाय॥२१॥
अरि सब ही राजान सौं, यहि लै हैं बलि आप॥
सकल लौक करि है भलैं, याकौ जसकौं जाप॥२२॥
दूहैंगौ यहि अवनि कौं, राषि धरम की धूम॥
करि हैं अपनैं धनुष सौं, सबैं बराबरि भूम॥२३॥
ऊर्द्ध पूंछ करि सिंह ज्यौं, बिचरत धनुकर धारि॥
मत्त गयंद सम नीच जे, छिपि हैं दस दिसि हारि॥२४॥
अस्वमेध सत जिग्य याहि, करिहैं सरस्वति ठौर॥
जिग्य अंत कै मद्धि अस्व, लै हैं बासव चौर॥२५॥
ब्रह्म ग्यांन उपदैस इहिं, करिहैं सनत कुमार॥
सब ठौरनि जस आपनौं, सुनिहैं भलै प्रकार॥२६॥
लै हैं जीति दिसांन कौं, दुष्टन दैहैं टारि॥
पराक्रमी परताप अति, ह्वै हैं पृथु निरधारि॥२७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु का पृथ्वी पर कुपित होना तथा पृथ्वी द्वारा उनकी स्तुति)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, असतुति सुनि इहं भाय॥
पूर्न मनोरथ सबन कें, करत भयै पृथुराय॥ १ ॥
द्विज मंत्री अरु प्रजा कौं, राजा आदर दीन॥
धर्म नीति सुभ रीति सौं, राज भली विधि कीन॥ २ ॥

॥ बिदुर उबाच ॥

बिदुर कहत पृथवी दुही, पृथु किहिं भांति सु ठौंनु॥
गाय रूप भुव क्यौं भई, पात्र बछा भय कौंनु॥ ३ ॥
पृथी बराबरि कौंनु बिधि, करत भयै पृथुराय॥
इंद्र नृपति हूँ जिग्य कौ, अस्व लयौ किहूं भाय॥ ४ ॥
राजा सनत कुमार सौं, ब्रह्म ग्यांन कौ पाय॥
किहं गति कौं प्रापति भये, सौ तुम्ह कहौ सुनाय॥ ५ ॥
कीनौ होई चरित्र जो, पृथु नृप भलैं प्रकार॥
म्हैरै है सर्द्धा जु अधिक, कहीयै करि बिस्तार॥ ६ ॥

॥ सूत उबाच ॥

सूत कहत सुनि कैं यहै, बोलै रिषि मैत्रेय॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

पृथु राजा पावत भयै, जब ही राज सभेव॥ ७ ॥

॥ प्रजा उबाच ॥

तब पृथु सौं बौली प्रजा, हम्ह भूषै बेहाल॥
आयै हैं तुम्ह सरन अब, रछया करहुँ नृपाल॥ ८ ॥
त्रिपति हौय जासौं जु हम्ह, सौं नृप करहुँ इलाज॥
हम्ह नहिं जियहैं अंन बिनु, मरिजैहैं बिनु काज॥ ९ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनि कैं प्रजा विलाप॥
करि बिचार कारन सबै, जांनि गयै पृथु आप॥१०॥
धनुष बांन षैंचत भयौ, राजा अधिक रिसाय॥
गाय रूप धरिकैं पृथी, भजी तबै अकुलाय॥११॥
धनुसर लै दौरे नृपति, चित्त धरि क्रोध अपार॥
प्रिथी दिसांन दिसांन मैं, भजत फिरी तिहुं बार॥१२॥
और कोऊ रछिक कहूं, प्रिथवी देष्यौ नांहिं॥
तब पृथु नृपहीं की सरन, आई पुनि उहिं ठांहिं॥१३॥

भुव बोली तुम्ह प्रजा कै, रछिकहिं हौ पृथुराय॥
म्हैं आई तुम्ह सरन मौ, रछया करहुं सुभाय॥१४॥
म्हैं तौ निर अपराध हौं, अरु हौं म्हैं तिय जाति॥
तुम्हहुँ राजा धरमात्मा, क्यौं जु करत मो घाति॥१५॥
जो करिहीं अपराध तिय, तउ मारत कौ नांहिं॥
दयावंत ह्वै हनत क्यौं, क्रोध धारि चित्त मांहिं॥१६॥
अरु जौ मौकौ मारिहौं, तौ कहँ रहि हौं आप॥
कइसी भांतिन जलहि मधि, करि हौं प्रजा सथाप॥१७॥

॥ पृथु रुबाच॥

यहि सुनिकैं बोलत भयै, फिरि प्रभु अैसैं बैंन॥
म्हेरी आग्यां है पृथी, तूं अब मांनत हैंन॥१८॥
नहिं उपजावत अंन तू, जिग्य भागहूं षाय॥
तांतैं हूं तुहि मारिहौं, अधिक क्रोध चित्तलाय॥१९॥
हरित घास कौ षात अरु, दूध थननि नहिं देत॥
अैसी दुष्टा तूहिं पृथी, जोग्य दंड तब हेत॥२०॥
बीज औषधी कैं जितै, ब्रह्मा सृजै सुठांहिं॥
तिनकौं तू ग्रसि जात है, मो सौं डरपत नांहिं॥२१॥
तातैं म्हैं निज बांन सौ, हे भुव तोकौं मारि॥
देहौं तेरै मेद सौं, भूष प्रजा की टारि॥२२॥
तिया पुरुष जो होय कौ, धरैं अधिक अभिमांन॥
ताकौं निश्चैहिं मारिबौ, नृप कौं जोग्य निदांन॥२३॥
तू छल करि गो रूप धरि, बैठी है अभिलाषि॥
तुहि हति जल पैं प्रजा निज, बल करि लैहौं राषि॥२४॥
छोह भयंकर नृपति कौं, अैसैं पृथी निहारि॥
फिरि असतुति लागी करन, आप भलैं अनुसार॥२५॥

॥ धरोबाच॥

ग्यांन सहित तुम्ह हौ प्रभू, धरत बउंत अवतार॥
नमसकार म्हैं करत हौं, तुम्ह कौहुँ बारम्बार॥२६॥
तुम्हहीं मोकौं प्रगट किय, तुम्हहीं करत संघार॥
जाहुं सरन अब कौंनु कैं, सो कहियै करतार।२७॥
तुम्हहीं उपजावत भयै, यहै सकल संसार॥
प्रगटै सबहिंन पालबै, क्यौं मो करत संघार॥२८॥
ईस्वर की लीला कोउ, नहिं ज़ांनत किहुँ भाय॥
माया मोहित ह्वै रहै, सब सुधि जीव भुलाय॥२९॥

जें प्रभु कर्त्ता जगत कैं, बड्डी सक्ति जिन मांहिं॥
नमसकार जिनकौं करत, अधिक उमगि हिय ठांहिं॥३०॥
सब जीवन कै धाम कै, लीनै कर उर चाह॥
ल्यायै मोहि पताल तैं, धरि तुम्ह रूप बराह॥३१॥
म्हैं जल पैं तुम्ह सक्ति सौं, रहत जु नांव समांन॥
तापैं बसत प्रजा सबै, तिहुँ न मारि भगवांन॥३२॥
चरित कछु ईस्वरन कैं, नाहिंन जांनैं जाय॥
तांतै करत प्रनांम हूं, तुम्हकौं सीस नवाय॥३३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदसोऽध्यायः ॥ १७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टदसोऽध्यायः ॥

(पृथ्वी का दोहन)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय भुव, करि असतुति इहिं भाय॥
फिरि डरपि रु बौलत भई, प्रथु सौं बचन सुनाय॥ १ ॥

॥ धरोबाच ॥

क्रौध करौ मति नृपति तुम्ह, सुनियै म्हैरे बैंन॥
पंडित सब ठां लेत हैं, अलि सम सार सुषैंन॥ २ ॥
जें उपाय परलोक अरु, दिय इहँ लोक बताय॥
तिन्हकौं जो कौं करहि तौ, सबै सिद्धि ह्वै जाय॥ ३ ॥
जतननि हौय जिहिं बस्तु कौ, सौं करियै जो नांहिं॥
तौ वही वस्तु न पाइयै, समझ हुँ नृप मन मांहिं॥ ४ ॥
ब्रह्मा तैं उपजत भयैं, अंन जु पहली बार॥
ताकौ भोग जु दुष्ट जन, करन लगै निरधार॥ ५ ॥
अरु तुम्ह से राजान मौ, रछया नाहिंन कीन॥
तबै जिग्य कैं लियैं म्हैं, अंनबीज ग्रसि लीन॥ ६ ॥
बीज अंन कै वै हुतै, जितनै कछु मो मांहिं॥
छीन भयै हैं वै सबै, बउंत दिवस बहि ठांहिं॥ ७ ॥
तातैं आप बिचारि कैं, करि अब कछू उपाय॥
मो मैं तैं सब लीजियैं, जो तुम्हहिं चित्त सुहाय॥ ८ ॥

इक बछरा इक पात्र अरु, करि इक दूहन हार॥
मोहि दुहो म्हैं देहुंगी, सब कछु भलैं प्रकार॥ ९ ॥
ऊंची नीची हौं जु म्हैं, करौ बराबरि तांहिं॥
ज्यौं बरषा बिनहूं रहै, जहं तहं जल मौ मांहिं॥१०॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

इह सुनि भुव कौ बचन पृथु, मनु कौं बछरा कीन॥
हाथ पात्रहीं मधि नृपति, अंन सबै दुहि लीन॥११॥
औरहुँ सब दुहत जु गयै, अंन सबै दुहि लीन॥
जो जो बस्तौं चित्तहुं बसी, सो सो लई निकार॥१२॥
बछरा सुरगुर कौं रिषिनि, करिकैं धरि चित चांहिं॥
दुहत भयै चहुँ बेद कौं, इंद्रिय पात्रहिं मांहिं॥१३॥
सबै दैवता मिलि तांह, इंद्रहिं बछरा कीन॥
बिच सुवर्ण कै पात्र कै, उमगि सौमहुँहिं लीन॥१४॥
अरु दैत्यन प्रहलाद कौं, बछरा करि अभिरांम॥
दुहत भयै मद लौह कै, पात्र मधि तिहिं ठांम॥१५॥
बिस्वाबस कौं करि बछा, अपसर अरु गंधर्व॥
पद्म पात्र मधि दुहि लयै, बेद गांन मय सर्व॥१६॥
पितर अर्यमा पितर कौ, बछरा करि उहिं बार॥
पात्र मृत्तिका कै जु बिच, कब्य जु दुह्यौ अनपार॥१७॥
कपिल देव जू कौं बछा, सिद्धनि मिलि ठहराय॥
बीच पात्र आकास कै, दुहि लिया सिद्धि सुभाय॥१८॥
अरु मय कौ बछरा कियौ, माया बीनि बिचारि॥
दुही पात्र आकास मैं, माया भली प्रकारि॥१९॥
भूत जछिन राछिसन मिलि, बछरा सिवहिं बनाय॥
पात्र कपालहिं मधि रुधिर, दुहत भयै सुषपाय॥२०॥
बछरा तछिक रु सर्प कौं, सब सर्पनि मिलि ठांनिं॥
दुहत भयै बिल पात्र मैं, विष अपनैं मनमांहिं॥२१॥
पसु मिलि नंदी बैल कौं, बछरा करि उहिं बेरि॥
तिन्हहिं लियै वन पात्र मैं, अपनौं भोजन हेरि॥२२॥
और पसुन मिलि कै तांह, सिंघहिं बछरा कीन॥
अपनुं भौजन मांस देह, पात्र मांहिं दुहि लीन॥२३॥
अरु पंछिन मिलि गरुड़ कौं, बछरा करि निरधार॥
अपनुँ भौजन दुहि लायै, बिच बन पात्र सुढार॥२४॥

सब बृछनि बट बृछि कौं, बछराकियौ सथाप॥
दुहत भयै बनपात्र मैं, रस भोजन जो आप॥२५॥
हिम गिर कौं बछरा तहां, सब परबत मिलि कीन॥
सिषर पात्र मैं रतन सब, आछी बिधि दुहि लीन॥२६॥
यौं निज निज भोजन सबनि, निज निज पात्रहिं मांहिं॥
दुहत भयै बहु भांति तैं, हरषित ह्वै उहिं ठांहिं।२७॥
राजा पृथु कौ आदि लै, अपनौं बांछित अन्न॥
दुहन हार पातर जिसौ, पय दुहि लयौ सबन्न॥२८॥
जिसौ पात्र लष्यौ प्रिथी, तैं सौही पय दीन॥
राजा पृथु नैं प्रिथी कौं, अपनी बेटी कीन॥२९॥
धनुष नौंक सौं पृथु नृपति, सिषर नगन कै फोरि॥
प्रिथी बराबरि करि दई, आछै सबही ठौरि॥३०॥
अरु पुर ग्रांमनि कीहुँ करि, रचनां पृथु भुव मांहिं॥
नगर कोट छोटै बडै, रचत भयै सुभ ठांहिं॥३१॥
पहिलैं नगरादिकन की, रचना हुती जु नांहिं॥
नई नई रचना भली, प्रथु कीनी भुव ठांहिं॥३२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टदसोऽध्यायः॥ १८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकोनविंसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु के एक सौ अश्वमेध यज्ञ)

॥ मैत्रेय उवाच॥

दोहा - अस्वमेध सौ जिग्य कौं, नृप आरंभ सुकींन॥
छैत्र जु ब्रह्मावर्त्त मैं, सरस्वति तीर नवीन॥ १ ॥
इंद्र आपसौं अधिक क्रम, अधिक अनष चितधारि॥
राजा पृथु जिग्य महोछव, सह न सक्यौ जु निहारि॥ २ ॥
जास जिग्य कैं मधि प्रगट, विस्नुहिं जु बैठे आय॥
राजा पृथु कैं जिग्य की, अति सोभा सरसाय॥ ३ ॥
लोकपाल सिव बिधि कपिल, नारद सनत कुमार॥
अरु पार्षद भगवांन कै, नंद सुनंद सुढार॥ ४ ॥

सिध विद्याधर रु अपसरा, किंनर अरु गंधर्व॥
गुह्यक दांनव दैत्य सुर, हरि संग आयै सर्व॥ ५ ॥
प्रिथी गाय कौं रूप धरि, बहैं जिग्य कै मांहिं॥
दैत भई सब बस्तु तांह, भई कछू जौ चांहिं॥ ६ ॥
दूध दही सब रस बउत, भये नदिन कैं मांहिं॥
धार बहत भइ सहत की, बहुतकि बृछिनिहिं ठांहिं॥ ७ ॥
प्रगट समुद्रन हुतैं भये, रतन अनैंक सुढार॥
अरु प्रगटै परबतन तैं, अंन जु च्यार प्रकार॥ ८ ॥
ऐसैं जिग्य निहारि कैं, अतिहि उत्तम सुष पाय॥
बिघन अंत कै जिग्य मैं, कियौ इंद्र अनषाय॥ ९ ॥
इंद्र रूप पाषंड धरि, चाल्यौ अस्व चुराय॥
लषत भये तिहूं अत्रि रिषि, पृथु कौ दयौ बताय॥१०॥
आग्या लहि रिषिजु अत्रि की, पृथुहिं कौ पुत्र रिसाय॥
दौर्यौ पांछै इंद्र कै, सर धनु हाथ चढाय॥११॥
लायैं भस्म जटा धरैं, मनहुँ धरम साष्यात॥
ऐसो रूप जु इंद्र कौं, लषि कीनौं नहिं घात॥१२॥
फिरि दी आग्यां अत्रि इहै, धरैं रूप पाषंड॥
यहै इंद्र है दीजियै, याहि प्रांन कौं दंड॥१३॥
तबै क्रौध करि पृथु तनय, दौर्यौ बासव संग॥
असु तजि अंतरध्यांन भौ, पृथु सुत लयौ तुरंग॥१४॥
रिषननि तबै पृथु पुत्र कौं, विजितास्व जु दिय नांम॥
अर्थ नांम कौ है इहै, तुरंग जीति अय धांम॥१५॥
बहुरि जिग्य कैं थंभ सौं, बांध्यौ हुंतौ किकांन॥
इन्द्र चोरि तिहिं लै चल्यौ, धरि स्वरूप फिरि आंन॥१६॥
धारै सस्त्र षडवांग अरु, लीनैं हाथ कपाल॥
बासव ऐसैं रूप लैं, चल्यौ अस्व तिहुँ काल॥१७॥
अत्रि बताई दयौ तऊ, लषि कैं ऐसौं रूप॥
मार्यौ नहिं पृथु कै कुंवर, गहि निज धर्म अनूप॥१८॥
फिरी लहि आग्यां अत्रि की, मारन लग्यौ कुमार॥
तब हुव अंतरध्यांन तजि, इंद्र अस्व उहिं बार॥१९॥
पृथु कौं सुत किकांनहुँ लै, आयै जिग्य सथांन॥
मांन भंग किय इंद्र कौ, बिजितास्व जु बुधिवांन॥२०॥

इंद्र रूप पाषंड जें, धारै बउत प्रकार॥
मूरष जन वड़ रूप सब, धरन लगै निरधार॥२१॥
इंद्र रूप पाषंड कियै, जे सब रूप अधर्म॥
वे लषिबै के हैं भलैं, ज्यौं संबल फल मर्म॥२२॥
लाल वस्त्र कौं पहरिबौ, अरु तन नग्नहिं रहांहिं॥
तैं जतीन मैं दिगम्बर, दीरघ सिद्ध कहांहिं॥२३॥
अैसे देषिहिं चरित्र नृप, बासव कै बहु भाय॥
इंद्रहिं मारन कौ लयौ, कर धनु बांन रिसाय॥२४॥
मनैं कियौ सब रिषिनि मिलि, राजा कौ तिहिं बार॥
मति मारहुं तुम्ह इंद्र कौं, तजियैं क्रोध बिचार॥२५॥
तेरौ सत्रु जू इंद्र है, ताकौं हम्ह निरधार॥
हौम दैंहिगैं अग्नि मैं, मंत्रन कैं अनुसार॥२६॥
यौं कहि विप्रनिहिं मंत्र पढि, हौम आरंभ सुकीन॥
तब ब्रह्मा जू आय कैं, रिषिन मनैं कर दीन॥२७॥
यहि हरि कौ अवतार है, जिन्ह मारहुँ द्यौ छंड॥
अदभुत कृत किय इन्ह इहै, धरै रूप पाषंड॥२८॥
सौ जिग्य मैंहुं निन्यानवैं, जिग्य कियै तुम्ह राय॥
अैक जिग्य अब मति करौ, है यहि भलौ उपाय॥२९॥
करैं कौऊ सौ जिग्य सौ, होय इंद्र सुष पाय॥
करत विघन तांतैं इहै, इंद्र चित्तहिं अनषाय॥३०॥
मुक्ति मार्ग कै भैद कै, तुम्ह हौं जानन हार॥
क्रोध करहुँ मति इन्द्र हौ, दोऊ हरि अवतार॥३१॥
बहे कर्म नहिं कीजियैं, तामैं उपजैं क्रोध॥
प्रगटै प्रभु अवतार तुम्ह, पालन धरम सुबोध॥३२॥
इंद्र रूप पाषंड जिहिं, मांहिं धरै बहु भाय॥
रहन देऊ सौ जिग्य यहि, अबै आप पृथु राय॥३३॥
दैषत कै आछै धरै, है बासव छल रूप॥
काहू बिधि फल नाहिंनैं, तामैं कछू अनूप॥३४॥
परंपरा जु धरम की तुम्ह, रछिक प्रगटैहु आय॥
गुप्त भयौ हौ बेणु करि, तिहिं तन हरि प्रगटाय॥३५॥
तातैं तुम्ह अैसौ जतन, करौ भूप भुव मांहिं॥
इंद्र धरै छल रूप तै, धरै जु कोऊ नांहिं॥३६॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनि पृथु बिधि कैं बैंन॥
बह जिग्य न किय इन्द्र सौं, तजि दिय वैर सुषैंन॥३७॥
नृपति जिग्य कै अंत मैं, तांह सनांन जु कींन॥
सब अमरन राजा पृथुहिं, मन बंछित तब दींन॥३८॥
नृप कौं आसिरबाद दिय, द्विजनिहिं दछिनां पाय॥
सब ब्राह्मण निज चित्तहुं मैं, रहै परम सुष पाय॥३९॥
ब्राह्मण बोलै हे नृपति, तुम्ह जुबडे बुधिवांन॥
पितर देवता रिषिन कौं, कीनौं बहु सनमांन॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकोनबिंसोऽध्यायः ॥ १९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ बिंसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु की यज्ञ शाला में श्री विष्णु भगवान का प्राकट्य)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय जू, इन्द्र सहित भगवांन॥
पासि आय प्रथु नृपति कैं, बोलै क्रपा निधांन॥ १ ॥

॥ श्री भगवानुबाच ॥

हे नृप तेरै जिग्य मैं, इंद्र बिघन किय आंनिं॥
सौ अपराध छमां करहुं, बचन हम्हारौ मांनि॥ २ ॥
साध बैर नहिं करत है, काहू सौं किहुं भाय॥
मोहित तुम्ह सै हौंहिं जौ, तौ अचिरज दरसाय॥ ३ ॥
कांम कर्म अविद्या अबरु, इन्ह सौं बन्यौ सरीर॥
तामैं ममता करत नहिं, ग्यांनी पुरुष सधीर॥ ४ ॥
धन गृह तिय सुत मैं करत, पंडित ममता जु नांहिं॥
आत्मां निरगुन रूप इह, सबकौ साछी आंहिं॥ ५ ॥
अैसी भांत जु जांन ही, आत्मां कौ जौ कोय॥
सौ माया कै गुनन मैं, लिप्त कहुं नाहिं होय॥ ६ ॥
जो कौ है निहकांम मो, भजन करै चित्त लाय॥
तिहुं मन निरमल होय अरु, मो मैं मिलै सुआय॥ ७ ॥
आत्मां कौ जांनै कौउ, निर्विकार उनमांन॥
तौ ताकौ बहुं भांति तैं, होय भलैं कल्यांन॥ ८ ॥

रूप जु लिंग सरीर कौ, यहि संसार पिछांनिं॥
मोहित संपत्ति बिपत्ति मैं, ग्यांनी होत न जांनिं॥ ९ ॥
सब ठौरनि सम द्रिष्टि तुम्ह, राषहुं नृपति सुग्यांन॥
रछा करहू प्रजांन की, सुष दुष लषौ समांन॥१०॥
छठौ अंस लै प्रजा पैं, नृप मर्याद प्रमांन॥
तातैं पालन प्रजा कौं, कीयै होय कल्यांन॥११॥
छठौ अंस लै करै नहिं, पालन जौ अवनीस॥
तौ परजा कौ पाप सब, होय नृपति कै सीस॥१२॥
पालन करिहौं प्रजा कौ, द्विज आग्या अनुसार॥
तौ तुम्हारौ कल्यांन नृप, ह्वै हैं भलै प्रकार॥१३॥
अैहैं थोरै दिनन मैं, महापुरुष तौ धांम॥
तिनकौ दरसन होयगौ, तौकौं अति अभिरांम॥१४॥
हे नृप तौपर प्रसंन अति, हूं हुव सहित हुलास॥
तोकौं ह्वै कछु चाह सौ, वर मांगहुं हम्ह पास॥१५॥
जिग्यहुं करिकैं प्रसंन हुं, तैसौ होत जु नांहिं॥
जैसौं साधुन पर प्रसंन, होतहुं निज चित्त मांहिं॥१६॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

हरि की आग्या सीस निज, राषत भयौ नृपाल॥
इंद्र पर्यौ नृप पांय तब, तजि दिय बैर बिसाल॥१७॥
किय पूजा हरि की नृपति, चरन छुयै अभिलाषि॥
बढ्यौ अधिक आनन्द उर, ध्यांन प्रभू कौ राषि॥१८॥
चाल्यौ चहत परंतु प्रभू, क्रपा नृपति पर चांहिं॥
नांहिन चलत बिलंब उहि, ठौरहिं करत उमांहिं॥१९॥
आदि राज द्रिग भय सजल, देष सकत प्रभु नांहिं॥
चुप ह्वै ध्यांनां मगन मिलि, राषि हिर्दै कै मांहिं॥२०॥
होय नृपति कै प्रेम बस, दीन सहायक नाथ॥
ठाढै हैं प्रथवी उपरि, धरै गरुड पै हाथ॥२१॥
अश्रु प्रेम रोमांच अरु, बोलि सकत नृप नांहिं॥
अश्रु पौंछ बोल्यौ नृपति, फिरि हरि सौं उहिं ठांहिं॥२२॥

॥ पृथु रुबाच ॥

प्रभु तुम्ह दाता मुक्ति कै, हौ पूरन सुष भौंनु॥
स्वर्गादिक कै बर तुछ जै, तुम्ह पैं मांगै कौंनु॥२३॥
हूं यहि बर मांगत अबै, सौ दीजै सुषधांम॥
और पदारथ जगत कै, सौ नहिं म्हैरै कांम॥२४॥

साध करै मिलि रावरौ, जांह जांह गुनगांन॥
तांह तांह हूं सुनत रहुं, देहुं सहस दस कांन॥२५॥
कथा अमृत सम रावरी, प्रगट करत है ग्यांन॥
साधसंग सौ सुनि परत, तुम्ह जस कौं बाष्यांन॥२६॥
तुम्ह पद सेवत है रमा, निस वासुर चित्त लाय॥
वैही पद सेवौ चहत, अब हम्ह उमंग बढाय।२७॥
लछमी हूं तै अधिक निज, भक्तनहिं चाहत आप॥
तातैं भक्तन सौं करत, लछमी कलह सदाप॥२८॥
हे प्रभु तातैं साध जन, ह्वै निश्चैहिं निहकांम॥
चरन-कमल ही रावरै, सेवत हैं अभिरांम॥२९॥
तुम्ह कहत वर मांगि तू, जो निज ईछा होंहिं॥
यहै रावरौ बचन सब, जगतहिं राषत मोंहिं॥३०॥
बांनी बेद जु रावरी, जग बंध्यौ तामांहिं॥
कर्म कांमना माहिं तैं, क्यौं हूं निकसत नांहिं॥३१॥
जासौं बंधन होय सौं, करम करै क्यौहुं फेरि॥
तुम्हहिं पाय कछु और बर, मूरष मांगै टेरि॥३२॥
बुरी बस्त जो मांगही, बालक बिनां बिचार॥
तौ नहिं देत पिता समझि, देत जू बस्तु सुढार॥३३॥
जइसैं हे प्रभु आप ही, समझि आप हिय ठांम॥
भलौ हम्हारौ हौय सौं, करहुं कांम अभिरांम॥३४॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, नृप कै सुनिकैं बैंन॥
हरि बर दीनौं भक्ति मौ, हौउ बढै जिहं चैंन॥३५॥
ऐसैं बर दै कैं प्रभू, पूरन क्रपा निधांन॥
जेंबै अपनैं लोक कौं, चित चाह्यौ भगवांन॥३६॥
पितर नाग रिषि देवता, सिध चारन गंधर्व॥
किंनर अपसर मनुष्य जे, हुतै ठौर उहि सर्ब॥३७॥
जथा जोग्य नृपवनहिं की, पूजा किय तिहं बार॥
अपनैं अपनै लोक बे, जात भये निरधार॥३८॥
राजा पृथु कौ मन हरत, श्री हरि क्रपा निधांन॥
भयै पधारत तिहं समैं, प्रसंन होय निज थांन॥३९॥
राजा प्रभुहिं प्रनांम करि, आयै अपनैं धांम॥
हरि कै सुंदर रूप कौं, ध्यांन राषि हिय ठांम॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते बिंसोऽध्यायः ॥ २०॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकबिंसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु का प्रजा के प्रति उपदेश)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

चोपाई - रिषि मैत्रेय कहत पुर मांहीं। ठौर ठौर सौभा सरसांहीं ॥
मुक्तमाल फूलन की माला। बंधी धरनि मुष लसत रसाला ॥ १ ॥
ठां ठां तौरन धुजा विराजत। कैलि थंभ द्वारन पर छाजत ॥
धूप दीप अछित फल फूलहीं। षील धांन की अंकुर मूलहीं ॥ २ ॥
जहँ तहँ धरै सुठांमहिठांमा। जुत तरु पल्लव माला धांमा ॥
कलस आरती साजि प्रजा सब। जात भई सांमुह नृप कै तब ॥ ३ ॥
संष नगारै बाजत जुभयै। राजा पृथु अपनैं घर जु गयै ॥
पुरवासिन कौं नृप आदर दिय। जथा जोग्य सबकी पूजा किय ॥ ४ ॥
यौं जस करि राजा जगमांहीं। प्रापति भये परम पद ठांहीं ॥

॥ सूत उबाच ॥

सूत कहत पृथु जू कौ चरित्र। सुनि कैं बोलैहुँ बिदुर जु पवित्र ॥ ५ ॥

॥ बिदुर उबाच ॥

राजा पृथु कौ तेज बडौ अति। प्रथी दुहत भयै रहन धर्म छति ॥
तिनकौ चरित सुनैं नहिं कौंनहुं। ताहि सुनत करहीं अघ गौंनहुँ ॥ ६ ॥
और सबै नृप प्रिथु कै पांछैं। तिहुँ चरित कहौ और हुँ आंछैं ॥
यहि सुनि बोलै रिषि मैत्रेयहिं। कहन लगै पृथु चरित सुभेयहिं ॥ ७ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

रिषि मैत्रेय कहत प्रिथु राई। राज करत भय भलैं सुभाई ॥
गंग जमुन मधि देसन मांहीं। करत जू पुन्य भोग भुव ठांहीं ॥ ८ ॥
सप्त द्वीपवति प्रिथवी ठांहीं। नृप आग्यां बहु भांति चलांहीं ॥
इक बैस्नव अरु ब्राह्मण ऊपर। आग्या दंड न भौ उहि अवसर ॥ ९ ॥
बैठे नृप जिग्य कैं मधि इक दिनि। तहँ सुर रिषिनि समाज रह्यौ वनि ॥
तिहं समाज मैं नृप यौं दरसैं। ज्यौं तारनि मधि ससि छबि सरसैं ॥ १० ॥
उच्च पुरुष भुज पुष्ट जू सोहै। उज्जलक रंग सबनि मन मोहै ॥
नैत्र कंवल दल सुन्दर हासी। नासा सुष सोभा सुष रासी ॥ ११ ॥
अरु बछ स्थलहुं परम बिसाला। त्रिबली संजुत उदर रसाला ॥
नाभि भंवर सी चरन सुढारा। स्यांम केस सोभित घुंघरारा ॥ १२ ॥
कंठ संष की छवि कौं जु हरैं। अतिहिं उत्तम नव बसनहिं सुधरै ॥
भूषन कछू अंग मैं नांहीं। तौहू अधिक सोभ सरसांहीं ॥ १३ ॥
धरै चर्म मृग कुस लीनै कर। सभा मांहिं ठाढै ह्वै नृप बर ॥

सबै प्रजा की वोर चितांई। बोलै बांनी प्रथु सुपदाई ॥१४॥

॥ राजोबाच ॥

सुनौं सभा जन बचन हम्हारौ। भलौ होय तौ चित मैं धारौ॥
म्हैं राजा हौं रछिक प्रजा कौ। चलवन हार जु मरजादा कौं॥१५॥
जो म्हैं साधौ न अपनौं धर्म। तौ लहूं दुहूं लोक मैं सर्म॥
अरु जौं हरि है क्रिपानिधांना। प्रसंन हौंहि तैं श्री भगवांना॥१६॥
प्रजा पास कर नृपति उघावै। अरु न धर्म मैं प्रजा चलावै॥
सो प्रजांन कौ अघ अवनीसा। लैतहुं आप सिर बिस्बाबीसा॥१७॥
तातैं हरि कौ भजन जू करौ। याहि मो पै अनुग्रह अनुसरौ॥
याही म्हैं म्हेरी मति जांनौं। कह्यौ हम्हारौ सब तुम्ह मांनौं॥१८॥
जानैं पितर रु देवता सबै। प्रसंन होई सौ कीजै अबै॥
भली बुद्धि जो सिषबै कोई। अधिक पुन्य ताहू कौ होई॥१९॥
उत्तम साधु जो कोऊ निदांनैं। सो जिग्य पति भगवांनहि मांनैं॥
मनु उतांनपाद ध्रुव रु प्रियव्रत। राजा अंग सार सै भूपति॥२०॥
सिव चतुरानन बलि प्रहलादहिं। रिषि नारद अरु सुक सनकादहिं॥
अैसै जन भगवांनहिं मांनत। हरि बिन कछू और नहिं जानत॥२१॥
जे निश्चैंही पावत है मुक्ति। सदा रहत प्रभु भक्ति संजुक्ति॥
जिहीं हरि पद सेवा गंगा सम। टारि देत है महा पाप तम॥२२॥
मन कै मैल तबैं टरि जांहीं। उर बैराग्य ग्यांन प्रगटांहीं॥
तब फिरि जनम मरन नहिं होतहिं। होय अनंद स्वरूप उदोतहिं॥२३॥
तातैं जथा जोग्य गहि सुधर्म। तुम्हहुँ हरि सेव करहुँ तजि भर्म॥
यहै जिग्य हूं कौ हरि रूपा। सब फलदाता प्रभू अनूपा॥२४॥
प्रभु है परमानंद संग करि। विषय बुद्धि कौं पाय देह धरि॥
आपहिं चेतन करत विषैज्यौं। अग्नि काठ लघु दीरघ अंग त्यौं॥२५॥
जो कोउ अपनै धर्म प्रभायहिं। प्रसंन करत है हरि सुषदायहिं॥
तै मोहि पर अनुग्रह अनुसरै। अरु अपनौं हूं जसहुँ बिस्तरै॥२६॥
हरिहिं देव अैसै वैष्णव जन। बिद्या क्षमा संतोष सहित मन॥
तपस्यां संजुत जो ब्राह्मण बंस। सौइ है सबजग मांहिं प्रसंस।२७॥
तेज अरु बल छबिन कौ तापर। कबहुँ होउ मति काहू अवसर॥
पूज्य बिस्नुहू के द्विज जांनौं। प्रभु कौ मुष ब्राह्मण कुल मांनौ॥२८॥
बिस्नुहू बिप्रन की करि सेवा। लहत भये जस रमा सु भेवा॥
विप्र सैव तैं ह्वै प्रसंन जू हरि। अपनैं धर्म सचित सेवन करि॥२९॥
द्विज सेवन तैं चित सुध होई। लहै मुक्ति बिन षेद जु सोई॥

द्विज मुप प्रभु भोजन अनुसरैं। तैसैंहूं अग्नि मध्य नहिं करैं॥३०॥
तत्व वेद कौ द्विज ही जांनत। और कोउ नांहिंन पहिचानत॥
तातैं विप्रननि की पद रैंनू। हूं रापत निज सीस सुषैंनू॥३१॥
जिन्ह की चरन रेनू सिर धरैं। तिन्हकौं पाप पुंज सबहिं टरैं॥
करै बडन की सेवा कौंई। जिन्हकैं अधिक संपदा हौंई॥३२॥
तातैं गौ द्विज बैष्णव अरु हरि। प्रसंन होउ मो पर सुदया करि॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

रिषि मैत्रेय कहत यहि भाई। वचन नृपति कै सुनि सुषदाई॥३३॥
पितर देवता रिषि जनहिं सबै। प्रसंन होय असतुति किय तबै॥
हे नृप सुत कै धर्म उदौंतहिं। उत्तम गति जु पिता की हौंतहिं॥३४॥
बांनी सत्य भूप यहि कही। नृपति बेणु तुम्ह तैहिं गति लही॥
अरु प्रहलाद प्रताप प्रकारा। तर्यौ हिरणकस्यप निरधारा॥३५॥
राजा तुम्ह चिर जीव रहौ निति। प्रभू भक्ति अैसी जिन्हकै अति॥
भाग हम्हारै बडै नृपाल जु। जिन्हकैं तुम्ह सैं हैं प्रतिपाल जु॥३६॥
तुम्ह हरि कौ गुनगांन करत हौ। परम धर्म की रीति धरत हौ॥
दया करत तुम्ह सब भुव मांहीं। सौ इह अचिरज है कछु नांहीं॥३७॥
बडै जनन कौ सदा सुभावहिं। हौत जु अैसैं ही अनुभावहिं॥
रहौ तुम्ह इस्वर के परम भक्त। हम्ह हौं आश्रित तुम्ह परि अनुरक्त॥३८॥

दोहा - हम्ह कर्मन सौं भ्रमतनित, रहत जु बउंत प्रकार॥
तुम्ह दिषयौ संसार कौ, पार भलै अनुसार॥३९॥
तुम्ह हरि कै अवतार हौ, सब जग कै आधार॥
तुम्ह कौ करत प्रनांम हम्ह, हे प्रभू बारम्बार॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकविंसोऽध्यायः ॥ २१ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वाविंसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु को सनकादिक का उपदेश)

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - कहत है रिषि मैत्रेय जू, सब जन अैसै भाय॥
करत भयै असतुति बउंत, पृथु की भलैं बनाय॥ १ ॥
तहँ आयै ताही समैं, रिषि बर च्यार सुढार॥
सूरज कैसौ तेज जिन, दीसत परम उदार॥ २ ॥

नृप उन च्यारौं मुनिन कौं, नभ तैं उतरत देषि॥
उठि ठाढै हुव सभा जुत, आदर कीन बिसेषि॥ ३ ॥
आसन पर बैठाय किय, पूजा बिधि अभिलाषि॥
चरन धोय हित सहित लिय, माथे परहूँ राषि॥ ४ ॥
सुबरन सिंघासननि पैं, रिषि अैसैं दरसात॥
कुंड मांहिं जइसैं अगनि, जगमगात बिष्यात॥ ५ ॥

॥ पृथु रुबाच ॥

नृप बोलै मुनि जनन सौं, कियै पुन्य म्हैं कौंनु॥
जासौं दरसन रावरौ, मोहि भयौ सुष भौंनु॥ ६ ॥
जापर बिधि सिव बिस्नु द्विज, बैसनुं प्रसंन जु हौय॥
ता प्रांनी कौ जगत मैं, दुरलभ बस्तु नहिं कौय॥ ७ ॥
तुम्ह लोकनि मैं फिरत हौं, तुम्हहिं लषत कौ नांहिं॥
जइसैं आत्म स्वरूप कौं, लषत न जन जग मांहिं॥ ८ ॥
जिन्ह गृह आय न साध जन, बसबै पावहिं ठौर॥
तै निर्द्धन हूं जांनियैं, सकल लोक सिरमौर॥ ९ ॥
अरु नहिं आवत साध जन, जिन्हकैं कबहुं सथांन॥
तै गृहस्थ धनवंत हूं, जांनहूं बृछि समांन॥१०॥
तुम्ह आयै सुभलौ कियौ, हे रिषि परम पुनीत॥
जे कोउ चाहत मुक्ति कौं, चलत तुम्हारी रीत॥११॥
हम्ह तौ जांनत रहत हैं, विषयननि उत्तम भाय॥
संसारी दुष मैं सदा, परै रहत चित्त लाय॥१२॥
तातैं पूछत हैं तुम्हहिं, हम्ह निज कुसल बिचार॥
कुसल रूप तुम्ह तिन कुसल, कहा पूछैं निर्धार॥१३॥
हम्ह तुम्ह सौं पूछत अबैं, कहौ सुभेद जताय॥
जीवन कौं कल्यांनहिं किहुं, भांति होय रिषि राय॥१४॥
तुम्ह प्रभु कै अवतार हौ, हे रिषि अति अभिरांम॥
साधनुहुं कैं उद्धार कौं, आप फिरत सब ठांम॥१५॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

कहत जु रिषि मैत्रेय जू, बिधि सुत चारि उदार॥
सुनि बोलै नृप कै बचन, तिन्ह मैं सनत कुमार॥१६॥

॥ सनत कुमार उबाच ॥

राजा तुम्ह पूछी भली, अति अनंद मय बात॥
साधन की मति होत हैं, अैसी ही बिष्यात॥१७॥
तुम्ह पंडित जांनत सबै, कछु छांनी तुम्ह तैंन॥
लोकनि कैं हित कैं लियैं, पूछत हौं सुष अैंन॥१८॥

साध संगति उत्तम महा, सबकौ करत कल्यांन॥
प्रसंन करन अरु बोलनौं, जिन्हकौं मुक्ति समांन॥१९॥
प्रभु गुन बर्नन मैं सदा, नृपति तुम्हारै प्रीति॥
होय जात जासौ सबै, मन कैं मैल बितीति॥२०॥
अरु सास्त्रनहूं मैं यही, निश्चै कीनी नीति॥
पूर्न ब्रह्म भगवांन हैं, तिन्ह सौं लावै प्रीति॥२१॥
करनौं भगवत धर्म अरु, श्रधा जोग सुभ ग्यांन॥
जोगेस्वरनि उपासनां, मुष हरि गुन बष्यांन॥२२॥
तजनौं विषयनि संग उन, बचन मांननौं नांहिं॥
बसि इकंत संतोष गहि, सुननौं हरि गुन चांहिं॥२३॥
प्रानी बध करनौं नाहिं, चलनौं साध सुरीति॥
दुष सहि रहनौं साधनौं, यम रु नेम मन जीति॥२४॥
इन साधन सौं हौंत है, प्रभु सौं प्रीति अनूप॥
तब पहिचानैं जीव यहि, पूरन ब्रह्म स्वरूप॥२५॥
प्रभु सौं प्रगटै प्रीति अरु, होत ग्यांन बैराग॥
तब निज लिंग सरीर कौं, होय जात है त्याग॥२६॥
सूछिम तन बिनसाय तब, कांम क्रोधहूं जाय॥
अहंकार द्रष्टा रु द्रिस्य, कछु न भेद दरसाय॥२७॥
द्रष्टादिस प्रकार अरु, कांम क्रोध अहंकार॥
यै सब लिंग सरीर कैं, संग रहत निरधार॥२८॥
ज्यौं दरपन अरु नीर मैं, दुतिय स्वरूप लषाय॥
त्यौं सूछिम तन संग सौं, भेद द्रिष्टि दरसाय॥२९॥
इंद्रिनि कैं आधीन नित, जीव रहत सबिकार॥
वे इंद्री मन कौं करत, चंचल बउंत प्रकार॥३०॥
सौ मन बुधि की चेतना, निज बल करि हरि लैत॥
बिनां चेतनां रहत नहिं, बुधि कौं सुधि किहुं हैत॥३१॥
अरु बिनु सुधि भ्रम ग्यांन कौ, निश्चै जीवहि हौत॥
भयै ग्यांन भ्रम भुलत निज, आत्म सरूप उदौत॥३२॥
आत्म स्वरूपहिं भूलिबौ, इही मनुष कौ नास॥
या बिनु दीरघ नास कौ, नाहिंन और सभास॥३३॥
नास जु सबही बस्तु कौ, करत बिषै कौ संग॥
तातैं प्रांनी नहिं करै, विषै संग किहूं अंग॥३४॥
मोछ धर्म अर्थ कांम कौ, संग करत है नास॥
उत्तम इनी च्यारौं न मैं, कहियत मोछ प्रकास॥३५॥

धर्म अर्थ अरु कांम मैं, जम डर छूटत नांहिं॥
मोछ भयै तैं फिरि कछू, क्यौंहु दुष नाहिं हौंहिं॥३६॥
जिते पदारथ प्रगट हुव, माया त्रिगुन प्रभाव॥
तिन्हमैं यहि प्रांनी दुषित, बंधन लहत सुभाव॥३७॥
हे नृप तांतैं ठौर सब, थावर जंगम मांहिं॥
आत्म रूप चैतन करन, हरि जांनौं हिय ठांहिं॥३८॥
जा इस्वर कै विषै यहै, झूठौ जगत लषाय॥
तिह इस्वरही कौ भलैं, करहु बिचार बनाय॥३९॥
जिहं पद पंकज भक्ति सौं, सज्जन अति सुषपाय॥
कर्म ग्रंथ षोलत भलैं, सौ प्रभु भजहुँ सुभाय॥४०॥
या संसार समुद्र मधि, इंद्री पांच प्रमांन॥
षष्टम मन संमिलत ए, जांनहुँ नरक निदांन॥४१॥
तातैं तूं भगवान कै, पद पंकज करि नांव॥
या संसार समुद्र कौं, तरहुं चित्त धरी चांव॥४२॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

कहत जु रिषि मैत्रेय यौं, नृपकौं सनत कुमार॥
कियौ ग्यांन उपदेस सुभ, तत्व भेद निरधार॥४३॥

॥ राजनोबाच॥

तब राजा बोलै अहौ, रिषि मो पैं भगवांन॥
अनुग्रह करि यौं कह्यौ हौ, पहलैं क्रपा निधांन॥४४॥
महापुरुष ग्यांनी कौंउ, अैहैं तेरे धांम॥
सोइ बचन पूरन करन, तुम्ह आये इहिं ठांम॥४५॥
तुम्ह मौ पर कीनी क्रपा, हे रिषि परम क्रपाल॥
म्है तुम्ह कौं कहा दैऊ, मुहि तुम्ह कियौ निहाल॥४६॥
प्रांन राज्य तिय पुत्र गृह, धन बल प्रथवी कौस॥
अै तुम्हरी ही क्रपा तैं, हम्ह पाये इहि द्यौस॥४७॥
सु तौ निवेदित का करैं, हम्ह तुम्ह कौं लजि चित्त॥
नूतन बस्तु जु होई कछु, दीजै तुम्हैं सुनित्त॥४८॥
बिप्रनि हीकै है सबै, जितै पदार्थ प्रसंस॥
विप्रनि हीकी क्रपान तैं, भोगतहुं छत्री बंस॥४९॥
हम्ह कौं अैसी आत्म गति, दीनी जिननि दिषाय॥
माया रूप अंध्यार सब, हिय तैं दयौ मिटाय॥५०॥
निज करनी ही करि तुम्ह सु, प्रसंन जु होहुँ द्विजेस॥
हम्ह पलटौ किहुँ भांति तैं, दैनहिं सकत बिसेस॥५१॥

॥ मैत्रेय उवाच ॥

यौं कहि नृप पूजा करत, भये भलैं उनमांन॥
सनकादिक चहुँ प्रसंन ह्वै, भयै जु अंतरध्यांन॥५२॥
राजा पृथु लहि ग्यांन सब, पूर्न मनोरथ कीन॥
कर्म करै सौ प्रभू मैं, सब अर्पन करि दीन॥५३॥
आत्मा ही कौं कर्म कौ, साछी लष्यौ नृपाल॥
विषयन मैं आसक्त नहिं, भयौ धर्म रषवाल॥५४॥
कर्म करत अैसैं नृपति, कीनौ राज्य सुभाय॥
भये पंच सुत अर्चि तैं, रह्यौ जगत जस छाय॥५५॥
धूम्र कैस बिजयास्व वृक, हर्यक्ष द्रविण जुनांम॥
अै पांचौ सुत नृपति कैं, प्रगट भयै अभिरांम॥५६॥
लोकपाल सबहीन कैं, गुण जितनैक उदार॥
अपनैं मधि धारत भयै, राजा पृथु निर्धार॥५७॥
प्रसंन करी परजा सबै, नृप निज गुननि प्रकार॥
तातैं राजा नांम पृथु, पावत भयै सुढार॥५८॥
अरु प्रताप भौ सूर्य सम, ससि समांन सुषदाय॥
पराक्रमी पुनि इंद्र सम, तेज अग्नि सम पाय॥५९॥
छमावंत नृप अवनि सम, सागर सम गंभीर॥
पूर्न मनोरथ सबनि कै, करन मेघ सम धीर॥६०॥
हौं धनवंत कुबेर सम, सथिर सुमेर समांन॥
आश्चर्ज मधि हिम गिरहि सम, बृहस्पति सम सुभ ग्यांन॥६१॥
दुष्टनि दाता दंड कौ, जम समांन निरधार॥
सुन्दरता मधि मदन सौं, सूर सिंघ अनुसार॥६२॥
सिव सम बडौ समर्थ अरु, पवन सम जु बलवांन॥
मनु सम बत्सल मही बिधि, सम प्रभुता परमांन॥६३॥
गाय विप्र बैसनवन मैं, भक्ति वंत अधिकाय॥
लाज नम्रता सील जुत, कीर्त्ति रही जग छाय॥६४॥
पुरुष त्रिया कै श्रवण मैं, भयै प्रविष्ट जस रूप॥
सबकैं श्रवननि मैं सुजस, ज्यौं श्री रघुपति भूप॥६५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वाबिंसोऽध्यायः ॥२२॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोबिंसोऽध्यायः ॥

(महाराज पृथु की तपस्या और उनका परलोक गमन)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

दोहा - कहत जु रिषि मैत्रेय प्रथु, धरम सिषांवन हार॥
स्थावर जंगम कै सदा, प्रति पालक निरधार॥ १ ॥
प्रथु नृप अैसै धरम धर, ईस्वर आग्या पाय॥
जिन काजन कौं अवतरै, तैं सब किये सुभाय॥ २ ॥
बहुरिहुं आपकौं बृद्ध लषि, दैहि पुत्रन कौं राज॥
रानी जुत बन कौ गयै, नृपति तपस्यां काज॥ ३ ॥
बांन प्रस्थ आश्रमहिं मधि, रहैहुं तपस्यां लीन॥
कंद मूल फल पत्र पुनि, सूकै भछन कीन॥ ४ ॥
बहुरि आचमन नीर कौं, नित करि रहे नृपाल॥
ता पाछै इक पवन ही, भछिन कीय तिहं काल॥ ५ ॥
अरु साधी पंचाग्नि नृप, रित ग्रीषम कै मांहिं॥
सीत समैं बैठत भयै, कंठहिं लौं जल ठांहिं॥ ६ ॥
बरषा रितु मैं मेह बिच, बैठे साधन साधि॥
मौन लियैं जीत्यौ पवन, हृदै कृस्न आराधि॥ ७ ॥
तपसौं मन कैं मैंल सब, नृपति दूर करि दीन॥
प्रांनायाम प्रकार सौं, इंद्री निज बसि कीन॥ ८ ॥
पहलैं सनत कुमार नैं, कियौ ग्यांन उपदेस॥
तिंही रीत सेवत भयौ, राजा प्रभु अषिलेस॥ ९ ॥
तब राजा कै मधि प्रभू, अधिक भक्ति रही छाय॥
हौत भयौ निर्मल हिर्दौ, प्रभू भक्ति अनुभाय॥१०॥
प्रगट भयौ बैराग जुत, नृप कौं पूरन ग्यांन॥
दूरि भयौ संदेह सब, आछी भांति निदांन॥११॥
भेद द्रिष्टि न रही कछू, आत्म रूप लिय जांनि॥
भयौ ब्रह्म आकार चित, परम तत्व पहिचांनि॥१२॥
अैक दिनां मन आपनौं, आत्मा मध्य लगाय॥
दीनौं छौड़ि सरीर नृप, निज ईछा कै भाय॥१३॥
मूल द्वार कौं रोकि प्रथु, एडी कैं अनुसार॥
प्रांनहिं ऊंचै षैंचि कैं, राषि जु दसवैं द्वार॥१४॥
पंचभूत मैं लय करत, भयै जु थूल सरीर॥
तत्व तत्व मैं मैलि कैं, लही मुक्ति सुषसीर॥१५॥
भुव भुव मैं जल मध्य जल, अग्नि अग्नि कै ठांहिं॥
बायु बायु कै ठांम अरु, नभ कौ नभ ही मांहिं॥१६॥

इंद्री अरु मन कौं दयौ, मेलि बीचि अहंकार॥
अहंकार महतत्व मधि, महतत्व प्रक्रति मंझार॥१७॥
तत्व तत्व मैं लीन करि, सबही अैसे भाय॥
ब्रह्म रूप लषि जीव कौ, भये मुक्ति पृथुराय॥१८॥
नृपति पास रानी हुती, अर्चि नांम सुकुमार॥
सावधांन पतिव्रत मधि, रही भलैं अनुसार॥१९॥
अधिक लटि गई ब्रत करत, तपस्या षेदहिं मुक्ति॥
पति कैं आदर सौं रही, अति आनंद संजुक्ति॥२०॥
पतिहि गयौ परलोक लषि, रांनी कीन बिलाप॥
परबत कैं ऊपर चिता, भई बनावत आप॥२१॥
करि सनांन तर्पन चिता, मधि बैठी पतिसाथ॥
देह दग्ध किये अग्नि मैं, फैली जग जस गाथ॥२२॥
सबै देवता अपसरा, किय असतुति उहिं बार॥
फूलनि की बरषा भई, दुंदुभि बजै हुं अपार॥२३॥

॥ देव्यऊचुः॥

बौली बधू जु सुरन की, आप समैं यौं बैंन॥
धन्य धन्य यहि तिय जिन्ह कियौ, पति कौ संग सुषैंन॥२४॥
चली हम्हहुं तैं जात है, इह तिय ऊंचै लौक॥
कीनौं पति कौ संग इन्ह, सकल पुन्य की औक॥२५॥
मनुष्य लोक मैं जे कोऊ, साधत भक्ति अरु ग्यांन॥
तिन्हकौं दुर्लभ नाहिं कछु, निश्चै इहीं उनमांन॥२६॥
चित्त लगावै विषयन मैं, मनुष्य जनम कौं पाय॥
ठग्यौ जात है नर सुही, अवसर देत गमाय॥२७॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

करत भये असतुति सबै, अैसी भांति सुभाय॥
पृथु पहुँचै तिहुं ठौर हुव, रांनी प्रापति जाय॥२८॥
इहि चरित पृथु कौ कह्यौ, आछी भांति सुनाय॥
कहै सुनैं सुष पावहीं, प्रिथु की गति कौं पाय॥२९॥
विप्र सुनैं इहीं चरित कौ, ब्रह्म तेज बढि जाय॥
अरु जो कौउ छत्री सुनैं, नृप पदवी बहि पाय॥३०॥
बैस्य सुनैं जो चरित इह, तौ धनवंत जू होत॥
सूद्र सुनैं तैं पावही, उत्तमता हीं उद्दोत॥३१॥
तीन बेर या चरित कौं, सुनैं भलैं उनमांन॥
निसंतांन वारैन केउ, होई सुषद संतान॥३२॥

अरु निरधन कैं हौय धन, कीर्त्ति आयु बदि जात॥
मूरष पंडित होत पुनि, मंगल अतिहि सरसात॥३३॥
अरु कलियुग कैं मैल सब, हिय तैं जात नसात॥
धर्म अर्थ सब कांमनां, मौछ लहै विष्यात॥३४॥
इहि चरित सुनि नृपति कोउ, चढै जुध कैंहि काज॥
तौ ताकै ह्वै जांहिं बसि, सबहीं नृपति समाज॥३५॥
कुसंग छौड सब भक्त ह्वै, करै पाठ निहकांम॥
अैसौ चरित जु है अहै, पृथु पदवी लहि तांम॥३६॥
दिन दिन प्रति आदर सहित, सुनैं पढैं जो कोय॥
नवका जग तरिबै समद, हरि चरणनि रति होय॥३७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयबिंसोऽध्यायः ॥२३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्बिंसोऽध्यायः ॥

(पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को भगवान् रुद्र का उपदेश)

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - कहत जु रिषि मैत्रेय जू, प्रथु कौ सुत बिजितासु॥
सौ राजा हुव अवनि कौं, धरैं धर्म बिस्वासु॥ १ ॥
अपनैं लघु भाईन कौं, बांटि दिसा चहुँ दीन॥
और प्रथी कौ राज सब, आप भली बिधि कीन॥ २ ॥
धूम्रकेत कौं दछिन दिय, उत्तर द्रविणहीं दीन॥
पूर्व दिसा हरियक्षहिं दिय, ब्रकहिं पछिम पति कीन॥ ३ ॥
हुव वा नृप बिजितासु कौं, नांम जू अंतरधांन॥
तिहं सिषंडिनी नारि तैं, सुत त्रय हुव बुधिवांन॥ ४ ॥
पावक सुचि पवमांन तिहुं, एहैं जिन्हकैं नांम॥
रिषि बसिष्ठ कै श्राप तैं, प्रगटै अग्नि सुधांम॥ ५ ॥
राजा अंतरधांन कैं, तिय नभस्वती जु और॥
हविर्धान ताकै भयौ, पुत्र भूपहिं सिर मौर॥ ६ ॥
जिन्ह मार्यौ नहिं इंद्र कौं, जिग्य अश्व लै जात॥
अरु आपुन नित जिग्यही, करत रह्यौ विष्यात॥ ७ ॥
प्रजा पासतैं जिन कबहुं, लियौ दंड कर नांहिं॥
हिय धरि हरि कौं ध्यांन हुव, प्रापति प्रभु पुर ठांहिं॥ ८ ॥

हविर्धान कै तिय हुती, हविर्द्धानी तिहुँ नांम॥
प्रगट भये तिहं गर्भ तैं, षटसुत अति अभिरांम॥ ९ ॥
कृस्न सुकल गय बर्हिषद, जित ब्रत सत्य सुभाय॥
यै छहूंन कैं नांम हम्ह, तुम्ह कौं कहै सुनाय॥१०॥
तिन्ह मैं राजा बर्हिषद, कर्म जोग कै मांहिं॥
सावधांन अति ही भयौ, भक्ति धर्म सुधि नांहिं॥११॥
बउत जिग्य जिन्ह नृप कियै, गनती कही न जाय॥
तिन्ह जिग्य बिधि कौ सब प्रिथी, मधि कुस दियै बिछाय॥१२॥
जिन्ह नृप सुता समुद्र की, ब्याही सति दुति नांम॥
ब्याह समैं मोहित भयै, अग्नि देषि बह बांम॥१३॥
अरु सुरगन गंधर्व सब, मोहित हुव बहि देषि॥
अैसौ अदभुत रूप बां, तियकौ हुतौ अलेषि॥१४॥

चौपाई - नृपति बर्हिषद कौ फिरिनांमा। हुव प्राचीन बर्हिगुन धांमा॥
ताकैं जनम पुत्र दसहिं लयौ। सबकौ नांम प्रचेताहिं भयौ॥१५॥
प्रजा उपावन पित आग्यां दिय। उन्ह बन जाय सलिल बिच तप किय॥
प्रचैतांन कौं तांह सिव मिलै। कह्यौ स्तोत्र अधिक हित षिलै॥१६॥
स्तोत्र बहै नित पढै प्रचेता। करत भयै हरि ध्यांन सहेता॥

॥ बिदुर उबाच॥

पूछत बिदुर जु सिव किहँ भायी। उनहिं मिलै सौ कहहुं जतायी॥१७॥
अरु सिव कह्यौ कहा उपदेसा। दुर्ल्लभ सिवकौ मिलन द्विजेसा॥
सिव तौ आत्मारांम कहत है। घोर सक्ति जुत फिरत रहत है॥१८॥
इहि सुनि फिरि बोलै रिषिरायी। कहत भयै सब भेद सुभायी॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

पितु आग्या तब पाय प्रचेता। पछिम दिसहिं गयैउ तप हेता॥१९॥
तहं इक उज्जल लष्यौ सरोवर। उज्जल साध सुमन कै सरभर॥
प्रफुलित कमल बउत जामांहीं। गुंजत भ्रमर पुंज तिहिं ठांहीं॥२०॥
सबद करत है सारस हंसा। बेद पढत मनौ द्विज वर बंसा॥
कमल पराग सुगंधित पौंना। चलत मंद तिहं ठौर सुठौंना॥२१॥
अदभुत ठौर सोम अधिकांहीं। अैसे सुभग सरोवर मांहीं॥
राग मृदंग मधुर धुनि तहँ सुनि। भयौ अनंद प्रचेतन कैं पुनि॥२२॥
वाही समैं सरोवर तैं हर। निकसत भये जु पारबती बर॥
करत देवता असतुति जिन्हकी। कंचन सम जु कांति है तिन्हकी॥२३॥
नील कंठ त्रय नैंन सुढारा। प्रसंन बदन अति सौभ उदारा॥
अैसै सिवहिं प्रचैता दैषिहिं। किय प्रनांम प्रभु रूप सु पैषिहिं॥२४॥

तिन्हसौं प्रसंन हौय सिव बोलै। तत्व ग्यांन सुभ भेद सुषोलै॥

॥ श्री रुद्र उबाच॥

तुम्ह प्राचीन बर्हि कै नंदन। हम्ह जांन्यौं जु मनोरथ तुम्ह मन॥२५॥
म्है तुम्ह पैं करि क्रिपा सुभाई। दरसन देत भयौ सुषदाई॥
त्रिगुनन तैं न्यारै भगवांनहिं। तिनकै हैं कोउ भक्त सु जांनहिं॥२६॥
जे मोकौं अतिही है प्यारै। म्हैरे प्राननि सम निरधारै॥
अपनैं धर्म मांहिं जो कोई। निश्चैहिं सावधांन जै होई।२७॥
सौजन सौजन मन कैं मांहीं। बिधि कौं प्रापति होत सुठांहीं॥
ता पीछैं मोहि प्रापति हो वहिं। फिरि पावत हरि रूप उदोतहिं॥२८॥
जइसै हैं मोकौं हरि प्यारै। प्रिय हरि भक्त हुँ तिहीं प्रकारै॥
तुम्ह सौं स्तोत्र कहत हौं एकूं। सौ तुम्ह जपहुं सदा धरि टेकूं॥२९॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

तहँ बैठे कर जोरि प्रचेता। सुनन स्तोत्रहिं बुद्धिहुं सहेता॥
तिनकौं तहँ सिव परम सुदेसा। सुभ स्तोत्र कौ कियहुँ उपदेसा॥३०॥

॥ रुद्र उबाच॥

हे भगवांन जगत कैं ताता। तुम्ह ग्यांनिन कै आनंद दाता॥
तुम्ह प्रभु अति आनंद स्वरूपा। सबकै आत्मा परम अनूपा॥३१॥
तुम्हहिं करत हैं हम्ह जु प्रनांमा। दीन बंधु पूरन सब कांमा॥
सोभित कंवल नाभि जिनकै मधि। तामैं प्रगट सुहोत भयौ बिधि॥३२॥
सूक्ष्म भूत रु इंद्री रूपा। बासुदैव प्रभु परम अनूपा॥
निर्बिकार अरु सांत उदारा। दीन बन्धु स्वांमी करतारा॥३३॥
तुम्ह संकरषन अनिरुद्ध प्रदुमन। बार बार तिनकौं है बंदन॥
स्वर्ग मुक्ति कै तुम्ह ही दाता। परम हंस स्वांमी बिष्याता॥३४॥
जिग्य रूप बिधि रूप बेद पति। सुर पितरन कै पोषक सुभ गति॥
तुम्हहीं सबकौं त्रिपति करत हौ। तुम्हहीं रूप अनेक धरत हौ॥३५॥
तुम्हहीं प्रिथी रूप रस रूपा। तुम्हही हौं ससि रूप अनूपा॥
तुम्हहीं तिहुँ पुर पालन हारा। तुम्हहिं सर्ब व्यापक करतारा॥३६॥
तुम्हहीं तन कै हौ बलदाता। तुम्हीं नभ स्वरुप दरसाता॥
तुम्हहीं प्रबृति निबर्ति स्वरूपा। तुम्हहीं पुन्य रूप जग भूपा॥३७॥
तुम्हहीं रूप धर्म फल कै हरि। तुम्ह बंछित दाता सब अवसरि॥
तुम्हहीं मृत्यु रूप हौ स्वांमी। धर्म रूप तुम्हहीं बहुं नांमी॥३८॥
तुम्हहीं हौ प्रभु सबकै कारन। तुम्हहीं कृस्न रूप दुष टारन॥
तुम्हही पुरान पुरुष सर्वोपर। सांष्य जोग कैं तुम्हहीं इस्वर॥३९॥
तीन सक्ति संजुत हौ आपा। सर्ब अहं इन्द्री रूप स्थापा॥
अपनौं सुंदर रूप उदारा। हम्हहिं दिषावौ क्रपा प्रकारा॥४०॥

अदभुत सुंदर स्यांम सरूपा। कमल पत्र से नैंन अनूपा॥
सुंदर आनन बांकी भौंहैं। नासा कर्न सोभ सरसौंहैं॥ ४१॥
दंत कपोलनि छबि अधिकांहीं। हसनि कटाछि ललित दरसांहीं॥
सुभग भुजा आयुध संजुत कर। सोभित घुंघरारे कच मुष पर॥ ४२॥
सीस मुकट अरु कुंडल श्रवनन। उर मधि कौस्तुभ मणिश्री लांछन॥
पीत बस्त्र सुंदर बन माला। जथा जोग्य आभरन रसाला॥ ४३॥
त्रिबली संजुत उदर अनूपा। नाभी है आवर्त्त स्वरूपा॥
जंघा पिंडुरी परम सुढारा। चरन कमल जग तारन हारा॥ ४४॥
याहि स्वरूप अग्यांन मिटांवन। भक्तननि उर आनंद बढांवन॥
या स्वरूप कौ सुन्दर ध्यांना। सबहिं कौ करता कल्यांना॥ ४५॥
भक्तिवंत जन तुम्ह कौं पावत। जै कौउ तुम्ह सौं चित्त लगावत॥
भक्ति भाय तुम्हरौ आराधन। निश्चै जे कौउ करत साध जन॥ ४६॥
तैं तजि कैं पद कमल तुम्हारे। और न कछु मांगत किहुं बारै॥
जो तुम्हहिं चर्नन आश्रय करै। सौ जमहुँ नांहिंन चित डरै॥ ४७॥
औरन कौं जम नास करत है। देवतांनहूं तैं न डरत है॥
भक्त जनन कौ लहि कै संगा। छिन मैं जो सुष होत सुढंगा॥ ४८॥
ताहिं सम स्वर्ग मोछ हुं मांहीं। किहूँ ठौर सुष लहियै नांहीं॥
हे प्रभु गांवत कीर्ति तिहारी। तिन्ह उर मैल कटै निरधारी॥ ४९॥
सब प्रांनिन पैं दया करत हैं। राग द्वेष किहुं सौं न धरत है॥
जिन चित्त मैं नहिं बिषै अग्यांना। निसदिन करत तुम्हारौं ध्यांना॥ ५०॥
नित दृढ़ चित तुम्ह चर्नन ठांमी। अैसे भक्त तिहारै स्वांमी॥
जिन्हकौ संग करि मोहि अनुसरौ। यहै अनुग्रह हम्ह पैंहिं करौ॥ ५१॥
सतपुरुषन कै भक्ति प्रतापा। यांकौं चित्त सुधरहिं हरि जापा॥
यातैं मोह मिलै नाहिं कबहीं। तत्व तुम्हारौ जांनैं तबहीं॥ ५२॥
इहि जग है तुम्हारैहिं मांहीं। नभ सम तुम्ह व्यापक सब ठांहीं॥
जो प्रभु तुम्ह माया अनुसारा। करत जगत पालन संघारा॥ ५३॥
रिषि करि क्रिपा अनेक प्रकारा। तुम्हरौ जजन करत निरधारा॥
बेहि कहावत परम प्रवीनां। जे जन तुम्ह सौं रहत अधीनां॥ ५४॥
इहि सब जग अरु तत्व चौबीसा। तुम्हहीं उपजावत जगदीसा॥
च्यारि प्रकार सरीर उपायहिं। तिन मैं तुम्हहीं पैठि सुभायहिं॥ ५५॥
सब बस्तुनि कौ भोगू करत हौ। निज ईछा अनुसार टरत हौ॥
काल रूप ह्वै तुम्ह करतारा। करत जु सबहिंन कौ संघारा॥ ५६॥
मनुष्य असांवधांन इह भूली बिषै कांमनां मधि रहि झूली॥
तुम्ह प्रभु काल स्वरुप निदांना। सबकौ नास करत भगवांना॥ ५७॥
तुम्ह पद छोडे कोंनुँ प्रबीनां। जिन्ह सौं बिधिहू रहत अधीनां॥

तुम्हहीं सबके अभय प्रदाता। परमानंद स्वरुप विष्याता॥ ५८॥
इहि स्तोत्र तुम्हहुं अहौ प्रचेता। करहुं भलै जप उर धरि हेता॥
अपनैं धर्म सदाहिं निरत हौं। प्रभू म्हैहिं चित्त लगायौ रहौं॥ ५९॥
सब जीवन मैं है भगवांना। तिनकौ कीजै पूजन ध्यांना॥
बुधि निस्चल कहिहुं सहित हुलासा आछैं करहुं याहि अभ्यासा॥ ६०॥
बिधि मुहि अरु भृगु आदि रिषिन कौं। यहै स्तोत्र कह्यौ श्रृष्टि श्रृजन कौ॥
बिधि आग्यां अरु स्तोत्र प्रतापा। करतहिं भये हम्ह श्रृष्टि स्थापा॥ ६१॥
याहि स्तोत्र कौं पढै जु कोई। तिहुँ कल्यांन बेगहीं होई॥
सबही कल्यांननहुं कैं मांहीं। ग्यांन समांन कल्यांन जु नांहीं॥ ६२॥
जीव जु तत्व ग्यांन अनुसारा। दुष समुद्र कौ पावत पारा॥
पढै स्तोत्र इहै जोउ कोई। तिहं बंछित सबै पूरन होई॥ ६३॥
इहि स्तोत्र जोइ सुनै सुनावै। सौ निज बंधन करम नसावै॥
हे नृप पुत्रहू स्तोत्र पढौ यहि। अरु तप करहुं सु इंद्रीय मन गहि॥ ६४॥
ह्वै हैं बंछित सकल तिहारौ। निश्चै मांनहू बचन हम्हारौ॥
करि सनांन प्रात पढ़ै सोई। कटै कर्म पायै बंछित जोई॥ ६५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्बिसोऽध्यायः ॥ २४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचबिंसोऽध्यायः ॥

(राजा पुरंजन - उपाख्यान का प्रारंभ)

मैत्रेय उबाच॥

चौपाई - रिषि मैत्रेय कहत इहँ भायी। सिव उपदेस दियौ सुषदायी॥
प्रचेतांन मिलि पूजा कीनां। सिव भय अंतरध्यांन प्रवीनां॥ १ ॥
रुद्र गीत कौ पाठ सुढारा। करत प्रचेतांन बारंबारा॥
बरष सहस दस जल कै मांहीं। दृढ़ तप करत भये उहिं ठांहीं॥ २ ॥
प्रचेतांन कौ पितु निज धांमा। नृप प्राचीन बर्हिषद नांमा॥
लगि रह्यौ जिग्य कर्म कैं मांहीं। तत्व ग्यांन समझतहुं उरनांहीं॥ ३ ॥
तांकौ नारद जू तहँ आई। कियौ ग्यांन उपदेस सुभाई॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत सुनौं हौ राजा। लगै कर्म मधि तुम्ह किहिं काजा॥ ४ ॥
दुष की हांनि रु सुष की प्रापति। कर्मनि सौं नहिं होत कहौं सति॥

॥ प्राचीन बर्हिषद उबाच॥

नृप बोलै एहो मुनि राई। हूं कर्मनि मैं रह्यौ लुभाई॥ ५ ॥

मो पर करिकें क्रपा द्विजेसू। मो कौ करहुँ ग्यांन उपदेसू॥
छूटै कर्म म्हेरे बंधन सब। तत्व ग्यांन सौं क़हौ अबै सब॥ ६ ॥
इहि प्रांनी जु तिया सुत मैं नित। रहत होहीं आसक्त मूढ चित्त॥
भ्रमत फिरत नित बिच संसारा। लहत न प्रभु प्रापति सुषसारा॥ ७ ॥

॥ श्री नारद उबाच॥

फिरि नारद बोलै हे राजा। हते जीव बहु तैं जिग्य काजा॥
तैं सब ठाढै हैं तू देषी। श्रृंग लौह मय छिदिहिं सपेषी॥ ८ ॥
बिच जमलोक मारिहै तोही। लै हैं पलटौ लषि निज द्रोही॥
यैक पुरंजन कौ इतिहासहिं। हूं कहौं जु सुनि सहित हुलासहिं॥ ९ ॥
इक नृप भयो पुरंजन नांमा। तिहं जस जग फैल्यौ अभिरांमा॥
अबिग्यात जाकै इकहीं सषा। तिहूं चरित्र किहुं नांहिंन लषा॥१० ॥
अपनैं बसबै कौं सौ राई। ढूंढत फिर्यौ ठौर सुषदाई॥
पै परिकहूं पावत जु नाहीं। दुषित भयौ तब अतिहिय मांहीं॥११ ॥
नगरी बउत नृपति इन देषी। निज बसबै लायक न सपेषी॥
कांम भोग सब पूर्न होई। अैसी नगरी लषी न कोई॥१२ ॥
इक दिन हिम पर्बत सुभ ठौरा। सिषर दांहिनैं दिसकी वोरा॥
नृपनैं देषी बिलछन नगरी। भोग बस्तु जहं प्रापत सुषरी॥१३ ॥

दोहा - नगरी इहि नौ द्वार की, देषी इहां नृपाल॥
उपवन षाई कोटबहु, तोरन बंधै रसाल॥१४॥
सौनैं रूपै लौह कै, लसत कलस सब ठांम॥
धुजा पताका अरु बंधी, बंदन माला धांम॥१५॥
नीलमनी बैडुर्य्य अरु, मरकत मनी सुढार॥
फटिक मनी मोती लगै, धांमन बीच अपार॥१६॥
सभा चौहटे गली पुनि, क्रीडा गृह सुषदाय॥
देव स्थल जामैं बउत, सोभित परम सुभाय॥१७॥
भोगवती सम बह पुरी, उपमां कही न जात॥
अधिकी सब नगरीन मैं, बह नगरी दरसात॥१८॥
नगरी कै बाहिर सुभग, उपबन ठौर लसंत॥
बृछि सरोवर तहँ बउत, बौलत षग जु अनंत॥१९॥
सीतल चलत समीर अरु, झरना झरत अपार॥
सब्द करत लागत भलै, कोकिल मोर सुढार॥२०॥
बसत अनैंक प्रकार कैं, बन कै जीव अनंत॥
आपस मैं दुष देत नहिं, सब आनंद लहंत॥२१॥

यैक तांह सुन्दर तिया, आई सहजहिं मांहिं॥
भूप पुरंजन तासकौं, लषत भयौ उहिं ठांहिं॥२२॥
दस सेवक उहिं संग है, सत सत कै सिरताज॥
पंचानन अहि पौरियां, उहिं पुर रछया काज॥२३॥
पति कौ चाहत तिय बहै, अदभुत सुंदर रूप॥
अंग अंग सोभा सरस, जोबन वंत अनूप॥२४॥
जथा जोग्य भूषन बनै, पीत बस्त्र अभिरांम॥
मंद मंद मुसक्यात मुष, करि कटाछि बह बांम॥२५॥
सुंदर गोल उरोंज हैं, जौवन जतवन हार॥
लज्जा सौं तन नाहिं छिपै, गजगति चलत सुढार॥२६॥
तिहं कटाछ अदभूत निरषि, बौलत भयौ नृपाल॥
तू कौ है इह बाग मैं, का चाहति है बाल॥२७॥
पंकज से तौ नैंन हैं, कनक लता समगात॥
चितवनि तीछन मदन सर, अदभुत छबि दरसात॥२८॥
तौ संगी दस कौंनुअै, अरु अै नारी कौंनुं॥
इन्ह दसौंन मैं ग्यारहौं, जौधा बडौ सुठौंनुं॥२९॥
अरु तेरै आगैं चल्यौ, आवत है सौ कौंनुं॥
मोसौं कहियै भेद सब, बोलहुं तजि मुष मौंनुं॥३०॥
तू है रमा उमा किंधौ, अरु है तिया कि कांम॥
गिर्यौ कमल तौ हाथ तैं, कहियैं कौंनैं ठांम॥३१॥
तू ढूंढत डौलत पतिहिं, हम्ह जांनी इहि बात॥
अरु तुम्ह हम्हसौं देहुं कहि, और जु कछु सौघात॥३२॥
अरु याहि हुँ जांनी परत, तू जु देवता मांहिं॥
लागत तैरै हैं चरन, सुंदर प्रथवी ठांहिं॥३३॥
अब या नगरी मैं रहहुँ, संग हम्हारै आप॥
बिस्नु संग जइसैं रमा, रहत सनेह स्थाप॥३४॥
हे तिय म्हैं मोहित भयौ, तौ कटाछि अनुसार॥
अब अपनौं सुष मोहिं तुम्ह, देउ दिषाय सुढार॥३५॥
अैसौं नृप कौं बचन सुनि, हसि बोली तिय चाहि॥
हम्ह निज कर्त्ता गौत्र पुनि, नांव जु जांनत नाहिं॥३६॥
पुरी बनाई जिन इहै, तिहुँ हूँ जांनत नांहिं॥
सषा सषी म्हेरै सबै, ए नर नारी आहिं॥३७॥
म्हैं सौवत हौं तब यहै, जागत रहत जु नाग॥
या पुर की रछया सदा, करत रहत बड भाग॥३८॥

भली भई हे नृपति तू, आयौ इहे पुर मांहिं॥
भोग कांमना तुम्हहिं मैं, पूर्न करहुं तौ चांहिं॥३९॥
इहि नगरी नौ द्वार की, जामैं बसियै आप॥
सौ बरसन लौं हम्ह रु तुम्ह, भोग करैं जु संदाप॥४०॥
तौ सौं छुटि कैं और कौं, जांसौ करूं बिलास॥
दिय मिलाप संजोग बिधि, हम्ह तुम्ह इहीं निवास॥४१॥
धर्म अर्थ संतान जस, कांम रु उत्तमहुं लोक॥
अै सब आछै पाइयै, गृह मैं बसि बिनु सौक॥४२॥
पितर देवता मनुष्य जे, सबहिंन बिच संसार॥
दाता है आनंद कौ, गृह आश्रम निरधार॥४३॥
सुंदर दाता तू प्रसिध, बरै कौंनु नहिं तोहिं॥
तोसौं पति लषि कैं तिया, कौ मोहित नहिं होहिं॥४४॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत जु यौं दोउ, कहि आपस मैं बैंन॥
वापुर मैं सौ बरष लौं, कियौ सरस बहुं चैंन॥४५॥
इन्ह आगैं गंधर्व मिलि, करत रहैं गुनगांन॥
षट रितु कै तिय पिय दोउ, करत बिहार सुजांन॥४६॥
सात द्वार वा नगर कै, जांनहुं ऊंचै वोर॥
दोय द्वार पहिचांनियै, पुरकैं नीची ठोर॥४७॥
जैबे देस जुदे जुदे , रचै जु बे नव द्वार॥
देस रु द्वारन कै कहूं, सुनौं भेद बिस्तार॥४८॥
पंच द्वार पूरब दिसहि, उत्तर दिसहुँ इक द्वार॥
अरु दछिन दिसहिं द्वार इक, द्वै पछिम दिसहिं द्वार॥४९॥
षद्योता अरु आविर्मुषी, द्वार नैरित्र सुभाय॥
लै संग सषा द्युमांन कौ, देस बिभ्राजित जाय॥५०॥
नलिनी नालिनि द्वार द्वै, सउरभ देसहिं जाय॥
सषा नांम अवधूत लै, अपनै संग लगाय॥५१॥
मुष्यां नामी द्वार है, बिपण रसग्य जहिं संग॥
आपण और बहूदन सु, देसनि जात सुढंग॥५२॥
पित्रहुं नांमी द्वार है, श्रुतधर कौं लै संग॥
देस दछिन पांचाल कौ, जाय धरै मन रंग॥५३॥
द्वार देवहूं नांम मधि, है श्रुतिधर लै संग॥
उत्तर देस पांचाल कौ, जाय जु सहित उमंग॥५४॥
द्वार आसुरी ओर है, दुरमद सषा जु लार॥
ग्रांमक नांमा देस कौ, जाय नृपति किहुं बार॥५५॥

निरत नांम कै द्वार है, लुबधक सषा समैत॥
बैसस नामां देस कौ, जाय कबहुं करि हेत॥५६॥
पैससक्रत निर्वाक यै, इनमैं अंध जु दोय॥
तिनसुं चलत रु कार्य्य बहु, करत चाह जो होय॥५७॥
अंतह पुर मैं प्राप्त है, बिषूचीन संजुक्त॥
मोह प्रसाद रु हर्ष कौं, जात कहीयत उक्त॥५८॥
भूप पुरंजन करत भौ, नगरी मद्धि निवास॥
सुष दुष तिय सुत संग सौं, मांनन लग्यौ प्रकास॥५९॥
कर्मन मैं आसक्त नृप, भयौ अधिक उहिं ठांम॥
करत भयौ राजा सोइ, बचन कहत जो बांम॥६०॥
तिया करै मदपांन तौ, नृपहुं करै मदपांन॥
तिय भोजन जब करै तब, नृपहुं करतहिं निदांन॥६१॥
तियहिं गावै तौ नृपति हुं, गावै उर उमगाय॥
तियहिं रोवै तौ नृपतिहुं, रोवै अति बिलषाय॥६२॥
तिय बौलत तब बोलहीं, हंसै हंसै जो नारि॥
तिया चलै तौ नृप चलै, रहैहुं ठाढौ तिय लारि॥६३॥
तिय बैठे तो बैठहीं, तिय सोवै तौ सोय॥
तिया प्रसंन जो हौय तौ, नृपहुं प्रसंन जू होय॥६४॥
तिय देषै तौ देषहीं, सुनैं सुनैं जो तीय॥
सोच करै जो नारितौ, सोच करै मिल पीय॥६५॥
क्रीडा मृग सम होत भौ, नृप तिय कै आधीन॥
केते दिवस बितीत भय, बाढ्यौ नेह नवीन॥६६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्ध भाषा ब्रजदासी कृते
पंचबिंसोऽध्यायः ॥ २५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षडविंसोऽध्यायः ॥

(राजा पुरंजन का शिकार के लिए वन में जाना तथा रानी का कोप)

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - नारद कहत जु इक दिनां, नृपति उमगि मनमांहिं ॥
कर धनु लै रथ चढि गयौ, पंच प्रस्थ वन ठांहिं ॥ १ ॥
पांच अस्व जिहं रथ लगै, द्वै पड़या द्वै दंड ॥
तीन बेणु इक अछ है, बंधन पांच अषंड ॥ २ ॥

ऐक अस्वन की बाग है, ऐक सारथी जांनिं॥
ठौर ऐक के बैठबै, लायक जांह पिछांनिं॥ ३ ॥
दौय जू वाकै अग्र अरु, परदा सात सुढार॥
पांच प्रहरण जामाहीं, गति कै पांच प्रकार॥ ४ ॥
सरं जाम कंचन अधिक, रथ कै अति अभिरांम॥
पहरैं कवच सुवर्ण कौ, नृप बैठ्यौ तिहं ठांम॥ ५ ॥
कटि निषंग कर मैं धनुष, आयुध युक्त नृपाल॥
अरु सेनापति संग जिहं, यैकाद सौं बिसाल॥ ६ ॥
षैलत भयै सिकार नृप, जुत हुलास बन जाय॥
अति निर्दय ह्वै कैं हतै, बउत जीव तहँ राय॥ ७ ॥
हौय श्राद्ध दिन जब हतै, पसू पवित्र बन जाय॥
पिंडदांन कै काज कौं, दीनै बेद बताय॥ ८ ॥
और दिवस मारै पसू, महादोष तौ होय॥
पितर श्राद्ध कौ पसु हतै, तौ दूषन नहिं कोय॥ ९ ॥
चित्र पंष नाना सरनि, तिन करि अंग बिदारि॥
दुषित जीव बहु नास हुव, दया तनक नहिं धारि॥१०॥
ससा सैह भैंसा सुवर, मारै बउत नृपाल॥
हारि गयौ तब गेह निज, आयौ नृप उहिं काल॥११॥
भोजन करि बैठ्यौ पलिंग, पहरि आभरन वस्त्र॥
निज तिय कौ चाहत भयौ, लगै मदन कै सस्त्र॥१२॥
अंतहपुर की तियन सौं, पूछत भयौ नृपाल॥
सषी तुम्हारी स्वामिनी, है जुत कुसल रसाल॥१३॥
माता अरुतिय पतिव्रता, ह्वै नांहिंन जिहं थांन॥
सौ घर नहिं किहुं कांम कौ, ज्यौं रथ बिन पइयांन॥१४॥
तातैं बह अति दुष्ष तैं, म्हैरौ करै उधार॥
मोहि बतावहुँ मो प्रिया, अहोसषि इही बार॥१५॥

॥ रामा ऊचुः ॥

बोली सषी जू हम्ह कछु, कारन जांनत नांहिं॥
बिनां बिछौनां तो तियां, सोवत है भुव ठांहिं॥१६॥

॥ नारद उबाच ॥

भू मैं सोई देषि तिय, बिकल भयो अति राय॥
जांनत भयौ कि इहि तियां, रूठी किहूं प्रभाय॥१७॥
हाथ पकरि निज गोद नृप, लीनी तिया उठाय॥
टांरन मांन सनेह कैं, बोल्यौ बचन सुभाय॥१८॥

॥ राजो बाच ॥

अहौ प्रिया जिहं अनुग कौ, प्रभु अपराध निहार॥
दंड न दैय सुदास बह, भाग्य हीन निरधार॥१९॥
दंड दैत प्रभु दास कौं, करतहिं अनुग्रह सौय॥
समझत है यहि बात कौं, जें प्रवीन जन कौय॥२०॥
सुंदर चितवनि हंसनि जुत, पंकज बदन रसाल॥
अलि सम अलकैं सोभही, सो मुहि दिषवहुँ बाल॥२१॥
जिन तेरौ अपराध कछु, कियौ हौय किहुं भाय॥
ताहि देहुं म्हैं दंड अब, तुम्ह जो देहुं बताय॥२२॥
द्विज बैष्णव दंड जोग्य नाहिं, दंडहिं न दैहौ तांहिं॥
और होउ कोउहिं प्रबल, दैहौं दंड उमांहिं॥२३॥
तौ मुष पैं नहिं तिलक मुष, मलिन क्रोध अनुसार॥
आंसुन सौं भीजै उरज, तन कंपित इहि बार॥२४॥
म्हैं अपराध कियौ यहै, षेलन गयौ सिकार॥
छिमा करहुँ सौ अब प्रिया, कीजै क्रिपा सुढार॥२५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षटबिंसोऽध्यायः ॥ २६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तबिंसोऽध्यायः ॥

(पुरंजन पुरी पर चंडवेग का आक्रमण तथा काल कन्या चरित्र)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा – नारद कहत कि नृपति कौ, पुरंजनी इहँ भाय॥
अपनैं बसि करिकैं रमन, करत भई सुषपाय॥ १ ॥
तियकौं लषि अपनैं निकट, अति सराह नृपकीन॥
बीतत काल न लषि पर्यो, है तिय कैं आधीन॥ २ ॥
बैठयौ रहै पिलंग पर, उहिं तिय जुक्त नृपाल॥
अपुन परायै की कछू, राषत नांहिं संभाल॥ ३ ॥
बितई जोबन अवस्था, अैसैं करत बिलास॥
आधी आयुष नृपति की, वृथा लहत भइ नास॥ ४ ॥
सुता अैकसौ दस भई, अरु ग्यारहस जु पूत॥
ब्याहि दियै तिन सबनकौं, गृहस्थाश्रम कैं सूत॥ ५ ॥

अैक अैक कैं भयै सौ, सौ सुत तिहंहूं ठांहिं॥
बढ्यौ पुरंजन बंस यौं, देस पांचाल मांहिं॥ ६ ॥
राजा कै ममता बढी, उन्ह मधि अति अधिकाय॥
हुव आसक्त बिषैन मैं, आछैंहुँ चित्त लगाय॥ ७ ॥
पितर देवतनि काज कौं, कीनैं जिग्य नृपाल॥
गृह मैं आसक्त तुम्ह ज्यौं, बिषै मद्धि बेहाल॥ ८ ॥
इतनैं मैं बह दुषद अंति, समैं प्रगट भौ आय॥
जो समयौ बिषईन कौं, लागत बुरौ कुभाय॥ ९ ॥

चोपाई - चंड बेग गंधर्व जु एकहिं। तांहिं सबनि जीतन की टेकहिं॥
गंधर्वी गंधर्व जू संगा। रहत तीन सै साठि सुरंगा॥१०॥
आधी गौरी आधी कारी। सबकौं लूटत जै निरधारी॥
चंड बेग कै सेवगहुं जिते। हरत पुरंजन पुरभये तिते॥११॥
मनैं करत भयौ तब प्रजागर। सौ बरसन कीय जुद्ध बीरबर॥
फिरी बलछीन प्रजागर भयौ। तब नृपति चित्त चिंता बिच ठयौ॥१२॥
सेवक कछू बस्तु जोइ ल्यावै। नगरी मध्य तैं दैंहिं आवै॥
ताही कौ नृप भोग जू करै। पौरष कछू नाहिंनै जु धरै॥१३॥
निश्चै है तिया कैं आधीनां। कालहुं कौ भय कछू न कीनां॥
सुता काल की सबै ठां फिरै। ताकौं चाहि नहिं कौऊ बरै॥१४॥
ताकौ नांम दर्भगा चीह्नौ। जिन राजा पुर कौं बर दीह्नौं॥
नारद कहत काल कन्या वही। आइ हुती एक दिन मो पही॥१५॥
मो सौं कह्यौ मोहि तुम्ह ब्याहौ। पतनी भाव भली बिधि चाहौ॥
म्हैं न बरी तब मोहि दिय श्रांप। इक ठां बास नहिं बसि हौं आंप॥१६॥
फिरि मो आग्यां कै अनुसारा। औरहिं ठौर गई उहिं बारा॥
भय जु नांम यवननि कौ राजा। तापैं गई सुधारन काजा॥१७॥
बासौं जाय कह्यौ मो ब्याहौ। प्रीत रीत कौ लीजै लाहौ॥
मूरष है जै बस्तु सुढारा। करैं नांहिंनैं अंगीकारा॥१८॥
तातैं मोकौं अंगीकारा। राजा आप करहुँ निरधारा॥
बडे पुरुष कौ धर्म जु याहै। दया दुषी जीवन पर चाहै॥१९॥
यै सुनि काल कन्या कैं बैंना। बोल्यौ जवन नृपाल सुषैंना॥
ठीक कियौ पति म्हैं तौ लीयैं। तौहित कौ चाहत निज हीयैं॥२०॥
तू छिपि कैं सबही लोकन कौं। भोग करहुँ चाह्यौ निज मन कौं॥
म्हेरी सैन संग लै जाई। तू सब ठौर फिरहुं सुषपाई॥२१॥

तू है म्हैरी बहन निदांनां। भ्रात प्रज्वार नांम सौ जांनां॥
संग सैन लै भ्रात समैता। सब ठां मैं हूं फिरहुँ बिजैता॥२२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते
सप्त बिंसोऽध्यायः ॥२७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टबिंसोऽध्यायः ॥

(पुरंजन को स्त्रीयोनी की प्राप्ति तथा अविज्ञात के उपदेश से
उसका मुक्त होना)

॥ श्री नारद उबाच॥

दोहा - सैना भय जु मलैछ की, लीनैं संग प्रज्वार॥
सहित काल कन्या फिरती, प्रिथी मध्य निरधार॥ १ ॥
नगर पुरंजन कौ जिननि, येक दिवस लिय घेरि॥
बृद्ध सांप जिहँ नगर की, रछा करतहुं अवेरि॥ २ ॥
काल कन्या उहिं नगर कौ, भोग करत भइ चाहि॥
जाकै करवै भोग सौं, सार देह कौ जाहि॥ ३ ॥
द्वारन मधि मलैछ तांह, पैठि पैठि बरजौर॥
नगरी कौ ढाहत भयै, भली भली सब ठौर॥ ४ ॥
नगर ढहत लषि भूप कैं, भयौ हियै संताप॥
काल कन्या कै भोग सौं, मिट्यौ ग्यांन परताप॥ ५ ॥
जिवन गंधर्व दुहुंन मिलि, होय अधिक बरजोर॥
उहिं नृप कौं अइस्वर्ज सब, हरि लीनौं भुज ठौर॥ ६ ॥
तिय सुत मंत्री जनन सौं, पूरन हुती प्रतीति॥
नगरी ढहनें मैं जिननि, नृप सौंतनि दिय प्रीति॥ ७ ॥
दुषित किये पांचाल हूं, सत्रुननि मिलि तिहिं बार॥
नृपति पुरंजन कौं भई, चिन्ता बऊत प्रकार॥ ८ ॥
अति अभिलाष बिषैन कौ, करत पुरंजन राय॥
निज स्वरुप की सुधि सबै, देत भयौ बिसराय॥ ९ ॥
मिलि मलैछ गंधर्व दुहुँ, घेरि नगर कौं लीन॥
काल कन्या ह्वै जोर वर, सब पुर मर्दन कीन॥१०॥
अैसी नगरी कौ नृपति, किय जब छोडन चाह॥
उहिं ठां रहवै कौ किहूं, भांतिन लष्यौ निबाह॥११॥
भय नांमा जु मलैछ कौ, भाई हुतौ प्रज्वार॥
भयौ जरावत नगर सौं, महाबली उहिं बार॥१२॥

जरत आपनैं नगर कौ, देषि पुरंजन राय॥
जुत कुटंब अति दुषित भौ, नाहिंन कछू बसाय॥१३॥
लियै मलेछनि घेरि घर, लग गइ आगि प्रज्वार॥
काल कन्या नैं नगर सब, लियौ घेरि निरधार॥१४॥
तब पुरकौं पालक बहै, सत्रुननि तैं भय जांनि॥
वा नगरी तैं निकसिवौ, चहत भयौ दुषमांनि॥१५॥
गंधर्वनि बल हर लियौ, अंग अंग सिथलाय॥
घेरि मलैछ गंधर्व लिय, रुदन कर्यौ तब राय॥१६॥
सुत नाती पतनी सुता, गेह बस्तु भंडार॥
सोच करत भय सबन कौ, राजा बउत प्रकार॥१७॥
और लौकहुँ जाऊंगौ, तब मो तिय दुष पाय॥
सोच सुतन कौ करत मो, बिन जीहैं किहं भाय॥१८॥
म्हैं भोजन जब नहिं करौं, बहु करत है जु नांहिं॥
क्रोध करौं म्हैं तौ तबै, याहि डरपै मनमांहिं॥१९॥
मोहि करै उपदेस सुभ, अैसी तिया प्रबीन॥
म्हैं जांऊं किहिं ठौर तौ, हौय जात तन छीन॥२०॥
मो बिन म्हैरे सुत सुता, जीवैंगे किहं भाय॥
बालक रहि हैं किहिं सरन, करिहैं कौंनु सहाय॥२१॥
सोच करत अैसैं नृपति, दुषित होय बिलषाय॥
भय मलैछ याकौं तबै, आयौ गहन रिसाय॥२२॥
नृपहि बांधिकैं लै चल्यौ, जब मलेछ भय नांम॥
नृप संगी पीछैं चलै, सोच करत हिय ठांम॥२३॥
द्वारपाल अहि नगर कौ, सु गयौ नगरहिं त्यागि॥
बिगरि गई नगरी सबै, सोभ जात भइ भागि॥२४॥
जब भय नांम मलैछ लै, चाल्यौ बांधि नृपाल॥
चह्यौ नृपति जब निज सषा, सौं न लह्यौ तिहं काल॥२५॥
जिग्य मांहिं मारै पसू, जितै पुरंजन राय॥
तै सब याहि कुठार सौं, चीरत भयै रिसाय॥२६॥
पर्यौ महा अंधकार मैं, दुषित पुरंजन राय॥
सब सुध दई बिसारिकैं, बिकल भयौ बिललाय॥२७॥
नृपति तिया कै ध्यांन मैं, छौड़त भयौ सरीर॥
तातै तिय कौ जनम फिरि, लह्यौ चाहि बरबीर॥२८॥
नृपति राजसिंघ नांम कै, गृह मैं लिय अवतार॥
प्रगट हौत भई पुत्रिका, अदभुत रूप सुढार॥२९॥

पांड देस कौ मलयधुज, ब्याहि गयौ लै धांम॥
प्रगटै यांके सात सुत, इक कन्याहिं अभिरांम॥३०॥
पुनि इक इक सुत कै भयै, अर्बुद अर्बुद पूत॥
अरु कन्याहीं अगस्त्य लै, गयै ब्याहि हित सूत॥३१॥
ताकै द्रिढ च्युत पुत्र भौ, इध्मबाहु सुत जास॥
ऐसी बिधि संतान की, बुद्धि भई सप्रकास॥३२॥
पांड दैस पति जो नृपति, नांम मलय धुज जांनिं॥
सौं निज पुत्रननि कौं भलैं, दे कैं राज सयांनिं॥३३॥
आराधन श्री कृस्न कौ, करन काज धरि चाह॥
आप कुलाचल नग दिसैं, गयौ समेत उमाह॥३४॥
छोडि पुत्र गृह भोग सब, रांनी हूं तिहं संग॥
पति कैं संग चली सुतौ, सेवा करन अभंग॥३५॥
ताम्रपर्नि सु वटोदका, चंद्रबसा ए तीन॥
इन नदिन मैं सनांन करि, निज मन निर्मल कीन॥३६॥
कंद मूल पल्लव पुहप, जल इह भोजन लीन॥
करत भयौ तपस्यां नृपति, ह्वै हरि भक्ति अधीन॥३७॥
सीत उष्म बरषा पवन, यांकु दुष भूष प्यास॥
सहत भयौ राजा भलैं, हिर्दै बढाय हुलास॥३८॥
तपस्या अरु जम नैम करि, ब्रह्म मांहिं मनलाय॥
दिव्य सौ बरसन लौं करि, तपस्या नृप सुषपाय॥३९॥
सबकौं साछी सर्वमय, जांन्यौ आत्म सरुप॥
श्री हरि गुर की क्रिपा सौं, प्रगट्यौ ग्यांन अनूप॥४०॥
आपहीं जांनतहुं भयौ, परब्रह्म रूप अंभेव॥
अति हित संजुत करत भइ, रांनी पति की सेव॥४१॥
पहलैं बलकल वस्त्र अरु, जटा बंधि गइ सीस॥
ब्रत सौं लटि गइ तउ तिया, संग सोभ जुत दीस॥४२॥
येक दिवस निज देह कौं, राजा त्यागन कीन॥
रांनी अति व्याकुल भई, लषि पति प्रांन विहीन॥४३॥
मृग बिन मृगी जु होत है, ब्याकुल जइसैं भाय॥
तइसैं तिय ब्याकुल भई, पति बिन अति दुषपाय॥४४॥
रुदन करत भइ दुषित ह्वै, बौली ऐसैं बैंन॥
हे राजा उठि प्रिथी की, रछया करहुं सुषैंन॥४५॥
यौं रौवत पति चरन मैं, धरि रहि अपनौं सीस॥
हाय हाय करि करि कहत, कहा करौं जगदीस॥४६॥

चिता बनाय रु ता उपरि, पति कौ तन धरि दीन॥
जरिबेंहु कौं फिरि आपहुं, तिया मनोरथ कीन॥४७॥

॥ ब्राह्मण उबाच॥

पूर्व जनम कौ सषा इक, हुतौ नांम अविग्यात॥
सौ बह ग्यांनी द्विज बहां, आय कहत भय बात॥४८॥
तू कौ है किहिं की सुता, अरु कौ पुरस जु येह॥
तू जांकौ दुष करत है, मोहि बताय सुदेह॥४९॥
तू जांनत है किनहिं, लीजै अबैं पिछांनिं॥
तेरै पूरब जनम कौ, म्है हूं सषा निदांनिं॥५०॥
तू मुहि तजि आसक्त भौ, बिषै भोग कैं मांहिं॥
हम्ह तुम्ह दोनौं हंस हैं, बासी अैकहिं ठांहि॥५१॥
मोहि तोहि न्यारे भयै, बीतै बरष अनैक॥
मौ सौं न्यारौ होय कैं, नगरी लषी अनैक॥५२॥
पांच बाग जिहिं नगर मैं, अरु ज्यांकै नव द्वार॥
इक पालक त्रय कोष्ट जहँ, तिया तांह सरदार॥५३॥
पांच विपण छह कुल तांह, पांच प्रकृति जिहं ठौर॥
पांच विषै ही बाग है, अरु नव द्वार सुतौर॥५४॥
प्रिथी अगनि जल अै तिहूं, कोष्ट ठांम उहिं जांनिं॥
अरु समूह इंद्रीन कौं, सोही कुल पहिचांनिं॥५५॥
कर्मेंद्री बिपण रु कारण, करण पंच महाभूत॥
पुरुष प्रकृति आधीन जहँ, तनपुर अैसे सूत॥५६॥
तू तिय सौं मोहित भयौ, वा नगरी मधि आप॥
तातैं इह हुव तौ दसा, असत संग परताप॥५७॥
देस बिदर्भ नृपाल की, तू है बेटी नांहिं॥
अरु इह नृप तुव पति नांहिं, समझि भेद मनमांहिं॥५८॥
अरु नगरी नौ द्वार की, मधि मोह्यौ तिय संग॥
ताहू कौ नृपति नाहीं, तेरौ रूप अभंग॥५९॥
आपहिं मांनत तिय पुरुष, जीव अग्यांनी मांनिं॥
म्हैं तू अैक स्वरूप हैं, कछू भेद नहिं जांनिं॥६०॥
दर्पन मैं इक पुरुष ज्यौं, लषत दूसरौ रूप॥
अैसौं हम्ह तुम्ह दुहुँन मैं, समझहुँ भेद अनूप॥६१॥
अैसैं जब इन हंस उहिं, हंसहि दियै उपदेस॥
तब भूली सुधि याहि सब, आई यादि बिसेस॥६२॥

हे राजा सुनि बर्हिषद, यहै गोपि सुभ ग्यांन॥
तुम्हहिं कियौ उपदेस हम्ह, समझहुँ आप सुजांन॥६३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टबिंसोऽध्यायः॥ २८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकोनत्रिंसोऽध्यायः॥

(पुरंजन उपाख्यान का तात्पर्य)

॥ प्राचीन बर्हिषद उबाच॥

दोहा - नारद जू सौं कहत है, फेरि बर्हिषद बैंन॥
हे मुनि तुम्हरै बचन हम्ह, आछैं समझै नांहिं॥ १ ॥
हम्ह मोहित नित ह्वै रहै, कर्म वासनां मांहिं॥
जे ग्यांनी जन हौं हितैं, समझि भेद इहिं जांहिं॥ २ ॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद बोलै जीव कौ, नांम पुरंजन पेषि॥
आप कर्म करि आपकौं, रचत सरीर अलेषि॥ ३ ॥
ऐक दौय तीन रु चतुर, बहु पावन नहिं पांवु॥
इन्ह पांवनि की देह सौ, पुरी जांणि नरनांवु॥ ४ ॥
अबिग्याता नामा सषा, कह्यौ सु ईस्वर मांनिं॥
नांम रुप ताकौ किहूं, नांहिं पूरत है जांनिं॥ ५ ॥
अरु नगरी नौ द्वार की, सौ इहि मानुष देह॥
होत अधिक राजी यहै, जीव पैठि तिहिं गेह॥ ६ ॥
बुद्धि तिया सौं करत है, मिलिकैं इहि सब भोग॥
ग्यांन कर्म इंद्रीय सषा, इन्हकौ लहिं कैं जोग॥ ७ ॥
और ब्रती इंद्रीन की, सषी समझियै राय॥
सर्प पांच मुषकौं तांह, सौ इहि प्रांण कहाय॥ ८ ॥
मनकौं नांम जु ब्रहतबल, कहियत अहौ नृपाल॥
नांम जु पांचौ विषै कौ, जांनि लैहुं पांचाल॥ ९ ॥
नैंन नासिका कर्न मुष, सिस्मु गुदा ए नांम॥
इंद्रिन जुत इन्ह द्वार है, निकसत बाहिर ठांम॥१०॥
नासा कै मारग जुगल, दोय नैत्र मुष ऐक॥
पांच द्वारुऐ पूर्ब मुष, समझहुँ धारि विवैक॥११॥
द्वार जू उत्तर दछिन कै, कहियै दोनौं कांन॥
जांनहुं पश्चिम वोर कौ, सिस्नु गुदा है थांन॥१२॥

षद्यौती रु आर्विमुषी, यै नैत्रन कैं नांम॥
चक्षु इंद्री जुत जात है, रूप दैषबै ठांम॥१३॥
नलिनी नालनि जांन तू, नासा कैं ए नांम॥
सौरभ जांकौं कहत है, देस गंध अभिरांम॥१४॥
घ्रांण इंद्री कौं कहत है, सुनहुं नांम अवधूत॥
रसनैन्द्री कौं कहत हैं, बिपण नांम अदभूत॥१५॥

चोपाई - मुष्या नांमहुं आंनन कौ कहिय। आपण नांम भाषण कौ लहिय॥
बहु दन नांम अंन कौ लहियै। हाथ पांव कौ अंध सुकहियै॥१६॥
दछिन कर्न कौ नांम जु पित्रहूं। नांम कर्न उत्तर कौं देवहूं॥
प्रवर्त्ति निवर्त्ति सास्त्र कौ नांमा। जांनउ है पांचाल सु ठांमा॥१७॥
पितृयांनु अरु दैवयांनु यै। श्रौत्र इंद्री ह्वै जात दोउ यै॥
दो द्वार हैं मैथुन आसुरी। नांम विवाय भोगहुं चातुरी॥१८॥
दुर्मद नांम इंद्री कौ जांनौं। निरत गुदा कौ नांम प्रांनौं॥
बैसस नांम नर्क कौ कहियै। लुबधक नांम पायकौं लहियै॥१९॥
नांम हिर्दै कौ है अंतहपुर। मन कौं नांम विषुचिन लहौ उर॥
अंतह करन हर्ष परसादहिं। मोह जीव पावै अहलादहिं॥२०॥
जो जो बुद्धि करै जा कारज। सो सो जीव करै लिय सारज॥
जीव यहै माया गुनमांहीं। हुव आसक्त कछू सुधि नांहीं॥२१॥
इंद्री अस्व देहरथ जांनौं। संबत्सर ही गति उनमांनौं॥
है रथ कै पईया द्वै कर्म। धुजा तीन गुण समझहूं मर्म॥२२॥
बुद्धि सारथी मन जु लगांमहिं। ठौर बैठबे की उर ठांमहिं॥
पंच प्रांन बंधन निरधारा। ग्यारह इंद्री सैन सुढारा॥२३॥
सप्त धात आबर्न कहावत। मृग त्रिस्ना चित्त धरिकैं धावत॥
पंच सुताकौ करत बिनोदहि। भूलि भ्रमत मानत है मोदहिं॥२४॥
चंड बेग गंधर्व संवत्सर। समझहुँ यहै भेद तुम्ह नृपवर॥
राति दिवस गंधर्व गंधर्वी। वेइ हरत है आयु मधि उर्बी॥२५॥
बृद्ध अवस्था काल कन्या आहै। ताकौं कौउ नांहिंनैं चाहै॥
जिवनेस्वर जु मृत्यु कौं गनी। तिन कियै बृद्ध अवस्था बहनी॥२६॥
आधि ब्याधि वाकै हैं किंकर। अरु प्रज्वार है द्वै बिधि कौ ज्वर॥
त्रिविधि सहित दुष जीव सुदेहा। मगन रहत नित कुटंब सनेहा॥२७॥
इंद्री प्रांण अरु मन कै धर्मा। मांनिहुं आप मैं जीव सकर्मा॥
ध्यांन बिषै कौ करत रहत नित्त। अहंता ममता मांनत निज चित्त॥२८॥
फिरि अभिमांन गुनन मैं मांनिंहिं। त्रिबिधि कर्म नित करत निदांनहिं॥
तै सौही फिरि जन्म जु पावत। बार बार जग बीच जु आवत॥२९॥

उज्जल कर्मन सौं इह प्रांनीं। उत्तमहुं लोक लहत सुभ थांनी॥
उत्तम करम करैं नाहिं जोई। निश्चै अधम लोकन मैं जांहीं॥३०॥

दोहा - जिन लौकन मैं अंत कौ, ह्वै अति दुष्यहुं उदौत॥
जीव रजो गुन कर्म तैं, तिन्हमैं प्रापत हौत॥३१॥
जिन लोकन मैं अधिक दुष, बहु बिधि प्रांनी पाय॥
कर्म तमोगुन कियैं तैं, तिन लोकन मैं जाय॥३२॥
कहूं पुरुष नारी कहूं, कहूं नपुंसक धर्मा॥
सुर नर पसु मैं जन्म इहि, जीव लहत करि कर्मा।॥३३॥
जइसैं भूषौ स्वांन घर, घर मैं पैठत जाय॥
कहूं लहत भोजन भलौं, कहूं लष्टिका पाय॥३४॥
तइसी ही बिधि जीव इह, फिरत लोक तिहुं मांहिं॥
कबहूं सुष रु कबहूं दुष, पावत सबहीं ठांहिं॥३५॥
जीव त्रिबिधि दुष सौं यहै, रहत सदा संजुक्त॥
लग्यौ रहत नित अैक दुष, तिन्हसौं हौत न मुक्त॥३६॥
दुषहिं रूप ताकौ सबै, कीजै कछू उपाय॥
ज्यौं माथै तैं बौझ लै, धरियै कंध उठाय॥३७॥
कर्मन सौं किहूं भांति तैं, कर्म मिटत है नांहिं॥
जइसै सुपनै तैं कहूं, नांहिंन सुपन मिटांहिं॥३८॥
झूंठौ है संसार इह, मन है कारन जास॥
तासौं झूठौ हूं जगत, सबनि परत है भास॥३९॥
आत्मां ही कौं लगि रह्यौ, इहि झूठौ संसार॥
सौ इक हरि गुर भक्ति सौं, दूरि होय निरधार॥४०॥
प्रगट होत हरि भक्ति सौं, पूर्न ग्यांन बैराग॥
कहै सुनै हरि चरित कौं, उठै भक्ति उर जाग॥४१॥
ह्वै इकठै हरि भक्त जन, बसत रहत इक ठौर॥
हरि गुन अमृत की नदी, निकसत जिन मुष वौर॥४२॥
श्रवणन मग ह्वै पियत है, जें कौ बह रस सार॥
भूष प्यास रु अग्यांन भय, लगत न तिन निरधार॥४३॥
भूष प्यास रु अग्यांन भय, इनसौं मोहित होय॥
जीव लगावत प्रीत नहिं, हरि गुन सौं रुचि भोय॥४४॥
ब्रह्मा सिव मनु प्रजापति, सनकादिक भृगु अत्रि॥
पुलह पुलस्त्य मरीच क्रतु, अंगिरा वसिष्ट सु तत्रि॥४५॥
मो जुत इतनैं ध्यांन तप, बिद्या कैहिं अनुसार॥
हरि कौ जांनत हैं तऊ, भूलि जात बहु बार॥४६॥

पायौ जात न पार जिहिं, अैसौं बेद उदार॥
इंद्रादिक पूजत सुरनि, तिहं मग कै अनुसार॥४७॥
सौ बेदहुँ जांनत नाहिं, हरि कौं पार अगाधि॥
नेति नेति भाषत निगम, प्रभु गुन अति आराधि॥४८॥
जापर प्रभू क्रपा करै, लैंहिं आप अपनाय॥
लोक बेद मैं बुद्धि सौ, राषै नांहिं लगाय॥४९॥
नृप जिग्यादिक कर्म अरु, जिनसौं पइयै लोक॥
तै सब झूंठे जांनियैं, सत्य हरि सरन जु वोक॥५०॥
मूरष जन है जें कौउ, यहै बतावत मर्म॥
बेदहूं कैं मधिहुं कहत, हैं सब जिग्यादि कर्म॥५१॥
बेद न कर्म बतांवहीं, बताव आत्म स्वरूप॥
मूरष जांनत नांहिंनै, बेद सुतत्वहिं अनूप॥५२॥
कुस बिछाय बैठ्यौ नृपति, तू सब प्रथवी ठांहिं॥
पसु बध करत जु जिग्य मैं, ब्रह्म ग्यांन चित नांहिं॥५३॥
कर्म भलौ जांनौं वही, हरि प्रसंन जिहीं होय॥
बुद्धि लगै प्रभु मैं तोहि, बिद्या उत्तम जू सोय॥५४॥
सबकैं आत्मा है प्रभू, पूर्न पुरुष भगवांन॥
जीव जाय तिनकैं सरन, तबै होय कल्यांन॥५५॥
आत्मा सब प्रांनीन कैं, है स्वामी करतार॥
यहै तत्व जांनै सोई, पंडित गुरु निरधार॥५६॥

॥ श्री नारद उबाच॥

कह्यौ तुम्हहिं याहि तत्व हम्ह, आछी भांति रसाल॥
गुप्त बात अब और इक, कहत सुनौं नृपाल॥५७॥
अैसैं अदभुत अैक मृग, थोडौ करत अहार॥
निज तिय सौं आसक्त ह्वै, रहत बीच फुलवार॥५८॥
भंवर करतहिं गुंजार तिहं, सब्द बीच दियैं कांन॥
आगैं ठाढे व्रक बउत, गनत न तिह्नैं निदांन॥५९॥
चल्यौ जात आगैं हिरन, बिन डर मत्तहिं किसौर॥
पाछैं तैं सरु सौं बधिक, मार्यौ चहत सजोर॥६०॥
अैसैं मृग कौ ढूंढि तू, निज उर बीच नृपाल॥
तुम्ह सौं हम्ह या बात कौं, अरथ कहत इहं काल॥६१॥
गृह आश्रम फुलवारि मैं, बिषै भोग हैं तुच्छ॥
तामैं अतिरत ह्वै रह्यौ, जीव बुद्धि बिन सुच्छ॥६२॥
मीठी बातैं तियन की, सोही अलि गुंजार॥
कांन दिय रहै जीव मृग, तिन्ह मैं भलै प्रकार॥६३॥

राति दिवस आर्बल हरै, बैई भिड़हा जांनिं॥
तिन्हकौं इह नांहिंन गिनत, उर अचेतता ठांनि॥६४॥
काल बधिक यांकौ हतत, मृग सम जीव कुभाय॥
तातैं अैसौं आपकौं, सदा समझि तू राय॥६५॥
अब गृह आश्रम छौडि कैं, हरि कै सरनैं जाहुँ॥
इहि सुनि फिरि पूछत भयौ, नारद सौं नरनाहुँ॥६६॥

॥ राजोबाच॥

आत्म तत्व उपदेसहुँ तुम्ह, मोकौं कियौ द्विजेस॥
सौ सुनि कछु संदेह कौं, म्हेरै रह्यौ न लैस॥६७॥
जिग्य करावन हार यै, बैठे बिप्रहिं जितैक॥
जांनत हैं या तत्त्व कौं, मोहि न कह्यौ बिवैक॥६८॥
आत्म तत्त्व कै भेदहुं म्हैं, मोहित हौत द्विजेस॥
मोहि अैक संदेह सौ, पूछत अबैं बिसेस॥६९॥
जा सरीर सौं जीव इहि, कर्म करत बहु भांति॥
ताकौं तो इहहीं इहां, छौडि और मैं जाति॥७०॥
करत कर्म कौ भोग इहि, और देह मैं जाय॥
अैसैं बक्ता जु बेद कैं, सबही कहत सुनाय॥७१॥
प्रगट हौत संदेह इक, तासौं मौ चित ठौर॥
कर्म करत है और तन, सुष दुष पावत और॥७२॥
अैसौं कइसैं ह्वै सकै, इहै कहौ समझाय॥
अरु देह इक जु दूसरौ, सोऊ कहूं जिताय॥७३॥
कर्म कीजियै जो कछू, सौ पाछैं न लषाय॥
तौ वाकौ फलहूं न कछु, ह्वै हैं होत स्वभाय॥७४॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि हे नृपति, कर्म न करत सरीर॥
करत जु मन अति चपल है, हैं बहु भाय अधीर॥७५॥
धरै सरीर अनैंकहूँ, मन निति यै कहिं जांनिं॥
भोक्ता कर्त्ता कर्महुं कौ, तातैं मन जु निदांनिं॥७६॥
इहि प्रांनी सौवत जबै, सब सुधि जात भुलाय॥
भोग करत मन स्वपन मैं, सुष दुष कौं बहु भाय॥७७॥
कर्म जु करत सरीर अरु, मानि लेत मन आप॥
जीव लहत मन संग सौं, बउंत सरीर संताप॥७८॥
ग्यांन कर्म इंद्रीन की, चेष्टा कै अनुसार॥
यौं चित कौ उनमान यै, है कोउ बस्तु प्रकार॥७९॥

ऐसैं चित्त की वृत्तिन सौं, कर्मन कौ उनमांन॥
आछी बिधि करि लीजियतु, सबै भेद पहचांन॥८०॥
बिन देष्यौ अरु बिन सुन्यौ, मनहिं पदार्थ न आय॥
मन बिचार देषैं सुनै, ही कौ करत सुभाय॥८१॥
आगैं जो कछु रूप इन्ह, धरै हौंहिं किहूँ हैत॥
अरु अब धरि हैं रूप सौ, इहि मनही कहि दैत॥८२॥
अरु जो अदभुत बस्तु कछु, सुपनै मांहिं लषाय॥
ताकौं अनभव इन्ह कियौ, ह्वै हैं किहूं प्रभाय॥८३॥
मनहिं भुक्ता सब बात कौ, है जांनौं निरधार॥
जांनि जात प्रभु क्रपा सौ, म्हैं सब कछु इक बार॥८४॥
अहंता ममता जीव की, कबहूँ छूटत नांहिं॥
निद्रा रु मूर्छा बीच हूँ, अहं ग्यांन नाहिं जांहिं॥८५॥
बाल अवस्था मध्यहु मन, अति गति सूछम होत॥
बिषै भोग जुत रूप सम, झूंठौ जगत उदोत॥८६॥
याही लिंग सरीर कौ, जीवहुँ कहियै नांम॥
आवै प्रभु कै सरन जब, इह पावत है ठांम॥८७॥
धरनौं अरु तन छोडनौं, हरष सोक अनुसार॥
कारन सबही बात कौं, मनही है निरधार॥८८॥
तृण जलौंक तृण पाछिलौं, त्यागै जबलौं नांहिं॥
अगिलै तृण कौं द्रिढ़ ग्रहै, तब त्यागै तिहिं चांहिं॥८९॥
पूर्ब जनम की बासनां, मन छौडत है नांहिं॥
जनम धरन कौ हेत इह, मनही प्रगट जु आंहिं॥९०॥
कर्म बंधन अग्यांन सौं, होत जीव कौं आय॥
टारन सकल अग्यांन हिय, हरिहिं भयौ चितलाय॥९१॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, नारद मुनि इह भाय।।
नृपकौं करि उपदेस निज, लोक गयै सुष पाय॥९२॥
भूप बर्हि प्राचीन पुनि, पुत्रन आग्या राज॥
आप गयै कपिलाश्रमहिं, तप करबै कैं काज॥९३॥
भूप बर्हि प्राचीन तांह, करि हरि भक्ति सुढार॥
पउँचै प्रभु चरननि सरन, दुर्लभ ठौर उदार॥९४॥

बहुरिहिं कहि मैत्रेय इहि, सुनै प्रसंग जू कोय॥
छूटै जनम बंधन बहुरि, मुक्ति बहै नर होय॥९५॥
गूढ ग्यांन हम्ह तुम्हहिं इह, कह्यौ जु बुधि उनमांन॥
सौ समझै ह्वै हौ भलैं, तुम्हहौ बिदुर सुजांन॥९६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते
अैकोनत्रिंसोऽध्यायः ॥ २९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रिंसोऽध्यायः ॥

(प्रचेताओं को भगवान विष्णु का वरदान)

॥ बिदुर उवाच ॥

चौपाई –पूछत बिदुर अहो रिषि रायी। अबहुं कहौं सुनौंहु चितलायी ॥
सुत प्राचीन बर्हि नरपति कै। दसौं प्रचेता इक मतिगति कै ॥ १ ॥
रुद्रगीत सिव जिन्है पढायौ। उन तपस्यां करि कैं पद पायौ ॥
अति दुर्लभ है सिव कौ दरसन। सिव प्रभु के हैं परम भक्त जन ॥ २ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

बोलै बहुर्यौ रिषि मैत्रेयहिं। प्रचेतांन तप किय जल सैयहिं ॥
बरस सहस दस अंत क्रपा करि। प्रसन होय दरसन दीनौं हरि ॥ ३ ॥
गरुड स्वार पीतांबर पहरै। कौस्तुभ मनि श्री लांछन जु धरैं ॥
कुंडल मुकुट अरु अष्ट भुज सोभै। अस्तुति करत देवता लोभै ॥ ४ ॥
भूपन बस्त्र सुठौंन रसाला। अरु उर लसत सुभग बनमाला ॥
प्रसन होय अैसें हरि बोलै। प्रचेतांन सौं बचन अमोलै ॥ ५ ॥

॥ श्री भगवान उबाच ॥

दसौं भ्रात तुम्ह यैकैं मत हौ। प्रीति परसपर अधिक धरत हौ ॥
तातैं प्रसंन भयौ म्है तुम्ह पर। मांगौ तुम्ह जो चाहत हौ बर ॥ ६ ॥
जो कोउ गुन जु तुम्हारौ कहै। तिन्ह कै भ्रातनि बिची हित रहै ॥
रुद्रगीत इहि पढै जु कोई ताकौ पूर्न मनोरथ होई ॥ ७ ॥
तुम्ह जु पिता की आग्या मांनी। तांतै तुम्ह कीरति अधिकांनी ॥
पुत्र हौहिगौ एक तुम्हारैं। करिहैं श्रृष्टि सु अति बिस्तारै ॥ ८ ॥
एव रिपीस्वर तपकैं धांमा। प्रमलोचा अपसर इकनांमा ॥
ताकैं सुता भई अति सुंदर। दोऊ छौडि गए वा अवसर ॥ ९ ॥
बृछिनि कियै कन्या की रछया। जब वह भूषी भई प्रतछया ॥
तब ससि अमृत बरसन बारी। वा मुष अंगुरी दई सुढारी ॥१०॥

म्हैरी आग्या सौं तुम्ह वाही। दसौं भ्रात ब्याहौं चित चाही॥
वहै अेक अरु हम्ह दस भ्राता। इहि तुम्ह कहौंगै कहा बिधिता॥११॥
तुम्हरौ अेक धर्म है तातैं। धर्म अेक त्रिय होयगी जातैं॥
दिव्य हजार बरस जगमांहीं। तिन्हकौं सहस गुनैं कर चांहीं॥१२॥
इतनैं हुं बरसन लौं सुप करौ। म्हैरौ ध्यांन हिदैं मधिहिं धरौ॥
म्हैरी भक्ति प्रगटि है तुम्ह मन। तातैं निरमल है तुम्हरौ तन॥१३॥
छोडि दुपद गृह कैं सब कांमा। पउंचौगे तुम्ह म्हैरे धांमा॥
गृह में बसि कर्मन कौ करै। राति दिवस मोहिमैं चित धरै॥१४॥
तिन्हकौं गृह बंधन नहिं होई। इहि बिचार तुम्ह चित में जोई॥
करौ कर्म बंधौ नहिं कौई। प्रीति तुम्हारी मो मैं होई॥१५॥

दोहा - **वे जन प्रापति होत हैं, निर्मल म्हेरे लौक॥**
सोच मोह उन्हकैं नांहि, राषत चित कौं रौक॥१६॥

॥ मैत्रेय उवाच॥

बोलै रिषि मैत्रेय जू, सुनिकैं हरि कैं बैन॥
हाथ जोरि ठाढे समुषि, दसौं प्रचेता अैन॥१७॥
हरि कै दरसन सौं मिटै, तीनौं गुन कैं मैल॥
लागै असतुति करन कौं, सकल प्रचेता गैल॥१८॥

॥ प्रचेतस ऊचुः॥

चौपाई - बोलै तबै प्रचेतांन सबैं। नमसकार हैं तुम्ह कौंउ अबैं॥
जा गति कौं का बर्नन करैं। जु है मन बच इंद्री तैं परैं॥१९॥
तुम्ह हौ सुद्ध सांत भगवांना। तीन रूप धरि गुन उनमांना॥
उतपति पालन प्रलय करत हौ। जग रचना बहु भांति धरत हौ॥२०॥
सुद्ध सत्व गुन रूप सुढारा। वासुदेव श्रीकृष्ण उदारा॥
तुम्ह कौउ कोटि कोटि परनांमं। मनसा बाचा करम करि स्यांमं॥२१॥
जिन्हकै नांभि कमल उपज्यौ है। कमलन की माला उर सौहै॥
चरन कंज तैं अदभुतहिं महा। नैत्र कमल छबि कहियै कहा॥२२॥
पीतांबर छबि सौहत आछी। हे प्रभु तुम्ह हौ सबकै साछी॥
तुम्ह हम्हकौं निज रूप दिषायौ। तातैं अधिक कछु न मन भायौ॥२३॥
प्रभु कौं यौंही चहियै स्वांमी। दीननि सुधि राषै हिय ठांमी॥
हम्हरे चित अभिलाष निदांना। सौ तुम्ह जांनत हौ भगवांना॥२४॥
याहि बडौ बर है सुप सारा। हम्ह पर प्रसंन भये करतारा॥
तुव बिभूति कौ नांहीं अंता। तुम्ह कौं सबहूं कहत अनंता॥२५॥
तुम्ह चर्नन कौ दरसन पायौ। फिरि का नर मांगै अधिकायौ॥
पारिजात कौ पावै मधुकर। और बृछ नहिं सेवत गंधवर॥२६॥
अरु अब बर मांगत हैं यैका। सौ दीजै प्रभु जनम अनैका॥

प्रकृति रावरी कैं अनुसारा। जबलौं भ्रमत बीच संसारा।२७ ॥
तबलौं जनम जनम कैं मांहीं। होऊ संग हरि भगत सदांहीं॥
स्वर्ग मुक्ति सुष है अधिकांहीं। पै हरि भगत संग समनांहीं॥२८ ॥
जिन संगति मैं सुनियैं हरिगुन। जासौं तृष्णा दुष गवनैं पुन॥
सतसंग तैं निर्वैर होत मन। नाहिं उद्वैग रहत मन मैं पुन॥२९ ॥
हरि भक्तनि संग हौत कथा सुष। बारौंबारहिं गावत प्रभु मुष॥
तीर्थनि करैं पवित्र साध जन। जिन्हकौं संग सु रुचै किहुं न मन॥३० ॥
हरि कैं परम भक्त सिव हरि सम। उन्हकी क्रपा कटाछि पाय हम्है॥
जगत सरूपी रोगहिं टारन। तुम्ह हौ बैद्य दीन उद्धारन॥३१ ॥
जिन्हकै हम्है सब सरनैं आयै। भाग्य उदय हुव तुम्ह दरसायै॥
जो हम्है कीनौं सुभ अछैंना। कियै साध गुर ब्रह्म सुषैंना॥३२ ॥
बिप्र बृद्ध भाई बंधू जन। प्रसंन कियै हम्है सब प्रांनी गन॥
हम्है जल वीच तपस्या कीनूं। ताकरि तुम्ह हौ प्रसंन प्रबीनू॥३३ ॥
ब्रह्मा सिवादि तपसी हूँ सबै। पार तुम्हारौ पावै न कबै॥
जथा सक्ति हम्है अस्तुति तिहारी। कीनी आप बुद्धि अनुसारी॥३४ ॥
सांत श्रेष्ठ सम हौ अभिरांमा। तुम्ह कौं बारबार परिनांमा॥
हम्है सरनागत है अति दीनां। तुम्ह करी क्रिपा अपनां लीनां॥३५ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

इति असतुति सुनिकैं भगवांना। आप होत भय अंतरध्यांना॥
निकरि प्रचेता जल तैं बाहरि। लषी छेहरहिं भूमि बृछिनकरि॥३६ ॥
तबै क्रोध इनकौं अतिहि भयौं। अगनि पवन मुष तैंहिं प्रगटयौ॥
जासौं बृछनि जरन सब लागै। लहि कलैस तरु अति दुष पायै॥३७ ॥
जब विधि प्रचेतांन पैं आयै। बोलत भयै वचन सुषदायै॥
तुम्ह मति बृछि जरावहुं प्रचेता। तुम्ह जु प्रजापालक सुभहेता॥३८ ॥
इहि सुनि बात प्रचेतांनि सबै। छोडयौ बृछि जरांवन तबै॥
इन्हकौं बृछिनि सुता निज चाहीं। बिधि आग्या सौं दई बिबाही॥३९ ॥
कहियै नांम मारिषा जाकौ। जुत गुन रूप भाग्य बड ताकौ॥
जासौं पुत्र दछि सोई नांमा। प्रचेतांन कै हुव अभिरांमा॥४० ॥
पहलैंहुं बिधि सुत दछि जू रह्यौ। उन्ह सिव रिस तैं इह तन लह्यौ॥
चाक्षुष नांम मनंतर मांहीं। बउंत श्रिष्ट इन्ह दछि प्रगटांहीं॥४१ ॥
अतिहिं प्रबीन तेजस्वी जु भयौ। परजापति पद फिरी बिधि दयौ॥
जिन्हनैं कर्म कुसलता सुं कीनै। सौहि दछ नांम बिधि धर दीनै॥४२ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी

कृते त्रिंसोऽध्यायः ॥ ३० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकत्रिंसोऽध्याय: ॥

(प्रचेताओं को दवर्षि श्री नारद का उपदेश और परमपद प्राप्ति)

॥ मैत्रेय उबाच ॥

चौपाई - कहत जु रिषि मैत्रेय सुजांना। प्रचेतांन कौं उपज्यौ ग्यांना॥
तबै पुत्र कौ दैकैं राजहिं। भयै विरक्त छोडि गृह काजहिं॥ १ ॥
जबै ग्यांन सौं सबही ठौरा। आत्मा कौं दैषत सुभ तौरा॥
पछिमहूं दिसा समुद्र किनारै। प्रापति भयै सु वै निरधारैं॥ २ ॥
निज मन इंद्री जीत प्रचेता। हरि मैं चित लाग्यौ सुभ हेता॥
इन्हकौं अैसौ रूप सुभायी। लषि नारद आयै सुष पायी॥ ३ ॥
देषि प्रचेता नारद आयै। अति आदर करि बचन सुनायै॥

॥ प्रचेतस ऊचु: ॥

हे नारद जू भागि हम्हारै। तुम्ह दरसन दिय तारन हारै॥ ४ ॥
हम्हकौ सिव जु ग्यांन उपदेसा। आगैं कीनौं हुतौ सुदेसा॥
हम्ह गृह मैं आसक्त जू भयै। तातैं ग्यांनहिं बिसर सब गयै॥ ५ ॥
जांसौ अब तुम्ह बह सुभ ग्यांना। हम्हहिं सुनावौ करि बाष्यांना॥
जिहं सौं इह सागर संसारा। हम्ह तरिं जांहिं सुभलै प्रकारा॥ ६ ॥

॥ मैत्रेय उबाच ॥

प्रचेतांन कैं अैसै बैंना। सुनि बोलै नारद सुष अैंना॥

॥ श्री नारद उबाच ॥

जनम करम मन बचन आयु करि। बही भलौ जासौं भजियै हरि॥ ७ ॥
तीन जनम या नर कै होता। बेद म्रजादा कैंहि उदोता॥
यैक बेरहिं याकौं उपजनौं। फिरि जिग्यौपवीत हुव जू गनौं॥ ८ ॥
त्रितिय जिग्य की दीछा लैयहिं। बेद कर्म सब करै सुभेयहिं॥
अरु दैवन कीसी ह्वै आयू। तपस्या करी होय अधिकायू॥ ९ ॥
सुन्यौं बउंत कछु होय सुतंता। बुद्धि प्रवीन रु ह्वै बलवंता॥
जोग सांष्य संन्यास जु साधैं। बेदाधेन भलैं आराधैं॥ १० ॥
और पदार्थहुं कर न कल्यांना। बिन हरि जांनै कछु न निदांना॥
सब कल्यांनन तैंहिं अधिकाया। यहै बडौ कल्यांनहुं कहाया॥ ११ ॥
सबकै आत्मा है भगवांना। जिन्हसौं करैं भक्ति पहचांना॥
जइसैं तरु जर मैं जलदीनैं। डार पात सब अति सुष भीनैं॥ १२ ॥
ज्यौंही पूजै तैं करतारा। सबही प्रसंन होत निरधारा॥
ज्यौं रबि तैं जल ह्वैहिं उद्योता। फिरि रबि ही मैं प्रापति होता॥ १३ ॥
जीव स्थावर रु जंगम जितै। प्रगट होतहुं प्रिथवी मैं तितै॥
फिरि प्रिथवी ही मांहिं समातैं। इह सब प्रभु ईछा की बातैं॥ १४ ॥
ज्यौंही जग प्रभु सौं प्रगटाया। प्रभुहीं कैं मधि जात समाया॥

इहि जगत हरि हीं कौउ रूपा। हरि तैं न्यारौ कछु न अनूपा॥१५॥
जइसैं रबि तैं प्रभा प्रकासा। न्यारौ नहिं प्रगट इह भासा॥
ज्यौं नभ मैं कबहूं घन भारी। कबहुं प्रकास बहु अंधियारी॥१६॥
जइसैं ही परब्रह्महिं मांहीं। समैं पाय तिहुं गुन दरसांहीं॥
बै सबकै आत्मा भगवांना। प्रकृति पुरुप अरु काल प्रमांना॥१७॥
तिन्हकौं भजन करौ तुम्ह आछैं। बै प्रभु ही जांनौ सब साछैं॥
करुना अरु संतोष प्रकारा। प्रसंन होत स्वांमी करतारा॥१८॥
निरमल भगतन कै उरमांहीं। बै प्रभु हित धरि सदा बसांहीं॥
है भगतन कै बसि भगवांना। निर्धन कै धन बेइ निदांना॥१९॥
बेइ प्रभू सबकै प्रिय जांनौं। बेइ सबन की गति उनमांनौं॥
जिन्हकैं भक्ति नाहिं उरमांहीं। रूप रु कुल कौ गर्व बढ़ांहीं॥२०॥
तातैं भक्ति अवग्या जोइ करै। तिन्ह हरि पूजा चित नाहिं धरै॥
लछमी कौं सब चहत रहत हैं। जा लछमी कौ हरि न चहत हैं॥२१॥
अपनैं भक्तन कैं आधीनां। होय रहै हैं तारन दीनां॥
अैसैं हरि कौं छौडै कौंनूं। जो है प्रभू परम सुष भौंनू॥२२॥

॥ मैत्रेय उबाच॥

दोहा - बोलै रिषि मैत्रेय यौं, नारद करि उपदेस॥
ब्रह्मलोक कौं गवन किय, बजवत बीन सुदेस॥२३॥
सबै प्रचेतानहुं भए, हरि पद प्राप्त सुभाय॥
तीन ताप संताप तैं, रहत भयै सुष पाय॥२४॥
प्रचेतां रु नारद मुनी, कौ संबाद सुढार॥
तुम्हहिं कह्यौ हम्ह बिदुर जू, निज मति कै अनुसार॥२५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

बोलै सुकदेव जू हे, नृप तुम्ह परम सुजांन॥
राजा पाद उतांन कौ, हम्ह कह्यौ बंस बषांन॥२६॥
अबहुं प्रियव्रत कौ बंस हम्ह, कहिहैं तुम्हहिं सुनाय॥
नारद दिय आतम विद्या, जिहं प्रियब्रतहिं सिषाय।२७॥
फिरि प्रियव्रत नृप राज्य करि, प्रापत भय हरि ठांम॥
जांकै बंसहि मैं भए, परम भक्त अभिरांम॥२८॥
अरु अैसैं मैत्रेय सौं, बिदुर सीषि कै ग्यांन॥
नमसकार मैत्रेय कौं, कियौ जोरि निज पांन॥२९॥

॥ बिदुर उबाच॥

बिदुर कह्यौ मैत्रेय तुम्ह, हम्हहिं कियौ उपदैस॥
तासौं करिहुं अग्यांन कौ, रह्यौ न म्हैरै लैस॥३०॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

ऐसैं कहिकैं बिदुर निज, भ्रात भतीजां पास॥
जात भयै पुरहिं हस्तिना, मिलिबै धारि हुलास॥३१॥
जो कोउ सुनैं चरित्र इहि, आछैंहुं चित्त लगाय॥
तौ आयुष धन राज्य सुष, अरु उत्तम गतिहिं पाय॥३२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैंकत्रिंसौऽध्यायः ॥ ३१ ॥)

॥ चतुर्थ स्कंध संपूर्णम् ॥

(पोथी को संवत १८३४ वि. ॥ श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री)

(कुल छंद १३४८ = छंद योग क्रम ४४४८)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राजराजेश्वर राजा श्री राजसिंघजी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी' जी कृत श्रीमद्भागवत भाषा पंचम स्कन्ध लिष्यते)

॥ पंचम - स्कन्ध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(प्रियव्रत - चरित्र)

(मंगलाचरण)

छप्पय - जय जय श्री वृषभांन, सुता अलबेली राधे॥
जय जय श्री ब्रजराज, कुँवर श्री कृस्न अगाधे॥
जय जय श्री बृंदाबन, मोहि गुरु जिन्ह पद बंदौ॥
जय जय श्री भगत क्रिपाल, सरन गहि अति आनंदौ॥
हूं पाय क्रिपा इन्ह सबन की, भवसागर सहजै तरौं॥
ह्वै प्राप्त परम आनंद कौं, तीन ताप दुष परहरौं॥ १ ॥

दोहा - इहि पंचमहिं स्कन्ध कौ, अबै होत आरंभ॥
सौ पूरन हरिक्रिपा तैं, ह्वै हैं बिनां अचंभ॥ २ ॥

॥ अथाख्यान ॥

भक्त कथा सुनबै अरथ, अधिक चाह उपजाय॥
पूछत श्री सुकदेव सौं, भगत परीछत राय॥ ३ ॥

॥ राजोबाच ॥

पहलैं प्रियव्रत बैसनव, हुतौ बिरक्त सुभाय॥
फिरी आश्रम क्यौं कियौ, सौ कहियै समझाय॥ ४ ॥
महापुरष अैसैंन कौं, गृह आश्रम कैं मांहिं॥
हौनौं कह्यौ न आसकत, बेद म्रजादा मांहिं॥ ५ ॥
जे प्रभु कै सेवत चरन, अपनौं चितहिं लगाय॥
जिन्हकी इछा हौत नहिं, बिच कुटंब किंहूं भाय॥ ६ ॥
अरु तिय पुत्रननि मैं भये, प्रियव्रत नृप आसक्त॥
तऊ लहि उत्तम सिद्धिहूं, कृस्न भक्ति अनुरक्त॥ ७ ॥
इह म्हैरै संदेह हैं, श्री सुकदेवु मिटाय॥
इह सुनिकैं सुकदेव जू, बोलै क्रपा जताय॥ ८ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

हे राजा भगवांन कैं, चरननि सेवा मांहिं॥
निश्चैहिं जांकै चित्त की, लागि रही है चांहिं॥ ९ ॥
जिन्हकौं ह्वै कछू बिघनहुँ, तउ बै अपनी रीति॥
कबहूं छांडत नाहिंनै, इह मानहूं पर तीति॥ १० ॥

परम भक्त प्रियव्रत नृपति, नारद क्रिपा प्रभाय॥
जान्यौ आतम तत्व सुभ, हरि सौं प्रीति लगाय॥ ११॥
सकल सुभ गुननि जुक्त नृप, प्रियव्रत कौं पहचांनिं॥
स्वायंभुव मनु पितानैं, दिय आग्या हित ठांनिं॥ १२॥
राज करौ तुम्ह प्रिथ्वी कौ, हे सुत भलैं प्रकार॥
पैं इनकौं चित लगि रह्यौ, हरि आश्रय निरधार॥ १३॥
जासौं इन्ह जांन्यौं कि हम्ह, पाय राज बिबहार॥
भूलि जांहिं मति हरि सुरति, यौं न लियौ भुवभार॥ १४॥
श्रिष्टि बढांवनहार बिधि, इहि सुनि चित करि ष्यास॥
ब्रह्म लोक तैं उठि चलै, प्रियव्रत नृप कैं पास॥ १५॥
मार्ग मैं कोउ देवता, चढि चढि चलै बिमांन॥
ब्रह्मा जू कैहिं संग ह्वै, निज निज छौडि सथांन॥ १६॥
मुनिगन चारन सिद्ध मिलि, गावत सुजस सुठौंन॥
अैसें प्रियब्रत नृपति पैं, करत भये बिधि गौंन॥ १७॥
गंधमादन पर्बत नृप बिषै, निश्चल जांनिं सथांन॥
देत रहै नारद मुनी, नृप प्रियब्रत कौं ग्यांन॥ १८॥
नारद अरु स्वायंभुव मनु, प्रियब्रत तिहुं उहिं बार॥
आदर करि ठाढे भयै, आवत लषि मुष च्यार॥ १९॥
ब्रह्मा जू की इन्ह तिहूंन, हित जुत पूजा कीन॥
प्रियब्रत सौं बोलत भयै, हंसि मुष च्यार प्रवीन॥ २०॥

॥ ब्रह्मोबाच॥

अहो पुत्र जो बेद मैं, आग्यां किय भगवांन॥
सौ हम्ह तुम्ह सौं कहत हैं, सुनियै परम सुजांन॥ २१॥
हम्ह तुम्ह सब भगवांन कै, आग्या बसि निरद्धार॥
तातैं जोग्य सुमांनबौ, उन्हकौं बचन उदार॥ २२॥
जोग बिद्या तपस्या रु बुद्धि, इन्हकौं अति बल पाय॥
कियै कार्य भगवांन कै, सकै सुकौंनु मिटाय॥ २३॥
प्रभु की आग्या सौं इहै, प्रांनी लहत सरीर॥
तामैं सुष दुष कौं करत, भोग पुन्य अघ सीर॥ २४॥
बेद रूप रसरी मंही, हम्ह बंधि रहै सुदीन॥
प्रभु कौ सेवन करत हैं, ह्वै उन्हकैं आधीन॥ २५॥
आग्या बस भगवांन कै, अरु बस कर्म अपार॥
सुष दुष प्रापत होत सौं, हम्ह भोगत संसार॥ २६॥
नेत्रवंत ज्यौं अंधकौ, लै जांहीं तहँ जाय॥
त्यौं ही हम्ह भगवांन बस, निश्चै प्रियब्रत राय॥ २७॥

जीवन मुक्त ह्वै करत है, प्रारब्धनि कौहि भोग॥
पैं अभिमांनि न मांनहीं, कबहूं किहूं प्रयोग॥ २८॥
वै फिरि धारै जनम कौं, सौं न करै कछु कर्म॥
चहत रहै प्रभु मिलन कौं, समझि समझि सुभ मर्म॥ २९॥
जिन निज इंद्री सत्रुनाहिं, जीतै होय निदांनि॥
ताकौ बनहूं कै बिषै, भय प्रापति ह्वै आंनि॥ ३०॥
अरु निज इंद्री सत्रु सबै, जीतै होहिं बलिष्ट॥
सौ गृह आश्रम बीच हूं, राषत है हरि इष्ट॥ ३१॥
जो कौउ इंद्री अरिन कौं, जीत्यौ चाहै आप॥
सौ गृह आश्रम प्रथमही, आछै करै सथाप॥ ३२॥
इंद्री बसि करि सकत है, गृही भलैं अनुसार॥
कोट ओट ज्यौ बैठि कैं, जीतै जु सत्रु अपार॥ ३३॥
जीति चुकैं इंद्री जबै, बन मैं जाय निसंक॥
करै भजन प्रभु कौ भलैं, तजि माया आतंक॥ ३४॥
तुम्ह हरि चरननि कोट करि, लैहुं इंद्रीयनि जीति॥
होउ नृपति आसक्त मति, करहुँ राज सुभ नीति॥ ३५॥

॥ श्री सुक उवाच॥

इहि बिधि आग्या सीस धरि, हम्हहूं प्रियब्रत राय॥
नमसकार करि मांन सौं, मानत भये सुभाय॥ ३६॥
बिधि पूजा कीनी भलैं, स्वायंभू मनुराय॥
ब्रह्मा जू निज लोक कौं, जात भयै हरि गाय॥ ३७॥
स्वायंभुव मनु प्रियब्रतहिं, दै प्रथवी कौं राज॥
ह्वै बिरक्त सब बिषय तैं, आप तज्यौं गृह काज॥ ३८॥
यौं प्रभु ईछा तैं भयौ, प्रापति प्रियब्रत राज॥
पैं आसक्त भयौ नांहिं, क्यौंहूँ बिच गृह साज॥ ३९॥
प्रभु पद पंकज ध्यांन सौं, दूरि कियौ मन मैल॥
सौ भुव रछया करत भौ, नृपति धर्म कै फैल॥ ४०॥
बिस्वकर्मा जो प्रजापति, सुता बर्हिष्मति तास॥
सो प्रियब्रत ब्याहत भयै, हिय धरि अधिक हुलास॥ ४१॥
निज गुन रुप समांन दस, पुत्र भयै नृप धांम॥
एकहिं भई कन्या सुभग, ऊर्जस्वती जिहं नांम॥ ४२॥
आगनीध्र रु इध्मजिह्व, जिग्यबाहु महावीर॥
धृतपृष्ठ हिरण्यरेतु सवन, मेधातिथि कबि धीर॥ ४३॥
बीतिहौत्र दसवौं गनौं, बरनैं नांम सुदेस॥
इन्ह म्ह कबि महाबीर अरु, सवन भयै जोगेस॥ ४४॥

भयै आत्म ग्यांनी तिहूं, लिय संन्यास सुभाय॥
प्रभु पद पंकज ध्यांन सौं, प्रगट भक्ति भइ आय॥ ४५॥
जांसौं हुव निरमल हिर्दै, तामैं प्रभु परकास॥
लीन भयै भगवांन मैं, तिहुँ धरि हरि बिस्वास॥ ४६॥
प्रियब्रत कै तिय दूसरी, तांकै सुत हुव तीन॥
उत्तम तामस रईवत रु, नांम तिहूं कहि दीन॥ ४७॥
यै जु मन्वंतर कै भयै, अधिपति तीनौं भ्रात॥
ग्यारह अर्बुद बरस किय, प्रियब्रत राज बिष्यात॥ ४८॥
निज भुज दंडन सौं करत , नृपति धनुष टंकार॥
धर्म बिरोधी ह्वै गयै, तासौं नष्ट अपार॥ ४९॥
बर्हिष्मती रांनी सुभग, लषि तिहुँ हास्य कटाछि॥
मोहित ह्वै नृप बिषै कौ, भोग करत बिन बांछि॥ ५०॥
गिर सुमेर कै फिरत है, सूरिज च्यारौं वौर॥
जांसौं दिन किहुँ ठौर ह्वै, अरु निस काहू ठौर॥ ५१॥
निस हुव जिहँ जिहँ षंड मैं, तहं तहं प्रियब्रत आप॥
रथ चढि पाछैं सूर्ज कै, फिरत भयै धरिधाप॥ ५२॥
तांसौं काहू षंड मैं, होत भई नहिं रात॥
सात दिवस इहि रीत हुव, सौं जग मैं विष्यात॥ ५३॥
नृप रथ कैं पइयांन की, लीक परी जिहं ठौर॥
सौ भए सात समुद्र अरु, सात द्वीप सुभ तौर॥ ५४॥
जंबू साल्मलि पल्क्ष कुस, पुस्कर क्रौंच रु साक॥
सात द्वीप कै नांम ए, प्रसिद्ध बीच भुव नाक॥ ५५॥
भयै अैकहूं तैं अैक, दूनैं सातौं द्वीप॥
बरनतहूँ सात समुद्र, अबहिं सुनियै प्रथीप॥ ५६॥
ष्यार सिंधु घृतसिंधु पय, सिंधु सिंधुरस ईष॥
दही सिंधु जलसिंधु अरु, सुरासिंधु सु प्रतीष॥ ५७॥
सातौं द्वीप समुद्र अै, जांनि समांन प्रमांन॥
द्वीपन की षाईन सम, लेहूँ समुद्र षिछांन॥ ५८॥
इहि सागर संसार बिच, प्रियब्रत धर्म जिहाज॥
दिय निज सातौं पुत्र कौं, सात द्वीप कौ राज॥ ५९॥
ऊर्जस्वती सुक्रहिं दई, अदभुत सुंदर रूप॥
सुता देवयानी भई, जांकै उदर अनूप॥ ६०॥
पूर्न भक्त प्रभु कैनकौ, अधिक पराक्रम होय॥
ताकौं अचिरज नांहिनैं, कबहूं मांनत कोय॥ ६१॥

अैक दिवस नृप प्रियब्रतहिं, उपज्यौ अति बैराग॥
तब बोलै अैसें बचन, करुना भरै अथाग॥ ६२॥
म्हैं न भलौ किय कर्म भौ, बिषयन मैं आसक्त॥
क्रीडा मृग मौ तियन कौं, मुहि धिकार बिच जक्त॥ ६३॥
करत भयौ प्रियब्रत नृपति, निज निन्दा इहीं भाय॥
बडै न बौलत आपनै, मुष तैं बचन बडाय॥ ६४॥
प्रियब्रत चित्त प्रभु क्रपा तैं, उपज्यौ ग्यांन बिराग॥
तब पुत्रननि कौं राज दै, किय तियांन कौ त्याग॥ ६५॥
नारद जू ही कै निकट, फिरि प्रापत भय जाय॥
करन लगै सुभ तत्व की, चरचा अति सुषदाय॥ ६६॥
प्रियब्रत कौं सौ पराक्रम, और करि सकै कौंनु॥
सात द्वीप सात जिन, रचै समुद्र सुठौंनु॥ ६७॥
नदी पर्बतन सौ जिन्हनि, दीप दीप कै मांहिं॥
प्रिथवी की रचना करी, बउत भांति सब ठांहिं॥ ६८॥
जिन नृप सुष संसार कै, जांनै नरक समांन॥
हरि भगतननिहिं सौ करी, परम प्रीति पहचांन॥ ६९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(आग्नीध्र चरित्र)

॥ सुक उबाच॥

दोहा - बोलै श्री सुकदेव जू, जंबू द्वीप कौ राज॥
प्रिय ब्रत पाछै करत भौ, आग्नीध्र गृह काज॥ १॥
पितु ज्यौं रछया प्रजा की, करत भयौ बहु भाय॥
प्रजा सबै आनंद सौं, बसत भई सुष पाय॥ २॥
सौ सतांन निमितिहुँ नृप, मंदरगिर ठां जाय॥
बिधि कौ आराधन कियौ, अरु तपस्या अधिकाय॥ ३॥
बिधि पठई यक अपछरा, आग्नीध्र कै पास॥
अदभुत सुंदर रूप गुण, नांम पूर्बचिति जास॥ ४॥
सुंदर आश्रमनृपति कौ, जुत तरु ताल तमाल॥
सबद करत पंछी बिबिध, जिहिं ठां परम रसाल॥ ५॥

जहँ आवत भइ अपछरा, मुसकत करत अदाय॥
तिहूं नुपुर धुनि सुनि नृपति, दृग षुलि रहै चिताय॥ ६॥
सुर नर मन कौं दृगनिकौं, दैनहार आनंद॥
गति बिहार बहि लाज जुत, चितवन अति सुष कंद॥ ७॥
सबहिंन सुंदर बचन सौं, उपजावत तिय कांम॥
अंग अंग सौभा सरस, चंदमुषी अभिरांम॥ ८॥
मुष सुगंध तैं अलि निकट, मंडरावत है आय॥
तिन डर सौं बेगी चलत, कुच चंचलता पाय॥ ९॥
तिहं लषि नृप ह्वै कांम बस, जड सम बोलै बैंन॥
तू कौहै किहुं प्रभू की, ह्वै है प्रकृति सुषैन॥१०॥
फिरि भौंहन दिस देषि नृप, बोलै बचन रसाल॥
बिना प्रतंचा धनुष द्वै, तू धारै है बाल॥११॥
नैत्रन लषि बोल्यौ नृपति, कमल पत्र ह्वै लाग॥
अति तीछण सर दोय ए, है तौपै बडभाग॥१२॥
ढूंढत हम्ह से मृगन कौं, तूं डोलत है बांम॥
सौ न जांनियै कौंनु कौ, चलवैंगी सर कांम॥१३॥
इहै पराक्रम रावरौ, करौ हम्हहिं आनंद॥
निज भागन तैं आजु इहि, देष्यौ तुव मुषचंद॥१४॥
तूं कौं मुनि अलि सिस्य है, बेद पढत तुम्ह पास॥
फूल झरत सिर तैं तिह्वै, सेवत धरै हुलास॥१५॥
पीत बस्त्र सोभित भलैं, कंदब फूल कै रंग॥
ताहिं नुपुर कौ सब्द सुनि, प्रगटत अधिक उमंग॥१६॥
स्तनन निरषि कै नृप कहि, तौर श्रृंग है दोय॥
कहा जांनियै कहा तुम्ह, इनमैं राष्यौ गोय॥१७॥
अरु तेरी कटि छीनहूँ, धारत इनकैं भार॥
छूटि नितंबन पैं रहै, स्याह सचिक्कन बार॥१८॥
केसरि लषि नृप कहत तौ, अंग लागि है कीच॥
सौ सुगंध रहि महकि इहिं, मौ आश्रम कै बीच॥१९॥
तातैं हम्हहिं दिषाइयै, अपनौ लोक सुधंग॥
जिहं ठां कै बासिनहुं कै, हौं हैं अैसै अंग॥२०॥
चाबत लषि ताम्बुल नृप, कहत लागि हित गैल॥
अैसौ का भोजन करत, जिहं सुगंध रहि फैल॥२१॥
जांमैं चंचल मीन द्वै, अैसैं तो मुष तांन॥
लट घुंघरारिनि लषि कहत, अलि लगि आनन जांन॥२२॥

गेंद देषि बोल्यौ नृपति, तैं रवि दयौ बगाय॥
सौ दिसांन मैं भ्रमत है, मो मन हरत सुभाय॥२३॥
पवन हरत तौ बस्त्र कौ, सौ छबि अधिक अनूप॥
तपस्या तपसी जनन की, षोवन है तैं रूप॥२४॥
ऐसौं सुंदर रूप तुम्ह, किह तपस्या तौं पाय॥
अब हम्ह सौं मिलि आप इहिं, तपस्या करहुं बनाय॥२५॥
बिधि मिलाप इहिं रावरौ, हम्हहिं क्रपा करि दीन॥
तातैं हम्ह तुम्ह कबहुँ नहिं, ह्वै हैं जुदै प्रवीन॥२६॥
अरु तौसौं मौ मन लग्यौ, इह मानहुं परतीति॥
तुम्ह निज हासि कटाछि तैं, मोहि लियौ है जीति॥२७॥

॥सुक उबाच॥

जांनि बूझि ऐसै नृपति, ह्वै जड चतुर समांन॥
बचन नायिका सौं कहै, बजए प्रीति निसांन॥२८॥
अपछरा मोहित जु भई, देषि नृपति कौ रूप॥
दस हजार बरसन कियौ, नृप सौं भोग अनूप॥२९॥
पुत्र भयै नव नृपति कै, गर्भ अपछरा थांन॥
तिनकै नांम गनाय कैं, अब करिहौं बाष्यांन॥३०॥
नाभि किंपुरुष हरिबरस, इलाम्रत भद्रास्व॥
केतुमाल कुरु हिरण्यमय, रम्यक अैं नव भास॥३१॥
नांम पूर्बाचिति अपछरा, यै नव सुत प्रगटाय॥
नृपकौं तजि प्रापत भई, ब्रह्मा जू पैं जाय॥३२॥
प्रगटत ही वै पुत्र नव, भयै महा बलवांन॥
करत भयै नव षंड कौ, राज भलैं उनमांन॥३३॥
आग्नीध्र राजा बहुरि, धरत अपछरा ध्यांन॥
जाय अपछरा लोक कौं, प्रापत भयै निदांन॥३४॥
आग्नीध्र नृप कैं नऊं, पुत्र आप सम जांनि॥
गिर सुमैर की नव सुता, ब्याही अति हित ठांनि॥३५॥
उग्रदृंष्ट्री लता देवी, रम्या स्यामा नांम॥
मेरु देवी नारि भद्रा, प्रतिरुपा गुन ग्राम॥३६॥
नांम नऊं कन्याननि कै, इह हम्ह कहै गनाय॥
रूप सील गुन जुक्त बै, सबही हुती सुभाय॥३७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(महाराज नाभि का चरित्र)

॥ सुक उबाच ॥

चौपाई - श्री सुक फिरि बोलै यौं बांनी। सुनियै नृपति परीछित ग्यांनी॥
राजा नाभि मेरु देवी तिय। निज संताननि निमिति जिग्य किय॥ १ ॥
अधिक श्रद्धा तैं नृप जिग्य कीनौं। प्रभु सेवक जुत दरसन दीनौं॥
मन अरु नैंन दैन आनंदा। प्रभु कै अंग अंग सुष कंदा॥ २ ॥
च्यार भुजा पीतांबरहुँ धरैं। आयुध करहिं बनमाला गरैं॥
उर बिच कौस्तभ मनि श्रीलांछन। जथा जोग्य भूषन सोभित तन॥ ३ ॥
सीस मुकट अलकैं घुंघरारी। मंद मंद मुसक्यांन सुढारी॥
ज्यौं निधि मिलै रंक कौं आयी। त्यौं प्रभु दरसन द्विज जन पायी॥ ४ ॥

॥ ऋत्विज ऊचुः ॥

हरषि करत भय प्रभु की पूजा। बोलै हरि सम और न दूजा॥
पुनि हम्ह तुम्हकौं करत प्रनांमा। हे अषिलेस्वर पूरन कांमा॥ ५ ॥
हम्हकौं इह बडैन समझायौ। सोइ भेद हम्ह सीस चढायौ॥
जीव प्रकृति मोहित निरधारा। भूलि रह्यौ है बिच संसारा॥ ६ ॥
प्रभू नाम गुन रूप तुम्हारै। बरनि न सकत कोउ किहुँ बारै॥
जथा सक्ति बरनत सब कोई। जिहं जइसौ चित भावत होई॥ ७ ॥
भक्त तुलसि दल जल सौं कोई। तुम्ह कौं पूजै आश्रय होई॥
ताहीं सौं तुम्ह हे भगवांनां। प्रसंन होहुँ तुम्ह क्रिपा निधांनां॥ ८ ॥
भक्ति हीन जो जिग्यहूं करैं। तऊ तुम्हहिं चित न प्रसंनता धरैं॥
तुम्ह तौ निज सरूप ही मांहीं। पूरन हौ प्रभु आप सदांहीं॥ ९ ॥
तऊ कांमनां करिकैं कौऊ। तुम्ह निमिति जिग्य करत जु हौऊ॥
माया मोहित जीव अग्यांनी। अपनौं हित नहिं जांनत प्रांनी॥ १० ॥
तिन्हकौं तुम्हहीं मुक्ति देत हौ। उन्हकी पूजा मांनि लेत हौ॥
आप जिग्य मैं दरसन दीनौं। हम्ह तौ याहि बडौ फल लीनौं॥ ११ ॥
जिन मन मैल गयौ करि ग्यांनू आत्मराम जोगैस निदांनू॥
बैहुँ तुम्हारौ गुन गावत है। मगन हौय कैं सुष पावत है॥ १२ ॥
छींकत गिरत परत दुष सुष मैं। प्रभु तुम्ह नांम रहैं उन्ह मुष मैं॥
हे करतार नाभि नृपहिं इहै। अदभुत सुत तुम्हहिं सौ चित चहै॥ १३ ॥
उपासना या निमित तिहारी। करत नृपति अति उर हित धारी॥
तुम्ह तौ प्रभू मुक्ति कै दाता। परमांनंद रूप बिष्याता॥ १४ ॥
रूप तिहारौ नहिं पहिचांनत। परम तत्वहिं इह पुत्रहुँ जांनत॥
निर्द्धन ज्यौं कुबेर कै आगैं। जाय अंन कै तुस कौं मांगै॥ १५ ॥

त्यौं इहि सुत मांगत तुम्ह पासा। माया मोहित धरैं हुलासा॥
प्रकृति रावरी किहिं न हरायौ। सब जग माया बस भरमायौ॥ १६॥
जिन्ह साधन पद सेये काहू। तै उबरै ह्वै मुक्त उमाहू॥
हम्ह तुम्ह कौं प्रभु थोरै काजू। बोलै इहां गरीब निवाजू॥ १७॥
चूक माफ सौ करौ हम्हारी। तुम्ह प्रभु दीनन कै हितकारी॥

॥ सुक उबाच॥

बिप्रन वचन सुनि क्रपानिधांना। दया सहित बोलै भगवांना॥ १८॥

॥ श्री भगवांनुबाच॥

हे दुज तुम्ह मांग्यौ दुर्लभ बर। पै मौसौं को हौंहिं निश्चै कर॥
तातै हूं नृप सुत तन धरि हौं। बचन तुम्हारौ पूरन करि हौं॥ १९॥
है ब्राह्मन सब मुष मो देहा। ह्वै हौं पुत्र नाभिनृप गेहा॥

॥ श्री सुक उबाच॥

यौं उहिं जिग्य मांहिं भगवांना। प्रसंन होय भय अंतरध्याना॥ २०॥
संन्यासी जोगैस बिरक्तहिं। तिनकैं धर्म थपन बिच जक्तहिं॥
गर्भ मेरुदेबी तिय ठांमां। प्रगटै प्रभू नाभि नृपधांमां॥ २१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतियोऽध्यायः ॥ ३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

(ऋषभदेव जी महाराज का राज्य शासन)

॥ श्री सुक उबाच

दोहा - सुक कहत कि नृप नाभि कै, सुत प्रगटै भगवांन॥
बडौ भयौ ईस्वर्ज गुन, कहांलौं करूँ बषांन॥ १॥
सबै प्रजा चाहत भई, इन्हैं होहुँ अब राज॥
इहै मनोरथ चित धर्यौ, निश्चैहिं निज सुषकाज॥ २॥
बल प्रताप लछमी अधिक, इन्हमैं पिता पिछांनिं॥
नांम धर्यौ आनंद मय, रिषभ देव सुषदांनिं॥ ३॥
इन्द्र न बरस्यौ इक समैं, रिषभदेव तब आप॥
बरसै मेघ सरुप ह्वै, जें मेटन त्रय ताप॥ ४॥
रिषभदेव कौ नाभि नृप, लै लै नांम लडाय॥
अहो पुत्र अहो बत्स यौं, कहत भयै सुषपाय॥ ५॥
लषि हित इनमैं प्रजा कौं, नांभि इन्हहिं दिय राज॥
भवसागर कै तिरन कौ, करत चह्यौ फिरि काज॥ ६॥

तिया मेरुदेबी सहित, ठौर बद्रिका जाय॥
नरनारायण की नृपति, करि उपास गति पाय॥७॥
अैसैं सब गावन लगै, जिनकौं सुजस सुढार॥
नृपति नाभि सम कौनुहीं, जिहं सुत हुव करतार॥८॥
गुर सौं विद्याहुँ पढि सबै, रिषभदेव भगवांन॥
गृहस्थाश्रम कै धर्म सुभ, साधत भयै सुजांन॥९॥
तिया जयंती नांम की, गुन जुत सुंदर रूप॥
प्रगट भयै जिहं गर्भ तैं, सौ सुत परम अनूप॥१०॥
बडौ पुत्र जिनमैं भयौ, भरत श्रेष्ठ अधिकाय॥
भरतषंड सब कहत हैं, जांकै नांम प्रभाय॥११॥
सुनहुँ षंड अजनाभ हौ, पहलैं यांकौ नांम॥
भरत नांम तैं फेरि हुव, भरत षंड सुभ ठांम॥१२॥
मलयकेतु पुनि इलाब्रत, भद्रसेन कुसाबर्त्त॥
भद्र इंद्रस्पृक विदर्भ, कीकट ब्रह्मावर्त्त॥१३॥
ए नव पुत्र हुव नृपति कै, श्रेष्ट मुष्य प्रगटाय॥
तिनकै नांम बषांनि हम्ह, तुम्ह सौं कहै गनाय॥१४॥
प्रबुद्ध अंतरिषि द्रुमिल, पिप्पल्यान आविर्होत्र॥
करभाजन कवि चमस हरि, अैं नव नांम पवित्र॥१५॥
परम भक्त भगवांन कै, होत भए जोगेस॥
अब आगै इन्हकौ चरित, कहि हैं भलैं सुदेस॥१६॥
रिषभदेव जू कै बहुरि, सुत इक्यास्सी और॥
छत्री तैं ब्राह्मण भये, पढि पढि बेद सुतौर॥१७॥
रिषभदेब साष्यात है, प्रभु कौ रूप उदार॥
जगतहिं सिषवन कौ करत, भलैं कर्म निरधार॥१८॥
परजा कौ सिषवत भए, कर्म जितैक सुढार॥
करत बडनहीं कै कहै, भलै कर्म संसार॥१९॥
सब कछु जांनत आप पैं, बिप्र कहत जिहं भाय॥
रिषिभ दैव जू प्रजा कौं, पालन किय सुषपाय॥२०॥
भली रीत सौं करत भय, जिग्य रिषभ भगवांन॥
बिच संसार सिषायबै, धर्म म्रजाद निदांन॥२१॥
रिषभ राज्य मैं अति सुषी, रहत भये सब लोक॥
काहू कैं नांहिंन रही, कछू चाह किहुँ वोक॥२२॥

इक दिन ब्रह्माबर्त्त बिच, रिषभ सभा द्विज मांहिं॥
सुनत प्रजा कै सुतनि कौं, बचन कहत भय चांहिं॥२३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

(महाराज ऋषभदेव जी का अपने पुत्रों को उपदेश देना तथा स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना)

॥ श्री रिषभदेव उबाच॥

दोहा - रिषभदेव बोलै कि हे, पुत्र इहै नर देह॥
बिषै भोग कैं लियैं नहिं, सिरजी प्रभू अछेह॥१॥
यासौं तपस्यां कीजियै, जांतै मन सुध होय॥
तबै पाइयैं मुक्ति सुभ, है संदेह न कोय॥२॥
निहचै सेवा साध की, मुक्ति गेह निरधार॥
अरु है तियसंगीन कौ, संग नरक कौ द्वार॥३॥
रु जिनकें चित समांन हैं, सब कै सुहृद अछौह॥
तिय सुत गृह मैं हित न जिन, प्रभु सौं पूरन मोह॥४॥
अैसें जन जें ह्वै तिन्हैं, लीजै साध पिछांनि॥
तिन्हकी सेवा कीजियै, आछैं अतिहित ठांनि॥५॥
कर्म बुरे प्रांनी करत, ह्वै इन्द्रीय आधीन॥
तासौं बैसेई धरत, नित्य सरीर नवीन॥६॥
जबलौं आतम तत्व कौं, लेत न जीव पिछांनि॥
तबलौं वाकौ मन करत, कर्म अनेक निदांनि॥७॥
तासौं फिरि फिरि जीव कौं, बंधन होत सरीर॥
भुक्तन निज प्रारब्ध कै, बहु कर्मनकी भीर॥८॥
तब तांई या जीव कौ, प्रभु सौ लगै न नेह॥
जबलौं छूटैं नांहिनैं, जीवहिं बंधन देह॥९॥
झूठौ जग जांनैं नाहिं, जबलौं धारि बिवैक॥
गृहस्थाश्रम कै बिच बंध्यौ, पावत दुष्ष अनैंक॥१०॥
पहलैं बंधन प्रीति कौ, तिय पति कै बिच होत॥
फिरि मानत धरि पुत्र मैं, ममता कौहि उद्योत॥११॥
कर्म सरूपी ग्रंथि दृढ, जब याकी षुलि जाय॥
तब आनंद लहै इहै, प्राप्ति मुक्ति की पाय॥१२॥

(श्री) हंस रूप गुर की भक्ति, तत्पर प्रीति बढाय॥
सुष दुष लषै समांन अरु, जग दुष रूप जनाय॥ १३॥
करैं नांहिं कछु कांमना, तपस्यां करै बनाय॥
कर्म करै प्रभु कै निमित, हरि गुन सुनैं सुभाय॥ १४॥
अरु प्रभु गुन कीर्तन करै, करै साध कौ संग॥
सांत दांत रहि सबनि सौं, बैर न करै कुढंग॥ १५॥
गृह सरीर मैं नहिं करै, ममता अपनौं मांनिं॥
निज चित्त राषै ग्यांन मैं, रहै इकंत सथांनिं॥ १६॥
जीतै इंद्री प्रांन मन, श्रद्धा भक्ति हरि मांहिं॥
रहै मौंन ब्रह्मचर्ज सौं, करै प्रमाद जु नांहिं॥ १७॥
उपज्यौ ह्वै जाकै हिर्दैं, पूर्न ग्यांन बिग्यांन॥
सो मोकौं सब ठौर मैं, देषै आप सुजांन॥ १८॥
जोग धीर्ज बल पायकैं, दूरि करै अहंकार॥
तब कछु फिरि करतव्य नहिं, इहि जांनहुँ निरधार॥ १९॥
पुत्र रु सिष्य कौं पिता गुर, मार्ग चलावै ग्यांन॥
कर्मन मैं आसक्त नहिं, हौन दैहिं बुधिवांन॥ २०॥
अग्यांनी संसार इहीं, कर्मन ही कै मांहिं॥
हौय रह्यौ आसक्त प्रभु, भक्ति मुक्ति सुध नांहिं॥ २१॥
अंधहिं डारै षाड मैं, कहौ कहा सिधि होय॥
ज्यौं कर्मनि बिच जक्त कौं, लगयैं भलौ न कोय॥ २२॥
कर्मनि मैं दुष बउत हैं, अरु सुष अलप निदांन॥
लहै परम आनंद जब, गहै सरन भगवांन॥ २३॥
जो कौइ ग्यांनी हो सौं, उन्हकौं कर्म छुडाय॥
करि आछैं उपदेस दै, बिच मग ग्यांन लगाय॥ २४॥
बह गुर नहिं सज्जन न बह, मात पिता बै नांहिं॥
बह दइब बह पति नांहीं, जो म्रतु तैं न बचांहिं॥ २५॥
धर्म भलौं राष्यौ हिर्दैं, दिय अधर्म कौं पीठ॥
हम्हकुँ सब कोउ कहत हैं, रिषभदेव इहि ईठ॥ २६॥
अहो पुत्र तुम्ह सबनि मैं, भरत बडौ है भ्रात॥
जाकी मिलि सेवा करौ, जांनिं ठौर निज तात॥ २७॥
श्रेष्ट बृछि तैं जीव जें, चरत फिरत जुत ग्यांन॥
तिन्हतैं श्रेष्ठ पिछांनियैं, मनुष भलै उनमांन॥ २८॥
तिन्ह तैं गण गंधर्व अरु, श्रेष्ठ देवता आंहिं॥
इन्द्ह सबहिंन मैं जांनियैं, श्रेष्ठ इन्द्र हैं तांहिं॥ २९॥

दछि आदि देव प्रजापति, जिहँ तैं श्रेष्ठ कहाय॥
तिन्हतैं सिव है श्रेष्ठ बिधि, सिव तैं श्रेष्ठ सुभाय॥३०॥
म्हैं ब्रह्माहिं तैं श्रेष्ठ द्विज, मो तैं श्रेष्ठ सुढार॥
श्रेष्ठ द्विजनहिं तैं और कोउ, नांहिंन हैं निरधार॥३१॥
भौजन दै कोउ द्विजनकुँ, सौ म्हैं जैंवत चांहिं॥
अग्नि है म्हेरौ मुष तउ, है बिप्रनहुँ सम नांहिं॥३२॥
सम दम निगम रु सत्य तप, अनुभव इतनी बात॥
जिन्ह बिप्रन मैं बसत सौ, म्हेरै भक्त बिष्यात॥३३॥
तै जन मोहू सौं कछू, कबहूं चाहत नांहिं॥
सौ बै काहू और सौं, कहा राषि है चांहिं॥३४॥
हेसुत सब प्रांनीन मैं, पहचांनौं तुम्ह मोहि॥
इही बडी मोसेव है, समझहुँ चित अवरोहि॥३५॥
कर्म करै सौ मोहि सब, देय समर्पित सुभाय॥
अरु न समर्पै कर्म मोहि, तौ सुभ मुक्ति न पाय॥३६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं सुतन कौं, करत भयै उपदेस॥
ता मिस सौं सबहिंन कियौ, सुभ उपदेस बिस्वेस॥३७॥
कर्म छोडि दीनैं जिन्हनि, सांत दांत जे साध॥
अैसे मुनि तिन धर्म प्रभु, सिषयौ चहत अगाध॥३८॥
रिषभदेव जू भरथ कौं, दै प्रथवी कौ राज॥
मगन होय कैं त्याग किय, सबगृह कै सुष साज॥३९॥
ब्रह्मावर्त्त जु देसतैं, निकसै लै संन्यास॥
त्यागन करि संसार कौ, निज उर धरै हुलास॥४०॥
जड बहरौ अंध बावरौ, गूंग पिसाच सरूप॥
अैसौ दिषयौ जक्त कौं, अपनौं रूप अनूप॥४१॥
उन्हसौं बोलै जो कोउ, तौऊ बोलै नांहिं॥
बन पर्वत पुर ग्राम अरु, बिच आश्रमनि फिरांहिं॥४२॥
जहँ तहँ दुर्जन दुष्ट जन, इन्हकौं अति दुष देत॥
थूकै मारै डारि रज, डर पावै बिन हेत॥४३॥
बिष्टाहूँ डारै तोऊ, ए दुष मांनत नांहिं॥
तजि अभिमांनहिं भ्रमत है, अैसैं प्रथवी ठांहिं॥४४॥
अंग महा सुकुमार जिन, सुंदर बदन रसाल॥
नैत्र कमल दल से लसै, मंद हँसनि छबि जाल॥४५॥
सीस जटा तन मलिन अति, जगसौं निपट उदास॥
बौरै सै सबहींन कौं, रिषभ परत है भास॥४६॥

रिषभदेव जू नै कियौ, इहि बिचार मनमांहिं॥
संसारी प्रांनीन सौं, रहियैं जुदे सदांहिं॥४७॥
संसारी है जीव जें, आवै अपनै पास॥
तौ वे मारग जोग मैं, बिघ्न करैं बिनष्यास॥४८॥
तातैं अजगर सरप कौ, रिषभदेव ब्रत लीन॥
सौअैही देह कै सब, कारज करत प्रवीन॥४९॥
सौअैही भौजन करै, सौअैही जल लैंहिं॥
अरु सौअैही ठौर जिहँ, मलमूत्रहिं करि दैंहिं॥५०॥
जिन्ह बिष्टा कौ सुगंध दस, जोजन लौं महकाय॥
लौटैं बिष्टा बिची परै, सब ठां प्रभु दरसाय॥५१॥
रिषभरूप भगवांन कै, जोगेस्वर अवधूत॥
जोगिनि की सिधिं प्राप्त हुव, जिनकौं इती अभूत॥५२॥
चलनौं मग आकास ह्वै, जैबौ अंतरध्यांन॥
मन सम चलन रु और कै, तन मैं पैठि सुजांन॥५३॥
इतनी सिद्धि जोगीन की, प्राप्त होत भइ आय॥
रिषभदेव जू नहिं लई, जिन्हकौं मन ललचाय॥५४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(ऋषभदेव का देह त्याग)

॥ राजोबाच॥

दोहा - राजा पूछत ग्यांन करि दग्ध भयै निज कर्म॥
है बे आत्मारांम जिन, तजै प्रकृति कै मर्म॥१॥
जिन्हकौ जोग प्रताप ह्वै, प्राप्त अष्ट सिधि आय॥
तिन्हसौं उन्हकौं मन कछू, चंचलता नहिं पाय॥२॥
रिषभदेव जू अष्टसिधि, काहेतैं नहिं लीन॥
सौ कारन समझाय कैं, कहियैं हम्हहिं प्रवीन॥३॥

॥ श्री सुक उबाच॥

बोलै श्री सुकदेव जू, सतिकही नृप बात॥
पै मनकौ बिसबास नहिं, करि बडेनकौ घात॥४॥
बडन कह्यौ मनकौ कबहुं, करियै नहिं बिसबास॥
सिव मन चंचल ह्वै गयौ, रूप मोहनी भास॥५॥

ज्यौं बिभचारिनि नारि कौ, कीजै नहिं बिसबास॥
त्यौं ही मन बिसबास नहिं, कीजै काहू आस॥ ६॥
कांम क्रौध मद लौभ भय, सौंक मोह रु अग्यांन॥
इतनै बंधन कर्म सब, मनतैं होत निदांन॥ ७॥
या मनकौं नहिं जांनियैं, अपनौं किहूं प्रकार॥
नित प्रति मनकौं राषियैं, बांधैहीं निरधार॥ ८॥
अष्ट सिधिहुँ मैं लागि कैं, मति मन चंचल हौय॥
रिषभदेव जू अष्टसिधि, तातैं लई न कौय॥ ९॥
रिषभ भेष अवधूत सौ, ईस्वर किहूं लषाय॥
चहत भयै तन त्यागबौ, निज ईछा कैं भाय॥ १०॥
जिनकैं नहिं अभिमांन ह्वै, मग्न फिरत भुवमांहिं॥
निश्चै अैकही आतमा, लषत भए तिहं ठांहिं॥ ११॥
कोइक कर्म प्रारब्ध तैं, ऋषभ देह दरसाय॥
जइसैं चक्र कुलाल कौं, बेगि जितै भरमाय॥ १२॥
कीकट दछिन मैं बसै, कर्णाटक एहिंदेस॥
जिन्हकैं बिच डोलत भयै, रिषभदेव बिस्बेस॥ १३॥
कुटकांचल पर्बत बिषै, फिरत उपबननि ठांहिं॥
केस बिषरै नग्न तन इक, उपल धारि मुष मांहिं॥ १४॥
वां बन कैं बिच पवन सौं, घसि बांसनिकी भीर॥
प्रगटी अगनि बन भस्म हुव, तिहुं संग रिषभ सरीर॥ १५॥
बेअंक कलिंक कौअंक त्रप, इन्ह देसनि कौ राय॥
जाकौं अर्हण नांम सुं, बुरै कर्म अनुभाय॥ १६॥
अपनौं मारग छोडि कै, रिषभरीत गहि आप॥
थपि हैं मग पाषंड कलि, बिच निज बुद्धि प्रताप॥ १७॥
पुनि वा समयै मद्धि मिलि, अर्हण नृप मत बीच॥
मोहै प्रभु की प्रकृति सौं, जे लगि चलि है नीच॥ १८॥
करि हैं ब्रत अति ही बुरै, छोडि धर्म आचार॥
तजि आचमन सनांन पुनि, रहनि अपवित्र प्रकार॥ १९॥
बेद बिप्र हरि जिग्य कै, ह्वै हैं जु निंदावंत॥
लोचन करि हैं केस कौ, समझिहुँ ब्यौंतौ तंत॥ २०॥
जइसै पांछै अंध कै, चलै अंध ही जांहिं॥
त्यौंहीं बे सब जाय हैं, नर्क अंध तम मांहिं॥ २१॥
मारग मुक्ति सिषायबै, भयौ रिषभ अवतार॥
पूरबहुँ सिद्ध श्लोकहिंश्री, ब्यास धरै बुधिसार॥ २२॥

सात समुद्र रु द्वीप षंड, भरत षंड इन मांहिं॥
महाश्रेष्ट मौ जांनियै, रिषभ चरित तहँ गांहिं॥२३॥
श्रुश्रषा करि करिहूं सबै, सुजस कहत करतार॥
प्रियब्रत नृप कौ बंस धनि, प्रगटै प्रभु निरधार॥२४॥
रिषभ देव जोगैस कै, हौय और सम कौंनु॥
लोक बेद द्विज गाय कै, जे गुर परम सुठौंनु॥२५॥
रिषभदेव जू कौ चरित, टारन पाप अनंत॥
सुनैं सुनावैं याहि जिहं, होय भक्ति भगवंत॥२६॥
जिहं उर प्रगटै भक्ति जे, मगन बीच आनंद॥
बै नाहिं चाहै मुक्ति हूं, चाहै हरि सुषकंद॥२७॥
नृपति तुम्हारै परम प्रिय, है श्री कृष्ण क्रपाल॥
भयै तुम्हारै सेवकहुँ, हित बस होय दयाल॥२८॥
प्रभू प्रीत बस होत हैं, दास दास निरधार॥
मुक्ति देत नहिं देत निज, भक्ति बेगि करतार॥२९॥
जे पूरन निजरुप सौं, माया तृष्णा नांहिं॥
जगतहिं दाता मुक्ति कैं, नित प्रत रहत अचांहिं॥३०॥
रिषभदेव अैसैं प्रभू, पूरन ब्रह्म अकांम॥
बार बार जिन्हकौं करत, मन बच कैं परनांम॥३१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(भरत - चरित्र)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - श्री सुक कहत कि भरत नृप, रिषभ क्रपा अनुसार॥
राज्य करत भौ ज्यूं पिता, पूरन धर्म प्रकार॥ १॥
बिस्वरूप की पुत्रिका, पांचजनी जिहं नांम॥
सौ ब्याहत भय भरत नृप, अति हित धरि उर ठांम॥ २॥
जांसौ प्रगटै भरत कै, पंच पुत्रनि अभिरांम॥
तुम्ह सौं कहत गनाय कैं, हूं अब जिनकै नांम॥ ३॥
सुमति सुदर्सन आवरन, धूम्रकेतु ए च्यार॥
पंचम हुव सुराष्ट्र भ्रत, समझहु भलै प्रकार॥ ४॥

भरत पिता ज्यौं करत भौ, पालन प्रजा सुभाय॥
सबहिंन कौं सुभ धर्म मग, आछी भांति चलाय॥५॥
जिग्य करत भय भरत नृप, हिय अति धरै हुलास॥
सोम दरस चौमास पुनि, जिग्य नांम पूर्ण मास॥६॥
फल समर्पन किय जिग्य कै, प्रभु मैं भरत सुग्यांन॥
अंग प्रभू ही के सुरनि, मांनत भयौ निदांन॥७॥
हिर्दै सुद्ध हुव जिग्य सौ, तातैं प्रभु पद मांहिं॥
दिन दिन राजा भरत उर, अधिक भक्ति सरसांहिं॥८॥
कितक हजारन बरस लौं, राज भरत नृप कीन॥
फिरि पुत्रननिकौं राज दै, भयै बिरक्त प्रवीन॥९॥
पुलहाश्रम मैं बसत भय, ह्वै बिरक्त सुषपाय॥
हरिभक्तन कौं अबहिं लौं, दरसन होत सुभाय॥१०॥
चक्र नदी जहँ सबन कौं, करत पवित्र सुढार॥
तुलसी जल फल फूल लै, सेवत नृप करतार॥११॥
प्रभू भक्ति सौं पुलकि तन, ह्वै रोमांच सु अंग॥
नैत्रन आंसू उमगि कैं, गदगद कंठ सुधंग॥१२॥
नृप की अैसी हुव दसा, प्रभु कै प्रेम प्रकार॥
ध्यांन मग्न ह्वै भुलत हरि, पूजाहूँ अनुसार॥१३॥
वोढैं नृप मृग चर्म बढी, सीस जटा अवधूत॥
प्रात समै रबि सांमुहैं, करत भयै अस्तूत॥१४॥
जोति रूप रबि कौं करत, हम्ह परनांम सुढार॥
जो बुद्धि प्रेरक सबन कै, अरु सब उतपति कार॥१५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्यायः ॥७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(भरतजी का मृग - मोह में फंसकर मृगयोनि में जन्म पाना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि इक दिन भरत, करि बिच सरित सनांन ॥
प्रणव मंत्र कौ जपधरी, छह लौं किय जल थांन ॥१॥
हरनी इक आई जांह, जल पीवन कै काजि ॥
सिंघ सब्द सुनि तिहिं समैं, डरपि पार गइ भाजि ॥२॥
डर सौं वाकौं गर्भ गिरि, पर्यौ बीच जल मांहिं ॥
मूर्छित ह्वै कैं तन तज्यौ, मृगी गुफा नग ठांहिं ॥३॥

पर्यौ हुतौ जल मैं बचा, ताकौं बूडत देषि॥
निज आश्रम ल्याए भरत, अधिक क्रपा अवरेषि॥४॥
बा हरनी कै पुत्र कै, लाडन पौषन मांहिं॥
मोहित ह्वै राजा भरत, सब यम नेम भुलांहिं॥५॥
अरु बिचार निज चित नृपति, करत भयौ इहिं भाय॥
कालचक्र बसतैं इहै, बाल सरन मो आय॥६॥
मोहि कौं जांनतहिं इहै, माता पिता समांन॥
यांकौ पालन करन मुहि, तातै जोग्य निदांन॥७॥
निज सरनागत कौं नहिंन, पालन करही कोय॥
तौ ताकौं या बात कौं, दोष प्राप्त अति होय॥८॥
जो कोऊ है साध जन, जे निज कारिज छोरि॥
सरनागत कौ करत है, पालन आप अकोरि॥९॥
करि बिचार ऐसौं नृपति, वासौं बांध्यौ नेह॥
ऊठत बैठत सोवतैं, जागत मृग अवरेह॥१०॥
फूल पत्र फल रु मूल जल, कुस समिधा कैं काज॥
आप जांहिं बन कै बिषै, जब भरत महाराज॥११॥
ब्याकुल ह्वै ऐसैं करत, सोच आप चित मांहिं॥
मति वा मृग कै बाल कौं, भिडहा स्वांन भषांहिं॥१२॥
या डर सौं लीनै फिरैं, वा मृग कौं निज संग॥
कबहुं चढावै कंध पर, मग्न बीच हितरंग॥१३॥
नित नैम तहूं करत मैं, बीचि बीचि उठि राय॥
वा मृग कौं लषि लैहिं जब, चित निश्चलता पाय॥१४॥
अरु वा मृग कौं दैहिं नृप, फिरि फिरि आसिरबाद॥
तू रहियौ नित कुसल सौं, लहिं पूरन अहलाद॥१५॥
जात रह्यौ इक दिन कहूं, बह हरनी कौ बाल॥
कहत भयौ नृप यौं जबै, बिकल होय तिहं काल॥१६॥

छंद पद्धरी – कित जात भयौ बह मृग कुमार। बहि बिनां दुषित हौं बिरह ढार॥
नहिं म्हेरै दीरघ पुन्य कोय। बह आवै अपनी क्रपा भोय॥१७॥
इहं आश्रमहीं कैं आसपासि। त्रिन चरत होय है बह कदासि॥
कोउ भिडहा कुता तिहं न षांहिं। भइ सांमू अबहुँ आयौ नाहिं॥१८॥
बह हिरन राज कउमार चांहि। पुनि जो कदाचि इहिं ठौर आहिं॥
निज लीला करि आनंद देय। बह दरसन दै मुहि मोल लेय॥१९॥
जब झूठेंहीं हूं करन ध्यांन। थिति होय बैठतौ भुव सथांन॥
निज सींगन सौं तब परसि मोहि। करतौ सु लाड अतिहित अरोहि॥२०॥

म्हैं हौम सौंज धरतौ सुल्याय। तैं झूठनि करि लै तौ सुभाय॥
तब पिजतौ म्है करि अधिक रीस। जब डरपि बैठ तौ नाय सीस॥ २१॥
जांनौं न प्रथ्वी कहा पुन्य कीन। मृग पग अंकित हुव सोभ लीन॥
बहि चरन परस सौं प्रिथ्वी थांन। हौत सु पवित्र तीरथहुं समांन॥ २२॥
जहं बैठि करहिं द्विज जिग्य चांहिं। धरिहिं स्वर्ग कामना चित्त मांहिं॥
अैसौं पवित्र ह्वै भुवनि निकेत। बहिं हरिन चरन कै धरन हेत॥ २३॥
है बही बीच ससि मृग कुमार। ससि पालन करत सुदया ढार॥
बहि हरिन बिनु मुहि है संताप। दुप देत बिरह अति धरैं धाप॥ २४॥
ससि तातैं निज किरननि प्रभाय। मुहि सीतल करत सुदया छाय॥
यौं भरत दुषित ह्वै कहै बैंन। ह्वै बिरहीं बिकलहिंअति अचैंन॥ २५॥
प्रारब्ध कर्म बस तां प्रभाय। लाग्यौ सनेह मृग सौं कुदाय॥
प्रभु पूजन जोगाभ्यास भूलि। बिच मृग सनेह कै रह्यौ झूलि॥ २६॥
निज छोडि पुत्र गृह जिननि आप। बन बसै जाय हरि हित सथाप॥
चित लग्यौ हरिन मधि जिननि जाय। प्रारब्ध कर्म कोउ प्रगट आय॥ २७॥
यौं करत हिरनहीं की जु बात। नृप जन्म बित्यौ लगिकाल घात॥
रहि मरन समैं हूं हिरन ध्यांन। जिहँ हेत लह्यौ मृगतन निदांन॥ २८॥
प्रभु सेवा तैं मृग जन्म मांहिं। सुधि पूर्ब जन्म भूली सुनांहि॥
सुधि पूर्ब जनम की भरत हेरि। निज चित बिचारयौं करत फेरि॥ २९॥
म्हैं बउंत बुरौ क्रत कियौ हाय। निजू चित्त हरिन हित मैं लगाय॥
म्हैं ग्यांन मार्ग तैं भयौ नष्ट। हूं भूलि गयौ निज परम इष्ट॥ ३०॥
म्हैं बस्यौ प्रथम बन बीच जाय। भगवांन ध्यांन मधि चित लगाय॥
चित प्रथम प्रभू सौं म्हैं रचाय। फिर दयौ हरिन सौं हेत लाय॥ ३१॥
सोइ भयो मोहि बंधन कुढार। हुव अंतर हरि मिलिबै मँझार॥
म्है भूलि गयौ सब नित नेम। पूजा पाठ जग्य हरिजू प्रेम॥ ३२॥

दोहा - **करि बिचार अैसौं हरिन, नग कालांजर छोरि॥**
आयो पुलहाश्रम बिषै, पहली ठौर अकोरि॥ ३३॥
हरिनी अपनी मातहुँ, तजि आए इहिं ठांहिं॥
रहै महा बैराग जुत, हरिन जनम कै मांहिं॥ ३४॥
किहुँ सूं करै सनेह नहिं, रहि सूषै त्रिन षांहिं॥
यौं पाछैं बहु दिनन कैं, मृग तन तज्यौ सुभांहिं॥ ३५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

।। अथ नवमोऽध्यायः ।।

(भरत जी का ब्राह्मण कुल में जन्म)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - श्री सुक कहत कि बिप्र यक, जुत संतोष सयांन॥
सम दम बेदाधेन तप, जांनत आतम ग्यांन॥ १ ॥
जाके रूप उदारता, जुत गुन और अनेक॥
अैकहि नारी तैं भयै, नव सुत भलै बिबेक॥ २॥
इक कन्या इक सुतहिं भयै, दुतिय तिया कै जांनिं॥
भयौ भरत अवतार सौ, पुत्र बिप्र गृहहूँ आंनिं॥ ३॥
नित प्रत प्रभु पद कमल बिच, रहै लगाय जु चित्त॥
मनसा बाचा करि धरी, प्रभू सरन की ब्रित॥ ४॥
पहलैं मृग कै नेह सौं, धरत भयै मृग देह॥
तातैं अब डरि किहूं सौं, नांहिंन करत सनेह॥ ५॥
जड बहरौ अंध बावरौ, गूंगौ सौ निज रूप॥
भय दिषवत सब नरन कौं, उर धरि भेद अनूप॥ ६॥
पिता जनैऊ इन्हहिं दिय, सिषवत भौ द्विज धर्म॥
सौच आचमन जुक्त पुनि, बेदाधेन सुमर्म॥ ७॥
बौलि रु ताहि सिषावही, राजौ सीषै नांहिं॥
वेद पढांवहिं गायत्री, य जांनि बुझि टौलांहिं॥ ८॥
धर्म ब्रह्मचारीन कै, भयौ सिषावत तात॥
अै नहिं सीषै पिता तन, तज्यौ काल की घात॥ ९॥
इन्हकी माता ह्वै गई, सती पुरुष कै साथि॥
सौंपि गई बह सौंति कौं, निज सुत सुता अनाथि॥ १०॥
इन्हकैं सब भाईन कैं, हिर्दै नांहिं तत्व ग्यांन॥
बेद कर्म ही मांहि बै, रहि आसक्त निदांन॥ ११॥
तातैं इन्ह कैं रूप कौं, बै पहचांनत नांहिं॥
इनकौं जड समजांनि वै, द्विज बिद्या न पढांहिं॥ १२॥
गूंगौ बहरौ नांम लै, बौलत इन्हहिं पुकारि॥
अैं नांहिंन बौलत कबहुँ, काहू सौं किहुँ ढारि॥ १३॥
कांम कहै कोऊ इन्हहिं, सौ भी कछु करि दैंहिं॥
बुरौ भलौ भोजन मिलै, सौ आछै भछि लैंहिं॥ १४॥

इन्हकौं आत्म सरूप कौ, पूरन ग्यांन सुढार॥
सीत उस्न सुष दुषहुं कौं, तांतै नांहिं बिचार॥१५॥
बरषा ग्रीषम सीत मैं, नगन मगन रहि नित्त॥
रेत मांहिं लौटैं परै, प्रभु पद मैं धरि चित्त॥१६॥
पहरैं मलिन जनेउँ सौं, फिरत देषि सब कोय॥
जांनै बालक बिप्र कौं, और न भ्रम कछु होय॥१७॥
रषत भयै भाई इह्नैं, समझि षेत रषवार॥
सोऊ आछै करत नहिं, षेत कांम निरधार॥१८॥
जर्यौ अंन्न षलि तुस इह्नै, झूठनि भोजन दैंहिं॥
सोई सुधा सम मांनि ए, षाय भली बिधि लैंहिं॥१९॥
यक कोउ सूद्रन कौं नृपति, सौ करि सुत की चांहिं॥
भद्रकाली कौं मनुष बलि, मांनत भयौ उमांहि॥२०॥
बलि देबै कुं मनुष कोउ, भजिग्यौ जीवु बचाय॥
सेवक सब वा सूद्र कै, हेरि थकै नहिं पाय॥२१॥
षेत मांहिं जड भरत जू, ठाढै लषि वै दुष्ट॥
पकरि बांधि कैं लै गए, जांनि देह कै पुष्ट॥२२॥
इन्हकौं आछैं बस्त्र अरु, मनि भूषन पहराय॥
सुमन हार पहिराय कैं, भोजन भलौ जिमाय॥२३॥
धूप रु दीप वाजित्र बहु, गावत गीत सुभाय॥
दैंबी कैं आगैं इह्नै, बैठायै लै जाय॥२४॥
तबै सूद्र राजा बहै, बलि दैबी कौं दैंन॥
लेत भयौ तरवार कर, पढि गुर मंत्र सुषैंन॥२५॥
रजोगुनी रु तमोगुनी, जिनकैं धन मद जौर॥
निर्दय घातक जीव जें, अतिहिं अग्यांन कठौर॥२६॥
ब्रह्म रूप जड भरत जू, है साष्यात सुढार॥
जिन्हकौं जब मारन लगै, पूरन कुमति प्रकार॥२७॥
ब्रह्म तेज तैं जरन लग्यौ, जबै भवांनीअंग॥
तब प्रतिमा मधि तैं निकसि, धारैं क्रोध उतंग॥२८॥
भौह चढाय पसारि मुष, करत जु हासि कुघाटि॥
उन्हहीं की तरवारि लैं, डारि सूद्र सिर काटि॥२९॥
उन्हसूद्रन कौ काटि सिर, पिय रतग कनि समेत॥
नाचि सूद्र सिर गेंद ज्यौं, भई उछारि सुदेत॥३०॥

करै अपराध बडन कौ, सौ अैसौ फल पाय॥
प्रभु तौ नित प्रति करत है, पूरन भक्त सहाय॥३१॥
जिन्ह तन मन अभिमांन नहिं, सबकैंहिं मित्र अद्रोह॥
जिन्हकी रछया करत है, प्रभु कौ चक्र अछोह॥३२॥
चरन सरन प्रभु कै रहै, सदा परम जे साध॥
अचिरज नांहिं जु नास है, कीनैं जिन्ह अपराध॥३३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽध्यायः ॥

(जड भरत और रहूगन की भेंट)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - सुक कहै रहुगन सिंधु सौ, बीर देस कौ राय॥
इक्षुमती सरिता तटहिं, चल्यौ जात मग पाय॥१॥
कंध पालकी लैंन जहँ, चाह्यौ यैक कहार॥
ठाढै लषि जड भरत जू, पकरि लियै तहिं बार॥२॥
मोटै ताजै जांनिं कैं, धरी पालकी कंध॥
चलत भयै जड भरत जू, जिनकी प्रभु सौ संध॥३॥
चींटीहूं न मरै कोउ, तातैं दया प्रकार॥
आसपास दैषत चलै, यैक तीर कैं ढार॥४॥
तातैं टेढी पालकी, होत भई तिहुं बार॥
कहत भयौ राजा तबै, आछैं चलौ कहार॥५॥
बौलत भए कहार डरि, सुनकैं बचन नृपाल॥
हम्ह तौं आछैं चलत इह, नवौ चलत बैचाल॥६॥
इह सुनि नृपति बिचार किय, संगी अैक कुढंग॥
तातैं दूषन सबनि कौं, लग्यौ पाप तिहँ संग॥७॥
यौं बिचारि बोल्यौ नृपति, देषि भरत जू ओर॥
इन्हकौं द्विज जांनै नांहिं, यै तौं छिपै सजोर॥८॥
छिपी राष मैं अग्नि ज्यौं, एहू छिपै फिरंत॥
इन्हकौं कौउ जांनत नहिं, प्रांनी मायावंत॥९॥
हेभाई तू अति लट्यौ, ज्यौं बारुन मद अंध॥
अरु चाल्यौ बहु दूरि लौं, धरैं पालकी कंध॥१०॥

बउत बार भइ तोहि अब, ताजौ नाहिं सरीर॥
हाड इकौ रे बृद्ध है, इकलौ कौ नहिं भीर॥११॥
बिंग बचन बौलत भयौ, अैसौं नृपति अजांन॥
प्रकृति रचित इनकैं बिषै, इन्हकै नहिं अभिमांन॥१२॥
तातैं ए जड भरत जू, बोलै मुष कछु नांहिं॥
बैसी ही बिधि पालकी, लियैं चलैं उहिं ठांहिं॥१३॥
फिरि टेढी भइ पालकी, करि नृप बोल्यौ रीस॥
म्हैं भर्त्ता तू मूरष मो, आग्या धरत न सीस॥१४॥
तू जीवत ही है मर्यौ, अब दैहूं तुहि दंड॥
सावधांन सूधौ जबै, तू ह्वै हैं बुधि षंड॥१५॥
राज गर्ब सौ नृपति यौं, आपहिं जांनि प्रबीन॥
ब्रह्म भरत जू की बिनां, षबरि अवग्याहुँ कीन॥१६॥

॥ ब्राह्मण उबाच॥

तब बोलै जड भरत जू, है नृप मुहि इह ग्यांन॥
बौझ पालकी मार्ग हूं, सब मिथ्या उनमांन॥१७॥
अरु नहिं मोटौ लट्यौ म्हैं, सब माया बिबहार॥
अग्यांनी जु मांनत सदा, साचौ ही संसार॥१८॥
लटनौ मौटौ हौनु मद, ब्रद्ध अवस्था बास॥
ब्याधि कलह निद्रा ईछा, क्रोध भूष पुनि प्यास॥१९॥
मोह सोक अहंकार ए, लगै सरीरहिं जांनि॥
मोकौं लागत नांहिंनै, प्रभु आछे उनमांनि॥२०॥
अरु सरीर तौ जियत ही, है इह म्रतक समांन॥
याम्ह चाकर स्वामि कोउ, निश्चै नांहिं निदांन॥२१॥
साहिब चाकर कौं इहां, झूठौ जग जंजाल॥
तातैं हूं सोई करूं, जो तू करै कृपाल॥२२॥
म्हैं तौ मत्त जड बावरौ,म्हैरो कियैं इलाज॥
कौंनु सिद्धि ह्वै हैं तुम्हहिं, निज चित समझहुँ राज॥२३॥
ज्यौं पीसै कौ पीसबौ, तौ कछु लाभ न पाय॥
जइसै कियै इलाज मो, तू का लैहै रांय॥२४॥

॥ श्री सुक उबाच॥

अैसी बिधि जडभरत जू, कहिकैं बचन रसाल॥
करत भोग प्रारब्ध कौ, लियैं चलै सुषपाल॥२५॥
बचन कहै जड भरत जू, सुनै रहूगन राय॥
डरपि पालकी तैं उतरि, बोल्यौ परिकैं पाय॥२६॥

तुम्हकौं हौं जांनत नहौं, छिमा करहुं मो पाप॥
धरे जनैऊ बिप्र हौ, कहँ तैं आयै आप॥२७॥
इंद्र बज्र सिव सूल अरु, जमकौं दंड सत्रास॥
रबि कुबेर ससि बह्नि पवन, सस्त्र जितैक प्रकास॥२८॥
जिन तैं हूं नांहिंन डरत, इह मांनहु इतबार॥
ब्राह्मन कै अपमांन तैं, हूं डरपत निरधार॥२९॥
बिप्र रूप हौ तुम्ह कौउ, म्हैं समझी मनमांहिं॥
बचन तुम्हारे ग्यांन कै, समझि सकत हम्ह नांहिं॥३०॥
कपिल देव जोगेस पैं, लैंन ग्यांन सुष सार॥
जात हुतौ हूं चाहि करि, वांछि सरन करतार॥३१॥
कपिल देव सोई कहूं, छिपै फिरत हौ आप॥
अधिक अंध बुद्धि म्हैं कहँ, जानौं तुम्ह परताप॥३२॥
म्हैं तौ इह जांनत कि तुम्ह, लियैं पालकी जात॥
मारग जग ब्यौहार कौ, जांनत साच बिष्यात॥३३॥
अै संसार जांह लगै, है बिहार सति सोय॥
बिनां कलस जल ल्यायबौ, कइसैं हीं नहिं होय॥३४॥
अगनि लगै ज्यौं पात्र कौं, जल तातौ ह्वै जाय॥
पुनि जासौं ह्वै कैं तपत, चांवरहुँ रंधि आय॥३५॥
पुनि इंद्रिय अंतहकरन, देह समंध प्रभाय॥
आत्माहुँ कौं लागत है, सुष दुष औसर पाय॥३६॥
करनहार ईछा नृपति, परजा कौं सब भाय॥
बडौ धर्म नृपकौं इही, प्रभू प्रसंनता पाय॥३७॥
म्हैं तो जांनत हौं इही, समझत कछू न और॥
करी अवग्यांहु रावरी, राज गर्ब कैं जोर॥३८॥
करहुँ आप मो परि क्रपा, छिमा करहुँ अपराध॥
जांसौ म्हैरै पाप कौ, होय अबैं ज्यूं बाध॥३९॥
कहूं बात कौ रावरै, तौ नांहिंन अहंकार॥
पै हौंही हम्ह सै न सट, तुव अवग्यां अनुसार॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते दसमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ औकादसोऽध्यायः ॥

(राजा रहूगण को भरतजी द्वारा उपदेश)

॥ जड भरत उबाच ॥

दोहा - बोलै श्री जड भरत जू, नृप तू पंडित नांहिं ॥
अरु पंडितन कें सै करत, बाद बचन इहिं ठांहिं ॥ १ ॥
पंडित आतम तत्व कौ, जे कौ जांनन हार ॥
बै कबहूं मांनत नाहिं, सत्य जक्त बिबहार ॥ २ ॥
बेदनि गृहस्थनि कौं कह्यौ, जिग्यादिक सबै कर्म ॥
ताहू मैं कछु तत्व नहिं, कह्यौ न उत्तम धर्म ॥ ३ ॥
जो सुष दुष संसार कै, झूठे स्वप्न समांन ॥
नहिं जांनत जिहिं होत नहिं, बेद बचन कौ ग्यांन ॥ ४ ॥
त्रगुन जुक्त जबलौं मनुष्य, इहै बीच संसार ॥
बुरे कर्म तबलौं करत, मन इंद्री कैं ढार ॥ ५ ॥
रूप बासनां मन इहै, रह्यौ बिषै मधि लागि ॥
माया कै तिहुँ गुननि किय, चंचल याहि अथागि ॥ ६ ॥
कर्म करत है इह सबै, मनहीं बउत प्रकार ॥
होत अनैंक सरीर या, जीवहिं तिहिं अनुसार ॥ ७ ॥
सुष दुष मन कै संग सौं, लगै जीवकौं जांनि ॥
तातैं बंध रु मुक्त कौ, मनहीं कारन मांनि ॥ ८ ॥
मन बिषैन मैं जब लगै, तब दुष प्रापति होत ॥
जुदौ भयैं तिहुँ गुनन तैं, है कल्यांन उदोत ॥ ९ ॥
ज्यूं घृत बाती संग सौं, दीपग अग्नि कहाय ॥
धुवां स्यांमता भेद दुहुँ, ताही सौं प्रगटाय ॥ १० ॥
अरु केवल ही अग्नि मैं, नांहिंन कछू बिकार ॥
सब भांतिन तैं जांनियैं, संग दोष निरधार ॥ ११ ॥
ज्यौंही मनहूं प्रकृति कै, गुण कर्मनहिं संजोग ॥
भजत अनैकनि बृतनि कौं, भूलि सुबोध प्रयोग ॥ १२ ॥
पुनि माया कै कर्म सौं, जब मन न्यारौ होय ॥
तब इहि काहू बृतनि कौं, भजै नांहिं रुचि गोय ॥ १३ ॥
क्रिया कारण है पांच रु, पांचहिं ग्यांनाकार ॥
इक अहं य ग्यारह तरह, मनकी बृित निरधार ॥ १४ ॥
पंच सुतनमात्रा अबर, पंच सुक्ष्म सरीर ॥
ए मन बृत की बिषै है, समझत पुरुष सधीर ॥ १५ ॥

सब्द रूप रस गंध परस, अैहै पंच प्रकार॥
ग्यांनाकार जु ब्रित्यनि की, अै है बिषै उदार॥१६॥
करनौं कारज बिसर्ग रति, गति मुष बौलन बैंन॥
कर्माकार जू ब्रितनि कै, एहै कर्म सुषैंन॥१७॥
अहंताहुँ ममताहुं दुहुँ, कहियत बिषै बिकार॥
धरत जीव तन मैं अहं, सोउ विषै अनुसार॥१८॥
विषय कर्म परिनाम पुनि, काल अद्रिष्ट संस्कार॥
मन मैंइन्ह कारनन सौं, उपजत बृति अपार॥१९॥
सौ निश्चै झूठी सबै, क्यूं हूं सांची नांहिं॥
प्रगटत जागतहूँ समैं, अरु स्वपनै हूं मांहिं॥२०॥
सुषुप्ति अवस्था कैं समैं, बृति रहत है जु नांहिं॥
व्यापक सब ठां पवन ज्यूं, प्रभु ब्यापक सब मांहिं॥२१॥
या सरीर मैं जीव कौं, प्रेरक जांनि निदांन॥
बासुदैव ईस्वर प्रभू, नारायन भगवांन॥२२॥
स्थावर जंगम मैं पवन, ब्यापक आतम रूप॥
याही बिधि भगवांन प्रभु, ब्यापक जगत सरूप॥२३॥
जबलौं प्रांनी ग्यांन करि, तजि माया अनुसार॥
इन्द्रीय जीति न जांनहीं, आतम तत्व जु उदार॥२४॥
तब तांई इहि भ्रमत है, जीव बीच संसार॥
बिन प्रभु आश्रै होत नहिं, भव सागर सौं पार॥२५॥
इहीं मन आतम तत्व कौ, जांहू रूप उपाधि॥
तीन ताप संसार की, तिन्हकौ मूल अगाधि॥२६॥
राग बैर ममता अहं, सोक मोह रु अग्यांन॥
इन्हकौं इहि मन मूल है, आतम अंतरवांन॥२७॥
अैसौं जांनत नांहिनैं, मनकौं जब लग आप॥
तबतांई या जक्त बिच, भ्रमत जु रहत सदाप॥२८॥
मन जोरावर सत्रुहिं बढि, रह्यौ धरी अभिमांन॥
भूलि रह्यौ बिच बिषै कै, ज्यू गज मत्त अग्यांन॥२९॥
हरि गुरु चरन उपासनां, बडौ सस्त्र निरधार॥
जासौं हे राजा अबैं, तू या मन कौं मार॥३०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते
अैकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(रहूगण का प्रश्न और भरतजी द्वारा समाधान)

॥ रहूगण उबाच ॥

दोहा - रहूगन बोल्यौ जिन नित, न धर्यौ कारन पाय॥
आत्मरूप कौ ग्यांन उर, द्विज अवधूत सुभाय॥ १ ॥
नमसकार है जिनहिं मो, अति सनेह संजुक्त॥
धन्य धन्य तै सत पुरस, प्रकृति गुनन तैं रुक्त॥ २ ॥
ज्वर करिकैं संतप्त कौं, ज्यूं ग्रीषम कै मांहिं॥
औषद सीतल नीर ही, सौ सबै कष्ट मिटांहिं॥ ३ ॥
जइसैं ही मो देह मैं, अहि रूपी अभिमांन॥
ग्यान द्रिष्टि दिय नष्ट करि, बढयौ रोग अग्यांन॥ ४ ॥
ताहि बचन तुम्ह अमृत सै, लागत औषदि भाय॥
पाछैं निज संदेह हौं, दैहौं फेरि जताय॥ ५ ॥
बचन ग्यांन कै तुम्ह अबैं, कहै सु समझ्यौ हौंन॥
म्हैं समझौं जइसैं कहौ, बहुयौं भेद सुठौंन॥ ६ ॥
सब क्रियान कौं फल दियौ, तुम्ह झूठौ ठहराय॥
यामैं मो मनभ्रमत है, भेद न जान्यौ जाय॥ ७ ॥

॥ जड भरत उबाच ॥

फिरि बोलै जड भरत जू, राजा सौं तिहं बार॥
या सरीर कौ जांनियैं, निश्चै प्रथी बिकार॥ ८ ॥
इहै चलत बैठत उठत, इतनौं ही अधिकाय॥
है प्रिथवी कौ रूप ही, पाहन कै अनुभाय॥ ९ ॥
तिहं सरीर मैं अंग बहु, सौ म्हैं लीनैं बोझ॥
चल्यौ जात हौं समझि कैं, राह चलन कौं सोझ॥ १० ॥
इहै काठ की पालकी, है लषियत मो कंध॥
तू तांमैं ह्वै कैं नृपति, बैठयौ गर्ब समंध॥ ११ ॥
पकरि कहारन पालकी, तर दै तू जु चलाय॥
कहियत पालक प्रजा कौं, तउ तुहि दया न आय॥ १२ ॥
हम्ह तौ अपनी देह अरु, नृप तेरीहूं देह॥
जांनत हैं जुत पालकी, भुव विकार अवरेह॥ १३ ॥
सब उपजत है प्रिथ्वी तैं, अरु बिच प्रिथी समाय॥
प्रिथी रची परिमांन परि, मांन रु अविद्या भाय॥ १४ ॥
लघु दीरघ मोटौ लट्यौ, जड चेतन अनुसार॥
सब मायाही कौ रच्यौ, होत जगत बिबहार॥ १५ ॥

तातैं ग्यांन सरूप जो, पूर्न ब्रह्म भगवांन॥
बासुदेव जासौं कहत, है सोइ सत्य निदांन॥१६॥
जिग्य दांन तप रु इष्ट पुनि, बेद अध्यैन सुभाय॥
इन्हहूं तैं उपजत नांहिं, तत्व ग्यांन जु सुषदाय॥१७॥
साधु चरन रज सेव सौं, प्रगटत ग्यांन उदार॥
जिन्ह संगति सुनि हरि कथा, बढै भक्ति करतार॥१८॥
म्हैं पहलैं नृप भरत हौ, तपस्यां किय अधिकाय॥
फेरि हरिन कै संग सौं, जनम हरिन कौ पाय॥१९॥
अबै भयौ जड भरत हौं, जड सु दसा अवरोहि॥
प्रभु सेवा परताप सौं, पूर्ब जनम सुधि मोहि॥२०॥
सबतैं न्यारौ फिरत हौं, अब म्हैं डर अनुसार॥
काहू मैं मन आपनौं, लागत नहिं निरधार॥२१॥
तातैं द्रिढ ह्वै पकरिकैं, साधु संग तरवारि॥
काटि कर्म हरि गुन सुनत, कहत होत भव पारि॥२२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादसोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदसोऽध्यायः ॥

(भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय निवारण)

॥ जड भरत ऊबाच ॥

दोहा - कहत इहै जड भरत जू, जीव समूह अपार॥
मग प्रवृत्ति मैंहिं प्रकृति करि, लागि रह्यौ निरधार॥ १ ॥
माया कैं तिहुं गुनन सौं, तीन तरह कैं कर्म॥
सब प्रांनी गन करत हैं, बिन समझैं सुभ मर्म॥ २ ॥
व्यापारीन समूह ज्यौं, चल्यौ जात बन ठांहिं॥
बन संसार सरूप मैं, त्यूहीं जीव भ्रमांहिं॥ ३ ॥
अरु जिहँ वन मैं सुष नांहिं, लूट संग बहु चोर॥
स्यार तांह लै जात हैं, याकौं पकरि सजोर॥ ४ ॥
जिहं बन मैं त्रिन लता बहु, काटत मंछर डांस॥
कबहुँ नगर गंधर्व या, जीवहिं परत सभास॥ ५ ॥
अरु उलमुक आकार इह, देषत कबहुँ पिसाच॥
सुबरन कै आकार लषि, लग्यौ गयौ चित राच॥ ६ ॥

बहि बन इत उत फिरत मैं, आंधी कबहूँ चलाय॥
रज पैठत याकै द्रिगनि, दिसा नांहिं दर साय॥ ७॥
जीव दिषाइ देत नांहिं, अैसैं झिल्लीहुँ नांम॥
अरु उलू बोलत लागत, बुरे याहि उहिं ठांम॥ ८॥
भूषौ ह्वै जब करत तरु, अधमनि आश्रय जाय॥
मृग मरीचिका मैं कबहुँ, दौरत जल भ्रम पाय॥ ९॥
कबहुँ नदी बिनु नीर की, जात नीर की आस॥
चढत कूल गिर परत है, अंग भंग सह त्रास॥ १०॥
अरु कबहूं दावाग्नि मधि, दग्ध हौत हैं गात॥
कबहूं यांके प्रांन हरि, जछि करत उतपात॥ ११॥
सूरवीर लूटत कबहुं, जासौं ह्वै दुषद्वंद॥
कबहूँ नगर गंधर्व मैं, पैठि करत आनंद॥ १२॥
कबहुं चढत नग गडत हैं, कांटै कंकर पाय॥
कबहुं हृदै की अग्नि सौं, पीडन ह्वै अधिकाय॥ १३॥
तब इह अपनैं जनन सौं, क्रोध करत झुंझलाय॥
निगलि जात अजगर कबहुं, तब बेसुधि ह्वै जाय॥ १४॥
कबहूं काटत सांप जब, बिष चढि होय अचेत॥
अंध कूप कैं बिच यहै, सोवत पर्यौ कुहेत॥ १५॥
कबहूं बन मैं सहत कौं, ढूंढत फिरत अग्यांन॥
तबै सहत की मक्षिका, काटि सुषात निदांन॥ १६॥
अरु जो कबहुं कदाचि इह, सहत लेत है पाय॥
तौ कुहुँ जोरावर अबर, या पैलैहि छिनाय॥ १७॥
फिरि वापैं तै और कुहुँ, लै छिनाय निरधार॥
लेत देत मैं इह करत, किहुं सौं कलह प्रकार॥ १८॥
सीत धांम बरिषा पवन, यनकौं कछू इलाज॥
इह नांहिंन कर सकत है, उद्यम हीन अकाज॥ १९॥
याकौ धन घटि जात जो, कबहूँ औसर पाय॥
तबै आसन सज्या सथल, सबहिं बिहार नसाय॥ २०॥
बस्तु पराई जब इहै, लैंन चहै चित आप॥
तबै अधिक अपमांन कौ, प्राप्त होत बढि ताप॥ २१॥
देत लेत धन किहुं समैं, बहुतन सौं बंधि बैर॥
होई जातह मृतक सम, महा दुष्य कै घैर॥ २२॥
जो कौऊ मरि जात तिन, संग छोडि इह जात॥
अरु जे उपजत है कौउ, जिन संग रहन सुहात॥ २३॥

अैसें इह बन मैं चल्यौ, जात न फिरत पछाय॥
भ्रमत भ्रमत बेहाल ह्वै, माया गुननि भुलाय॥२४॥
जे सिपाह दिगजनन कौं, जीतत हैं धरि धाय॥
प्रथवी काजैं जुद्ध करि, षेत परत है आय॥२५॥
तैऊ या वन पार कौं, पहुंचि सकत है नांहिं॥
संन्यासी सज्जन कौउ, या बन पार लघांहिं॥२६॥
कबहूं लपटि लतांन सौं, रहै इहै बन मांहिं॥
सब्द सुनत पंछीन कौ, मोहित ह्वै मन मांहिं॥२७॥
कबहूं सिंघ कौ सब्द सुनि, हृदै अधिक भय आंनिं॥
गीध कंक बग पछिन सौं, करत प्रीति पहचांनिं॥२८॥
बे पंछी यांकौं जबै, देत दगा अनहेत॥
तब हंसन कैं पास इह, जाय सरन जिन लेत॥२९॥
पैं फिरि हंस सुभाव सुभ, भलौ न लागत याहि॥
तब जाय बंदरांन पैं, उन्हकौं संग सुहाहि॥३०॥
इहहुं संग बंदरांन कैं, क्रीडा करत कुभाय॥
करत प्रीति नारीन सौं, निज मृतु सुधि बिसराय॥३१॥
कबहूं बन कैं बृछिन मैं, तिय जुत करत बिहार॥
महा अलप सुषकौं इहै, जांनत अधिक प्रकार॥३२॥
कबहूं गज सौं डरपि गिर, परत कंदरा मांहिं॥
लता पकरि तब बचि रहत, जतन जतन उहिं ठांहिं॥३३॥
षेवत अैसै दुषन कौं, कबहूं विपति छुडाय॥
तौहुं फिरि बा संग मैं, इहै चल्यौ ही जाय॥३४॥
तातैं रहुगन हे नृपति, प्रकृति भेद तू षोय॥
दया धारि चित मांहिं इन्ह, तू आसक्त न होय॥३५॥
सेवा करि भगवांन की, ग्यांन षडग कर धारि॥
तू या बन कैं पार कौं, पहुँचि ताप तिहुँ ढारि॥३६॥

॥ राजोबाच॥

रहुगन बोल्यौ मनुष कौ, धन्य जनम है एह॥
तामैं संगति साधकी, प्रापति होत अछेह॥३७॥
बह अमरनहूँ कौं जनम, कछू कांम कौ नांहिं॥
तामैं संगति साध की, प्रापति ह्वै न सुठांहिं॥३८॥
तुम्ह पदरज सेवन कियैं, उर उपजत हरि भक्ति॥
ताकौं अचिरज नांहिं कछु, धन्य तुम्हारी सक्ति॥३९॥
दौय घरी कैं मिलन मैं, म्हेरौ मिट्यौ अग्यांन॥
भयौ रावरी क्रिपा तैं, मो हिय सुद्ध सथांन॥४०॥

बाल तरुन द्विज बृद्ध कौं, म्हेरौ है परिनांम ॥
जे तुम्ह सै अवधूत जन, फिरत सदा भुव ठांम ॥ ४१ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

श्री सुकहिं कहत नृपति सौं, सुनि तू महा सुजांन ॥
अैसी बिधि जड भरत जू, दिय रहुगन कौ ग्यांन ॥ ४२ ॥
करत भयौ जड भरत कौं, रहुगन नृपति प्रनांम ॥
राजा भयौ क्रतार्थ जड, भरत फिरत भुवठांम ॥ ४३ ॥
रहुगन राजा कौ सबै, दूरि भयौ जु अग्यांन ॥
हरि भक्तननि कौ संग सुभ, है अैसैं उनमांन ॥ ४४ ॥

॥ राजा उबाच ॥

इह सुनिकैं बोलत भयौ, फेरि परीछित राय ॥
हे सुक तुम्ह बन कौं अहै, बर्नन कियौ छिपाय ॥ ४५ ॥
सो हम्ह कछु समझै नांहिं, चित्त संदेह सुभाय ॥
तातैं फिरि आछैं कहौ, कथा अर्थ समझाय ॥ ४६ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थदसोऽध्यायः ॥

(भवाटवी का स्पष्टीकरण)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - श्री सुक बोलै हे नृपति, यै संसारी जीव ॥
देही कौं मांनत रहै, आतम तत्व सुष सींव ॥ १ ॥
तीन तत्व जे प्रकृति कै, आदि गुनहिं बसि होय ॥
कर्म अनैकनि कहत हैं, तिन्ह गनती नहिं कोय ॥ २ ॥
तासौं पावत जनम बहु, जग मधि बारंबार ॥
भोग करत इंद्रीन सौं, सुष दुष कौ निरधार ॥ ३ ॥
जासौं रहत पर्यौ यहै, मग प्रवर्त्ति कै मांहिं ॥
जांनत नहिं प्रभू तत्व कौं, तिहं प्रकास सब ठांहिं ॥ ४ ॥
प्रभु की माया सौं यहै, जीव समूह बिष्यात ॥
बन संसार सरूप मैं, चल्यौ बनक ज्यौं जात ॥ ५ ॥
सौं पाछैं नांहिंन फिरत, इहि काहू अनुसार ॥
हरि गुर सैवा करत नहिं, जासौं पउंचत पार ॥ ६ ॥

इंद्री ही जहँ चोर है, संसारी बन ठौर॥
तै लूटत है धर्म धन, निज निज विषै सजोर॥७॥
धर्म रूप धन जो बहै, दरसन सपरस कर्न॥
आस्वादन अवघ्राण अरु, संकलप निश्चै धर्न॥८॥
इन्ह करिकैं उपभोग जुत, कुबुधी मनुष अजांन॥
ज्यौं नायक कौं लूटत इहँ, इंद्री चोर समांन॥९॥
तिय सुत ही या बन विषैं, जानहुं भिडहा स्यार॥
तैं सब कछु हरलेत हैं, पावै तैं निरधार॥१०॥
धन बरसन मैं त्रिन लता, षेत बीच बहु होत॥
ज्यौंही गृहस्थाश्रम विषैं, कर्म अनैक उदोत॥११॥
तामैं दुर्जन जन सुही, काटत मछर डाँस॥
मनुष लौक गंधर्व पुर, झूठौ सत्य सभास॥१२॥
मृगतृष्णा सोइ बिषै, दौरत तिन्हकैं चाय॥
बन पिसाच उलमुक समझि, धन सुबर्न सुषदाय॥१३॥
उलमुक हौत पिसाच बन, अग्नि रूप दरसाय॥
धोषै सुं जिहँ निकट कोउ, जाय ताहि लैं षाय॥१४॥
जइसी भांति सुबर्न की, उलमुष प्रगट पिसाच॥
प्रांनी मारे जात हैं, तिहं लालच मधि राच॥१५॥
बस्तु अनैंकनि कैं लीयैं, इह प्रांनी कबहूंकि॥
इत उत दोर्यौ फिरत है, प्रभू भक्ति सुष चूकि॥१६॥
नारी रजहिं समूह है, जांकै मिलनैं मांहिं॥
धर्म अधर्म बिचार कछु, सूझि परत है नांहिं॥१७॥
कौयक समैं विषयांन कि, भई बिफलता आय॥
मांनि देह अभिमांन मृग, तृष्णा भोग निधाय॥१८॥
सम झिल्ली उलून कैं जू, सत्रु कहत दुषद बैंन॥
तांसौं श्रवन हिर्दौ दुहुं, होत सु दुषित अचैंन॥१९॥
अरु कबहूँ जब पुण्य फल, होत जक्त मधि हीन॥
बुरै बृछ सम जननि कैं, ह्वै आश्रय आधीन॥२०॥
बिनां नीर की नदी ज्यौं, कछू कांम की नांहिं॥
जइसै प्रापति हौत है, मग पाषंडहीं मांहिं॥२१॥
जब कइसैं ही मिलत नहिं, कबहूं भौजन याहि॥
तब इहि अपनैंहीनि सौं, कलह करत बिन चाहि॥२२॥
गृह दावाग्नि समांन मधि, बैठि इह किहूँ बार॥
सोक ज्वाल मधि बरत है, महा दुषित निरद्धार॥२३॥

किहूं समैं नृप मृत्यु ही, जांनहु जछि सजौर॥
याकै प्रांन समांन धन, सौ हरि लेत कठौर॥२४॥
कहूं मनोरथ सौं पिता, पुत्रादिकनिहुं निहार॥
मिलि कैं इक छिन मात्र सुष, मांनत है निरद्धार॥२५॥
कबहुं गृहस्थाश्रम विषै, कियौं चहत बड कर्म॥
चाहत पर्बत चढन सोइ, समझि लीजियै मर्म॥२६॥
बड़ै कर्म कै करन मैं, बिघन करत जो कौय॥
सोई कांटे कांकरी, पायन बीचि गडौय॥२७॥
कबहुं हदै की अग्नि सौं, जरत मनुष बिन बौध॥
तब कुटुंब पर करत है, अनलेषैही क्रौध॥२८॥
अजगर निद्राही कबहूँ, निगलि जात है यांहिं॥
तब सोवत है मृतक सम, रहत कछू सुधि नांहिं॥२९॥
अरु याकौं काहू समैं, दुर्ज्जन सर्प्प कुचार॥
कहत दुर्वचन सोई है, काटि षांन अनुसार॥३०॥
नारी द्रब्य काहू समैं, चहत परायौ लैंन॥
सोइ सहत लेबौ गिनौं, लाभ रु पाप अचैंन॥३१॥
पुनि राजा वाही समैं, लेत दंड इहिं पास॥
सहत मक्षिका की सोई, काटि षांन सप्रकास॥३२॥
प्रबृत्ति कर्म संसार मैं, जन्म धरन कौ हेत॥
इही लोक परलोक सब, पंडित जन कहि देत॥३३॥
अरु इह निज प्रिय बस्तु जोइ, पावत किहूं उपाय॥
ताकौं जोरावर जु कोऊ, लैत जु और छिनाय॥३४॥
सीत घांम सौं, त्रिबिधि दुष, तासौं पीडित होय॥
चितहिं चिन्ता अति करत है, प्रभु आश्रय सुष षोय॥३५॥
अरु कबहूं ब्यवहार सौं, लैंन दैंन कै बीच॥
इह किहुँ कौ कछु लै रहत, बैर बंधै तब नीच॥३६॥
राग द्वेस उनमाद भय, सोक मोह अपमांन॥
दुष सुष लोभ त्रिषा क्षुधा, आधि ब्याधिहुँ अग्यांन॥३७॥
जन्म मरन ग्वांनी जरा, इतै उपद्रवहिं भेद॥
मनुष संग लागै रहत, जासौं मिटै न षेद॥३८॥
कबहूं भुजा तियांन कैं, रहत इहै लपटाय॥
सुत पछी बचननि मोहित, ग्यांन बिबेक गमाय॥३९॥
कालचक्र भगवांन कौ, यहै महा बलवांन॥
काटत ब्रह्मादिकनिहूं, कौ आर्बल उनमांन॥४०॥

कालचक्र सम सिंह सौं, कबहूं जीव डराय॥
तबहूं करत न प्रभु भजन, जातैं भय मिटि जाय॥४१॥
बगुला कंक समांन जें, और देवता आहि॥
तिनकौं करत जु भजन इह, मूरषि धरि चित चाहि॥४२॥
यांकौं जब बैं देवता, ठगत मूढ अति जांनिं॥
तबै हंस सम द्विजनि कैं, जात जु निकट निदांनिं॥४३॥
याहि बतावत बै जबै, अदभुत भेद उदार॥
बेद रीति आचार सौं, प्रभु कौं भजन सुढार॥४४॥
सौ यांकौं भावत नांहिं, जांह न मन ठहराय॥
आप सारिसै देषि कैं, हेरि लेत सुषपाय॥४५॥
कर्म सकल क्रत सूद्र जिननि, पेट भरन सौं कांम॥
विषै भोगही लाभ है, बैठत तिन्हहीं ठांम॥४६॥
अपनीं ईछा सौं बांह, करत बिषै कौ भोग॥
भूलि जात है काल भय, मूरषता कैं जोग॥४७॥
इहि लौकहु कै कांम हैं, गृह बृछि जु समांन॥
तातैं बानर सम मनुष, करत बिहार अग्यांन॥४८॥
मृत्यु सरूपी करी सौं, कबहुँ मनुष भय पाय॥
बउत रोग नग कंदरा, मधि गिर परत कुभाय॥४९॥
कबहुँ हौत धन बिनु तबै, मांगत औरनि पास॥
तब यांकौ अपमांन है, लोक करत उपहास॥५०॥
द्रव्य लैंन अरु दैंन मैं, बंध्यौ बैर सबहींन॥
तऊ बासनां प्रथम सौं, त्यागि गहत मति दीन॥५१॥
कबहुं सोक रु कबहुं हरष, करत मार्ग ही मांहिं॥
चल्यौ जात प्रांनी प्रगट, पार सुपावै नांहिं॥५२॥
जोगाभ्यास करै भलैं, लै आश्रम संन्यास॥
सौ या मग कै पार कौं, पहुँचै प्रभु कौं दास॥५३॥
बडै बडै नृप दिगबिजै, करत मरत जुध मांहिं॥
बन संसारी कौ तऊ, पार लहत वै नांहिं॥५४॥
स्वर्ग नर्क हूं जायकैं, फिरि आवै इहिं ठौर॥
बन संसार सरूप बिच, भ्रमत रहत निस भौर॥५५॥
सब प्रथवी नृप भरत कौ, जस गावत इहिं भाय॥
बराबरी नृप भरत की, और नांहिं कौं पाय॥५६॥
ज्यूं बराबरी गरूड की, माषी कर न सकाय॥
त्यूं ही राजा भरत की, समता और न पाय॥५७॥

दुष करि त्यागन जोगि तिय, सुत सुहृद अरु राज॥
मलवत त्यागै वांनहीं, यैक प्रभू सौं काज॥५८॥
जिन तजि सुत अरु राज तिय, प्रभु सौं लगयौ चित्त॥
भक्त न चाहत मुक्ति हूं, कहां राज अरु बित्त॥५९॥
जिग्य रूप नारायन हरि, तुम्हकौं है परिनांम॥
यौं कहिकैं जिन्ह जन्म मृग, पूरन किय निहकांम॥६०॥
जो कौउ राजा भरत कुं, सुनैहुं चरित सुढार॥
स्वर्ग मोछ धन आयु जिन, पूर्न मनोर्थ प्रकार॥६१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थदसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(भरत वंश वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - कहत है श्री सुकदेव जू, सुनहुँ परीछत राय॥
सुमति नांम सुत भरत कै, भयौ प्रगट सुष दाय॥१॥
रिषभ रीत जिन सुत लई, निश्चै करि निरधार॥
पाषंडी कहिहैं कोउ, तिहूं बुधा अवतार॥२॥
अरुवाही नृप सुमति तैं, वृधसैना तिय कुषि॥
नांम देवताजित भयौ, प्रगटि प्रथी मधि मुषि॥३॥
तिया आसुरी तैं भयौ, देवद्युम्न सुत जास॥
धेनुमती तिय तैं भयौ, सुत परमेष्टी जास॥४॥
सुवर्चला तिय तैं भयौ, ताकै पुत्र प्रतीह॥
सौ पूरन ग्यांनी भयौ, प्रभु प्रापति पद लीह॥५॥
तीन पुत्र जू प्रतीह कै, भयै प्रगट बिषयात॥
बडौ पुत्र तिनमैंहुं भयौ, प्रतिहर्ता जु सुभ गात॥६॥
प्रतिहर्ता तैं प्रगट हुवै, गर्भ स्तुति तिय ठांम॥
अज अरु भूमा दोय सुत, महाबली अभिरांम॥७॥
भूमा कै उदगीथ भौ, रिषिकुल्या गर्भाय॥
देवकुल्या हैं पुत्र तिहिं, हुवै प्रस्ताव सुभाय॥८॥
भयौ पुत्र जू प्रस्ताव कै, बिभु नांमा सुषदाय॥
तिया नियुत्सा गर्भ तैं, जिन प्रगटनिता पाय॥९॥

अरु बिभु कै प्रथुषेण सुत, उपजत भयौ सुढार॥
ताकै तिय आकूति तैं, हुव सुत नक्त उदार॥१०॥
द्रुति स्त्री तैं नक्त कै, गज राजा प्रगटाय॥
प्रभु अंसा अवतार जो, धर्म ध्रुता दरसाय॥११॥
नृप गय सबही प्रजा कौं, पालन करत अथाग॥
साधु संग उन पाय कैं, उपजि ग्यांन बैराग॥१२॥
पुनि सरीर कै बीच तैं, दूरि भयौ अभिमांन॥
धर्म रीति सौं प्रथ्वी की, रछा करतहुँ सुजांन॥१३॥
तिनकै चरित बडे जु मिलि, गावत ऐसै तौर॥
भुव रछिक बड धर्म धुरी, नृप गय सम नहिं और॥१४॥
जिहूं राजा कौं दछि की, सुता श्रधा सुभ नांम॥
आदि राज्य अभिषेक किय, सुष निवास अभिरांम॥१५॥
राजा गय कै गुनन सौं, रीझि भलै अनुसार॥
देत भई सब कांमनां, प्रथवी बउंत प्रकार॥१६॥
जिंह नृप कौं सब और नृप, देत भयै बलि भोग॥
अरु बिप्रन दियै पुन्य कौ, छठौ अंस सु प्रयोग॥१७॥
सोमपांन करि मत्त हुवै, इंद्र जिग्य जिहिं मांहिं॥
तिन राजा कियै समर्पित, प्रभुहिं जिग्य फल चांहिं॥१८॥
सौ फल अंगीकार कियै, प्रभु आनंद निवास॥
पूर्न मनोरथ जनन कौ, करत जांनि निज दास॥१९॥
प्रसंन कियै जिहँ प्रभू कौं, प्रसंन होत सब कोय॥
वै हरि गय पैं प्रसंन हुव, त्रिबिधि ताप दिय षोय॥२०॥
तिया गयंती तैं भयै, नृपगय कैं सुत तीन॥
अवरोधन अरु चित्ररथ, सुगति नांम कहि दीन॥२१॥
पुत्र चित्ररथ कै भयौ, वुर्ना तिय कैंउ गर्भ॥
नांम भयौ सम्राट जिहीं, सुनियै नृप गुन अर्भ॥२२॥
तिया उत्कला नांम की, जांकै गर्भ सू वांम॥
प्रगट भयोहुं संम्राट कै, सुत मरीच अभिराम॥२३॥
बिंदुमती तिय तैं भयौ, सुत मरीचि कैं धांम॥
सुनियैं कहत जताय हूं, बिन्दुमांन जिहं नांम॥२४॥
जाकै सरघा तिय बिषै, मधु सुत प्रगटनि पाय॥
मधु कै सुत हुव वीरब्रत, सुमना तियहिं गर्भाय॥२५॥
जाकै भोजा तिय बिषै, दोयहुं पुत्र प्रगटाय॥
मंथु प्रमंथु सुनांम जिन, तुम्ह सौं कहे सुनाय॥२६॥

सत्या तियहि तैं मंथु कै, भौवन हुव अदभुत॥
जांकै स्त्री दूषण तैं, भयौ जू त्वष्टा पूत॥ २७॥
त्वष्टा कै भयौ बिरज सुत, तिय बिरोचना कुष्य॥
भयै हुं बिरज कै पुत्र सत, तिनमैं सतजित मुष्य॥ २८॥
तिया बिषूची गर्भ यै, पुत्र सभै प्रगटाय॥
कन्याहिं इक होती भई, बिरज नृपति कै आय॥ २९॥
बिरज आपनी कीर्त्त सौं, सब कुल मंडित कीन॥
नृप प्रियव्रत कौ बंस इह, हम्ह इहां लौं कहि दीन॥ ३०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचदसोऽध्यायः ॥ १५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(भुवनकोष का वर्णन)

॥ राजोबाच ॥

दोहा - नृप पूछत श्री सुक कहौ, तुम्ह भुवकौ बिसतार॥
बर्नन कीनौं जांह लौं, रबि ससि कौ उजियार॥ १॥
अरु सुनि तुम्ह यौं कह्यौ प्रिय, व्रत रथ चक्र प्रभाय॥
सात द्वीप पुनि सात ही, सामुद्र जु प्रगटाय॥ २॥
तिनकौं करि बिस्तार तुम्ह, आछैं कहौ सुनाय॥
बीच बीच सामुद्र कैं, द्वीप बसै किहँ भाय॥ ३॥
यहै जक्त भगवांन कौ, निश्रै रूप सथूल॥
जगमगाय जग मैं रह्यौ, सबकी जीवन मूल॥ ४॥
याकौं आछैं जांनियैं, तौ मन भलैं प्रभाय॥
सूछम रूप भगवांन कौ, तामैं मन लगि जाय॥ ५॥
तातैं बर्नन जगत कौ, आछैं करहुँ बनाय॥
मो मन कौ संदेह सब, दीजै भलै मिटाय॥ ६॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक बोलै प्रभु प्रकृति सौं, श्रज्यौ सकल संसार॥
सौ अनंत कहि जात नहिं, जाकौ सब बिस्तार॥ ७॥
तातैं हूं संछैप सौं, बर्नन करुं जु बनाय॥
सौ सुनि लीजै नृपति अब, आछैं चित्त लगाय॥ ८॥
सात द्वीप कै बीच या, जंबू द्वीप सथांन॥
कमल पत्र सौं गोल है, जोजन लाष प्रमांन॥ ९॥

जोजन नव नव सहस कैं, हैं यामैं नव षंड ॥
मरजादा पर्बत जांह, सोभित आठ प्रचंड ॥ १० ॥
नवषंड के बीची मैं, षंड इलाब्रत जांनि ॥
जाके बीच सुमेर गिरि, लष जोजन उनमांनि ॥ ११ ॥
जौजन षोडस सहस गिरि, गड्यौ प्रथ्वी कै मांहिं ॥
जौजन चौरासी सहस, ऊपरि है उहिं ठांहिं ॥ १२ ॥
जौजन सौरह सहस नग, पतरौ तरहट ठौर ॥
जोजन सहस बत्तीस सह, चौडौ ऊपर और ॥ १३ ॥
षंड इलाब्रत तैं सुनहुँ, उत्तर दिसा की ओर ॥
नील स्वेत श्रृंगवांन है, पर्बत तीन सुतौर ॥ १४ ॥
त्रय रमिक कुरु हिरनमय, इन्ह तिहु षंड मंझार ॥
मर्जादा पर्बत तिहूँ, सौभित भलै प्रकार ॥ १५ ॥
इन्ह तीनौं पर्बतन मधि, षंड बसत है तीन ॥
जिन्ह षंडन कै नांम तौ, पहलैं ही कहि दीन ॥ १६ ॥
नग तिहुँ दुहुँ दिस तैं लगै, पारसिंधु सौं जाय ॥
जौजन द्वै द्वै सहस कै, तिहुँ पर्बत चौडाय ॥ १७ ॥
अरु इक इक तैं दस गुनै, पर्बत तिहुँ लंबाय ॥
समझि लैहुं तातैं चतुर, हम्ह जो कह्यौ सुनाय ॥ १८ ॥
षंड इलाब्रत कैं दछिन, औरैंपर्बत तीन ॥
हेमकुट निषध हिमालय, कहन नांम ए कीन ॥ १९ ॥
ऊंचै जोजन सहस दस, सौभित तिहूं पहार ॥
चौड़े जोजन सहस द्वै, दीरघ नग निरधार ॥ २० ॥
तिन्ह बिच भारत किंपुरुष, अरु हरिवरष जु षंड ॥
तिहुं षंडनहुं कैं तिहुंनग, हैं मरजादा मंड ॥ २१ ॥
सुनहुँ इलाब्रत षंड तैं, पूर्ब पछिम की और ॥
माल्यवांन गंध मादन, दुहुँ पर्बत लहत सुतौर ॥ २२ ॥
तैहिं नग नील निषिध सौं, मिलि जु रहे है जाय ॥
केतुमाल रु भद्रास्व दुहुँ, तिन बिच षंड बसाय ॥ २३ ॥
इन्ह दुहुँ षंडनहिं कै दुहुं, है मरजाद पहार ॥
अरु हूं और हुं कहत जौ, सुनियै प्रथी प्रकार ॥ २४ ॥
मंदर कुमद सुपारस रु, मंदर मेरु सुढार ॥
ऊंचै जोजन सहस दस, ऐहैं चार पहार ॥ २५ ॥
जे सुमेरु गिरि कै लसत, आसपास चहुँ ओर ॥
जामुनि आंब कदंब बट, तरु चहुं चहुं नग ठोर ॥ २६ ॥

ग्यारह सैह जौजन चहुं, तरु ऊंचै अनुसार॥
इतनैं हीं बिसतार है, चहुं तरु ऊपरि डार॥ २७॥
इक इक सत जौजन चहू, षडे बृछि निरधार॥
मानौं पर्बत की धुजा, सोभित भलैं प्रकार॥ २८॥
अरु च्यारौं परबतन पैं, सुभग सरोवर च्यार॥
दूध मधू जल ऊष रस, जिनमैं भरे सुढार॥ २९॥
जोग सिद्धि जिहिं पांन सौं, प्राप्त सुरन कौं होत॥
चौडे वूंडे अति लसत, सरवर चहूं उदोत॥ ३०॥
बाग चारि तहँ सुरनि कै, अति अदभुत अभिरांम॥
तांह बिहार सुकरत नित, लियैं संग निज वांम॥ ३१॥
बन नंदन पुनि चईत्ररथ, भद्रसर्वतो जांनि॥
बैभ्राजक चव नांम इह, हम्ह कहि दए बषांनि॥ ३२॥
जोजन ग्यारह सौं सुतग, बृछि आंब कौ ऊंच॥
है मंदर गिर ऊपरैं, पंछी की न पहूंच॥ ३३॥
जिहिं बृछि फल नग सिषर सम, स्वाद जु सुधा समांन॥
तैं फल ऊपर तैं गिरत, फूटि जात सुनिदांन॥ ३४॥
जिनकै रस की है नदी, सौ अरुणोदा नांम॥
मंदर गिरि तर बहत दिस, पूर्ब इलाब्रत ठांम॥ ३५॥
सषी भवानी की जांह, अरु जछिनहुं की नारि॥
भोग करत जासौं भलैं, अति उमंग चित धारि॥ ३६॥
जासौ अंग सुगंध जिन, दस जौजन महकाय॥
उहिं सुगंध सौं होत है, चित्त प्रसंन अधिकाय॥ ३७॥
यौंही मंदर मेर गिरि, ऊपरि जांमुन बृछि॥
जाकै फल गिर पैं गिरत, करी समांन प्रतछि॥ ३८॥
अरु जिन्ह की गुठली सु लघु, रस की नदी रसाल॥
षंड इलाब्रत कैं दछिन, ओरै बहत सुढाल॥ ३९॥
सरिता रस संजोग सौं, मृतका दुहुँ तट ठांम॥
सूर्ज पवन के लगैं है, कनक जांबुनद नांम॥ ४०॥
जाकै अदभुत आभरन, भांति अनैक बनाय॥
पहरत अपसर देवता, महामोद मन पाय॥ ४१॥
नगहिं सुपारस्व ऊपरैं, है कदंब तरु यैक॥
जिहँ उनमांन कह्यौ प्रथम, समझहुँ सहित बिबैक॥ ४२॥
तातैं धारा पंचमधि, चौडी पांचहिं ब्यांम॥
परत उतंग सुजोर अति, नग जु सुपार सुठांम॥ ४३॥

षंड इलाब्रत तैं पछिम, और बहत बैधार॥
जिन्ह भौजन तैं मुष सुगंध, सत जौजन बिस्तार॥ ४४॥
अरु बहिं परबत कुमद पर, बट सतवल्लस नांम॥
तातैं कितिकहिं बस्तु नित, प्रगट होत अभिरांम॥ ४५॥
दूध दही घ्रत सहित गुड़, बस्त्र आभरन अन्न॥
जुत पलिंग आसन सुषद, जिन सौं चित सप्रसन्न॥ ४६॥
अै सबै बस्तु सुढार अति, प्रापति होत सुतौर॥
सुनहुँ इलाब्रत षंड तैं, उत्तर दिसहुं की ओर॥ ४७॥
सेवन कीनैं बस्तु अै, उहिं ठां कै बासींन॥
द्रुगंध पसीनां रोग अरु, जरा होत कबहींन॥ ४८॥
जीबै जब तांई रहै, सदा सुषी निरधार॥
सोक न काहू बात कौ, करत किहूं अनुसार॥ ४९॥
कुसंभ रुचक जारुधि त्रिकुट, नारद केसर कुरंग॥
हंस सिसिर निषध बैदूर्य, बैकंक कपिल रु पतंग॥ ५०॥
नागसंष सिनिबास कुरर, कालंजर रिषभ नांम॥
इतनैं परबत आदि दै, औरहुँ परबत ठांम॥ ५१॥
कमल कैसरा रीति ज्यू, परबत जु बीस बिसाल॥
च्यारौं वोर सुमेर कैं, सौभित है नगमाल॥ ५२॥
गिर सुमेर कै पूर्ब दिस, सौभित दोय पहार॥
देबकूट अरु जठर नग, जिन्हकै नांम सुढार॥ ५३॥
पारिजात अरु पवन ए, परबत पछिमहुँ ओर॥
नग रु दछिन दिस कैलास, करबीर नांम जोर॥ ५४॥
त्रिश्रृंग मकर उत्तर दिसा, और पहार सुभाय॥
इन आठौं परबतन जुत, गिर सुमेर छबि पाय॥ ५५॥
गिर सुमेर कै ऊपरैं, जोजन दसहिं हजार॥
ब्रह्माजु की नगरी सुभग, सौभित भलैं प्रकार॥ ५६॥
लोकपाल आठौंन की, नगरी चारौं ओर॥
जोजन सहस अढाइ इक, इक नगरी की ठोर॥ ५७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(गंगा विवरण तथा भगवान शंकर कृत संकर्षण स्तुति)

॥ श्री सुक उबाच ॥

चौपाई - श्री सुक कहत भये फिर अैसैं। मन संदेह मिटै सब जइसैं॥
बांवन चरन अंगुष्ठ प्रहारा। छिक्ति ब्रह्मांड छुटी तिहँबारा॥ १ ॥
ऊपर तैं जिहँ मारिग वोरा। निकसी गंगा धार सजोरा॥
धोवत बांवन चरन सुढारा। निकसी पाप मिटावन हारा॥ २ ॥
भगवतपदी प्रथम हुव नांमा। सबनहिं पवित्र करन निहकांमा॥
बह जलधार सहस जुग पाछै। प्रापत भइ ध्रुव लोकहिं आछैं॥ ३ ॥
परम बैसनव ध्रुव अभिरांमा। जांह बिराजहिं अति सुप धांमा॥
जिन प्रभु कौ चरनोदक जांनी। प्रेममग्न नैत्रन जल आंनी॥ ४ ॥
तन रोमांचित अति अभिलाष्यौ। प्रभु चरणोदक ध्रुव सिर राष्यौ॥
ध्रुव पुर नैरै जु सप्त रिषि रहै। प्रभू पद आश्रै हित जुत गहै॥ ५ ॥
जिनकैं चित्त मैं अैसी आई। सिद्धि तपस्या की जू हम्ह पाई॥
अैसैं जांनि बहै जल धारा। राषत भए जटानि मझारा॥ ६ ॥
चढि बिमांन पर ताकैं आगै। संग भए चित अति हित लागैं॥
मंडल चन्द्र बीच बह धारा। धारा परत भई फिरि महा सुढारा॥ ७ ॥
तहं तैं गिरि सुमेर कैंउ परी। बिधि नगरी जहँ परि धार धरी॥
तहँ तै च्यारि धार चहुँ औरैं। निकसि मिली सामुद्र अकोरैं॥ ८ ॥
अलकनंद चक्षु भद्रा सीता। गंगा नांम ए च्यारि पुनीता॥
गंगा सीता नांम सुढारा। गिरि सुमेर ऊपरि ह्वै धारा॥ ९ ॥
हौय कै सराचल गिरउ परी। अद्रि गंधमादन ऊपर ढरी॥
हौय षंड भद्रास्व जू मांहीं। पूरब दिसा और ह्वै जांहीं॥ १० ॥
षार समुद्रहिं मध्यहुं सुभाई। गंग प्रबाह मिलत भय जाई॥
माल्यवांन गिरि सिषर तैं गिरी। गंगा चक्षु नांम की धार परी॥ ११ ॥
केतुमाल षंड बिच ह्वै चली। नछ नदी पति सिंधुहिं जु मिली॥
अरु जो गंगा भइ भद्रा नांमा। गिरि सुमेर तैं गिरि अभिरांमा॥ १२ ॥
लांघि बउंत नग सिषर सुढारी। श्रृंगवांन गिरि सिषरि निवारी॥
गिरिधरहिं पैं कुरषंडहिं मांहीं। ह्वै उत्तर दिसहिं वोर सुठांही॥ १३ ॥
लवणार्णव सामुद्र मझारा। जाय मिलत भई गंगाधारा॥
नांम अलकनंदा जो गंगा। परम पवित्रहिं प्रवाह सुधंगा॥ १४ ॥
गिर सुमेर तैं धार सजोरा। लांघि बउंत नग हेम गिरहुं ठौरा॥
भरत षंड मैं दछिनहिं औरैं। मिलि गई जलधि समुद्र अकोरैं॥ १५ ॥
गंग सनांन सनमुष पग परैं। ताहीं राजसू जग्य सुबरैं॥

अश्वमेध फल दुर्लभ नांहीं। पंड पंड नद नदी तहांहीं॥ १६॥
प्रगटि नगनि सरिता बहि औरा। आई भरत पंड धर ठौरा॥
कर्म पेत्र है भरत सुपंडा। भुक्तन पाप पुन्य कौ दंडा॥ १७॥
पंड सुर्ग सम और भोग थलहिं। कहत बषांनि समझि लेहुँ भलहिं॥
और पंड मैं पुरपन मांहीं। दस हजार गज बल सरसांहीं॥ १८॥
बरष सहस दस आर्बल लहै। बिषै भोग मैं नितही जु रहै॥
उन्हकीं नारिन मैं इक बेरहिं। पुत्रहिं होत है गर्भ न फेरहिं॥ १९॥
त्रेता जुग कौ समैं सुढारा। सदा रहत है जहँ निरधारा॥
बउत फूल फल पल्लव संजुतहिं। बृछि अनेक जाहँ है अदभुतहिं॥ २०॥
आश्रम नग कंदरा अनेकहुँ। बउंत सरोवर भरिजल टेकहुँ॥
तिन्हमैं प्रफुलित सुभग सरोजहुँ। गुंजत अलि अतिचित्त धरि मौजहुँ॥ २१॥
सारस चकवा कुकुट रु हंसहिं। सब्द करत है पंछी बंसहिं॥
उहिं कैं बासी सुर सुप पांई। नीर बिहार करत जुत चांही॥ २२॥
अपसरांन कै अंग कटाछिहिं। अरु बिलास अदभुत बहु ताछिहिं॥
जिन्ह सौं मोहित रहत सदाहीं। बिबिध भोग मैं रहै लुभाहीं॥ २३॥
प्रभू अनैंक रुप सुभ साजैं। नवौ पंड कै मधिहुं बिराजैं॥
पंड इलाब्रत मधि सिव ऐकू। पुरुप वरात है सहित बिबेकू॥ २४॥
और पुरुप वांह कौउ जाई। सती श्राप सौं तिय तन पाई॥
तातैं पंड इलाब्रत मांहीं। रहत अनंत कोटि तिय चांहीं॥ २५॥
सपी भवानी की वै सबैहिं। सुंदरि रूप अधिक गुन फबैहिं॥
सैप नाग मूरति जिहिं ठांमा। ताहि कहत संकरषन नांमा॥ २६॥
जिनकी सिव उपासनां करैं। अरु इहीं मंत्र मुषहिं उच्चरै॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

महापुरप भगवान अनंता। जिनकौं नमसकार सुभतंता॥ २७॥
प्रभु पद पंकज सुपद तिहारै। भजिबै जोग्य सदा निरधारैं॥
पट अईस्वर्ज जुक्त हरि आपहिं। मेटन हार त्रिबिध संतापहिं॥ २८॥
दरसन प्रगट दैत भक्तन कौं। महामुक्ति दाता निज जनकौं।॥
म्है तुम्हकौं सेवत हौं स्वांमी। मन बच क्रम करि चित इक ठांमी॥ २९॥
माया गुन मधि दिष्ट तुम्हारी। लिप्त हौत नांहिंन किहूं बारी॥
जीत सकैं नांहिंन हम्ह क्रौधहिं। बढि रह्यौ अहंकार कौ बौधहिं॥ ३०॥
प्रकृति गुनन मैहिं द्रिष्टि हम्हारी। लिप्त हौतहिं अग्यांन प्रकारी॥
जो मन इंद्री जीत्यौ चाहै। कौंनहिं तुम्ह सै सेव निबाहै॥ ३१॥
लोल नैत्र अरु अति ही मद मत्त। ऐसी दरसत मूरति नित्त प्रत॥
नागबधू तुम्ह पद सपरस करि। मोहित होत मोद निज चित धरि॥ ३२॥
उपपत्ति पालन प्रलय प्रकारा। तुम्हही करत प्रभू करतारा॥

सौभित है फन अैक हजारा। तिन्हमैं इक फन पैं भुव भारा ॥३३॥
सौ सरसौं कन कै जु समांनहिं। इह प्रथवी है तुम्ह फन थांनहिं ॥
तुम्ह हौ ब़ासुदेव भगवांना। तिनतैं बिधि उपजत जुत ग्यांना ॥३४॥
तातैं हूं प्रगट्यौ निरधारा। म्हैरौ रूप अंस अहंकारा ॥
महतत्व रु आदि तत्व चौबीसा। जिनकी आग्या हम्ह धरि सीसा ॥३५॥
सृष्टि रचत है त्रिबिधि प्रकारा। हम्ह तुव आग्या बस निरधारा ॥
जइसै पंछी सूत्र बंधाई। हारि आप बल पर बस जाई ॥३६॥
सकत न कौ तिन्हकी माया तरि। तिह्नैं प्रनांम करत हौं हित धरि ॥
प्रभु आपकी सक्ति अपरम्पारहिं। कहि कौं सकै न पावै पारहिं ॥३७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदसोऽध्यायः ॥ १७ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टादसोऽध्यायः ॥

(भिन्न भिन्न वर्षों का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा – **श्री सुक कहत कि धर्म सुत, भद्रश्रवा जिहिं नांम॥**
सेवक पुरष संजुक्तहिं, भद्राश्व षंड हुँ ठांम॥ १॥
प्रभु हयग्रीव सरूप की, करत उपास सुढार॥
अरु निज मुष या मंत्र कौ, हित जुत करै उचार॥ २॥

॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥

चौपई – मन कै सौधक धर्म सरूप। अैसै श्री हयग्रीव अनूप॥
नमसकार जिन्हकौं हौं करहुं। जुत आनन्द ध्यांन उर धरहुँ॥ ३॥
बिबिधि भांती जिहिं प्रभू चरित्र। पार न आवत परम बिचित्र॥
जीव लषत इह सुत पितु म्हार। तउ बैराग न चित अनुसार॥ ४॥
कर्यो चहै उहिं धनकौं भोग। निज मृत्यु कौ नहिं लपै प्रयोग॥
झूठौ कहत जगतहिं कबि जन। ग्यांनी जानत इहिं आप मन॥ ५॥
तऊ तुम्हारी प्रकृति प्रकार। मोहित हौत बीच संसार॥
तुम्ह कौं नमसकार करतार। सकल बिस्व कै सिरजन हार॥ ६॥
अरु सब भाय रहत हौ न्यार। आप अपकर्त्ता प्रभू मुरार॥
इह हयग्रीव रूप प्रगटाइ। बेद रसातल तलैहुं आइ॥ ७॥
दैत भये सौ बिधि कौ स्वांमि। तुम्ह कौ नमसकार बहु नांमि॥
षंड हरि वर्ष सुबिषै सुभाइ। श्री नरसिंघ रूप सुषदाइ॥ ८॥

तिन्हकौं सेवत जहँ प्रह्लादि। करनहुँ पवित्र दैत्यकुल आदि॥
अरु इहि मंत्र पढत निसद्यौस। प्रभु सौं करि सनेह सुभरौस॥ ९॥

छंद भुजंग प्रयात - बडे तेजवंतं जु नृसिंघ बींरं। प्रभू हौ प्रक्कट्टं निजू दास भींरं॥
इहै बासनां कर्म दीजै जरांयं। नमो श्री नृसिंहं सु आनंद दांयं॥ १०॥
महा होय कल्यांन संसार कैंरें। भली बुद्धि ह्वै दुष्टहूं की सवैंरें॥
लगौं बुद्धि म्हैरी प्रभु चर्ण मांहीं। कभूं हौंन आसक्त म्हैं जक्त ठांहीं॥ ११॥
ग्रही बन्धु दारा धन्न पूत्र इन्मैं। चित्त नां लुबूधे किहूं बेर दिंन्मैं॥
बडे साध बिस्वैस कै जे उपासीं। हम्हैं ह्वै उनं संग आनंद भासीं॥ १२॥
जिन्हैं जीति इंद्री बस्यं कीन आपूं। सुहौंप्रास ह्वै सिद्धि कौं धारि धापूं॥
करैं संग साधं सुनैं कीर्त्ति कृष्णं। मन्न मैल नासं सुई तीर्थ प्रस्नं॥ १३॥
तनं मैंल दै टारि गंगा पुनीता। सबै मैंल काटै मनं साधमीतां॥
हृदे मांझ जांकैं प्रभू भक्ति सोभैं। जहां देवता जू सदा सर्ब लाभैं॥ १४॥
बिषै भोग मैं ह्वैह आसक्त कोईं। प्रभू हेत हीनं निजं धर्म पोईं॥
न ह्वै हैं भलैं जू जिनी चित्त मांहीं। मढै पाप बोधं जहैं नर्कं ठांहीं॥ १५॥
प्रभू आत्म रूपा वई हेतकारी। करैं जां भजंत्रं महामोह धारी॥
गृहं बीच आसक्त जो ह्वैह कोईं। ततौ तीय औ पूर्प मैं कोउ होहीं॥ १६॥
कहावैं बडे बयं ही कैं प्रमांनूं। नहीं और भांती बडे कौउ जांनूं॥
रंजूं षेद मोहं भयं मान इंछा। मनं की बिथा दीनता रोग संछा॥ १७॥
इतै दोप जुक्तं गृहं छोडि दीजैं। पदं श्री न्रसिंघं भलैं सेव कीजैं॥
जु जांवैं सरणं वंछितं सु पांवैं। ॥ १८॥

दोहा - केतमाल है षंड तांह, कांम रूप भगवांन॥
रहत बिराजै भली बिधि, सुंदर जू अप्रमांन॥ १९॥
लछिमी अरु निस दिवस कै, अभिमांनी सुर जांनि॥
है छत्तीस हजार जेहि, सेवत जांह बिधांनि॥ २०॥
तिह्वैं दैंन आनंद अति, कामदेव हरि रूप॥
अंग अंग सुंदर्यता, सोभित महा अनूप॥ २१॥
पाय सुदरसन चक्र भये, जिहं ठां की अस्त्रीन॥
गर्भ रहत है नांहिं गिरि, जात अर्द्ध ह्वै छीन॥ २२॥
सुंदर हास बिलास गति, चितबन बांकी भौंह॥
अदभुत सोभा बदन की, निरषि पंग द्रग हौंह॥ २३॥
लछिमी कौ आनंद दिय, न आप जुक्त आनंद॥
कांमरूप ऐसैं प्रभू, सोभित हैं सुष कंद॥ २४॥
अभिमांनी सुर गन सहित, लछिमी निस दिन तंत्र॥
कांम रूप ऐसौं स्त्रांन, करत पढत इह मंत्र॥ २५॥

ईस्वर प्रभु इन्द्रीयन कैं, जुत गुन सर्ब अनूप॥
ग्यांन क्रिया पति बेदमय, षोडस कला सरूप॥ २६॥
अमृत रूप जु अन्नमय, बल सरूप जुत कांति॥
कांम रूप भगवांन कौं, नमसकार सब भांति॥ २७॥
तिय करि सेवा रावरी, चाहै जो पति और॥
बै पति पति हैं नांहिंनै, महा बिपति के तौर॥ २८॥
वां सौं पति कहियै भलैं, ह्वै रछिक जोइ कौय॥
धन सुत आर्बल किहूं की, उनसौं रछा न हौय॥ २९॥
पराधीन जें रहत निति, है अपनैं बसि नांहिं॥
ऐसैं पति मांनै कोउ, तैं मूरष दरसांहिं॥ ३०॥
पति तौ निश्चै है सोइ, जो किहुं तैं न डराय॥
टारि देय डर और कौ, सौ पति तुम्ह दरसाय॥ ३१॥
जो तिय तुम्ह पद सेय कैं, चाहैं नहिं किहू और॥
अषिल मनोरथ पूर्न ह्वै, जांकै ईछा तौर॥ ३२॥
अरु जो करिकै कांमनां, करै तुम्हारी सेव॥
ताहिं बहीं फल दैतहौ, अधिक कछू नहिं भेव॥ ३३॥
म्हेरी प्रापति कौं करत, ब्रह्मादिकहुं तप चांहिं॥
पैं तुम्ह पद सेवन बिनां, मोकौं पावत नांहिं॥ ३४॥
म्है हूं तुम्ह आधीन तुम्ह, मुहि राषत हिय ठांम॥
पैं मो तैं चाहत अधिक, भक्तन कौं जन स्वांम॥ ३५॥
अदभुत चरित सु रावरौ, है कर्त्ता जगदीस॥
भक्तन सिर कर धरत सौ, राषहूँ म्हैरै सीस॥ ३६॥
षंड सुरम्यक कै बिषै, बेइ बसतु मनु रांय॥
मछ सरूप जु उपासनां, करत मंत्र इह गांय॥ ३७॥
श्रेष्ठ रूप इंद्रीन कैं, दाता सक्ति सुढार॥
ऐसैं मछ भगवांन कौ, नमसकार बहु बार॥ ३८॥
लोकपालहूं जानत न, प्रभु तुम्ह रूप बिचार॥
काठ पुतरी सम जक्त, तुम्ह जांनत करतार॥ ३९॥
लोकपाल बडेननि सौं, जग रछा नाहिं हौत॥
तुम्हं हौ रछिक सबन कै, अरु सबै ठां उद्दौत॥ ४०॥
प्रलै समैं मधि प्रिथ्वी की, अरु मुहि रछा जु कीन॥
प्रांन रूप हौ आप प्रभु, तुम्हहिं प्रनांम नवीन॥ ४१॥
षंड हिरनमय कै बिषै, पितर अरयमां नांम॥
कछप जू कौ करतहिं हैं, हित उपास अभिरांम॥ ४२॥

अरु इह मंत्र जु पढत हैं, सौ अब कहौं सुनाय॥
पढै सुनै या मंत्र कौ, अषिल पाप टरि जाय॥४३॥
प्रभू सत्व गुन रूप जिनकौं, जानत नाहिं सथांन॥
ब्यापक सब ठां ह्वै रहै, पूर्न पुरष भगवांन॥४४॥
अरु श्री कछप रूपहिं हरि, तिनकौं करत प्रणांम॥
सबही मधि अस सबनि तैं, न्यारै प्रभु अभिरांम॥४५॥
सकल पदार्थन कौं इहै, जिन सरूप सुषदाय॥
उनजु पदार्थन की कछू, गनती करी न जाय॥४६॥
स्वेदज अंडज जरायुज, उदभिज च्यारि प्रकार॥
जीवन की सृष्टि जू इही, प्रभु ईछा आधार॥४७॥
अरु सबही मनु देवता, प्रथवी स्वर्ग आकास॥
परबत नदी समुद्र सबै, मिलत एकही भास॥४८॥
रूप रु नांम अनैक तत्व, चौबीसहिं अनुसार॥
माया करी कल्पै सबै, तुम्हही मधि करतार॥४९॥
दूरि होत है भ्रम इही, प्रगटै ग्यांन प्रकास॥
दाता तुम्ह जिहि ग्यांन कै, प्रभू आनंद निवास॥५०॥
नमसकार तुम्ह कौ प्रभू, कोटि कोटि बहु बार॥
दैनहार आनंद कै, तुम्ह पद कमल सुढार॥५१॥
उत्तर कुरु षंडहीं बिषै, प्रभु बाराह उदार॥
जिन उपासना करत भुव, मुष इह मंत्र उचार॥५२॥
महापुरष भगवांन है, जिग्य रूप बाराह॥
प्रगट तीन जुग मधि बिषै, नमसकार जुत बाह॥५३॥
जिहूं कर्त्ता भगवांन कौ, रूप सरीरहिं मध्य॥
जइसैं अग्निजु काष्ट मैं, बसत है छिपि प्रसध्य॥५४॥
जाकौं जांनत जुदौ करि, पंडित मन उनमांन॥
ऐसैं प्रभु कौं करत हौं, नमसकार धरि ध्यांन॥५५॥
अहंकार इंद्री बिषै, देवतानि दै आदि॥
सबै तत्वन कैं प्रकासिक, प्रकृति परै जु अनादि॥५६॥
ऐसैं प्रभु कौं करत हौं, म्हैं प्रनांम करि जोरि॥
मन बच क्रम करि रहत हौं, जिन पद सरनि अकोरि॥५७॥
चिंबुक पथर कै जोग सौं, ज्यौ जड लौह भ्रमंतं॥
ज्यूं ही जड माया इही, लहि हरि संग सुतंतं॥५८॥

उतपति पालन प्रलय जग, करत भलैं अनुसार॥
मोहित करि राषै सबै, अपनै बसि निरधार॥५९॥
मोहि रसातल तैं प्रभू, ल्यायै हति हिरनाछ॥
नमसकार हूँ करत हौं, बेद बदत जिन साछ॥६०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टादसोऽध्यायः ॥ १८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकोनविंसोऽध्यायः ॥

(किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - बोलै श्री सुक देव जू, षंड किंपुरष मांहिं॥
सिय जुत श्री रघुनाथ जू, सोभित सोभ अथांहिं॥ १॥
जिन्हकैं चरनन की करत, सेवा श्री हनुमंत॥
बदन निहार निहाल ह्वै, प्रसंन होत हितवंत॥ २॥
आर्ष्टिषेन रघुनाथ कि, कहत कथा उहिं ठांम॥
गंधर्बनि जुत सुनत है, हनुमान जू अभिरांम॥ ३॥
अरु इह मंत्र जु पढत है, सौ अब कहौ सुनाय॥
जाकैं सुनबै तैं बढत, उर आनंद अधिकाय॥ ४॥
उत्तम श्री भगवांन जिन्ही, उत्तमहुँ सुजस चरित्र॥
जित इंद्रीहै जगत कै, जु रंजन कर्त्ता मित्र॥ ५॥
राजाधिराज श्री राम, ब्रह्मण्य देव श्रीकंत॥
नमसकार जिहिं प्रभू कौ, बारम्बार करंत॥ ६॥
सुद्ध रूप अनुभव सहित, माया गुन तैं दूरि॥
नांम रूप अहंकार कौ, भेद न जिन मैं मूरि॥ ७॥
अैसैं श्री रघुनाथ जू, दसरथ सुत सुषकंद॥
हौं जिन्हकै चरनन सरन, सदा जुक्त आनंद॥ ८॥
रावन ही कैं मारिबै, कैंनुँ धर्यौ अवतार॥
जगत ही इहि सिषावनौं, तिय तैं दुष निरधार॥ ९॥
तातैं ब्याकुल ह्वै फिरै, सिया बिरह अनुसार॥
भाव मानुषी प्रगट किय, पूर्न ब्रह्म करतार॥ १०॥
तिया बिरह दुष मांननौं, करनौं लछमन त्याग॥
जक्तहिं सीषबन कौं करै, प्रभु इक चरित्र अथाग॥ ११॥

बांनी बुधि रु उत्तम जनम, आकृति रूप भलौंन॥
अैसें ह म्हकौं निज सिषा, कीनैं प्रभु सुष भौंन॥१२॥
सकल अजोध्या जिन प्रभू, दई स्वर्ग पहुँचाय॥
पिता बचन निज सीस धरि, राष्यौ धर्म सुभाय॥१३॥
सुर नर आसुर जौं कोउ, सेवैश्री रघुनाथ॥
सोइ क्रतारथ हौत है, बेद साषि इह गाथ॥१४॥
भरत षंड के बिषै नर, नारायन भगवांन॥
करत तपस्यां जक्तहिं कौ, सिषवन काज निदांन॥१५॥
नारद मुनि उन सर्बनि कौं, करत भक्ति उपदेस॥
सैवत नरनारायनहिं, मुष इह मंत्र सुबेस॥१६॥
सांत दांत निरधनन कैं, धन हैं निरंहार॥
परम हंस प्रभु परम गुर, आत्मा राम सुढार॥१७॥
अैसें नरनारायनहिं, नमसकार सुभ ढार॥
जें हैं कर्त्ता जगतहिं कै, पैं बंधन न लगार॥१८॥
देह धरै पैं नांहिंनै, भूष प्यास आधीन॥
जिन्हकी द्रिष्टि न लिप्त है, बिच माया गुन हीन॥१९॥
अैसे हरि करुणा ढरन, सबकै साछी आंहिं॥
नमसकार जिन्हकौं सदा, मन बच क्रम करि चांहिं॥२०॥
यौंहि कह्यौ है जोग कौ, फल ब्रह्मा निर्धार॥
अंत समै मन आपनौ, तुम्ह मैं धरै सुढार॥२१॥
है आसक्त बिषैयन मैं, मूरष जन जे कोय॥
नारी पुत्रननि कौं सदा, सुष वाछैं चित्त गोय॥२२॥
अरु डरपत है मृत्यु सौं, सदा आपनैं चित्त॥
वइसें हीं पंडितहुँ ह्वै, बे समझत न अनहित॥२३॥
तांतै अैसौं जोग प्रभु, तुम्हहीं हम्हहिं सिषाहुँ॥
अहंता ममता छुटि कैं, जासौं तुम्ह दरसाहुँ॥२४॥
है बडैन नग बउंत या, भरत षंड कैं मांहिं॥
जिन्हकैं नांम गनाय हौं, कहत सुनौं चित्त चांहिं॥२५॥
मैंनांक रिषभ मंगल प्रस्थ, मलय त्रिकुट सहियाय॥
पारियात्र कोल्लेक बिंध्य, गोबर्धन गिरराय॥२६॥
कूटक प्रस्थ महैन्द्र रिक्षा, मूक द्रौणागिर रिक्ष॥
चित्रकूट श्री सैल रु गिर, देव बैंकटहुँ लक्ष॥२७॥
सुक्तिमांन रेवंतक ककुभ, इन्द्रकील गिर कांम॥
नील वारिधार यैते, कहै नगन कैं नांम॥२८॥

इन्ह जु परबतन आदि कैं, परबत केइ हजार॥
तिनतैं नदी अनैंक भइ, प्रगट भलैं अनुसार॥ २९ ॥
इनि जु नदिन कै नीर कौं, सपरस करत सरीर॥
होत पबित्र जू आतमा, नांम बर्नि कहौं धीर॥ ३० ॥
चंद्रबसा गोदावरी, भीमरथी सिंधु ढार॥
ताम्रपर्नी अवटोदका, क्रतमाला जु उदार॥ ३१ ॥
काबेरी बैहायसी, कृष्णा बेण्यां जांन॥
सर्क्करावर्ता पयस्वनी, तुंगभद्रा सु प्रमांन॥ ३२ ॥
बेणी तापी पयोष्णी, रेवां सुरसा नांम॥
चर्मन्वती र्निबिंध्या, सतीवती अभिरांम॥ ३३ ॥
महानदी बेदसम्रिती, सतद्रू रु कालंद्रीय॥
बहुरित्रि सामां कौसिकी, रिषिक्रुल्या रमनीय॥ ३४ ॥
सरयू सरस्वती गोमती, मन्दाकिनी जु अनूप॥
रोधस्वंती अरु सप्तवती, द्रषद्वति धर्म सरूप॥ ३५ ॥
मरुर्द्रिधा अरु असिकिनी, बिसबा भद्रा जु चारू॥
नदी विवस्ता सुषोमा, चन्द्रभगा सुभ ढार॥ ३६ ॥
महाभागा अरु नर्मदा, अति पवित्र जिनी नीर॥
अंध्रशोणनद दोय जुत, भरतषंड बिच भीर॥ ३७ ॥
भरत षंड बिच जनम लहि, जइसै करम करंत॥
वइसी ही गति हौत है, इहिं ठांयही निमंत॥ ३८ ॥
स्वर्गलोक नरलोक अरु, नर्क लोक तिहुँ ठौर॥
कर्मनि करिकैं होत हैं, मुक्तिहुं लहत सुतौर॥ ३९ ॥
साधू संग सौं यांहिं जौ, उपजै प्रभु सौं प्रीति॥
दूरि हौय अग्यांन तबै, पावैं मुक्ति पुनीति॥ ४० ॥
सुरगनहूँ अैसैं कहत, बडे पुन्य जिन कीन॥
प्रसंन करै तिन्ह हरि जनम, भरत षंड मैं लीन॥ ४१ ॥
इही हम्हारै हूँ सहीं, है अभिलाष सुढार॥
भरत षंड बिच मनुष तन, आवै किहं प्रकार॥ ४२ ॥
जिग्य तपस्यां दांन व्रत, करिकैं स्वर्ग जू हौत॥
सौ नांहिं न कछु कांम कौं, है सुष अल्प उद्यौत॥ ४३ ॥
बिषै भोग ही है जांह, नहिं हरि भक्ति बिचार॥
बिनां भक्ति नहिं पाइयै, हरि पद सरन सुढार॥ ४४ ॥
बसै स्वर्ग मैं कल्प इक, भलौं तऊ कछु नांहिं॥
प्रांनी जीवै छिनकहूं, भरत षंड कै मांहिं॥ ४५ ॥

करै प्रभू की भक्ति जौ, आछैंहुं चित्त लगाय॥
तौ सहजैं आनंद सौं, हरिपद दुर्लभ पाय॥४६॥
सुधा नदी हरि कथा नहिं, नहिं बैष्णव तिहिं ठांम॥
प्रभु निमित कौ जिग्य नाहि, इहै स्वर्ग कौ कांम॥४७॥
भरत षंड मैं प्रगटि जै, मुक्ति न जत्न करंत॥
तै बंधन हीं बिच सदा, प्रांनी परै रहंत॥४८॥
जिग्य करत है जो कौउ, भरत षंड कैं मांहिं॥
तांह आय हरि लैत है, भोग आपनौं चांहिं॥४९॥
और कौउ मांगै कछू, तितनौं हीं हरि दैत॥
निज दासन कौं पद कमल, देत भलैं करि हैत॥५०॥
जिन्ह प्रभु पद अरविन्द कौ, प्राप्त भये निरधार॥
सकल मनोरथ पूर्न ह्वै, निश्चै भलैं प्रकार॥५१॥
हम्हहूं स्वर्ग तैं गिर जनम, भरत षंड मैं लैंहिं॥
तौं हरि भजिकैं मुक्ति कौं, प्रापति सहजे ह्वैहिं॥५२॥

॥ श्री सुक उबाच॥

जम्बूद्वीप कै अष्ट अब, उपद्वीपहुँ तू जांनिं॥
अश्व हेरबैं कैं समैं, सगर पुत्र कियैं मांनिं॥५३॥
तिन्हकैं नांम सु अब कहौ, स्वर्णप्रस्थ चन्द्रश्रुल्क॥
आवर्तन रमणक मंदर, हरिण पांचजनि मुल्क॥५४॥
सिंहेल लंका आंठवौ, जांनि समुद्रहिं किनार॥
इहीं भांति सौ बर्ष भुव, बरन्यौ भल बिस्तार॥५५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकोनविंसोऽध्यायः ॥ १९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ बिंसोऽध्यायः ॥

(अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोक पर्वत का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - कहत है श्री सुकदेव जु, अबैं पलक्ष लौं आदि ॥
षटहुं द्वीपनि बर्नन करुँ, जो रचनाहिं अनादि ॥ १ ॥
है जौजन इकलाष कौं, जंबू द्वीप सथांन ॥
चहुँ दिसहिं षार समुद्र है, जौजन लषहुं प्रमांन ॥ २ ॥
षार सिंधु कैं परैं द्वै, लष जौजन चौडाय ॥
पलक्ष नांम कौ द्वीप है, अति सोभा सरसाय ॥ ३ ॥

पलक्ष नांम तरु कनकमय, अदभुत रूप प्रकास॥
पलक्ष द्वीप तिहं नांम सौं, कहियत भलौं निवास॥४॥
प्रियब्रत कौं सुत नृपति है, इध्मजिह्व जिहं ठौर॥
छत्रि धर्म मैं है निपुन, धीर वीर सिरमौर॥५॥
जिन निज सातौं पुत्रनिकौं, दिय धरकरि षंड सात॥
आप प्रभू कैं नांम मैं, मग्न रहत दिन रात॥६॥
सिव सुभद्रहिं अमृत अभय, यवस क्षैम रु सांत॥
अुंवर षंड सातौंन कैं, हैं इहिं नांम सुभांत॥७॥
जिन्ह षंडन मैं सात नग, सातहि सरिता जांनि॥
जिनकैं नांम कहूं अबै, आछी भांति बषांनि॥८॥
बज्रकूट मणिकूट अरु, इन्द्रसेन सतश्रृंग॥
हिरण्यष्ठीव सुपर्ण पुनि, ज्योतिष्मान उतंग॥९॥
ए सातौं परबत कहै, अब कहुं सरिता सात॥
चित्त लगाय सुनियै नृपति, जै बिच पुहमि बिष्यात॥१०॥
अरुणा नृम्णा रितम्भरा, सावित्री सुभहुं रूप॥
आंगिरसी सुप्रभाता रु, सत्यम्भरा सु अनूप॥११॥
अैंहै सात नदी बडी, बर्न चारी तिहं ठांम॥
हंस पतंग सत्यांग पुनि, ऊर्द्धायन अभिरांम॥१२॥
वां कै बासी सुरनि सम, सहस बर्ष की आयु॥
रबि उपासना करत इह, मंत्र पढत चित्त लाय॥१३॥
महापुरष है बिस्नु सुभ, धर्म बेद फल रूप॥
अैसें सूरज देवता, हम्ह जिन्ह सरन संजूप॥१४॥
उपजत ही नर देह बल, तैज पराक्रम आयु॥
पलक्ष आदि षट द्वीप बिच, है सबमैं अधिकायु॥१५॥
है समुद्र रस ऊषकौं, बिय लष जौजन दौर॥
पलक्ष द्वीप कैं चहूं दिस, सोभित आछैं तौर॥१६॥
साल्मलि द्वीप सु तिहिं परै, है जोजन लष च्यार॥
सुरासिंधु चहुँ ओर जिहं, जोजन चौलष ढार॥१७॥
बृछि सालमलि नांम जहँ, तहँ उपरि गरुड रहत॥
बही बृछि कैं नांम सौं, सालिमलि द्वीप कहत॥१८॥
जिग्यबाहु अवनीस जहँ, प्रियब्रत सुत बिषयात॥
जिन निज सातौं सुतन दिय, धरा षंड करि सात॥१९॥
देववर्ष रमणक सौमनस्य, पारिभद्र रु अविग्यात॥
आप्यायन अरु सुरोचन, कहै नांम ए सात॥२०॥

एइ नृपति कैं नांम पुनि, इहिं षंडन कैं नांम॥
जिन षंडन मैं सात नग, सात नदी अभिरांम॥२१॥
कुमद कुन्द पुनि सहस्त्रश्रुति, वामदेव सतश्रृंग॥
पुष्पवर्ष अरु स्वरस ए, परबत सात उतंग॥२२॥
अनुमति रजनी सरस्वती, राका नंदा चारु॥
कुहू सिनीवाली बडी, सरिता सात सुढारु॥२३॥
श्रुतधर बीर्जधर बसुंधर, इषंधर बर्न जु चार॥
ससि उपासना करत जें, मुष इह मंत्र उदार॥२४॥
सुकल कृष्न पक्ष मधि निज, किरननि कैं अनुसार॥
पितर देवतनि कौं करत, अति संतुष्ट निरधार॥२५॥
अैसैं ससि भगवांन हैं, परमानन्द सरूप॥
हम्ह ऊपर जें प्रसंन हौ, कर्त्ता पुरषहिं अनूप॥२६॥
बांतैं आगै अति सुभग, है कुसद्वीप सथांन॥
आठ लाष जोजन सुतौ, चौर दौर उनमांन॥२७॥
आसपास वां द्वीप कैं, धृत समुद्र सोभाय॥
जोजन आठइ लाष है, ताहूं कौ चौडाय॥२८॥
कुस बृछि इक जहँ अग्नि सम, रूप प्रकास उदार॥
कहियत है कुस द्वीप सौं, बही नांम अनुसार॥२९॥
प्रियब्रत कौ सुत नृपति जहँ, हिर्ण रेता वल षंड॥
जिन निज सातौं सुतनि दिय, करि निज धर सत षंड॥३०॥
आपहुं तपस्यां करत है, प्रभु सौं चित्त लगाय॥
अबैं पुत्र अरु षंड कै, बरनौं नांम गनाय॥३१॥
नाभिगुप्त सत्यब्रत दृढरुचि, बिबक्त देब बसुदांन॥
बसु पुत्रन कैं नांम एइ, षंड नांम उनमांन॥३२॥
जिन्ह षंडन म्हैं सात नग, सातहुं नदी सुढार॥
अबै तिन्हू कैं नांमहूं, कहत भलैं अनुसार॥३३॥
ऊर्द्धरोम चित्रकूट पुनि, चक्र कपिल चतुश्रृंग॥
द्रबिण रु देबानीक ए, परबत सात उतंग॥३४॥
रसकुल्या मधुकुल्या रु, मंत्रामाला चार॥
मित्रबिंदा घृतच्युता पुनि, देवगर्भा जु सुढार॥३५॥
जानउ श्रुतबिन्दा जू ए, अति पबित्रहुं निरधार॥
कुसल कुलक अभियुक्त ए, कौविद बर्ण है च्यार॥३६॥
जे उपासना अगनि की, करतहिं चित्त धरि चाह॥
अरु जिन्हकैं मुष मंत्र इह, रात दिवस अवगाह॥३७॥

अहो अगनि भगवांन कौ, तुम्ह सरूप निरधार॥
जिग्य भाग भगवांन कौ, दीजत तुम्ह अनुसार॥३८॥
सौ पुँहचत है सुरन कौं, जिग्य भाग बल जाय॥
जासौं सबही देवता, है संतुष्ट सुभाय॥३९॥
क्रौंच द्वीप है तिहं परै, जोजन सोरह लाष॥
जोजन सोरह लाष चहुँ, पयसिंधु जास पाष॥४०॥
क्रौंच नांम परबत सुभग, है वहँ द्वीपहिं मांहिं॥
सहस्त्र सकंद कुमार कैं, लगै षंड नग आंहिं॥४१॥
तांकी रछा करतहिं भौ, वरुण भलै अनुभाय॥
ताहीं नग के नांम सौ, क्रौंच द्वीप सुकहाय॥४२॥
तहँ प्रियब्रत कौं घृतप्रष्ठ, नांम ग्यांनि अवनीस॥
सात षंड धर करि दयै, राज सात सुत सीस॥४३॥
आप रहत प्रभु कैं सरन, निश्चै अति हित भाय॥
षंड पुत्र सातौंनहिं कैं, अब कहुं नांम गनाय॥४४॥
मेघपृष्ट भ्राजिष्ठ जू, लोहितार्ण अरु आंम॥
मधुरुह सुधामा बनस्पति, ए इ षंड सुत नांम॥४५॥
सात नदी अरु सात नग, सातौं षंडन मांहिं॥
बरनौं जिन्हकैं नांम अब, सुनौ श्रवन दै चांहिं॥४६॥
उपबर्हिण भोजन सुल्क, नन्द नंदन बर्धमांन॥
सर्वतोभद्र जू सात ए, परबत करैं बर्षांन॥४७॥
अभया सुल्का आर्यका, अमृतबोघा नांम॥
तीर्थवती बृत्तिरुपवती, पवित्रबती अभिरांम॥४८॥
अैं सातौं सरितांन कैं, कहैं नांम अनुसार॥
पुरुष रिषभ देवक द्रविण, जांह ए बर्न जु च्यार॥४९॥
जलकी करत उपासना, ए जहं च्यारूं बर्न्न॥
अरु इह मंत्र सुढार अति, जिन मुष नितिहि उचर्न्न॥५०॥
नारायन कैं बीर्ज हौ, है जल तुम्ह निरधार॥
सब लौकन कौं करत हौ, अतिहिं पबित्र सुभ ढार॥५१॥
हम्ह जु करत हैं रावरौ, सपरस निति प्रति चांहिं॥
हम्ह कौं करौहिं पबित्र तुम्ह, निज सेवक अवगांहिं॥५२॥
आगैहुं छीर समुद्र कै, साकदीप बिसतार॥
जौजन लाष बत्तीस कौ, जिहं प्रथवी अनुसार॥५३॥
साक नांम कौ बृछि है, जास द्वीप धर ठौर॥
सगरौ द्वीप सुगन्धमय, जासौं हौत सुतौर॥५४॥

बही साक तरु नांम सौं, साक द्वीप सुकहाय॥
मेधांतिथि प्रियब्रत तनय, बहि ठां नृपति सुहाय॥५५॥
सात षंड जिन करि धरा, सातौंन पुत्रन दीन॥
आप तपस्या करत है, ह्वै हरि आश्रय लीन॥५६॥
विस्वधार अरु पुरोजब, चित्ररेफ रु पवमांन॥
धूम्रानीक जु मनोजव, पुनि बहुरूप निदांन॥५७॥
पुत्रननि षंड कै ये ई, बर्नन कीनैहुं नांम॥
सात नदी सात नग है, सातौं षंडन ठांम॥५८॥
आबल भद्र ईसान अरु, सतकेसर उरुश्रृंग॥
सहस्त्रश्रोत पुनि महानस, देवपाल सु उतंग॥५९॥
नांम कहै पर्बतन कैं, अब कहुं सरिता नांम॥
सब रचना ब्रह्मांड की, रची प्रभू अभिरांम॥६०॥
आर्युदा अपराजिता, अनघा उभयस पृष्टि॥
पंचपदी रु सहस्त्रश्रुति, निजधृति सरित सुद्रिष्टि॥६१॥
रितब्रत सत्यब्रत दांनब्रत, अनुब्रत बर्न सुच्यार॥
करत उपास जु पवन की, मुष इह मंत्र सुढार॥६२॥
सबकैं अंतर पवन है, जो प्रांनादि सरूप॥
सबकौ पालन कर बहि, ईस्वर परम अनूप॥६३॥
अंतरजामी जे प्रभू, सकल बिस्व आधार॥
ब्ह करहुं हम्हारी रछया, अपनीं क्रपा प्रकार॥६४॥
साक द्वीप कै चहूंदिस, दधि समुद्र सोभाय॥
जोजन लाष बत्तीस है, इह प्रमांन दरसाय॥६५॥
पुस्कर द्वीप जु तिहं परैं, जोजन चौसठि लाष॥
इतनैं ही उनमांन जल, सिंधु जास चहुँ पाष॥६६॥
कमल एक वा द्वीप मैं, सौ सुबर्न कौ जु जांनि॥
तीस हजार तिहं पांषुरि, बैठन ब्रह्म सथांनि॥६७॥
बहीं कमल कै नांम सौ, पुस्कर द्वीप कहाय॥
मांनसोत्तर नग द्वीप बहिं, बिच चहुँ दिस सोभाय॥६८॥
सो बह नग ऊंचास है, जोजन दसहिं हजार॥
इतनौंई चौडाय कौ, समझि लेहुँ अनुसार॥६९॥
लोकपाल इंद्रादि की, जांकैं च्यारौं और॥
च्यार पुरी अभिरांम है, अदभुत सुंदर ठौर॥७०॥
वा परबत ऊपरि रहत, रविरथ चक्र सुभाय॥
बाही परबत पैं चहूँ, ओरैं सूर्ज फिराय॥७१॥

उत्तरायनैं दछिनायनैं, रबि की द्वै गति जांन॥
वीतहौत्र प्रियब्रत तनय, नृप उहिं ठां जुत ग्यांन॥७२॥
दौय पुत्र बहि नृपति कैं, रमणक धातकि नांम॥
दौय षंड करि बांटि दिय, दुहूँ पुत्रनधर ठांम॥७३॥
जे पुत्रननि कै नांम है, तैं षंडन कै नांम॥
पुत्रननिं धर दै नृप करत, प्रभू भक्ति अभिरांम॥७४॥
बां कै बासी करत हैं, बिधि उपासनां चांहिं॥
पढत मंत्र इह निज मुषै, पूर्न प्रतीति निबांहिं॥७५॥
रूप कर्म फल आदि दै, जिन सम है कौ नांहिं॥
तिनकौं पूजत जक्त सब, आछी भांति उमांहिं॥७६॥
अैसै बिधि भगवांन कौं, नमसकार सुभ ढार॥
जे रचना संसार की, रचत भलैं अनुसार॥७७॥

॥ श्री सुक उबाच॥

आगैं षाली है प्रिथी, जल समुद्र कैंउ वोटि॥
साढै सतांवन जू लष, जोजन एकहिं कोटि॥७८॥
प्रांनीहूँ नांहीं बसत, तांतैं आगै और॥
जोजन उनतालीस लष, एक कोटि भुव ठौर॥७९॥
सो सुवर्न की है प्रथ्वी, झमकत मुकर समांन॥
जहँ बसत कौउ नांहिंनै, समझौ भेद सुजांन॥८०॥
लौकालौकाचल सु नग, तिहं आगैं निरधार॥
प्रथवी कै चहुँ ओर हैं, जांसौ परै अंध्यार॥८१॥
नहिं प्रकास जहँ सूर्ज कौ, थपी रीति प्रभु आदि॥
लौकालौकाचल सुनग, रूप त्रिलोक मर्यादि॥८२॥
ध्रुव तांई ग्रह है जितै, तिन्हकौं तेज सुभाय॥
लौकालौकाचल नगनि, तैं आगैं नहिं जाय॥८३॥
जौजन कोटि पचास है, भुव मंडल उनमांन॥
जांकै बीच सुमेर गिर, सोभित सुभग सथांन॥८४॥
साढै द्वादस द्वादस जु, लष जौजन धर ठौर॥
गिर सुमेर कै चहूँ दिस, सोभित इक इक वौर॥८५॥
लौकालौकाचल सुनग, प्रथवी कैं चहुँ और॥
आसपास ज्यौं सहर कै, किल्ला होतजु अकौर॥८६॥
ता ऊपरि चवदिगज गज, प्रभू राषै चहुं वौर॥
वै भव कौं दाबै रहत, डिगत न देत सजोर॥८७॥
वामन पुस्कर चूड रिषभ, अपराजित जू च्यार॥
दिगजन कै ए नांम है, समझौ भलैं प्रकार॥८८॥

दिग्गज इंद्रादिकन कैं, बल बढवन कै काज॥
अरु लोकननि कल्यांन हित, प्रभु कर्त्ता महाराज॥८९॥
सकल धर्म गुन ग्यांन जुत, बिष्वकसेन लौं आदि॥
पार्षद जुत नग के चहूं, दिस सोभित अन्नादि॥९०॥
कल्प पर्यंत जु बेष इह, धारैं प्रभू अनादि॥
अपनी माया जोग रचि, लोक रछ्या हित ज्यादि॥९१॥
लोकालोकाचल परैं, गति जोगेस्वर जांनिं॥
जाय सकत नहिं और कौ, काहू भांति निदांनिं॥९२॥
अंडा सौ ब्रह्मांड इहि, जोजन कोटि पचास॥
जोजन कोटि पचीस मैं, सूर्ज फिरत बिच जास॥९३॥
जोजन कोटि पचीस रबि, ऊंचौ अंडा ठौर॥
इतनी रबि की तरहटी, अंडा ठांम सुतौर॥९४॥
अंडा कौ परमांन है, इतनैं ही अनुसार॥
तांहीं मैं प्रांनी सबै, बसत भलै परकार॥९५॥
इह अंडौ मृतक तिहूं, सूर्ज प्रकासित कीन॥
मारतंड तांतैं भयौ, रबि कौं नांम नवीन॥९६॥
और नांम इक सूर्ज कौ, हिरण्यगर्भ जु कहाय॥
प्रभु ईछा आधीन है, सब रचनां अनुभाय॥९७॥
स्वर्ग दिसा आकास भुव, मोछ जुक्त लौं ठौर॥
सूरज ही सौं है सही, सबै प्रकासि सुतौर॥९८॥
बृछि लता सुर नर पसू, सर्प आदि बहु रूप॥
आतम दिष्टा सबनीकौ, ईस्वर सूर्ज अनूप॥९९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते
बिंसोऽध्यायः ॥ २०॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकबिंसोऽध्यायः ॥

(सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा – सुक कहत है कि इह कह्यौ, मंडल प्रथी प्रमांन॥
अैसैं ही उनमांन है, मंडल सुर्ग सथांन॥१॥
निष्पावादिक अन्नि की, दालि बीचि संधि जांनिं॥
याही भांति पृथ्वी सुरग, मद्धि अंतरिक्ष मांनिं॥२॥
संधि बीच ब्रह्मांड कै, दिनकर फिरत सुभाय॥
करत प्रकास जु ठौर सब, प्रभू सक्ति बल पाय॥३॥

उतरायन दछिनायन रु, बिष्बतु सूर्ज गति तीन॥
सीघ्र समांन रु मंद तिहूं, रबि की तरह सरीन॥ ४॥
घटि बढि निस दिन होत सौ, रबि ही करत निदांन॥
होत मेष तुल कै निकट, तब निसदिनहिं समांन॥ ५॥
पांच रासि बृश्चिक लौं, मधि जब सूर्ज फिराय॥
जबै बढत है दिवस निस, एक घरी घटि जाय॥ ६॥
पांच रास बृश्चिक लौं, मधि जब सूर्ज फिराय॥
तबै घटत है दिवस अरु, रात्रि होत अधिकाय॥ ७॥
उत्तरायन मैं दिन बढ़त, दछियायन मैं रात॥
प्रभूहिं ईछा आधीन, सब बिबहार बिष्यात॥ ८॥
नव कोटि जू इक्यावनहिं, लष जोजन उनमांन॥
अद्रि मांनसोत्तरहिं कैं, भ्रमत चहूँ दिस भांन॥ ९॥
गिर सुमेर कैं पूर्ब दिस, येक पुरी सुभ ठांम॥
तांहिं देवधानी सबै, कहत नांम अभिरांम॥ १०॥
अरु दछिन दिसहुं जमपुरी, संजमनि जिहूं नांम॥
बरुण पुरी पछिमहुं दिसहिं, निमलोचनी सुठांम॥ ११॥
है बिभावरी पुरी दिस, उत्तर ठौरहिं कुबेर॥
अैं चहुँ नगरी चहुँ दिसा, सोभित मद्धि सुमेर॥ १२॥
इन्ह च्यारौ नगरीन मैं, कहुं रबि करत प्रभात॥
कहूं अस्त मध्यान कहूं, कहूं होत अधरात॥ १३॥
नितहिं मध्यान सुमेर पै, रहत प्रकट बिषयात॥
फिरत जु बांई ओर रबि, दिस दांहिनी लषात॥ १४॥
जांह उदै रबि होत है, अस्त बराबर हौत॥
नग की आवत ओट जब, करत निसा जु उद्यौत॥ १५॥
इंद्रपुरी तैं रबि चलत, जात जमपुरी ठौर॥
जिहं मगकौं उनमांन अब, कहत जताय सुतौर॥ १६॥
साढि बारह लष सवा द्व, कोटि पचास हजार॥
इतनौं जोजन रबि चलत, पन्द्रह घरी मंझार॥ १७॥
फिरत चहूं नगरीन मैं, सूर्य इहीं अनुसार॥
रची सकल मरजाद प्रभु, कर्त्ता पुरष जु उदार॥ १८॥
ग्रह नषत्र ससि आदि लौं, अैसैं ही अनुभाय॥
उदय अस्त गति होत है, लैहु भेद सब पाय॥ १९॥
चौतीस लाष आठ सौ, जोजन कै उनमांन॥
रबिरथ चलै मुहुर्त्त मैं, समझि लेहु बुधिवांन॥ २०॥

अद्रि मांनसोत्तर ऊपरि, रबिरथ चक्र फिरंत॥
और दूसरौ चक्र नहिं, येकहिं चक्र लषंत॥२१॥
अरैं सु बारह मास षट, रीतु नेमियाँ तास॥
ग्रीषम बरषा सीत त्रय, नाभि कहीयत जास॥२२॥
गिरि सुमेर सौई लौह, किलोधुर रही लागि॥
रबि रथ कौलू ज्यौं चलत, प्रभु रचनां बिन थागि॥२३॥
सूरज कै रथ सौं तांह, लगै सात किंकांन॥
जोजन लाष छत्तीस है, रथ कै बीच सथांन॥२४॥
वालषिल्य इहिनांम रिषि, हैं जू साठि हजार॥
रबि सामुह असतुति करत, सारथि अरूण सुढार॥२५॥
रिषि गंधर्व रु अपसरा, मुनि जछि राछस नाग॥
और सबै ही देवता, रहै सेव रवि पाग॥२६॥
नव जू कोटि इक्यावनहिं, लष जोजन अनुसार॥
आठ प्रहरहिं मैं रबि चलत, सुनहुँ भेद निरधार॥२७॥
जौजन दोय हजार अरु, दोय कोस उनमांन॥
लांघत है प्रथवी इती, एक छिनक मैं भांन॥२८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचस्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकबिंसोऽध्यायः ॥ २१ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वाबिंसोऽध्यायः ॥

(भिन्न भिन्न ग्रहों की स्थिति और उनकी गति का वर्णन)

॥ राजोबाच॥

दोहा - नृप पूछत सुकदेव जू, सूरजादिक बिष्यात॥
ग्रह सुमेर दे दाहिनै, नित प्रत रहत भ्रमात॥ १॥
अरु रासिनहिं कै सामुह, उन दिस बांई और॥
कइसैं मांनै बात इहि, हम्ह सौं कहौ सुतौर॥ २॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि ज्यौं चाक पैं, चैंटी उलटी जाय॥
पैं जित चालै चाक तित, चैंटी चलत लषाय॥ ३॥
त्यौंही सूरजादि जु ग्रह, दहिनैं राषि सुमेर॥
चलतहिं बाईं ओर कौं, समझौ आछै हेर॥ ४॥
पैं सुमेर तैं दाहिनैं, जोत चक्र संपूर॥
फेरत हैं हरि भक्त ध्रुव, करि निज सक्ति समूर॥ ५॥

तांते सूर्जादिक जु ग्रह, दहिंनैं फिरत लषाय॥
प्रभु रचना अदभुत रची, निज ईछा कै भाय॥ ६॥
ए सूरज साष्यात है, नारायन भगवांन॥
जिन्हकी असतुति करत है, बेद भलैं उनमांन॥ ७॥
मूरति द्वादस धारिकैं, तुम्ह सूरज करतार॥
बसंतादि छहुं रितुन कै, हौ प्रगटावन हार॥ ८॥
बेद मार्ग धारि सूर्ज कौ, जै पूजत निरधार॥
पावत उत्तम लोकहुं तै, भुक्तत सुषहिं अनपार॥ ९॥
काल चक्र गति सूर्ज की, द्वादस मांस अकास॥
संवत्सर पष निस दिवस, भोगत बारह मास॥ १०॥
रबिमंडल लांघै अरध, सौं इक अयन कहाय॥
लांघै मंडल नभ सबै, संवत्सर जु गनाय॥ ११॥
संवत्सर परिवत्सर रु, अनुवत्सर ए तीन॥
वत्सर इडावत्सरनि जुत, नांम पंच कहि दीन॥ १२॥
ऊंचौ जोजन लाष इक, रबि तैं ससि अधिकाय॥
चलत वर्ष मैं रबि जितौ, ससि इक मांस चलाय॥ १३॥
जेतौ सूरज चलत है अैक महीनै मध्य॥
सवादोय दिन बीच ससि, उतनौ चलत प्रसध्य॥ १४॥
पनरह दिन मैं चलत है, सूर्ज जितै अनुसार॥
वैतोही ससि चलत है, येक दिवस कै ढार॥ १५॥
कृष्णा पछहिं रु सुकल पछ, मैं मांहीं निरधार॥
पितर देवतनि करत हैं, ससि ही पुष्ट सुढार॥ १६॥
इही अंनमय है सही, सुधा रु धानसरूप॥
ससि ही कहियतु मनोमय, सौरह कला संजूप॥ १७॥
पितर देवता भूत पसु, पंछी सरप बृछि समेत॥
सबनि पुष्ट कर्त्ता सौ ससि, कव्है सर्वमय हेत॥ १८॥
अट्ठाईस नछित्र हैं जै, जोजन लाष जु तीन॥
ससि तैं ऊँचै रहत हैं, लीजै समझि प्रवीन॥ १९॥
तांतैं जोजन लाष द्वै, ऊपर सुक्र बसाय॥
आसपास रबि कैं रहत, करता वृष्टि सुभाय॥ २०॥
अरु जांकी गति है सदा, निश्चै सूर्य समांन॥
विद्धा बल जामैं जु अधिक, गुर दैत्य कौं जांन॥ २१॥
तांतै जोजन लाष द्वै, ऊपर बुधहिं सुठौंन॥
रबि तैं न्यारौ होय जब, लोकन होत भलौंन॥ २२॥

तातैं जोजन लाष द्वै, मंगल ऊंचै वौर॥
डेढ महीनां रहत है, येकहिं रासि अकौर॥२३॥
वक्र होत मंगल जबै, ह्वै लोकन दुषदाय॥
अरु हम्ह भक्तन पैं नाहिंन, किहुं कौ जोर चलाय॥२४॥
तातै जोजन लाष द्वै, बृहस्पति उच्च बसाय॥
तेरह मांसन लौं रहत, येक राषि पै आय॥२५॥
अरु जब वक्र न होयत रबि, प्रांनिहुं दे आनंद॥
काहू बैरां वक्र ह्वै, देत छिजनि दुष दंद॥२६॥
तातै जोजन लाष द्वै, बसत सनिस्चर ऊंच॥
अैक राषि पै रहत है, मांस तीसहिं पहूंच॥२७॥
देत सनिस्चर दुष सबनि, इह जांनौ निरधार॥
जांकौ जांनत जक्त बिच, सबही भलै प्रकार॥२८॥
तातै ऊंचै सप्त रिषि, जौजन ग्यारह लाष॥
परकरमां ध्रुवलोक की, देत प्रकट इह साष॥२९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वाबिंसोऽध्यायः ॥ २२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रियोबिंसोऽध्यायः ॥

(शिशुमार चक्र का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - बोलै श्री सुकदेव जू, तातैं ऊंचै पाष॥
अतिहि उत्तम ध्रुव लोक है, जोजन तेरह लाष॥ १॥
इंद्र प्रजापति अग्नि पुनि, कस्यप धर्म समेत॥
परिकरमां ध्रुव लोक की, नित प्रतहित जुत देत॥ २॥
ग्रह नछत्र सबहींन कौ, थंभ लोक इह जांनिं॥
जिहं चहुं दिस सब फिरत ज्यौं, गाहत बृष लौं धांन॥ ३॥
ग्रह नछित्र सब जाय करि, प्रेरत बिच आकास॥
पंछी ज्यूं नाहीं गिरत, नित प्रत फिरत सभास॥ ४॥
ज्योति चक्र कौं कहत हैं, कोऊ चक्र सिसुमार॥
दुहूं नांम या एक कै, समझि लैहु निरधार॥ ५॥
जीव होत जल मांहिं यक, सौ अहि कै आकार॥
गोल होय बैठत सुधरि, पूंछ जु मुषहिं मंझार॥ ६॥

तइसै ही अनुभाय है, जोति चक्र अनुसार॥
ताहीं मैं सब लग्यौ है, ग्रह नछत्र बिस्तार॥ ७॥
तास पूंछ कै अग्र मैं, है ध्रुवलोक सथांन॥
अग्नि धर्म अरु इन्द्र है, पूंछहि विषै निदांन॥ ८॥
धाता और बिधाता पुनि, पूंछ मूल कै मांहिं॥
सप्तरिषी स्वर कटि बिषैं, अजवीथी पिष्टि ठांहि॥ ९॥
दहनैं पसवारैं दिसहिं, हैं नछत्र दस च्यार॥
अरु नछत्र दस च्यार ही, हैं बायैं पसवार॥ १०॥
उदर मध्य आकास अरु, गंग हरन अघ दुष्य॥
दछिन बांम नितंबनि कैं, बीच पुनर्वसु पुष्य॥ ११॥
अभिजित उत्तराषाड़ है, मधि नासादछ वांम॥
आद्रा असलेषा दुहूं, जांनहुं पायन ठांम॥ १२॥
श्रवन रु पूर्वाषाड है, दछिन बांम द्रिग मांहिं॥
मूल धनिष्ठा है दछिन, बांम कर्न के ठांहिं॥ १३॥
मघा आदि नछत्रहिं अष्ट, उलटि वांम पसवार॥
मृगसिरादि नछत्र दहनैं, पसवारैं संचार॥ १४॥
सतभिषा रु जेष्टा दछिन, वांम सकंदहिं ठौर॥
ठौडी पास अगस्त है, लीजै समझि सुतौर॥ १५॥
अरु उत्तरहिं हनु कै विषै, हैं अगस्त निरधार॥
बिषै अधर हनु कै जु जम, मंगल मुषहिं मंझार॥ १६॥
है सनिश्चर इंद्री मही, बृसपति ककुदहिं मांहिं॥
अरु नैत्रनि मैं रबि बसै, हृदै नारायन ठांहिं॥ १७॥
स्तनन मैं अस्वनी कुँवर, सुक्र नाभि मैं जांनि॥
ससि मन मैं बुध प्रांन मैं, राहु जु कंठ सथांन॥ १८॥
सर्ब अंग मधि केतू है, उडगन रोमनि मध्य॥
जोति चक्र भगवांन कौ, है इह रूप प्रसध्य॥ १९॥
यांकौ संध्या कै समैं, मन बच कैं निरधार॥
नमसकार करियैं सदा, जांनि रूप करतार॥ २०॥
ज्योतिष्य चक्र जु है इह, काल सरूप सुभाय॥
नमसकार जांकौ भलैं, यौं कहियै बचनाय॥ २१॥
ग्रह नछत्र तारान जुत, जोतिचक्र प्रभु रूप॥
जिहं बंदन कीनैं मिटैं, पाप दुषनि संजूप॥ २२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते जोतिचक्र बर्ननो नांम त्रयविंसोऽध्यायः ॥ २३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

।। अथ चतुर्विंसोऽध्यायः ।।

(राहु आदि की स्थिति तथा अतलादि नीचे लोकों का वर्णन)

।। श्री सुक उबाच ।।

दोहा - बोलै श्री सुक देव जू, रबि तैं नीचैं ठांम ।।
जोजन दस हजार परै, राहु बसत अघधांम ।। १ ।।
सौ प्रभु क्रपा प्रताप सौं, करिकैंहुं अमृत पांन ।।
अमर भयौ बिच आसुरनि, महा नीच बलवांन ।। २ ।।
बीच अष्टमही सकंद, कै कहि उतपति यांहिं ।।
समझ लीजियौ तब नृपति, सकल भेद मन मांहिं ।। ३ ।।
जौजन दसहुं हजार मैं, रबि मंडल बिसतार ।।
जौजन द्वादस सहस्त्र है, ससि मंडल अनुसार ।। ४ ।।
है जौजन तेरह सहस, मंडल राहु प्रमांन ।।
माथौ ही है राहु कै, घट जिहं नाहिं निदांन ।। ५ ।।
अमृत पांन कै समैं दिय, ससि रवि याहि बताय ।।
तातैं षाबैं कौं उन्हैं, दौरत है अकुलाय ।। ६ ।।
जांसौं रछा करनहुं कैं, काजै ससि रबि पास ।।
प्रभू सुदरसन चक्र कौं, राषै सहित हुलास ।। ७ ।।
तांकै डर सौं भजत है, दूरहिं तै बह राहु ।।
निकट जाय नांहिंन सकत, सोइ ग्रहन अवगाहु ।। ८ ।।
सिद्ध चारन बिद्या धरन, कै जिहं तरैं सथांन ।।
जिन्ह तर प्रेत पिसाच अरु, राछस सथल सथांन ।। ९ ।।
पवन चलत घन रहतहिं, इह अंतरिछ कहाय ।।
तांते सौ जोजन तरैं, मंडल प्रिथ्वी सुभाय ।। १० ।।
ऊपर कैऊ उड़त है, पंछी हंसनि जू आदि ।।
भुव बर्नन किय पहलहीं, जहँ लौं नग मरजादि ।। ११ ।।
अरु या प्रिथवी कै तरैं, जानहुँ तल है सात ।।
जोजन दस दस सहस कै, अंतर सौं बिषयात ।। १२ ।।
अतल बितल पुनि तलातल, सुतल महातल ठांम ।।
रसातल जु पाताल ए, हैं सातनिकैं नांम ।। १३ ।।
स्वर्गहुं तैं आनंद अति, इन सातौं तल मांहिं ।।
कांम भोग अैस्वर्ज धन, सुरपुर तैं अधिकाहिं ।। १४ ।।
घर उपवन अति सुभग जहँ, कैऊ सथल बिहार ।।
तहँ तिय सुत जुत अहि असुर, करत बिनोद अपार ।। १५ ।।
इन्ह सातौं ही तलन बिच, बलि दैत्य मय नांम ।।
नगरी रची अनैक है, अति अद्‌भुत अभिरांम ।। १६ ।।

तिनमैं मनिमय गेह बहु, दरवजैं बहु कोट॥
सोभित सभा सथान बहु, नहिं उपमा जिन जोट॥१७॥
तिनमैं अस्त्री पुरुष कै, रचैहुं चित्र बहु रुप॥
सुक मैंना रु कपोत जहँ, सोभित बनैं अनूप॥१८॥
रतन जडित भुव झलमलत, जात सोभ कहि नांहिं॥
बउंत सरोवर लषत है, उज्जल जल जिन मांहिं॥१९॥
मछ आदिक जल जंतु बहु, जिनकैं मधि उछरंत॥
भ्रमरि परत जल गहरि की, सुभ तरंग जु लषंत॥२०॥
कमल कुमद रु सतपत्र पुनि, इंदीवर कलहार॥
अैसै प्रफुल्लित कमल बहु, तिनमैं कई हजार॥२१॥
बाग अनूप अनैक हैं, सुर कानन समतूल॥
दाता मन आनंद कै, जिन्हमैं फल दल फूल॥२२॥
लता लपटि रहि बृछिनि मैं, सोभित सरस रसाल॥
सब्द करत पंछी बिबिधि, मनहुं मैंन चटसाल॥२३॥
उहां कैं बासीन करत, तिन्हमैं बिबिधि बिहार॥
स्वर्गहुँतैं सुष अधिक है, जांनहुँ जांह अपार॥२४॥
राति दिवस कौं भेद कछु, नाहिंन है जिहँ ठौर॥
सर्प मनिनिहीं कौ रहत, तहँ उजियार सुतौर॥२५॥
बहिं ठां कैं बासिन कौं, दिवि औषध अनपांन॥
भोगन सौं नहिं होत है, प्रापति इतै बिधांन॥२६॥
आधि व्याधि बृध अवस्था, दुगंध पसीना अंग॥
कालहु कौ भय होत नहिं, औरै किहूं प्रसंग॥२७॥
अैक सुदरसन चक्र सौं, डर परत है सदांहिं॥
तेज सुदरसन चक्र कै, तैं तिय गर्भ गिरांहिं॥२८॥
तांह अतल मैं मय दयत, कौ सुत है बल नांम॥
माया जिन्हहिं अनैक बिधि, करी प्रगट बहिं ठांम॥२९॥
जिन माया कौं और कौं, जांनत नहिं किहुं भाय॥
लैन उबासी जास मैं, तिया तीन प्रगटाय॥३०॥
पुंश्चली स्वइरणी अवर, कहै कांमनी नांम॥
रूप गुननि जुत वै तिया, है अदभुत अभिरांम॥३१॥
तैं रस हाटक नाम कौ, पाय पुरष बहिं ठौर॥
सब समर्थ ह्वै लहत हैं, आछी भांति सुतौर॥३२॥
पाछै हासि कटाछ मधु, बचन आलिंगन भाय॥
बिहरत है वापुरष सौं, वै तिय चित्त उमगाय॥३३॥

बहिं कै बासी पुरष करि, बहि रस औषध पांन॥
आपहि यौं मांनत कि हम्ह , ईस्वर सिद्ध निदांन॥ ३४॥
दस हजार हाथिन कौं, बल निश्चै हम्ह मांहिं॥
अैसौं मांनत आपकौं, आनंदित उर ठांहिं॥ ३५॥
तैहुं तर बसत वितल मैं, निज पार्षदनि समेत॥
नांम हाटकैस्वर जु सिब, लियै सिवा जुत हेत॥ ३६॥
तैं ब्रह्मा कै सृष्ट की, बृद्धि बढावन काज॥
मग्न रहत है सिव तांह, भक्त सिरोमनि राज॥ ३७॥
जांह सिवा सिव बीर्ज की, नदी बहत तिहं ठांहिं॥
ताकौं पीवत है अगनि, उगल देत है तांहिं॥ ३८॥
जांतैं कंचन होत है, कहियत हाटक नांम॥
वांह कै बासी पहरहिं, तिहिं भूषण अभिरांम॥ ३९॥
तांतै नीचै सुतल कै, बीच बसत सुष पाय॥
पुत्र बिरोचन कौ जू बलि, बसत बली अधिकाय॥ ४०॥
बासवकै कारिज निमिति, ह्वै बावन अवतार॥
लीनौं राज छिनाय तिहिं, राष्यौ सुतल मँझार॥ ४१॥
तींह इंद्रहूं तैं अधिक, बलि नृप सुष बिलसंत॥
दीन दयाल क्रपाल हरि, तिनकी भक्ति करंत॥ ४२॥
परमात्मा भगवांन कौ, सकल प्रथी दिय दांन॥
तांकौ फल इह नांहिं जो, नृप तांइ सुतल स्थांन॥ ४३॥
उषटत झींकत गिरत मैं, लीनौं जिहिं हरिनांम॥
तौ सब बंधन कर्म मिटि, लहै मुक्ति अभिरांम॥ ४४॥
जोग ग्यांन साधत भलैं, बडे बडे जोगेस॥
काटन बंधन कर्म कौ, प्रसंन करन बिसबेस॥ ४५॥
जा हरि कौ जिन बलि नृपति, भूमि दांन दिय चांहिं॥
राज करत है सुतल कौ, सुफल न जाकौं नांहिं॥ ४६॥
अंतराय हरि भक्ति कौ, निश्चै राज निदांन॥
राज पाय सुधि करत नहिं, सुषदाता भगवांन॥ ४७॥
जिहं राजा बलि पास लिय, भिछा मांगिहुं त्रिलोक॥
बरुन पांस तैं बांधियै, डारि कंदरा वोक॥ ४८॥
बचन कहै जिहं समैं हुय, जिन नृप बुधिवांन॥
मंत्री बृसपति सारसौ, तऊ न इन्द्र सुजांन॥ ४९॥
इहि म्हैं नहिं जांनत हौंकि, जिन बावन जू पास॥
मांग्यौ राज त्रिलोक कौ, जच्यौ न पद हरिदास॥ ५०॥

राजकाल आधीन है, नष्ट होत नहिं बार॥
मुक्ति दैन भगवांन सौ, जिन मांग्यौ गंवार॥५१॥
मो दादै प्रह्लाद जू, प्रभु दासा पन चांहिं॥
तुछ जांनि कै राजहुं कौ, लेत भये वै नांहिं॥५२॥
अग्यांनी हम्हहुं सारसै, टर्यौ न जिन मन मैल॥
हरि की क्रपा भई नाहि, बउंत पाप कै फैल॥५३॥
माया मोहित ह्वै रहै, कर्म बंध लगि गोहिं॥
ऐसैं हम्ह प्रह्लाद जू, कै न बराबरि होंहिं॥५४॥
श्रीसुक कहत कि हे नृपति, बलिहुं चरित्र सुषदाय॥
बीच अष्टम जु स्कंध कै, बरनैंगे सब भाय॥५५॥
द्वारपाल ह्वै कै सदा, जिहं राजा बलि द्वार॥
लियै गदा ठाढे रहै, बांमन जू निरधार॥५६॥
करत दिगबिजय सीस दस, तहँ आयौ इक बार॥
ठोकर दै बांमन प्रभू, दीनौं तांहिं उछार॥५७॥
दस हजार जोजन उपरि, जाय पर्यौ दससीस॥
बहुरि कबहुँ आयौ नाहिं, वांह लंक कौ ईस॥५८॥
जांकैं नीचै तलातल, मधि मैं दैत बसाय॥
सौं अधिपति ही त्रिपुर कौ, पहलै औसर पाय॥५९॥
भसम कियै सिव त्रिपुर जब, बसत तलातल मांहिं॥
पाय क्रपा सिव की तांह, चक्रहुँ भय तिहं नांहिं॥६०॥
जांकै नीचै महातल, विषै सर्प बस क्रोध॥
कद्रू कै सुतनि बसत हैं, फन अनेक बिन बोध॥६१॥
कालिय कुहक सुषैंन अरु, तक्षक ऐसै नांम॥
तिय सुत जुत जु प्रमत भयै, गरुड रहत उर ठांम॥६२॥
मिद्ध रसातल कै रहत, करत दैति अवगांहिं॥
कवचनिवात काल हिर्ण्य, पुर बासी सुकहाहिं॥६३॥
बडेहुं बलि अरु साहसी, जे सबही बिषयात॥
चक्र सुदरसन सौं जिननि, मद जु हर्यौ है जात॥६४॥
बासब की दूती तांह, सरमा नांम सुहाय॥
बरन इंद्र कै मंत्र तै, पढत सकल डरि जाय॥६५॥
तातैं तरैंहुं पाताल, बिषै बसत है नाग॥
कहत नांम तिनकैं अबै, सुनहुं नृपति बडभाग॥६६॥
बासुकि महासंष कुलिक, संष धनंजय स्वेत॥
संषचूड कँवल अस्बतर, देवदत्त सुबिजैत॥६७॥

धृतराष्ट्र जू समेत है, असै असै नांम॥
जिनकै बहु फन सहस लौं, झमकत मनि अभिरांम॥६८॥
तिन सौ बिच पाताल कै, अंधकार ह्वै दूर॥
अति उजियारौ ह्वै रह्यौ, दिन मनि कै सम पूर॥६९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्बिंसोऽध्यायः ॥ २४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचबिंसोऽध्यायः ॥

(श्री संकर्षण देव का विवरण और उनकी स्तुति)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा – जौजन तीस हजार तिहं, तरैं बसत है सेष॥
मूर्ति तामसी प्रभु कला, जे जानहुँ फनगैष॥१॥
अधिष्टाता अहंकार कै, जिनकैं फनजु हजार॥
यक फन पैं भुव कौं धरैं, सरसौं कन अनुसार॥२॥
प्रलै कियौ जब चहत वै, टेढी भौंह करंत॥
जांसूं कर लियै त्रसूल, त्रनैत्र रुद्र प्रगटंत॥३॥
जिन्हकैं चरनन मद्धि नष, उज्जल मनैंन समानि॥
बड्डे नाग जू करत है, बंदन तिनकौं आनि॥४॥
कुंडल मंडित मुष अपुन, तिहिं प्रतिबिम्ब सुढार॥
सेष चरन नष मद्धि लषि, होत प्रस्त्र निरधार॥५॥
नाग कन्या करि कांमनां, चंदन सुगन्ध लगाय॥
सेष नाग जू की भुजनि, पूजत है सुष पाय॥६॥
रजतथंभ उज्जल परम, जिनकै सम निरधार॥
कंकन बाजूबंद जुत, सोभित भुजा सुढार॥७॥
कांम नाग कन्यान कै, प्रगट जब मुसक्यांय॥
सेष नाग जू कौ बदन, लषत लाज सरसाय॥८॥
है समुद्र बहु गुनन कैं, आदि देव भगवांन॥
जीतै क्रौध बिराजहीं, करन लोक कल्यांन॥९॥
विद्याधर सुर असुर मुनि रु, सर्प सिद्ध गंधर्ब्ब॥
धरत ध्यांन जिनकौं हदै, अधिक चाह जुत सर्ब्ब॥१०॥
जिन्ह प्रभू कै मदमत्त द्रग, अति सुंदर मुष बैंन॥
तिन्हकरि निज पार्षदन कौं, प्रभु आनंद सुदैंन॥११॥

तुलसि माल पर मत्त अलि, करत मधुर गुंजार॥
नील बस्त्र अरु कान इक, कुंडल लषत सुढार॥१२॥
अरावत सम स्वेत अंग, कत्छा धरै सुबर्न॥
हल ऊपर राषै भुजा, राषत असरन सर्न॥१३॥
तुंबर नांम गंधर्व जुत, नारद जू चित्त चांहिं॥
सेष सुजस बरनन करत, ब्रह्म सभा कै मांहिं॥१४॥
जइसै नारद जू कह्यौ, सेस सुजस बिसतार॥
तइसै अबहौं कहत हौं, सौ सुनियै निरधार॥१५॥
उत्पत्ति पालन प्रलय कै, कार्न प्रकृति गुन तीन॥
करन काज सब समर्थ है, जिन प्रभु क्रपाधीन॥१६॥
जिन्ह प्रभु कै आधार इह, सकल जगत बिसतार॥
अैसै ब्रह्म सरूप है, सेसनाग निरधार॥१७॥
जांनै कौ जिन्ह कर्म कौं, निश्चै करि जग मांहिं॥
भक्तन ऊपरि क्रिपा गुन, स्तुति बिनहीं प्रगटांहिं॥१८॥
है जिन्हकैं आधार इहि, सकल जगत बिषयात॥
बडो पराक्रम सिंघ कै, सम तिनकौं अषियात॥१९॥
कइसैहुँ कोउ लैय जो, प्रांनी जिन्हकौं नांम॥
दूरि हौय सब पाप तैं, लहै मुक्ति अभिरांम॥२०॥
सेस नाग अैसैंन की, सरन रहै जो कोय॥
जाय न आश्रै और कै, मुक्ति चहत जो होय॥२१॥
परबत नदी समुद्र जुत, मंडल प्रिथ्वी सथांन॥
जिन्हकै मस्तक पैं रहत, सरसौं कनहिं समांन॥२२॥
रसना होय हजार जो, काहू कै मुष मांहिं॥
सेस नाग जू कै गुनहिं, बर्न सकै कोऊ नांहिं॥२३॥
बडौ सेष भगवांन कौ, गुन बीरज परताप॥
नारद जू बिधि सभा मैं, कहत जु यौ गुन जाप॥२४॥
जिन्ह जिन्ह लौकनि मैं फिरत, जीव कर्म निज भाय॥
तिन्ह लौकनि बरनी नृप, हम्ह दिय तुम्हहिं सुनाय॥२५॥
कर्त्ता जू धर्म सकांम जे, प्रांनी कोउ निदांन॥
तैं इन्हहीं लौकनिनि बिच, फिरत रहत बिन ग्यांन॥२६॥
जब जो पूंछौ तुम्ह नृपति, सौ हम्ह कहै सुनाय॥
चित्त संदेह जु होय कछु, राषौ सौ न दुराय॥२७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचबिंसोऽध्यायः ॥ २५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षडबिंसोऽध्यायः ॥

(नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन)

॥ राजोबाच ॥

दोहा - नृप पूछत सुकदेव जु, तुम्ह इह कह्यौ बषांन॥
जीव अनेकनि लोक मैं, फिरत जु रहत निदांन॥ १ ॥
जुदी जुदी रचना जांह, हैं बिचित्र निरधार॥
याकौ कारन कहहुँ मुनि, आछें करि बिसतार॥ २ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

बोलै श्री सुकदैव जू, फिरि अैसै अनुसार॥
सात्विक राजस तामसी, सर्द्धा जु तीन प्रकार॥ ३ ॥
जइसी सर्द्धा सुं करैं जो, कोऊ धर्म सकांम॥
तै सोई पावत जु फल, बसि बैसी ही ठांम॥ ४ ॥
तामस सर्द्धा सौं करैं, पाप कर्म जो कोय॥
जानहु नृप निष्चै नरक, ता प्रांनी कौं होय॥ ५ ॥
तै हैं नर्क हजार केइ, कहँ लौं कहौं गनाय॥
मुष्य नर्क तिन्ह मांहिं जे, बर्नन करि हौं राय॥ ६ ॥

॥ राजोबाच ॥

राजा पूछत सुनि कहौ, हम्ह सौं जात प्रसिध्य॥
नर्क देस कोउ है त्रय, लोक उपरि कै मध्य॥ ७ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक बोलै दछिनूं दिसा, बिषै त्रिलौकी मांहिं ॥
प्रथवी तर जल ऊपरैं, है बहुनर्क कुठांहिं॥ ८ ॥
बसत पितर गन जहं बहुंत, अरु बैठै जमराय॥
मृत्यु समैं जमदूत तहँ, जीवनि कौं लै जाय॥ ९ ॥
जइसै पापी हौहि तहं, तैसौ ही दै दंड॥
प्रभु आग्या अनुसार है, सब मर्ज्जाद अषंड॥ १० ॥
अब पहलैं बर्नन करैं, तिनकैं नांम इकीस॥
सात नर्क कै नांम फिरि, कहि हैं सुनि अवनीस॥ ११ ॥
क्रिमि भोजन तामिश्र महा, रौरव कुंभी पाक॥
काल सूत्र असिपत्रवन, है अति दुष देवाक॥ १२ ॥
रौरव अंधतामिश्र अंध, कूप पूयोद सन्दंस॥
सूकर मुष बज्रकूंठ, बैतरणी विषसंस॥ १३ ॥
प्रांन निरोध अबीचि अरु, तप्तसूर्मि अयपांन॥
बिससन लालाभक्ष पुनि, सालमली दुषथांन॥ १४ ॥

सारमेयादन जुक्त अैं, नर्क इकीस निदांन॥
सात नर्क कै नांम अब, औरहुं कहूं बषांन॥१५॥
अवटनिरोधन दंदसूक, पुनि पर्यावर्त्तन जांन॥
रष्यौगन भोजन अवर, सूची मुष जु निदांन॥१६॥
सूल प्रोत जांनहु अवर, बहुयौं कर्दमषार॥
बै इकीस यै सात मिलि, आठ बीस निरधार॥१७॥
होत अनैंकनि जातना, प्रांनि कौ जिन मांहिं॥
पाप करै तैसौं लहै, दंड जीव बहिं ठांहिं॥१८॥
जो धन स्त्री अरु पुत्र हरि, कोउ परायौ लैत॥
जम कालपास सौ बांधि, तामिश्र नर्क तिहिं दैत॥१९॥
करत दंड ताड़न जांह, मिलत अंन जल नांहिं॥
तहं प्रांनी लहि अधिक दुष, मूर्छा प्रापति पांहिं॥२०॥
किहूं पुरुष कौं दैत है, जो कौ दगा निदांन॥
अरु बांकी तिय सौं करत, भोग आप सुषमांन॥२१॥
नरक अंधतामिश्र मधि, तै नर परत कुपात॥
तांह पाय पीडा अधिक, द्रिष्टि नष्ट ह्वै जात॥२२॥
अरु जे किहुँ की तिया सौं, पुरष मिलावत और॥
तैहू वाही नरक मैं, परत लहत दुष घौर॥२३॥
अरु जे काहू कै बउत, अहंता ममता हौय॥
द्रोह और प्रांनीन सौं, करै धर्मब्रत षौय॥२४॥
निज कुटंब ही कौ करै, पालन बहुंत प्रकार॥
सौ परही या पाप सौं, रौरव नर्क मँझार॥२५॥
इन्ह मारे है जीव जै, मारत याहि कुठार॥
सांपहुं तैं अति भयंकर, धरै रूपहिं बिकरार॥२६॥
अरु महा रौरव नर्क है, अैसै ही अनुभाय॥
पालत अपनी देह ही, सौ नर वामैं जाय॥२७॥
सांपहुँ तै अति भयंकर, जीव वांह रुरु नांम॥
तोरि तोरि बांके पलहि, षावै आठौ जांम॥२८॥
जीवत पसु पंछीन कौ, जे कौ रांधत नीच॥
दुष्ट परत हैं ते नरक, कुंभी पाकहि बीच॥२९॥
वाजु नर्क कै मध्य मैं, औटत तातौ तेल॥
तामैं रांधत दूत जम, या प्रांनी कौ मेल॥३०॥
पिता बेद ब्राह्मननि कौं, द्रौह करत निरधार॥
नर्क कालसूत्रहीं मधि, तैं नर परत कुचार॥३१॥

जौजन दसहिं हजार है, बा नर्कहिं उनमांन॥
तपत अग्नि रबि सम अधिक, तांबाभूमि सथांन॥३२॥
तामैं डारत जब इहै, लुटत उठत दौरंत॥
सकल अंग जरिजात है, महादुष्षहिं भुक्तंत॥३३॥
जितनैं रोम जु होत हैं, पसू अंग कै मांहिं॥
तितनैं सहसनि बर्ष लौं, पर्यौ रहत उहिं ठांहिं॥३४॥
चलत मार्ग पाषंड बिच, तजि कैं मारग बेद॥
ते असिपत्रवन नर्क मैं, परत लहै अति षेद॥३५॥
तामैं अैसैं बृछि जिन, पात मनूं तरवार॥
तिन्हसौं बांधि रु देत जम, दूत कोरडा मार॥३६॥
बां तैं जित तित और कौं, प्रांनी इहै भजात॥
तित तित उन्ह तरु पत्र सौं, याकै अंग कटात॥३७॥
इह जब मूर्छित होत हैं, महाकष्ट सरसाय॥
अैसैं फल पाषंड कौ, भुक्तत है दुषदाय॥३८॥
जो कौ नृप अथवा नृपति, कौ चाकर किहुं हेत॥
दंड अदंडनि देय कैं, द्विजनि दंड तन देत॥३९॥
सौ सूकर मुष नर्क कै, मध्य परत है जाय॥
जहं जम किंकर पेल कैं, कोल्हू बीच कुभाय॥४०॥
जइसै कौ सांठांनिकौं, पेलत कोल्हू मांहिं॥
तइसै ही या जीव कै, सबै अंग पिसि जांहिं॥४१॥
और किंहू कै दुष्ष कौं, वे जांनत है नांहिं॥
भौजन दियौ बताय प्रभु, सौ करि जनम बितांहिं॥४२॥
जइसै षटमल काटिंही, करै रुधिर कौ पांन॥
अैसैं जीवन कौं कोउ, मारत पुरष अग्यांन॥४३॥
अंध कूप नर्कहिं जु मधि, जे नर परत निदांन॥
हौत महा ब्याकुल लहत, अति कलेस उहिं थांन॥४४॥
माषी माछर पसु पंछी, अहि मृग जुवां समैत॥
यै उहिं ठां अधियार मैं, यांकौ अति दुष दैत॥४५॥
बांटें बिना कुटंब मैं, भली बस्तु जो षाय॥
पंच जिग्य नांहीं करत, सो सम काग कहाय॥४६॥
सौ क्रमि भोजन नर्क मैं, मनुष परत निरधार॥
कुंड सुहे कीरांन लष, जोजन कै अनुसार॥४७॥

तामैं कीरां रूप है, प्रांनी इहै परंत॥
काटि काटि वे षात हैं, कीरां याहि अनंत॥४८॥
अरु जो कौ चोरी करै, कै जोरी अनुभाय॥
रतन सुवर्न जु द्विजन कौ, लेत आप सुषपाय॥४९॥
तिह्नै तप्त लोहांन सौं, छेदत जम कै दूत॥
अपनैं कर्त्तव्य सौं यहै, भुक्तत कष्ट कपूत॥५०॥
पर अस्त्री सौं जो कोउ, पुरष मिलत अन्याय॥
अरु अस्त्री पर पुरष सौं, मिलत भोग सुष चाय॥५१॥
लोहे कै तिय पुरष रचि, तातै अग्नि समांन॥
जिन्हसूं मिलवत है उन्हैं, जम कै दूत निदांन॥५२॥
नरक तप्त सूरिमय है, कहियतु याकौ नांम॥
पावत फल विभचार कौ, बिभचारी उहिं ठांम॥५३॥
जे कोउ पुरष पसूं सौं, चेष्टा करत श्रृंगार॥
सो बज्रकंटक साल्मली, नरक परत निरधार॥५४॥
सालमली है बृछि जहँ, जिहं कांटे बज्रमांन॥
ता पर प्रांनी कौं चहुडि, जम चर षैचंत तांन॥५५॥
नृप वा नृप सेवक कोउ, धर्म म्रजादमिटांहिं॥
जे बइतरनी नदी मैं, परत महा दुष पांहिं॥५६॥
बहै नदी जम द्वार पर, है जांनहुं निरधार॥
जहँ याकौं काटत बडै, बडै जीव बिकरार॥५७॥
रुधिर राधि मल मूत्र कच, मेद हाड नष मांस॥
इन्हकी है बह नदी जहँ, मनुष लहत अतित्रास॥५८॥
जे कौ दासी पति पुरष, निर्लज पसूं समांन॥
हीन धर्म आचार मैं, महा मदंध अग्यांन॥५९॥
तै पूयोदन नर्क कै, मद्धि परत है जाय॥
पाप कर्म अपनैं जांह, भुक्तत अति दुषदाय॥६०॥
कुंड राधि मल मूत्र कौ, है सो नर्क सथांन॥
तामैं परि कैं राधि मल, मूत्र करत है पांन॥६१॥
बिनां प्रयोजन जे कोउ, पालत ग्रीध रु स्वांन॥
मारत बीच सिकार कै, जीवन कौं अग्यांन॥६२॥
नर्क प्रांन रोधनहिं मध्य, ते वे परत कपूत॥
बेधत बेधा करि जिह्नै, तीरन सौ जमदूत॥६३॥

दंभी मिस करि जिग्य कौ, झूठै ही जे कोइ॥
हतत पसुन कौ जिन नरनि, नर्क वईसस होइ॥६४॥
तिनकौं जम कै दूत जहँ, डारत मारि पछारि॥
अति निर्दय ह्वै देत है, मनुषहिं कष्ट कुडारि॥६५॥
जो कोऊ द्विज सबर्ण, त्रिय मुष पावत बीर्ज॥
कांमी महा कुपात सौ, षोयो धर्म रु धीर्ज॥६६॥
जो तजि स्वअस्त्री सबर्ण, बीर्ज करत है पात॥
सो लालभक्ष नर्क मैं, परत दुषि बिललात॥६७॥
नदी बीर्ज ही की बहै, जांनहुं नर्क सथांन॥
करबावत जमदूत जहँ, बही बीर्ज कौ पांन॥६८॥
कौ चोर किहूं घर अंनल, लगावत काहु हेत॥
राहगीर और राह कौं, लूटत कैं विषदेत॥६९॥
नर्क सारमेयादनहिं, मधि जे परत कुपात॥
स्वांन सात बीसी जिह्वै, बज्र जिभा जांह षात॥७०॥
द्रिबि लेत अरु देत मैं, जे बोलत हैं झूठ॥
तैं अवीच नरकहिं परत, पावत कष्ट अतूठ॥७१॥
सौ जोजन नग उच्चा तैं, पटकतहिं बारंबार॥
आय परत नर सिला पर, जिहं ठां अैसी मार॥७२॥
ब्राह्मन छित्री बैस्य करि, सोमपांन जिग्य बीच॥
फिर पांछै मदिरा पियैं, कौऊ बुद्धि कौ नीच॥७३॥
कै ब्रत मैं तिय पुरष कौ, कर ही मदिरा पांन॥
तिह्वै लौह औटाय कैं, प्यावत जम बहि थांन॥७४॥
कहियत है वां नर्क कौ, नांम सुनहुं अयपांन॥
इहां करत है मनुष अघ, फल तांहीं उनमांन॥७५॥
आचारी पुनि तपस्वी, बडे सो विद्यावंत॥
जिनकौ जे अभिमांनसौं, अनआदर जु करंत॥७६॥
नर्क ष्यारकरदमहिं मधि, जे नर परि दुष पांहिं॥
तर सिर ऊपरि पाव यौं, कीच बीच फंसि जांहिं॥७७॥
करिकैं होम जु मनुष कौं, पापी जन अहलादि॥
प्रस्नं करत है जैं कोउ, भैरव देवी आदि॥७८॥
जिनकौं जम कै दूत धरि, राकस रूप कुभाय॥
सस्त्रन सौं हतिषात पुनि, निर्त्तहिं करत सुषपाय॥७९॥

नगर ग्रांम बन मांहिं जे, बलकरि पकरि पसून॥
बांधत छेदत अधम जन, उर डर धरत प्रभून॥ ८० ॥
नर्क सूलप्रोतहिं जु मधि, जे परहीं अग्यांन॥
दै हैं सूली पर चढै, जहँ जम चर बलबांन॥ ८१ ॥
चूंच बज्र कीसी जिननि, अैसे पंछी अछेह॥
तोरि तोरि जे षात हैं, निसदिन याकीं देह॥ ८२ ॥
अरु जेहैं कोउ दुष्ट जन, सर्प समांन सुभाय॥
देत बिनां अपराध दुष, प्रांनिन अनष बढाय॥ ८३ ॥
दंदसूकमुष नर्क तिहं, मांहिं परत जे जाय॥
सात सात दस दस मुषी, अहि तहँ षांहि कुभाय॥ ८४ ॥
जे कौ षाड गुफान मैं, रोकत है प्रांनीन॥
नरक जे अवरोधन विषै, तैं परही मति हीन॥ ८५ ॥
याहि डारि जहँ षाड मैं, जम कै दूत रिसाय॥
बिष जराय जाकौ धुवां, करत महादुष दाय॥ ८६ ॥
अतिथ अभ्यागत भूष बस, आवै गृहस्थहिं धाम॥
गृहस्थ लषै जिन्ह और कौं, क्रोध धारि हिय ठांम॥ ८७ ॥
जे पर्यावर्त नरक मैं, पापी परत कुढारि॥
ग्रीध कंक बज्र चूंच सौं, जिन्ह द्रिग लैत उषारि॥ ८८ ॥
जे द्रिव्य कौं अभिमांन अति, राषत है मनमांहिं॥
अहंकारी ह्वै सबन कौं, सूधैं देषत नांहिं॥ ८९ ॥
डरपत ही बै रहत मति, द्रिब्य रहै कहूं जात॥
हदौ रहत सूकौजिननि, ल्याय देत उतपात॥ ९० ॥
करत रहत नित द्रिब्य की, रछया घरहीं मांहिं॥
धन जोरत बढवत सदा, धनही की चित चांहिं॥ ९१ ॥
जे सूचीमुष नर्क मैं, परत जांह जमदूत॥
सूयन सौं या अंग कौं, छेदत सींवत धूत॥ ९२ ॥
अैसै केइ हजार हैं, नर्क गने नहिं जांहिं॥
जिन्हमैं पापी परत हैं, निज करतब फल पांहिं॥ ९३ ॥
अैसैं ही धरमातमा, स्वर्ग लोक मैं जात॥
पावत फल निज धर्म कौ, पूरन सुष बिष्यात॥ ९४ ॥
धर्म अर्थ मनुष्य जिनकी, यैहौंहिं दुहूं थोक॥
तैं थोरे रहि जांहिं जब, उपजत बिच नरलोक॥ ९५ ॥

हम्ह तुम्ह सौं पहलहिं कह्यौ, मग निवर्ति है राय॥
सो तौ प्रभु कैं मिलन कौ, है उपाय सुषदाय॥ ९६॥
सकल इहै ब्रह्मांड जो, चउदह लोक संजूप॥
सोई बिराट स्थूल है, प्रभु कौ रूप अनूप॥ ९७॥
सो हम्ह तुम्ह सौं कह्यौ इह, पढै सुनैं जो सार॥
बहै ब्रह्म कै रूप कौं, पहचानैं निर्धार॥ ९८॥
प्रभु कै दोय सरूप हैं, सूछिम स्थूल निदांन॥
जिन्हमैं प्रथम स्थूल मैं, मन लावै बुधिवांन॥ ९९॥
पांछै सूछिम रूप मैं, दीजै निज मन लाय॥
पूरन प्रीति प्रतीति सौं, रहियैं मन ठहराय॥ १००॥
षंडदीप प्रथवी नदी, स्वर्ग दिसा पाताल॥
नग समुद्र पुनि नर्क जुत, रचना लघु रु बिसाल॥ १०१॥
प्रभु कौ रूप स्थूल है, इह सबही बिसतार॥
सौ तुम्ह सौं बर्नन कह्यौ, हम्ह नृप भलै प्रकार॥ १०२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षटबिंसोऽध्यायः ॥ २६ ॥)

॥ पंचम स्कन्ध संपूर्णम्॥

(पोथी को सं. १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री)

(कुल छन्द ११३२, छंद योग क्रम ५५८०)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राज राजेश्वर राजा श्री राजसिंघ जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुंवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी' जी कृत श्रीमद्‌भागवत भाषा षष्टम स्कंध लिष्यते)

॥ षष्टम – स्कन्ध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(अजामिल उपाख्यान का प्रारंभ)

(मंगलाचरण)

छप्पय – जय जय श्री गोपाल, जयति श्रीभांन दुलारी ॥
जयति जयति श्री गुरु हुँ, क्रपाल सुक जु सुभकारी ॥
जयति जयति श्री ब्यास, भागवत उतपन्न करता ॥
जयति जयति हरि भगत, जुगल पद रस अनुसरता ॥
जिन्ह क्रिपा प्रताप उछाह धरि, ब्रजदासी अति उमंगि हिय ॥
षष्टम स्कंध बर्नन करन, हरषित ह्वै आरंभ किय ॥ १ ॥

दोहा – याहि षष्टम जु संकंध मैं, पौषन लीला भेव ॥
अब उगनीस अध्याय करि, बरनैंगे सुक देव ॥ २ ॥

॥ उपाख्यान ॥

॥ राजोबाच ॥

नर्क यातना सुनि डरपि, पूछत नृपति सचित्त ॥
हे मुनि द्वितीय स्कंध मैं, तुम्ह मग कह्यौ निब्रत्ति ॥ ३ ॥
जीव इहै बिधि लोक मैं, प्राप्त होत है जांहिं ॥
प्रलैं समैं बिधि संग ह्वै, हरि मैं जात समांहिं ॥ ४ ॥
फेरि बांह तैं गिरि परै, पुन्य छीन अनुसार ॥
जनम अनैंकनि धरत है, बहुर्यौ बारंबार ॥ ५ ॥
अरु नर्कनिहूं कौं कियौ, बर्नन आछी रीत ॥
स्वायंभुव मनु कौं कियौ, बर्नन परम पुनीत ॥ ६ ॥
प्रियब्रत अरु उत्तांनपाद, बरनैं एउ सुभाइ ॥
द्वीप षंड अरु नग नदी, सिंधु कहै समझाइ ॥ ७ ॥
भुव बिभाग बर्नन कियौ, बर्नैं स्वर्गपाताल ॥
अब कहुँ जांसौं होइ नहिं, नर्क असह जंजाल ॥ ८ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

बोलै श्री सुकदेव जू, प्रांनी कौउ अचैत ॥
मन बच क्रम करि करत है, पाप अनैक बिजैत ॥ ९ ॥
प्राश्चित जिन्हकैं हैं लिषै, धर्म सास्त्र कैं मांहिं ॥
तिन्हकौं नाहिंन करत जें, मरि नर्कनि मैं जांहिं ॥ १० ॥

तातैं जीवत ही इहै, प्रांनी करै बिचार॥
प्राश्चित लघु गुरु पाप कौं, जथा जोग्य अनुसार॥११॥

॥ राजोबाच॥

नृप पूछत प्रानीन कौं, राजदंड इहिं होत॥
सौ देषत है जीबुं सब, परगट करत उद्दोत॥१२॥
सास्त्रनिहूं मैं सुनतहुँ, नर्क होत पापीन॥
तातैं जांनत हैं इहै, पाप ह बुरौ सरीन॥१३॥
अरु प्राश्चित करि पाप कैं, करत फेरिहूँ पाप॥
ज्यौं सनांन करि सीस रज, गज डारत है आप॥१४॥
तातैं करनौं बृथा है, प्राश्चितहूँ निरद्धार॥
करैं जु कहांलौं प्राश्चित, फिरि फिरि बारंबार॥१५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

फिरि बोलै सुकदेव जू, पुन्य करम अनुसार॥
दूरि हौत है पाप मैं, जर न कटत निरद्धार॥१६॥
तातैं फिरि फिरि करत है, प्रांनी पाप अनंत॥
बिना जड़ कटै कर्म अघ, क्यौंहूँ नांहिं छुटंत॥१७॥
जांसौं आतम ग्यांन है, प्राश्चित बडौ सुभाइ॥
कटत अबिद्या ग्यांन करि, फिरि नहिं उपजन पाइ॥१८॥
जिहिं प्रताप प्रांनी इहै, पाप न करैं निदांन॥
तातैं मैटन पाप क्रत, बडौ उपाइ सुग्यांन॥१९॥
जइसैं पथि भोजन कियै, रोग न प्रगटै कोइ॥
ज्यौं साधै जम नैम ह्वै, ग्यांन मोह नहिं होइ॥२०॥
ब्रह्मचर्ज तप नैम जम, सम दम सति सुचिदांन॥
इन्ह उपाय सौं पाप कौं, दूरि करत बुधिवांन॥२१॥
अग्नि भस्म करि देत है, बासनि कौं जिहं भांहि॥
जइसैं ही प्रांनीं कोउ, हरि आश्रय बल पाहिं॥२२॥
प्रभु पद पंकज भक्ति करि, देत पाप निरवारि॥
ज्यौं सूरज चहुँ वोर तैं, दैहींद्यौं हरि टारि॥२३॥
साधु सेव करि कृष्ण मैं, निज चित्त देइ लगांइ॥
जनम जनम कैं पाप सब, दूरि होत जिहं भांइ॥२४॥
तइसै तपसा ग्यांन करि, पाप होत नहिं दूरि॥
इहि निश्चै मानहूँ नृपति, कह्यौ भेद हम्ह मूरि॥२५॥
ग्यांन कर्म मारगनितैं, भक्ति मार्ग अधिकांइ॥
सौं साधुनि कैं संग सौं, प्रापत होत सुभांइ॥२६॥

हरि बिमुषनि कौं प्राश्चित, नांहिंन पबित्र करांहिं॥
ज्यौं मदिरा घट सुद्ध नहिं, नदिंयन बिच ह्वावाहिं॥ २७॥
यैक बेरहूं जिनन चित्त, लगयौ हरि पद माहिं॥
तैं स्वपनै हुं मैं रूप, जमदूत देष नांहिं॥ २८॥
उन्हकैं दूरिन होत हैं, जनम जनम कैं पाप॥
जे कबहुं न सुमरत प्रभुहिं, जिनकौं नर्क संताप॥ २९॥
यैक इहां इतिहास हम्ह, कहत करन अहलाद॥
हरि सेबग अरु दूत यम, तिनकौं हैं संवाद॥ ३०॥
ब्राह्मण यैक कनौजिया, रहत अजामिल नांम॥
सौइ दासी कौ पति अरु, हीन कर्म अघ धांम॥ ३१॥
ठग पन चौरी जुवां अरु, करनी मनुषनि बंद॥
इन्ह भांतिन पालन करत, निज कुटुंब मति मंद॥ ३२॥
षिलवत दासी सुतनि भौ, बर्ष अठ्यासी मांहिं॥
भूलि बिषै कैं रंग मैं, प्रभु सुधि राषत नांहिं॥ ३३॥
प्रगटै दासी गर्भ तैं, दस सुत द्विज कै धांम॥
तिन्हमैंहुं छोटै पुत्रकौं, नारायन हौ नांम॥ ३४॥
सौ माता अरु पिता कौ, सबतैं प्रिय अधिकाइ॥
जिहं लाडन पोषनहिं मधि, राष्यौ चित्त जु लुभाइ॥ ३५॥
वह बालक कैं बचन सुनि, क्रीड़ा लषि पितु मात॥
अधिकहीं प्रसंन हौहिकैं, निज द्रग हियौ सिरात॥ ३६॥
अैसैं दिन बीतवत भय, आई मृत्यु नजीक॥
ताकी द्विज अग्यांन बस, कछू नांहिंनैं ठीक॥ ३७॥
मृत्यु समैंहूं पुत्र मैंहिं, करि राष्यौ मन लीन॥
हात लियैं फांसी लषै, उन्ह जमदूत सुतीन॥ ३८॥
महा भयंकर रूप मुष, ऊंचै टेढै बार॥
आयै बांकहि लैंन कौं, अैसैं तिहुँ बिकरार॥ ३९॥
बह नारायन नांम कौं, सुत षेलत हौ दूरि॥
बुलवत भौं तिहं नांम लैं, बह पुकारि हित पूरि॥ ४०॥
बां मुष तैं मरिबैं समैं, सुनि नारायन नांम॥
आयै प्रभू कैं पार्षद, दिब्य रूप अभिरांम॥ ४१॥
लैत रहै जम दूत बां, अजामेल कैं प्रांन॥
तिन्हकौं करत भयै मनैं, पार्षद तांह निदांन॥ ४२॥
तब उन्हसौं जमदूत यौं, कहत भयै उहिं बार॥
हम्ह आयै जमलोक तैं, जम आग्यां अनुसार॥ ४३॥

तुम्ह कौ हो किहं कैं कहौं, कहँ तैं आवन कीन॥
मनैं करत हौं क्यौं हम्हैं, परत नांहिं समझीन॥४४॥
तुम्ह कौऊ हो सिद्ध कैं, कौउ देबतां आंहिं॥
तुम्ह कौहौं कहियें हम्हैं, हम्ह जांनत हैं नांहिं॥४५॥
पीताबंर धारन किये, कमल दलन सैं नैंन॥
फबी क्रीट कुंडल कमल, माल सुभग मुष बैंन॥४६॥
वय नवीन भुज च्यारि पुनि, आयुध धरैं सुढार॥
संष चक्र तरकस धनुष, गदा कमल तरबार॥४७॥
टारत हौ तम दिसन कौ, आयु तेजअनुसार॥
हौं तुम्ह अैसैं पुरष कौ, कहौं भेद निरधार॥४८॥
हम्ह तौं हैं जमदूत या, द्विज कौं आयैं लैंन॥
तुम्ह बरजत हम्हहिं क्यौं सौ, कछू समझी परैंन॥४९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि अैसैं बचन, सुनि पार्षद तिहं बार॥
जमदूतनि सुं फिरि फिरि कैं, बौलत भये सुढार॥५०॥

॥ बिस्नुदूताऊचुः॥

तत्व लछिन कहौं धर्म कौं, जो तुम्ह हौ जमदूत॥
अरु पापी प्रांनिनहुं कौं, देत दंड किंहिं सूत॥५१॥
कौंनु कौंनु सैं पाप सौं, कौंनु कौंनु सैं दंड॥
तुम्ह सुं देत हौं सौ कहौं, जो है नीति अषंड॥५२॥
अरु या ब्राह्मनकौं जु अब, कहा दंड निरद्धार॥
कौंनु लोक हैं जोग्य सौ, कहौ हम्हहिं या बार॥५३॥

॥ जमदूताऊचुः॥

बोलै यौं जमदूत जो, बेद कह्यौ सौ धर्म॥
मनैं कियौ सौ बेद नै, सही अधर्म अकर्म॥५४॥
बेद प्रभू कौ रूप है, सब जांनत निरधार॥
बेद कहत है सौ सबै, है आग्यां करतार॥५५॥
निज सरूप कै बिषै जिन, नारायन परब्रह्म॥
सत्व रज तम गुन सौं बंधै, बरणांश्रम जुत धर्म॥५६॥
सूर्ज अगनि आकास ससि, निस दिन संध्या वायु॥
गाय दिसा जल काल भुव, धर्म समेत सुभायु॥५७॥
इन्हकैं साछी है सदा, जानहुँ भलैं प्रकार॥
भलैं बुरे जै जीब कै, कर्मनि दैषन हार॥५८॥
इन्हहीं तैं जांनैं परत, प्रांनिन कैं सब धर्म॥
तबै दंड जमलोक है, जिहिं जइसौं अघ कर्म॥५९॥

सारमेयादन जुक्त अैं, नर्क इकीस निदांन॥
सात नर्क कै नांम अब, औरहुं कहूं बषांन॥१५॥
अवटनिरोधन दंदसूक, पुनि पर्यावर्त्तन जांन॥
रष्यौगन भोजन अवर, सूची मुष जु निदांन॥१६॥
सूल प्रोत जांनहु अवर, बहुर्यौ कर्दमषार॥
बै इकीस यै सात मिलि, आठ बीस निरधार॥१७॥
होत अनैंकनि जातना, प्रांनि कौ जिन मांहिं॥
पाप करै तैसौं लहै, दंड जीव बहिं ठांहिं॥१८॥
जो धन स्त्री अरु पुत्र हरि, कोउ परायौ लैत॥
जम कालपास सौ बांधि, तामिश्र नर्क तिहिं दैत॥१९॥
करत दंड ताड़न जांह, मिलत अंन जल नांहिं॥
तहं प्रांनी लहि अधिक दुष, मूर्छा प्रापति पांहिं॥२०॥
किहूं पुरुष कौं दैत है, जो कौ दगा निदांन॥
अरु बांकी तिय सौं करत, भोग आप सुषमांन॥२१॥
नरक अंधतामिश्र मधि, तै नर परत कुपात॥
तांह पाय पीडा अधिक, द्रिष्टि नष्ट ह्वै जात॥२२॥
अरु जे किहुँ की तिया सौं, पुरष मिलावत और॥
तैहू वाही नरक मैं, परत लहत दुष घौर॥२३॥
अरु जे काहू कै बउत, अहंता ममता हौय॥
द्रोह और प्रांनीन सौं, करै धर्मब्रत षौय॥२४॥
निज कुटंब ही कौ करै, पालन बहुंत प्रकार॥
सौ परही या पाप सौं, रौरव नर्क मँझार॥२५॥
इन्ह मारे है जीव जै, मारत याहि कुठार॥
सांपहुं तैं अति भयंकर, धरै रूपहिं बिकरार॥२६॥
अरु महा रौरव नर्क है, अैसै ही अनुभाय॥
पालत अपनी देह ही, सौ नर वामैं जाय॥२७॥
सांपहुँ तै अति भयंकर, जीव वांह रुरु नांम॥
तोरि तोरि बांकै पलहि, षावै आठौ जांम॥२८॥
जीवत पसु पंछीन कौ, जे कौ रांधत नीच॥
दुष्ट परत हैं ते नरक, कुंभी पाकहि बीच॥२९॥
वाजु नर्क कै मध्य मैं, औटत तातौ तेल॥
तामैं रांधत दूत जम, या प्रांनी कौ मेल॥३०॥
पिता बेद ब्राह्मननि कौं, द्रौह करत निरधार॥
नर्क कालसूत्रहीं मधि, तैं नर परत कुचार॥३१॥

जौजन दसहिं हजार है, बा नर्कहिं उनमांन॥
तपत अग्नि रबि सम अधिक, तांबाभूमि सथांन॥३२॥
तामैं डारत जब इहै, लुटत उठत दौरंत॥
सकल अंग जरिजात है, महादुष्षहिं भुक्तंत॥३३॥
जितनैं रोम जु होत हैं, पसू अंग कै मांहिं॥
तितनैं सहसनि बर्ष लौं, पर्यौ रहत उहिं ठांहिं॥३४॥
चलत मार्ग पाषंड बिच, तजि कैं मारग बेद॥
ते असिपत्रवन नर्क मैं, परत लहै अति षेद॥३५॥
तामैं अैसें बृछि जिन, पात मनूं तरवार॥
तिन्हसौं बांधि रु देत जम, दूत कोरडा मार॥३६॥
बां तैं जित तित और कौं, प्रांनी इहै भजात॥
तित तित उन्ह तरु पत्र सौं, याकै अंग कटात॥३७॥
इह जब मूर्छित होत हैं, महाकष्ट सरसाय॥
अैसें फल पाषंड कौ, भुक्तत है दुषदाय॥३८॥
जो कौ नृप अथवा नृपति, कौ चाकर किहुं हेत॥
दंड अदंडनि देय कैं, द्विजनि दंड तन देत॥३९॥
सौ सूकर मुष नर्क कै, मध्य परत है जाय॥
जहं जम किंकर पेल कैं, कोल्हू बीच कुभाय॥४०॥
जइसै कौ सांठांनिकौं, पेलत कोल्हू मांहिं॥
तइसै ही या जीव कै, सबै अंग पिसि जांहिं॥४१॥
और किंहूं कै दुष्ष कौं, वे जांनत है नांहिं॥
भौजन दियौ बताय प्रभु, सौ करि जनम बितांहिं॥४२॥
जइसै षटमल काटिंही, करै रुधिर कौ पांन॥
अैसें जीवन कौं कोउ, मारत पुरष अग्यांन॥४३॥
अंध कूप नर्कहिं जु मधि, जे नर परत निदांन॥
हौत महा ब्याकुल लहत, अति कलेस उहिं थांन॥४४॥
माषी माछर पसु पंछी, अहि मृग जुवां समैत॥
यै उहिं ठां अधियार मैं, यांकौ अति दुष दैत॥४५॥
बांटें बिना कुटंब मैं, भली बस्तु जो षाय॥
पंच जिग्य नांहीं करत, सो सम काग कहाय॥४६॥
सौ क्रमि भोजन नर्क मैं, मनुष परत निरधार॥
कुंड सुहे कीरांन लष, जोजन कै अनुसार॥४७॥

तामैं कीरां रूप है, प्रांनी इहै परंत॥
काटि काटि वे षात हैं, कीरां याहि अनंत॥४८॥
अरु जो कौ चोरी करै, कै जोरी अनुभाय॥
रतन सुवर्न जु द्विजन कौ, लेत आप सुषपाय॥४९॥
तिह्वै तप्त लोहांन सौं, छेदत जम कै दूत॥
अपनैं कर्त्तव्य सौं यहै, भुक्तत कष्ट कपूत॥५०॥
पर अस्त्री सौं जो कोउ, पुरष मिलत अन्याय॥
अरु अस्त्री पर पुरष सौं, मिलत भोग सुष चाय॥५१॥
लोहै कै तिय पुरष रचि, तातै अग्नि समांन॥
जिन्हसूं मिलवत है उन्हैं, जम कै दूत निदांन॥५२॥
नरक तप्त सूरिमय है, कहियतु याकौ नांम॥
पावत फल विभचार कौ, बिभचारी उहिं ठांम॥५३॥
जे कोउ पुरष पसूं सौं, चेष्टा करत श्रृंगार॥
सो बज्रकंटक साल्मली, नरक परत निरधार॥५४॥
सालमली है बृछि जहँ, जिहं कांटे बज्रमांन॥
ता पर प्रांनी कौं चहुडि, जम चर षैचंत तांन॥५५॥
नृप वा नृप सेवक कोउ, धर्म म्रजादमिटांहिं॥
जे बइतरनी नदी मैं, परत महा दुष पांहिं॥५६॥
बहै नदी जम द्वार पर, है जांनहु निरधार॥
जहँ याकौं काटत बडै, बडै जीव बिकरार॥५७॥
रुधिर राधि मल मूत्र कच, मेद हाड नष मांस॥
इन्हकी है बह नदी जहँ, मनुष लहत अतित्रास॥५८॥
जे कौ दासी पति पुरष, निर्लज पसूं समांन॥
हीन धर्म आचार मैं, महा मदंध अग्यांन॥५९॥
तै पूयोदन नर्क कै, मद्धि परत है जाय॥
पाप कर्म अपनैं जांह, भुक्तत अति दुषदाय॥६०॥
कुंड राधि मल मूत्र कौ, है सो नर्क सथांन॥
तामैं परि कैं राधि मल, मूत्र करत है पांन॥६१॥
बिनां प्रयोजन जे कोउ, पालत ग्रीध रु स्वांन॥
मारत बीच सिकार कै, जीवन कौं अग्यांन॥६२॥
नर्क प्रांन रोधनहिं मध्य, ते वे परत कपूत॥
बेधत बेधा करि जिह्वै, तीरन सौ जमदूत॥६३॥

दंभी मिस करि जिग्य कौ, झूठै ही जे कोइ॥
हतत पसुन कौ जिन नरनि, नर्क वईसस होइ॥६४॥
तिनकौं जम कै दूत जहँ, डारत मारि पछारि॥
अति निर्दय ह्वै देत है, मनुषहिं कष्ट कुडारि॥६५॥
जो कोऊ द्विज सबर्ण, त्रिय मुष पावत बीर्ज॥
कांमी महा कुपात सौ, षोयो धर्म रु धीर्ज॥६६॥
जो तजि स्वअस्त्री सबर्ण, बीर्ज करत है पात॥
सो लालभक्ष नर्क मैं, परत दुषि बिललात॥६७॥
नदी बीर्ज ही की बहै, जांनहु नर्क सथांन॥
करबावत जमदूत जहँ, बही बीर्ज कौ पांन॥६८॥
कौ चोर किहूं घर अंनल, लगावत काहु हेत॥
राहगीर और राह कौं, लूटत कैं विषदेत॥६९॥
नर्क सारमेयादनहिं, मधि जे परत कुपात॥
स्वांन सात बीसी जिह्वै, बज्र जिभा जांह षात॥७०॥
द्रिबि लेत अरु देत मैं, जे बोलत हैं झूठ॥
तैं अवीच नरकहिं परत, पावत कष्ट अतूठ॥७१॥
सौ जोजन नग उच्चा तैं, पटकतहिं बारंबार॥
आय परत नर सिला पर, जिहं ठां अैसी मार॥७२॥
ब्राह्मन छित्री बैस्य करि, सोमपांन जिग्य बीच॥
फिर पांछै मदिरा पियैं, कौऊ बुद्धि कौ नीच॥७३॥
कै ब्रत मैं तिय पुरष कौ, कर ही मदिरा पांन॥
तिह्वै लौह औटाय कैं, प्यावत जम बहि थांन॥७४॥
कहियत है वां नर्क कौ, नांम सुनहु अयपांन॥
इहां करत है मनुष अघ, फल तांहीं उनमांन॥७५॥
आचारी पुनि तपस्वी, बडे सो बिद्यावंत॥
जिनकौ जे अभिमांनसौं, अनआदर जु करंत॥७६॥
नर्क ष्यारकरदमहिं मधि, जे नर परि दुष पांहिं॥
तर सिर ऊपरि पाव यौं, कीच बीच फंसि जांहिं॥७७॥
करिकैं होम जु मनुष कौं, पापी जन अहलादि॥
प्रस्नं करत है जैं कोउ, भैरव देवी आदि॥७८॥
जिनकौं जम कै दूत धरि, राकस रूप कुभाय॥
सस्त्रन सौं हतिषात पुनि, निर्त्तहिं करत सुषपाय॥७९॥

नगर ग्रांम बन मांहिं जे, बलकरि पकरि पसून॥
बांधत छेदत अधम जन, उर डर धरत प्रभून॥ ८० ॥
नर्क सूलप्रोतहिं जु मधि, जे परहीं अग्यांन॥
दै हैं सूली पर चढै, जहँ जम चर बलबांन॥ ८१ ॥
चूंच बज्र कीसी जिननि, ऐसे पंछी अछेह॥
तोरि तोरि जे षात हैं, निसदिन याकीं देह॥ ८२ ॥
अरु जेहैं कोउ दुष्ट जन, सर्प समांन सुभाय॥
देत बिनां अपराध दुष, प्रांनिन अनष बढाय॥ ८३ ॥
दंदसूकमुष नर्क तिहं, मांहिं परत जे जाय॥
सात सात दस दस मुषी, अहि तहँ षांहि कुभाय॥ ८४ ॥
जे कौ षाड गुफान मैं, रोकत है प्रांनीन॥
नरक जे अवरोधन विषै, तैं परही मति हीन॥ ८५ ॥
याहि डारि जहँ षाड मैं, जम कै दूत रिसाय॥
बिष जराय जाकौ धुवां, करत महादुष दाय॥ ८६ ॥
अतिथ अभ्यागत भूष बस, आवै गृहस्थहिं धाम॥
गृहस्थ लषै जिन्ह और कौं, क्रोध धारि हिय ठांम॥ ८७ ॥
जे पर्यावर्त नरक मैं, पापी परत कुढारि॥
ग्रीध कंक बज्र चूंच सौं, जिन्ह द्रिग लैत उषारि॥ ८८ ॥
जे द्रिव्य कौं अभिमांन अति, राषत है मनमांहिं॥
अहंकारी ह्वै सबन कौं, सूधैं देषत नांहिं॥ ८९ ॥
डरपत ही बै रहत मति, द्रिब्य रहै कहूं जात॥
हृदौ रहत सूकौजिननि, ल्याय देत उतपात॥ ९० ॥
करत रहत नित द्रिब्य की, रछया घरहीं मांहिं॥
धन जोरत बढवत सदा, धनही की चित चांहिं॥ ९१ ॥
जे सूचीमुष नर्क मैं, परत जांह जमदूत॥
सूयन सौं या अंग कौं, छेदत सींवत धूत॥ ९२ ॥
ऐसै केइ हजार हैं, नर्क गने नहिं जांहिं॥
जिन्हमैं पापी परत हैं, निज करतब फल पांहिं॥ ९३ ॥
ऐसैं ही धरमातमा, स्वर्ग लोक मैं जात॥
पावत फल निज धर्म कौ, पूरन सुष बिष्यात॥ ९४ ॥
धर्म अर्थ मनुष्य जिनकी, यैहौंहिं दुहूं थोक॥
तैं थोरे रहि जांहिं जब, उपजत बिच नरलोक॥ ९५ ॥

हम्ह तुम्ह सौं पहलहिं कह्यौ, मग निवर्ति है राय॥
सो तौ प्रभु कैं मिलन कौ, है उपाय सुषदाय॥ ९६ ॥
सकल इहै ब्रह्मांड जो, चउदह लोक संजूप॥
सोई बिराट स्थूल है, प्रभु कौ रूप अनूप॥ ९७ ॥
सो हम्ह तुम्ह सौं कह्यौ इह, पढै सुनैं जो सार॥
बहै ब्रह्म कै रूप कौं, पहचानैं निर्धार॥ ९८ ॥
प्रभु के दोय सरूप हैं, सूछिम स्थूल निदांन॥
जिन्हमैं प्रथम स्थूल मैं, मन लावै बुधिवांन॥ ९९ ॥
पांछै सूछिम रूप मैं, दीजै निज मन लाय॥
पूरन प्रीति प्रतीति सौं, रहियैं मन ठहराय॥ १००॥
षंडदीप प्रथवी नदी, स्वर्ग दिसा पाताल॥
नग समुद्र पुनि नर्क जुत, रचना लघु रु बिसाल॥ १०१ ॥
प्रभु कौ रूप स्थूल है, इह सबही बिसतार॥
सौ तुम्ह सौं बर्नन कह्यौ, हम्ह नृप भलै प्रकार॥ १०२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे पंचम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षटबिंसोऽध्यायः ॥ २६ ॥)

॥ पंचम स्कन्ध संपूर्णम्॥

(पोथी को सं. १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री)

(कुल छन्द ११३२, छंद योग क्रम ५५८०)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राज राजेश्वर राजा श्री राजसिंघ जी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुंवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी' जी कृत श्रीमद्भागवत भाषा षष्टम स्कंध लिष्यते)

॥ षष्टम – स्कन्ध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(अजामिल उपाख्यान का प्रारंभ)

(मंगलाचरण)

छप्पय – जय जय श्री गोपाल, जयति श्रीभांन दुलारी ॥
जयति जयति श्री गुरु हुँ, क्रपाल सुक जु सुभकारी ॥
जयति जयति श्री ब्यास, भागवत उतपन्न करता ॥
जयति जयति हरि भगत, जुगल पद रस अनुसरता ॥
जिन्ह क्रिपा प्रताप उछाह धरि, ब्रजदासी अति उमंगि हिय ॥
षष्टम स्कंध बर्नन करन, हरषित ह्वै आरंभ किय ॥ १ ॥

दोहा – याहि षष्टम जु संकंध मैं, पौषन लीला भेव ॥
अब उगनीस अध्याय करि, बरनैंगे सुक देव ॥ २ ॥

॥ उपाख्यान ॥

॥ राजोबाच ॥

नर्क यातना सुनि डरपि, पूछत नृपति सचित्त ॥
हे मुनि द्वितीय स्कंध मैं, तुम्ह मग कह्यौ निब्रत्ति ॥ ३ ॥
जीव इहै बिधि लोक मैं, प्राप्त होत है जांहिं ॥
प्रलैं समैं बिधि संग ह्वै, हरि मैं जात समांहिं ॥ ४ ॥
फेरि बांह तैं गिरि परै, पुन्य छीन अनुसार ॥
जनम अनैंकनि धरत है, बहुयौं बारंबार ॥ ५ ॥
अरु नर्कनिहूं कौं कियौ, बर्नन आछी रीत ॥
स्वायंभुव मनु कौं कियौ, बर्नन परम पुनीत ॥ ६ ॥
प्रियब्रत अरु उत्तांनपाद, बरनैं एउ सुभाइ ॥
द्वीप षंड अरु नग नदी, सिंधु कहै समझाइ ॥ ७ ॥
भुव बिभाग बर्नन कियौ, बर्नैं स्वर्गपाताल ॥
अब कहुँ जांसौं होइ नहिं, नर्क असह जंजाल ॥ ८ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

बोलै श्री सुकदेव जू, प्रांनी कौउ अचैत ॥
मन बच क्रम करि करत है, पाप अनैक बिजैत ॥ ९ ॥
प्राश्चित जिन्हकैं हैं लिषै, धर्म सास्त्र कैं मांहिं ॥
तिन्हकौं नाहिंन करत जें, मरि नर्कनि मैं जांहिं ॥ १० ॥

तातैं जीवत ही इहै, प्रांनी करै बिचार॥
प्राश्चित लघु गुरु पाप कौं, जथा जोग्य अनुसार॥११॥

॥ राजोबाच॥

नृप पूछत प्रानीन कौं, राजदंड इहिं होत॥
सौ देषत है जीबुं सब, परगट करत उद्दोत॥१२॥
सास्त्रनिहूं मैं सुनतहुँ, नर्क होत पापीन॥
तातैं जांनत हैं इहै, पाप ह बुरौ सरीन॥१३॥
अरु प्राश्चित करि पाप कैं, करत फेरिहूँ पाप॥
ज्यौं सनांन करि सीस रज, गज डारत है आप॥१४॥
तातैं करनौं बृथा है, प्राश्चितहूँ निरद्धार॥
करैं जु कहांलौं प्राश्चित, फिरि फिरि बारंबार॥१५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

फिरि बोलै सुकदेव जू, पुन्य करम अनुसार॥
दूरि हौत है पाप मैं, जर न कटत निरद्धार॥१६॥
तातैं फिरि फिरि करत है, प्रांनी पाप अनंत॥
बिना जड़ कटै कर्म अघ, क्यौंहूँ नांहिं छुटंत॥१७॥
जांसौं आतम ग्यांन है, प्राश्चित बडौ सुभाइ॥
कटत अबिद्या ग्यांन करि, फिरि नहिं उपजन पाइ॥१८॥
जिहिं प्रताप प्रांनी इहै, पाप न करैं निदांन॥
तातैं मैटन पाप क्रत, बडौ उपाइ सुग्यांन॥१९॥
जइसैं पथि भोजन कियै, रोग न प्रगटै कोइ॥
ज्यौं साधै जम नैम है, ग्यांन मोह नहिं होइ॥२०॥
ब्रह्मचर्ज तप नैम जम, सम दम सति सुचिदांन॥
इन्ह उपाय सौं पाप कौं, दूरि करत बुधिवांन॥२१॥
अग्नि भस्म करि देत है, बासनि कौं जिहं भांहि॥
जइसैं ही प्रांनीं कोउ, हरि आश्रय बल पाहिं॥२२॥
प्रभु पद पंकज भक्ति करि, देत पाप निरवारि॥
ज्यौं सूरज चहुँ वोर तैं, दैहींद्यौं हरि टारि॥२३॥
साधु सेव करि कृष्ण मैं, निज चित्त देइ लगांइ॥
जनम जनम कैं पाप सब, दूरि होत जिहं भांइ॥२४॥
तइसै तपसा ग्यांन करि, पाप होत नहिं दूरि॥
इहि निश्चै मानहूँ नृपति, कह्यौ भेद हम्ह मूरि॥२५॥
ग्यांन कर्म मारगनितैं, भक्ति मार्ग अधिकांइ॥
सौं साधुनि कैं संग सौं, प्रापत होत सुभांइ॥२६॥

हरि बिमुषनि कौं प्राश्चित, नांहिंन पबित्र करांहिं॥
ज्यौं मदिरा घट सुद्ध नहिं, नदिंयन बिच ह्वावाहिं॥ २७॥
यैक बेरहू जिनन चित्त, लगयौ हरि पद माहिं॥
तैं स्वपनै हु मैं रूप, जमदूत देष नांहिं॥ २८॥
उन्हकैं दूरिन होत हैं, जनम जनम कैं पाप॥
जे कबहुं न सुमरत प्रभुहिं, जिनकौं नर्क संताप॥ २९॥
यैक इहां इतिहास हम्ह, कहत करन अहलाद॥
हरि सेबग अरु दूत यम, तिनकौं हैं संवाद॥ ३०॥
ब्राह्मण यैक कनौजिया, रहत अजामिल नांम॥
सौइ दासी कौ पति अरु, हीन कर्म अघ धांम॥ ३१॥
ठग पन चौरी जुवां अरु, करनी मनुषनि बंद॥
इन्ह भांतिन पालन करत, निज कुटुंब मति मंद॥ ३२॥
षिलवत दासी सुतनि भौ, बर्ष अठ्यासी मांहिं॥
भूलि बिषै कैं रंग मैं, प्रभु सुधि राषत नांहिं॥ ३३॥
प्रगटै दासी गर्भ तैं, दस सुत द्विज कै धांम॥
तिन्हमैंहुं छोटै पुत्रकौं, नारायन हौ नांम॥ ३४॥
सौ माता अरु पिता कौ, सबतैं प्रिय अधिकाइ॥
जिहं लाडन पोषनहिं मधि, राष्यौ चित्त जु लुभाइ॥ ३५॥
वह बालक कैं बचन सुनि, क्रीड़ा लषि पितु मात॥
अधिकहीं प्रसंन हौहिकैं, निज द्रग हियौ सिरात॥ ३६॥
अैसैं दिन बीतवत भय, आई मृत्यु नजीक॥
ताकी द्विज अग्यांन बस, कछू नांहिंनैं ठीक॥ ३७॥
मृत्यु समैंहूँ पुत्र मैंहिं, करि राष्यौ मन लीन॥
हात लियैं फांसी लषै, उन्ह जमदूत सुतीन॥ ३८॥
महा भयंकर रूप मुष, ऊंचै टेढै बार॥
आयै बांकहि लैंन कौं, अैसैं तिहुँ बिकरार॥ ३९॥
बह नारायन नांम कौं, सुत षेलत हौ दूरि॥
बुलवत भौं तिहं नांम लैं, बह पुकारि हित पूरि॥ ४०॥
बां मुष तैं मरिबैं समैं, सुनि नारायन नांम॥
आयै प्रभू कैं पार्षद, दिब्य रूप अभिरांम॥ ४१॥
लैत रहै जम दूत बां, अजामेल कैं प्रांन॥
तिन्हकौं करत भयै मनैं, पार्षद तांह निदांन॥ ४२॥
तब उन्हसौं जमदूत यौं, कहत भयै उहिं बार॥
हम्ह आयै जमलोक तैं, जम आग्यां अनुसार॥ ४३॥

तुम्ह कौ हौ किहं कैं कहौं, कहँ तैं आवन कीन॥
मनैं करत हौं क्यौं हम्हें, परत नांहिं समझीन॥४४॥
तुम्ह कौऊ हौ सिद्ध कैं, कौउ देबतां आंहिं॥
तुम्ह कौहौं कहियैं हम्हें, हम्ह जांनत हैं नांहिं॥४५॥
पीताबंर धारन कियै, कमल दलन सैं नैंन॥
फबी क्रीट कुंडल कमल, माल सुभग मुष बैंन॥४६॥
वय नवीन भुज च्यारि पुनि, आयुध धरैं सुढार॥
संष चक्र तरकस धनुष, गदा कमल तरबार॥४७॥
टारत हौ तम दिसन कौ, आयु तेजअनुसार॥
हौं तुम्ह अैसें पुरष कौ, कहौं भेद निरधार॥४८॥
हम्ह तौं हैं जमदूत या, द्विज कौं आयैं लैंन॥
तुम्ह बरजत हम्हहिं क्यौं सौ, कछू समझी परैंन॥४९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि अैसें बचन, सुनि पार्षद तिहं बार॥
जमदूतनि सुं फिरि फिरि कैं, बौलत भयै सुढार॥५०॥

॥ बिस्नुदूताऊचुः॥

तत्व लछिन कहौं धर्म कौं, जो तुम्ह हौ जमदूत॥
अरु पापी प्रांनिनहुं कौं, देत दंड किंहिं सूत॥५१॥
कौंनु कौंनु सैं पाप सौं, कौंनु कौंनु सैं दंड॥
तुम्ह सुं देत हौं सौ कहौं, जो है नीति अषंड॥५२॥
अरु या ब्राह्मनकौं जु अब, कहा दंड निरद्धार॥
कौंनु लोक हैं जोग्य सौ, कहौ हम्हहिं या बार॥५३॥

॥ जमदूताऊचुः॥

बोलै यौं जमदूत जो, बेद कह्यौ सौ धर्म॥
मनैं कियौ सौ बेद नै, सही अधर्म अकर्म॥५४॥
बेद प्रभू कौ रूप है, सब जांनत निरधार॥
बेद कहत है सौ सबै, है आग्यां करतार॥५५॥
निज सरूप के बिषै जिन, नारायन परब्रह्म॥
सत्व रज तम गुन सौं बंधै, बरणांश्रम जुत धर्म॥५६॥
सूर्ज अगनि आकास ससि, निस दिन संध्या वायु॥
गाय दिसा जल काल भुव, धर्म समेत सुभायु॥५७॥
इन्हकैं साछी है सदा, जानहुँ भलैं प्रकार॥
भलैं बुरै जै जीब कै, कर्मनि दैषन हार॥५८॥
इन्हहीं तैं जांनैं परत, प्रांनिन कैं सब धर्म॥
तबै दंड जमलोक है, जिहिं जइसौं अघ कर्म॥५९॥

जीब करत हीं रहत है, सदा पुन्य अरु पाप॥
बंध्यौ प्रकृति कैं गुननी, सौं भुक्तत तहुँ संताप॥ ६०॥
पाप पुन्य जिसौं करत इहँ, ठांम कौऊ निदांन॥
फल पावत परलोक मैं, तइसैं हीं उनमांन॥ ६१॥
ज्यौं या जगतहिं बिचित्र बिधि, जीब दिषाई देत॥
कौऊ दुषी कौ है सुषी, दुष सुष दुहुंनिं समेत॥ ६२॥
रजो गुनी कौ जीब हैं, सत्व गुनी कितनैंक॥
कैंतक जीब तमो गुनी, जग बिच बिना बिवैंक॥ ६३॥
ज्यौं बसंत आदिक रीतु, आवहिं औसर पाय॥
तबही सबहिंन कौं परत, अैसौं भेद जनाय॥ ६४॥
आगैं भइ हौहिंगीं सब, रीतु इही परकार॥
अरु बहुयौं ह्वै है सोहु, अैसै हूं अनुसार॥ ६५॥
तइसैं ही या जन्म मैं, इहै परत हैं जांनि॥
अर्ध धर्मातमा पुरष अरु, धर्मातमा पिछांनि॥ ६६॥
पूर्ब जन्महूं मैं रह्यौ, अैसौं हीं दरसाय॥
फिरि आगैंहूं हौयंगौ, अैसैं ही अनुभाय॥ ६७॥
धर्मराज प्रांनीन कैं, तुरतहि धर्म अधर्म॥
जांनि जात है आपनैं, मनं हीं तैंसब मर्म॥ ६८॥
अगले पिछलै जनम की, जीबहिं सुध नहिं होत॥
जिंहीं जन्म मैं होत सुध, जाहीं कीहिं उदोत॥ ६९॥
अग्यांनी निंद्रा बिषैं, जांनत स्वप्रा देह॥
तइसैं पिछली देह कौं, भूलि लषत तन येह॥ ७०॥
पांच कर्म इंद्रीन सौं, जीब करत है कर्म॥
पांच ग्यांन इंद्रीन सौं, लहै बिषै कौ मर्म॥ ७१॥
अरु मनही सौं मिलत है, इहै जीब निरधार॥
सकल पदार्थन कौं करत, भोग भलैं अनुसार॥ ७२॥
लग्यौ रहत नित जीब कौं, लिंग सरीर उदोत॥
जनम मरन या जीव कौं, ताहीं करिकैं होत॥ ७३॥
जीब करत है कर्म इह, जांनहुं बउंत प्रकार॥
ताही कैं अनुभाय सौं, आपु बंध्यौ निर्द्धार॥ ७४॥
कोसकार कीडा सुं ज्यौ, रचि पचि गेह बनाय॥
रहत आपु बंधि तामहीं, फेरि न निकस सकाय॥ ७५॥
कर्म कियैं बिनु जीब इक, छिन मात्रहुं रह नांहिं॥
निज सुभाव अनुसार कछु, कर्म करैं न रहांहिं॥ ७६॥

माता पिता अद्रिष्ट कैं, होत तबै अनुसार॥
प्रगट रूप या जीब कैं, देह रूप आकार॥७७॥
प्रकृति संग सौं लग्यौ है, या जीवहिं संसार॥
सौ ईस्वर कै भजन सौं, छूटि जात निरधार॥७८॥

चौपई - इहै अजामिल पहली बार। सब बिधि भलौ रह्यौ निरधार॥
बेद पढनवारौ आचारि। सहितसील गुन भलैं प्रकारि॥७९॥
अति कोमल अरु इन्द्रीय जीत। सति बक्ता जांनत सुभ नीत॥
महा पवित्र ब्रतनि कौं करत। समझि बेद मंत्रनि कौं धरत॥८०॥
अग्नि बृद्ध गुर अतिथहिं सेवक। रहित अहं क्रत साधु सुभेवक॥
सब प्रांनिनं सौं हित अनुसरत। किहुंकी नहिंन ईरषा करत॥८१॥
अलप बोलनौं काज निमतहि। पहलै अैसौं रह्यौ लसंतहि॥
यैक दिनां पितु आग्यां पाय। बिप्र अजामिल इह बन जाय॥८२॥
समिधा कुस फल फूल लैकरि। आव हुतौ बहुरि अपनैं घरि॥
मग मैं यक सूद्र इन्ह देष्यौ। दासी सुं बिहरत अवरेष्यौ॥८३॥
मद सौं वां दासी कैं नैंन। घूमि रहै उर लगि सर मैंन॥
दोन्यौं निर्लज मदमत्त वार। गावत हसत भुजा गरि डार॥८४॥
उन्हकी अैसी रीति निहारि। इह द्विज मोहित भौ उहिं बार॥
प्रगट भयौ द्विज कैं चित कांम। रह्यौ थकित ह्वै वाहीं ठांम॥८५॥
सास्त्र बिचारन सुं रोक्यौ मन। तउ या बस न भय मन ताछिन॥
कामातुर भौ इह ता दिनहुं। सब सुधि भूलि गयौ निज मनहुं॥८६॥
अपनौं धर्म सकल तजिदीय। ध्यांन जु बहँ दासी कौ लीय॥
निज पितु कौं धन सबहीं दीन। बा दासी कौं राजी कीन॥८७॥
ऊंचै कुल की जो ब्राह्मणि। निज तिय तजी गनतनहिं गणि॥
दासी द्रिग कटाछि बस भयहुं। मोहित ह्वै दासी हित छयहुं॥८८॥
नीत अनीतन सौं धन ल्याय। पालत दासी कुटंब सुभाय॥
द्विज इन बेद मार्ग तजि दीनिं। काल बितीत बहुंत यौं कीनि॥८९॥
बिप्र इहै पापी है माह। य्रा अकर्म कौं अंत सु काह॥
तातैं यांकौं जम कैं पास। लै जैहैं दै हैं अति त्रास॥९०॥
वांह दंड देबै अनुसार। सुद्ध हौहिगौ इहि निरधार॥
यातैं हम्हहुँ बरजहूं नाहिं। जम तैं हम्ह इनहिंन लैं जाहिं॥९१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(विष्णु दूतों द्वारा भागवत धर्म निरुपण तथा अजामिल का परमधाम गमन)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - सुक कहत कि सुनि बचन इम, जमदूतनि कैं भाय॥
फेरि प्रभू कै पारषद, बोलत भयै रिसाय॥ १॥

॥ श्री बिस्नुदूता ऊचुः ॥

हा अनीत है बडी अति, दंड अदंडनि होत॥
धर्मातमाहू की सभा, मांहिं अधर्म उदोत॥ २॥
जे प्रजान कैं न्याव कैं, करनहार जग मांहिं॥
तऊ यैकसौ न्याव सत्य, भाय करत है नांहिं॥ ३॥
प्रजा बिचारी तौ इहै, सरन कौंनु कैं जांहिं॥
हाय हाय कहियै कहा, अति अन्याय दरसांहिं॥ ४॥
बडौ पुरष कारिज करै, जो निश्चै ठहराय॥
सब कोउ ताहिं राह मैं, चलै जाय चित्त लाय॥ ५॥
धरि सौवैं निज सीस कौ, जाकै गोदहिं मांहिं॥
सौइ द्रौह वासौं करै, इहै जोग्य तिहँ नांहिं॥ ६॥
मुष तैं हरि कौं नांम इन्ह, बिप्र अजामिल लीन॥
कोटि जनम कैं पाप कौं, सोई प्राश्चित कीन॥ ७॥
नारायन कौं नांम सुभ, मुष उचरन कै ढार॥
सब पापन कौं प्राश्चित, होय चुक्यौ निरधार॥ ८॥
करनहार मदपांन गुर, अस्त्री गामी चोर॥
मित्र द्रोही रु द्विज हती, कपटी महा कठोर॥ ९॥
अरु अस्त्री राजा पिता, गाय हतकहूँ होय॥
बड्डे बड्डे पापी महा, जक्त बीच जे कोय॥ १०॥
तिन्हहू कै सब पाप कौं, टारन हार निदांन॥
निश्चै हरि कौं नांम है, बेद बिदित उनमांन॥ ११॥
पापहिं टारन तीर्थ ब्रत, आदि प्रायश्चित कोय॥
बड्डे बड्डे रिषिबरन जे, भलै बताये होय॥ १२॥
तेउ कियै पापीन ह्वै, अैसौ सुद्ध सुभाय॥
जइसैं हरि कै नांम कौ, लियै सुद्ध ह्वै जाय॥ १३॥
और तीर्थ ब्रत कियैं तैं, पाप दूरि ह्वै जांहिं॥
पै फिरि पापहिं करन कौं, प्रानी मन दौरांहिं॥ १४॥
अरु हरि नांम लियैंन ह्वै, मन फिरि बेपाप॥
होय जात निर्मल हियौ, मिटै सकल संताप॥ १५॥

तातैं या द्विज कौं अबै, तुम्ह तौ मति लेजाहुँ॥
दंड जोग्य इह नांहिंनैं, चित्त बिचार अवगाहुँ॥१६॥
मरन समैं भगवांन कौ, इन्हनैं नांम जु लीन॥
सौ इक भयौ जु प्रायश्चित, सब पापन कौ कीन॥१७॥
किहूं पुत्र कौं धरयौ है, हरि कौ नांम बिचारि॥
वहू नांम प्रांनींन कैं, पाप दैत हैं टारि॥१८॥
हासी मधि औ गांन मधि, निंदाहूं कै मांहिं॥
हरि कै नांम जु लैहि तउ, सकल पाप टरि जांहिं॥१९॥
उषटत गिरत जु चोट हूं, लागन कैं अनुसार॥
कैं किहुं काट्यौ होय कैं, कोऊ देत है मार॥२०॥
इन्हहूं समैं जु कृस्नं कौं, नांम लेय जो कोय॥
तउ प्रांनी कैं पाप टरि, निश्चै नर्क न होय॥२१॥
अघ लघु दीर्घ प्रायश्चित, लघु दीर्घ जु सुभाय॥
रिषिन कहै तिन सौं कटै, पाप तउ न जड जाय॥२२॥
चरन कमल भगवांन कैं, सेयैं अघ जड जात॥
तीन ताप संताप मिटि, अति आनंद सरसात॥२३॥
जांनि अजांनिहुं नांम हरि, लियैं पाप टरि जांहिं॥
जइसैं बैस्बांनर मिलैं, काष्ट अनैक जरांहिं॥२४॥
जइसैं औषद अरु अमृत, पीवै जांनि अजांनि॥
तौह बह गुन करत है, ज्यौंहरि नांम निदांनि॥२५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि भगवांन कै, पार्षद कहिं इहिं भाय॥
जम पासिंन तैं अजामिल, दीनौं तुरत छुटाय॥२६॥
इही बात जमराज सौं, कहि जमदूतनि जाय॥
जो प्रभु कै पार्षदन सौं, हुवो संबाद सुभाय॥२७॥
बंधन जम किंकरन कै, तैं जु अजामिल छूटि॥
नमसकार पार्षदन सौं, करत भयौ सुष लूटि॥२८॥
पुनि जब द्विज कौं बोलिबै, कौं प्रगट्यौ अवसांन॥
तबहीं प्रभु कै पार्षद है, गयै अंतरध्यांन॥२९॥
पार्षदन प्रभु नांम कौं, कह्यौ महातम सार॥
सौ इन्ह ब्राह्मन अजामिल, सुन्यौ जु भलैं प्रकार॥३०॥
अरु जमदूतन कै मुषहिं, निश्चै ताही बार॥
निर्नौ धर्म अधर्म कौं, सुन्यौ भलैं अनुसार॥३१॥
तबहीं तैं इह अजामिल, हुव हरि भक्त सुढार॥
सुधि करि अपनैं पाप सब, पछितानौं निरधार॥३२॥

मोकौं है धृकार हा, बुरौ कर्म म्हैं कीन॥
दासी सौं उपजाय सुत, बिप्र पनौं तजि दीन॥३३॥
सज्जन मौं निंदा करत, हूं पापी अग्यांन॥
कुल कलंक निश्चै महा, कछु राष्यौ नहिं स्यांन॥३४॥
दासी जो बिभचारनी, मद की पीवन हार॥
ताकौं कीनौं संग म्हैं, तजि पतिब्रता जु नार॥३५॥
तपसी बृद्ध अनाथ जे, बंधुन जिन्हकैं कौय॥
अैसै माता पिता म्हैं, छोड्यौ धर्महिं षौय॥३६॥
अति कांमी अरु क्रतघनीं, परत नर्क जांमांहिं॥
निश्चैहू हुँ जायकैं परि, हौंतौ ताहीं ठांहिं॥३७॥
दैष्यौ सुपन किं साच इह, जांनि पर्यौ कछु हैं न॥
कांह गयै जमदूत जे, आए हैं मुहि लैंन॥३८॥
अरु बै च्यारौं सिद्ध कांह, गए जु परम पुनीत॥
जिन्ह मुहि दियौ छुडाय करि, म्हैरी भीर सुरीत॥३९॥
पूर्ब जनम मैं पुन्य कछु, किय ह्वै हैं निरधार॥
उन्ह सिद्धन कौ मोहि हुव, दरसन तिहिं अनुसार॥४०॥
पूर्ब जनम मैं पुन्य कछु, कियै हुतै जो नांहिं॥
तौं मरतैं हरिनांम नहिं, कढतौ मो मुष मांहिं॥४१॥
कपटी पापी निलज म्हैं, ब्रह्म हत्यारौ नीचु॥
जिहँ मुष तैं हरि नांम क्यौं, निकसैं समैं जु मीचु॥४२॥
तातैं अब म्हैं करौंगौ, अैसौं जतन सुढार॥
जासौं बूडूंगौं नांहिं, बिच अग्यांन अंधियार॥४३॥
काटि प्रकृति बंधनहिं म्हैं, सांत दांत करि चित्त॥
करुणावंत जु सुहृद अरु, होय सबन कौं मित्त॥४४॥
इहीं अस्त्री माया बडी, मोकौं ग्रस्यौ कुभाग्य॥
तातैं म्हैं अब आपकौं, लैहूं भलैं छुडाय॥४५॥
क्रीडा मृग मोकौं कियौ, इहीं अस्त्री दुषदाय॥
अहंता ममता छाडि अब, द्यौं हरि मैं चितलाय॥४६॥
अैसैं ह्वै बैराग जुत, बंधन सबही टारि॥
आयौ ब्राह्मन अजामिल, उमगि तीर्थ हरिद्वारि॥४७॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत है बहिं ठौंर इक, देव मंदिरहिं ठांहिं॥
बैठि आपनौं मन दियौ, लाय आतमा मांहिं॥४८॥
आत्मा कौं इन्ह अजामिल, निरगुन रूप पिछांनि॥
दिय मिलाय परब्रह्म मैं, आछी भांत निदांनि॥४९॥

बै पार्पद हरि कै आय, अजामिल कौं जु लैंन॥
करत भयौ जिन्ह कौं इहै, नमसकार लहि चैन॥ ५० ॥
तजि सरीर हरिद्वार मैं, अजामिल जु सुषपाय॥
पार्षद कौं सौ रूप धरि, हरि पुर पहुँच्यौ जाय॥ ५१ ॥
चढि बिमांन सउबर्न कै, ऊपर निधरक होय॥
नारायन कैं निकट द्विज, प्राप्त भयो दुष षोय॥ ५२ ॥
दासी कौ पति पतित अरु, धर्म गमांवनहार॥
बुरौ कर्म कर्त्ता सु द्विज, अजामेल निरधार॥ ५३ ॥
जिहं हरिनांम जु लैतहीं, पाई मुक्ति सुतौर॥
काटन बंधन कर्म हरि, नांम न सम कछु और॥ ५४ ॥
मन निरमल प्रांनीन कौं, होत लियैं हरि नांम॥
फेरि कर्म बंधनहिं मैं, परत न आंठौं जांम॥ ५५ ॥
जो कोउ सुनैं चरित इह, सौ न नर्क मह जाय॥
जिहँ दिस लषै न दूत जम, पुर बैकुंठ बसाय॥ ५६ ॥
मरन समैं लिय अजामिल, नारायन सुत नांम॥
सोउ क्रतारथ ह्वै गयौ, पायौ सुष अभिरांम॥ ५७ ॥
सर्द्धा सौं हरि नांमहुं जो, लैंय कौउ चित्त चांहिं॥
क्यौंन क्रतारथ हौय सौ, तिहं अचिरज कछु नांहिं॥ ५८ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(यम और यमदूतों का संवाद)

॥ राजोबाच ॥

दोहा - नृप पूंछत इह बात निज, दूतन मुष सुनि फेरि॥
काह उत्तर जमराय जू, देत भयै तिहं बेरि॥ १ ॥
पार्षदनि भगवांन कैं दिय, इहिं जमदूत निकासि॥
किय सहाय बां बिप्र की, काटि कठिन जम फांसि॥ २ ॥
अब तांई जम दंड कौं, भंग सुन्यौ हम्ह नांहिं॥
दूरि करहुं संदैह सुक, जो इह मो मन मांहिं॥ ३ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक कहत कि पार्षदनि जब, दिय जमदूत निकारि॥
तब बै जम पैं जांय कैं, बोलै या अनुसारि॥ ४ ॥

॥ यमदूता ऊचुः ॥

त्रिबिधि कर्म प्रांनी करत, सबहीं बिचु संसार॥
तिन्ह फल कै दाता कितै, सो कहियै निरधार॥५॥
दंड दाता संसार कै, बहुँत हौंहि जगमांहिं॥
जथा जोग्य तौ मुक्ति मृत्यु, काहू की ह्वै नांहिं॥६॥
जासौं करता न्याव कौ, चहियैं यक सरदार॥
कार्ज करै सब लोक जिहं, आग्यां कैं अनुसार॥७॥
नृपति चक्रबर्ती कौऊ, ज्यौं ह्वै प्रथवी ठांहिं॥
छोटै राजा रहत सब, त्यौं जिहं आग्यां मांहिं॥८॥
तुम्ह हौं दाता दंड कै, सब जक्तहिं जमराय॥
भलैं बुरै पुनि पाप कैं, फलहूं दैन सुभाय॥९॥
अब तुम्हकुं कोउ नांहिंनै, मांनत धरै मरोर॥
टारि आग्यांहुं रावरी, च्यारि सिद्धनि बरजोर॥१०॥
हम्ह ल्यावत है बिप्र कौं, तुम्हरी आग्यां पाय॥
ताकौं फांसी काट उन, च्यारिनि दियौ छुडाय॥११॥
नारायन अैसौं जु उन, लियौ अजामिल नांम॥
तब मति डरपै कहत यौं, बैआयै उहिं ठांम॥१२॥
कौ नर है बै च्यारि सौ, दीज्यै आपु बताय॥
हम्ह जांनत हैं नांहिंनैं, कौं सजोर बै आय॥१३॥

॥ सुक उबाच ॥

सुक कहत कि जमदूतनि सुं, सुनि बात याहि भाय॥
ध्यांन करत प्रभु चरन कौं, बोलै बचन सुनाय॥१४॥

॥ यम उबाच ॥

जो या सबहीं जगत कौ, है निश्चै आधार॥
उत्पति पालन अरु प्रलै, जांसौं होत संसार॥१५॥
जांकै बस सब जीव हम्ह, तैं न्यारौ बह ईस॥
प्रभू सथावर जंगमनि, कौं बहि है जगदीस॥१६॥
जो निज बाणी बेद मैं, जक्तहिं राषत बांधि॥
ज्यौं पसून कौं बांधियै, रसरी येक जु सांधि॥१७॥
जाकौं सब बलि दैत है, सुर नर रिषिगन आदि॥
अरु जिहं आग्यां मैं सबै, चलै जात अहलादि॥१८॥
इंद्र निरति मैं बरुन सिव, अग्नि सूर्य मुष च्यारि॥
ससि साध्या सिध अष्ट बसु, बिस्बदेवा रु बयारि॥१९॥
श्रिष्ट उपांवनहार सुर, गन जिनकैं सरदार॥
भृगु रिषि आदि जु रिषि सबै, कहियत है निरधार॥२०॥

जिन्हमैं रज तम गुननहीं, मुष्य सत्व गुनी सुकांहिं॥
जेउ चरित भगवांन कैं, आछैं जांनत नांहिं॥ २१॥
सो जानैं कौ और जन, प्रभु चरित जु अदभूति॥
नेति नेति कहि करत हैं, हरि की निगम सतूति॥ २२॥
हृदय प्रांन इन्द्रीय बचन, मनहूं कैं अनुसार॥
दैंषि सकत है नहिं कोउ, प्रांनी बह करतार॥ २३॥
है सबहीं प्रांनींन कै, आत्मा बै भगवांन॥
अरु बैइ सारै जक्त कै, द्रिष्टा प्रभू निदांन॥ २४॥
सकल पदारथ द्रिगन कौ, जइसैं सकत न देषि॥
अरु दैषत हैं सबन कौं, नैत्र भलैं अवरेषि॥ २५॥
ज्यौंही वां भगवांन कौं, लषि न सकत कौ और॥
अरु सबहीं प्रांनीन कैं, दृष्टा प्रभू सुतौर॥ २६॥
बै प्रभु निज आधीन हैं, माया कैं भरतार॥
भक्त बछल जिनकौं बिरद, है बिष्यात उद्धार॥ २७॥
उन्ह प्रभु कै पार्षद धरैं, उनहीं कौहिं सरूप॥
फिरत रहत हैं जगत मैं, निति प्रति परम अनूप॥ २८॥
सुरगन हूं उन्हकीं करत, नीकैं भक्ति बनाय॥
जिन्हकै दरसनहिं दुर्ल्लभ, पै हैं अति सुषदाय॥ २९॥
जेहैं प्रभू कैं भक्त या, प्रथ्वी बीचि निरधार॥
तिन्हकी बे रछया करत, फिरत भलैं अनुसार॥ ३०॥
सिद्ध चारन सुर असुर नर, रिषिन विद्याधर मांहिं॥
भागवत धर्म अनूप कौ, ए कौ जांनत नांहिं॥ ३१॥
ब्रह्मा सिव मनु कपिल सुक, नारद सनत कुमार॥
बलि भीषम प्रहलाद हम्ह, राजा जनक उदार॥ ३२॥
जांनत ए बारह जनैं, भागवत धर्म सुढार॥
जांसू न दुर्ल्लभ मुक्ति सुष, हियैंहु भलैं प्रकार॥ ३३॥
हिय हरि भक्ति सु प्रगट ह्वै, लीनैं हरि कौं नांम॥
भागवत धर्म इही सही, कहियत है अभिरांम॥ ३४॥
तुम्ह देष्यौ है दूत प्रभु, नांम लैंन परताप॥
जासौं मृति तैं अजामिल, सौ छूट्यौ मिटि पाप॥ ३५॥
प्रभु कैं गुन क्रम नांमकौ, करै कीरतन कोय॥
तासौं प्रांनी कैं भलैं, दूरि पाप सब होय॥ ३६॥
नारायन सुत नांम मृति, समैं लैंन अनुसार॥
बिप्र अजामेल मुक्ति की, प्रापति लही सुढार॥ ३७॥

माया मोहित ह्वै सदा, जग कै जीव अजांन॥
यै जू कर्म जिग्यादि मैं, लागि रहै बिन ग्यांन॥३८॥
बुद्धिवंत इहँ बात कौ, चित बिचार सरसाय॥
अैक प्रभू की भक्ति ही, करत भलैं सुषपाय॥३९॥
बे कछु पापहिं करत सौ, टरत लियैं हरिनांम॥
तिन्हकौं दंड न दै सकत, हूं थरहरि हिय ठांम॥४०॥
जे समदरसी साध हरि, सरन रहत हैं चांहिं॥
जिनकौ जस सुर सिद्धहू, गावत अधिक उमांहिं॥४१॥
रष्या उन बैष्णवनि की, हरि की गदा करंत॥
जिन्हकौ म्हैं हूं दंड किहुं, भांतिन देजु सकंत॥४२॥
उन्हकौ कछू न करि सकत, कालहुं जो बर जोर॥
तुम्ह हुं कबहूं जाऊ मति, भूलि हुँ जिनकी वोर॥४३॥
हरि पद कंवल पराग बस, ह्वै मतवारे साध॥
जा रसकौं सेवन करत, जो रस परम अगाध॥४४॥
जा रस सौं जे बिमुष है, प्रांनी अतिहिं अग्यांन॥
गेह नर्क कौ मूल तिहिं, मधि आसक्त निदांन॥४५॥
जिन्ह जिभा तैं नांम जू हरि, कबहूं निकसत नांहिं॥
अरु प्रभु कौ आनंद मय, ध्यांन है न चितमांहिं॥४६॥
जिन्हकैं सिर नांहिंन नमत, प्रभु कौं काहू बार॥
उन्ह दुष्टनि कौं तुम्ह इहां, लै आवो निरधार॥४७॥
हम्ह अपराध छिमा करहुं, बे भगवांन अगाध॥
जिन्हकैं भक्तनि कौं कियौ, मम दूतनि अपराध॥४८॥
हम्हहुं अग्यांनी हैं तऊ, उन्हहींकैं हैं दास॥
उन्हकौं करत प्रनांम हम्ह, चित्त अति धारि हुलास॥४९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

मंगल कर्त्ता जक्त कौ, अैसौ है हरिनांम॥
बडै अघन कौ प्रायश्चित, इह ही अति अभिरांम॥५०॥
कहत सुनत हरि चरित जे, तिनकैं उपजत भक्ति॥
महापवित्र जू होत है, प्रांनी ताही सक्ति॥५१॥
अैसौ प्रांनी पबित्र जू, ह्वै ब्रत तीर्थ कियैंन॥
जइसौ हरि की भक्ति सौं, हौहीं पबित्र सुषैंन॥५२॥
चरन कँवल हरि कैन कौ, स्वाद लियौं जिन होय॥
जे न बिषै आसक्त ह्वै, पापहुं करत न कोय॥५३॥
अरु प्रांनी हरि बिमुष जे, दूर करन अघ आपु॥
प्रायश्चित हुं करिकैं बहुरि, करन लगत है पापु॥५४॥

सुनि महमा हरि नांम की, जम मुष तैं या भाय॥
जमदूतन कै चित्त भयौ, अचिरज अति अधिकाय॥५५॥
ता दिन तैं भगवांन कै, भक्तजनन कौं देषि॥
नित प्रत डरपत ही रहै, जमकैं दूत अलेषि॥५६॥
बैठे परबत मलय मधि, करत प्रभू की सेव॥
इहीं चरित हम्ह सौं कह्यौ, रिषि अगस्ति सुभ भेव॥५७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

(दक्ष के द्वारा भगवान की स्तुति और भगवान का प्राकट्य)

॥ राजोबाच ॥

चोपाई - राजा पूछत है बडभागहिं। सुर नर असुर पंछी पुनि नागहिं ॥
इन्हकीं श्रृष्टि अलप बिधिहुं कही। स्वायंभुव अरु मनंतर मही ॥ १ ॥
सो अब म्है करिकै बिस्तारिहिं। सुन्यौ चहत हौं भलैं प्रकारहिं ॥

॥ सूत उबाच ॥

सूत कहत ए नृप कैं बैंना। सुनि बोलै सुपदेव सुपैंना ॥ २ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

नृप प्राचीन बर्हि कैं बेटा। दसौं प्रचेता नांम सहेटा ॥
करितप निकसै जल तैं बाहरि। देषैं बृछि बऊत भुव ठांहरि ॥ ३ ॥
तबै जरांवन उन बृछिननि कौं। प्रगट करत भय अग्नि पवन कौं ॥
जरत बृछिन कौं लषि ससि आयै। बोलत भयै बचन या भायै ॥ ४ ॥
इनीं बृछिनकौं तुम्ह मति जारौ। अपनैंमन मैं नीति बिचारौ ॥
तुम्ह प्रजांन कैं पालन वारै। करन श्रृष्टि अधिकी निरधारै ॥ ५ ॥
हरे बृछि ए औपधी साजैं। जग मैं जीवन भोजन काजैं ॥
है जग मैं जीवनि कौं भोजन। अचर त्रिणादिक जांनहुं निज मन ॥ ६ ॥
चलत फिरत हैं तिनकौ भछिनहिं। बिनुं चरन बारे लीजै गिनहिं ॥
भोजन हस्त बैंतन कौं जांनौं। बिनां हस्तवारे पहचांनौं ॥ ७ ॥
तुम्हहिं पिता आग्यां दिय अैसैं। सृष्टि बदै करियैं बिधि तइसैं ॥
तातैं तुम्ह क्यौं बृछि जरावौ। आछी भांति श्रृष्टि उपजावौ ॥ ८ ॥
जिहं मग दादे पिता तिहारै। चलि आए हैं भलै प्रकारैं ॥
तिहं मग तुम्ह हूँ चलौ सुभाई। कोप न करहुँ पिमा चितलाई ॥ ९ ॥

बालक कै पालक पितु माता। दृग पालक ज्यूं पलक बिष्याता॥
अस्त्री कौ पालक पति जइसैं। पालक नृपति प्रजा कौं तइसैं॥ १०॥
पालक गृहस्थ जु सन्यासीन कौं। पंडित पालक अकलहीन कौं॥
सब मैं है आत्मा भगवांनहिं। उन्हकौं सत्र ठां लपै निदांनहि॥ ११॥
धरिकैं जो कौं आत्म बिचारहिं। करै क्रोध कां वसि निरधारहिं॥
सौ माया कै गुन कौं जीतैं। भली भांति तैं जनम बितीतैं॥ १२॥
बृछिनि जारिबौ मति चित चाहौ। पाली कन्या बृछिनि सौं ब्याहौ॥
ससि कहि बात याहि उनमांना। कन्या दै भयौ अंतरध्यांना॥ १३॥
दसौं प्रचेतानि कन्या एकू। बह ब्याहत भय सहित बिबेकू॥
तिन दसौंन कैं सुत इकहिंभयौ। दछि प्रजापति नांम जू सुठयौ॥ १४॥
तानैं कीनी बहुंत प्रकारहिं। भई सृष्टि जिहिं बार न पारहिं॥
मन रु बीर्ज तैहिं दछि प्रजापति। सृष्टि रची सौ सुनौं कहूं गति॥ १५॥
पहलैं मनही कैं अनुसारा। दछि प्रजापति रचेहुं सुढारा॥
सुर नर असुर जितेक गनाए। नभ जल थल बासी प्रगटाए॥ १६॥
बहै सृष्टि जब बधत न देपी। और बात तबै चित्त सु पेषी॥
बिंध्याचल नग निकट सुभाई। दछि प्रजापति तप कियैं जाई॥ १७॥
तांह अैक अघ मर्षन नांमां। तीरथ अतिहिं पबित्र अभिरांमां॥
तामैं करि त्रय बेर सनांनां। तप करि प्रस्न्न कियैं भगवांनां॥ १८॥
स्तौत्र सुहंस गुह्य जो नांमां। तासौं कियैं हरि स्तुति सकांमां॥
सौइ स्तौत्र हम्ह अबैं सुताछैं। कहत सुनौं लायैं मन आछैं॥ १९॥

॥ प्रजापति रुबाच॥

जिन्ह रची सक्ति परम श्रेष्ठ सति। जीव प्रकृति कैं बंधु जगत पति॥
अग्यांनिन जिन रूप नहिं जांन्यौं। ग्यांनी जननि भलैं पहचांन्यौं॥ २०॥
जांहिं न अंत प्रमान पार है। अैसैं प्रभु कौ नमसकार है॥
बसत जु जीव सरीरहिं ठांमी। जिहं प्रेरक जो अंतरजांमीं॥ २१॥
सौ प्रभु ज़ीव पासहीं बसहीं। जीव इहै तिहिं जांनत न सही॥
ज्यौं इंद्रीन बिषै नहिं जांनैं। इंद्री सब बिषयनि पहचांनैं॥ २२॥
जइसैं जीव न लहि अभिरांमा। जा हरिकौं है भलैं प्रनांमा॥
अंतहकर्न प्रांन इंद्रीतन। पंच तन मात्रा पंचभूत गन॥ २३॥
अैं अपनैं रूपहिं नहिं जानैं। अरु इन्ह सबकौं जीव पिंछानै॥
जीव सु प्रभु कौं जांनत नांहीं। जा प्रभु कौं परनांम सबांहीं॥ २४॥
जब समाधि मैं मन ह्वै निश्चल। तब बहिं प्रभु सरूप जांनैं भल॥
अैसौ जो स्वांमी करतारा। जा प्रभु कौं परनांम सुढारा॥ २५॥
प्रकृति पुरप महतत्व अहँकारा। तनमात्रा जु पंच निरधारा॥

इन्हहिंन उंजु पदार्थनि मांहीं। प्रभू रहै छिपि धरि निज चांहीं॥ २६॥
करि जिन प्रभु सरुप कौं न्यारौ। पंडित ध्यांन धरत सुभ ढारौ॥
ज्यूं मधि काष्ठ तैं जीव निदांनं। अग्नि काढि लैं हीं बुधिवांनं॥ २७॥
जुदै प्रकृति तैं सौ भगवांनं। परमानंद रूप उनमांनं॥
अरु इहीं किहैं सकल जो जक्त। कहन मैं ना आवत तिन सक्त॥ २८॥
अैसौं जो भगवांन उदारा। जाकौ बंदनहूं बारं बारा॥
जो बचननि मैं कहियै सोई। बुधि मन सौं जु बिचारिय जोई॥ २९॥
इंद्रिन सौं लयियत है वाही। सोवा प्रभु कौ रूप जु नाहीं॥
उतपति पालन प्रलै करन हरि। तिनकौं नमसकार निश्चै करि॥ ३०॥
जाकै बिषै जु जगत है इहै। जाही करि जक्त प्रगटन न लहै॥
अरु जा करिकैं है सबै जक्ति। सबै दुष मिटै कियै जिहँ भक्ति॥ ३१॥
और जु कछु करियैं करवइयैं। सूछम स्थूल भेद लपि पइयैं॥
जाकौ कारन जो बहु नांमां। ताकौं कोटि कोटि परिनांमां॥ ३२॥
जिहिं प्रभु की माया कैं ढारा। करत संबाद बिबाद संसारा॥
हित जुत जा प्रभु कौं परिनांमां। जे प्रभु पूरन सुष कै धांमां॥ ३३॥
है उपासनां सास्त्रहिं जु मद्धि। बर्नन कियैहुं जिहिं रूप प्रसिद्धि॥
अरु सुभ ग्यांन सास्त्र कै मांहीं। कह्यौ रूप जिहँ प्रभु कौ नांहीं॥ ३४॥
रूप परहित जे प्रभु अभिरांमां। जिन्हकैं चरननहूं कौं परिनांमां॥
जिन्हकैं चरन भजत जे दासा। तिन्हकैं अनुग्रह अर्थ प्रकासा॥ ३५॥
नांम रूप करि रहत तऊ पुनि। नांम रूप कौं भजत कहत मुनि॥
अैसैं प्रभु भक्तनि हितकारी। प्रसन्न होउ मो पाप प्रहारी॥ ३६॥
जे अनैंक देवन कैं रूपा। होय बिराजत प्रभू अनूपा॥
जिहिंकीं भक्ति भावना जइसी। प्रभू मूरत धारैहुं तइसी॥ ३७॥
जइसै पवन अनैक प्रकारा। भासत बहुंत गंध अनुसारा॥
तइसैं हीं प्रभु अंतरजांमी। बहुंत कहाय रूप बहुनांमी॥ ३८॥
बेइ भगवांन दया अनुसरौ। पूर्न मनोरथहिं म्हैरै करौं॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि असतुति या भाई। सुनि भगवांन परम सुषदाई॥ ३९॥
अघ मर्पन तीरथ कै ठांमां। प्रगटत भये प्रभू अभिरांमां॥
गरुड कंध धरा चरन जु सोभित। अष्ट भुजा सु राजत परलंभित॥ ४०॥
संष चक्र सर धनु तरवारा। ढाल पास अरु गदा सुढारा॥
आयुध इतै धरैं भगवांना। कौस्तुभ मणि श्री चिन्ह हिय थांनां॥ ४१॥
प्रसंन्न बदन पंकज सै नैंना। सुंदर स्यामं महाछबि अैंना॥
पीताम्बर सौभित जु रसाला। सीस मुकुट कंठहिं बन माला॥ ४२॥

बाजू बंद अंगूठी कंकन। कुंडल नूपुर आदि जु भूषन॥
जथा जोग्य अंग अंगहिं बनैं। लहि प्रभू अंग संग छबि सनैं॥ ४३॥
मनू तृलोकी मोहनहारा। ऐसौ प्रभु कौ रूप उदारा॥
नारद आदि पारपद संगहिं। लीनैं हैं प्रभु आदि अभंगहिं॥ ४४॥
इंद्रादिक देवेस्वर गावैं। प्रभु दरसन करिकैं हरषावैं॥
चारन सिद्ध गंधर्व सुभांईं। प्रभू की स्तुति करत सुपगांई॥ ४५॥
ऐसी बिधि लपि प्रभु अभिरांमा। दछि प्रजापति किम्रै परनांमा॥
अति आनंद पाय निरधारा। बौलि न सक्यौ कछू तिहिं बारा॥ ४६॥
दछि प्रजापति सौं हरि जे बोलै। अदभुत सुंदर बचन अमोलैं॥

॥ श्री भगवांनुबाच॥

अहे दछि तू तपस्यां करिकैं। सिद्ध भयो हैं भलै सम्हरि कैं॥ ४७॥
म्हैरी भक्ति तोहि प्रगटाई। जो बेदन मैं दुर्लभ गाई॥
सृष्टि निमित तप कीनैं धरि हित। तासौं प्रसंन भयौ म्हैरो चित॥ ४८॥
है मनोरथ म्हैरेहू इही। बृधि होयी प्रांनिन की सही॥
ब्रह्मा सिव सुर तुम्ह मनुराई। मो विभूति हौ प्रगट सुभाई॥ ४९॥
तपस्या म्हैरो हदै पिछानौं। बिद्या मोहि सरीर उनमांनौं॥
अरु मो आक्रति क्रिया कहायी। जिग्य अंग म्हैरै सुपदायी॥ ५०॥
आत्मा म्हैरो धर्म निदांना। सबै देवता है मो प्रांना॥
पहलैं म्हैं ही रह्यौ सु तौरा। बाहरि भीतरि कछू न औरा॥ ५१॥
इहि सबहीं ब्रह्मंड सुभायी। बिधि जुत मोही तैं प्रगटायी॥
सो ब्रह्मा पहलैं किहूं भायी। सक्यौ नांहिंनै सृष्टि बनायी॥ ५२॥
तब ब्रह्मा मो आग्या पायी। तपस्यां करी भलैं चितलायी॥
जाकैं बल सौं निपट प्रवीनां। तुम्ह से नव सुत प्रगट जु कीनां॥ ५३॥
परजापति जु पंच जन नांमां। जाकी सुता असिकिनी भांमां॥
तांसौ तुम्ह अब करौ बिबाहू। अपनैं मन मैं धरि अति चाहू॥ ५४॥
प्रगट जु सृष्टि करौं इह भायी। नारी सहित फेर सुषदायी॥
अस्त्री रूप मो माया भजि हैं। तो पांछै बहु प्रजा उपजिहैं॥ ५५॥
मो कौं बलि दैहैं या भायी। श्री सुक कहत कि इहै उपायी॥
यौं जु बचन कहिकैं भगवांना। फेरि होत भय अंतरध्यांना॥ ५६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

(नारद जी के उपदेश से दक्षपुत्रों की विरक्ति तथा नारद जी को दक्ष का शाप)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक कहत कि जबै दछिनै, ब्याही तिय अभिरांम ॥
रहै प्रजापति पांच जन, सुता असिकिनी नांम ॥ १ ॥
जांसौ पुत्रनि हजार दस, भये दछि हुं कैं धांम ॥
हर्यस्व जिन सबहींन कौ, भयौ यैक ही नांम ॥ २ ॥
अरु सबहिंन कौ येक सौ, भयो सुधर्म सुभाव ॥
तिन्हकौं आग्यां दिय पिता, करौ सृष्टि उपजाव ॥ ३ ॥
तबै ए आग्यां दछि की, सीस आपनै राषि ॥
पछिमहुं दिसि की वोर कौं, गयै सबै अभिलाषि ॥ ४ ॥
सिंधु नदी रु समुद्र कौ, है संगम सुभ तौर ॥
नारायन सर नांम कौ, तीरथ पुन्य तप ठौर ॥ ५ ॥
सिद्ध मुनीस्वर जहँ बहुंत, बसत महा सुष पाय ॥
करत ध्यांन भगवांन कौं, नीकैं चित्तहुं लगाय ॥ ६ ॥
वा तीरथ मैं सनांन करि, तिहिं प्रताप अनुसार ॥
इनकै मन कौं मैल सब, दूरि भयो निरधार ॥ ७ ॥
परम हंस कै धर्म मधि, रुचि उपजी अधिकाय ॥
तउ सृष्टि कै निमित किय तप, पितु आग्यांहिं भाय ॥ ८ ॥
नारद जू तब इनहिं लषि, किय बिचार मनमांहिं ॥
ए तौ मार्ग निवर्त्त कै, अधिकारी अधिकांहिं ॥ ९ ॥
तिन्हसौं नारद जू तबै, बोलै या अनुसार ॥
हे परजापतिजु दछि कै, पुत्रन सुनौं सुबिचार ॥ १० ॥
तुम्ह तौ बालक हौ बिना, देषैं प्रथवी अंत ॥
श्रजि हौं कइसी भांति सौ, आछैं प्रजा अनंत ॥ ११ ॥

चोपाई - बसत पुरष इक जाकै मांही। अैसैं देसहिं लपै बिनांहीं ॥
अरु जामैं तै निकसि सकै नहिं। देपै बिनां जु अैसौ विलकहिं ॥ १२ ॥
अरु जिहिं तिय कैं रूप अलेपैं। अैसी अस्त्री कौ बिन देपैं ॥
अरु जिहिं तिय पतिब्रत जुनाहीं। पोटी महा प्रगट जग ठांहीं ॥ १३ ॥
ताकौं पति सौं बिना निहारै। कइसैं स्त्रजि हौं प्रजा सुढारैं ॥
अरु जो नदी बहत दुहुं औरै। जाकौं देषैं बिना सुतौरैं ॥ १४ ॥
अरु पच्चीस बस्तु कौ धांमां। क्यूंहूं बिनां लपैं सौ ठांमां ॥
कथा बिचित्र जासू अधिकाई। जा हंसहिं बिन लपैं सुभाई ॥ १५ ॥
तीछन छुरा महाभयकारा। ताकौं लपैं बिनां निरधारा ॥
चक्र एक है बज्र समांना। जाकौ जानै बिनां निदांना ॥ १६ ॥

अरु निज पितु की आग्या आछे। जांनै बिनां सुनैं सुभ ताछैं॥
तुम्ह सब सृष्टि स्रजोगे कइसैं। करहू उपाव भलैं है जइसैं॥ १७॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि नारद जू कै जब। अैसै गूढ बचन सुनिकैं सब॥
बुद्धि आपनी कैं अनुसारी। भए लेत ए अर्थ बिचारी॥ १८॥
नारद जू नैं पहली बारा। बचन कह्यौ यासूं परकारा॥
लपैं बिनां भुव अंत सुढारा। कइसैं श्रजिहौं प्रजा अपारा॥ १९॥
जिहं सुअर्थ इन उर इह जाग्यौ। लिंग सरीर जीव कौं लाग्यौं॥
सोइ प्रथी बिनु लपैं सुपैंना। कछु सिध प्रबृति कर्म सौं है ना॥ २०॥
अरु सरीर ही नगर जू इहैं। तामैं आत्म पुरप इकै रहैं॥
जांकौ बिन जांनैं किहुं भाई। कर्मन सौं न कछू सिधि पाई॥ २१॥
जा ईस्वर कौं जब इह पावै। तब संसार मैं न कहुं आवै॥
अैसौं ब्रह्म रूप नहिं जांनैं। तौ कर्मन सौं सिधि न निदांनै॥ २२॥
अैसौं बिल पताल कौ नांमा। तहँ गौ फिर न आय या ठांमा॥
माया कै गुन जुत दरसाता। जाकै रूप अनैक बिष्याता॥ २३॥
अैसी अपनी बुद्धि जब तांई। निश्चै करै न भलैं उपांई॥
तबलौं कर्मन सौं निरधारा। कछू सिद्धि नहिं होत सुढारा॥ २४॥
वा बुधि संगति कैं उतपाता। जांकी ईस्वरता रहि जाता॥
पर्यौ आनि संसारहिं मांहीं। अैसौं जीव बहुंत दुप पांहीं॥ २५॥
जांनैं बिनां सौ जांकौ मर्म। कछू न सिद्धि है कीनैं कर्म॥
सृष्टि रु प्रलै करन वारी है। नदी समांन प्रकृति भारी है॥ २६॥
जब लौं जाहि जांनि नहिं जांहीं। तब लौं कर्मन सौं सिधि नांहीं॥
अरु पच्चीस बस्तू कौ गेहा। सोई है निश्चै इह देहा॥ २७॥
ताकौं आछी भांति प्रकासक। अंतरजांमी प्रभु है भासक॥
जबलौं जांनै नाहिंन सोई। तब लौं सिधि न कर्म सौं होई॥ २८॥
बंध मोक्ष तत्व जांसौं जांनैं। जांमैं प्रभु बिचार उनमांनैं॥
अैसौ सास्त्र ही है हंसा। तांकौ बिन जांनै सु प्रसंसा॥ २९॥
कर्मनि करिकैं काहू भाई। कछू सिद्धिता नांहिंन पाई॥
अरु इह काल चक्र बरजोरा। सबकौं नास जु करत कठोरा॥ ३०॥
बिन जांनैं जांकौं अनुसारा। कछू न सिद्धि है किहूं प्रकारा॥
अरु सास्त्र ही पिता कहाई। ताकी आग्या या अनुभाई॥ ३१॥
चलियैं मग निवर्त कैं मांहीं। तासौं बहु कलेस मिटि जांहीं॥
जांकौं जब लौं नांहिंन जांनैं। तबलौं सिधिता कछु न निदांनैं॥ ३२॥
यौं नारद जू कै वचनहिं कौं। निश्चैं करिकैं अर्थ सबन कौं॥
नारद जू की परिकरमा करि। दछि कै सुत दस सहस्र चाह धरि॥ ३३॥

मुक्ति मार्ग कौं प्रापति जु भयैं। जांसौ जनम मरन दुप जु गयैं।॥
हरि कै गुन गावत अभिलापी। प्रभु पद पंकज मैं चित रापी॥ ३४॥
नारद जू किहुं औरहिं ठौरा। भए पधारत आछै तौरा॥
नारद सूं लहि ग्यांन सुढारा। हुव बिरक्त ए दसौं हजारा॥ ३५॥
इही बात सुनिहुं दछि प्रजापति। होत भयौ चितमांहिं दुपित अति॥
दछि प्रजापति कौं तिहूं बारा। समाधांन कीनौं मुप च्यारा॥ ३६॥
दछ प्रजापति नैं पुत्र हजारा। फेरि प्रगट कीनैं निरधारा॥
तिन्ह सबहिंन कौं यैकहिं नांमा। हुव सबलास्व महा अभिरांमा॥ ३७॥
तै आग्या जु पिता की पाई। सृष्टि काज तप करन सुभाई॥
तीरथ नारायन सर नांमा। जात भयै सब ताही ठांमा॥ ३८॥
इन्हकैं भाई बडे सु आगैं। गए हुतैं सबहीं जिहं जागैं॥
वा तीरथ कै जल कै मांहीं। इन्ह सनांन कीनौं तिहिं ठांहीं॥ ३९॥
तांसौं मन निर्मल ह्वै जु गयौ। करत ब्रह्म जप बड तप सुठयौ॥
केऊ मंहीनां जलहीं पियौ। फिरि केउ मास पवन भपि लियौ॥ ४०॥
प्रभु आराधन कीनौं आछैं। मंत्र सु पढत रहै या ताछैं॥
महा पुरप आत्मा नारायन। सुद्ध सत्व गुन रूप सुभायन॥ ४१॥
तिन्हकौं हम्ह जु करत हैं ध्यांना। मंत्र पढत भय या उनमांना॥
उन्हहूं सौं नारद जुहीं तबै। गूढ बचन कहते भयै सबै॥ ४२॥
अरु इह कहत भयै पुनि बाता। या मारग मैं तुम्हरै भ्राता॥
आगैं चलत भयै सब आछैं। ताही मग तुम्ह चलौं सुताछैं॥ ४३॥

दोहा - जो कौ भाई बडनि कैं, मग मैं चलै सुभाइ॥
मरुत नांम अमरनि निकट, सौ प्रापति ह्वै जाइ॥४४॥
अैसैं कहि नारद मुनी, जात भये किहुं और॥
मग निवर्त्ति मैं एउ सहस, लगै सुभ्रातनि तौर॥४५॥
मगू निवर्ति मैं लागि कैं, यै भ्रातनि की रीत॥
फेर पिता कै पास नहिं, गए जनम निज जीत॥४६॥
दछ प्रजापति कैं बहूंत, असगुन हुव तिहिं बार॥
अरु निश्चै इह बात फिरि, सुनत भयौ निरधार॥४७॥
पहलैं पुत्रननि कौंकियौ, ज्यूं नारद जू नास॥
इनहूं पुत्रननि कौं अबैं, कियौं नास बिधि जास॥४८॥
सुनी बात इह तिहँ समैं, तबहिं नारद मुनेस॥
दछिहुं पास आवत भयै, दैंन ग्यांन उपदेस॥४९॥
नारद जू सौं दछिहुं तब, बोल्यौ अधिक रिसाय॥
कहत भयौ बालक बुरै, जे अनउचित कहाय॥५०॥

॥ दछ उबाच ॥

हे नारद है आपकौ, साधुनि कौं सौ रूप॥
अै परि आपु असाधु हौ, निर्दय सहज संजूप॥ ५१ ॥
तुम्हन हम्हारे बालकनि, कौं किये बुरौ प्रतछि॥
संन्यासी बिरकतन कौ, सिषयौ मार्ग दै सछि॥ ५२ ॥
मुक्त न जे रिन तीन तैं, भये बीच संसार॥
अरु कर्मनहूं कौं कछू, कीनौं नहिंन बिस्तार॥ ५३ ॥
अैसैं म्हेरै पुत्रनि जे, होत जु भये उदास॥
जिनकैं दोनौं लोक कौं, तुम्ह करि दीनौं नास॥ ५४ ॥
बुद्धि बालकन की तुम्ह सुं, बहकावत निरधार॥
दया तुम्हारे नांहिं जस, सबकौं घाँवनहार॥ ५५ ॥
निर्लज्ज हौं तुम्ह बडे प्रभु, पार्षदनि कैं मांहिं॥
कछू बडाई बात या, मधि समझहुं मन ठांहिं॥ ५६ ॥
और बैस्नव तौ करत, सब पर क्रपा सुढार॥
अरु तुम्ह सबहिंन सौं करत, बैर भलैं अनुसार॥ ५७ ॥
तुम्ह प्रथमहिं बैराग कौ, किय उपदेस अथाग॥
जासौं प्रगटत बालकनि, कौं नांहीं बैराग॥ ५८ ॥
अैक बेरि करि चुकै नर, प्रथम बिषै कौ भोग॥
तब जांनत जु बिषैंन कौं, दुष्य रूप बड रोग॥ ५९ ॥
जब तांई प्रांनीन कौं, अैसी समझि न आय॥
तब लौं औरन कैं कहैं, बैराग न प्रगटाय॥ ६० ॥
साध गृहस्थ हम्ह सारिषै, चलै जात मग कर्म॥
तिनकौं तैं कीनौं बुरौ, सौ सहि रहै अधर्म॥ ६१ ॥
पैं म्हेरै संतान कौ, तुम्ह कीनौं है नास॥
तातैं भ्रमत फिरौं जगत, बिच न बसहुं इक बास॥ ६२ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

कहत भय श्री सुकदेव जु, नारद सूं तिहिं बार॥
दयो दछि इही श्राप सौ, कीनौं अंगीकार॥ ६३ ॥
साध परम ग्यांनीन की, इहै रीति निरधार॥
जो कोउ कहै सु सहिहैं, करै न आपु बिगार॥ ६४ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - बोलै श्री सुकदेव फिरि, दछि बिधि आग्यां पाय॥
प्रगट करी निज तिय बिषै, कन्याहुं साठि सुभाय॥ १ ॥
दस कन्यान तौ धर्म कौं, दई बिबाह उमांहिं॥
अरु ब्याही कस्यप रिषिहिं, तेरह कन्यान चांहिं॥ २ ॥
सत्ताईस कन्यान दई, ससि कौं ब्याहि सुढार॥
दोय भूत रिषि कौं दई, सुंदर सुषद सुचार॥ ३ ॥
द्वितीय कस्यप नांम सौ, ताय्रक्ष ऐसौ जांन॥
ताकौं कन्यान च्यारि पुनि, दई बिबाहि सुग्यांन॥ ४ ॥
दोय अंगिरा कौं दई, क्रसास्व रिषि कौं दोय॥
ब्याही कन्याय दछि सबै, रही न क्वांरी कोय॥ ५ ॥
पूर्न भयो त्रय लोक सब, तिन संतांनि प्रभाय॥
अब सुनियैं सब कहत हौं, तिनकैं नांम गनाय॥ ६ ॥
लंबा भानु महूरता, ककुभ मरुत्वती जामि॥
बिस्वा साध्या संकल्पा, वसु ए दसहूं नामि॥ ७ ॥
ए दस धर्महिं ब्याहि दिय, दछि भलैंहु अनुसार॥
इनकैं पुत्रनि कैं अबैं, नांम सुनौं निरधार॥ ८ ॥
बेद रिषभ सुत भानु कैं, प्रगट भयै अभिरांम॥
ताकै प्रगट्यौ पुत्र तिहिं, इन्द्र सेन हुव नांम॥ ९ ॥
लंबा कैं सुत प्रगट हुव, नांम विद्योत सुढार॥
ताकैं स्तनयनि भयौ जू, पुत्र प्रगटत निरधार॥ १० ॥
संकट सुत भौ ककुभ कैं, तिहं सुत कीकट जांनि॥
ताकैहुं दुर्गाभिमांनी, देवता जु सुत मांनि॥ ११ ॥
सुर्ग पुत्र भयौ जामिकैं, तिहं सुत नंदि निदांनि॥
बिस्बे देबाजू बिस्वा कैं, तिनकैं कछु न संतांनि॥ १२ ॥
साध्य नांम गण सुरनि कौ, साध्या कै प्रगटाय॥
जाकै पुत्र जू अर्थ सिधि, उपजत भयौ सुभाय॥ १३ ॥
दोय पुत्रनि मरुत्वती कै, हुव जयंत मरुत्वांन॥
वासुदेव कौ अंस सोइ, जयंत उपेंद्र निदांन॥ १४ ॥
पुत्रहिं महूर्ता कै भए, अमर मुहूर्तक नांम॥
जे मुहूर्त सब काल कौ, फल सु देत सब ठांम॥ १५ ॥

पुत्रहिं संकल्पा कैं भयौ, प्रगट संकल्प सुनांम॥
ताकैं सुत उपजत भयौ, कांम महा अभिरांम॥१६॥
भयै अष्ट बसु नांम सुत, बसु कै गर्भहिं ठांम॥
सुनौं नृपति अब कहत हौं, उन आठुनि कै नांम॥१७॥
द्रोण दोष ध्रुव अर्क बसु, अग्नि बिभाबसु प्रांन॥
अब इनकैं संतान कौ, करत हुं सुनौं बष्यान॥१८॥
अस्त्री अभिमति नांम की, द्रोण बिबाह सु कीन॥
तातैं सुत प्रगटत भयै, हर्ष सोक भय तीन॥१९॥
ऊर्जस्वति अस्त्री रही, सुनहुं प्रांण कै धांम॥
तिन्हकै सुत हुव सह आयु, पुरोजब इही नांम॥२०॥
धरणि नांम अस्त्री सोही, ध्रुव कै गेह सुभाय॥
पुर अभिमांनी देवता, जाकै सुत प्रगटाय॥२१॥
सुनहुं वासनां नांम की, हुती अर्क कै बांम॥
तर्ष आदि सुत प्रगट हुव, जाकैं गर्भहिं ठांम॥२२॥
नांम बसोधारा तिया, हुती अग्नि गृह ठांहिं॥
द्रविण आदि सुत प्रगट हुव, ताकै गर्भहिं मांहिं॥२३॥
और सकंद कुमार हुव, यैकहिं पुत्र अभिरांम॥
सौ क्रतका पाले तिननि, भौ बिसाष सुत नांम॥२४॥
तिया सर्वरी दोष कै, तिहँ सुत हुव सिसुमार॥
सो निश्चै प्रगटत भयौ, हरि कौ अंस उदार॥२५॥
अंगिरसी अस्त्री सौही, वसु कै जुत गुन रूप॥
ताकै बिस्वकर्मा भयौ, प्रगटहिं सुपुत्र अनूप॥२६॥
ताकै चाक्षुष मनु भए, जगत बिदत अवदात॥
बिस्वै जु साध्या नांम सुत, जिन्हकै हुवै बिष्यात॥२७॥
उषा बिभाव सु कै तिया, जिहँ सुत भए सुढार॥
आतप रोचिष ब्युष्ट अरु, पंचयाम सु बिचार॥२८॥
पंचयाम भयौ पुत्र सौ, आतप कै गृह आय॥
अबै भूत रिषि कै तनय, कहियत है बहुभाय॥२९॥
सरूपा नांम दछि सुता, ब्याही ही रिषि भूत॥
ताकैं कोटिक रुद्र गन, प्रगट होत भय पूत॥३०॥
रैवत अज भव बृषाकपि, अहिर्बुध्न्य बहुरूप॥
भीम रु अजइक पाद उग्र, बाम महान संजूप॥३१॥
ए ग्यारह सिव रूप हैं, तिन्हकैं पार्षद जांनि॥
भूत बिनायक आदि हैं, यैं जितनैक निदांनि॥३२॥

जे प्रगटें रिषि भूत की, दुतीय तिया गर्भाय॥
तै अगनत तिन्हकी कछू, गनती कही न जाय॥३३॥
स्वधा सती द्वै दछि सुता, ब्याही रिषि अंगिराहि॥
अब तिन्हकें संतान कौ, सुनियै बरनन ताहि॥३४॥
कुषी स्वधा कै तैं पितर, पुत्र जू भयै सुभाय॥
और अथर्वांगिर जु तनय, सती गर्भ प्रगटाय॥३५॥
धिषण अरु अर्चि जू दछि कै, दोय सुता अभिरांम॥
क्रसास्व रिषि ब्याही हुती, सुनिय तिन्ह पुत्रनि नांम॥३६॥
धूम्रकेस हुव अर्चि सुत, धिषण कै सुतहिं च्यार॥
वयुन बेदसिर देवल रु, मनु ए भए सुढार॥३७॥
बिनता कद्रू यामिनी रु, पतंगी जु अैं च्यार॥
हुती बिबाही जु ताक्ष्र्य, कौं दछि पुत्री सुढार॥३८॥
भए पतंगी कै पछी, कद्रू कै भए नाग॥
सलभा यामिनि कैं भयै, सुनहुँ नृपति बडभाग॥३९॥
गरुड बिष्णुबाहन अरुन, रबि सारथी सुजांनि॥
ए दोउ वनिता गर्भ तैं, प्रगटैहुं पुत्र निदांनि॥४०॥
क्रतिका आदि नछत्र जे, जांनऊ सत्ताईस॥
तै ससि कौं ब्याही हुती, सुता दछि जु अवनीस॥४१॥
ससि कौ लाग्यौ रोग छय, दछि श्राप सुं अनुभाय॥
तातै उन अस्त्रीन कैं, संतांन न प्रगटाय॥४२॥
फेरि करत भयै चंद्रमा, दछिहीं प्रस्न्न सुभाय॥
कला भई ही नष्ट तै, तातैं फिरि सब पाय॥४३॥
अब कस्यप की तियन कै, सुनौ नांम तुम्ह राय॥
बृधि भई है सृष्टि की, तिन्ह संतांन प्रभाय॥४४॥
दिति दनु मुनि काष्टा इला, सुरसा सुरभि रु अदिति॥
क्रोधवसु सरमा ताम्रा, अरिष्टाता तिमि सुचिति॥४५॥
दछि जु बिबाही कस्यपहि, यै कन्यान दस तीन॥
बर्नन जिन संतांन कौ, सुनियैं सुजस प्रवीन॥४६॥
क्रोध वसा कै सर्प हुव, तिमी कैंहुं जलजंत॥
सिंघ आदि सुत प्रगट हुव, सरमा कैं बलवंत॥४७॥
गीध बाज आदिक जु सुत, ताम्रा कैं प्रगटाय॥
गाय भैंसि आदिक पसू, सुरभी कै जु गर्भाय॥४८॥
सुरसा कैं राकस भयै, बृछि इला कैं जु गर्भ॥
गर्भ अरिष्टा कैहुं भयै, प्रगट सबै गंधर्ब॥४९॥

पसु बिन चीरे षुरनि कैं, काष्ठा तैं प्रगटाय॥
उपजत दनु सुता तैं भय, इकसठि दानव पाय॥५०॥
जिन्हमैं जितनैं मुष्य हैं, तिनकें सुनियैं नांम॥
बिरूपाक्ष अरु अयोमुष, अनुतापन अघधांम॥५१॥
द्विमूर्धा संछर अरिष्ट, हैग्रीव रु सुरभांनु॥
बिभाबसु पुनि कपिल अरुण, संकुसिरा जु बलबांनु॥५२॥
एकचक्र दुर्जय पुलोमा, ब्रषपर्वा धूम्रकेस॥
विप्रचितिहि जुत ए बडे, जोधा सुनहु नरेस॥५३॥
सुता भई सुरभांन कैं, नांम सुप्रभा जुताहि॥
जाकौं भलै बिबाहि कैं, नमुचि लै गयौ चाहि॥५४॥
ब्रषपर्वा कै सुता हुवी, जिहीं सर्मिष्टा नांम॥
ब्याही नृपति ययाति सो, धरि उमाह चित ठांम॥५५॥
बैस्वानर कैं प्रगट हुइ, सुता च्यारि अभिरांम॥
उपदानवीं रु हयसिरा, कालि पुलोमा नांम॥५६॥
तिनमैं दइ हिरर्नक्ष कौं, उपदानवी बिबाह॥
अरु हयसिरा बिबाह दइ, क्रतु कौं सहित उछाह॥५७॥
अवर पुलोमा कालिका, दोऊ आछैं भाइ॥
कस्यप रिषि ब्याहत भयै, बिधि की आग्यां पाइ॥५८॥
तिन दुहूंनि कैं पुत्र हुवै, दांनव साठि हजार॥
कालिकै रु पौलोम ए, सबनि नांम अनुसार॥५९॥
तिनकौं अर्जुन नैं हतै, होइ इंद्र की ओर॥
बडौ सुयस हुव पार्थ कौ, प्रभु की क्रपा अकोर॥६०॥
तिया बिप्रचिति कै रही, सिंहिका नांम सुमांनि॥
ताकै सुत सौ केत इक, राहु सुभयै निदांनि॥६१॥
सुनियै बर्नन करत हौं, अबैं अदिति कौ बंस॥
जामैं बामन जू भयै, नारायन कौ अंस॥६२॥
बरुण अर्यमा इंद्र तुष्टा, पूषा अरु बिबस्बांन॥
सबिता धाता बिधाता, भग मित्र त्रिविक्रम जांन॥६३॥
अरु संग्या अस्त्री रही, बिबस्वांन कै धांम॥
श्राद्ध देव नांमी जु मनु, तिहं सुत हुव अभिरांम॥६४॥
द्वितीय पुत्र प्रगट जु हुवि, जमुना कन्या जु येक॥
अति पबित्र कन्या वहै जुत, गुन रूप अरु बिवेक॥६५॥
जौ संग्या बिबस्वान की, तिय भइ घोरी रूप॥
तब तांकै द्वै सुत भए, अस्विनि कुमार अनूप॥६६॥

बिबस्वांन की द्वितीय तिय, छाया नांम कहाय॥
ताकै मनु सावर्णि अरु, सनिस्चर जु प्रगटाय॥६७॥
सुता जु तपती नांम की, औरु सुभई सुढार॥
सौ ब्याही संवर्ण कौं, सुनियैं नृपति उदार॥६८॥
तिया मातृका नांम की, हुती अर्यमा भांम॥
प्रगट भयै तिहँ गर्भ तैं, पुत्र जू चर्षण नांम॥६९॥
जाति मानुषी जिनहिं मधि, कलपी बिधि मुष च्यार॥
अरु संतांन भयो न कछु, पूषा कै निरद्धार॥७०॥
जु पूषा महादेव को, हस्यौ रह्यौ बिनु ग्यांन॥
वीरभद्र गण दांत तिहँ, डारे तोरि जु निदांन॥७१॥
रचना सुता जु दैत्य की, ब्याही ही तुष्टाहिं॥
बिस्वरूप नांमा भयौ, पुत्र गर्भ तिहीं ठांहिं॥७२॥
बिस्वरूप सोइ सुरनि मिलि, अपनौं प्रोहित कीन॥
रूठि गएहे तिहिं समैं, बृहस्पति क्रोध अधीन॥७३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(बृहस्पति द्वारा देवताओं का त्याग और विश्व रूप का देवगुरु के रूप में वरण)

॥ राजोबाच॥

दोहा – राजा पूछत है कि अब, इह कहियै रिषि राज॥
देवतांनि कौ बृहस्पति, छांडि दियै किहं काज॥ १॥
देवतांनि अपराध किहिं, रिषि ब्रहस्पति कौ कीन॥
कहौ सबी समझाय कैं, हे मुनि परम प्रवीन॥ २॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक बोलै त्रयलौक कौ, इंद्र राजपद पाइ॥
गर्बित ह्वै मारग भलौं, देत भयौ छिटकाइ॥ ३॥
वसु ऋभु आदित रुद्र सुर, मुनि जु अस्विनी कुमार॥
बिद्याधर अरु अपसरा, बिस्वे देवहुं सुढार॥ ४॥
किन्नर पंछी सर्प अरु, सिध चारन गंधर्ब॥
इन्ह जुत इक दिन सभा मैं, बैठयौ इंद्र सगर्ब॥ ५॥
सिंहासन कैं ऊपरैं, बैठ्यौ इंद्र सुभाय॥
बंदीजन असतुति करत, अधिक सुयस मुष गाय॥ ६॥

छत्र चंवर बिजनां सहित, राज चिह्न जे भास॥
इन्ह जुत बैठ्यौ इंद्र लिय, इंद्राणी कौं पास॥ ७॥
रिषी बृहस्पति वा समैं, आए सभा जु मांहिं॥
इंद्र देषि तिन्हकौं उठ्यौ, सिंहासन तैं नांहिं॥ ८॥
विद्यावांन जिन्हकौं सबै, सुरासुर करि प्रनांम॥
ऐसें बृहस्पति देषि नहिं, इंद्र उठ्यौ उहिं ठांम॥ ९॥
लछमी कौं मद इंद्र कैं, अधिक बृहस्पति जांनिं॥
उठि आए निज गेह कौं, कछु न कह्यौ मुष आंनिं॥ १०॥
पांछै पछितावौ कियौ, इंद्र लाज चित धारि॥
निज निंदा लागौ करन, ऐसै बचन उचारि॥ ११॥
म्हैं मूरष हौं सभा मैं, किय गुरु कौ त्रिसकार॥
उपजिहुं बडी कुबुद्धि मुहि, काहू पाप प्रकार॥ १२॥
इंद्रासन मो सारसे, लहि किय असुर सुभाव॥
तांतै पंडित इंद्र पद, कौं न चहै धरि चाव॥ १३॥
कौ इक ऐसें कहत है, राज्यासन पर राय॥
बैठ्यौ किहुं कौं नां उठै, सौ बिनु धर्म जनाय॥ १४॥
बैसै मूरष जननि कौं, बचन जु मांनत कौय॥
तेऊ बूडत है कछू, तिनकी गति नहिं हौय॥ १५॥
अब बृहस्पति कैं पाय परि, हूं लै आउँ मनाय॥
कीनौं इंद्र बिचार इह, अधिक नम्रता भाय॥ १६॥
मतौ इंद्र कौ बृहस्पति, जांनि इहै निरद्धार॥
आपुन अंतरध्यांन रिषि, होत भयै उहिं बार॥ १७॥
इंद्र ढूंढि आयै बहुंत, बृहस्पति पायै नांहिं॥
तब बासव अति ही दुषित, होत भयो चित मांहिं॥ १८॥
कहै सुक्र कै तैं सबै, दैत्य जु ताही बार॥
देवतांनि सौं जुध करन, आए भलै प्रकार॥ १९॥
अंग छिद्र भयै सुरनि कै, लगि दैत्यनि कै बांन॥
तब इंद्रादिक देवता, लिय बिधि सरन निदांन॥ २०॥
देवतांनि कौं अति दुषित, ब्रह्मा लषि उहिं बेर॥
महाक्रपा करिकैं बचन, बोलै ऐसैं फेर॥ २१॥

॥ ब्रह्मोबाच॥

अहो देवता तुम्ह इहै, बहुंत बुरौ क्रत कीन॥
बृहस्पतिसै द्विज की जु, करि अवग्या अघलीन॥ २२॥
ताकौ फल पायौ इहै, देषहुं सोचि बिचारि॥
दैत्यनि सौं संग्राम करि, हारि गयै निरद्धारि॥ २३॥

हे बासव पहलैं दैत्य, सुक्र जू अवग्या भाय॥
छीण रहै अब बढै हैं, सुक्र क्रपा ही पाय॥२४॥
अब तौ ऐसै बढै हैं, असुर क्रपा गुरु पाय॥
चाहै तौ मो लोकहूं, अबहीं लैहिं छिनाइ॥२५॥
मंत्र जु सुक्राचार्य कै, ऐसैं हैं निरद्धार॥
स्वर्ग लोकहूं लैंहिं तौ, अचिरज नहिं या बार॥२६॥
हरि गुरु बैस्नव गाय द्विज, इनमैं जिन्हकी प्रीति॥
जिन सज्जन कौ भलौ ही, होत सदा इह रीति॥२७॥
तातैं त्स्रष्टा कौ जु सुत, बिश्व रूप जिहँ नांम॥
बडौ तपस्वी ग्यांन करि, पूरन है निहकांम॥२८॥
ताकौं तुम्ह अपनौं करहुँ, प्रोहित पूजि सु पांइ॥
तुम्हरौ पूर्न मनोरथहिं, बह करि हैं सब भांइ॥२९॥
असुरि प्रेम अपराध तिन्हिं, सहि रहिहौं गहि भार॥
तौ निश्चै ह्वै हैं भलौं, तुम्हरौ ही निरधार॥३०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि सुनि देवता, बिधि कै ऐसैं बैंन॥
बिश्वरूप द्विज पास सब, बोलै जाइ सुषैंन॥३१॥

॥ देवा ऊचुः॥

आए हैं आतिथि जु हम्ह, अहो पुत्र तुम्हहुं धांम॥
कीजै आछी भांति सौं, आपु हम्हारौ काम॥३२॥
धर्म पुत्रन कौ है इही, करै पिता की सेव॥
जो गृहस्थहूं ह्वै रु ब्रह्म, चारी कौ अधिकेव॥३३॥
मूर्त्ति बेद की जांनियैं, बेद पढांवन हार॥
मूर्त्ति पिता की मांनियैं, ब्रह्मा की निरद्धार॥३४॥
अरु बासव की जांनियैं, निश्चै मूरति भ्रात॥
पृथिवी करिकैं जांनियैं, चित मूरति निज मात॥३५॥
बहन दया की मूर्त्ति है, अतिथि जांनियौं धर्म॥
सोई आतिथि हम्ह इहां, आए तौ आसर्म॥३६॥
अभ्यागत है अगनिकी, मूरति धरनी ठांहिं॥
आत्मा की मूरति सबैं, जांनौं मन कै मांहिं॥३७॥
हम्ह हैं तैंरै बडे हम्ह, कौं सत्रुननि दुष दीन॥
सौ दुष अब तू दूरि करि, ह्वै हम्ह बचन अधीन॥३८॥
प्रोहित हम्हरौ होउ तू, मंत्र कछू या रीति॥
हम्हहिं करौ उपदेस लै, तासौं सत्रुनिहिं जीति॥३९॥

तू जु हम्हारौ ही सही, है बालक निरद्धार॥
त्वष्टा नांमी सूर्ज कौ, कहीयत पुत्र सुढार॥४०॥
तातैं प्रोहित तोहि करि, तौ चर्ननि कौं चांहिं॥
नमसकार करि हैं तऊ, दोष कछू है नांहिं॥४१॥
छोटौ ह्वै बिच अवसथा, बेद पढ्यौ जो होइ॥
तौ बह सबही कौ बडौ, छोटौ लषौ न कोइ॥४२॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत किं ए सुरनि कैं, सुनिकैं बचन सुढार॥
बिस्व रूप बोलत भयौ, फिरि अैसें उहिं बार॥४३॥

॥ बिश्वरूप उबाच॥

भलौं न प्रोहित हौंन किहुं, निं द्यौं बडनि बिचारि॥
प्रोहित हौंन मैं न रहै, ब्रह्म तेज बढबारि॥४४॥
पैं तुम्हहौं म्हैरे बडे, उत्तर दियौ ना जाइ॥
टारि सकत हौं रावरी, आग्यां नहिं किहुं भाइ॥४५॥
है कुबुद्धि जाकै कौऊ, लालच धरि मन मांहिं॥
प्रोहित पदवी लैत हैं, भली समझि जिन मांहिं॥४६॥
हम्ह सै निर्द्धन द्विजनि कौं, तौ इह धर्म निदांनि॥
सिलोउंछ आजीवका, इन्हमैं ही सुष मांनिं॥४७॥
अपनौं करैं निबाह चित्त, हरि कैं आश्रय राषि॥
ह्वै निबंध संसार मैं, आछी बिधि अभिलाषि॥४८॥
पैं तुम्हहौं म्हैरे बडे, तातैं भलैं प्रकार॥
निज प्रांनहुं दै साधि हौं, तुम्ह कारिज निरधार॥४९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि बिश्वरूप द्विज, कहीकैं अैसै बैंन॥
देवतांनकौं होत भौ, प्रोहित आपु सुषैंन॥५०॥
निजू बिद्या सौं सुक्र नैं, लछमी दैत्यनि दीन॥
सौ बिद्या बैस्नवी तौं, बिश्वरूप हरि लीन॥५१॥
बह लछमी इंद्रहिं दई, अरु बह विद्याहुं दीन॥
तातैं सब बासव भलैं, जीति दैत्य सब लीन॥५२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्यायः ॥७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(नारायण कवच का उपदेश)

॥ राजोबाच ॥

दोहा – नृप पूछत जा मंत्र करि, इंद्र सत्रु निज जीति॥
आपु राज त्रय लोक कौ, करत भयौ सुभ रीति॥ १ ॥
बह नारायन कवच तुम्ह, हम्हकौं कहौ सुनाइ॥
जिहं प्रभाव तैं इंद्र अरि, जीतै अति सुष पाई॥ २ ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक कहि नारायन कवच, बरनत हौं सुनि राइ॥
बिस्वरूप जो इंद्रकौं, दीनौं हुतौ सिषाइ॥ ३ ॥

॥ बिस्वरुप उबाच ॥

हाथ पांव धौवै प्रथम, करै आचमन फेरि॥
बैठि रु निज मुष राषि कै, उत्तर दिसहुं रुष हेरि॥ ४ ॥
अष्ट बरन द्वादस बरन, मंत्र अछर अनुसार॥
अंग न्यास कर न्यास करि, सुद्ध होइ निरधार॥ ५ ॥
नारायन मय कवच कौ, धारन करै सुभाय॥
सो नारायन कवच अब, कहत सुनौं चितलाय॥ ६ ॥
पाव अरु पिंडुरि जंघ पुनि, उदर जु हृदय स्थांन॥
बछस्थल मुष सीस इन्हीं, आठौं ठौर निदांन॥ ७ ॥
''ॐ नमो नारायणाय'', इह जू मंत्र सुढार॥
आठ अछर या मंत्र कै, अंत आदि ॐ कार॥ ८ ॥
पढि इन आठौं अछर कौं, उन आठौं अंग ठौर॥
करै सथापन चरन तैं, सिर लौं आछैं तौर॥ ९ ॥
''ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'' मंत्र अनूप॥
सर्ब ब्यापी परमैसर, कौं इही जू सरूप॥ १० ॥
इह द्वादस अछर मंत्र करि, करै भलैं कर न्यास॥
प्रणव आदि यकारहिं लौं, जपैं धारि बिसबास॥ ११ ॥
अैंपरि तूं वा मंत्र कै, बारह अछर निदांनि॥
महामुक्ति कौ रूप जे, हे नृपति निश्चै मांनिं॥ १२ ॥
दछिन तर्जनी आंगुरी, तैं लैं निरधार॥
वांम तर्जनी आंगुरी, तांई भलैं प्रकार॥ १३ ॥
अैक अैक या अछर कौ, करैं सथापन चांहि॥
वांचै आषर चाव तैं, थपै पर्ब आदि मांहि॥ १४ ॥
अबै षट अछर मंत्र कौं, कहत सुनौं अंग न्यास॥
हृदै जु मधि ॐ कार कौ, राषै सहित हुलास॥ १५ ॥

मसतक बिषैं 'विकार' कौं, राषैं भलैं बिचारि॥
भौंहनी मधि 'षकार' कौ, राषै फेरि सम्हारि॥१६॥
पुनि 'णकार' कौ सिषा कै, मधि राषै निरधारि॥
नैत्रनि मधि 'वेकार' कौ, राषै भलै प्रकारि॥१७॥
अरु अंगनि की संधि मैं, राषै भलै 'नकार'॥
'अस्त्र' रूप जु 'मकार' कौं, करि कैं ध्यांन सुढार॥१८॥
'फट्' 'आय' अछर अंत मैं, आछै दुहूं मिलाइ॥
सब दिसांनि मैं थापना, करै चितहिं ठहराइ॥१९॥
'ॐ विष्णुवेनमः' इह, षट अछर कौ जु मंत्र॥
महा मुक्ति कौ रूप है, सब सुषदाता तंत्र॥२०॥
बेद तपस्या तेज मय, जिन्हकी मूर्त्ति सुढार॥
आदि अैश्वर्य्य छहौं गुन, तिनकैं मद्धि उदार॥२१॥
अैसे आतम रूप हरि, जिनकौं करिकैं ध्यांन॥
ता पीछैं या मंत्र कौं, पढै भलैं उनमांन॥२२॥
गरुड पृष्टि परि धरै द्वै, चरन कमल अभिरांम॥
वे हरि मो रछया करहुं, निति प्रति सबहीं ठांम॥२३॥
संष चक्र सरधनु गदा, ढाल पास तरवार॥
इन्हकौं धारैं हैं प्रभू, अष्ट बाहु करतार॥२४॥
अणिमादिक आठ रिद्धि सिद्धि, अइश्वर्य्य जुक्त भगवांन॥
जे म्हैरी रछया करहुं, सब बिधि क्रपा निधांन॥२५॥
बरुन जू जल जंतुन तैं, जल मधि भलै प्रकार॥
मछ रूपहिं भगवांन मो, रछया करौ सुढार॥२६॥
वामन जु रछया करौ, म्हैरी सथलहिं मांहिं॥
अरु म्हैरी रछया करौ, त्रबिक्रम जू नभ ठांहिं॥२७॥
म्हैरी रछया करहुँ जुध, संकट अरु बन ठांम॥
असुरनिनि मारनहार जे, श्री नृसिंह जु अभिरांम॥२८॥
जिनकै हड हड हास कौ, सब्द दिसांननि मध्य॥
सुनि सुनि कैं अरि तियन कै, गिरै गर्भ सु प्रसध्य॥२९॥
धरि ल्याए भुव दाढ पर, जग्य रूप बाराह॥
जे म्हैरी रछया करौ, मार्ग मांहिं जग नांह॥३०॥
परसुरांम रछया करौ, मो नग सिषरनि ठांम॥
करहु रछया प्रदेस म्हैं, लछमण जुत श्रीरांम॥३१॥
मोकौं सकल प्रमाद तैं, निति प्रति आछैं भाइ॥
म्हैरी रछया करहुं प्रभु, नारायन सुष दाइ॥३२॥

नर मो रछया गर्व तैं, करहुं भलै अनुसार॥
दत्तात्रेय रछया करौ, जोग भंग की बार॥३३॥
रछया कर्म बंधनि तैं, करौ कपिल जोगेस॥
सनकादिक कंदर्प तैं, रछया करौ बिसेस॥३४॥
सुरनि अवग्या तैं करौ, मो रछया हयग्रीव॥
नर्कनि तैं रछया करौ, कछप जू सुषद सीव॥३५॥
प्रभू की पूजा मैं कछु, बिघन करै जो कोइ॥
तातैं रछ्या नारद मुनि, करहुं क्रपाल जु होइ॥३६॥
रछया करौ अपथ्य तैं, धन्वंतर अनछेहुँ॥
द्वंद्व सीत उस्मादि तैं, रिषभ रछ्या करि लेहुँ॥३७॥
जग की निंदा तैं करौ, मो रछया जग्य रूप॥
करहुँ कालतैं मो रछ्या, श्री बलदेव अनूप॥३८॥
सर्पनि तैं रछया करौ, सेष नाग सब ठांम॥
करहुँ रछया अग्यांन तैं, बेदब्यास सुष धांम॥३९॥
रछया करहुँ पाषंड तैं, बुध जू भलैं प्रकार॥
अरु रछया कलि मैल तैं, करहुँ कलकि करतार॥४०॥
धर्म स्थापन करन जिन, लीनौं है अवतार॥
अरु पापिनि कौं मारिकैं, करन दूरि भुवभार॥४१॥
प्रात समैं केसव करौ, रछया गदा सुभाइ॥
ता आगैं गोबिंद मो, रछया करौ सवाइ॥४२॥
पहल पहर रछया करौ, नारायन भगवांन॥
बिस्नुं चक्रधारी करौ, रछया बिच मध्यांन॥४३॥
तृतीय पहर रछ्या करौ, मधु कैं मारनहार॥
सांझ समैं रछया करौ, माधव प्रभु करतार॥४४॥
हृषीकेस रछया करौ, निस आरंभहिं बार॥
अर्द्ध रात्रि रछया करौ, पद्मनाभ सुभ ढार॥४५॥
श्री लांछनधारी करौ, रछया पिछली रात॥
समैं प्रदोष जनार्द्दन, रछया करौ सुभात॥४६॥
दामोदर रछया करौ, तिहुँ संध्या की बार॥
कालमूर्त्ति भगवांन हौं, रछक समैं रषबार॥४७॥
प्रलै काल की अग्नि सम, मो अरि देउ जराइ॥
जाहीं बिधि तृन कौं अगनि, देत जारि बिनसाइ॥४८॥
अहो गदा भगवांन की, तू प्रिय परम सभास॥
भूत प्रेत कुषमांडि अरि, इन्ह सबकौं करि नास॥४९॥

मसतक बिषैं 'विकार' कौं, राषैं भलैं बिचारि॥
भौंहनी मधि 'षकार' कौ, राषै फेरि सम्हारि॥१६॥
पुनि 'णकार' कौ सिषा कै, मधि राषै निरधारि॥
नैत्रनि मधि 'वेकार' कौ, राषै भलै प्रकारि॥१७॥
अरु अंगनि की संधि मैं, राषै भलै 'नकार'॥
'अस्त्र' रूप जु 'मकार' कौं, करि कैं ध्यांन सुढार॥१८॥
'फट्' 'आय' अछर अंत मैं, आछै दुहूं मिलाइ॥
सब दिसांनि मैं थापना, करै चितहिं ठहराइ॥१९॥
'ॐ विष्णुवेनमः' इह, षट अछर कौ जु मंत्र॥
महा मुक्ति कौ रूप है, सब सुषदाता तंत्र॥२०॥
बेद तपस्या तेज मय, जिन्हकी मूर्त्ति सुढार॥
आदि अैश्वर्य्य छहौं गुन, तिनकैं मद्धि उदार॥२१॥
अैसे आतम रूप हरि, जिनकौं करिकैं ध्यांन॥
ता पीछैं या मंत्र कौं, पढै भलैं उनमांन॥२२॥
गरुड पृष्टि परि धरै द्वै, चरन कमल अभिरांम॥
वे हरि मो रछया करहुं, निति प्रति सबहीं ठांम॥२३॥
संष चक्र सरधनु गदा, ढाल पास तरवार॥
इन्हकौं धारैं हैं प्रभू, अष्ट बाहु करतार॥२४॥
अणिमादिक आठ रिद्धि सिद्धि, अइश्वर्य्य जुक्त भगवांन॥
जे म्हैरी रछया करहुं, सब बिधि क्रपा निधांन॥२५॥
बरुन जू जल जंतुन तैं, जल मधि भलै प्रकार॥
मछ रूपहिं भगवांन मो, रछया करौ सुढार॥२६॥
वामन जु रछया करौ, म्हैरी सथलहिं मांहिं॥
अरु म्हैरी रछया करौ, त्रबिक्रम जू नभ ठांहिं॥२७॥
म्हैरी रछया करहुँ जुध, संकट अरु बन ठांम॥
असुरनिनि मारनहार जे, श्री नृसिंह जु अभिरांम॥२८॥
जिनकै हड हड हास कौ, सब्द दिसांननि मध्य॥
सुनि सुनि कैं अरि तियन कै, गिरै गर्भ सु प्रसध्य॥२९॥
धरि ल्याए भुव दाढ पर, जग्य रूप बाराह॥
जे म्हैरी रछया करौ, मार्ग मांहिं जग नांह॥३०॥
परसुरांम रछया करौ, मो नग सिषरनि ठांम॥
करहुं रछया प्रदेस म्हैं, लछमण जुत श्रीरांम॥३१॥
मोकौं सकल प्रमाद तैं, निति प्रति आछैं भाइ॥
म्हैरी रछया करहुं प्रभु, नारायन सुष दाइ॥३२॥

नर मो रछया गर्व तैं, करहुं भलै अनुसार॥
दत्तात्रेय रछया करौ, जोग भंग की बार॥३३॥
रछया कर्म बंधनि तैं, करौ कपिल जोगेस॥
सनकादिक कंदर्प तैं, रछया करौ बिसेस॥३४॥
सुरनि अवग्या तैं करौ, मो रछया हयग्रीव॥
नर्कनि तैं रछया करौ, कछप जू सुषद सीव॥३५॥
प्रभू की पूजा मैं कछु, बिघन करै जो कोइ॥
तातैं रछ्या नारद मुनि, करहुं क्रपाल जु होइ॥३६॥
रछया करौ अपथ्य तैं, धन्वंतर अनछेहुँ॥
द्वंद्व सीत उस्मादि तैं, रिषभ रछ्या करि लेहुँ॥३७॥
जग की निंदा तैं करौ, मो रछया जग्य रूप॥
करहुँ कालतैं मो रछ्या, श्री बलदेव अनूप॥३८॥
सर्पनि तैं रछया करौ, सेष नाग सब ठांम॥
करहुँ रछया अग्यांन तैं, बेदब्यास सुष धांम॥३९॥
रछया करहुँ पाषंड तैं, बुध जू भलैं प्रकार॥
अरु रछया कलि मैल तैं, करहुँ कलकि करतार॥४०॥
धर्म स्थापन करन जिन, लीनौं है अवतार॥
अरु पापिनि कौं मारिकैं, करन दूरि भुवभार॥४१॥
प्रात समैं केसव करौ, रछया गदा सुभाइ॥
ता आगैं गोबिंद मो, रछया करौ सवाइ॥४२॥
पहल पहर रछया करौ, नारायन भगवांन॥
बिस्नुं चक्रधारी करौ, रछया बिच मध्यांन॥४३॥
तृतीय पहर रछ्या करौ, मधु कैं मारनहार॥
सांझ समैं रछया करौ, माधव प्रभु करतार॥४४॥
हृषीकेस रछया करौ, निस आरंभहिं बार॥
अर्द्ध रात्रि रछया करौ, पद्मनाभ सुभ ढार॥४५॥
श्री लांछनधारी करौ, रछया पिछली रात॥
समैं प्रदोष जनार्द्दन, रछया करौ सुभात॥४६॥
दामोदर रछया करौ, तिहुँ संध्या की बार॥
कालमूर्त्ति भगवांन हौं, रछक समैं रषबार॥४७॥
प्रलै काल की अग्नि सम, मो अरि देउ जराइ॥
जाहीं बिधि तृन कौं अगनि, देत जारि बिनसाइ॥४८॥
अहो गदा भगवांन की, तू प्रिय परम सभास॥
भूत प्रेत कुषमांडि अरि, इन्है सबकौं करि नास॥४९॥

अहो संष श्री कृस्न तुहि, बजवत सहित हुलास॥
राछस प्रेत पिसाच इन्है, सबकौ करहुँ बिनास॥५०॥
अहौ षडग भगवांन की, अति तीछण तो धार॥
प्रभु करतैं चलि करहुँ मो, सत्रुनिनि कौं संघार॥५१॥
हे सतचंद्र जु नांम की, ढाल क्रपा करि आपु॥
म्हेरे सबहीं अरिन कैं, नैत्र लीजियैं ढापु॥५२॥
भूत मनुष ग्रह केत अहि, सिंह तैं जु किहुं बार॥
हम्हकौं भय मति हौहुँ प्रभु, नांम लैंन अनुसार॥५३॥
बिस्वकसेन अरु गरुड प्रभु, पारषद संकट मांहिं॥
म्हैरी रछया करहुँ सब, नास दुष्ट जन पांहिं॥५४॥
बाहन आयुध पारषद, प्रभु कै रूप रु नांम॥
इंद्री बुधि मन प्रांन की, रछ्या करहुँ सब ठांम॥५५॥
सूछम और सथूल पुनि, कारिज कारन रूप॥
हरि ही निश्चै है सही, करता पुरुष अनूप॥५६॥
इहै बात जो सत्य है, तौ निश्चै बहु भाइ॥
म्हैरे सबहीं जु उपद्रव, जात रहै बिनसाइ॥५७॥
भूषन आयुध जुक्त अति, सुंदर अदभूत रूप॥
जे प्रभु अपनीं सक्ति हैं, धरैं प्रसध्य अनूप॥५८॥
आत्मा ही कौ ध्यांन जे, कौउ करत है साध॥
भेद रहित दरसन तिह्नैं, जे प्रभु देत अगाध॥५९॥
इहै बात जो सत्य है, तौउ सर्बत्र सुभाइ॥
म्हैरी रछया करहुँ हरि, पूर्न पुरुष सुषदाइ॥६०॥
दिसा रु बिदिसा मैं तरे, ऊपर च्यारौं वौर॥
बाहर भीतर दूर भय, करौं नृसिंघ सुतौर॥६१॥
इह नारायण कवच हम्ह, इंद्र कह्यौ सुभ रीति॥
सौ तू धारन करैगौ, तौ लैहैं अरि जीति॥६२॥
जो कोउ पुरुष इह कवच, धारन करै बिचार॥
सौ देषैं किहुं औरकौं, छुवै पाव अनुसार॥६३॥
ताहू कौ सब भांति तैं, निश्चै भय दुरि जाइ॥
बेद बिदित इह बात हम्ह, तुम्ह कौं कही सुनाइ॥६४॥
ब्याघ्र चोर ग्रह अरु नृपति, इन्हकौं भय नहिं होइ॥
या नारायन कवच कौ, धारन करै जु कोइ॥६५॥
ब्राह्मन कौसिक नांम कौ, येक हुतौ बुधिवांन॥
जिन्ह यांहि बिद्या कौ कियौ, धारण सुभ उनमांन॥६६॥

जोग धारणा सक्ति सौं, जिन मुरदेसहिं मध्य॥
त्यागन अपणीं देह कौ, करत भयौ सप्रध्य॥६७॥
तियन सहित नभ मांहिं है, गंधर्व चित्ररथ नांम॥
चल्यौ जात हौ बिप्र तन, तज्यौ हुतौ जिहिं ठांम॥६८॥
बह गंधर्व बिमांन जुत, पर्यौ जु गिरि उहिं ठौर॥
तांह बालषिल्य रिषिनि की, आग्यां पाइ सुतौर॥६९॥
बा द्विज कै लै हाड नदि, सरस्वती मैं जु डारि॥
करि सनांन निज लोक गौ, चढि बिमांन उहिं बार॥७०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुनैं जु कोऊ इह कवच, धारै भलैं प्रकार॥
जाकौं बंदन सब करै, भय न होय किहुं बार॥७१॥
या नारायण कवच कौ, बासव करिकैं जापु॥
असुर जीति त्रय लोक कौ, राज्य करत भय आपु॥७२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

(विश्वरूप का वध तथा वृत्रासुर द्वारा देवताओं की हार और भगवान की प्रेरणा से देवताओं का दधीचि ऋषि के सरन में जाना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - बोलै श्री सुक देव जू, बहै बिप्र बिस्वरूप॥
जाकै मसतक तीन हैं, सुनहूँ परीछित भूप॥ १॥
सोमपांन मुष येक सौं, दूजै सौं मदपांन॥
अरु तीजै सौं करतहौ, भोजन अन्न निदांन॥ २॥
देवतांनि कौं बिप्र बह, पित्तर आपनां जांनि॥
देत रह्यौ बिच जग्य कै, जग्य भाग हित मांनि॥ ३॥
हौ असुरनि कौं दोहिता, मात नेह कैं लागि॥
असुरनिहूं कौ जग्य मैं, देत रह्यौ जग्य भागि॥ ४॥
वा ब्राह्मण बिश्व रूप कौ, इह क्रत इंद्र निहारि॥
तीनौं मसतक काटिकैं, वाकौं डार्यौ मारि॥ ५॥
जिहिं मसतक सौं करत हौ, सोमपांन सुषपाइ॥
पछी कपिंजल सौ भयौ, तीतर स्वेत कहाइ॥ ६॥

अरु जिहँ मसतक सौं बहै, करत हुतौ मदपांन॥
सौ मस्तक पछी चिड़ौ, होत जु भयो निदांन॥ ७॥
करतौ भोजन अन्न बह, जिहँ सिर कै अनुसार॥
सौ कारौ तीतर पछी, होत भयौ निरधार॥ ८॥
ब्रह्म हत्या बह बर्ष इक, रही इंद्र कौं लागि॥
च्यारि ठौर फिरि बांटि दिय, करिकैं च्यारि बिभागि॥ ९॥
यैक भाग पृथवी लियौ, अरु इहि बर लिय मांगि॥
पूर्न आपुतैं हौंहिं जो, मो मधि गडहा जागि॥ १०॥
ऊषर ठौर जु अवनि मैं, अंन उपजत जहँ नांहिं॥
ब्रह्म हत्या कौ अंत सौं, जांनि लेहुं मनमांहिं॥ ११॥
अैक भाग बृछनिनि लियौ, अरु उन्ह इहँ बरलीन॥
काटि हम्हहिं डारैं तऊ, उपजिजैं फिरि नवीन॥ १२॥
गूंद बृछनि मैं होत सौं, ब्रह्म हत्या कौ अंस॥
गूंद असुद्ध कहावहीं, ताहीं तैं जु प्रसंस॥ १३॥
येक भाग लिय तियनि अरु, बर रहस्य भइ लेत॥
मास दिवस हत्या सौइ, प्रगट दिषाई देत॥ १४॥
ब्रह्म हत्या कौ भाग इक, जल लीनौं निरधार॥
फेन बबूला बीच जल, सौ ब्रह्म हत्या प्रकार॥ १५॥
अरु जल इह बर मांगि लिय, दूध आदि जे बस्त॥
तिनमैं डारै मोहि तौ, बह बढि जाहिं समस्त॥ १६॥
त्वष्टा नांमी सूर्ज जो, बिस्बरूप कौ तात॥
उन्ह इहि सुनी कि इंद्र किय, बिस्बरूप कौ घात॥ १७॥
तब रिसाइ किय अग्नि मैं, हौम इहै पढि मंत्र॥
सत्रु इंद्र कौ इह बृद्धि कौं, प्रापति होहुँ सुतंत्र॥ १८॥
यैक पुरुष वा अग्नि तैं, प्रगट भयौ तिहिं बार॥
प्रलैकाल कै समैं मनु, यम उपज्यौ निरधार॥ १९॥
इक सर जितनी दूरि लौं, जाइ जितै उनमांनि॥
बह पुरुषहुं लागौ बढन, दिन दिन उतौ सुजांनि॥ २०॥
अरु सरूप वा पुरुष कौ, मांनहुँ जयौं पहार॥
दीसि परत है कांति जिहिं, संध्या घन अनुसार॥ २१॥
तायै तांबै सी सिषा, मुंछ डाढी कै बार॥
जइसौ रबि मध्यांन कौ, तइसै नैत्र कुढार॥ २२॥
सब्द करत नृतत पृथ्वी, पायन सौं कंपाइ॥
मनु त्रिसूल पर स्वर्ग भुव, लै हैं इहै उठाइ॥ २३॥

मुष पहार की कंदरा, सम फारत करि रीस॥
पीजैहैं आकास कौं, मांनहुँ बिस्बाबीस॥२४॥
नछत्रनि चाटत जीभ सौं, ग्रस्यौ चहत त्रिलोक॥
दैंनहार सब सुरनिकौं, अतिभय संजुत सोक॥२५॥
डाढै बडी जंभाइयाँ, बार बार लै गाजि॥
अैसो रूप निहारि कैं, गयै सबे जन भाजि॥२६॥
ब्यापक वाकै रूप सौं, होइ गए सब लोक॥
बृत्रासुर वांकौ कहैं, इहीं भेद कै वोक॥२७॥
बाकौं लषि सुर सस्त्र निज, करत भये जु प्रहार॥
उन्ह सस्त्रनि कौं बह पुरुष, निगलि गयौ तिहिं बार॥२८॥
तब अचिरज भौ सुरनिकौं, डरै अधिक भय पाय॥
करत भयै असतुति भलैं, प्रभु सौं चित्त लगाय॥२९॥

॥ देवा ऊचुः ॥

प्रिथी अग्नि जल बायु नभ, बिधि हम्ह सुरगन सर्व॥
डरपत हैं जा काल सौं, छांडि छांडि निज गर्व॥३०॥
बहै काल जिहिं प्रभू सौं, डरपत हैं निरधार॥
रछया हम्हारी सोई, करौं भलैं अनुसार॥३१॥
जिन्हकैं नहिं अहंकार अरु, है सब ठौर समांन॥
पूर्न कांम करतार प्रभु, अैसै जे भगवांन॥३२॥
अैसैं हरिकौं छांडि जे, सरन और कै जात॥
स्वांन पूंछ गहि मूर्ष जें, सिंधु तरनि उमगात॥३३॥
बैवस्वत मनु जु जिनकैं, श्रृंगनि तैं नांव बांधि॥
फिरत भयै जल प्रलै मधि, बुडै न हरि आराधि॥३४॥
मछ रूपहिं भगवांन वै, पूरन पुरुष उदार॥
रछया हम्हारि जे करौं, अपणी क्रपा प्रकार॥३५॥
हरि कै नांभी कँवल कै, ऊपर तैं मुष च्यार॥
प्रलै काल कै नीर बिच, डिगत भए तिहिं बार॥३६॥
बुडै नांहिं जल तल गय, जिहिं प्रभु क्रपा प्रभाइ॥
सोइ हरि हम्ह रछा करौ, जे सबकै सुषदाइ॥३७॥
हम्हहिं रचै हैं जिन प्रभू, निज माया अनुसार॥
अरु हम्ह जिन प्रभु क्रपा सौं, सृष्टि रचत निरधार॥३८॥
अरु जिन प्रभु कै रूप कौं, देषि सकत हम्ह नांहिं॥
अंतरजामी वे प्रभू, जगमगात सब ठांहिं॥३९॥

रिषी मनुष पसु देवता, इन मधि धरि अवतार॥
रछया हम्हारि करत प्रभु, सत्रुननि सौं सब बार॥४०॥
असरन सरन क्रपाल हरि, परम पुरुष भगवांन॥
हम्ह आयें तिन्हकें सरन, करिहैं बेइ कल्यांन॥४१॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि सब देवतनि, किय असतुति या भाइ॥
तब पछिम दिसी कै बिषै, प्रगटे हरि सुषदाइ॥४२॥
च्यारौं आयुध जुक्त अरु, हरिही कौ सौं रूप॥
ठाढै सोरह पारषद, आसपास सब भूप॥४३॥
कौस्तुभ मणि श्री चिह्न दुहुँ, ए धारैं हैं नांहिं॥
और चिह्न हैं यैक सै, पार्षद हरि कै मांहिं॥४४॥
नैंत्र कँवल सै च्यारि भुज, बन माला उर ठांहिं॥
यौं दरसैं सिव ब्रह्मा कै, स्वांमी प्रगट कहांहिं॥४५॥
अैसौं हरिकौं रूप लषि, कीनौं भलैं प्रनांम॥
सब सुरगन लागै करन, फिरि असतुति अभिरांम॥४६॥

॥ देवा ऊचुः॥

चौपई - हे प्रभु तुम्ह हौ जग्य सरूप। काल रूप करतार अनूप॥
चक्र सुदर्सन तैं बहु बार। आपु करत हौ सत्रु संघार॥४७॥
है अनंत गुन नांम तिहार। तिनकौं पार नाहिं निरधार॥
निर्गुण रूप रावरौ जांहि। प्रांनी जांनि सकत कोउ नांहिं॥४८॥
हे नारायण श्री भगवांन। बासुदेव हौ परम कल्यांन॥
आदि पुरुष महापुरुष अपार। सर्बेस्वर जग कै आधार॥४९॥
महा अनुभाव परम हितवंत। नाथ लोक कै मंगल तंत॥
लछमीनाथ तुम्हहिं परनांम। असरन सरन परम सुषधांम॥५०॥
जे कोऊ परम हंस संन्यासि। चित निश्चल किय जोगाभ्यासि॥
भक्ति रावरी प्रगटी पूरि। तातैं उर अंध्यार भयौ दूरि॥५१॥
षुलि कपाट गयै हिय कैं आंछि। बिमल हदै तिहिं तीरथ तांछि॥
तुम्ह अैसै हिय मध्य अनूप। प्रगटत हौ आनंद स्वरूप॥५२॥
लीला समझि न परत तिहारि। नेति नेति कहै बेद उचारि॥
तुम्ह निर्गुन इकले संसार। उतपति पालन करत संहार॥५३॥
अरु ब्यापक हौ सब जग मांहिं। अंतरजांमी रूप सदांहिं॥
भलै बुरै कर्मनि कौ आपु। करत हौ अंगीकार सजापु॥५४॥
पैं निर्लैप रहत जग तास। इहै कछू समझी नहिं जात॥

गुन अनंत है प्रभू तिहार। तुम्ह महिमां कौं बार न पार॥ ५५॥
जे कुतर्क सौं बऊत प्रकार। करत रहै निस दिबस बिचार॥
रूप रावरौ प्रभु जे प्रांनि। नहिं पहचानत है अग्यांनि॥ ५६॥
झूठौ करत बिबाद अथांहिं। भेद रावरौ जांनत नांहिं॥
तुम्ह हौ सबै जगत तैं न्यार। अरु या जग कैं रचनहुँ हार॥ ५७॥
तुम्ह निज माया कैं अनुसार। सब कछु कार्ज करत निरधार॥
ज्यौं कौउ रसरी कौं अहि मांनि। अरु कौऊ जन रसरी जांनि॥ ५८॥
जीवनिकैं बुधि जिहिं उनमांन। जइसैं तुम्ह भासत भगवांन॥
प्रभु तुम्ह सबै पदारथनि मांहिं। सत्य रूप हौं आपु सदांहि॥ ५९॥
सबकै ईस्वर आतम स्वरूप। तुम्हकौं गावत बेद अनूप॥
जग कारनहूँ कै तुम्ह कारन। सबनि प्रकासिक सबकै तारन॥ ६०॥
तुम्ह महिमा हे प्रभु जग नाह। है अंमृत कौं सिंधू अथाह॥
इक कणका समहूं रससोइ। पी कैं स्वाद लह्यौ जिन होइ॥ ६१॥
जासौं जिनकै परमानंद। प्रगट भयौ है मिटि दुष दंद॥
तिनकौं चित विषैन कैं मांहिं। भूलिहुँ कबहूं लागत नांहिं॥ ६२॥
अैसै भक्त तुम्हारै स्वांमि। जिन चित लागि रह्यौ पद ठांमि॥
निति प्रति करै रावरी सेव। तुम्हकौं कबहुँ न भूलैं देव॥ ६३॥
तिनकौं जनम मरन फिरि नांहिं। प्रभु वे तुम्ह स्वरूप ह्वै जांहिं॥
हे त्रिभुवन कै नाथ सजापु। प्रभू तिहारौ बडौ प्रतापु॥ ६४॥
दैत्य रु दानव गन जे सबहिं। तेऊ बिभूति रावरी सहिं॥
अै परिस्त्रमैं पराक्रम कौ इन। अबहिं प्रापत भयो हैं नांहिंन॥ ६५॥
तातैं प्रभु सुर नर पसु मध्य। तुम्ह अवतार धारि सप्रसध्य॥
जथा जोग्य इन दैत्य दांनवनि। दंड देत हौ साधुनि हित सनि॥ ६६॥
तातैं या बृत्रासुर कौं अब। मारहुँ प्रभु दुष मिटै हैं सब॥
हम्हहैं सरन तुम्हारै स्वांमि। तुम्हकौं नमसकार बहु नांमि॥ ६७॥
तुम्ह पद पंकज ध्यांनहिं मांहिं। लगि रह्यौ चित हम्हारौ चांहिं॥
तुम्ह हम्ह कुँ अपनौं करि मांनत। दया हम्हारि नित चित आंनत॥ ६८॥
चितवनि हांसि मधुर बचनिं करि। ताप मिटावौ हम्ह हियकिं हरि॥
तुम्ह निज माया गुननि प्रकार। करत सृजन जग पोष संहार॥ ६९॥
तुम्ह सबकैं साछी भगवांन। हौ परब्रह्म जू नभहिं समांन॥
हम्ह तुम्हसौं कहा बिनू स्वांमि। तुम्ह तौ हौ प्रभु अंतरजांमि॥ ७०॥
ज्यौं कण प्रगट अग्नि तैं होत। कहा अग्नि कौं करैं उदोत॥
त्यौं हम्ह कहा बिनू करतार। तुम्ह सब कछु जांनत निरधार॥ ७१॥
तुम्ह पद पंकज छाया छाप। टारनहार बिबिधि संताप॥
सोइ पद पंकज प्रभु तिहार। पूर्न मनोरथ करौ हम्हार॥ ७२॥

या बृत्रासुरकौं तुम्ह मारिं। सबै कलेस हम्हारौ टारि॥
अस्त्र सस्त्र जुत तेज हम्हारि। इन ग्रसि लियौ दियौ डर भारि॥ ७३॥
तुम्ह हौ सुद्ध रूप आनंद। बसत हृदै कै मधि सुषकंद॥
सबकै साषी हौ भगवांन। बडौ तुम्हारौ जस उनमांन॥ ७४॥
जांनत कौउ न आदि तुम्हारि। तुम्हकौं नमसकार बहु बारि॥
परम हंस जे साध सुजांन। तुम्ह स्वरूप जांनत जु निदांन॥ ७५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा – बोलै श्री सुकदेव जू, देवतांनि या भाइ॥
असतुति कीनी तब प्रभू, बोलै सब सुषदाइ॥ ७६॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

हे सुर तुम्ह कीनी सतुति, हुं तातैं भयो प्रसन्नि॥
पढै सतुति इह जांहिं ह्वै, म्हेरी भक्ति अनन्नि॥ ७७॥
जे म्हेरे हैं भक्त सब, तिनहुँ दुर्लभ कछु नांहिं॥
पैं वै कछु चाहत नांहिं, निज हित धरि मो मांहिं॥ ७८॥
अरु विषयनिहीं कौं भलैं, जांनत जीव अग्यांन॥
अरु जांनत है नांहिं निज, जामैं ह्वै कल्यांन॥ ७९॥
बैसेहीं बैसेन कौं, बैसौहीं बर दैंहिं॥
अंध अंध कौ हाथ गहि, ज्यौं कछु लाभ न ह्वैहिं॥ ८०॥
ग्यांनी जन अग्यांन पर, दया धारि चित्त मांहिं॥
कबहूं डारै नांहिंनै, मग प्रवर्त्ति कै मांहिं॥ ८१॥
ज्यौं कुपथ्य रोगी कौऊ, मांगै बिना बिचारि॥
अैंपरि वैद्य न देत है, बस्तु जु औगुन कारि॥ ८२॥
तातैं हे बासव समझि, देनहार म्हैं मुक्ति॥
तुम्ह मांगत हो और बर, ह्वै तृसना संजुक्ति॥ ८३॥
चाहत हौं अरिनास जो, तौ कहुँ येक उपाइ॥
द्विज दाधीच पैं करहुं, तुम्ह सब जाचन जाइ॥ ८४॥
बिद्याब्रत तप मांहिं बह, सावधांन सब भाइ॥
मांगहुं अमर सरीर तुम्ह, बा ब्राह्मण कौ जाइ॥ ८५॥
बह दधीच ब्रह्मण बडौ, ग्यांनवंत सुबिसेस॥
जिननैं अस्विनि कुमार कौं, कियौ ग्यांनि उपदेस॥ ८६॥
त्वष्टा नांमी सूर्ज कौं, बहे दधीच सुभाइ॥
सिषयो नारायण कवच, मेटन भय दुषदाइ॥ ८७॥
सोही नारायण कवच, सूरिज़ तुष्टा नांम॥
दिय सिषाइ बिश्वरूप कौ, मंत्र महा अभिरांम॥ ८८॥

बही कवच बिस्वरूप दिय, बासव तोहि सिषाइ॥
जांसौ सत्रुननि जीति कैं, जैति लही सुष पाइ॥८९॥
है बहे अति धर्मातमा, द्विज दधीच मति धीर॥
मांगौगे तुम्ह तौ बहे, दै है आयु सरीर॥९०॥
बिश्वकर्मा वहिं हाडकौं, दै हैं बज्र बनाइ॥
जांसौ बृत्रासुरहिं तूं, हति हैं इंद्र सुभाइ॥९१॥
मरिहैं बृत्रासुर जबै, तुम्हकौं आछैं भाइ॥
अस्त्र सस्त्र धनतेज सब, प्रापति ह्वै हैं आइ॥९२॥
फिरि तुम्हहिं कोउ मारि नहिं, सकि हैं किहूं प्रकार॥
भेद कह्यौ हम्ह तुम्हहिं सौं, करहुं अबैं निरधार॥९३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कंधे भाषा ब्रजदासी कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽध्यायः ॥

(देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र-निर्माण और वृत्रासुर की सेना पर आक्रमण)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक कहत कि प्रभु इंद्र सौं, ऐसैं कहिकैं बैंन॥
आपुन अंतरधांन हुव, महामुक्ति सुष दैंन॥१॥
सुर गन जाइ दधीच पैं, मांगत भए सरीर॥
बोल्यौ वहे अति प्रस्न्न ह्वै, द्विज दधीच मति धीर॥२॥
हे सुर तुम्ह कहा जांनत, न महादुष्य मृति मध्य॥
तनु अति प्रिय प्रांनीन कौं, है इहै बात प्रसध्य॥३॥
बिस्नुहुँ मांगै तउ कौउ, दै नहिं सकै सरीर॥
सौं औरनिकी कहँ चली, समझि देषियै धीर॥४॥

॥ देवा ऊचुः ॥

सुर बोलै हे मुनि सुनहुँ, दयावंत जे कोइ॥
तैं न दे सकैं बस्तु कोउ, ऐसी नांहिंन होइ॥५॥
बडै कौउ तुम्ह सारसै, तेतौ सबकछु दैहिं॥
राषै कछु न दुराइ कैं, बडौ सुजस धन लैहिं॥६॥
निज स्वारथ मैं लगि रहै, सब प्रांनी निरधार॥
संकट काहू औरकौं, नहिं जांनत क़िहुं ढार॥७॥

दैंनौं कठिन इहै जु पर, संकट कोउ न जाइ॥
तौ किहुं पैं मांगे न कछु, कोउ किहूं अनुभाइ॥ ८॥
अरु जो मांगनवार कौं, जांनै कौं दुष आइ॥
तौ नांहीं नांहिंन करै, दै डारै हुलसाइ॥ ९॥

॥ ऋषिरुबाच॥

तब दधीच बोल्यौ अहौ, सुनौं अमरनि बात॥
म्हैं तुम्ह सौं चाहत रह्यौ, सुनन धर्म सुभभात॥ १०॥
सौ तौ म्हैं सब सुनि चुक्यौ, अब इह अंति सरीर॥
छोडतहूं सुर लेहुं तुम्ह, मेटहुँ मन की पीर॥ ११॥
इहै सरीर अनित्य है, ताकौं जो कौं पाइ॥
दया धर्म जो नहिं करि सौ, जडहूं तैं अधिकाइ॥ १२॥
इही बतायौ है सबनि, बडे धर्म परताप॥
औरनिनि कैं सुषदुष्ष सौं, सुष दुष मांनै आप॥ १३॥
लछमी पुत्र सरीर जु है, चंचल रु पराधीन॥
तिनसुं करैं न काज भलै, सौ अनिति अनुसरीन॥ १४॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि ए बचन कहि, हरि मैं चित्तहिं लगाइ॥
निज सरीर छोडत भयौ, द्विज दधीच सुष पाइ॥ १५॥
इंद्री मन बुधि प्रांन कौं, निज बसि करि उहिं बार॥
जोग सक्ति सौं तन तज्यौ, द्विज दधीच सुभढार॥ १६॥
सौ उनहूं जांन्यौं नांहिं, कब छुटि गयौ सरीर॥
देवतांनि कौं देह निज, दीनौं बिप्र जु सधीर॥ १७॥
वा दधीच कै हाड कौं, बिश्बकर्मा जू प्रबीन॥
बज्र बनायौ सौ भलैं, इंद्र आपु कर लीन॥ १८॥
देवतांनि जुत इंद्र है, अैरावति पर स्वार॥
लागै मुनि असतुति करन, तिहँ ठां भलै प्रकार॥ १९॥
बृत्रासुर कौं मारिबै, दोर्यौ इंद्र रिसाइ॥
जइसैं जमकौं मारिबै, दौरे सिब अनषाइ॥ २०॥
त्रैता कैं आरंभ मैं, नदी नर्मदा तीर॥
बडौ भयौ संग्राम सुर, असुर जुटै रनधीर॥ २१॥
अग्नि पितर बसु रुद्र आदित्य, अरु अस्विनी कुमार॥
इते देवतनि सहित लषि, बासव कौं तिहिं बार॥ २२॥
बृत्रासुर कै जे हूंतैं, संगी असुर बलिष्ट॥
करत भयै तैं क्रोध अति, करि करि क्रूर जु द्रिष्ट॥ २३॥

संबर नमुचि द्विमूर्द्धा, अबर रिषभ हयग्रीव॥
बिप्रचिति अनर्वा अयोमुष, संकुसिरा अघ सीव॥२४॥
सुमाली वृषपर्वा अबर, माली हेति प्रहेत॥
राछस जछ पुलोम उत्कल, दांनव दैत्य बिजेत॥२५॥
इतनैं असुर महाबली, बीर धीर बड काइ॥
सिंहनाद करि सुरनि पैं, दौरे अधिक रिसाइ॥२६॥
गदा पास षडग रु परिघ, फरसा तोमर बांन॥
मुदगर सूल भुसुंडि अरु, सतघ्नि सस्त्र सप्रमांन॥२७॥
सस्त्र औरहूँ सबनि पैं, असुरनि करै प्रहार॥
पौरुष धरि आयै उमडि, असुर बली उहिं बार॥२८॥
छाय गयै सरजाल सौं, सुरनि दिषाई देत॥
ज्यौं नछत्रनि कौं बीच नभ, मेघ उमडि ढँपि लेत॥२९॥
फेरि सस्त्र आसुरनि कैं, अमरनि डारै काटि॥
तब लैं कैं नग सिषर बृछि, असुर जु टेरन ठाटि॥३०॥
वैउ काटि डारै जबै, सुरगन ह्वै बर जोर॥
असुरननि कैं उद्यम सबै, निर्बलहुँ ह्वै घटि तोर॥३१॥
तब असुरनि देष्यौ सुरनि, सस्त्र अस्त्र दिय काटि॥
हम्ह इनपैं करि सकैं नहिं, कछु प्रहार किहुँ घाटि॥३२॥
कृष्णदेव अनुकूल जिन, ऐसौं देव समाज॥
बार बार उद्यम दैत्यनि, कैं सरै न कछु काज॥३३॥
सतपुरुषनि कौं नीच कैं, बचन सोभ नहिं होइ॥
जइसैं दैत्यनि कैं सबै, जतन नृफल गय सोइ॥३४॥
निज उद्यम कौं निर्फल समझि, असुर भ्यै हत मांन॥
भाजै तजि बृत्रासुरहिं ह्वै, भयजुक्त निदांन॥३५॥
निज सैना कौं भजत लषि, बृत्रासुर जु उहिं बार॥
कहत भयौ उपदेस कैं, बचन भलैं अनुसार॥३६॥
हे मय बिप्रचिति पुलोमा, संबर नमुचि अनर्ब॥
बचन कहत सौं म्हैं सुनौ, तुम्ह आछी बिधि सर्ब॥३७॥
जो उपज्यौ है ताहि ह्वै, इक दिन मृत्यु भय आय॥
ताकौ नांहिंन जगत मैं, कबहूं कछू उपाय॥३८॥
जा मृति सौं ह्वै जगत जस, उत्तम लोकहिं सुपाइ॥
जा मृति कौं कौनुं न चहैं, अपनैं चित्त करि जाइ॥३९॥

दैंनौं कठिन इहै जु पर, संकट कोउ न जाइ॥
तौ किहुं पैं मांगै न कछु, कोउ किहूं अनुभाइ॥८॥
अरु जो मांगनवार कौं, जांनै कौं दुष आइ॥
तौ नांहीं नांहिंन करै, दै डारै हुलसाइ॥९॥

॥ ऋषिरुबाच॥

तब दधीच बोल्यौ अहौ, सुनौं अमरनि बात॥
म्हैं तुम्ह सौं चाहत रह्यौ, सुनन धर्म सुभभात॥१०॥
सौ तौ म्हैं सब सुनि चुक्यौ, अब इह अंति सरीर॥
छोडतहूं सुर लेहुं तुम्ह, मेटहुँ मन की पीर॥११॥
इहै सरीर अनित्य है, ताकौं जो कौं पाइ॥
दया धर्म जो नहिं करि सौ, जडहू तैं अधिकाइ॥१२॥
इही बतायौ है सबनि, बडे धर्म परताप॥
औरनिनि कैं सुषदुष्य सौं, सुष दुष मांनै आप॥१३॥
लछमी पुत्र सरीर जु है, चंचल रु पराधीन॥
तिनसुं करैं न काज भलै, सौ अनिति अनुसरीन॥१४॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि ए बचन कहि, हरि मैं चित्तहिं लगाइ॥
निज सरीर छोडत भयौ, द्विज दधीच सुष पाइ॥१५॥
इंद्री मन बुधि प्रांन कौं, निज बसि करि उहिं बार॥
जोग सक्ति सौं तन तज्यौ, द्विज दधीच सुभढार॥१६॥
सौ उनहूं जांन्यौं नांहिं, कब छुटि गयौ सरीर॥
देवतांनि कौं देह निज, दीनौं बिप्र जु सधीर॥१७॥
वा दधीच कै हाड कौं, बिश्बकर्मा जू प्रबीन॥
बज्र बनायौ सौ भलैं, इंद्र आपु कर लीन॥१८॥
देवतांनि जुत इंद्र है, अैरावति पर स्वार॥
लागै मुनि असतुति करन, तिहँ ठां भलै प्रकार॥१९॥
बृत्रासुर कौं मारिबै, दोर्यौ इंद्र रिसाइ॥
जइसैं जमकौं मारिबै, दौरै सिब अनषाइ॥२०॥
त्रैता कैं आरंभ मैं, नदी नर्मदा तीर॥
बडौ भयौ संग्राम सुर, असुर जुटै रनधीर॥२१॥
अग्नि पितर बसु रुद्र आदित्य, अरु अस्विनी कुमार॥
इते देवतनि सहित लषि, बासव कौं तिहिं बार॥२२॥
बृत्रासुर कै जे हूंतैं, संगी असुर बलिष्ट॥
करत भयै तैं क्रोध अति, करि करि क्रूर जु द्रिष्ट॥२३॥

संबर नमुचि द्विमूर्द्धा, अबर रिषभ हयग्रीव॥
बिप्रचिति अनर्वा अयोमुष, संकुसिरा अघ सीव॥२४॥
सुमाली वृषपर्वा अबर, माली हेति प्रहेत॥
राछस जछ पुलोम उत्कल, दांनव दैत्य बिजेत॥२५॥
इतनैं असुर महाबली, बीर धीर बड काइ॥
सिंहनाद करि सुरनि पैं, दौरे अधिक रिसाइ॥२६॥
गदा पास षडग रु परिघ, फरसा तोमर बांन॥
मुदगर सूल भुसुंडि अरु, सतघ्नि सस्त्र सप्रमांन॥२७॥
सस्त्र औरहूँ सबनि पैं, असुरनि करै प्रहार॥
पौरुष धरि आयै उमडि, असुर बली उहिं बार॥२८॥
छाय गयै सरजाल सौं, सुरनि दिषाई देत॥
ज्यौं नछत्रनि कौं बीच नभ, मेघ उमडि ढँपि लेत॥२९॥
फेरि सस्त्र आसुरनि कैं, अमरनि डारे काटि॥
तब लैं कैं नग सिषर बृछि, असुर जु टेरन ठाटि॥३०॥
वैउ काटि डारे जबै, सुरगन ह्वै बर जोर॥
असुरननि कैं उद्यम सबै, निर्बलहुँ ह्वै घटि तोर॥३१॥
तब असुरनि देष्यौ सुरनि, सस्त्र अस्त्र दिय काटि॥
हम्ह इनपैं करि सकैं नहिं, कछु प्रहार किहुँ घाटि॥३२॥
कृष्णदेव अनुकूल जिन, अैसौं देव समाज॥
बार बार उद्यम दैत्यनि, कैं सरै न कछु काज॥३३॥
सतपुरुषनि कौं नीच कैं, बचन सोभ नहिं होइ॥
जइसैं दैत्यनि कैं सबै, जतन नृफल गय सोइ॥३४॥
निज उद्यम कौं निर्फल समझि, असुर भयै हत मांन॥
भाजै तजि बृत्रासुरहिं ह्वै, भयजुक्त निदांन॥३५॥
निज सैना कौं भजत लषि, बृत्रासुर जु उहिं बार॥
कहत भयौ उपदेस कैं, बचन भलैं अनुसार॥३६॥
हे मय बिप्रचिति पुलोमा, संबर नमुचि अनर्ब॥
बचन कहत सौं म्हैं सुनौ, तुम्ह आछी बिधि सर्ब॥३७॥
जो उपज्यौ है ताहि ह्वै, इक दिन मृत्यु भय आय॥
ताकौ नांहिंन जगत मैं, कबहूं कछू उपाय॥३८॥
जा मृति सौं ह्वै जगत जस, उत्तम लोकहिं सुपाइ॥
जा मृति कौं कौनुं न चहैं, अपनैं चित्त करि जाइ॥३९॥

मृत्यु दोई उत्तम सही, इह जानहुँ निरधार॥
कै तन त्यागै जोग सौ, कै जुद्ध बीच झुंझार॥४०॥
उपज्यौं तांकी मृत्यु है, भाजौ करौ व जुद्ध॥
भाजौ मति करौ इंद्र, जुद्ध मतै ह्वै सुद्ध॥४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते दसमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अैकादसोऽध्यायः ॥

(वृत्रासुर की वीर वाणी और भगवत्प्राप्ति)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - सुक बोलै यौं बृत्रासुर, कहै धर्म कैं बैंन॥
तउ असुरनि मान्यौं न जुद्ध, छोडि गयै निज अैंन॥ १ ॥
भाजत लषि निज सैन कौं, बृत्रासुरहिं दुष पाइ॥
बोल्यौ अमरनि सौं तमकि, अधिक क्रोध चित्तलाइ॥ २ ॥
माता कैं मलमूत्र सम, तुम्ह हौ सुर निरधार॥
मारत हौं भजतैंन कौं, इह न नीति अनुसार॥ ३ ॥
जौ भाज्यौ ह्वै डरपि कैं, कह्यौ न मारन तांहिं॥
लरैं सामुहैं आइ जौ, तांसौं लरैं उमांहिं॥ ४ ॥
तुम्हहिं श्रद्धा है जुद्ध की, अरु जो बल अधिकाहिं॥
पुनि जगकैं सुष सौं नरति, हौं मौ समुहाहिं॥ ५ ॥
कहै बचन यौं सुरनि सौं, बृत्रासुर जु रिसांइ॥
सिंहनाद फिरि करत भौ, जासौं लोक डरांइ॥ ६ ॥
बृत्रासुर की गाज सौं, अमर गिरैं मुरझांइ॥
मांनहुं मारैं बज्र सौं, अैसैं परत लषांइ॥ ७ ॥
अपनैं पाइन सौं असुर, बृत्रासुर उहिं बार॥
देवतांनि कौं करत भौं, मर्दन अनष प्रकार॥ ८ ॥
नाल सर कैं बनकुं करैं, ज्यौं मर्दन गज राज॥
सूल लियैं कर बृत्रासुर, ठांढौ जुद्ध कै काज॥ ९ ॥
बृत्रासुर परि इंद्र नैं, गदा चलांवन कीन॥
बृत्रासुरहिं जिहँ गदा कौं, निज कर सौं गहि लीन॥ १० ॥
बृत्रासुर नैं मारि गदा, अैराबत कैं सीस॥
सबननि सराह्यौ बृत्र कौं, इह बिक्रम बिस्बाबीस॥ ११ ॥

ऐरावत घूमन लग्यौ, लगन गदा अनुसार॥
सात धनुष लौं हटि गयौ, पांछै कौं उहिं बार॥१२॥
इंद्रहिं व्याकुल देषि बृत्र, गदा न चलई फेर॥
ऐरावत कें कुंभ पर, कर फेरत उहिं बेर॥१३॥
चाहि जुद्ध की सनमुषै, ठाढौ इंद्रहिं देषि॥
निंद्यकर्म सुमरि रु कह्यौ, सोक मोह जुत पेषि॥१४॥
बृत्र इंद्र सौं तिहिं समैं, बोल्यौ रिस करि गाजि॥
भली भई हे इंद्र तू, मोहि मिल्यौ है आजि॥१५॥
तू गुरु ब्राह्मण कौं प्रगट, निश्चै मारन हार॥
अरु तैं म्हैरे भ्रात कौं, कीनौं है संघार॥१६॥
म्हैं ताकौं निज सूल सौं, मारि बीच घमसांन॥
बिश्वरूप मौ भ्रात सौं, ऊरन होहुँ निदांन॥१७॥
आतम ग्यांनी जिग्य कौं, कर्त्ता द्विज बुधिवांन॥
अरु गुरु तैरौं पाप बिन, तैं सो हत्यौ अग्यांन॥१८॥
कीर्ति लाज लछमी दया, है न इंद्र तौ मांहिं॥
तैं क्रत किय जइसौं करैं, राछसहुँ कौउ नांहिं॥१९॥
म्हैं तौ कौं निज सूल सौं, हतौं गीध तन षांहिं॥
भ्रात बैर जस जुक्त ल्यौं, ह्वै प्रफुलित मन मांहिं॥२०॥
अरु तौं संग जुद्ध करहूं, कंठ सूल सौं काटि॥
भैरव आदि जु गनन कौं, बलि देहौं जुद्ध थाटि॥२१॥
अरु जो मो सिर काटि है, तूं जु बज्र अनुसार॥
सूरन की गति पाय हौं, तौं म्हैं भलै प्रकार॥२२॥
हे बासव तौर सत्रु म्हैं, सांमुह ठाढौ आइ॥
क्यौं नं चलावै बज्र तू, अपनौं चित उमगाइ॥२३॥
ज्यौं नृफल तैरी गदा, भई चलांबन मांहिं॥
जइसी बिधि इह बज्र अब, नृफल ह्वै है नांहिं॥२४॥
रिषि दधीच कौं तेज अरु, हे बासव तुव तेज॥
है या बज्रहिं मध्य अब, लरि ह्वै कै मुंह मेज॥२५॥
अरु तौ औरै बिस्नु हैं, करता पुरुष उदार॥
बिस्नु हौहिं जा और जय, तिहँ औरै निरधार॥२६॥
म्हैं संकर्षण जू बिषै, अपनौं चित्तहिं लगाइ॥
तन तजि तैरै बज्र सौं, मुनि गति लहौं सुभाइ॥२७॥
हरि निज भक्तननि सौं सदा, क्रपा आपुनीं चांहिं॥
स्वर्ग भूमि पाताल कौं, राज देत हैं नांहिं॥२८॥

बैर कलह उदबेग मद, दुष परिस्त्रम बहु भाइ॥
मनकी बिथा संजुक्त अैं, होत राज कौं पाइ॥२९॥
धर्म अर्थ अरु कांम प्रभु, भक्तननिकौं नहिं देत॥
न मुक्ति देहिं इन्ह करत हैं, दरसन ही सौं हेत॥३०॥
हे हरि पूरन करहुँ करि, अनुग्रह इह मोआस॥
हौंहु औरहू जनम मो, तुम्ह दासनिकौं दास॥३१॥
मनसौं तुम्ह सुमरन करौं, रसना सौं ल्यौ नांम॥
सेव रावरी देह सौं, करौं होइ निह कांम॥३२॥
सर्ग प्रिथी पाताल ब्रह्म, लोक तिनहुँ कौ राजु॥
जोग सिद्धि पुनि मुक्तिहू, म्हैरे कछू न काजु॥३३॥
दरसन हीं इक रावरौ, हूं चाहत निज चित्त॥
कै सतसंगति रावरै हुं, भक्तननि की ह्वै नित्त॥३४॥
पंषहिं ना उपज` पछिन, कैं बालक मातांहिं॥
चाहत तइसैं चित्त मोहु, लग्यौ प्रभू कै मांहिं॥३५॥
ज्यौं. परदेसी पीव कौं, चाहैं प्रिया बिसेस॥
त्यौं हीं म्हैरो मन तुम्हहिं, चाहत है बिस्बेस॥३६॥
जइसै बछरां गांय कौं, चाहत अधिक प्रसध्य॥
त्यौं हीं म्हैरे जु चित्त की, चाह लगौं हरि मध्य॥३७॥
जबतांई म्हैं भ्रमत हौ, या संसारहिं मांहिं॥
हरि भक्तननि सौं प्रीति मो, तबलौं रहौं सदांहिं॥३८॥
नारी पुत्रनि सरीर मैं, हौंहुँ न म्हैरी प्रीति॥
हरि हरि भक्तननि मध्य हौ, मो सनेह सुभ्र रीति॥३९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(वृत्रासुर का वध)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - सुक कहत कि यौं जुद्ध मैं, बृत्र चहत तन त्याग ॥
जीवन हूंतैं मृत्यु कौं, जांनत स्त्रेष्ट अथाग ॥ १ ॥
बासब पर दोर्यौ बृत्र, सूल हाथ निज धारि ॥
ज्यौं कैटभ दौर्यौ हुतौ, हरि ऊपरि बिच बारि ॥ २ ॥

प्रलै काल की अग्नि सम, बृत्र त्रिसूल फिराइ॥
बासव पर चलवत भयौ, अरु बोल्यौ रिस छाइ॥ ३॥
म्हैरे या जु त्रिसूल सौं, अबहीं याही बार॥
हे बासव तू आपकौं, मर्यौ जांनि निरधार॥ ४॥
बहि त्रिसूल आकास मैं, आवत चल्यौ निहारि॥
डर्यौ नांहिंनैं इंद्र मन, धीरज भेद बिचारि॥ ५॥
वहि त्रिसूल अरु बृत्र की, यैक भुजा उहिं बेर॥
इंद्र आपनैं बज्र सौं, काटत भौ बिन झेर॥ ६॥
येक बाहु सौं परिघ जब, बृत्रहाथ गहि आपु॥
बासव कैं जु कपोल तर, मारत भौ धरि धापु॥ ७॥
अरु ऐरावत गजहुँ कैं, कीनौं बृत्र प्रहार॥
बज्र इंद्र कैं हाथ तैं, गिरि जु पर्यौ उहिं बार॥ ८॥
सिद्ध चारन सुर असुर इह, बृत्र पराक्रम देषि॥
लागै करन सराह सब, भली बात अवरेषि॥ ९॥
अरु संकट लषि इंद्र कौं, कीनौं हाहाकार॥
डरपन लागै अमर गन, करि चित्त सोच अपार॥ १०॥
बज्र गिर्यौ जिहिं लाज सौं, इंद्रनि लियौ उठाइ॥
बृत्रासुर बोल्यौ तबैं, इंद्रहिं बचन सुनाइ॥ ११॥
हे बासव इह बज्र तू, आपुन लैहुं उठाइ॥
म्हैं हूं तेरौहिं सत्रु तू, मोहि मारि रिस ल्याइ॥ १२॥
जे चाहत है जुद्ध कर्यौ, जिन जय सदा न होत॥
इक प्रभुहीं की होत है, जय तौ नित्य उदोत॥ १३॥
सौ प्रभू कर्त्ता जक्त कै, अरु सबकैं आधार॥
उतपति पालन पुनि प्रलै, करनहार सु अपार॥ १४॥
बंधे जाल मैं पछी ज्यौं, लोक सु जिहिं आधीन॥
सोइ काल सबहींन कौं, कारन प्रगट सरीन॥ १५॥
जनम मरन तन पराक्रम, मुक्ति महा सुषदाइ॥
सबकौं कारन काल है, आपहिं मूर्ष गनाह॥ १६॥
काष्ट पुतरी यंत्र मृग, ज्यौं निश्चै निरधार॥
सब प्रभु कै आधीन हैं, प्रांनी बिच संसार॥ १७॥
प्रकृति पुरुष चौबीस तत्व, बिन प्रभु अनुग्रह भाइ॥
सृष्टि बनाइ न सकत है, निश्चै किहूं उपाइ॥ १८॥
उतपति पालन प्रलै जग, करत बेहि करतार॥
तिहँ ईछा आधीन है, इही सकल संसार॥ १९॥

लछमी आय ु ज ु ईसिता, कीर्त्ति मनोर्थ सुभाइ॥
प्रापत होत है जीवकुं, अपनौं औसर पाइ॥२०॥
अरु किहूं समैं दरिद्र मृति, अपकीर्त्ति बिच गोत॥
अनचाहेहीं काल कैं, बस सौं प्रापत होत॥२१॥
तातैं जस अपकीर्त्ति अरु, हारि जीति सुष दुष्ष॥
मरन जीवनै मैं रहै, ग्यांनी जन समरुष्ष॥२२॥
सत रज तम गुन प्रकृति कै, आत्मा साछी आंहिं॥
ऐसौं जानैं सौं नहिंन, बंधै जक्तहीं मांहिं॥२३॥
हे बासव तू देषि मो, भुजा गई कटि यैक॥
जथा सक्ति तउ करत तुहिं, मारन उदिम अनैक॥२४॥
अहौ इंद्र इह जुद्ध है, चौपडि कौ सौं षेल॥
जांमैं नांहिंन है कछू, निज ईछा कौं मेल॥२५॥
बांहन पट पासै जु सिर, दांव लगायौ प्रांन॥
हारि जीति ह्वै कौंनु की, इह न परत है जांन॥२६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यैं इंद्र सुनि, बृत्रासुर कैं बैंन॥
प्रसंन्न हौहिं बोलत भयौ, फेरि आपु बिच सैंन॥२७॥

॥ इंद्र उबाच॥

हे दांनव तू सिद्ध है, तौ मति भली जनाइ॥
तैरी प्रकृति हरि भक्त भौ, तजिकैं असुर सुभाइ॥२८॥
इह बड अचिरज तू असुर, है रज गुनी सुभाव॥
पैं तौ मति हरि मैं लगी, करिकैं दृढ़ ठहराव॥२९॥
हैं हरिदाता मुक्ति कैं, तिनमैं ह्वै जिहिं भक्ति॥
सौ स्वर्गादिक चाहत नहिं, धरि सुबोध की सक्ति॥३०॥
ज्यूंहुं अमृत समुद्र मैं ह्वै, कौऊ करत बिहार॥
और तुछ जल सौं नाहिंन, चाहै किहूँ प्रकार॥३१॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि ऐसैं दोउ, आपसमैं बतरात॥
ग्यांनि इंद्र अरु बृत्रासुर, करन जुद्ध बिष्यात॥३२॥
बृत्रहिं बांम करसौं परिघ, लौहैं कौं जु भ्रमाइ॥
भयौ चलावत इंद्र पर, निज पौरुष सरसाइ॥३३॥
बृत्रासुर की परिघ अरु, बाम भुजाहुं फेर॥
इंद्र काटि डारत भयौ, बज्रहीं सौं तिहिं बेर॥३४॥
तबै पसार्यौ बृत्र निज, मुष कंधरा समांन॥
जांमैं डाढै दीर्घ मनु, जे हैं ग्रस जु जिहांन॥३५॥

गिरिनि गिरावत प्रिथी कौं, षुंदत पग अनुसार॥
ऐरावत जुत इंद्र कौ, निगलि गयौ उहिं बार॥३६॥
सबै देवता रिषी इहं, बासव की गति देषि॥
होत भयै तिहिं समैं मधि, दुषित बिकल अनलेषि॥३७॥
इंद्र बृत्र कैं उदर मैं, गयौ मर्यौ तहुँ नांहिं॥
सौं नारायण कवच कौं, इह प्रताप प्रगटांहिं॥३८॥
बृत्रासुर की कुक्ष्य कौं, इंद्र बज्र सौं फारि॥
निकसि बृत्र सिर बज्र सौं, काटत भौ निरद्धारि॥३९॥
सीस बृत्र कौं बज्र सौं, कट्यौ बर्ष इक मांहिं॥
तबै दुंदभि आकास मैं, बाजन लगै अष्यांहिं॥४०॥
सबनि स्तुति किय इंद्र की, पहुँपनि बरषा कीन॥
प्रस्न्न होत भय देवतां, सुरपुर उछव नवीन॥४१॥
बृत्रासुर की देह तैं, जीव सरूपी ज्यौति॥
निकसि सौहि भगवांन हीं, मध्यलीन भइ होति॥४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादसोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदसोऽध्यायः ॥

(इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - बोलै श्री सुक देव जू, बृत्र मरन कैं मांहिं॥
तिहूँ लोक आनंद भौ, इक इंद्रहिं हुँव नांहिं॥ १॥
दैत्य देवतां रिषि पितर, बही घरी वहिं जांम॥
प्रापत भय सब जाइकैं, आप आपनैं धांम॥ २॥

॥ राजोबाच ॥

पूछत राजा तब भयौ, कियै बृत्र तन गौन॥
लह्यौ सबनि आनंद अरु, भयौ इंद्र कौ क्यौंन॥ ३॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक बोलै सुर रिषि प्रथम, डरपि बृत्र सौं आप॥
बिनती कीनी इंद्र सौं, याहि हतौ धरि धाप॥ ४॥
सुतौ इंद्र मानी नांहिं, कहै बचन या तौर॥

॥ इंद्र उबाच ॥

बिश्वरूप कैं हतन की, हत्या बटीं चव ठौर॥ ५॥

अबैं बृत्र कैं हतन की, लहै हत्या कौंनु॥
म्हैं डरपत हौ यालियै, सुनियैं भेद सुठौंनु॥ ६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि अै बचन सुनि, बासव कै उहिं बेर॥
मति डरपै हे इंद्र तूं, यौं बोलै रिषि फेर॥ ७॥
भय तजिकैं हे इंद्र तूं, बृत्रासुर कौं मारि॥
अश्वमेध करवाइ जिग्य, अघ देहैं हम्ह टारि॥ ८॥
नारायण कौं पूजिहै, अश्वमेध अनुभाइ॥
जांसुं कैसौंहुँ हौहिं अघ, तैं सबहीं मिटि जाइ॥ ९॥
गुरु घातक द्विज घातक रु, गौबध करता हौहिं॥
पिति घाती घाती जननि, पुनि चांडाल जु कौहिं॥ १०॥
जिहिं हरि नांम प्रभाव सौं, अतिहिं पबित्र ह्वै जांहिं॥
जाही सौं तौ दीर्घ अघ, सब मिटि जाइ पलांहिं॥ ११॥
अरु है दुष्ट जु बृत्र तौ, ताकैं मारन मध्य॥
थोरौ ही ह्वै पाप तुहिं, मांनहुँ आपु प्रसध्य॥ १२॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि अै रिषि बचन, सुनि बासव उमगाइ॥
बृत्रहिं मार्यौ तबै बहै, लगि हत्या ब्रह्म आइ॥ १३॥
तासौं बासव अति दुषित, होत भयौ उहिं बार॥
बीभछ महा रु हाडरी, बनी हत्या अनुहार॥ १४॥
जिहँ सरूप चांडालिनी, कौ सौ परत जु भास॥
आवत जाकी देह मैं, मछरी की सी बास॥ १५॥
जुत छयरोग बृधापनैं, सुँ कांपत अंग अंग॥
बस्त्र जु भीजै रुधिर सौं, पहरैं रातै रंग॥ १६॥
बिषरै कच तन मलिन जिहिं, कहत बचन या भाइ॥
ठाढौ रहुँ ठाढौ रहुहुँ, भज्यौ इंद्र कित जाइ॥ १७॥
दौरी आवत इंद्र पर, बौलत अैसैं बैंन॥
बासब अैसी ब्रह्म हत्या, लषि भाज्यौ बिन चैंन॥ १८॥
मांन सरोवर सुभ गहै, उत्तर दिसा की ठौर॥
जांह जाइ प्रापत भयौ, बासव छिपन अकौर॥ १९॥
कंवलनांल कै तंतु मैं, जिहँ ठां बर्ष हजार॥
छिप्यौ रह्यौ बासव छुटै, भोग बिलास अपार॥ २०॥

अरु इहि चिन्ता चित लागी, रहत नित्य निरधार॥
कबु छुटि हौं या पाप सौं, अबु कबु कौंनु प्रकार॥२१॥
राज इंद्र कौं तिहिं समैं, कीनौं नहुष नृपाल॥
इंद्राणी सौ अै बचन, कहत भयौ तिहिं काल॥२२॥
इंद्र भयौ म्हैं तू अबै, मो तिय ह्वै बिष्यात॥
इंद्राणी तब बृहस्पतिहिं, कहत भई इह बात॥२३॥
इंद्राणी सौं बृहस्पतिहिं, बोलै अैसै बैंन॥
तू कहुं राजा नहुष सौ, हम्ह जौ कहत सुषैन॥२४॥
अहौ नहुष तौ पालकी, कै ह्वै बिप्र कहार॥
तापरि चढि तू आव तौ, म्हैं तुव तिय निरधार॥२५॥
इंद्राणी तब नहुष सौं, कही बात इहिं फेर॥
नृपति नहुष सौ मांनि कछु, कीनी नांहिंन झेर॥२६॥
सिविका धरि द्विज कंध चढि, चल्यौ इंद्राणी पास॥
अरु बोल्यौ सर्प सर्प जिहँ, अर्थ सिघ्रता भास॥२७॥
मुनि अगस्त्य सुषपाल कैं, भयै हुतै जु कहार॥
सर्प सर्प सुनि श्राप दिय, होहुं नृपति बिषधार॥२८॥
सर्प भयै तब नहुष नृप, तब रिषि आग्यां पाइ॥
इंद्र स्वर्ग आयै बहुरि, निज मन मोद बढाइ॥२९॥
सिव अनुग्रह हरि ध्यांन सौं, इंद्र पाप हुव छीन॥
रिषि आग्यां सौं इंद्र फिरि, अश्वमेध जिग्य कीन॥३०॥
सर्व देवमय जैहिं हरि, तिन्हकौं पूजत बार॥
बृत्रासुर बध पाप सौं, नास हुवौ जिग्य लार॥३१॥
अस्वमेध पूरन भयै, रिषिनि इंद्र सौं फेरि॥
करवायौ भगवांन कौ, यजन दीनबंधु हेरि॥३२॥
मरीच्यादि रिषिजननि मिलि, इंद्र पास तैं जग्य॥
करवायौ तातैं भयौ, दूरि सुपाप अथग्य॥३३॥
इह अध्यान सब पाप कौं, धौन कीर्ती स्यांम॥
भक्ति भक्त उत्कर्षता, इंद्र बिजै सुषधांम॥३४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दसोऽध्यायः ॥

(वृत्रासुर का पूर्व चरित्र)

॥ राजोबाच ॥

दोहा- नृप पूछत हौ रजगुनी, पापी बृत्र निदांन॥
जिहं मति द्रिढ भगवांन मैं, भई कौंनु उनमांन॥ १॥
जेकौ सुर रिषि सत गुनी, जिन्ह चित बिमल सुढार॥
तिन्हहूं कै हरि चरन मैं, उपजत भक्ति संचार॥ २॥
पृथिवी कै रज कन जितै, प्रांनी बिच संसार॥
जिन्हमैं केई मनुष इक, करत धर्म निरधार॥ ३॥
तिन्हमैं कोई मुक्ति कै, हैं इक ईछावांन॥
जिन्हमैंहूं कौ यैकही, लहत मुक्ति कौं थांन॥ ४॥
जिन्हमैंहूं कौ यैक ही, जांनत तत्व भगवांन॥
तिन्हमैंहूं कौ अैक है, प्रभु कै भक्त सुजांन॥ ५॥
अति दुर्ल्लभ हरि भक्ति है, पइए भाग्य प्रभाइ॥
क्रपा करहिं भगवांन जब, दैंहिं भक्ति अपनाइ॥ ६॥
बहि बृत्रासुर तौ हुतौ, सब लौकनि दुषदाइ॥
जिहँ बुधि द्रिढ प्रभु मैं रही, जुध बिचकौं न प्रभाइ॥ ७॥
मोहि बडौ संदेह है, बांकै हरिमैं भक्ति॥
सौ कहियै समझाय मुनि, प्रगट भई किहँ सक्ति॥ ८॥
अरु हौ बडौ पराक्रमी, बह बृत्रासुर दैत्य॥
प्रसंन्न कर्यौ जिन्ह इंद्र कौं, जुध करि बली बिजैत्य॥ ९॥

॥ सूत उबाच ॥

सूत कहत है अै बचन, नृप कै सुनि सुक फेरि॥
बोलै राजा सौं भलै, प्रसन्न होई उहिं बेरि॥ १०॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

हे नृप इक इतहास अब, तोकौं कहत सुनाइ॥
देवल नारद व्यास मुष, जो हम्ह सुन्यौ सुभाइ॥ ११॥
सूरसेन देसहिं जु मधि, चित्रकेतु नृप येक॥
जांकौ अस्त्री कोटि सुष, बिलसत भांति अनेक॥ १२॥
लछमी रूप उदारता, विद्या ईस्वर ताइ॥
उत्तम जनम संजुक्त नृप, पैं संतांन न पाइ॥ १३॥
तासौं चिन्ता नृपति चित, रही छाइ अधिकाइ॥
संपति अस्त्री राज्य सुष, सुत बिनु कछु न सुहाइ॥ १४॥
येक दिनां रिषि अंगिरा, आयै नृप कै गेह॥
नृप बिधिबत पूजा करी, दिय भोजन जुत नेह॥ १५॥

रिषि कैं बैठौ निकट नृप, प्रणपति सीस नवाइ॥
ताहि सरांहि रु अंगिरा, बचन कहै या भाइ॥१६॥

॥ अंगिरा उबाच॥

रिषि बोलै फिरि नृपति सौं, बचन महा सुषकंद॥
तेरैं अरु तो प्रजा कैं, है राजा आनंद॥१७॥
राजा राषै प्रजा कौं, नृपति राज सुष पाइ॥
नृप आग्यां आधीन रहै, प्रजाधर्म सुकहाइ॥१८॥
अस्त्री सुत मंत्री प्रजा, सेवक आदि समाज॥
सब तेरै बस है कि नहिं, कहौ मेटि मन लाज॥१९॥
जाकै बस मन होत जिहिं, बस सब लोक जु हौहि॥
चिंता सौं मन मलिन तू, प्रस्त्र न दीसत मोहि॥२०॥
सुक कहत कि रिषि अंगिरा, जांनि बूझि अै बैंन॥
कहै तबै बोलत भयौ, राजा फेरि सुषैंन॥२१॥

॥ चित्रकेतुरुबाच॥

हे रिषि तपस्या ग्यांन कौं, तुम्ह कौं बल अधिकाइ॥
तुम्ह सब जांनत हौ बडे, जोगीस्वर रिषि राइ॥२२॥
पूछत हौं तुम्ह जांनिकैं, तातैं कहौं सुनाइ॥
पुत्र होत म्हैरै जु नाहिं, इह दुष मुहि अधिकाइ॥२३॥
इंद्रादिक जिहिं चहत अस, राज रु लछमी साज॥
ताहूं सौं आनंद नहिं, मुहि सुत बिन रिपि राज॥२४॥
ज्यौं भूषे जनकौं मलय, कुसुम न कछू सुहात॥
त्यौं बिन सुत मुहि राज्य सुष, सब लागत उतपात॥२५॥
तातैं म्हैं या दुष्ष सौं, हौहुं निवर्त्त जु निदांन॥
अैसौं कछू बिचार रिषि, करियै आपु सुजांन॥२६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि अैसैं जबैं, नृप प्रार्थनां कीन॥
तब राजा कौं अंगिरा, रिषि अति धीरज दीन॥२७॥
त्वष्टा नांमी देवता, जांकै लियैं सचित्त॥
करत भयै रिषि जग्य तहँ, नृप संतांन निमित्त॥२८॥
रांनी कृतद्युति बडी ही, रिषि दिय ताहि प्रसाद॥
अरु इह राजा सौं कह्यौ, जोइ ईछा अन्नाद॥२९॥
हे नृपति तेरै पुत्र इक, उपजै गौ इह मांनि॥
हर्ष सोक तासौं दोउ, ह्वै हैं तोहि निदांनि॥३०॥

उपजत है हैं हर्ष अरु, मरैं हौहिगौ सोक॥
इह कहि रिषि कीनौं गवन, मग्न ध्यांन हरिवोक॥३१॥
गर्भ रह्यौ नृप नारि कैं, जिग्य प्रसाद प्रताप॥
तिहिं रांनी कैं गर्भ सौ, बधतौ मेटत ताप॥३२॥
सुल्कपछ कौ चंद्रमा, सौ नृप तेज प्रताप॥
समैं पाय भौ पुत्र नृप, कियै उछाह अमाप॥३३॥
पुत्र जु भयौ सुनि देस मैं, भयौ परम आनंद॥
पूर्न मनोरथ सबनि कै, भयै मिट्यौ दुषदंद॥३४॥
राज़ा अधिक प्रसंन ह्वै, किय सनांन सुषपाइ॥
जातक कर्म ब्राह्मननि सौं, करवायौ सुभ भाइ॥३५॥
बस्त्र आभरन अश्व गज, धन धर ग्रांम अपार॥
छह अर्बुद गोदांन दिय, नृपति बिप्रनि उहिं बार॥३६॥
पूर्न मनौरथ सबनि कौ, किय नृप मेघ समांन॥
अपनैं जस कै निमित्त अरु, हौंन पुत्रहिं कल्यांन॥३७॥
ज्यौं लोभी कैं हौत है, धर्म सौं अधिक सनेह॥
जइसैं राजा कैं बढी, सुत सौं प्रीति अछेह॥३८॥
अरु रांनीहूं कैं भई, सुत सौं अधिकी चाह॥
और सपतननि कैं हियैं, प्रगट्यौ दुष्ष अथाह॥३९॥
अरु राजाहूं कैं भई, या रानी सूं प्रीति॥
और सकल रांनीन सौं, छुटी प्रीति की रीति॥४०॥
सुतहिं षिलावत ही रहै, निति प्रति नृप मुदमांनि॥
निसिदिन राजा कौं कछू, जात परत नहिं जांनि॥४१॥
और तिया संतांन बिन, आदर देत न राइ॥
तासौं वे लागी करन, निज निंदा इहिं भाइ॥४२॥
जा तिय कै संतान है, नहिं जांकौ धृकार॥
पतिहूं कौ भावत नाहिं, बह तिय किहूं प्रकार॥४३॥
भागहीन हम्ह तौ महा, हैं निश्चै सब भांति॥
दासी की दासीनि सम, अपनौं जनम बितांति॥४४॥
पुत्र जु भयौ लषि सौति कैं, ऐसैं सब तिय और॥
जरत भई निज चित्त मैं, प्रगट्यौ बैर सजौर॥४५॥
इक तौ निर्दय जाति तिय, बहुरि सौति सौं बैर॥
जांसौं ह्वै गई नष्ट बुधि, अधिक अनष कै घैर॥४६॥
सबहिंन मिलि दिय बालकहिं, रिस करि गरल छिपाइ॥
रांनी क्रतद्युति चरित इन, सौंतिन कौं न जनाइ॥४७॥

वा बालक कौं सौवतैं, भई बडी जब बार॥
तब कहिं रांनी धाय सौं, मो पैं ल्याव कुमार॥४८॥
धाइ जाइ तब बालकहिं, लष्यौ मृतक बिनु प्रांन॥
तब मूर्छित ह्वै गिरि परी, ह्वै ब्याकुल भुव थांन॥४९॥
पीटन लागी हृदौ निज, रुदन कियौ करि सौर॥
तब रांनीहूं वहिं निकट, आई ब्याकुल दौर॥५०॥
पुत्र मर्यौ लषि दुषित ह्वै, गिरत भई मुरछाइ॥
केस बिषरि षुलि बस्त्र अति, रुदन करत बिललाइ॥५१॥
रांनी कौं लषि रोवती, रुदन कियौ नरनारि॥
बिष दीनौं बैऊं लगी, रोवन झूठि प्रकारि॥५२॥
मर्यौ अचांनक पुत्र सुनि, ब्याकुल होइ नृपाल॥
गिरत परत मंत्रीन जुत, सुत पैं आइ बिहाल॥५३॥
वा बालक कै पगनि बिच, दै कैं अपनौं सीस॥
पछरि पर्यौ गिरि पाघ धर, ह्वै दुषमय अवनीस॥५४॥
कंठ रुकि गयौ दुष्य सौं, बोलन स्रद्धा नांहिं॥
बूडि गयौ उहिं बेर नृप, सोक समुद्रहिं मांहिं॥५५॥
पति दुषमय सुत येकहीं, रांनी मर्यौ निहारि॥
करि बिलाप रोवत भई, कहि कहि पुत्र पुकारि॥५६॥
काजर जुत आंसू बहै, रांनी कै द्रिग मांहिं॥
जासौं कुच कुंकुम सबै, बहत भई तिहिं ठांहिं॥५७॥
कच षुलि बिषरै कुसुम धर, लागि अधिक दुष घात॥
रांनी करत बिलाप ज्यौं, कुरर पछिन बिललात॥५८॥
रांनी कहत कि अहो बिधि, तू निज सृष्टिहिं मांहिं॥
बरतत उलटी रीति सौं, तोहि जोग्य है नांहिं॥५९॥
गुरु जन तौ जीवत रहै, अरु बालक मरि जाइ॥
तातैं तूं ही सृष्टि कौ, है बैरी दुषदाइ॥६०॥
अरु जौ कर्माधीनहिं है, सुष दुष सबही भाइ॥
तौ तुही पुत्रादिकनि मैं, क्यौं सनैह प्रगटाइ॥६१॥
अरु सब काटत है तुही, इहि सनैंह बढवार॥
ऐसैं सृष्टि निबाह क्यौं, ह्वै हैं देषि बिचार॥६२॥
आगैं जु पुत्रादिकनि मैं, करिहैं कौंनुं सनेह॥
होत सनेहहिं सौ महा, प्रापत दुष्य अछेह॥६३॥
म्हैं अनाथ हौं हे ललन, अधिक दुषित तौ तात॥
जोग्य नाहिं है तोहि इहि, हम्हहिं छोडि तू जात॥६४॥

अरु अै जम निर्दय महा, लियैं जात हैं तोहि॥
लागत है सब ही जगत, तो बिन सूनौं मोहि॥६५॥
उठि ठाढौ ह्वैहिं पुत्र तू, करहुं सतन पय पांन॥
तौ संगी बालकनि सौं, बोलि बचन सुषदांन॥६६॥
मंद हसनि द्रिग प्रसंन जुत, तौ मुष कँवल रसाल॥
ज्यौं देषत ही पहल त्यौं, अब न लषत हौं लाल॥६७॥
अरु तेरै जु अमृत बचन, स्त्रवन सुनतहौं नांहिं॥
तौ क्रिडा अतिही सुषद, सौ न कहौं दरसांहिं॥६८॥
तातैं म्हैं जांनत इहै, तू गौ अैसी ठौर॥
जहँ कौ गयौ न आंवहीं, बहुर्यौ काहू तौर॥६९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

अैसैं रांनी कौ रुदन, सुनि राजा उहिं बार॥
रौवन लाग्यौ आपहूं, अधिक पुकार पुकार॥७०॥
राजा रांनी यौं रुदन, करत देषि नर नारि॥
रुदन करन लागै सबै, मूर्छित ह्वै दुषधारि॥७१॥
राजा रानी कौं महा, ब्याकुल दुषित पिछांनिं॥
नारद जुत रिषि अंगिरा, आयै नृपति सथांनिं॥७२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थदसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु को अंगिरा और नारद जी का उपदेश)

॥ श्रीसुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि सुत मृतक कै, पासि पर्यौ अवनीस॥
ग्रस्यौ सौक मनु मृतक सौं, नृपति परत है दीस॥ १ ॥
बोलै नारद अंगिरा, राजा सौं या भाइ॥
हे नृप अब तौ बाल इह, हौ तुव सुत सुषदाइ॥ २ ॥
अरु आगैं हौ कौनुं इह, फिरि अब ह्वै हैं कौनुं॥
जांनत ह्वै तौ कहहुं नृप, सोच न करि गहि मौंनुं॥ ३ ॥
अरु तू याकौ कौंनुं है, सौ जांनत कै नांहिं॥
किहुं कौ कौउ न जक्त बिच, समझि दैषि मनमांहिं॥ ४ ॥
ज्यौं प्रबाह कै बेग सौं, बालू इकठी हौत॥
अरु कबहूं ह्वै जात हैं, जुदी जलहि कैं पौत॥ ५ ॥

त्यौं ही काल प्रबाह सौं, प्रांनी बिच संसार॥
कबहू इकठै हौत अरु, कबहु जुदै निरधार॥६॥
अरु जइसैं उत्पंन ह्वै, बीज बीज अनुभाइ॥
तइसैं ही प्रांनीन सौं, प्रांनी प्रगटनि पाइ॥७॥
पुनि कबहू उपजतहु नहिं, कबहु उपजि षपि जांहिं॥
अैसी ही इह रीति निति, चलि आई जगमांहिं॥८॥
हम्ह तुम्ह सब प्रांनी अवर, आगैं हुतै न कोइ॥
अरु पाछैंहू आपनैं, रहनन किहुँ कौं होइ॥९॥
तातैं झूठै हैं अबहुँ, प्रांनी सबै निदांन॥
आदि अंत मैं जेन तैं, मधिहूं झूठै जांन॥१०॥
जीवनि कैं निज प्रकृति सौं, प्रभु प्रगटावत दैह॥
अरु उतपति पालन प्रलय, वै हरि करत अछैह॥११॥
वा ईस्वर कैं नांहिंनै, कछु ईछा अनुसार॥
लीला करतहुँ बालवत, ताकौं बार न पार॥१२॥
सुत सरीर उपजनि लहत, पितु सरीर अनुभाइ॥
जइसैं बीजहिं सौं प्रगट, होत बीज सरसाइ॥१३॥
सौ इह तन झूंठौ सही, आत्मा नित्य प्रसिद्ध॥
जनम मरन जाकौ न ह्वै, आदि न अंत न मध्य॥१४॥
इह सरीर है इह धरन, हार जु आत्मा आंहिं॥
सौ भ्रम है अग्यांन सौं, समझि नृपति मनमांहिं॥१५॥
जइसैं यैक जु बस्तु कैं, बिषैं किहूं अनुसार॥
जाति ब्यक्ति की थापना, कीजतु है निरधार॥१६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि दोऊ रिषिनि, कियौ ग्यांन उपदेस॥
तबै बहुरि बौलत भयौ, बिह्वल निपट नरेस॥१७॥

॥ चित्रकेतु रुवाच॥

तुम्ह कौ हौ ग्यांनी बडै, अति अवधूत सरूप॥
छिपि आय तुम्ह कौंनुं इहां, हौ कौ पुरुष अनूप॥१८॥
प्रभु कै प्यारै बिप्र जै, फिरत पृथ्वी कै मांहिं॥
भाग्य जोग प्रांनीन कौं, करत कृतार्थ सदांहिं॥१९॥
नारद सनत कुमार रिभु, अंगिरा देवल दत्त॥
ब्यास जु मार्कंडे असित, गौतम रु बिस्वामित्त॥२०॥
सुक बसिष्ट परसीधरन, कपिल देव श्रुकदेव॥
जाग्यबल्क्य लोम सच्यवन, रितध्वज धौम्य सुभेव॥२१॥

दुर्बासा जातू कर्ण्य, अरुणि पत्तंजल संम॥
वेदसिरा आसुरि हिरण्य, नाभ अपांतरतंम॥२२॥
कौसल्य रु द्विज पंचसिष, बडे सिद्ध द्विजराज॥
तिनमैं तुम्हहौं कौनुँ दुहुँ, कहौ मोहि माराज॥२३॥
म्हैं पसु सम मूरष महा, अग्यांनी निरधार॥
तम अग्यांन सरूप मैं, पर्यौ मग्न या बार॥२४॥
ग्यांन सरूपी दीप कौ, तुम्ह अब करौं प्रकास॥
जासौं मो दुष तिमिर मिटि, ह्वै आनंद उजास॥२५॥

॥ अंगिरा उबाच॥

इहि सुनि बोलै अंगिरा हे, नृपति तुहि सुत दैंन॥
म्हैं तौ हौं रिषि अंगिरा, ए नारद सुष अैंन॥२६॥
पुत्र सोक मैं तुही मगन, हौहि रह्यौ है राइ॥
अैसैं सोक न जोग्य तू, तुम्ह प्रभु भक्त कहाइ॥२७॥
तातैं हम्ह आयै दोउ, तो पर अनुग्रह चांहिं॥
तू ब्रह्मन्य हरिभक्त है, जोग्य करन दुषनांहिं॥२८॥
हूं पहलैं आयौ हुतौ, दैंन ग्यांन उपदेस॥
पैं तुहि सुत की कामना, बाढी हुती बिसेस॥२९॥
तोहि ग्यांन उपदेस नहिं, तातैं दिय उहिं बार॥
चलै गयैहुं दै पुत्रहीं, जिग्य कराइ सुढार॥३०॥
अबै तूही वा पुत्रकौ, भुक्तत सोक निदांन॥
ज्यौं इह सुत दुषदाय त्यौं, जग पदार्थ सब जांन॥३१॥
अस्त्री गृह धन ईसता, संपति बिषै रु राज॥
अै सब चंचल है सही, महादुष्ष कौ साज॥३२॥
सैना भुव भंडार अरु, मंत्री सेवक मित्र॥
सोक मोह भय कै सदा, अै दाता दुष तत्र॥३३॥
अै सब झूठै हैं सही, हे नृप निश्चै जांनि॥
प्रकृति मनोरथ स्वप्न सुष, पुर गंधर्ब समांनि॥३४॥
अै झूठै ही है सबै, अरु दरसत सति भाइ॥
है उपजायै मनहिं कै, नित्य नाहीं ठहराइ॥३५॥
इहि सरीर या जीव कौं, निति प्रति है दुषदाइ॥
तातैं अब निश्चल करहुँ, अपनौं मन तुम्हराइ॥३६॥
नित्य सु आत्मा कौं लग्यौ, झूठ जांनि संसार॥
सोक न करि संतोष गहि, धीर धरहुँ निरधार॥३७॥

कहै अंगिरा अै बचन, बोलै नारद फेरि॥

॥ श्री नारद उबाच॥

हे नृप तोकौं मंत्र इक, हम्ह जु देत या बेरि॥३८॥
सात दिवस धारण कियै, वहै मंत्र सुषरूप॥
संकर्षण प्रभु कौं भलैं, दरसन होय अनूप॥३९॥
चरन सरन जिन आइ सिव, आदि अमर बुधिवांन॥
उन महिमा प्रापत हुवै, टारि सकल अग्यांन॥४०॥
जइसैं ही तूहुँ नृपति, जगत जंजाल मिटाइ॥
संकर्षण प्रभु कौं भलैं, ह्वै हैं प्राप्त सुभाइ॥४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते पंचदसोऽध्यायः ॥ १५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु का वैराग्य तथा श्री संकर्षण देव के दर्शन)

॥ श्रीसुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि नृप सुत मृतक, पैं नारद मुनि आइ॥
वा बालक सौं सबनि कै, सुनत कह्यौ या भाइ॥ १॥

॥ श्री नारद उबाच॥

अहो जीव आत्मा सबै, सुहृद बंधु पितु मात॥
तेरै दुष सौं देषि तू, अधिक दुषित बिललात॥ २॥
निज सरीर में पैठि कैं, टारि तोहि दुष रोग॥
बाकी आर्बल रही है, ताकौ करि तू भोग॥ ३॥
नृप सिंहासन बैठि कैं, करहुँ बिषै कौ भोग॥
मात पितहिं आनंद दै, मेटहुँ मन कौ सोग॥ ४॥

॥ जीव उबाच॥

इहै नृपति सुत मृतक सौ, बोल्यौ बचन अचाहुँ॥
कौनुँ जनम कैं मातपितु, अै म्हेरै सु बताहुँ॥ ५॥
हम्ह तौ निति प्रति भ्रमत हैं, निज कर्मनि अनुसार॥
सुर नर पसू सरीर कौं, धरत अनैक प्रकार॥ ६॥
बंधु जाति मध्य स्थित अरु, उदासीन जु मित्रारि॥
इतनै जीवकौं हौत हैं, तनकौं जग मैं धारि॥ ७॥
लै बेमोल रु बेचिबै, लायक बस्तु अनैंक॥
इक ठौरी नहिं रहत हैं, समझहुँ जुक्त बिबैक॥ ८॥

जो जो मोलि जु लेत है, रहत तिनन कैं धांम॥
ऐसैं फिरत सुजीव इह, बउत सरीरनि ठांम॥ ९॥
ज्यौं अपनौंहीं अश्व गज, दीजे औरहिं बैंचि॥
तब वासौं संबंध मिटि, होत चाहकी षैंचि॥ १०॥
इहि म्हैरो ऐसैं नांहिं, मानत फिरि किहुँ भाइ॥
जांतैं जग संबंध सब, झूठौ ही दरसाइ॥ ११॥
जब तांई यासौं कछू, है संबंध बिचार॥
तबलौं वामैं मांनहीं, ममता बहुंत प्रकार॥ १२॥
जीव नित्य है जब कोऊ, धारत इहै सरीर॥
अरु जब तांई रहत है, वा सरीर कैं सीर॥ १३॥
तब लौं माता पिता सब, अपनौं मांनत याहिं॥
फेर कछू नांहिंन रहत, जांनि पिछांनि रु चाहि॥ १४॥
इहै जीव सुनि नित्य है, कबहुँ न याकौ नास॥
है सबकौ आधार अति, सूछम दृष्टा भास॥ १५॥
निज माया कैं गुननि सौं, आपु धरत तन चांहिं॥
अपुन परायौ प्रिय अप्रिय, कौउ जीव कै नांहिं॥ १६॥
करनहार गुन दोष कैं, सत्रु मित्र इह जग मांहिं॥
तिन्हकी बुद्धिन कौं इहै, दृष्टा आत्मा आंहिं॥ १७॥
है सुष दुष फल क्रिया तैं, आत्म जुदौ निरधार॥
उदासीन है सबन कौं, दृष्टा बिच संसार॥ १८॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं कहि बचन, जीव रह्यौ बह जात॥
अचिरज सबहिंन कौं भयौ, सुनि बालक की बात॥ १९॥
सबहिंन दीनौं छांडि जबि, बा बालक सौं नेह॥
करत भयै मिलि रीति सौं, दाह क्रिया उहिं देह॥ २०॥
जिन्ही अस्त्रिनि मार्यौ हुतौ, बह बालक वहिं बेर॥
तैं अतिहीं लज्जित भई, नीच कर्म निज हेर॥ २१॥
बाल हत्या है दूरि ब्रत, ऐसौ द्विजनि बताइ॥
करत भई सौ जमुन तट, सब तिय चित्तहिं लगाइ॥ २२॥
नारद अंगिरा दुहुँन कै, बचनन कैं अनुभाइ॥
चित्रकेतु अवनीसहिं उर, पूर्न ग्यांन प्रगटाइ॥ २३॥
अंधकूप समगेह तैं, निकसत भयौ नृपाल॥
जइसैं निकसत पंक तैं, सिंधुर हौंहिं षुस्याल॥ २४॥
करि सनांन बिच जमुन करि, इंद्री बसि गहि मौंन॥
नारद अंगिरा कौं नृपति, करै प्रनांम सुठौंन॥ २५॥

नृपकौं आयो सरन लषि, नारद जू वहिंबार॥
मंत्र विद्या उपदैस किय, करि अनुग्रह सुभ ढार॥२६॥
नारद मुनि अवनीस कौं, देत भयै इह मंत्र॥
जासौं सब संताप मिटि, लहै मंत्र सुभ तंत्र॥२७॥
बासुदैव संकर्षण रु, प्रद्युमन अनिरुध च्यार॥
मूर्त्ति धरैं अै जे प्रभू, तिह्नैं प्रनांम सुढार॥२८॥
ग्यांन स्तूप मूरति परम, आनंद आत्मारांम॥
द्वैत दृष्टि निबृर्ति जिहिं, नमसकार निसि जांम॥२९॥
आत्मा कै आनंद करि, राग द्वेष किय दूरि॥
इंद्रिनि कैं ईस्वर बडै, अनंतन मैं पद मूरि॥३०॥
जाकौं मन करि बचन करि, अरु करि अधिक बिचारि॥
कहि न सकत किहुं भांत सौं, प्रांनी कौ निरधारि॥३१॥
नांम रूप जाकैनाहिं, चैतन्य मंत्र अनूप॥
सौ रछया मो करहुँ प्रभु, अपनीं क्रपा संजूप॥३२॥
इहै जगत जिहिं ब्रह्म मैं, उपजत अरु ह्वै लीन॥
ज्यौं घट माटी तैं उपजि, मिलत मिटी ह्वै छीन॥३३॥
जा प्रभु कौं परनांम है, म्हैरो बारंबार॥
पूर्न ब्रह्म असरन सरन, करता पुरुष उदार॥३४॥
मन बुधि इंद्री प्रांन जिहिं, सपरस करत जु नांहिं॥
अरु जांनत हूं नहिंन है, भूलि प्रकृति जा मांहिं॥३५॥
जे बाहरि भीतरि प्रभू, व्यापक सम आकास॥
जाकौं है परनांम मो, नित प्रति सहित हुलास॥३६॥
मन बुधि इंद्री प्रांन तन, जिहिं चैतन्यता पाइ॥
चैतन्य ह्वै कारिज सकल, करत भलै सुष पाइ॥३७॥
ज्यौं पावक संजोग तैं, औरहुं जारत लौह॥
अरु ज्यौं परसै जोगिसुर, परत न छिद्रत हौह॥३८॥
महापुरुष अनुभाव मैं, महा बिभुति कै स्वांम॥
भक्ति करन सौं पद कमल, जिन्ह पुजियत अभिरांम॥३९॥
अैसैं श्री भगवांनकौं, मन बच क्रम अनुसार॥
नमसकार अति प्रीति जुत, नित प्रति बारंबार॥४०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि भांति या, बिद्या मंत्रहिं सुठौंन॥
करि उपदेस रिषेस दुहुँ, ब्रह्म लौक किय गौंन॥४१॥
मंत्र विद्या इह सात दिन, साधत भौ चित्रकेतु॥
रहि गयौ जलहिं पांन करि, अपुन उधारन हेतु॥४२॥

सात दिवस पाछैं बही, विद्या कैहिं अनुभाइ॥
अधिपति बिद्याहिं धरन कौ, चित्रकेतु हुवै जाइ॥४३॥
केतक दिन पाछैं बहुरि, चित्रकेतु जु भुवपाल॥
सेषनाग जू कैं निकट, प्राप्त भयौ किहुं काल॥४४॥
नील बस्त्र गौरे बरन, भूषन जोग्य रसाल॥
झलकत कुंडल इक श्रवन, प्रसंन्न बदन दृग लाल॥४५॥
जिनमैं बड़े सिद्धहिं जन, बैठे सभा बनाइ॥
सेष नाग जू कौ कियौ, नृप दरसन या भाइ॥४६॥
उन्हकैं दरसन सौं गयै, नृप कैं पाप पलाइ॥
नैंन सजल रोमांच तन, भयै भक्ति अनुभाइ॥४७॥
मन अति निर्मल ह्वै गयौ, चित्रकेतु लहिहुं चैंन॥
सैषनाग जू कौं नृपति, किय परनांम सुषैंन॥४८॥
सैषनाग जू कैं चरन, आसन कौ उहिं बार॥
आंसुनि सौं सींचत भयौ, राजा प्रेम प्रकार॥४९॥
कंठ प्रेम सौ रुकि गयौ, असतुति करन असमर्थ॥
सावधांन मन करि नृपति, बोल्यौ फेरि सुअर्थ॥५०॥
बरन करि सब इंद्रीन कौं, होयहिं सुचित सुढार॥
करन लग्यौ असतुति नृपति, हित जुत भलैं प्रकार॥५१॥

॥ चित्रकेतुरुवाच॥

जिन्हकी बुद्धि समांन है, ऐसै साधु सुरीति॥
तिन्ह तुम्हकौं जीतै भलैं, और सकैं नहिं जीति॥५२॥
अरु तुम्हहूं निज अपनपौं, उन साधुनि कौं दीन॥
पुनि साधुनहीं कैं सदा, रहत आयु आधीन॥५३॥
अरु उतपति पालन प्रलय, तुम्हहीं करत संसार॥
ब्रह्मादिक झूठहिं धरत, ईस्वरता अहंकार॥५४॥
आदि अंत अरु मध्य मैं, तुम्हहीं हौ जगमांहिं॥
आदि अंत मध्य है प्रभू, कबहुँ तुम्हारौ नांहिं॥५५॥
जो सप्तावर्ण सहित है, इहै ब्रह्मांड अनूप॥
ऐसैं तुम्ह कच कूप मैं, उडत कई रज रूप॥५६॥
तातैं हे प्रभु रावरौ, नांम अनंत कहाइ॥
पार तुम्हारौ लहत नहिं, बेदहुँ काहू भाइ॥५७॥
जिन्हकी तृस्ना बिषै मैं, तें पसु मनुषनि मांहिं॥
जे उपासना रावरी, करत मूर्ष जन नांहिं॥५८॥
और सुरनि की करत है, उमगि उपास उदोत॥
संग सुरनि कै नास मैं, नास उनहुँ कौं होत॥५९॥

ज्यौं राजा कै नास मैं, संगी जात नसाइ॥
अैसें ही नर सुरनि संग, कबहुँ न रह ठहराइ॥६०॥
धारि कामनाहूं कौउ, करत रावरौ जापु॥
बैहुँ फेरि नहिं धरत है, जनम किहूं बिधि आपु॥६१॥
जइसैं भूं ज्यौं अन्न नहिं, उपजै अंकुर फेरि॥
त्यौं वै जन धरत न जनम, मुक्ति हौत बिनु झेरि॥६२॥
तुम्हहीं प्रभु कीनौं प्रगट, इहै भागवत धर्म॥
बड्डै मुनि सोइ करत है, समझि मुक्ति कौ मर्म॥६३॥
धर्म भागवत सौं न ह्वै, बुद्धि बिषै कैं मांहिं॥
कांम कर्म सौं बिषैं मैं, सदा बुद्धि ठहरांहिं॥६४॥
कांम कर्म जो कौउ करत, किहुं कैं मारन काज॥
सौ अधर्म कौ रूप है, निश्चै अनित इलाज॥६५॥
वहै धर्म किहं कांम ह्वै, जामैं कष्ट अपार॥
आत्माहूं कौं देत दुष, ब्रतादिकहिं अनुसार॥६६॥
अरु किहुँ मारन कांमनां, करि ब्रत धर्म करंत॥
जासौं लागैं पाप बह, सौ नहिं भलौं बृतंत॥६७॥
मध्य सथावर जंगमनि, जिनकी दृष्टि समांन॥
धर्म भागवत करत है, अैसैं साधु सुजांन॥६८॥
कीनैं दरसन रावरौ, अचिरज नहिं अघ जात॥
नांम लियैं चांडालहूं, मुक्ति लहै बिष्यात॥६९॥
नारद जू की क्रपा सौं, तुव दरसन हुव आज॥
दूरि भयो मन मैल मो, सबहिं संवरै काज॥७०॥
तुम्ह अंतरजामी प्रभू, सब बिधि जांनन हार॥
हूं कहा बिनती आपसुँ, करौं अहौ करतार॥७१॥
जइसैं जुगनौं सूर्ज कौं, कहा करैं जु उजास॥
त्यौं ही अस्तुति रावरी हुं, कहा करौं परकास॥७२॥
उतपति पालन प्रलय जग, तुम्ह करता करतार॥
कुजोगीनि जांनिन परत, गति रावरी सुढार॥७३॥
नमसकार आपहिं प्रभू, सब ठांहिं जिनि उदौत॥
तुम्हरि चैतन्यता सुँ सकल, इंद्री चेतन हौत॥७४॥
सीस तुम्हारे पैं इहै, सौभित है भुव भार॥
सौ तुम्ह जांनत हौ मनौं, सरसौं कन अनुसार॥७५॥
सीस सहस है रावरै, प्रभु तुम्हकौं परनांम॥
अैक तुम्हारी भक्ति बिनु, कछु न बस्तु अभिरांम॥७६॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

श्री सुक कहत कि अस्तुति यौं, चित्रकेतु नृप कीन॥
सेषनाग जू जब बहुरि, बोलै परम प्रबीन॥७७॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

नृप तुहि नारद अंगिरा, कियो मंत्र उपदेस॥
जासौं मो दरसन भयौ, तू हुव सिद्ध सुबेस॥७८॥
सकल भूत मो रूप है, बिच ब्रह्मांड निदांन॥
अरु सब भूतनि कौं सही, म्हैं ही भोक्ता जांन॥७९॥
म्हैं हूं प्रकासिक जक्त कौं, नासक पालनहार॥
बेद रु ब्रह्मा अै दोऊ, म्हैरे रूप सुढार॥८०॥
आत्मा व्यापक लोक मैं, लोक आतमा मांहिं॥
अै दौ ब्यापत मोहि करि, मोही तैं प्रगटांहिं॥८१॥
ज्यौं सुषुप्ति मैं लषत नर, बिश्ब आतमा मांहिं॥
फिरि उठि सुपनादिकन सौं, आत्मा येक लषांहिं॥८२॥
सुपन देषिबौ जागिबौ, अरु सुषोप्ति उनमांन॥
अै तिहूं बुधि की अवस्था, माया मात्र निदांन॥८३॥
तिहूं अवस्थाहिं कौं सही, आतमादिष्टा जांनिं॥
अरु न्यारौहूं रहत है, जल पंकज उनमांन॥८४॥
समैं सुषुप्तिहिं जु अवस्था, दिष्टा आत्मा अनूप॥
सुष सुषुप्ति मैं जु होत है, अनुभव सौ मो रूप॥८५॥
जाग्रत मैं अरु सुषुप्ति मैं, आतमा दिष्टा यैक॥
ब्रह्म सरूपहिं जीव भुलि, धारत जनम अनैक॥८६॥
ग्यांन बिग्यांन संजुक्त नर, मनुष्य जनम कौं पाइ॥
आत्म रूप जांनैंन तिहिं, नहिं कल्यांन किहुं भाइ॥८७॥
बहु कलैस मग प्रबृर्ति मैं, इहै जांनिकैं कोइ॥
मग निबृर्ति मैं चित्तहीं निज, लगियौं मुक्ति सुहोइ॥८८॥
सुष उपजत दुष टारिबै, प्रांनी जतन करंत॥
पैं सुष प्रापति होत नहिं, दुषहूं नांहिं मिटंत॥८९॥
बृथा करत है जतन इह, तातैं बात पिछांनि॥
तिहूं अवस्थाहिं सौं जुदौ, आत्म सरुपहिं जांनि॥९०॥
देषैं सुनैं बिषैन तैं, न्यारौ करि चित्त आपु॥
ग्यांन बिग्यांन संजुक्त नर, ह्वै मोह भक्त सजापु॥९१॥
बुधि जिनकी है जोग मैं, अति प्रबीन सुभ तौर॥
तिन्हहूं कौं करतब्य इहै, आत्म लषै सब ठौर॥९२॥

जो तूं मानैंगौ नृपति, इह मो बचन सुढार॥
तौ तूं ग्यांन बिग्यांन जुत, लहिहैं सिद्धि उदार॥९३॥

॥ श्री सुक उवाच॥

बोलै श्री सुकदैव जू, अैसै बचन रसाल॥
कहिकैं अंतरधांनफिरि, हौत भयै फनमाल॥९४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु को पार्वती जी का शाप)

॥ श्री सुक उवाच॥

दोहा - सुक बोलै फनमाल जिहिं, दिस हुव अंतरधांन॥
चित्रकेतू तिहिं दिसा कौं, करि प्रनांम जुत ग्यांन॥१॥
फिरत भयौ आकास मैं, जहँ तहँ बरष अपार॥
धरैं बिद्याधर रूप नृप, लाग्यौ करन बिहार॥२॥
जास पराक्रम बल बडौ, सिध चारन मुनि जांनिं॥
करत भयै सबही अस्तुति, समझि भलै उनमांनि॥३॥
बिद्याधरीनिहुँ जुत रमन, करत गांन बहु तौर॥
इक दिन चढ्यौ बिमांन पैं, जात हुतौ नभ ठौर॥४॥
इह सिव कौ दरसन सुभग, करत भयौ उहिं बार॥
सिध चारन सिव पास सब, बैठे हुतै सुढार॥५॥
बैठी हुती जु गोद मैं, सिवा सजैं सिंगार॥
आलिंगन सिव जु करत हैं, निज भुजानि अनुसार॥६॥
इहि लषि सिव अरु सिवा कौं, चित्रकेतू उहिं बेरि॥
कहत भयौ हंसि यौं बचन, रीति म्रजादा हेरि॥७॥

॥ चित्रकेतु रुबाच॥

अै सिव गुरु है लोक कैं, प्रांनिन धर्म सिषांहिं॥
मिलि बैठे हैं तिया सौं, रिषिनि सभा कै मांहिं॥८॥
जटाधरैं पति सभा कैं, तपस्वी जुत ब्रह्म ग्यांन॥
बैठे लियैं उछंग तिय, निर्लज मूर्ष समांन॥९॥
अग्यांनीहुं पिय तियहिं लैं, बैठत है अैकंत॥
अै तपस्वी लै सभा मैं, बैठे तियहिं सुतंत॥१०॥

अरु अै जम निर्दय महा, लियैं जात हैं तोहि॥
लागत है सब ही जगत, तो बिन सूनौं मोहि॥६५॥
उठि ठाढौ ह्वैहिं पुत्र तू, करहुं सतन पय पांन॥
तौ संगी बालकनि सौं, बोलि बचन सुषदांन॥६६॥
मंद हसनि द्रिग प्रसंन जुत, तौ मुष कँवल रसाल॥
ज्यौं देषत ही पहल त्यौं, अब न लषत हौं लाल॥६७॥
अरु तेरै जु अमृत बचन, स्त्रवन सुनतहौं नांहिं॥
तौ क्रिडा अतिही सुषद, सौ न कहौं दरसांहिं॥६८॥
तातैं म्हैं जांनत इहै, तू गौ अैसी ठौर॥
जहँ कौ गयौ न आंवहीं, बहुर्यौ काहू तौर॥६९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

अैसैं रांनी कौ रुदन, सुनि राजा उहिं बार॥
रौवन लाग्यौ आपहूं, अधिक पुकार पुकार॥७०॥
राजा रांनी यौं रुदन, करत देषि नर नारि॥
रुदन करन लागे सबै, मूर्छित ह्वै दुषधारि॥७१॥
राजा रानी कौं महा, ब्याकुल दुषित पिछांनिं॥
नारद जुत रिषि अंगिरा, आयै नृपति सथांनिं॥७२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्थदसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु को अंगिरा और नारद जी का उपदेश)

॥ श्रीसुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि सुत मृतक कै, पासि पर्यौ अवनीस॥
ग्रस्यौ सौक मनु मृतक सौं, नृपति परत है दीस॥१॥
बोलै नारद अंगिरा, राजा सौं या भाइ॥
हे नृप अब तौ बाल इह, हौ तुव सुत सुषदाइ॥२॥
अरु आगैं हौ कौंनुं इह, फिरि अब ह्वै हैं कौंनुं॥
जांनत ह्वै तौ कहहुँ नृप, सोच न करि गहि मौंनुँ॥३॥
अरु तू याकौ कौंनुँ है, सौ जांनत कै नांहिं॥
किहुँ कौ कौउ न जक्त बिच, समझि दैषि मनमांहिं॥४॥
ज्यौं प्रबाह कै बेग सौं, बालू इकठी हौत॥
अरु कबहूं ह्वै जात हैं, जुदी जलहि कैं पौत॥५॥

त्यौं ही काल प्रबाह सौ, प्रांनी बिच संसार॥
कबहूं इकठै हौत अरु, कबहु जुदै निरधार॥६॥
अरु जइसैं उत्पंन है, बीज बीज अनुभाइ॥
तइसैं ही प्रांनीन सौं, प्रांनी प्रगटनि पाइ॥७॥
पुनि कबहू उपजतहु नहिं, कबहु उपजि षपि जांहिं॥
अैसी ही इह रीति निति, चलि आई जगमांहिं॥८॥
हम्ह तुम्ह सब प्रांनी अवर, आगैं हुतै न कोइ॥
अरु पाछैंहूं आपनैं, रहनन किहुँ कौं होइ॥९॥
तातैं झूठै हैं अबहुँ, प्रांनी सबै निदांन॥
आदि अंत मैं जेन तैं, मधिहूं झूठै जांन॥१०॥
जीवनि कैं निज प्रकृति सौं, प्रभु प्रगटावत देह॥
अरु उतपति पालन प्रलय, वै हरि करत अछैह॥११॥
वा ईस्वर कैं नांहिंनै, कछु ईछा अनुसार॥
लीला करतहुँ बालवत, ताकौं बार न पार॥१२॥
सुत सरीर उपजनि लहत, पितु सरीर अनुभाइ॥
जइसैं बीजहिं सौं प्रगट, होत बीज सरसाइ॥१३॥
सौ इह तन झूंठौ सही, आत्मा नित्य प्रसिद्ध॥
जनम मरन जाकौ न है, आदि न अंत न मध्य॥१४॥
इह सरीर है इह धरन, हार जु आत्मा आंहिं॥
सौ भ्रम है अग्यांन सौं, समझि नृपति मनमांहिं॥१५॥
जइसैं यैक जु बस्तु कै, बिषैं किहूं अनुसार॥
जाति ब्यक्ति की थापना, कीजतु है निरधार॥१६॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि दोऊ रिषिनि, कियौ ग्यांन उपदेस॥
तबै बहुरि बौलत भयौ, बिह्वल निपट नरेस॥१७॥

॥ चित्रकेतु रुवाच॥

तुम्ह कौ हौ ग्यांनी बडे, अति अवधूत सरूप॥
छिपि आय तुम्ह कौंनुँ इहां, हौ कौ पुरुष अनूप॥१८॥
प्रभु कै प्यारै बिप्र जै, फिरत पृथ्वी कै मांहिं॥
भाग्य जोग प्रांनीन कौं, करत कृतार्थ सदांहिं॥१९॥
नारद सनत कुमार रिभु, अंगिरा देवल दत्त॥
ब्यास जु मार्कंडे असित, गौतम रु बिस्वामित्त॥२०॥
सुक बसिष्ट परसीधरन, कपिल देव श्रुकदेव॥
जाग्यबल्क्य लोम सच्यवन, रितध्वज धौम्य सुभेव॥२१॥

दुर्बासा जातू कर्ण्य, अरुणि पत्तंजल संम॥
वेदसिरा आसुरि हिरण्य, नाभ अपांतरतंम॥२२॥
कौसल्य रु द्विज पंचसिष, बडे सिद्ध द्विजराज॥
तिनमैं तुम्हहौं कौनुँ दुहुँ, कहौ मोहि माराज॥२३॥
म्हैं पसु सम मूरष महा, अग्यांनी निरधार॥
तम अग्यांन सरूप मैं, पर्यौ मग्न या बार॥२४॥
ग्यांन सरूपी दीप कौ, तुम्ह अब करौं प्रकास॥
जासौं मो दुष तिमिर मिटि, ह्वै आनंद उजास॥२५॥

॥ अंगिरा उबाच॥

इहि सुनि बोलै अंगिरा हे, नृपति तुहि सुत दैंन॥
म्हैं तौ हौं रिषि अंगिरा, ए नारद सुष अैंन॥२६॥
पुत्र सोक मैं तुही मगन, हौहि रह्यौ है राइ॥
अैसैं सोक न जोग्य तू, तुम्ह प्रभु भक्त कहाइ॥२७॥
तातैं हम्ह आयै दोउ, तो पर अनुग्रह चांहिं॥
तू ब्रह्मन्य हरिभक्त है, जोग्य करन दुषनांहिं॥२८॥
हूं पहलैं आयौ हुतौ, दैंन ग्यांन उपदेस॥
पैं तुहि सुत की कामना, बाढी हुती बिसेस॥२९॥
तोहि ग्यांन उपदेस नहिं, तातैं दिय उहिं बार॥
चलै गयैहुं दै पुत्रहीं, जिग्य कराइ सुढार॥३०॥
अबै तूही वा पुत्रकौ, भुक्तत सोक निदांन॥
ज्यौं इह सुत दुषदाय त्यौं, जग पदार्थ सब जांन॥३१॥
अस्त्री गृह धन ईसता, संपति बिषै रु राज॥
अै सब चंचल है सही, महादुष्य कौ साज॥३२॥
सैना भुव भंडार अरु, मंत्री सेवक मित्र॥
सोक मोह भय कै सदा, अै दाता दुष तत्र॥३३॥
अै सब झूठै हैं सही, हे नृप निश्चै जांनि॥
प्रकृति मनोरथ स्वप्न सुष, पुर गंधर्ब समांनि॥३४॥
अै झूठै ही है सबै, अरु दरसत सति भाइ॥
है उपजायै मनहिं कै, नित्य नाहीं ठहराइ॥३५॥
इहि सरीर या जीव कौं, निति प्रति है दुषदाइ॥
तातैं अब निश्चल करहुं, अपनौं मन तुम्हराइ॥३६॥
नित्य सु आत्मा कौं लग्यौ, झूठ जांनि संसार॥
सोक न करि संतोष गहि, धीर धरहुँ निरधार॥३७॥

कहै अंगिरा अै बचन, बोलै नारद फेरि॥

॥ श्री नारद उबाच॥

हे नृप तोकौं मंत्र इक, हम्ह जु देत या बेरि॥३८॥
सात दिवस धारण कियै, वहै मंत्र सुषरूप॥
संकर्षण प्रभु कौं भलैं, दरसन होय अनूप॥३९॥
चरन सरन जिन आइ सिव, आदि अमर बुधिवांन॥
उन महिमा प्रापत हुवै, टारि सकल अग्यांन॥४०॥
जइसैं ही तूहुँ नृपति, जगत जंजाल मिटाइ॥
संकर्षण प्रभु कौं भलैं, ह्वै हैं प्राप्त सुभाइ॥४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचदसोऽध्यायः ॥ १५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु का वैराग्य तथा श्री संकर्षण देव के दर्शन)

॥ श्रीसुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि नृप सुत मृतक, पैं नारद मुनि आइ॥
वा बालक सौं सबनि कै, सुनत कह्यौ या भाइ॥ १॥

॥ श्री नारद उबाच॥

अहो जीव आत्मा सबै, सुहृद बंधु पितु मात॥
तेरै दुष सौं देषि तू, अधिक दुषित बिललात॥ २॥
निज सरीर में पैठि कैं, टारि तोहि दुष रोग॥
बाकी आर्बल रही ह्वै, ताकौ करि तू भोग॥ ३॥
नृप सिंहासन बैठि कैं, करहुँ बिषै कौ भोग॥
मात पितहिं आनंद दै, मेटहुँ मन कौ सोग॥ ४॥

॥ जीव उबाच॥

इहै नृपति सुत मृतक सौ, बोल्यौ बचन अचाहुँ॥
कौनुँ जनम कैं मातपितु, अै म्हेरै सु बताहुँ॥ ५॥
हम्ह तौ निति प्रति भ्रमत हैं, निज कर्मनि अनुसार॥
सुर नर पसू सरीर कौं, धरत अनैक प्रकार॥ ६॥
बंधु जाति मध्य स्थित अरु, उदासीन जु मित्रारि॥
इतनै जीवकौं हौत हैं, तनकौं जग मैं धारि॥ ७॥
लै बेमोल रु बेचिबै, लायक बस्तु अनैंक॥
इक ठौरी नहिं रहत हैं, समझहुँ जुक्त बिबैक॥ ८॥

जो जो मोलि जु लेत है, रहत तिनन कैं धांम॥
ऐसैं फिरत सुजीव इह, बउत सरीरनि ठांम॥ ९॥
ज्यौं अपनौंहीं अश्व गज, दीजै औरहिं बैंचि॥
तब वासौं संबंध मिटि, होत चाहकी षैंचि॥ १०॥
इहि म्हैरो ऐसैं नांहिं, मानत फिरि किहुँ भाइ॥
जांतैं जग संबंध सब, झूठौ ही दरसाइ॥ ११॥
जब तांई यासौं कछू, है संबंध बिचार॥
तबलौं वामैं मांनहीं, ममता बहुंत प्रकार॥ १२॥
जीव नित्य है जब कोऊ, धारत इहै सरीर॥
अरु जब तांई रहत है, वा सरीर कैं सीर॥ १३॥
तब लौं माता पिता सब, अपनौं मांनत याहिं॥
फेर कछू नांहिंन रहत, जांनि पिछांनि रु चाहि॥ १४॥
इहै जीव सुनि नित्य है, कबहुँ न याकौ नास॥
है सबकौ आधार अति, सूछम दृष्टा भास॥ १५॥
निज माया कैं गुननि सौं, आपु धरत तन चांहिं॥
अपुन परायौ प्रिय अप्रिय, कौउ जीव कै नांहिं॥ १६॥
करनहार गुन दोष कैं, सत्रु मित्र इह जग मांहिं॥
तिन्हकी बुद्धिन कौं इहै, दृष्टा आत्मा आंहिं॥ १७॥
है सुष दुष फल क्रिया तैं, आत्म जुदौ निरधार॥
उदासीन है सबन कौं, दृष्टा बिच संसार॥ १८॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं कहि बचन, जीव रह्यौ बह जात॥
अचिरज सबहिंन कौं भयौ, सुनि बालक की बात॥ १९॥
सबहिंन दीनौं छांडि जबि, बा बालक सौं नेह॥
करत भयै मिलि रीति सौं, दाह क्रिया उहिं देह॥ २०॥
जिन्ही अस्त्रिनि मार्यौ हुतौ, बह बालक वहिं बेर॥
तैं अतिहीं लज्जित भई, नीच कर्म निज हेर॥ २१॥
बाल हत्या है दूरि ब्रत, ऐसौ द्विजनि बताइ॥
करत भई सौ जमुन तट, सब तिय चित्तहिं लगाइ॥ २२॥
नारद अंगिरा दुहुँन कै, बचनन कैं अनुभाइ॥
चित्रकेतु अवनीसहिं उर, पूर्न ग्यांन प्रगटाइ॥ २३॥
अंधकूप समगेह तैं, निकसत भयौ नृपाल॥
जइसैं निकसत पंक तैं, सिंधुर हौंहिं षुस्याल॥ २४॥
करि सनांन बिच जमुन करि, इंद्री बसि गहि मौंन॥
नारद अंगिरा कौं नृपति, करै प्रनांम सुठौंन॥ २५॥

नृपकौं आयो सरन लषि, नारद जू वहिंबार॥
मंत्र विद्या उपदैस किय, करि अनुग्रह सुभ ढार॥२६॥
नारद मुनि अवनीस कौं, देत भयै इह मंत्र॥
जासौं सब संताप मिटि, लहै मंत्र सुभ तंत्र॥२७॥
बासुदैव संकर्षण रु, प्रद्युमन अनिरुध च्यार॥
मूर्त्ति धरैं अै जे प्रभू, तिहैं प्रनांम सुढार॥२८॥
ग्यांन स्तूप मूरति परम, आनंद आत्मारांम॥
द्वैत दृष्टि निबृर्ति जिहिं, नमसकार निसि जांम॥२९॥
आत्मा कै आनंद करि, राग द्वेष किय दूरि॥
इंद्रिनि कैं ईस्वर बडै, अनंतन मैं पद मूरि॥३०॥
जाकौं मन करि बचन करि, अरु करि अधिक बिचारि॥
कहि न सकत किहुं भांत सौं, प्रांनी कौ निरधारि॥३१॥
नांम रूप जाकैनाहिं, चैतन्य मंत्र अनूप॥
सौ रछया मो करहुँ प्रभु, अपनीं क्रपा संजूप॥३२॥
इहै जगत जिहिं ब्रह्म मैं, उपजत अरु ह्वै लीन॥
ज्यौं घट माटी तैं उपजि, मिलत मिटी ह्वै छीन॥३३॥
जा प्रभु कौं परनांम है, म्हैरो बारंबार॥
पूर्न ब्रह्म असरन सरन, करता पुरुष उदार॥३४॥
मन बुधि इंद्री प्रांन जिहिं, सपरस करत जु नांहिं॥
अरु जांनत हूं नहिंन है, भूलि प्रकृति जा मांहिं॥३५॥
जे बाहरि भीतरि प्रभू, व्यापक सम आकास॥
जाकौं है परनांम मो, नित प्रति सहित हुलास॥३६॥
मन बुधि इंद्री प्रांन तन, जिहिं चैतन्यता पाइ॥
चैतन्य ह्वै कारिज सकल, करत भलै सुष पाइ॥३७॥
ज्यौं पावक संजोग तैं, औरहुं जारत लौह॥
अरु ज्यौं परसै जोगिसुर, परत न छिद्रत हौह॥३८॥
महापुरुष अनुभाव मैं, महा बिभुति कै स्वांम॥
भक्ति करन सौं पद कमल, जिन्ह पुजियत अभिरांम॥३९॥
अैसैं श्री भगवांनकौं, मन बच क्रम अनुसार॥
नमसकार अति प्रीति जुत, नित प्रति बारंबार॥४०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि भांति या, बिद्या मंत्रहिं सुठौंन॥
करि उपदेस रिषेस दुहुँ, ब्रह्म लौक किय गौंन॥४१॥
मंत्र विद्या इह सात दिन, साधत भौ चित्रकेतु॥
रहि गयौ जलहिं पांन करि, अपुन उधारन हेतु॥४२॥

सात दिवस पाछैं बही, विद्या कैहिं अनुभाइ॥
अधिपति बिद्याहिं धरन कौ, चित्रकेतु हुवै जाइ॥४३॥
केतक दिन पाछैं बहुरि, चित्रकेतु जु भुवपाल॥
सेषनाग जू कैं निकट, प्राप्त भयौ किहुं काल॥४४॥
नील बस्त्र गौरे बरन, भूषन जोग्य रसाल॥
झलकत कुंडल इक श्रवन, प्रसंन्न बदन दृग लाल॥४५॥
जिनमैं बड़े सिद्धहिं जन, बैठे सभा बनाइ॥
सेष नाग जू कौ कियौ, नृप दरसन या भाइ॥४६॥
उन्हकैं दरसन सौं गयै, नृप कैं पाप पलाइ॥
नैंन सजल रोमांच तन, भयै भक्ति अनुभाइ॥४७॥
मन अति निर्मल ह्वै गयौ, चित्रकेतु लहिहुं चैंन॥
सैषनाग जू कौं नृपति, किय परनांम सुषैंन॥४८॥
सैषनाग जू कैं चरन, आसन कौ उहिं बार॥
आंसुनि सौं सींचत भयौ, राजा प्रेम प्रकार॥४९॥
कंठ प्रेम सौ रुकि गयौ, असतुति करन असमर्थ॥
सावधांन मन करि नृपति, बोल्यौ फेरि सुअर्थ॥५०॥
बरन करि सब इंद्रीन कौं, होयहिं सुचित सुढार॥
करन लग्यौ असतुति नृपति, हित जुत भलैं प्रकार॥५१॥

॥ चित्रकेतुरुवाच॥

जिन्हकी बुद्धि समांन है, अैसै साधु सुरीति॥
तिन्ह तुम्हकौं जीतै भलैं, और सकैं नहिं जीति॥५२॥
अरु तुम्हहूं निज अपनपौं, उन साधुनि कौं दीन॥
पुनि साधुनहीं कैं सदा, रहत आयु आधीन॥५३॥
अरु उतपति पालन प्रलय, तुम्हहीं करत संसार॥
ब्रह्मादिक झूठहिं धरत, ईस्वरता अहंकार॥५४॥
आदि अंत अरु मध्य मैं, तुम्हहीं हौ जगमांहिं॥
आदि अंत मध्य है प्रभू, कबहुँ तुम्हारौ नांहिं॥५५॥
जो सप्तावर्ण सहित है, इहै ब्रह्मांड अनूप॥
अैसैं तुम्ह कच कूप मैं, उडत कई रज रूप॥५६॥
तातैं हे प्रभु रावरौ, नांम अनंत कहाइ॥
पार तुम्हारौ लहत नहिं, बेदहुँ काहू भाइ॥५७॥
जिन्हकी तृस्ना बिषै मैं, तें पसु मनुषनि मांहिं॥
जे उपासना रावरी, करत मूर्ष जन नांहिं॥५८॥
और सुरनि की करत है, उमगि उपास उदोत॥
संग सुरनि कै नास मैं, नास उनहुँ कौं होत॥५९॥

ज्यौं राजा कै नास मैं, संगी जात नसाइ॥
अैसैं ही नर सुरनि संग, कबहुँ न रह ठहराइ॥६०॥
धारि कामनाहूं कौउ, करत रावरौ जापु॥
बैहुं फेरि नहिं धरत है, जनम किहूं बिधि आपु॥६१॥
जइसैं भूं ज्यौं अन्न नहिं, उपजै अंकुर फेरि॥
त्यौं वै जन धरत न जनम, मुक्ति हौत बिनु झेरि॥६२॥
तुम्हहीं प्रभु कीनौं प्रगट, इहै भागवत धर्म॥
बड्डै मुनि सोइ करत है, समझि मुक्ति कौ मर्म॥६३॥
धर्म भागवत सौं न ह्वै, बुद्धि बिषै कैं मांहिं॥
कांम कर्म सौं बिषैं मैं, सदा बुद्धि ठहरांहिं॥६४॥
कांम कर्म जो कौउ करत, किहुं कैं मारन काज॥
सौ अधर्म कौ रूप है, निश्चै अनित इलाज॥६५॥
वहै धर्म किहं कांम ह्वै, जामैं कष्ट अपार॥
आत्माहूं कौं देत दुष, ब्रतादिकहिं अनुसार॥६६॥
अरु किहुँ मारन कांमनां, करि ब्रत धर्म करंत॥
जासौं लागैं पाप बह, सौ नहिं भलौं बृतंत॥६७॥
मध्य सथावर जंगमनि, जिनकी दृष्टि समांन॥
धर्म भागवत करत है, अैसैं साधु सुजांन॥६८॥
कीनैं दरसन रावरौ, अचिरज नहिं अघ जात॥
नांम लियैं चांडालहूं, मुक्ति लहै बिष्यात॥६९॥
नारद जू की क्रपा सौं, तुव दरसन हुव आज॥
दूरि भयो मन मैल मो, सबहिं संवरै काज॥७०॥
तुम्ह अंतरजामी प्रभू, सब बिधि जांनन हार॥
हूं कहा बिनती आपसुं, करौं अहौ करतार॥७१॥
जइसैं जुगनौं सूर्ज कौं, कहा करैं जु उजास॥
त्यौं ही अस्तुति रावरी हुं, कहा करौं परकास॥७२॥
उतपति पालन प्रलय जग, तुम्ह करता करतार॥
कुजोगीनि जांनिन परत, गति रावरी सुढार॥७३॥
नमसकार आपहिं प्रभू, सब ठांहिं जिनि उदौत॥
तुम्हरि चैतन्यता सुँ सकल, इंद्री चेतन हौत॥७४॥
सीस तुम्हारै पैं इहै, सौभित है भुव भार॥
सौ तुम्ह जांनत हौ मनौं, सरसौं कन अनुसार॥७५॥
सीस सहस है रावरै, प्रभु तुम्हकौं परनांम॥
अैक तुम्हारी भक्ति बिनु, कछु न बस्तु अभिरांम॥७६॥

सात दिवस पाछैं बही, विद्या कैहिं अनुभाइ॥
अधिपति बिद्याहिं धरन कौ, चित्रकेतु हुवै जाइ॥४३॥
केतक दिन पाछैं बहुरि, चित्रकेतु जु भुवपाल॥
सेषनाग जू कैं निकट, प्राप्त भयौ किहुं काल॥४४॥
नील बस्त्र गौरे बरन, भूषन जोग्य रसाल॥
झलकत कुंडल इक श्रवन, प्रसंन्न बदन दृग लाल॥४५॥
जिनमैं बड़े सिद्धहिं जन, बैठे सभा बनाइ॥
सेष नाग जू कौ कियौ, नृप दरसन या भाइ॥४६॥
उन्हकैं दरसन सौं गयै, नृप कैं पाप पलाइ॥
नैंन सजल रोमांच तन, भयै भक्ति अनुभाइ॥४७॥
मन अति निर्मल ह्वै गयौ, चित्रकेतु लहिहुं चैंन॥
सैषनाग जू कौं नृपति, किय परनांम सुषैंन॥४८॥
सैषनाग जू कैं चरन, आसन कौ उहिं बार॥
आंसुनि सौं सींचत भयौ, राजा प्रेम प्रकार॥४९॥
कंठ प्रेम सौ रुकि गयौ, असतुति करन असमर्थ॥
सावधांन मन करि नृपति, बोल्यौ फेरि सुअर्थ॥५०॥
बरन करि सब इंद्रीन कौं, होयहिं सुचित सुढार॥
करन लग्यौ असतुति नृपति, हित जुत भलैं प्रकार॥५१॥

॥ चित्रकेतुरुवाच ॥

जिन्हकी बुद्धि समांन है, ऐसै साधु सुरीति॥
तिन्ह तुम्हकौं जीतै भलैं, और सकैं नहिं जीति॥५२॥
अरु तुम्हहूं निज अपनपौं, उन साधुनि कौं दीन॥
पुनि साधुनहीं कैं सदा, रहत आयु आधीन॥५३॥
अरु उतपति पालन प्रलय, तुम्हहीं करत संसार॥
ब्रह्मादिक झूठहिं धरत, ईस्वरता अहंकार॥५४॥
आदि अंत अरु मध्य मैं, तुम्हहीं हौ जगमांहिं॥
आदि अंत मध्य है प्रभू, कबहुं तुम्हारौ नांहिं॥५५॥
जो सप्तावर्ण सहित है, इहै ब्रह्मांड अनूप॥
ऐसैं तुम्ह कच कूप मैं, उडत कई रज रूप॥५६॥
तातैं हे प्रभु रावरौ, नांम अनंत कहाइ॥
पार तुम्हारौ लहत नहिं, बेदहुँ काहू भाइ॥५७॥
जिन्हकी तृस्ना बिषै मैं, तें पसु मनुषनि मांहिं॥
जे उपासना रावरी, करत मूर्ष जन नांहिं॥५८॥
और सुरनि की करत है, उमगि उपास उदोत॥
संग सुरनि कै नास मैं, नास उनहुँ कौं होत॥५९॥

ज्यौं राजा कै नास मैं, संगी जात नसाइ॥
अैसैं ही नर सुरनि संग, कबहुँ न रह ठहराइ॥६०॥
धारि कामनाहूं कौउ, करत रावरौ जापु॥
बैहुं फेरि नहिं धरत है, जनम किहूं बिधि आपु॥६१॥
जइसैं भूं ज्यौं अन्न नहिं, उपजै अंकुर फेरि॥
त्यौं वै जन धरत न जनम, मुक्ति हौत बिनु झेरि॥६२॥
तुम्हहीं प्रभु कीनौं प्रगट, इहै भागवत धर्म॥
बड्डे मुनि सोइ करत है, समझि मुक्ति कौ मर्म॥६३॥
धर्म भागवत सौं न ह्वै, बुद्धि बिषै कैं मांहिं॥
कांम कर्म सौं बिषैं मैं, सदा बुद्धि ठहरांहिं॥६४॥
कांम कर्म जो कौउ करत, किहुं कैं मारन काज॥
सौ अधर्म कौ रूप है, निश्चै अनित इलाज॥६५॥
वहे धर्म किहं कांम ह्वै, जामैं कष्ट अपार॥
आत्माहूं कौं देत दुष, ब्रतादिकहिं अनुसार॥६६॥
अरु किहुँ मारन कांमनां, करि ब्रत धर्म करंत॥
जासौं लागैं पाप बह, सौ नहिं भलौं बृतंत॥६७॥
मध्य सथावर जंगमनि, जिनकी दृष्टि समांन॥
धर्म भागवत करत है, अैसैं साधु सुजांन॥६८॥
कीनैं दरसन रावरौ, अचिरज नहिं अघ जात॥
नांम लियैं चांडालहूं, मुक्ति लहै बिष्यात॥६९॥
नारद जू की क्रपा सौं, तुव दरसन हुव आज॥
दूरि भयो मन मैल मो, सबहिं संवरै काज॥७०॥
तुम्ह अंतरजामी प्रभू, सब बिधि जांनन हार॥
हूं कहा बिनती आपसुं, करौं अहौ करतार॥७१॥
जइसैं जुगनौं सूर्ज कौं, कहा करैं जु उजास॥
त्यौं ही अस्तुति रावरी हुं, कहा करौं परकास॥७२॥
उतपति पालन प्रलय जग, तुम्ह करता करतार॥
कुजोगीनि जांनिन परत, गति रावरी सुढार॥७३॥
नमसकार आपहिं प्रभू, सब ठांहिं जिनि उदौत॥
तुम्हरि चैतन्यता सुँ सकल, इंद्री चेतन हौत॥७४॥
सीस तुम्हारै पैं इहै, सौभित है भुव भार॥
सौ तुम्ह जांनत हौ मनौं, सरसौं कन अनुसार॥७५॥
सीस सहस है रावरै, प्रभु तुम्हकौं परनांम॥
अैक तुम्हारी भक्ति बिनु, कछु न बस्तु अभिरांम॥७६॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

श्री सुक कहत कि अस्तुति यौं, चित्रकेतु नृप कीन॥
सेषनाग जू जब बहुरि, बोलै परम प्रबीन॥७७॥

॥ श्री भगवानुबाच ॥

नृप तुहि नारद अंगिरा, कियो मंत्र उपदेस॥
जासौं मो दरसन भयौ, तू हुव सिद्ध सुबेस॥७८॥
सकल भूत मो रूप है, बिच ब्रह्मांड निदांन॥
अरु सब भूतनि कौं सही, म्हैं ही भोक्ता जांन॥७९॥
म्हैं हूं प्रकासिक जक्त कौं, नासक पालनहार॥
बेद रु ब्रह्मा अै दोऊ, म्हैरे रूप सुढार॥८०॥
आत्मा व्यापक लोक मैं, लोक आतमा मांहिं॥
अै दौ ब्यापत मोहि करि, मोही तैं प्रगटांहिं॥८१॥
ज्यौं सुषुप्ति मैं लषत नर, बिश्ब आतमा मांहिं॥
फिरि उठि सुपनादिकन सौं, आत्मा येक लषांहिं॥८२॥
सुपन देषिबौ जागिबौ, अरु सुषोप्ति उनमांन॥
अै तिहूं बुधि की अवस्था, माया मात्र निदांन॥८३॥
तिहूं अवस्थाहिं कौं सही, आतमादिष्टा जांनिं॥
अरु न्यारौहूं रहत है, जल पंकज उनमांन॥८४॥
समैं सुषुप्तिहिं जु अवस्था, दिष्टा आत्मा अनूप॥
सुष सुषुप्ति मैं जु होत है, अनुभव सौ मो रूप॥८५॥
जाग्रत मैं अरु सुषुप्ति मैं, आतमा दिष्टा यैक॥
ब्रह्म सरूपहिं जीव भुलि, धारत जनम अनैक॥८६॥
ग्यांन बिग्यांन संजुक्त नर, मनुष्य जनम कौं पाइ॥
आत्म रूप जांनैंन तिहिं, नहिं कल्यांन किहुँ भाइ॥८७॥
बहु कलैस मग प्रबृर्ति मैं, इहै जांनिकैं कोइ॥
मग निबृर्ति मैं चित्तहीं निज, लगियौं मुक्ति सुहोइ॥८८॥
सुष उपजत दुष टारिबै, प्रांनी जतन करंत॥
पैं सुष प्रापति होत नहिं, दुषहूं नांहिं मिटंत॥८९॥
बृथा करत है जतन इह, तातैं बात पिछांनि॥
तिहूं अवस्थाहिं सौं जुदौ, आत्म सरुपहिं जांनि॥९०॥
देषैं सुनैं बिषैन तैं, न्यारौ करि चित्त आपु॥
ग्यांन बिग्यांन संजुक्त नर, ह्वै मोह भक्त सजापु॥९१॥
बुधि जिनकी है जोग मैं, अति प्रबीन सुभ तौर॥
तिन्हहूं कौं करतब्य इहै, आत्म लषै सब ठौर॥९२॥

जो तूं मांनैंगौ नृपति, इह मो बचन सुढार॥
तौ तूं ग्यांन बिग्यांन जुत, लहिहैं सिद्धि उदार॥९३॥

॥ श्री सुक उबाच॥

बोलै श्री सुकदैव जू, अैसै बचन रसाल॥
कहिकैं अंतरधांनफिरि, हौत भयै फनमाल॥९४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(चित्रकेतु को पार्वती जी का शाप)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक बोलै फनमाल जिहिं, दिस हुव अंतरधांन॥
चित्रकेतू तिहिं दिसा कौं, करि प्रनांम जुत ग्यांन॥ १॥
फिरत भयौ आकास मैं, जहँ तहँ बरष अपार॥
धरैं बिद्याधर रूप नृप, लाग्यौ करन बिहार॥ २॥
जास पराक्रम बल बडौ, सिध चारन मुनि जांनिं॥
करत भयै सबही अस्तुति, समझि भलै उनमांनि॥ ३॥
बिद्याधरीनिहुँ जुत रमन, करत गांन बहु तौर॥
इक दिन चढ्यौ बिमांन पैं, जात हुतौ नभ ठौर॥ ४॥
इह सिव कौ दरसन सुभग, करत भयौ उहिं बार॥
सिध चारन सिव पास सब, बैठे हुतै सुढार॥ ५॥
बैठी हुती जु गोद मैं, सिवा सजैं सिंगार॥
आलिंगन सिव जु करत हैं, निज भुजानि अनुसार॥ ६॥
इहि लषि सिव अरु सिवा कौं, चित्रकेतू उहिं बेरि॥
कहत भयौ हंसि यौं बचन, रीति म्रजादा हेरि॥ ७॥

॥ चित्रकेतु रुबाच॥

अै सिव गुरु है लोक कैं, प्रांनिन धर्म सिषांहिं॥
मिलि बैठे हैं तिया सौं, रिषिनि सभा कै मांहिं॥ ८॥
जटाधरैं पति सभा कैं, तपस्वी जुत ब्रह्म ग्यांन॥
बैठे लियैं उछंग तिय, निर्लज मूर्ष समांन॥ ९॥
अग्यांनीहुं पिय तियहिं लैं, बैठत है अैकंत॥
अै तपस्वी लै सभा मैं, बैठे तियहिं सुतंत॥१०॥

श्री सुक कहत कि सदासिव, जिनकीहुँ बुधि बिसाल॥
चित्रकेतू कैं बचन सुनि, हँसि चुप हुव तिहिं काल॥११॥
और सभाजन हूं कछू, बोलै नांहिंन कोय॥
सुनी अनसुनी करि रहै, बडे धीरधर होय॥१२॥
बिनु जांनै सिव महातम, अैसैहुं निंदा कीन॥
लषि अहंकारी धीठ इहिं, श्राप भवानी दीन॥१३॥

॥ श्री पार्बत्युबाच॥

हम्हहिं दुष्ट निर्ल्लज इहै, सिछाहिं देबैं काज॥
प्रगट भयौ है नयौ अब, दाता दंड सुआज॥१४॥
बिधि भ्रगु नारद यै कहा, धर्म जु जांनत नांहिं॥
जे सिवकौं न मनैं करत, इहहुं कहा अधिकांहिं॥१५॥
सनकादिक मनु कपिल अै, सिवकौं बरजत नांहिं॥
सिव पद ध्यांन जु धरत है, चलत मार्ग सिव मांहिं॥१६॥
महादेव गुर जगत कैं, मंगल रूप उदार॥
इहै अधमनि छत्रीन मैं, हम्हकौं जु सिछाकार॥१७॥
दंड जोग्य इह है सही, अभिमांनी अग्यांन॥
प्रभु पद सेवन करन कैं, नांहिंन जोग्य निदांन॥१८॥
तातैं है दुरमति असुर, जौनिहिं प्रापति हौहुं॥
जासौ फेरि बडैन कौं, करैं न अघ अवरौहुं॥१९॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि श्राप सुनि, चित्रकेतू या भाय॥
आपुन उतरि बिमांन तैं, पर्यौ सिवा कैं पाय॥२०॥
प्रस्न्न सिवा कौं करि कहत, भयौ बचन या भाय॥

॥ चित्रकेतुरुबाच॥

दयो सिवा तुम्ह श्राप सौ, म्हैं लिय सीस चढाय॥२१॥
श्राप देत हैं देवता, मनषहिं किहूं प्रकार॥
सौ निश्चै करि जांनियै, पूर्ब कर्म अनुसार॥२२॥
इहै चक्र संसार मैं, भ्रमत जीव अग्यांन॥
नित प्रत सुष दुष कौ करत, भोग कर्म उनमांन॥२३॥
सुषदुष अपनैं आत्म कौं, और जु करता नांहिं॥
मूरष मांनत और कौं, सुषदुष बिन समझांहिं॥२४॥
स्वर्ग नर्क बर श्राप सुष, दुष संसार अनीति॥
करता सबही बात कौ, ईस्वर है नित नीति॥२५॥
अपणीं ईछा सौं इहै, श्रजत जगत भगवांन॥
बंध मुक्त सुष दुष्ष है, प्रभु ईछा उनमांन॥२६॥

जाति बंधु पर आपनौं, सत्रु अरु मित्र अनुसार॥
जा ईस्वर कैं नांहिंनैं, समदरसी निरधार॥२७॥
निराकार जे निरंजन, राग द्वेष कछु नांहिं॥
पूर्न ब्रह्म करता पुरस, सोभित घट घट मांहिं॥२८॥
मोछ बंध मृत्यु जनम सुष, दुष हित अहित प्रकार॥
जीवहि प्रापति होत हैं, निज कर्मनिहिं अनुसार॥२९॥
तातैं इह नहिं कहत हूं, दूर कीजियैं श्राप॥
तुम्ह मान्यौं मो बचन दुष, छमा करहु सौ पाप॥३०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि यौं जबै, चित्रकेतु कहि बैंन॥
चढ बिमांन आनंद सौं, पहुँच्यौं स्वर्ग सुषैंन॥३१॥
रिषि पार्षद सुर असुर कैं, सुनत सिंभु वा बार॥
कहै भवानी सौं बचन, ऐसैं भलैं प्रकार॥३२॥

॥ श्री महादेव उबाच॥

अहो सिवा भगवांन कै, परम भक्त निरधार॥
तुम्ह इह जिनकैं भलै कौ, लष्यौ प्रताप सुढार॥३३॥
नारायण कैं भक्त जे, किहुँ सौं डरपैं नांहिं॥
स्वर्ग मोछहुँ अरु नरकहुँ, वै जु समांन लषांहिं॥३४॥
इन्ह प्रांनिन कौं श्राप बर, दुष सुष प्रापति हौत॥
सौ माया भगवांन की, कैं अनुसार उदौत॥३५॥
या जीवहिं अबिबेक सौं, रहत भेद भ्रम लागि॥
ताही तैं प्रांनी प्रगट, धारत जनम अथागि॥३६॥
बासुदैव कैं भक्त हैं, जुक्त ग्यांन बैरागि॥
जे कबहुँ नांहिंनैं करत, किहूं कौ आश्रय लागि॥३७॥
म्हैं बिधि नारद इंद्र मुनि, सनत कुमार समेत॥
पहचांनत नहिं रूप जिहिं, निगम कहत जिहं नेत॥३८॥
वा ईस्वर कैं नांहिंनै, है प्रिय रु अप्रिय कौय॥
प्रिय आत्मां सब मधि बसत, अंतरजामी हौय॥३९॥
ता हरि कौ इह भक्त प्रिय, चित्रकेतू निरधार॥
म्हैं हूं वा भगवांन कौ, हौं प्रिय भक्त सुढार॥४०॥
हरि कैं भक्त जु होत हैं, समदरसी अरु सांत॥
चित्रकेतू कौ मत करहुँ, अचिरज तुम्ह किहुँ भांत॥४१॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि इह बचन, सुनिकैं सिवा सुभाय॥
रहत भई चुप होय कैं, समझि भैद सुषदाय॥४२॥

श्राप दैंन सामर्थ हौ, चित्रकेतू अवनीस॥
पैं दीनौं नहिं श्राप लिय, सिवा श्राप धरि सीस॥४३॥
साधुन कौं लछिन इहिं है, निश्चैहीं सुभ ढार॥
गुन औगुन कौ चहत नहिं, पलटौ किहूं प्रकार॥४४॥
चित्रकेतू राजा बही, श्राप सिवा कौ पाय॥
तुष्टा कै इह्यां अग्नि तैं, बृत्रासुर प्रगटाय॥४५॥
बृत्रासुर उर भक्त हरि, किहँ कारन प्रगटाय॥
तुम्ह पूछीही हम्हहिं इह, सौ बिधि कही सुनाय॥४६॥
चित्रकेतू कौ चरित इह, सुनैं कोउ चितलाय॥
सौं बंधन तैं मुक्त है, जनम मरन मिटि जाय॥४७॥
प्रातकाल जो इह चरित, पढै नित्य नर जु कोय॥
ताहिं उत्तम गति की भलैं, निश्चै प्रापति होय॥४८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदसोऽध्यायः ॥ १७ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टादसोऽध्यायः ॥

(अदिति और दिति की संतानों की तथा मरुद्गण
की उत्पत्ति का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच।॥

दोहा - श्री सुक कहत कि अब सुनौं, सूरज त्वष्टा जु नांम॥
ताकैं हो बिस्व रूप सुत, पंडित अति अभिरांम॥१॥
तिहीं चरित हम्ह पहल हीं, बरन्यौ तुम्हहिं सुनाय॥
अब बरनन जौ करतहौं, सौ सुनियैं चित्त लाय॥२॥
अदिति कौ हो पुत्रहीं तिहिं, सविता नांम प्रकार॥
तांकै प्रस्नि जू नांम की, अस्त्रीहिं हुती सुढार॥३॥
जांकै कन्या तीन हुवी, सुनियैं तिनकैं नांम॥
सावित्री ब्याहति त्रयी, जुक्त रूप गुन भांम॥४॥
अग्निहौंत्र पसु सोम अरु, महामष चातुर्मास॥
अै सुत प्रगटै पांच तिय, प्रस्नि गर्भ कै बास॥५॥
अरु अदिती कौ पुत्र हौ जु, भग वां नांमा जांनि॥
ताकै तिय सिधि नांम की, तिहिं अब सुनि संतांनि॥६॥
तीन पुत्रनि प्रगटत भयै, बिभु प्रभु अरु महिमांन॥
पुत्री आसिष जु नांम की, उपजत भई निदांन॥७॥

अरु अदितीहिं कौ पुत्र हौ, पुनि जोधा ता नांम॥
च्यारि तिया जाकै हुती, सुभ गुन जुत अभिरांम॥८॥
कुहू नांम तिय गर्भ सुत, सायं नांम प्रगटाय॥
दरस पुत्रजु उपज्यौ भलौं, सिनीबाली गर्भाय॥९॥
राका नांम तिया हुती, जाकै हुव सुत प्रात॥
अनुमति कैं पौर्न मांस, सुत प्रगट भय बिष्यात॥१०॥
धाता कैं चहुँ तियन तैं, अै सुत प्रगटै च्यार॥
तिन्हकैं नांम गनाय हम्ह, कहै तुम्हहिं या बार॥११॥
अरु अदितीहिं कौ पुत्र जो, हुतौ बिधाता नांम॥
क्रिया नांम स्त्री रही, ताकै अति अभिरांम॥१२॥
तिहिं तिय तैं सुत प्रगट हुव, पांच अग्नि इक नांम॥
और अदितिहिं कौ पुत्र इक, हुतौ बरुण अभिरांम॥१३॥
हुती चरषनी नांम की, तिया बरुण कैं धांम॥
भृगु रिषि बिधि सुत फिरि भयै, प्रगटि गर्भ जिहिं ठांम॥१४॥
अबर अैक सुत बरुण कैं, प्रभू भक्त अधिकाय॥
सौ बही बांबी मध्यतैं, बालमीक प्रगटाय॥१५॥
नांम उरबसी अपसरा, देषि सकाम सुढार॥
बरुण मित्र दुहुँ अदितिहिं सुत, मोहित हुव निरधार॥१६॥
उन दुहूं निज बीर्ज लै, धर्यौ कलस कैं मांहिं॥
तासौं भयै अगस्तहिं अरु, रिषि बसिष्ठ सुष दांहिं॥१७॥
मित्र नांम कौ अदितिहिं सुत, तिया रेवती जास॥
तीन पुत्रनि जाकैं भये, सुनौं नांम अब तास॥१८॥
इक उतस्वर्ग अरिष्ट हुव, पिप्पल तृतीय सुजांनि॥
अै तिहूंन कै नांम हम्ह, बर्नन कियै बषांनि॥१९॥
इंद्र अदितिहिं कौ पुत्र जिहिं, तिय पौलोमा नांम॥
मीढुष रिषभ जयंत तिहूं, सुत जाये उहिं भांम॥२०॥
अरु उरुक्रम सुत अदिति कौ, सोइ बांमन अवतार॥
तिनकैं कीरति नांम तिय, अदभुत सुभग सुढार॥२१॥
ताकै बृहत श्लोक सुत, प्रगट भयौ अभिरांम॥
जाकै सौभग आदि सुत, उपजै बहुगुन धांम॥२२॥
अरु बांमन जू कौ चरित, सबही भलै प्रकार॥
आगैं बरनन करहिंगै, जथा सक्ति अनुसार॥२३॥
कस्यप कै तिय अदितिहिं तैं, इतैहिं पुत्र प्रगटाय॥
दिति नांमा तिय दुतिय तैं, भयै दैत्य दुषदाय॥२४॥

तिनकौ अब बर्नन करत, जे बिच जक्त प्रसंस॥
बलि प्रह्लाद भयै दोउ, महा भक्त तिन वंस॥२५॥
दिति कै द्वै सुत प्रगट हुव, हिरण्य कस्यप हिरण्याछि॥
महाबली मद अंध षल, जगत बिदत जिन साछि॥२६॥
हिरन कस्यप कैं कयाधू, तिय तैं सुत हुव च्यार॥
अनुर्हराद संहराद, हराद प्रह्लाद सुढार॥२७॥
सुता सिंघिका नांम तिहँ, कियैं बिप्रचिति सु ब्याह॥
जाकै गर्भ जु येक सुत, प्रगट होत भय राह॥२८॥
अमृतहुँ पीवत समैं हरि, काटयौ तिहूँ सीस॥
पैं अमृत के प्रताप सौं, मर्यौ न बिस्बाबीस॥२९॥
संहराद कैं हुती तिय, हौ जाकौ कृति नांम॥
पुत्रहिं पंच जन नांम कौ, हुव जिहिं गर्भहिं ठांम॥३०॥
अरु हराद के हुती तिय, धमनी नांम कहाय॥
ताकौ सुत वातापि औ, इल्बल भयौ कुपात॥३१॥
रिषि अगस्तहिं वातापि कौं, भोजन कैं उर झेर॥
गय पचाय निज उदर मैं, सौ निकस्यौ नहिं फेर॥३२॥
अनुहराद कै हुती तिय, सूंर्या नांम कहाय॥
ताकै सुत बासकलि अरु, महिष दोय प्रगटाय॥३३॥
पुत्र भयौ प्रह्लाद जु कै, जास बिरोचन नांम॥
ताकैं बलि सुत प्रगट हुव, प्रभू भक्त अभिरांम॥३४॥
बांण आदि सौ सुत प्रगट, हुव बलि के बलवंत॥
बर्नन करिहौं बाण कौं, आगै सुनि नृप संत॥३५॥
बांण सिवहिं आराधि हुव, मुष्य सिवगननि मांहिं॥
कौतवाल है सिव बसै, जास नगर कैं ठांहि॥३६॥
अरु प्रगटै दिति गर्भ तैं, फेरि पवन उनचास॥
तिनकौं निज समदेवता, कीनैं इंद्र सभास॥३७॥

॥ राजोबाच॥

नृप पूछत दिति सुत हुतै, असुर पवन उनचास॥
तिन्हकौ सुर कइसैं कियै, इंद्र सुकरहुँ प्रकास॥३८॥
और रिषिनहूं कै इही, कथा सुनन की चाह॥
तातैं बरनन करहुँ तुम्ह, सुक सुष सिंधु अथाह॥३९॥

॥ सूत उबाच॥

सूत कहत हैं नृपति कै, अैसैं सुनिकैं बैंन॥
श्री सुक मुनि बोलै बहुरि, महाग्यांन कै अैंन॥४०॥

॥ श्री सुक उवाच॥

हिरनकस्यपु हिरनाछि जिहिं, दुहूं हतै भगवांन॥
तब दिति ह्वै अतिही दुषित, क्रोध जु कियौ निदांन॥४१॥
म्हैरे दुहुँ बलबंत सुत, महा बिजई बिष्षात॥
बासव कहिकैं बिस्नु सौं, करवाई तिन घात॥४२॥
भ्रात हतक पापी कठिन, कूर इन्द्रीसुषवंत॥
इंद्रहिं मारै तबै हौं, सौवौं नींद नचंत॥४३॥
हौत मरैं पीछै सही, यातन की गति तीन॥
ताकौ कछू उपाय बिधि, नहिं बताय कहि दीन॥४४॥
पर्यौ रहै कीरा परै, जारैं होत जु छार॥
अरु जो कोऊ षाय तौ, बिष्टा होई कुढार॥४५॥
अैसैं तन काजैं करत, जे औरन कौं द्रोह॥
तै प्रांनी नर्कहिं परत, अपनैं कर्म अरोह॥४६॥
अहै इंद्र है दुष्ट जिन, अपनैं सुष कै काज॥
मरवायै मो पुत्र दुहूं, करत निकंटक राज॥४७॥
तातैं म्हैरे पुत्र कबैं, अैसौ हौय सुढार॥
दूरि करै मद इंद्र कौ, बैर लैय निरधार॥४८॥
इह बिचार करि दिति मनहिं, अधिक सनेह बढाय॥
निजपति की सेवा करत, भई भलैं चित्तलाय॥४९॥
बउत भक्ति सौं अरु बचन, चतुराई कैं ढार॥
कस्यप कौ मन हरत भई, निज कटाछि अनुसार॥५०॥
यौं दिति पति की सेव किय, तबैं कस्यप बसि होय॥
कह्यौ मनोरथ पूर्न तौ, करिहौं सब दुष षोय॥५१॥
सृष्टि आदि बिधि ता समैं, प्रांणी लषै असंग॥
अपणी आधी देह तैं, अस्त्री सृजी सुधंग॥५२॥
तिन्ह अस्त्रिनि तैंहिं पुरुष की, हरी जात है बुद्धि॥
प्रसंन्न होय कैं कसिप जू, बचन कहै मन सुद्धि॥५३॥

॥ कस्यप उवाच॥

बर मांगहु निश्चै प्रियै, जो तैरै मनमांहिं॥
जातिय सौं पति प्रसंन्न ह्वै, तिहिं दुर्लभ कछु नांहिं॥५४॥
तियकै तौ पति ही प्रभू, बेद बिदत इह साषि॥
कही जोगि तियकौं करन, पति सेवा अभिलाषि॥५५॥
बहु इंद्रादिक रूप जे, हरि ही धरत सुढार॥
तिनकौं पूजन सब पुरुष, करत लाभ अनुसार॥५६॥

पति ही कौ पूजन करत, तिय पतिब्रता सुढार॥
ताही सौं सब कामना, पावत है निरधार॥५७॥
तैं म्हैरी सेवा करी, आछैं चित्तहिं लगाय॥
तो मनोरथ पूर्न अबै, हौं करिहौं सब भाय॥५८॥

॥ दितिरुबाच॥

इह सुनि दिति बोली कि द्वै, म्हैरे सुत बलबांन॥
बासव कहिकैं बिस्नु सौं, दिय मरवाय निदांन॥५९॥
तातैं म्हैरे पुत्र येक, ऐसौ ह्वै बलबंत॥
इंद्रहिं मारै देहु मुहि, इह बर याही तंत॥६०॥
सुक कहत कि ऐसौं बचन, दिति कौ सुनि उहिंबार॥
कस्यप कौ संतापहिं हुव, किय मन इहै बिचार॥६१॥
बडौ अधर्म सु आज मुहि, प्राप्त भयौ है आय॥
म्है बिषई तिय बस भयौ, परिहौं नर्क सुजाय॥६२॥
तिय सुभाव तौ होत है, दुष्ट इहीं अनुसार॥
तातैं या तिय कौ कहा, है अपराध प्रकार॥६३॥
पैं मोकौं धिक्कारहुं म्हैं, इंद्री बसि नहिं कीन॥
अरु या तिय कै बसि भयौ, क्रीडा मृग गति लीन॥६४॥
अस्त्री कौ मुष कंवल सौं, बचन जु अमृत समांन॥
तीछन धार जु पाछिनौं, तियकौं हृदौ निदांन॥६५॥
तियहिं चरित समझ न परत, काहू कौं किहुं भाय॥
इक अपनौं ही प्रयोजन, इनकौं प्रिय सरसाय॥६६॥
पितु पति सुत भाई कौउ, अस्त्री कौ प्रिय नांहिं॥
हतत हतावत और पैं, सौचै नहिं मनमांहिं॥६७॥
इक निज स्वारथ की सगी, अस्त्री जात सुभाव॥
बिन स्वारथ जिनकैं नांहिं, किहुं सौं प्रीति लगाव॥६८॥
दैंन कह्यौ बर याहि म्हैं, सोउ झूठ नहिं होय॥
अरु बासवहूं मरै नहिं, जतन करूं असकोय॥६९॥
करि बिचार ऐसैं जबैं, कस्यपहिं कह्यौ रिसाय॥

॥ कस्यप उबाच॥

दिति तू ब्रत करि बर्ष इक, जो म्हैं देहुँ बताय॥७०॥
जो इह ब्रत तू बर्ष इक, करिहै भलैं प्रकार॥
तौ तेरै सुत होयगौ, इंद्रहिं मारनहार॥७१॥
अरु जो बनि ऐहैं नांहिं, इह ब्रत आछैं भाय॥
तौ अमरन कौ मित्र हुवै, सुत तैरै प्रगटाय॥७२॥

॥ दिति रुवाच ॥

इह मुनि दिति बोली कि ब्रत, करिहौं भलैं बनाय॥
ब्रत की बिधि आछैं अबैं, दीजै मोहि बताय॥७३॥
अरु ब्रत मैं जे कार्ज नहिं, करनैं जोग्य जु होय॥
दीजै सोउ बताय कैं, छिपै न राषहुं कोय॥७४॥

॥ कस्यप उवाच ॥

कस्यप बोलै नहिं करन, कार्ज इतै ब्रत मांहिं॥
सो म्हैं तौसौं कहत हौं, सुनि समझहुं चित्त ठांहिं॥७५॥
करनी हिंसा जीव नाहिं, किहुं कौं गारि न देय॥
झूठ नांहिं बोलै बस्तू, अपबित्र छुव नहिं लेय॥७६॥
छेदन करै न रोम नष, स्नांन करि न बिचि बारि॥
नीचन सौं बोलै नांहिं, रहै क्रोध निर वारि॥७७॥
बस्त्र बिनां धोऐं नहिंन, पहरैं काहू बेरि॥
फूलन की माला पहरि, तजि पहरैं नहिं फेरि॥७८॥
काहू की झूठनि भद्र, काली कौ परसाद॥
आमिष कै जु प्रकार अरु, छूवन सूद्र बहु स्वाद॥७९॥
देष्यौ ह्वै तिय रजस्वला, अैसौं अंन न षाय॥
अंजुलि सौं पीवै न जल, बिनां पात्र किहुं भाय॥८०॥
अरु भौजन करि आचमन, कीनौं हौय जु नांहिं॥
बिन भूषन पहरैं रु बिन, बैनीं कौं गुंथवांहिं॥८१॥
पुनि ऊपरि तैं बस्त्र कछु, वोढि लियौ ह्वै नांहिं॥
सांझ समैं या रीत सौं, बाहिर नहिं निकसांहि॥८२॥
बिनां पांव धोऐं रु बिन, पावन कौं पौछांहिं॥
उत्तर अरु पछिम वोर कौं, सिर करि सोबै नांहिं॥८३॥
सोबै नग्र न हौय नहिं, सोबै सांझ सबेर॥
पहरैं बस्त्र जु धौय नित, रहै पबित्र सब बेर॥८४॥
भौजन कीनैं पहल ही, प्रात समैं चित्त लाय॥
गौ द्विज नारायण रमा, पूजन करै सुभाय॥८५॥
भूषन भौजन फूल अरु, चंदन पहल सुढार॥
पूजै तिय सौंभागवति, हित धरि भलैं प्रकार॥८६॥
पति कौं हरिही जांनिकैं, पूजन करै जु नित्त॥
यैक वर्ष लौं ब्रत इहै, करि लगाय निज चित्त॥८७॥
बिघन रहित इह बरष ब्रत, करै 'पुंसवन' धारि॥
सधि आवै तौ इंद्र कौ, मारनहार निहारि॥८८॥

साहस मन अति उछव धरि, करि हौं बिना अचंभ॥
भली बात यौं दिति कह्यौ, कियौ ब्रत आरंभ॥ ८९॥
करतहिं ब्रत आरंभ हुव, दिति कै गर्भ सथापु॥
जानि बात इह सेव दिति, इंद्र करत भय आपु॥ ९०॥
मृतका अंकुर कुस पदम, जल समिधा फल फूल॥
इंद्र दितिहिं नित ल्याय दै, पूजा सौं जस मूल॥ ९१॥
इहै मनौरथ इंद्र कौ, दिति जु चुकै ब्रत मध्य॥
तौ म्हैं याकै गर्भ कौं, डारौं काटि प्रसध्य॥ ९२॥
ऐसैं सेवा कपट की, इंद्र करत उहिं बार॥
ब्रत मैं चूकत नहिं लषी, चिंता बढी जु अपार॥ ९३॥
इक दिन दिति बिन आचमन, अरु बिन धौऐं पाय॥
बिनु कच बांधे सांझ कौ, सोय गई जु भुलाय॥ ९४॥
निज मन बंछित भयौ लषि, इंद्र समैं बह पाय॥
पैठ्यौ दिति कैं गर्भ मधि, जोग सक्ति अनुभाय॥ ९५॥
येक गर्भ कै बज्र सौं, इंद्र टूक किय सात॥
सात सात फिर टूक किय, इक इक कै चहि घात॥ ९६॥
तब उनचासौं टूक बैं, बोलै ऐसी बात॥
हम्हहिं हतत क्यौं इंद्र हम्ह, मरुत नांम तव भ्रात॥ ९७॥
इंद्र कह्यौ उनचास तुम्ह, मरुत नांम मो भ्रात॥
तौ मति डरपौ रहहुंगै, मोही संग बिष्यात॥ ९८॥
सुक कहत कि दिति ब्रत कियौ, तिहिं प्रताप अनुभाय॥
भयै टूक उनचास पैं, गर्भ नासनहिं पाय॥ ९९॥
अश्वत्थामा कौ सस्त्र ज्यौं, निर्फल भयौ प्रसध्य॥
तूं न मर्यौ हे परीछित, मात गर्भ कै मध्य॥ १००॥
जो हरि की पूजा करै, येक बार ही कोय॥
तौ कछु संसै नहिं रहै, महा मुक्ति सुष होय॥ १०१॥
दिति तौ कछु दिन घट बरष, इक प्रभु पूजा कीन॥
तिहिं प्रताप वहि गर्भ कौं, नास न भयौ सरीन॥ १०२॥
मरुत नांम कै देवतां, वै प्रगटै उनचास॥
जिग्य भाग्य पावन लगै, संगी इन्द्र सभास॥ १०३॥
प्रकट भयै उनचास सुत, लषि दिति अचिरज मांनि॥
पूछन लागी इंद्र सौं, बडी सक्ति पहचांनि॥ १०४॥
हे सुत बासव ब्रत इहै, म्हैं किय धरि इह आस॥
इक सुत ऐसौं होय मो, करै सूरन कुँ नास॥ १०५॥

ऐकसै उनचास हुवै, जांनि परी सौं नांहिं॥
तू कहि जांनत होय तौ, मो संदेह मिटि जांहि॥१०६॥

॥ इंद्र उबाच॥

इहि सुनि बोल्यौ इंद्र फिरि, सांची बात सुनाय॥
तौ मनोर्थ हे मात हौं, जांनत हौ दुषदाय॥१०७॥
तातैं औसर पाय म्हैं, पैठि गर्भ तौ मांहिं॥
करै टूक उनचास म्हैं, धर्म बिचारियौ नांहिं॥१०८॥
सात टूक पहलैं किये, येक गर्भ कै मात॥
सात सात फिर टूक किय, इक इक कै बिष्यात॥१०९॥
तोहूं अैं नांहिंन मरै, जियै टुक उनचास॥
तै हरि की पूजा करी, सौ प्रताप इह भास॥११०॥
हरि कुँ आराधन करि कछु, चहत कांमनां नांहिं॥
तै जन महा प्रबीन हैं, अति निर्भै मन मांहिं॥१११॥
हरि ईस्वर हैं जगत कै, जिन आराधन चांहिं॥
और पदार्थ जगत कै, मांगै कौनुं उमांहिं॥११२॥
म्हैं तेरौ अपराध किय, छमा करहुँ सौभाय॥
भली भई बालक जियत, तेरै रहै सुभाय॥११३॥

॥ श्री सुक उबाच॥

श्री सुक कहत कि प्रस्न्न ह्वै, दिति जब आग्यां दीन॥
नमसकार करि इंद्र जब, गवन स्वर्ग कौ कीन॥११४॥
मरुत नांम वै भ्रातहूं, ले गयौ संग लगाय॥
जनम पवन उनचास कौ, नृप तोहि कहि सुनाय॥११५॥
और जु कछू चाहत सुन्यौ, सोहू कहौ जताय॥
राषहु मति संदेह कोउ, अपनैं चित्तहिं छिपाय॥११६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टादसोऽध्यायः ॥ १८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकोंनबिंसोऽध्यायः ॥

(पुंसवन-व्रत की विधि)

॥ राजोबाच॥

दोहा - नृप पूछत दिति पुंसवन, ब्रत किय तिहँ अनुभाय॥
बिस्नु प्रसंन्न भयै बह सुब्रत, बिधि कहियै समझाय॥ १॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक बोलै अगहंन कै, सुकल पछहुं मधि चांहिं॥
भर्त्ता आग्यां लैहिं करै, ब्रत आरंभ उमांहिं॥ २॥

मरुत अमर उनचास की, जनम कथा सुनि नित्त॥
करि सनांन उज्जल सुपट, भूषन पहरि सचित्त॥ ३॥
प्रातहिं नारायन रमा, पूजन करै सुभाय॥
पुनि उन्हकी असतुति करै, आछे चित्तहिं लगाय॥ ४॥
तुम्ह पूरन सब बात सौं, तुम्हकौं है परिनांम॥
लछमी पति हौ आपु सब, सिधहुँ रूप अभिरांम॥ ५॥
क्रपा लछमी तेजोबल, आपु सर्ब गुन जुक्ति॥
ताही तैं भगवांन हौ, कहियत दांनी मुक्ति॥ ६॥
हे महा माया बिस्नु की, पतनी लोकनि माय॥
तुम्ह मो पर हौ प्रसन्न है, तुम्हहिं प्रनांम सुभाय॥ ७॥
कंवलापति बड प्रतापी, महापुरुष भगवांन॥
तिन्हकौं म्हैं बलिदेत हौं, करत प्रनांम बिधांन॥ ८॥
प्रभु कौ आवाहन करै, नित या मंत्र प्रकार॥
हबिष अंन आहुति अगनि, मधि दै बारह बार॥ ९॥
अर्घपाद्य रु सनांन बस्त्र, भूषन पहुप सुगंध॥
धूप दीपलौं प्रभू कौ, अर्पै धरि हितू संध॥१०॥
महापुरुष भगवांन हौ, लछमी पतिहिं प्रनांम॥
होम करै या मंत्र सौं, स्वाहा कहि पुनितांम॥११॥
लछिमी बिस्नु बरदान कै, दायक भोगहिं ईस॥
भक्ति सहित पूजन करै, ह्वै सम्पत्ति बिस्बाबीस॥१२॥
करै दंडवत भक्ति सौं, जपैं मंत्र दस बार॥
फिरि प्रभु की असतुति करै, मन वच कै निरधार॥१३॥
प्रभु तुम्ह या सब जक्त कै, हौ उपजांवन हार॥
अरु यै लछमी रावरी, माया सक्ति सुढार॥१४॥
रमाकंत तुम्ह जिग्य हौ, अै ईज्या अनुसार॥
तुम्ह फल भुक्ता हौ सही, अैहै क्रिया प्रकार॥१५॥
करनहार गुन प्रगटै तुम्ह, गुन करन प्रकास॥
तुम्ह हौ आत्मा रूप अै, इंद्री देह सभास॥१६॥
नांम रूप है अै रमा, तुम्ह हौ रूप प्रकास॥
प्रभु तुम्हहीं सब जक्त कै, बरदाता सुषरास॥१७॥
मो मनोर्थ पूरन करौ, असतुति करि या भाय॥
करवायै अचवन प्रभुहिं, भोजन सुभग जिवांय॥१८॥
जिग्य उच्चिष्ट कौ सूंघि कैं, हरि पद प्रीति जनाय॥
बहुरि करै पूजा भलै, करै असतुति चित्त लाय॥१९॥
ईस्वर बुधिपति करि करै, पूजा हियहुँ लसाय॥
तियहि हौय कछु अटक जब, ब्रतपति करै सुभाय॥२०॥

पतिकौं कीनौं ब्रत सही, अस्त्रीहूं कौ हौय॥
तिय पति अैक सरूप है, तिन्हमैं भेद न कौय॥२१॥
इहि बिस्नु कौ ब्रत महा, धारन करिकैं याहि॥
छांडै नांहिंन किहुँ बिधिहि, तिय पिय सिधि ब्रत चाहि॥२२॥
सुमन सुगंध भूषन बसन, भोजन भलैं बनाय॥
पूजै तिय सौभागवति, ब्राह्मनी हर्ष बढ़ाय॥२३॥
प्रभुहि बिसर्जन करि बहुरि, ह्वै जो प्रभू प्रसाद॥
आपु करै भोजन सौइ, धरि चित्त अति अहलाद॥२४॥
अैसै ब्रत करि बरष दिन, मन बच कर्म समेत॥
कातिक पून्यौ कै दिवस, पूर्न करै जुत हेत॥२५॥
ब्रत पूरनता दिवस प्रभु, पूजा करै सभेय॥
अग्नि बिषै धृत दूध कै, द्वादस आहुति देय॥२६॥
भोजन द्वादस द्विजन कौं, करवायै सुभ रीति॥
अरु तिल गुड घृत पात्र कौ, दांन देय जुत नीति॥२७॥
आसीरबाद द्विजन कौ, लै कै करि परिनांम॥
द्विज आग्या सौ आपु फिरि, भोजन करै सुठांम॥२८॥
आचार्य कौ पूजकै, सेस हौम कौं लैय॥
या ब्रत सौं सब मनोरथ, प्रभु पूरन करि दैय॥२९॥
तिय ब्रत करि सौभाग्य जस, लछमी गृह सुष पाय॥
कन्या आछौ पतिहिं लहै, बिधवा सुभ गति पाय॥३०॥
जांकै पुत्रहिं न जियत ह्वै, तांकै जीवै पूत॥
अरु ह्वै पतिकी बल्लभा, इहि ब्रत करिबै सूत॥३१॥
रूपवंत ह्वै अधिक पुनि, रोग दूरि सब होय॥
सकल मनोरथ पूर्न ह्वै, ईछा रहै न कोय॥३२॥
पाठ कियै इहि सुर पितर, द्विज लछंमी भगवांन॥
प्रसंन्न हौय पूर्न करौ, सकल मनोर्थ निदांन॥३३॥
जनम मरुत उनचास कौ, दिति ब्रत भेद बिचार॥
राजा हम्ह तुम्ह सौं कह्यौ, आछै करि बिसतार॥३४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे षष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकोंनबिंसोऽध्यायः ॥ १९॥)

॥ षष्टम स्कन्ध संपूर्णम॥

(पोथी को सं. १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री)

(कुल छंद - ११७७, छंद योगक्रम ६७५७)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

***

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राज राजेश्वर श्री राजसिंघजी की महाराणी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती ''श्री ब्रजदासी'' जी कृत श्रीमद्‌भागवत भाषा सप्तम स्कन्ध लिष्यते ॥)

॥ सप्तम – स्कंध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(नारद युधिष्ठर संवाद और जयविजय की कथा)

(मंगलाचरण)

जय जय श्री ब्रजराज, करन लीला रससांनी ॥
जय ज़य श्री बृषभांन, सुता बृंदाबन रांनी ॥
जय जय म्हैरे गुरु जु, क्रपाल गुपाल उपासी ॥
जय जय श्री भागवत, हरि भक्ति रूप प्रकासी ॥
जिन्ह क्रिपा पाय आनंद लहि, (श्री) राधे सहचरि पद धरौं ॥
जाही प्रताप ब्रजदासि कहि, सप्तम सकंध बर्नन करौं ॥ १ ॥

॥ अथाख्यान ॥

दोहा - या सप्तमहिं सकंध मधि, लीला ऊति बषांन ॥
करिहैं सो आछैं अबैं, सुनियै नृपति सुजांन ॥ २ ॥

॥ राजोबाच ॥

नृप पूछत प्रभु कै सकल, है संसार समांन ॥
क्यूं मारै दितिहिं पुत्र है, इंद्र वोर भगवांन ॥ ३ ॥
नांहिं सुरन सौं काज कछु, नहिं दैत्यन सौं बैर ॥
परसैं कबहू न प्रभु कौं, प्रकृति गुननि कौं घैर ॥ ४ ॥
इह म्हैरो संदेह तुम्ह, दूरि करहुँ मुनि राय ॥

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक बोलै हरि चरित नृप, भल पूछ्यौ सुषदाय ॥ ५ ॥
निकसैगौ प्रह्लाद कौ, चरित प्रसंग या मांहिं ॥
ताकैं सुनिबै तैं प्रगट, होय भक्ति हिय ठांहिं ॥ ६ ॥
गावत याही चरित कौं, नारदादि हूं चांहिं ॥
ब्यासहिं बंदन करि तुम्हहिं, हरि गुन कहौं उमांहिं ॥ ७ ॥
जो नर रसना पाय हरि, गुन न गावत दुर्बुद्धि ॥
सौ न चढत है मुक्ति की, लहिनी सरनी सुद्धि ॥ ८ ॥
तातैं अति आनंद रस, रूप जु गुन गोबिंद ॥
गावै सोइ क्रतार्थ है, मिटै सकल दुष दंद ॥ ९ ॥
जासौं कथा गोबिंद की, अतिहि पबित्र सुषदाय ॥
सौ सुनियैं राजा अबैं, आछैंहुं चित्त लगाय ॥ १० ॥

माया गुन तैं है जुदै, जनम बिनां भगवांन॥
तौहू माया गुननि करि, अंगीकार निदांन॥११॥
अैसैं दरसत है कि हरि, करत असुर संघार॥
अरु इनहिंकैं कहैन तैं, असुर मरत निरधार॥१२॥
दीसत परत अैसौ इहि, सौ माया अनुसार॥
माया कै हैं तीन गुन, निर्गुन आत्म उदार॥१३॥
प्रापत हौत है बृधि कौं, तिहुँ गुन औसर पाय॥
सौ प्रभु ही मरजाद इह, बांधी है द्रिढ भाय॥१४॥
बढत सत्वगुन जास मैं, हरि ह्वै अमरनि वौर॥
बढत रजोगुन हौत जब, दैतिनि दिस जग मौर॥१५॥
बढत तमोगुन हौहिं जब, प्रभु जछ राछस वौर॥
ज्यूं जइसै ह्वै लषि परत, दार अग्नि जिहिं तौर॥१६॥
ह्वै जल जइसौ पात्र मैं, तइसौ हीं दरसाय॥
रबि प्रतिबिंब परै जांह, लषियत जइसैं भाय॥१७॥
जइसैंहिं आकास सबहिं, घट मैं ह्वै आभास॥
तइसैहिं हरि जु जगत मैं, जुदै जुदै परकास॥१८॥
जइसैं हीं दीसत प्रभू, रूप अनैक प्रकार॥
ग्यांनी जन जांनत कोउ, इहै भेद अनुसार॥१९॥
जीवन भोगहिं निमत्त हरि, श्रृज्यौ चहत सब देह॥
बृध्य रजोगुन की जबै, बढवत प्रभू अछेह॥२०॥
अरु अनैक अवतार धरि, क्रिया करन ह्वै चाह॥
तबै बढावत सत्वगुन, पूर्न पुरुष जग नाह॥२१॥
जबै संहार सब जक्त कौं, कियौं चहत भगवांन॥
तबै तमोगुन कौं जुदौ, प्रेरत आपु सुजांन॥२२॥
प्रकृति पुरष करि कालहूं, कौं श्रृजत भगवांन॥
काल सतोगुन कौं जबै, दैत बढाय निदांन॥२३॥
तब हरि ह्वै सुर वौर कौं, पालन सुरनि करंत॥
अरु संघार जु करत है, असुरन कौ बहि तंत॥२४॥
या प्रसंग पर जुधिष्टिर, नृप सौं जिग्यहिं मांहिं॥
नारद कथा कही सु तुम्ह, सुनौं भलैं अवगांहिं॥२५॥
जिग्य राजसू मध्य इह, लष्यौ जुधिष्टिर राय॥
सिसुपालहिं श्री कृष्न जू, मारत भयै रिसाय॥२६॥
जबै निकसि सिसुपाल की, जीव जोति सप्रकास॥
लीन भई प्रभु मांहिं सौं, पायौ मुक्ति निवास॥२७॥

इहि अचिरज लषि मुनिन कै, सुनत जुधिष्टिर राय॥
नारद जू सौं प्रस्न किय, सभा बीच हुलसाय॥२८॥

॥ जुधिष्टिर उबाच॥

हे मुनि अचिरज है बडौ, हरि द्रौही सिसुपाल॥
ताहि प्राप्ति प्रभु की भई, दुर्लभ महा रसाल॥२९॥
हरि निंदा कीनी हुती, पापी बैंन नृपाल॥
ताहि नर्क डार्यौ रिषिनि, दै कैं श्राप कराल॥३०॥
अरु इह तौ सिसुपाल हौ, बालपनहिं तैं नीच॥
प्रभु सौं राषत हौ अनपि, महा बैर हिय बीच॥३१॥
दंत बक्रहुँ दुष्ट अतिहि, अैसौं यांकौ भ्रात॥
करत रहे निंदा दुहूं, अै प्रभु की बिष्यात॥३२॥
इन दुंहून की जीभ मैं, कोढ जु निकस्यौ नांहिं॥
अै दोनूं ही क्यूं नांहिं, परै नर्क कैं मांहिं॥३३॥
लीन भये परब्रह्म मैं, या अचिरज अनुभाय॥
युं बुधि हम्हारी डुलत है, ज्यौं दीपक बिच बाय॥३४॥
तातैं तुम्ह कारन इहै, हम्हकौं कहौ सुनाय॥
इन्ह दौनौं ही भ्रात की, मुक्ति भई किहिं भाय॥३५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि सब सभा कैं, सुनतैं अैसैं बैंन॥
नृपति जुधिष्टिर सौं कहै, मुनि नारद सुष दैंन॥३६॥

॥ श्री नारद उबाच॥

सुष दुष निंदा अस्तुति तौ, मांनत है अग्यांन॥
अपनैं जिनन सरीर मैं, मान्यौ है अभिमांन॥३७॥
हे नृप देह अभिमांन सुं, प्रांननि कै इहि हौय॥
बैषमता हिंसा ममता, अहंता प्रगटत सौय॥३८॥
पाप पुन्य कौ जीवही, कै अभिमांन सथाप॥
दंड सरीरहिं होत जब, जीव लहत सुध आप॥३९॥
ईस्वर कै जु सरीर कौ, है नांहिंन अभिमांन॥
सुष दुष निंदा अस्तुति कौं, मांनत है न निदांन॥४०॥
तातैं बैर सनैह भय, भक्ति कांम अनुभाय॥
किहूं भांतिन तैं चित्त निज, हरि मैं देय लगाय॥४१॥
अैंपरि जइसौं बैर सौं, चित लागत हरि मांहिं॥
तइसौं प्रभु मैं भक्ति सौं, ठहरावत चित्त नांहिं॥४२॥
भ्रंग ध्यांन तैं हौत है, कीरा भ्रंगी और॥
तौ अचिरज न लगाय चित, हरि सौं ह्वै हरि तौर॥४३॥

पूर्न ब्रह्म श्री कृस्न सौं, जिन्ह बैर हुँ अनुभाय॥
दीनौं चित्तहिं लगाय सौ, उन्हहिं प्राप्त हुव जाय॥४४॥
काम द्वेष भय सनेह रु, भक्ति जु करि मन लाय॥
कामादिक अघ छौडि कैं, हरि पद पहुँचै जाय॥४५॥
हरि सौं चित गोपीन कौ, लगत भयौ करि कांम॥
अरु भय करिकैं कंस कौ, चित्त लग्यौ प्रभु ठांम॥४६॥
चित्त लाग्यौ सिसपाल कौ, हरि सौं बैर प्रकार॥
अरु जदुबंसन कौ लग्यौ, चित सुबन्धु अनुसार॥४७॥
चित तुम्हारौ सनेह करि, प्रभु सौं लग्यौ सुढार॥
अबर हमारौ चित लग्यौ, प्रभु सौं भक्ति प्रकार॥४८॥
अरु चित राजा बैन कौं, पांचौ तरहनि मांहिं॥
काहू बिधि भगवांन सौं, चित जु लगायौ नांहिं॥४९॥
तांतै नर्क गयौ बहै, पापी बैन नृपाल॥
जांसौं किहूं बिधि प्रभु मैं, चित्त दै होय निहाल॥५०॥
तुम्हरी मौसी कै सुबन, दंतबक्र सिसुपाल॥
प्रभू पार्षद हे पहलै, श्रापहिं तैं सुरसाल॥५१॥

॥ जुधिष्ठिर उबाच॥

इहि सुनिकैं बोलत भयै, बहुरि जुधिष्ठिर राय॥
श्राप प्रभु कै पार्षदनि, किन दीनौं किहिं भाय॥५२॥
वै तौ हरि कैं दास हे, जनम न धारत फेर॥
अरु नाहिं पार्षदन कौं, माया तन उरझेर॥५३॥
बै माया तन धरि असुर, कुल उपजै किहुँ भाय॥
इहै बात कइसैं बनैं, अरु क्यूं मानी जाय॥५४॥
बासी पुर बैकुंठ कै, निर्गुन तन आकार॥
इंद्री प्रांन सरीर नहिं, धरत प्रकृति अनुसार॥५५॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि यक समैं, सनकादिक उमगाय॥
बिधि सुत पुर बैकुंठ मधि, प्राप्त होत भय जाय॥५६॥
है बड्डेनहूं कै बडै, पांच बरष बय नित्त॥
नग्र रहत मन जीति जें, प्रभू ध्यांन मैंमंत्त॥५७॥
जिन्हकौं प्रभु कै पार्षदनि, रोकै दियै न जांन॥
तबै क्रोध करिकै दियौ, उन्हकौ श्राप निदांन॥५८॥
तुम्ह प्रभु कैं चरनन निकट, रहन जोग्य हौ नांहिं॥
इहां तैं गिर उपजौं अब, असुर बंस कै मांहिं॥५९॥

गिरन लगै बैकुंठ तैं, जब पार्षद उहिं बार॥
तबै दया करि रिषिन इहि, बचन कह्यौ सुषसार॥६०॥
तीन जनम धारण कियै, पाछै निज पद पाय॥
अैहौ पुर बैकुंठ तुम्ह, हरि भजि बैर प्रभाय॥६१॥
पहलै दुहुँ दिति सुत भये, हिरणकस्यप हिरनाछि॥
श्री नृसिंह कस्यप हिरन, हत्यौ प्रगट इह साछि॥६२॥
अरु मार्यौ हरिनाछ कौं, प्रभु धरि रूप बराह॥
प्रिथवी कौ उद्धार कियै, सुरपुर भयौ उछाह॥६३॥
हिरणकस्यप प्रह्लाद कौं, देत भयौ दुषत्रास॥
जतन मारिबै कौ कियौ, करिकैं क्रोध प्रकास॥६४॥
तातैं बाहि हत्यौ प्रभू, राषि भक्त कौ मांन॥
भक्त बछलता कौ बिरद, बिस्तार्यौ भगवांन॥६५॥
परमभक्त प्रह्लाद जू, ग्यांनी द्रिष्टि समांन॥
जिन्हकौं मार सक्यौं नांहिं, गयै बहि कैं प्रांन॥६६॥
फिरि बै दोउ बिश्रवा तैं, गर्भ कैसिनी मात॥
कुंभकर्ण रावण प्रगट, भयै दुष्ट बिषयात॥६७॥
उन्ह दुहूँन प्रभू हतै, ह्वै रामा अवतार॥
मारकंडे तै सुनौगें, तुम्ह जु चरित सुषसार॥६८॥
बै दोऊ छत्रिकुल बिषै, तुम्ह मासी कै पूत॥
दंतवक्र सिसुपाल अब, प्रगट भयै हैं धूत॥६९॥
चक्र सुदरसन सौं तिन्हैं, हतै कृस्न अवतार॥
जासौं उन्हकै पाप मिटि, पाई मुक्ति सुढार॥७०॥
दोषहूँ करिकैं चित्त निज, प्रभु मैं दियौ लगाय॥
तातैं प्रभु कै लोक कौ, वै पहुंचत भय जाय॥७१॥

॥ जुधिष्टिर उबाच॥

नृप पूछत प्रह्लाद कै, भक्ति प्रगटि किहिं भाय॥
हिरनकस्यप निज पुत्र सौं, क्यूं किय बैर रिसाय॥७२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(हिरण्याक्ष का वध होने पर हिरण्यकसिपु का अपनी माता और कुटुम्बियों को समझाना)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा - नारद कहत बराह प्रभु, किय हिरनाछ संहार॥
हिरनकस्यप उर सुनि इहै, हुव रिस सोक अपार॥ १ ॥
घूमन लाग्यौ क्रोध करि, काटत अपनैं हौठ॥
प्रजुरत नैंत्रन बिच अगनि, बिकल दैत्य मति ठौठ॥ २ ॥
द्रिष्टि भयंकर किय असुर, भौंह गई चढि ऊंच॥
लै त्रिसूल कर बचन अैं, बोलै बिना पहूंच॥ ३ ॥
हे सब दानव दैत्यगन, हे त्रियछी सत बाहु॥
हे सम्बर हे नमुचि मो, सब जग बिची सराहु॥ ४॥
हे इल्वल हैग्रीव हे, सकुनि बिप्रचित्तिहिं पाक॥
हे पुलोम म्है कहत सौ, मानहुँ म्हैरै वाक॥ ५ ॥
मरवायौ है भ्रात मो, सुरनि बिस्नु कै हाथ॥
अरु सुभाव है बिस्नु कौ, अैसौ ही बिष्यात॥ ६ ॥
तनक करै सेवा कोउ, ह्वै ताही की वौर॥
उन्हकौं और सुभाव यक, धार्यौ रूप करौर॥ ७ ॥
तनक करै सेवा कोउ, आप करै तिहँ सैव॥
बालक समहिं है बुधि सौ, थिर नहिं रहत सभैव॥ ८ ॥
उन्हकौं काटूं कंठ म्हैं, लै त्रिसूल मो बंक॥
लोही सौं मो भ्रात कौ, तर्पन करौं निसंक॥ ९ ॥
बिस्नुहिं मारौं तब सकल, सुर आपुहिं मरि जांहिं॥
ज्यूं जड काटै बृछ की, सबहिं डार सूकांहिं॥ १० ॥
पैं जब तांई बिस्नु कौं, म्है मारौं निरधार॥
तबलौं तुम्ह सब प्रिथ्वी मैं, जाहुं सिपाह अपार॥ ११ ॥
द्विज छित्री जिग्यदान तप, करत पढत है बेद॥
तिन्हकौं डारौं मारि तुम्ह, मति कछु पूछि निषेद॥ १२ ॥
जिग्य क्रिया द्विज सुर पितर, रिषि प्रांनी सब और॥
धर्म जुक्त इन सबन कैं, पालक बिस्नु सुतौर॥ १३ ॥
जहँ जहँ द्विज बेद गावै, आश्रय क्रिपा सुढार॥
तिन्ह तिन्ह दैसन कौं अगनि, लाय देहुँ करिबार॥ १४ ॥
हिरनकस्यप की सब असुर, अैसी आग्यां पाय॥
लागै देसनि दैन दुष, दांनु दैत्य क्रुर भाय॥ १५ ॥

ग्राम षरिक पुर बाग अरु, आश्रम छैत्र उद्यान॥
नगर रु ग्वालनहुँ कै सब, पुनि जु गांव करसांन॥१६॥
सब इन्ह ठौंरन कौं असुर, जारत भयै निदांन॥
धरिकैं मन उछाहूं अति, करि करि बल अप्रमांन॥१७॥
दरबाजै गढ कौट कौं, ढाहन लगैं अनेक॥
केउ फरसा लै बृछिन कुं, काटत बिना बिबेक॥१८॥
कियौ उपद्रव यौं जबै, दैत्यनि प्रथवी मांहिं॥
तबै देवता छिपि गयै, जहँ तहँ डरि भहरांहिं॥१९॥
हिरन कसिप निज भ्रात कौं, दैत भयौ जलदांन॥
भतीजांन कौं करत भौ, समाधांन जुत ग्यांन॥२०॥
संबर सकुनि भुत संतापन, और बृक महानाभ॥
उतकच धृष्टि स्मश्रुहरि, कालनाभ गुनगाभ॥२१॥
इतै भतीजा माता दिति, भानु भ्रात की नारि॥
हिरनकस्यप दे तौ भयौ, इनकौं ग्यांन सुढारि॥२२॥

॥ हिरण्यकसिपु रुवाच ॥

हे माता हे भ्रात की, बधू भतीज बिचार॥
सोच कछू हिरनाछि कौं, करहुं न किहूं प्रकार॥२३॥
सूरबीर जै कौ बडै, तिन्हकौं इहै बिचार॥
सत्रुहीं सामुहै मृत्यु निज, चाहत है निरधार॥२४॥
हौत अैक है कर्म बस, प्रांनी सब जगमांहिं॥
अरु फिरि औसर पाय कैं, न्यारै हूं ह्वै जांहिं॥२५॥
अैसौं है प्रांनीन कौं, मिलिबौ जग बिष्यात॥
ज्यूं नर पनघट येकठै, ह्वै न्यारै ह्वै जात॥२६॥
सुद्ध सर्ब व्यापक जुदौ, आत्मा है अबिनास॥
सब कछु जांनत प्रकृति करि, धारत रूप सभास॥२७॥
ज्यूं जल बहबै मैं हलत, तरु प्रतिबिंब लषाय॥
अरु द्रिग भ्रमनैं मैं प्रथ्वी, भ्रमत हिसी दरसाय॥२८॥
अैसैं माया गुनन करि, मन मूरष जु भ्रमांहिं॥
तिहिं सतसंगति दोष तैं, आपहिं आत्म गनांहिं॥२९॥
सुष संजोग बियोग दुष, प्रियहुं अप्रिय उनमांन॥
उतपति चिंता सोक नास, अबिबेक स्मृति अग्यांन॥३०॥
अै मनहीं कैं संग सौं, आत्महिं प्रापति होय॥
इहां अैक इतिहास म्हैं, कहूं सुनौं चित गोय॥३१॥
हुतौ उसीनर देस कौं, सुजग्य नांम नृप यैक॥
जाकौ सत्रुननि जुद्ध मैं, मार्यौ गहि बल टैक॥३२॥

पर्यौ देषिकैं षेत मैं, अस्त्री भाई बंध॥
पास आय रौवत भयै, उरझैं झूठ सबंध॥३३॥
कवच रतन मय नृपति कौ, तुटि भूषन बिषराय॥
तीर हृदै मैं लगि रहै, लौही सौं लपटाय॥३४॥
कैस बिषरि द्रिग फटि रहै, परि आनन परि धूर॥
भुजा कटी अंग अंग मैं, लागै घाव सपूर॥३५॥
अैसैं नृपकौं लषि भई, रांनी दुषित निदांन॥
छाती पीटत रोवती, परी नृपति पग आंन॥३६॥
अंसु धार कुच कुंकुमहिं, मिलि परि नृप पग ठौर॥
रांनी भूषन दूर करि, किय बिलाप दुष तौर॥३७॥
हे राजा हे बिधाता, निरदय महा बिसाल॥
जिन तेरी अैसी दसा, कीनी है बैहाल॥३८॥
तू सबकौ पालक रह्यौ, अब तुहि मृतक निहारि॥
दुषित होत है सकल जन, चलत न कछू बिचारि॥३९॥
यौं बिलाप तिय करत नृप, तनहिं हनन नहिं देत॥
सूर्ज अस्त होबै लग्यौ, अस्त्री बिकल अचेत॥४०॥
सुनि बिलाप उन्ह तियन कौ, जम बालक तन धारि॥
आयौ उन अस्त्रीन पैं, बोल्यौ बचन बिचारि॥४१॥

॥ जम उबाच ॥

अै अस्त्री मोसौं बडी, है जु अवसथा मांहिं॥
पैं उन्हकौं अग्यांन तम, अजहूँ मिटयौ नांहिं॥४२॥
जहँ तैं आयौ है मनुष, बहीं ठौर फिरि जांहिं॥
ताकौं सोच बृथा करत, नर अग्यांनि कहांहिं॥४३॥
अरु जांनत है हम्हहुं मरि, जैहैं जियहैं नांहिं॥
निज रछा नाहिं करि सकत, पर चिन्ताहिं सरसांहिं॥४४॥
इन्हतैं तौ हम्हहीं भलैं, मात पितहिं तजि दीन॥
तऊ सोच नहिं करत हैं, बृत्ति न चित्त तालीन॥४५॥
हम्हकौं भिडहा सिंघ कोउ, षाय जात है नांहिं॥
सोइ प्रभु रछा करत हैं, जिन कियै गर्भहिं मांहिं॥४६॥
उतपति पालन प्रलय नित, करत सदा भगवांन॥
तिहिं षेलन कौं षिलौना, है इह सकल जिहांन॥४७॥
वही दंड दाता बही, पालन रचन समर्थ॥
वा प्रभु बिन संसार बिच, है सब झूठै अर्थ॥४८॥
बसतु राहहूं की गिरी, जो राषै भगवांन॥
तौ ताकौं क्यूं हूं कोउ, लै नहिं सकै निदांन॥४९॥

अरु जो प्रभु जा बसतु कौ, राष्यौ चाहै नांहिं॥
तौ घर मैं बहु जतन सौं, धरीहूं न ठहरांहिं॥५०॥
बनहूं मैं प्रभु क्रपा तैं, प्रांनी जियैं अनाथ॥
अरु जीवै नहिं जतन तैं, हत्यौ चहै जिहँ नाथ॥५१॥
जीवहि हौत सरीर सौं, कर्मन कैं अनुसार॥
आत्मा न्यारौ सबनि तैं, बंधन गुनन मंझार॥५२॥
अरु या आत्मा तैं जुदौ, है सरीर निरधार॥
मनुष बसत ज्यूं गेह मैं, पैं घर जुदै प्रकार॥५३॥
हौत बुदबुदा नीर तैं, माटी तैं घट होत॥
अरु सुबर्न तैं आभरण, लहत अनंत उदोत॥५४॥
फेरि नष्ट ह्वै जात हैं, कबहूं औसर पाय॥
पंचभूत तन नष्ट ह्वै, अैसैं ही अनुभाय॥५५॥
ताहि आपनौं करि गिनत, अग्यांनी जन कौय॥
अरु अपनौं मांनत नांहिं, ग्यांन भलौ जिहिं हौय॥५६॥
काष्ट मांहिं जइसैं अगनि, बिबिधि भांति दरसाय॥
प्रांन आदि तन मैं पवन, ज्यूं बहु नांम कहाय॥५७॥
जइसैं नभ सरबत्रहिं पैं, लिप्त नांहि किहूं ठौर॥
ज्यौं आत्मा सब रूप पैं, सबसौं न्यारौ तौर॥५८॥
तुम्ह मूरष हौ कौनुंकौं, सोच करत बिललाय॥
कौ बिलाप तुम्हरौ सुनत, कौ दै ज्वाब पछाय॥५९॥
सुनैं जबाब दै सुतौ है, आत्मा ही निरधार॥
सौ न्यारौ तन प्रांन तैं, किहुंन लष्यौ किहुं बार॥६०॥
तुम्ह बिलाप करि कौनुं कौ, सुनवत हौ हे नारि॥
क्यूं न आपनैं चित्तहुं मैं, देषहुं सोच बिचारि॥६१॥
आत्मा जबलौं देह मैं, मांनत है अहंकार॥
तबलौं बंधन होत हैं, आत्मा कौं बहुबार॥६२॥
अरु जब आत्मा देत हैं, छोडि भैद अहंकार॥
तबै मुक्ति ह्वै जात है, छुटि बंधन बिसतार॥६३॥
जबलौं आत्मा है सही, लिंग सरीर संजुक्त॥
तबलौं बंधन कर्म लगि, होत नांहिंनै मुक्त॥६४॥
सुपन मनोरथ झूठ ज्यौं, जगकै सुष दुष आंहिं॥
अग्यांनी जन साच सौं, मांनत निज मन मांहिं॥६५॥
ग्यांनी सोच न करत है, जग कै सुष दुष मांहिं॥
सोच करत अग्यांन सोइ, सिद्ध काज कछु नांहिं॥६६॥

इहां अैक हम्ह कहत हैं, तुम्हकौं कथा सुनाय॥
हे अस्त्री सब सुनहुँ सौ, आछै चित्तहुँ लगाय॥६७॥
अैक बधिक बन जायकैं, रोप्यौ जाल बिसाल॥
तांह कुलंगी जाल बिचि, परी जाय बैहाल॥६८॥
बंधी कुलंगी जाल मैं, लषि कुलिंग दुष पाय॥
अति सनेह सौं करत भौ, रूदन कुलिंग कुभाय॥६९॥
दया बिधाता ही तुव न, तू निर्दय सब भाय॥
अस्त्री मो अरधांग जिहिं, का करि हैं लै जाय॥७०॥
म्हैं या बिनु हे बिधाता, कहा करौं तन राषि॥
मोहूं कौं लै जाहु जग, कहि हैं रंडवा भापि॥७१॥
अरु छौटे छौटे बचा, पंषहूं आई नांहिं॥
तिन्हकौं पालन कौंनुं बिधि, हौं करिहौं इन ठांहिं॥७२॥
मंदभागी म्हैरे बचा, भयै माता करि हीन॥
घुर साला मैं चहंत वै, आंवन मात अधीन॥७३॥
बह कुलिंग अैसें करत, हौ बिलाप वहिं बार॥
वाहूंकौं सर सौं बधिक, हत्यौ काल अनुसार॥७४॥
तातैं तिय सौं बरस लौं, जो तुम्ह करहुँ बिलाप॥
तौहू पति पैहौं नांहिं, तुम्ह फिरि क्यूंहूं आप॥७५॥

॥ हिरण्यकसिपुरुबाच॥

हिरनकसिपु दिति सौं कहत, सुनि बालक कैं बैंन॥
सब अस्त्री जांनत भई, जगत अनित्य सुषैंन॥७६॥
जम तौ इतनौं बचन कहि, ह्वै गयौ अंतरध्यांन॥
तिय बिलाप तजि नृपति तन, दाहन कियौ निदांन॥७७॥
तातैं हे दिति मात या, जक्त मद्धि निरधार॥
अपन परायौ कौ नांहिं, निर्फल सोच प्रकार॥७८॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत जुधिष्टिरहिं, हिरनकस्यप कैं बैंन॥
सुनि दिति टार्यौ सोक धरि, तत्व भेदचित अैंन॥७९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर प्राप्ति)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा - नारद कहत बिचार किय, हिरन कस्यपु मनमांहिं ॥
म्हैरो ही इक छत्रहि ह्वै, राज भलैं भुवठांहिं ॥ १ ॥
मोहि कोउ जीत न सकै, मृत्यु न म्हैरी हौय ॥
सत्रु कौउ नहिं सहि सकै, इह मनोर्थ चित गौय ॥ २ ॥
मंदर परबत कैं बिषै, कीनी तपस्या जाय ॥
भुजा उर्द्ध कौं करत भौ, नभ दिस द्रिष्टि लगाय ॥ ३ ॥
प्रिथवी पैं ठाढौ रह्यौ, पग अंगुष्ट कै जोर ॥
निज तनकी सुधि भूलि कैं, भयौ दसा जड तौर ॥ ४ ॥
हिरन कस्यपु सौभित भयौ, जटानि करि या भांति ॥
प्रलै काल कौं रबि मनौं, किरननि जुत दरसांति ॥ ५ ॥
लग्यौ तपस्या करन कौं, हिरनकसिपु जिहिं बार ॥
निज निज लौकनि मधि बसै, सुरगन आप सुढार ॥ ६ ॥
हिरनकसिपु कै सीस तैं, जोग सक्ति अनुसार ॥
प्रगट अगनि संतप्त हुव, सकल लौक निरधार ॥ ७ ॥
नदी सिंधु व्याकुल भये, बहि तप तेज प्रभाय ॥
दीप नगनि संजुत प्रथ्वी, कांपन लगी क्रुंदाय ॥ ८ ॥
ग्रह तारा टूटन लगै, दिसनि अगनि लपटाय ॥
बिकल हौहि सब देवता, बिधि तैं बिनयै जाय ॥ ९ ॥
देव द्रेव हे जगत पति, हिरनकसिपु तप दुर्ग ॥
तातैं हुव संतप्त हम्ह, रहि न सकत बिच सुर्ग ॥ १० ॥
तातैं अैसौं जतन कछु, कीजै आपु बिचार ॥
जातौं तपस्या तैं बहै, असुर उठै या बार ॥ ११ ॥
नहिं तौ अै सब लोक ह्वै, जैहैं नष्ट निदांन ॥
जो मनोर्थ करि तप वहै, करत सु सुनौं सुजांन ॥ १२ ॥
उन्ह बिचार इहि कियकि बिधि, बल तप योग समाधि ॥
श्रृज्यौं सकल जग सबन तैं, उच्चबस्तु ह्वै बाधि ॥ १३ ॥
तातैं म्है हूं बहु जनम, तप करि सृष्टि बनांवुँ ॥
बिधि तैं उलटी सृष्टि अरु, फल अघ पुन्य चलांवुँ ॥ १४ ॥
है अनित्य ध्रुव लोक तौ, म्हैं ह्वै हौं मुष च्यार ॥
अैसौं करत बिचार बह, सुनियै बुधिहुँ उदार ॥ १५ ॥
तातैं जो कछु उचित है, करियै सोइ बिचार ॥
तुम्ह पालक गौ द्विजन कैं, सदा धर्म रषवार ॥ १६ ॥

इहै सुरन कौं बचन सुनि, लै भृगु दछि निज संग॥
हिरनकस्यप कैं सथल बिधि, आयैहुँ बुधि उतंग॥१७॥
हिरनकसिपु तन पैं जमीं, तृण बांबी उगि बृछि॥
मांस रुधिर तुच मेद गइ, चैंटी षाय प्रतछि॥१८॥
तपस्या सौं संतप्त सब, लोकन करत लषाय॥
ज्यौं बादर बिच रबि ढक्यौ, त्यूं त्रिन बांबी छाय॥१९॥
ऐसौं लषि बोलत भयै, हंसिकै आनन च्यार॥

॥ श्री ब्रह्मौवाच॥

हे कस्यप सुत पूर्न तप, तेरौ हुव निरधार॥२०॥
अब उठि ठाडौ हौहुँ बर, मांगि चाहु अनुसार॥
बाही बर कौ देहुँगौ, जो तेरै निरधार॥२१॥
तेरौ धीरज हम्ह लष्यौ, जंतु गयै तनषाय॥
प्रांन हाड मैं रहि गयै, तप बल कैं अनुभाय॥२२॥
ऐसीं तपस्या किहुं न किय, अरु कौ करिहैं नांहिं॥
बिंष्य बरस सौं जल बिनां, रहे प्रांन ठहरांहिं॥२३॥
तौ तपसौं म्है बसि भयौ, बर मांगहुँ जो चांहिं॥
म्हैरो दरसन भयौ सो, निरफल ह्वै है नांहिं॥२४॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि यौं जबै, बिधि कहि बचन रसाल॥
दिब्यक मंडल तैं सुबिधि, जल छींट्यौ ततकाल॥२५॥
तबै बज्र सम देह दृढ, तेज सुबर्न समांन॥
ह्वै गयौ वांकै अंग कौ, लहि बिधि क्रपा निदांन॥२६॥
त्रिन बांबी मधि तैं निकसि, बाहरि ठाढौ आय॥
बिधि कौं दरसन बीच नभ, करत भयौ सुषपाय॥२७॥
बिधि कौं कियौं प्रनांम कर, जोरि अस्तुति उच्चारि॥
गदगद कंठ रोमांच तन, ह्वै बोल्यौ या ढारि॥२८॥

॥ हिरण्यकस्यपुरुबाच॥

प्रलै काल कै समैं मैं, अग्यांन अंधेर मांहिं॥
पर्यौ रह्यौ इहि जगत तिहि, जिन किय प्रगट अथांहिं॥२९॥
करत उपज पालन प्रलै, तिहुँ गुन करि संसार॥
ऐसैं तुम्ह हौं म्हैं तिहँ, करत प्रनांम सुढार॥३०॥
आदि बीज तुम्ह सबन कै, मूर्ति ग्यांन बिग्यांन॥
मन बुधि इंद्री प्रांन करि, प्रगटै कमल सथांन॥३१॥
थावर जंगम कै प्रभू, पति प्रजांन कै आप॥
चित मन बुधि इंद्रीन कै, पति तुम्हहीं जु सथाप॥३२॥

पंच महाभूतहुँ तिहूं, गुन कै पति मुष च्यार॥
बेद रूप तुम्ह होय जिग्य, कीनैं प्रगट सुढार॥ ३३ ॥
अंतरजांमी रूप तुम्ह, तुम्ह ह्वै काल सरूप॥
सबकी आर्बल हरत हौ, सबकै आत्म अनूप॥ ३४ ॥
निर्बिकार हौ तुम्ह सदा, बिद्या कला तुम्ह अंग॥
कारज कारण तुम्हहिं मैं, स्थावर जंगम संग॥ ३५ ॥
हिरण्यगर्भ माया परैं, महत सबनि तैं बंग॥
इहै सकल ब्रह्मांड है, तुम्हही देह अभंग॥ ३६ ॥
तासौं इंद्री प्रांन मन, करत बिषय कैं भोग॥
तुम्ह जु करतहौ तुम्हहिं तैं, ब्यापत जग आरोग॥ ३७ ॥
बिद्या माया सक्ति जुक्त, तुम्हहौ तुम्हहिं प्रनांम॥
जो तुम्ह मुहि बर देहुँ तौ, इह दीजै सुष धांम॥ ३८ ॥
तुम्ह तैं उपजै जीव जे, तिन तैं मो मृति ह्वैन॥
बाहर भीतर रात दिन, अरु नभ प्रिथवी मैंन॥ ३९ ॥
सस्त्र मनुष बन जंतु पुनि, प्रांनवंत बिन प्रांन॥
सर्प असुर सुर इनहुं सूं, नांहिंन मरौं समांन॥ ४० ॥
रहै न म्हैरे सत्रु कोउ, म्है इक हौंहुँ नृपाल॥
ज्यौं प्रताप अति रावरौ, घटत नांहिं किहुँ काल॥ ४१ ॥
लौक पाल अरु सुरन मैं, ज्यूं तुम्ह श्रेष्ठ सुभाय॥
तैसैं म्हैं हूं हौंहुँ इह, बर दीजै सुषदाय॥ ४२ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतीयोऽध्याय: ॥ ३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्याय: ॥

(हिरण्यकशिपु के अत्याचार और प्रह्लाद जी के गुणों का वर्णन)

॥ श्री नारद उबाच॥

दोहा- नारद जू कहत कि हिरन, कस्यपु जबै या भाय॥
बर मांग्यौ जब चतुर मुष, यौं बोलै मुसकाय॥ १ ॥

॥ ब्रह्मोबाच॥

हे सुत तैं दुर्ल्लभ महा, वर मांग्यौ या बार॥
पैं निश्चै म्हैं बर दियौ, तौ ईछा अनुसार॥ २ ॥
ऐसैं बर दीनौं जबै, हिरनकसिपु मुद मांनि॥
ब्रह्मा की पूजा करी, बउत नम्रता ठांनिं॥ ३ ॥

प्रजापति तिन कीनि अस्तुति, बिधि गवनैं निज लोक॥
हिरन कस्यपु बर पाय कैं, मेट्यौ मन कौं सोक॥ ४॥
पायौ दिव्य सरीर बर, असुर धारि अभिमांन॥
द्वैष करत भौ प्रभू सौं, भ्रात बैर उर आंन॥ ५॥
सकल दिसा अरु लोक सब, जीति असुर बलबांन॥
लौक तैज इंद्रादिकनि, कैं लिय छीन निदांन॥ ६॥
सुर नर असुर गंधर्ब रिषि, पितर गरुड मनु नाग॥
सिद्ध चारन जछ रछ सबै, बिद्याधर जू अथाग॥ ७॥
जीति सकल जोरावरनि, तिहूं लौक बसि कीन॥
हौय महामद मत्त षल, प्रभु द्वैषी पद लीन॥ ८॥
इंद्र लोक अति सुभग तहँ, बासहि गेह रसाल॥
रचै बिस्वकर्मा जु भलै, तिनकी सोभ बिसाल॥ ९॥
हिरन कस्यपु तहँ जायकैं, बैठ्यौ धरि अभिमांन॥
बडौ राज लछमी बडी, लहि आसुर बहि थांन॥ १०॥
जहँ सीढी मूंगांन की, मरकत मनि की भूमि॥
फटिक मनिन कै गेह बनि, सुभग सोभ की धूमि॥ ११॥
थंभा मनि बैदूर्ज कै, चंदवा तनै बिचित्र॥
पदमराग मनि कै बिछै, सिंघासन गृह अत्र॥ १२॥
पलिंग बिछै पय फेन सै, रचि रचना मोतीन॥
फिरत अपसरा बजत तिन, घुघरू सब्द नबीन॥ १३॥
रतन थली मैं अपछरा, भलौ अंग पेषंत॥
भलै दांत अरु मुष भलै, झुकि झुकि कै देषंत॥ १४॥
अैसैं मंदिर इंद्र कै, तिन्ह मधि भलै प्रकार॥
हिरनकस्यपु बलबंत अति, लागौ करन बिहार॥ १५॥
सुरगन पद पूजत भयै, लागै करन प्रनांम॥
सुरा पियै मदमत्तहिं षल, बैठ्यौ अति अघ धांम॥ १६॥
ब्रह्मा बिस्नु महेस तिहूँ, बाकै बस हुव नांहिं॥
रहत भयै सब और सुर, असुर सेंवहीं मांहिं॥ १७॥
बिस्वाबसु रु तुंबह सहित, हम्हहूं वाकै पास॥
नारद कहत कि गावते, बहि गुन करि सप्रकास॥ १८॥
सिध चारन गंधर्ब रिषि, अस्तुति कीन कर जोरि॥
अरु बिद्याधर जु अपसरा, नृतत रु गावत कोरि॥ १९॥
हिरनकस्यपुहिं लेत भौ, जिग्य भाग बहिं बार॥
बिनु बाह्यौ ही अंन भुव, बिच हुव प्रगट अपार॥ २०॥

स्वर्ग अनेकनि कांमना, दैत भयौ भय पाय॥
अरु सुंदर रचना भई, बिच आकास लसाय॥२१॥
पय घृत मदिरा सहित दधि, अमृत नीरहि आदि॥
बहत भई इन रसन की, सरिता छिन छिन जादि॥२२॥
प्रगटै रतन समुद्र तैं, निति फल दल जुत बृच्छि॥
किय बिहार लायक नगनि, निज कंदरा प्रतच्छि॥२३॥
हिरनकस्यपु कौ राज भौ, अैसी भांति सथापु॥
लौकपाल के गुन सकल, धरै अैकलै आपु॥२४॥
बिषै भोग तैं त्रिपति नहिं, भौ त्रिस्नां बढि ज्याद॥
भयौ राजमद मत्तहुँ दिय, छाँडि सास्त्र मरज्याद॥२५॥
यौं बहु दिन बिति सुर जबैं, असुर दंड भय पाय॥
सरन जाय भगवांन कैं, बोलै बचन सुनाय॥२६॥
वा दिसकौं परनांम है, बसत जांह भगवांन॥
जा प्रभु कौं ह्वै प्राप्त फिरि, आवै नहिं जग थांन॥२७॥
करत भयै या बिधि अस्तुति, सुर करि भौजन वायु॥
तिनकौं नभ बांनी भई, घन समांन सुषदायु॥२८॥
अहौ अमरगन मति डरहुँ, ह्वै हैं तुव कल्यांन॥
मो दरसन कल्यांन कौ, दाता सदा निदांन॥२९॥
हिरनकस्यपु की दुष्टता, म्हैं जांनत निरधार॥
अब थौरेहीं दिननि मैं, करिहौं दुष्टसंघार॥३०॥
बेद गाय द्विज साधु सुर, तैं मो तैं किहुँ भाय॥
द्वैष करै सौ बेगहीं, मरै महादुष्ष पाय॥३१॥
सांत दांत निर्दोष सुत, है याकै प्रह्लाद॥
जांसौं करिहै द्वैष जब, मारौं धरि अहलाद॥३२॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद जू कहत कि अमर, सुनि अैसिय हरि बांनि॥
करि प्रनांम आवत भयै, निज निज सकल सथांन॥३३॥
हिरण्यकस्यपु कै च्यारि सुत, हुव तामैं प्रहलाद॥
भयौ बडौ गुनवंत हरि, दास दास्य अप्रमाद॥३४॥
भलौं सुभाव रु जितेन्द्रिय, सुहृद सुबक्ता जु सति॥
साधु द्विजन की सेव मैं, रहत भलैं ही विनति॥३५॥
प्रिय सबही प्रांनीनकौं, पितु समपालक दीन॥
निज सम वारै कौं गनै, भ्रात समांन प्रवीन॥३६॥

गुरकौं ईस्वर करि गनैं, रहित कांमनां चित्त॥
सुष दुष सब संसार कै, जांनत सदा अनित्त॥३७॥
विद्या धन कुल रूप इनी, बस्तुन कौं नहिं गर्ब॥
अरु निज इंद्री बस करी, जांमैं सुभ गुन सर्ब॥३८॥
बडे पंडित जु करत हैं, बरनन गुन प्रहलाद॥
सब गुन नित्य बिराजहीं, ज्यौं हरि जग अहलाद॥३९॥
कहत देवताहू इहै, श्रेष्ठ साधु प्रहलाद॥
जिहिं सनेह प्रभु सौं अधिक, राषन धर्म म्रजाद॥४०॥
औरन कछु क्रीडा करै, बालपनैं हूं मांहिं॥
मन लगाय प्रभु सौं रह्यौ, हौय कृस्न मय चांहिं॥४१॥
जैंवत बैठत फिरत जल, पीवत बौलत बार॥
हरिही कौ जिहिं ध्यांन है, सुधि न भैदि संसार॥४२॥
कबहू हरिकौ ध्यांन करि, रोवै प्रेम प्रभाय॥
कबहुँ हंसै गावै कबहुँ, कबहुँ तन्मय ह्वै जाय॥४३॥
नाद करै कबहूं कबहुँ, निर्तत कुंवर सुचित्त॥
गदगद कंठ रोमांच तन, प्रभू प्रेम मैंमत्त॥४४॥
साधु संग हरि चरन सौं, जाकै उपजी भक्ति॥
ताही मैं आनंद जिन, मान्यौ ह्वै अनुरक्त॥४५॥
अरु अपनौं मन बसि कियौ, ऐसौ साध सपूत॥
तासौं कीनौं द्वेष अति, हिरण्यकस्यपु षलधूत॥४६॥

॥ जुधिष्ठिर उबाच॥

पूछत राजा जुधिष्ठिर, अैसौ साध सुभाव॥
जो सुत करिकैं द्वेष दुष, दयौ दैत्य किहँ न्याव॥४७॥
अधम पुत्रहूं जु कौ पिता, हितू सौं सिछा देत॥
नहिं चाहत वाकौ बुरौ, षिजत भलैं कै हेत॥४८॥
अरु वइसै प्रहलाद सै, सुत सूं कौ अग्यांन॥
द्वैष करै संदेह मो, मेटौ इहै सुजांन॥४९॥
पिता पुत्र सौं बैर कियै, अैसौ जिहिं अनुसार॥
आपहिं मार्यौ गयौ सौ, बड़ अचिरज निरधार॥५०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

(हिरण्यकशिपु द्वारा प्रहलाद जी के वध का प्रयत्न)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा - नारद कहत कि दयत गुर, सुक्राचारि जू नांम॥
संड अरु अमर्क पुत्र जिहिं, बिद्या मधि जु अभिरांम॥ १ ॥
हिरनकसिपु कै गेह कैं, बै दौ निकट बसांहिं॥
असुर बाल प्रहलाद जुत, लहि नृप हुँकम पढांहिं॥ २ ॥
गुर जु पढावै सौ पढै, सुनै भलैं उनमांन॥
पैं बह पढनौं कुंवर कौं, लगत न भलौ निदांन॥ ३ ॥
अैक दिनां प्रहलाद कौ, हिरण्यकसिपु लै गौद॥
पूछ्यौ सुत जान्यौ भलै, सो कहियैं जुत मौद॥ ४ ॥

॥ प्रहलाद उबाच ॥

इहि सुनिकैं प्रहलाद जू, बोलै बचन रसाल॥
या जग मैं प्रांनी रहे, लागि बिषै कैं ष्याल॥ ५ ॥
जिहिं झूठै जंजाल मैं, मनुष दुषी बेहाल॥
तातैं नर्क समांन गृह, है निश्चै सब काल॥ ६ ॥
सो घर तजि बन जाय हरि, आश्रय रहै सुभाय॥
हम्ह जांनत या बात कौं, भली महा सुषदाय॥ ७ ॥

॥ श्री नारद उबाच ॥

हिरण्यकस्यपु इहि बात सुनि, हसि बोल्यौ सतराय॥
बहकायैं अरि जनन कैं, बहकि बाल बुधि जाय॥ ८ ॥
हे द्विज तुम्ह अब कुँवर कौं, सिछाबलहिं अनुसार॥
याकौं अैसै जतन सौं, पढवहु भलै बिचार॥ ९ ॥
इहि सुनिकैं गुर पुत्र जबै, प्रहलादहिं लै आय॥
अहौ पुत्र प्रहलाद इहै, बात हम्हहिं समझाय॥ १० ॥
तौ बुधि सब बालकन तैं, उलटी परत लषाय॥
सौ किहिकैं कीनैं भई, कहियै भेद सुनाय॥ ११ ॥

॥ प्रहलाद उबाच ॥

कहत भयै प्रहलाद प्रभु, माया मोहित हौय॥
औरहूं म्हैं औरहुँ तुम्ह, तिन्हकैं इह बुधि जौय॥ १२ ॥
जा प्रभु कौं परनांम जिहिं, प्रभू क्रपा अनुभाय॥
और और म्हैं और हूं, इहै भेद बुधि जाय॥ १३ ॥
प्रभु परमातम अैक है, मांनत भेद अग्यांन॥
लहत न ब्रह्मादिकहुँ हरि, चरित पार उनमांन॥ १४ ॥

बही प्रभू पूरन क्रिपा, करि अपनाय सु लीन॥
सकल असुर बालकन तैं, मुहि न्यारी बुधि दीन॥१५॥
चिंबुक पथर संजोग सौं, जइसैं लौह भ्रमाय॥
किहूं पुन्य तैं निकट मो, है हरि सब सुषदाय॥१६॥
तातैं अैसों चित्त इहै, म्हैरो भयौ सुढार॥

॥ श्री नारद उबाच॥

इतनौं कहि प्रहलाद चुप, हौहि रहै उहिंबार॥१७॥
तब ब्राह्मन अति क्रोध करि, बोलै या अनुसार॥
करनहार अपजस इहै, कुल मैं उपजि अंगार॥१८॥
बालक महा द्रुबुद्धि है, याकौ इहै इलाज॥
ल्याव कौरडा मारियैं, दंड जोग्यता आज॥१९॥
चंदन कौ बन है इहै, दयत बंस निरधार॥
तामैं इह कुबुधि बबूर, हुव प्रहलाद कुमार॥२०॥
तरु चंदन है दैत्य तिहिं, काटन बिस्नु कुठार॥
ताकै डांडी ठौर इहि, बालक भयौ कुढार॥२१॥
प्रहलादहिं गुर पुत्र तांह, अैसी बिधि डरपाय॥
नीति सास्त्र सिषवत भयै, बिबिधि भेद समझाय॥२२॥
सामदाम दंड भेद अै, चहूं उपाय सिषाय॥
जननी पैं प्रहलाद कौं, लै आयै सुषपाय॥२३॥
पहरायै माता तबै, भूषन बस्त्र सुढार॥
फेरि पिता पैं लै गयै, जुत आनंद कुमार॥२४॥
करत भयै प्रहलाद पितु, चरनन कौ परनांम॥
आसिरबाद दियौ पिता, होय मुदित चित्त ठांम॥२५॥
गोदी लै सिर सूंघि कै, आनंद असुवनि सीचि॥
हिरण्यकसिपु बोल्यौ बिहसि, सकल सभा कैं बीचि॥२६॥

॥ हिरण्यकस्यप रुबाच॥

अहौ पुत्र प्रहलाद जु तुम्ह, इतै दिनन कैं मांहिं॥
गुर सौं उत्तम जो पढयौ, सौ कहियै या ठांहिं॥२७॥

॥ प्रहलाद उबाच॥

इहि सुनिकैं प्रहलाद जू, बोलै बचन रसाल॥
बिस्नु चरितननि कौ करैं, श्रवन भलैं सब काल॥२८॥
उन्हीं कौं कीरतन करैं, सुमरैं बेइ चरित्र॥
अर्चन बंदन दास्य सष्य, सेवन चरन पवित्र॥२९॥
आत्म निवेदन जुक्त इह, नवधा भक्ति सुढार॥
चित्त लगाय प्रांनी करै, सौ पढनौं सुषसार॥३०॥

इहि सुनि बोल्यौ दैत्य गुर, पुत्रननि सौं करि रीस॥
तुम्ह बिप्रननि मैं अधम हौ, जांनैं बिस्वाबीस॥३१॥
तुम्ह म्हैरे या बालकहिं, अैसी बस्तु असार॥
क्यूं सिषई मान्यौ नांहिं, म्हैरौ डर निरधार॥३२॥
वा जें करत असाधु छल, तिहिं छल प्रगट सुहोत॥
जइसी बिधि पापीन कैं, करत जु रोग उदोत॥३३॥

॥ गुरु पुत्र उबाच॥

तब बोलै गुर पुत्र नृपहिं, किहुंकी सिषई बात॥
पुत्रहिं तुम्हरौ कहत नाहिं, मनकी कहि बतरात॥३४॥

॥ नारद उबाच॥

हिरण्यकसिपु इहि बात सुनि, सुत सौं कह्यौ रिसाय॥
बुरी बुद्धि गुर इह न दिय, तोहि कांह तैं आय॥३५॥

॥ प्रहलाद उबाच॥

कहत भयै प्रहलाद जू, जे गृह मैं आसक्त॥
जिन्ह इंद्री चंचल रहत, बिषैंन मैं अनुरक्त॥३६॥
तिन्हकी बुधि किहुँकैं कहैं, अरु निज मन अनुभाय॥
कबहूं हरि मैं लगत नहिं, निश्चल ह्वै ठहराय॥३७॥
जे बिषैंन मैं लगि रहै, प्रांनी दुष्ट कुपात॥
बेद मार्ग मैं बंधि चलै, कुल म्रजाद मैं जात॥३८॥
ज्यौं अंधरै कै संग लगि, चल्यौ अंधरौ जाय॥
तै हरि कौं जांनत नांहिं, मूरषता कै भाय॥३९॥
साधु चरन रज सीस पर, जबलौं राषै नांहिं॥
तबलौं हरि पद कँवल मैं, बुद्धि न थिर ठहरांहिं॥४०॥
अैसें जब प्रहलाद जू, बोलै बचन सुढारि॥
हिरण्यकस्यपु तब गोद तैं, रिसकरि दिय भुव डारि॥४१॥
नैत्र क्रोध सौं अरुन हुव, बोल्यौ या अनुसार॥
याहि हतौ हे दैत्य तुम्ह, काढन जोग्य कुमार॥४२॥
जिन्ह याकौ काका हत्यौ, इहि पद पूजत जास॥
दीस परत मन बचन करि, मनौं बिस्नु कौ दास॥४३॥
पांच बरस कौ बाल इह, तात मात दिय त्यागि॥
पैं न जांनियैं बिस्नु कौ, का करिहैं यौं लागि॥४४॥
हितू करता जो सत्रु है, तौ बही पुत्र समांन॥
जइसैं कडवी वौषदी, सुगुनहिं करैं निदांन॥४५॥
अरु सुतहिं ह्वै जो सत्रु तौ, जांनहु रोग समांन॥
ताहि दूरि ही कीजियै, भलौ न रंच निदांन॥४६॥

अैक अंग दुषदाय ह्वै, तौ जिहिं डारै काटि॥
जाकै काटे तैं जियैं, सकल देह सुष थाटि॥४७॥
भोजन बैठन सैंन मैं, हतौ जतन बहु यांहिं॥
पुत्ररूप इह सत्रुही है, और जांनियैं नांहिं॥४८॥
लियौं हाथ मैं सूल अरु, सोभित है कच लाल॥
महाभयंकर नैत्र मुष, तीछन दाढ कराल॥४९॥
अैसै दैत्य जु हुकम जब, हिरण्यकस्यपु कौ पाय॥
पापी सब सिर जौर ह्वै, बोलत भयै रिसाय॥५०॥
हतौ हतौ इहि बचन कहि, पापीजन उहिं बार॥
मर्म स्थल प्रहलाद कैं, करत भयै जु प्रहार॥५१॥
पारब्रह्म भगवांन मैं, लगियौ चित्त प्रहलाद॥
तातैं दैत्यन के भयै, सकल सस्त्र बरबाद॥५२॥
भली क्रिया नासतिक्य की, ज्यौं निरफल ह्वै जाय॥
जइसै सब निरफल भयै, दैत्य सस्त्र दुषदाय॥५३॥
हिरनिकस्यपु बहु जतन तब, किय मारन प्रहलाद॥
पैं क्यौंहूं मार न सक्यौ, हुव सहाय अंनाद॥५४॥
जंत्र मंत्र अहि दिगज विष, दैंनौं करनौं कैद॥
भोजन जल दैनौंनांहिं, मारन की जु उमैद॥५५॥
दैनौं जारि सु अग्नि मैं, दैनौं जलहिं बुडाय॥
नग तैं दैंनौं पटकि कैं, दै बिचि पवन उडाय॥५६॥
इन्हि जतनिनि हूं तैं सक्यौं, नहिं प्रहलादहिं मारि॥
हिरण्यकस्यपु चिंता भई, ह्वै कियै चित्त बिचारि॥५७॥
याहि कहै दुरबचन म्हैं, हतन जतन बहु कीन॥
पैं इह आपु प्रताप सौं, बचि रह्यौ बाल श्रीन॥५८॥
मो अरि बिस्नुनहिं भूलत न, इहि बालक किहुं बार॥
करि देषे बहु जतन पैं, स्वान पूंछ उनहार॥५९॥
याकौ बडौ प्रताप है, इह निरभै निरधार॥
निश्चै म्हैरी म्रत्यु है, याकैं बैर प्रकार॥६०॥
अैसैं चिंता करत लषि, गुर सुत ताही बार॥
यौं बोलै अैकांत मैं, धरि निज चित्तहिं बिचार॥६१॥
तुम्ह जीतै तिहुँ लौक तुव, बंक भौंह कैं हौंन॥
इंद्रादिक डरपत रहै, आपहि चिंता कौंन॥६२॥
बरुन पास सौं बांधिकैं, राषि छाँडियै याहि॥
श्रुक्राचारिज आय बुद्धि, करिहैं भली सुचाहि॥६३॥

हिरण्यकस्यपु बोल्यौ बहुरि, तुम्ह निज घर लैजाहुँ॥
धर्म सकल रांजान कै, याकौं भलैं पढाहुँ॥६४॥
इह सुनिकैं प्रहलाद कौं, अपनैं घर लै आय॥
धर्म अर्थ अरु कांम कौ, किय उपदेस सुभाय॥६५॥
प्रहलादहिं उपदेस बह, भलौ लग्यौ जब नांहिं॥
तब गुरहूं लागत भयै, निज गृह कारज मांहिं॥६६॥
तबै असुर बालकन कौं, अपनैं निकट बुलाय॥
करत भयै उपदेस इहि, प्रहलाद जु सुषदाय॥६७॥
दुष्ट बुद्धि न भल भई हुती, हुव न बिषै कौं संग॥
तातैं सब प्रहलाद पैं, बैठे बाल सुधंग॥६८॥
करत भयै प्रहलाद कौ, सेवनहिं चित्त लगाय॥
तब बोलै प्रहलाद जू, इनकौं बचन सुनाय॥६९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(प्रहलाद जी का असुर बालकों को उपदेश)

॥ प्रहलाद उबाच॥

दोहा - बालपनैं हीं तैं करत, धर्म भागवत चाहि॥
मनुष जनम दुर्ल्लभ महा, अरु अति चंचल आहि॥१॥
चरन सरन भगवांन कैं, रहैं भलैं चित लाय॥
बिस्व ईस प्रांनीन कै, प्रिय आत्मा सुषदाय॥२॥
सुष बिषैंन कौ कर्म वस, हौत जनम सब मांहिं॥
ज्यौं दुष आवत जतन बिन, त्यौंही सुष सरसांहिं॥३॥
तातैं जतन करैं नांहिं, प्राप्ति बिषै सुष हौंन॥
इन्ह जतनन कै किये तैं, ब्रथा जनम निज षौंन॥४॥
अरु हरिकै पद कमल इन, जतनन लहै न जात॥
उन चरनन बिनु बस्तु सबै, जगत बीच उतपात॥५॥
होय न तन असमर्थ जबै, तांई तजि सब काज॥
भय रूपी संसार मैं, कीजै मुक्ति इलाज॥६॥
है आयुर्बल मनुष की, सौ बरषन उनमांन॥
तामैं आधी जात है, सोवन बीच निदांन॥७॥

बाल बयस क्रीडांन मैं, बीस बरष बिति जांहिं॥
बीस बरष पुनि बीतही, अति बृद्धापन मांहिं॥ ८॥
कांम मोह गृह काज मैं, बाकी आर्बल जाय॥
अैसैं मानुष जनम नर, मूरष देत गमाय॥ ९॥
इहि प्रांनी नहिं जितेन्द्री, तातैं घर कै मांहिं॥
जब सनैह बंधि जाय तब, आपु न छूटि सकांहिं॥ १०॥
कोउ छुटाय सकै नांहिं, त्रिस्ना द्रब्य निदांन॥
बाणिक चोर सेवक सबै, धन पैं देत जु प्रांन॥ ११॥
अस्त्री संग न छूटि सकैं, आसा छुटै जु नांहिं॥
जन सुहृदन कै नेह मैं, फिरि द्रढ होय फसांहिं॥ १२॥
बचन बालकन केन मधि, प्रीत बढै अधिकाय॥
तब घर कौ छोडै कवन, मांनि महा सुषदाय॥ १३॥
सुत पुत्री भाई बहीन, माता पिता पसु बृत्य॥
सेवक सांमग्रीहुं सुभग, अैसी निज गृहथित्य॥ १४॥
जाहि सकै नहिं छोड अरु, अैसै करै कुकर्म॥
जिन्हसौं आपहि जाय बंधि, समझै धर्म न पर्म॥ १५॥
कीरा कोस सकार ज्यौं, रचि पचि गेह बनाय॥
राषै राह न निकसबै, फसि आपुन मरिजाय॥ १६॥
बिषै सुषन मैं लगै जब, उपजत नहिं बैराग॥
पालन करन कुटुंब मैं, षोवहि आयु अभाग॥ १७॥
काहू भांति कुटुंब सौं, नांहिंन प्रीत घटंत॥
तीन ताप सौं दुषित नित, निज स्वारथ न करंत॥ १८॥
अरु निज चित्त लाग्यौ रहै, सदा द्रिब्यही मांहिं॥
भूलि प्रकृति कै गुनन मैं, कछु प्रभु की सुध नांहिं॥ १९॥
अरु इह जांनत है कि पर, द्रिब्य बुरौ है लैंन॥
तऊ लैत हैं द्रिब्य पर, चाहि आपनौं चैंन॥ २०॥
यौं कुटुंब पालन कियैं, जन प्रवीनहूं कोय॥
उत्तम गति पावत नांहिंन, जांसौ सब सुष होय॥ २१॥
इह म्हेरौ इह अवर कौ, करत जु इहै बिचार॥
प्राप्त होत है नर्क कौं, पावत कष्ट अपार॥ २२॥
क्रीडा मृग अस्त्रीन कौ, जबै इहै ह्वै जाय॥
जनम मरन तैं आपकौं, फेरि न सकै छुटाय॥ २३॥
तातैं बिषई दैत्य अैं, तिनकौं परहरि संग॥
आवहु हरि कै सरन बै, दाता मुक्ति अभंग॥ २४॥

प्रभू कौ प्रस्नं जू करन मैं, बऊत परिश्रम नांहिं॥
बै सबकै आत्म रूप जु, नित प्रत सबही ठांहिं॥२५॥
लघु दीरघ बिधि बृछिन लौं, भुव बिकार घट आदि॥
पंचभूत महतत्व गुननि, प्रकृति मद्धि अनादि॥२६॥
त्रय गुणनि माया तत्व मह, इन्हमैं अैकहि ईस॥
सौ आतम भगवांन प्रभु, अव्यय सब मैं दीस॥२७॥
ब्यापक ब्याप्य द्रिष्टा रु द्रिस्य, रूप प्रकृति अनुसार॥
आत्मा ही यक भयौ पैं, है न्यारौ निरधार॥२८॥
केवल अनुभवानंदमय, परमेसर कौ रूप॥
माया सौं जिह ईसता, छिपिहीं परम अनूप॥२९॥
तातैं सब प्रांनीन मैं, दया करौ समभाय॥
जासौं हौहि प्रसंन प्रभु, असुर भाव मिटि जाय॥३०॥
प्रसंन हौहि भगवांन जब, कछु दुर्लभ है नांहिं॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि जुत, च्यारि मुक्तिहूं मांहिं॥३१॥
हम्ह सै जे प्रभु कै चरन, सैवत साधु समाज॥
तिन्हकौं धर्मादिकननि अरु, मुक्ति सौं न कछु काज॥३२॥
कर्म बिद्या रु आत्म बिद्या, धर्म अर्थ पुनि कांम॥
इन्ह सबकौं फल है इही, सुनौं कहूं अभिरांम॥३३॥
कर्म कछू जो कीजियै, भलै आप पहचांनि॥
तै सब प्रभुहिं समर्पियैं, दास भाव उरआंनि॥३४॥
प्रभुहिं समर्पन नहिं करै, तौ यै जु बिद्या सर्ब॥
कछू कांम की नांहिंनै, मूरष मांनत गर्ब॥३५॥
दियौ नारदहिं ग्यांन इह, नारायन करतार॥
सौ पइयैं बड भाग तैं, अदभुत ग्यांन सुढार॥३६॥
जे प्रभु कै चरनन सरन, बैस्नव बुद्धि उदार॥
ते जनही हैं ग्यांन कै, अधिकारी निरधार॥३७॥
इहै भागवत ग्यांन म्हैं, पायौ नारद पास॥
सुनिहुं अैसैं चट्टा सबै, बोलै सहित हुलास॥३८॥

॥ दैत्य पुत्रा ऊचुः॥

संडामर्का जू आपनैं, तौ गुर है निरधार॥
और गुरहि जांनत नांहिं, हम्ह तौ किहूं प्रकार॥३९॥
तुम्हहिंतौ बालक हौ भौ, कां तैं नारद संग॥
हम्हहिं इहै संदेह है, सो मेटहुँ किहुँ बंग॥४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते षष्टोऽध्यायः ॥ ६॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(प्रहलाद जी द्वारा माता के गर्भ में प्राप्त हुये नारद जी के उपदेशों का वर्णन)

॥ श्री नारद उबाच॥

दोहा - नारद कहत कि प्रसंन यौं, असुर बालकनि कीन॥
तब बोलै प्रहलाद जू, अमृत बचन प्रबीन॥ १॥

॥ प्रहलाद उबाच॥

पिता हम्हारौ तप करन, गौ मंदिर गिर ठांहिं॥
तब सुर आयै जुध करन, नगर हम्हारै मांहिं॥ २॥
सुर सस्त्रन की मार सौं, भजै असुर अकुलाइ॥
अरु इंद्रादिक देवता, बल बाढ्यौ या भाइ॥ ३॥
हिरण्यकस्यपु पापी रह्यौ, तातैं वाकौ अंग॥
चैंटी दींवक षाय गइ, अहि सम रह्यौ कुढंग॥ ४॥
अस्त्री पुत्र गृह कुटुंब धन, पसु सौंज नांहिं लेषि॥
प्रांण बचांवन कै निमित्त, नहिंन पछावू देषि॥ ५॥
सुरनि हम्हारे सिविर जब, लूटि लयै बल पाय॥
इंद्र हम्हारी मात कौं, गहि लै चल्यौ रिसाय॥ ६॥
तबै डरपि रोवन लगी, मो माता उहिं बार॥
नारद जू ताही समैं, आय सहज अनुसार॥ ७॥
नारद जू तब इंद्र सौं, कहत भये यै बैंन॥
परतिय निर अपराध इह, दीजै छोडि सुषैंन॥ ८॥

॥ इंद्र उबाच॥

इंद्र कह्यौ इह गर्भवति, असुर गर्भ या मांहिं॥
ह्वै बालक तिहं मारि फिरि. याह्री राषिहौं नाहिं॥ ९॥
नारद बोलै गर्भ मधि, बैस्नव हरि कौ दास॥
ताकौ करि सकि है नांहिं, तू काहू बिधि नास॥ १०॥
इहि नारद कौ बचन सुनि, मांनि इंद्र निरधार॥
परकरमा दै तिया की, जात रह्यौ उहिं बार॥ ११॥

॥ नारद उबाच॥

नारद जू मो मात कौं, तब निज आश्रय ल्याय॥
समाधान कीनौं भलैं, करि करुना रिषि राय॥ १२॥
कह्यौ कि आवै जबहिं लौं, तेरौ पति निज धांम॥
तबै तांई पुत्री भलैं, तू रहुँ याही ठांम॥ १३॥
तब तपस्या तैं मो पिता, जब लौं आयौ नांहिं॥
जहँ तांई मो मात गहि, धीर रही उहि ठांहिं॥ १४॥

निमत्त गर्भ कल्यांन निज, किय माता रिषि सेव॥
अरु जाच्यौहूं चहूं जब, बालक ह्वै मुनि देव॥१५॥
ग्यांन भक्ति कौ रिषि कियौ, मो मातहि उपदेस॥
तिय सुभाव बहु दिन बितैं, तातैं रह्यौ न लेस॥१६॥
मोहि गर्भ ही मांहिं इह, भयौ हुतौ सुभ ग्यांन॥
सौ अबलौं जगमग रह्यौ, म्हैरे हदै सथांन॥१७॥
तुम्हकौं सर्द्धाहिं जांनिकैं, कहूं सोइ सुभ ग्यांन॥
सुनौं अबै मन श्रवण दै, करहुँ सुधार सयांन॥१८॥
या सरीर कौ है सही, जनम आदि छबिकारि॥
जायतै अस्तिव रु बर्द्धते, बिपरिणते है च्यारि॥१९॥
अपछीयते नस्यति तनहिं, लगि रहै छहुँ बिकार॥
अरु आत्मा कौ नांहिंनै, समझहुँ भेद सुढार॥२०॥
कालहि करिकै हौत है, फल कै षट जु प्रकार॥
बृछनि कौं नांहिं हौत है, कबहूं छहूं बिकार॥२१॥
आत्मा अष्यय सुद्ध नित्य, इक छेत्रग्य अविकार॥
आश्रै द्रिष्टा आपनौं, ब्यापक हेतु अपार॥२२॥
असंगी रु तिहुं सौं ढक्यौ, नांहिं काहू भाय॥
ऐसौ आत्म सरूप अति, अनूप नित सुषदाय॥२३॥
ऐसै बारह लछिन यै, आत्मा कै पहचांनिं॥
अहंता ममता देह मैं, कीजै नांहिं निदांनिं॥२४॥
ज्यूं सुनार पाथरन तैं, काढि सुबर्न जु लैत॥
ज्यू ही जोगी तन बिषैं, लहत आत्म गति हैत॥२५॥
परस सब्द रस रूप गंध, महतत्व रु अहंकार॥
माया जुत अै आठ हैं, प्रकृति भेद अनुसार॥२६॥
ग्यारह इंद्री तीन गुन, पंचभूत महा और॥
ऐसौ रह जु बिकार है, आत्मा इक सब ठौर॥२७॥
इह तन सकल बिकार कौ, है समूह निरधार॥
याही मधि तैं आतमहि, लीजै काढि सम्हार॥२८॥
माला कै मनियान मधि, अरु न्यारौ ज्यूं सूत॥
जइसै आतम सबन मैं, अरु न्यारौ अदभूत॥२९॥
उतपति पालन अरु प्रलै, करत बही भगवांन॥
ऐसौ करै बिचार चित, आत्मा कौ जुत ग्यांन॥३०॥
सुपन सोवनौ जागनौ, बुधि की बृत्ति यै तीन॥
तिनकौं द्रिष्टा है सही, आतमा पुरष श्रीन॥३१॥

बुधि की अै तिहुँ अवसथा, लगी कर्म अनुसार॥
आतमा इन्हसुं है जुदौ, समझहुँ भलैं प्रकार॥३२॥
गंध फूल कौं पवन मैं, भासत ज्यौं बहु ठांहिं॥
त्यौं बुधि की तिहुँ अवस्था, भासत आत्मा मांहिं॥३३॥
आत्मा मांनत आप मैं, बुधि कै कीनैं कर्म॥
लग्यौ झूठ संसार इह, आत्महिं याही मर्म॥३४॥
तातै है बालक असुर, जोग करौ चित्त लाय॥
जासौं त्रिबिधि जु कर्म कौ, मूल अग्यांन जराय॥३५॥
है उपाय कैई सहस, दूरि करन अग्यांन॥
तिन्हमैं हरि सौं प्रीत है, बही बडौ करि जांन॥३६॥
इही बतायौ है प्रभू, तत्वहिं भेद सुषसार॥
सोई म्हें तुम्ह सौं कहत, आछैं करि बिसतार॥३७॥
सावधांन गुर सेव मैं, करै साधु कौ संग॥
आराधन भगवांन कौ, राषै सदा अभंग॥३८॥
श्रधा सुनन हरि की कथा, करि चरनन कौ ध्यांन॥
अरु हरि कै गुन कर्म कौ, कीरत करै सुजांन॥३९॥
प्रभु की प्रतिमा कौ करै, पूजन भलै उमांहिं॥
दरसन बंदन परिक्रमन, साधै धरि चित्त चांहिं॥४०॥
प्रभू सही प्रांनीन मैं, राजत है अनुसार॥
पूर्न मनोरथ करि करत, प्रांनीन प्रस्नं सुढार॥४१॥
जु इहै समझि इंद्रिन कौ, जीति करै हरि भक्ति॥
तिनकैं उपजत है सही, परम प्रेम की सक्ति॥४२॥
जे जे करत चरित प्रभू, फिरि फिरि धरि अवतार॥
तै सुनि हर्षि रोमांच है, गदगद कंठ उच्चार॥४३॥
कबहूं गावै अरु कबहुँ, निर्त्त करै है मत्त॥
कबहुँ हंसै कबहुं नरनि, करै प्रनांम सचित्त॥४४॥
नारायन हे जगतपति, हे हरि कृस्न क्रपाल॥
बौलि उठै यौं लाज तजि, स्वास लैय किहुँ काल॥४५॥
मानहुँ लाग्यौ गृह कौउ, बारौं सौ दरसाव॥
अैसौं जब याकै हृदै, उपजै हरि सौं भाव॥४६॥
तब बंधन छुटि बासना, अरु अग्यांन जरि जाय॥
जब हरि कौं प्रांनी इहै, प्रापति हौत सुभाय॥४७॥
जे आवत हरि सरन तै, मुक्तिहि प्रापति हौत॥
वै न चक्र संसार मैं, परत कबहुँ किहुँ पौत॥४८॥

तातै हरि कौ भजन तुम्ह, करहुँ भलैं चित्त चांहिं॥
सषा जीवकै आत्म हरि, बसत हिदैं कै मांहिं॥४९॥
जिन्हकौ भजन जु करन मैं, कछू परिश्रम नांहिं॥
अरु कछु सिद्धिन करन मैं, बिषै भोगहूं मांहिं॥५०॥
धन अस्त्री पसु गेह सुत, असु गज भुव भंडार॥
अै सब चंचल है सही, जुत आर्बल निरधार॥५१॥
तातै बिषै पदार्थ हूं, सकै कहा सुष दैय॥
अरु सुषहूं संसार कै, जानहूं तुछ कुभैय॥५२॥
अरु जिग्यादिक करि लहत, स्वर्गादिक जेइ लोक॥
थिर न रहत वेऊ सदा, कालचक्र की वोक॥५३॥
तातै तिनमैं दूषन न, अैसै जे भगवांन॥
तिन्हकौ भजन करौ भलै, सुषदाता पहचांन॥५४॥
जाइ निमित्त प्रानी इहै, करम करत ललचाय॥
ताकौ फल उलटौ प्रगट, बहुर्यौ प्रांनी पाय॥५५॥
दुष टारन जो निज निमित, प्रांनी कर्म करंत॥
पैं उन्ह कर्मन कै कियै, पावत दुष्ष अनंत॥५६॥
कांम भोग बहु चहत नर, जा सरीर कै काज॥
सौ नहिं अपनौं छिनक मैं, हौत नष्ट अय लाज॥५७॥
तिया रु मित्र धन राज्य धर, सेवग सुत भंडार॥
अस्व गज झूठैं हैं बिषैं, सकलहुँ तुछ निरधार॥५८॥
आत्म रूप आनंद है, बेद कहत जिहँ नैत॥
बिषै जात तन संगही, भलै नांहिं या हैत॥५९॥
गर्भ आदि लै अंत लौं, प्रांनी कर्म निभाय॥
दुष्षी सदा ताकौ कहा, दै सुष बिषै सकाय॥६०॥
प्रांनी इहै सरीर मों, कर्म करत है आपु॥
तातै पावत फेरि कै, नउतन देह सथापु॥६१॥
कर्म सरीर दुहूँ लगै, है अग्यांन प्रभाय॥
ग्यांनी जनन कै चित्त यै, दौनु झूठे लषाय॥६२॥
तातैं जिनसुं सिद्धि सब है, धर्म अर्थ अरु कांम॥
अैसै हरि तिनकौं भजन, करौ भलैं अभिरांम॥६३॥
आत्म बिराजत है प्रभू, सकल सरीरनि मांहिं॥
जगमगाय जग मैं रह्यौ, ताहि साध लषि चांहिं॥६४॥
असुर देवता जछि गंधर्ब, मनुष पंछी जु कोय॥
चरन कंवल हरिकै भजै, तिहं कल्यांन सुहोय॥६५॥

द्विज सुर रिषि बहु ब्रत करत, और जिग्य सब दांन॥
तपस्या सौच कछू इनहिं, सौ न प्रसंन भगवांन॥६६॥
दैत्य जछि रु राछिस पसू, पंछी सुद्र तिय आदि॥
औरहूँ पापी भक्ति सौ, प्रभुहिं मिलत अहलादि॥६७॥
बडौ कार्ज प्रांनीन कौ, यैही है निरधार॥
करै भगति हरि की लषै, सबही ठां करतार॥६८॥
तातै तुम्हहूं दैत्य हौ, करौ भगति भगवांन॥
जासौं तुम्ह कल्यांन ह्वै, ज्यौं हुव मो कल्यांन॥६९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(श्रीनृसिंह भगवान का प्रादुर्भाव तथा हिरण्यकशिपु का वध एवं
ब्रह्मादि देवताओं द्वारा भगवान की स्तुति)

॥ श्री नारदउबाच ॥

दोहा - कहि नारद प्रहलाद कै, सुनिकैं बचन रसाल॥
भलै जांनि मांनत भयै, सब दैत्यन कै बाल॥१॥
गुरकौ सिषयौ भैदि नहिं, धरत भयै मनमांहिं॥
कह्यौ ग्यांन प्रहलाद सौ, समझि भलौ हिय ठांहि॥२॥
संडामर्का यौं लष्यौ, सिष्य बचन अनुसार॥
हरि मैं सब बालकन की, लागी बुधि निरधार॥३॥
तबै डरपि कैं कहि दई, नृपसौं सबही बात॥
हिरण्यकसिपु इही पुत्र की, सुनि अनीत की घात॥४॥
नृप सरीर कांपन लग्यौ, अधिक क्रौध कै भार॥
पुत्रहिं मारनहिं कौ कियौ, निश्चै मन उहिं बार॥५॥
बुरै बचन प्रहलाद कौं, कहै द्रिष्टि तिरछाय॥
कर जोरै प्रहलाद जू, ठाढै सांत सुभाय॥६॥
जइसैं दाब्यौ पांव सौ, सर्प करत अति क्रौध॥
हिरण्यकस्यपु या रीत सौं, बोल्यौ बचन अबौध॥७॥

॥ हिरण्यकस्यपुरुबाच ॥

हे मूरष कुल षय करन, अधम पकरि अरि वौक॥
म्हैरी आग्यां मांनत न, तुहि पठहूँ जम लौक॥८॥

क्रौध करत हौं म्हैं जबै, कांपत लौक जु तीन॥
किहि बल तैं आग्यां न मो, मांनत है बुद्धिहीन॥ ९॥

॥ प्रहलाद उबाच॥

फिरि बोलै प्रहलाद बड, बलवंतनि मुहि तौहि॥
बल वा प्रभु कौ जिन्ह रषै, ब्रह्मादिकहूं मौहि॥ १०॥
ईस्वर बैइ कहांवहीं, बै सबकौ बल रूप॥
उतपति पालन प्रलय बै, करत तिहूं गुन जूप॥ ११॥
असुर भाव तू छोडि दै, करि मन द्रिष्टि समांन॥
मन बसि करियै नांहिं तौ, मनही सत्रु निदांन॥ १२॥
सब ठां द्रिष्टि समांन मन, करनौ भलैं प्रकार॥
इही बडौ है पूजिबौ, प्रभु पद कंज सुढार॥ १३॥
या सरीर मैं चोर छह, इंद्री बड बलवांन॥
लूटत तिनकौं जीतत न, तौसै मूर्ष अग्यांन॥ १४॥
और कोउ जे साध तिन, सब ठां द्रिष्टि समांन॥
जे इंद्री छह चोर कौं, जीतत है बुधिवांन॥ १५॥
तिन्हकै नांहिंन है कौउ, सत्रु बीची संसार॥
बैं सज्जान सबकै सदा, अति सुषदाय उदार॥ १६॥

॥ हिरण्यकस्यपुरुबाच॥

हिरण्यकस्यपु सुनि इह कह्यौ, बचन रीस करि ज्याद॥
तू निश्चै चाहत मर्यौ, बहुंत करत बकबाद॥ १७॥
आवत मृत्यु मनुष्य की, नैरी औसर पाय॥
तब मुषहूं तै बौलहीं, भौंडै बचन कुभाय॥ १८॥
भाग्यहीन तू कहत है, मो तै ईस्वर और॥
सौ बताहुँ मौकौ अबै, है बह कौनैं ठौर॥ १९॥
कहत भयै प्रहलाद जू, है सब ठां भगवांन॥
हिरण्यकस्यपु बौल्यौ कि क्यूं, नहिं बिच थंभ सथांन॥ २०॥
इह सुनि फिरि प्रहलाद जू, बोलै बचन सुढार॥
मोकौ दीसत है सही, थंभहूँ मधि करतार॥ २१॥
हिरण्यकस्यपु बोल्यौ कि म्हैं, काटतहूं तौ सीस॥
जौ हरि कै तू सरन सौं, राषहुँ बिस्बाबीस॥ २२॥
यौ पुत्रहिं कहि दुर्बचन कर, लैकर फिरि तरबार॥
सिंघासन तैं कूदि किय, मुष्टि थंभहिं प्रहार॥ २३॥
तांह भयंकर सब्द हुवै, प्रगट थंभ बिच आय॥
तासौं सब ब्रह्मांड इह, फटन लग्यौ थहराय॥ २४॥

ब्रह्मादिक बही सब्द सुनि, कंपित हुवै बहिंबार॥
जान्यौ निज निज लोक कौ, नास भयौ निरधार॥२५॥
सब्द भयौ इही कांह तैं, जांनि पर्यौ सौ नांहिं॥
यौं कहि बहुँत डरै असुर, चारौं वोर चितांहिं॥२६॥
बचन आपनैं भक्त कौ, सांच्यौ करन बिष्यात॥
अरु हरि ब्यापक ठौर सब, सत्य हौंन इह बात॥२७॥
धार्यौ अदभुत रूप हरि, भक्त सहाय प्रकार॥
आनन सिंघाकार अरु, देह मनुष अनुसार॥२८॥
हिरण्यकस्यपु देष्यौ कि अैं, थंभा तैं प्रगटाय॥
किअैं किं बिचार नाहिं सिंघ, रु नहिं मनुष दरसाय॥२९॥
हिरण्यकस्यपु निजू चित्त मैं, अैसौ करत बिचार॥
लषत भयानक रूप जो, श्री नरसिंघ उदार॥३०॥
त्यायै सुबरन सम अरुन, नैत्र रंग निरधार॥
अंग कंठ कै रोम फर, कत मुष रहै पसार॥३१॥
महा भयंकार दाढैं, हैं जिभ मनु तरबारि॥
ठौढी भौह डरावनी, ऊंचै कान सुढारि॥३२॥
सपरस करै जु स्वर्ग कौ, अैसौ उच्चा सरीर॥
भारी गरदन बछि सथल, कटि पतरि महाबीर॥३३॥
सैत रोम भुज है बडी, नषहीं आयुध भाय॥
मनहुँ नग की कंदरा मुष, पसरायौ दरसाय॥३४॥
चक्रादिक बहु सुसस्त्र है, भुजांन मधि बिकरार॥
तिनसौं डरि भाजत भयै, सकल असुर बहिं बार॥३५॥
हिरण्यकस्यपु सोचत भयै, अैसौं रूप निहारि॥
अैं हरिहिं आय हैं सही, नरहरि रूपहिं धारि॥३६॥
अैं मारै तौ मारही, मुहि कदाचि किंहिं भाय॥
पैं म्हैं हूं जांनत इहै, मो करि कहा सकाय॥३७॥
अैसैं कहि कर लै गदा, प्रभु कै सामुह आय॥
ज्यौं दीपक मधि परत है, बउत पतंग भ्रमाय॥३८॥
प्रलै काल कै समैं कौ, अंधकार अधिकाय॥
जो हरि अपनैं तैज सौं, किय आचमन सुभाय॥३९॥
जिनहीं प्रभु कै तैज मैं, हिरनिकसपु उहिं बार॥
भयौ दिषाई दैत नहिं, सौ का अचिरज भार॥४०॥
दैत्य क्रोध करिकैं कियौ, प्रभु कै गदा प्रहार॥
गरुड गहे अहि ज्यौं गहत, भय असुरहिं करतार॥४१॥

करन सिंघ जू कैन तैं, क्रीडत षग अहि जौट॥
निकसि गयौ असुरहुँ बली, निज बचाय तन चौट॥४२॥
तांह इंद्रादिक देवता, लषत रहै उहिं बार॥
तिन्हकौं षलकौ निकसिबौ, बुरौ लग्यौ निरधार॥४३॥
जान्यौ दैत्य कि पराक्रम, म्हैरो अतुल निहारि॥
डरपै अब नरसिंघ जू, इह मरौर चित्त धारि॥४४॥
लै कर ढाल क्रिपान फिरि, प्रभु कै सामुह आय॥
फिरत भयौ चहुँ वोर ज्यौं, पंछी बाज फिराय॥४५॥
तब नृसिंघ जू नैं कियौ, याकौ दीरघ हासि॥
नैत्र असुर कै मुंदि गयै, लषि प्रभु तेज प्रकासि॥४६॥
तब असुरहिं लीनौं पकरि, श्री नरसिंघ उदार॥
काटै कटत न षल त्वचा, बज्रहूं कै अनुसार॥४७॥
तरफरात षल कौ पकरि, अहि मूषा अनुभाय॥
द्वार मधि निज जंघनि पै, दीनौं प्रभू गिराय॥४८॥
उदर असुर कौं नषन सौं, फारत भयै रिसाय॥
सांपहिं जइसैं गरुड जू, फारत बार न लाय॥४९॥
नैत्र भयंकर क्रोध सौं, असुरहिं चाटत जात॥
मुष रौमन मैं लगि रह्यौ, रुधिर सौंभ सरसात॥५०॥
दैत्य अंत निज कंठ मैं, लई पहरि ज्यौं माल॥
जइसै गज कौ मारिकैं, सौभित सिंघ रसाल॥५१॥
फारि प्रभू निज नषन सौं, असुर हिदै उहिं बैर॥
और असुरहूं नषन सौं, हतै हजारन फैर॥५२॥
किय प्रहार नरसिंघ जू, हुव तिहँ सब्द सटाक॥
जासौं फटि गय मेघ जे, घिरैहुँ तैं बिच नाक॥५३॥
प्रभू द्रिष्टि की जोति सौं, सूर्जादिक ग्रह कांति॥
छीन भई उहिं बार सब, असुरन कौं उतपांति॥५४॥
बिकल भयै सामुद्र सबै, प्रभु कै स्वांस प्रभाय॥
अरु गर्जन कै सब्द सौं, डरत दिगज थहराय॥५५॥
इत उत ह्वै गयै स्वर्ग तैं, सबहीं देब बिमांन॥
प्रभु पायन कैं जोर सौं, कंपत प्रिथवी सथांन॥५६॥
महातैज भगवांन कौं, जा आगैं निरधार॥
सौभ दिसा आकास की, मिटि गिरि परै पहार॥५७॥
सिंघासन वा असुर कौ, बैठै तांपर आय॥
दैषि भयंकर रूप कौउ, सकत निकट नहिं जाय॥५८॥

हिरनिकसपु कौ लषि हत्यौ, हौहि प्रसंनता लीन॥
अपसरा सब आनंद जुत, पहुँपनि बरषा कीन॥५९॥
करत भये दरसन भलै, चढि चढि देव बिमांन॥
नगर नगर सुर गगन कैं, बांजन लगै निसांन॥६०॥
गान करत गंधर्ब अरु, निर्तत अपसरा चांहि॥
तीन लोक बिच सुर नरनि, हुवै आनंद अथांहिं॥६१॥
बिधि बासव सिव रिषि पितर, बिद्याधर रु बेताल॥
सिध चारन मनु प्रजापति, जछि अपछरा रसाल॥६२॥
अपसर किंनरगन गंधर्ब, किंपुरष पार्षद आदि॥
हाथ जौरि असतुति करत, उहां आय अहलादि॥६३॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

बिधि बोलै कि अनंत तुम्ह, तुम्हरी सक्ति अपार॥
चरित बिचित्र अति पबित्र है, आप कर्म करतार॥६४॥
उतपति पालन प्रलै जग, तुम्ह हीं करत क्रपाल॥
बार बार म्हैं आपकौं, मुदित नवावत भाल॥६५॥

॥ श्री रुद्र उवाच ॥

सिव बोलै तुम्ह रिस समैं, प्रलैं काल की बार॥
तुछ असुर मार्यौ इहि रिस, जोगि नांहिं करतार॥६६॥
भक्त पुत्र याही असुर कौं, सरन रावरै आय॥
ताकी अबै रछा करहुँ, भक्त बछलता भाय॥६७॥

॥ इंद्र उवाच ॥

बासव बोल्यौ आजि जिग्य, भाग भलैं हम्ह पाय॥
हिदै कमल प्रफुलित भयौ, प्रभु तुम्ह क्रपा प्रभाय॥६८॥
अरु प्रभु सेवा रावरी, जे कौ करत सुढार॥
सौ नहिं चाहत मुक्ति हूं, कहा और अधिकार॥६९॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥

रिषि बोलै तप जोर तैं, सृज्यौ आप संसार॥
हम्ह हूं कौ आग्या दई, तप करिबै निरधार॥७०॥
सौ तपस्या इन्ह असुर नैं, दीनी हुती मिटाय॥
सौ तुम्ह मार्यौ हम्ह अबै, तप करिहैं सुषदाय॥७१॥

॥ पितर ऊचुः ॥

बोले पितरन निमित हम्ह, करतै मानुष श्राध॥
सौ भौजन करतौ इही, असुर अग्यांन असाध॥७२॥
तीरथ मैं तिल सहित कौ, तर्पण करतौ जाय॥
सौ इह पीजातौ असुर, हुँतौ महा दुषदाय॥७३॥

ताकौ तुम्ह फार्यौ उदर, हम्ह लहि है बलि श्राध॥
नमसकार तुम्हकौ प्रभू, पूर्न पुरष अगाध॥७४॥

॥ सिद्धाऊचुः॥

सिद्ध बोलै इन्ह हम्हारी, हरि हूंती गति जोग॥
नमसकार तुम्हकौ हत्यौ, तुम्ह आसुर बड रोग॥७५॥

॥ विद्याधरा ऊचुः॥

बिद्याधरहिं बोलै प्रभू, बिद्या हम्हारी सार॥
मनैं करि इही असुर करि, सकतै नहिं किहुँ ढार॥७६॥
पराक्रमी हौ इह बडौ, तुम्ह अब मार्यौ यांहिं॥
नमसकार हम्ह करत हैं, आपुहिं अधिक उमांहिं॥७७॥

॥ नागा ऊचुः॥

बोलै नाग कि हम्हारै, अस्त्री रतन अपार॥
हर लीनैं हैं असुर इन्ह, पाय अधिक बलभार॥७८॥
ताकौ फार्यौ उदर तुम्ह, दिय हम्ह कौं आनंद॥
नमसकार हम्ह करत हैं, आपहिं प्रभु सुषकंद॥७९॥

॥ मनव ऊचुः॥

मनु बोलै प्रभु हम्ह रहै, तुम्ह आग्यां अनुसार॥
अरु म्रजाद इन्ह असुर नै, मेटी हुती कुढार॥८०॥
सौ अब इह मार्यौ गयौ, तुम्ह कर भाग्य प्रभाय॥
आग्या आप करौ सोइ, हम्ह लैं सीस चढाय॥८१॥

॥ प्रजापतय ऊचुः॥

प्रजापति बोलै किहुँ हम्ह, याकै डर अनुसार॥
प्रजा उपाय न सकत हैं, हे स्वामी करतार॥८२॥
सौ तुम्ह मार्यौ याहिं अब, साधुनि दीनौं चैंन॥
मंगलकर्त्ता रावरौ इह, अवतार जू सुषैंन॥८३॥

॥ गंधर्वा ऊचुः॥

फिरि बोलै गंधर्ब हम्ह, करता निर्त्त सुढार॥
अरु गुनगान जु रावरौ, करनहार सुषसार॥८४॥
सौ हम्हकौं इन्ह दैत्य नैं, करै हुतै बसि आपु॥
तासौं तुम्ह या दैत्य कौ, प्राप्त कियौ धरि धापु॥८५॥
चलै बुरै मग जो कोउ, जाकौ भलौ न होय॥
बिनु प्रभु की पहचांनि नर, दैत जु औसर षोय॥८६॥

॥ चारणा ऊचुः॥

चारन बोलै मुक्ति कैं, दाता तुम्ह पद कंज॥
तिन्हकैं हम्ह आश्रै रहत, प्रक्रति परिश्रम भंज॥८७॥

साध जनन कौ हौंहि है, असुर महा दुष दाय॥
ताकौ तुम्ह मार्यौ प्रभू, कीनी दास सहाय॥ ८८॥

॥ यक्षा ऊचुः॥

जछ बोलै प्रभु रावरै, हम्ह सैवक निरधार॥
टहल करत है रावरी, मन तन बचन प्रकार॥ ८९॥
तिन्हपै इह आसुर बली, जो रावरी दबाय॥
करवावत हौ टहल निज, हम्ह पै जोर जिताय॥ ९०॥
प्रभु तुम्ह निज सेवगन कौ, अति संताप निहार॥
प्रापति कीनौं मृत्यु कूं, दुष्ट असुर या बार॥ ९१॥

॥ किंपुरुषा ऊचुः॥

कहत भयै किंपुरुष हैं, हम्ह किंपुरुष निदांन॥
रु हम्ह हौ महा पुरुष प्रभु, दीनबंधु भगवांन॥ ९२॥
हौ इही असुर जु कुपुरष, धिक्कारत जु है साध॥
ताकौ तुम्ह नरसिंघ प्रभु, अब कीनौं है बाध॥ ९३॥

॥ बैतालिका ऊचुः॥

कहत भयै बैताल हम्ह, सभा जिग्यकैं मांहिं॥
गाय रावरौ जस बउत, लहतै लाभ सुठांहिं॥ ९४॥
सौ जस देतौ गावन न, इहै असुर बलवांन॥
भली भई मार्यौ गयौ, महा दुष्ट अग्यांन॥ ९५॥

॥ किन्नरा ऊचुः॥

किंनर बोलै रावरै, प्रभु हम्ह सेवग आंहिं॥
तिनपै इह करवावतौ, निज बेगार उमांहि॥ ९६॥
सौ तुम्ह मार्यौ असुर इह, दुष्ट बली अधिकाय॥
अबै होय कल्यांन हम्ह, सौं कीजै सुषदाय॥ ९७॥

॥ बिष्णुपार्षदा ऊचुः॥

बोल्यै पार्षद बिस्नु कै, हाथ जौरि या भांति॥
प्रभु सुषदाता रावरौ, इही रूप जुत कांति॥ ९८॥
सौ हम्ह देष्यौ आजु ही, निज भागनि अनुसार॥
हुतौ असुर इह रावरौ, पारषद पहलि बार॥ ९९॥
बही अबै या जनम मैं, असुर भयौ लहि श्रापु॥
ताकौ मार्यौ सौ कियौ, बडौहि अनुग्रह आपु॥ १००॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

(प्रहलादजी के द्वारा श्री नृसिंह भगवान की स्तुति)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा - नारद जु कहत कि रुद्र बिधि, आदि अमर जितनैंक॥
क्रौध जुक्त नरसिंघ जू, लषि डरि भलै बिबैंक॥ १॥
पास जायबै प्रभू कैं, भय समर्थ नांहिं कौय॥
तबै लिछमी पठइ सुरनि, बिनतिवंत अति हौय॥ २॥
लछिमी अैसौ रूप नहिं, लष्यौ सुन्यौ किहुं ढार॥
लषि नरसिंघ सरूप नहिं, निकट गई बहिं बार॥ ३॥
तब प्रहलादहि बिधि कह्यौ, जाहुं पुत्र प्रभुहिं पास॥
क्रौध कियौ तौ पिता परि, छमा करवाहुँ तास॥ ४॥
परम भक्त प्रहलाद जू, बिधि की आग्या पाय॥
हाथ जौरि करि दंडवत, ठाढै प्रभु पैं जाय॥ ५॥
चरनन पै नरसिंघ जू, परै दैषि प्रहलाद॥
क्रिपा जुक्त लै गौद कर, धर्यौ सीस अंनाद॥ ६॥
काल सरूपी सर्प सौं, जे डरपत दिन रैंन॥
तिन्हकौं श्री नरसिंघ कौ, कर जु अभय सुषदैंन॥ ७॥
श्री नृसिंघ कर परस सौं, पाप गयै सब भागि॥
आत्म ग्यांन प्रहलाद कै, हिर्दै उठत भौ जागि॥ ८॥
करत भयै प्रभु चरन कौ, ध्यांन भलैं अनुसार॥
तन रुमांच ह्वै द्रिगनि मैं, उमड़ि प्रेम जलधार॥ ९॥
करिकैं चित्त अैकाग्र प्रभु, दरसन करत सुषैंन॥
गदगद बांनी हौय कहि, प्रहलाद जुयौं बैंन॥ १०॥

॥ प्रहलाद उबाच ॥

ब्रह्मा सिध मुनि देवता, बचन सत्वगुन भाय॥
आराधन गुन ग्यांन तुव, करन समर्थ न पाय॥ ११॥
सौ म्हैं आसुर प्रस्नं करि, सकौं कहा भगवांन॥
तुम्ह अपनीं ही क्रपा तैं, रीझहुँ क्रपानिधांन॥ १२॥
धन कुलींनता रूप तप, सास्त्र श्रवन पुनिग्यांन॥
तैज वोज बल पराक्रम, जोग प्रभाव रु दांन॥ १३॥
तिन्हमैं इतनी बात नहिं, आराधत भगवांन॥
सौ न जांनियै सत्य प्रभु, क्रिपाहिं करत कल्यांन॥ १४॥
गज पैं प्रभु कीनी क्रिपा, तातैं इही जनाइ॥
येक भक्ति ही सौं प्रभू, हौत प्रसंन्न अधिकाइ॥ १५॥

गज मैं हुँतै नहिं गुन कछु, हुँती भक्ति भगवंत॥
ताहीं सौ अपनाय प्रभु, लियौ बचन कै तंत॥१६॥
बारह गुन जुत बिप्र है, अरु न होय हरिभक्त॥
तौ तातै चांडाल प्रभु, भक्त श्रेष्ठ बिच जक्त॥१७॥
करै पबित्र जु अनेक कुल, भक्त जु ह्वै चांडाल॥
भगति हीन द्विज आपहूं, कौं न सकै दुषटाल॥१८॥
हरि पूरन सब भांति है, कछु चाहत किहुँ सौंन॥
दास समर्पित प्रभूहिं कछु, सौ भल अपनौं हौंन॥१९॥
निज मुष सौभ बनाइयै, तइसीं मुकर लषाइ॥
जइसैंहिं म्हैरी बुधि सम, प्रभु महिमां कहुँ गाइ॥२०॥
नीच जीव जे प्रकृति करि, मोहित बिच संसार॥
तै प्रभु गुन बर्नन कियै, हौंहिं पबित्र सुढार॥२१॥
रूप सत्व गुन आप प्रभू, इहि तुम्ह रूप निहारि॥
ब्रह्मादिक डरपत सकल, भूलि जु रहै सम्हारि॥२२॥
हौंन जगत कल्यांन सुष, धरत आपु अवतार॥
जासूं कीजै दूरि प्रभु, क्रौध अबैं बिकरार॥२३॥
तुम्ह मार्यौ इहि असुर हुव, तासौं प्रसंन जु साध॥
जइसौं सब ह्वै प्रसंन्न अहि, बीछू कौं भय बाध॥२४॥
लौकन कै आनंद हुव, अब सब कै इहि चांहि॥
क्रौध तजै या ध्यांनहीं, तैं लोकनि भय जांहिं॥२५॥
महा भयानक जीभ मुष, रबि सम नैत्र बिसाल॥
बड्डि ढाढें टैंढि भौंहै, गर आंतनि की माल॥२६॥
लिपटि रुधिर श्री अंग मैं, उच्च श्रवन सौभाय॥
कंपित हैं जिन्हि सब्द सौं, दिगज अधिक भय पाय॥२७॥
अरु प्रभू कै नष अग्र बहु, सत्रुननि मारन हार॥
हौं अैसै या रूप सौं, डरपत नांहिं निर्धार॥२८॥
दुष जु चक्र संसार कै, तिन्हतैं हौं डरपंत॥
पर्यौ असुर कुल मैं बंध्यौ, निजकर मन कै तंत॥२९॥
अब निज चरनन कै सरन, लैहौं बेग बुलाय॥
आजु भयौ दरसन इहै, दैंन मुक्ति सुषदाय॥३०॥
प्रियजन कौं जु बियौग जन, अप्रिय जनकुं संजोग॥
जनम मरन अरु सोक अै, जनम जनम लगि रोग॥३१॥
दुषित रह्यौ सुष नां लह्यौ, बिन प्रभु की पहचांनि॥
सुष संसारी कौ जतन, है दुष रूप निदांनि॥३२॥

ऐसै या संसार मैं, पर्यौ भ्रमत हौ नाथ॥
अब तुम्ह अपनौं दास्य पद, दै सिर राषहुँ हाथ॥३३॥
तुम्ह प्रिय सुहृद जु आतमा, परमदेव बिषयात॥
कथा रावरी गावही, ब्रह्मादिक दिन रात॥३४॥
बही सुधा सम रावरी, कथा भलैं हौं गाय॥
अघ समुद्र तरि जाहुँगौ, साध संग अनुभाय॥३५॥
ह्वै न पिता तैं सुत रिछा, वोषद रछ्या न रोग॥
नांवहुँ बूडत कौउ रषि, नांहिं सकै किहुं जोग॥३६॥
तातैं जांनत रावरी, क्रपा बिनां करतार॥
कर न सकै रछा कौऊ, किहुं की किहूं प्रकार॥३७॥
जामैं है अैं जगत अरु, जांतै उपजन पाय॥
जा करिकैं है जा निमिति, पुनि जाकौ सब भाय॥३८॥
जो कछु है जो करै है, जो करवावत काज॥
सौ सरूप है रावरौ, सकल गरीब निवाज॥३९॥
द्रिष्टि पुरस की सौं प्रगटि, माया त्रिगुन सरूप॥
श्रजत मनहिं मन कर्म मय, षौडस तत्व अनूप॥४०॥
चक्र रूप संसार है, तासौं मोहित जीव॥
बिन प्रभु क्रपा न ह्वै सकत, यासौ जुदौ अछीव॥४१॥
सब माया गुन बसि कियै, काल रूप हौ आप॥
सकल सक्ति कै हौ प्रभू, दाता तुम्ह जु सदाप॥४२॥
म्हैं संसारी चक्र मैं, फस्यौ जात करतार॥
काढि लैहु मोकौं अबै, आप क्रिपा अनुसार॥४३॥
म्हैं इंद्रादिक सुरन की, संपति आयु लषाय॥
ताहि चहत प्रांनी सबै, अधिक हर्ष उपजाय॥४४॥
मो पितु भौंह मरौर मैं, इंद्रादिक हुव नष्ट॥
सुर संपति हुवी न हुवै, हुती न मनु बिच श्रृष्ट॥४५॥
अैसौं मो पित ताहि तुम्ह, डार्यौ मारि निदांन॥
तातैं बिधि की आरबल, लछमी लौं सब थांन॥४६॥
म्हैं नहिं चाहत हौं प्रभू, तुछ बस्तू पहचांनि॥
चरन सरन इक रावरी, चाहत हौं मन ठांनि॥४७॥
काल रूप तुम्ह बिधिहुँ की, काटत लछमी आयु॥
साधसंग तातैं अबै, मुहि दीजै सुषदायु॥४८॥
सुष संसारी तुछ मृग, त्रिस्नां रूप उपाधि॥
घर है रोग अनैक कौ, इह माया तन ब्याधि॥४९॥

इह प्रांनी जांनतहुँ हैं, तउ सुष विषै समंध॥
काम रूप बुझवत अगनि, परत बीच जग अंध॥५०॥
म्हैं तम असुर रजो गुनी, कुल मैं उपज्यौ आय॥
तापरि तुम्ह क्रिपा कीनी, दीनबंधु अधिकाय॥५१॥
बिधि सिब लछमी पर नांहिं, अैसी क्रपा जु कीन॥
मो माथै पर हाथ निज, राष्यौ तारन दीन॥५२॥
नीच ऊंच कौं नहिं तुम्हहिं, कछु बिचार अवगाह॥
कलप बृछ सम आपहौ, करत दास की चाह॥५३॥
म्हैं संसार सरूप कै, कूप पर्यौ हौ दीन॥
पैं नारद जू की क्रपा, तैं तुव दरसन कीन॥५४॥
तातैं सेवा साध की, मोपै तजी न जाय॥
हिरण्यकस्यपु लै षडग मुहि, बचन कह्यौ या भाय॥५५॥
मो तैं ईस्वर और कौं, तू मांनत अग्यांन॥
सौ अबै रिछा करहुँ तौ, काटत सीस निदांन॥५६॥
इहि सुनि तुम्ह बाही समैं, प्रगट होय भगवांन॥
मारि दैत्य रिछा करी, म्हैरी क्रपा निधांन॥५७॥
कियै आपु करतार प्रभु, अैसै अैं सब काज॥
सौ नारद बचननि करन, सत्य गरीब निवाज॥५८॥
आदि अंत मध्य जक्त कै, तुम्हहीं हौ बिषयात॥
प्रकृति गुनन तैं जक्त इह, श्रज्यौ आपु जग तात॥५९॥
तामैं तुम्हहीं पैंठबहुँ, रूप दिषाई देत॥
कारिज कारण रूप जग, आप प्रभू सब हेत॥६०॥
अरु तुम्ह यातैं जुदे हौ, करता पुरष उदार॥
भैदि बुद्धि झूठी सही, बीच जक्त निरधार॥६१॥
कारन बृछि कौ बीज है, तुम्ह तइसै अनुसार॥
सबकै कारन हौ प्रभू, पूर्न ब्रह्म करतार॥६२॥
जक्तहिं तुम्ह निज उदर मैं, राषि प्रलै जग मध्य॥
सौवत हौ अरु लैत करि, द्रिग मुद्रित सप्रसिध्य॥६३॥
स्थित रहत हौ जोग मैं, मग्न रूप निज मांहिं॥
अरु माया कै गुनन तैं, न्यारै बेद बतांहिं॥६४॥
रूप रावरौ ही सही, है इहि सब संसार॥
तुम्ह तैं नांहिं जुदौ कछु, हे स्वांमी करतार॥६५॥
सैस सज्या सौवत हुतैं, आपु प्रलै जल मांहिं॥
जागै जब प्रगटत भयौ, कंवल नाभ तुम्ह ठांहिं॥६६॥

वाही नांभी कंज तैं, प्रगट भयौ मुष च्यार॥
सौ बरसन ढूंढै तुम्हहिं, पैं न लहे उहिं बार॥६७॥
फिरि बैठ्यौ बिधि कंवल पैं, तप करि मन सुध कीन॥
तब दरसन दै रावरौ, प्रभू महा सुष दीन॥६८॥
सहस सहस सब अंग है, जुत आभरण अनूप॥
बिधिहिं भयौ आनंद लषि, अैसौ सुंदर रूप॥६९॥
ह्वै तुम्ह बाही समैं मैं, हयग्रीवा अवतार॥
मधु कैटभ द्वै दैत्य हति, ल्यायै बेद सुढार॥७०॥
अैसैं रिषि सुर पसु मनुष, जल जंतुनि लौं मध्य॥
धरि अवतार सुधर्म की, रछा करत जु प्रसध्य॥७१॥
तीन जुगन मधि प्रगट हौं, छिपै रहत कलि मांहिं॥
साधुन सौं कबहूं नहिंन, दुरत जगत किहुँ ठांहिं॥७२॥
मो मन पापन सौं महा, ह्वै रह्यौ दुष्ट असाध्य॥
प्रसंन्न रावरी कथा मैं, हौत न प्रभू अगाध्य॥७३॥
कामातुर मन हर्ष भय, सोक इछा दुष धार॥
ता मन तैं तुम्ह कथा कौ, कइसैं करूं बिचार॥७४॥
जीभ नासिका श्रवन द्रिग, उदर त्वचा कर पाव॥
इंद्री सब निज सुष निमिति, षैंचत मोहि कुदाव॥७५॥
ज्यौं बहु तिय इक पुरष कौं, षैंचत निज निज वोर॥
त्यूंहीं इंद्री सकल मुहि, षैंचत महा सजोर॥७६॥
बइतरनी सरिता इहै, है सरूप संसार॥
तामैं अपनैं कर्म सौं, म्हैंहूं पर्यौ कुढार॥७७॥
जामैं दुष्ष अनैक लहिं, जनम मरन लौं आदि॥
तातैं डरप्यौ हूं बहुँत, म्हैं अब प्रभू अनादि॥७८॥
पुनि जहँ अपुन परायता, सत्रु मित्र अरु हित बैर॥
तातैं मुहि रछा करहू, आप किर्पा कैं घैर॥७९॥
तुम्ह उतपति पालन प्रलै, करनहार संसार॥
प्रभु हम्ह तुम्ह सेवगन कैं, हैं सेवग निरधार॥८०॥
हम्हहिं तारबै मैं तुम्हहिं, अधिक परिश्रम नांहिं॥
सबहीं अग्यांनीन पैं, करतहुँ अनुग्रह चांहिं॥८१॥
अमृत सम बै रावरी, लीला कौं गुनगांन॥
तामैं म्हैरो मन सदा, मग्न रहत अप्रमांन॥८२॥
बैंतरनी सरिता इहै, जो संसार सरुप॥
जासौं म्हैं डरपत नांहिं, लहि तुम्ह क्रपा अनूप॥८३॥

अैंपरि म्हैं जिन्हकौं करत, सोच दया रस पागि॥
जे विमुष जु तुम्ह कथा तैं, रहैं बिषै मधि लागि॥ ८४॥
मुनिजन अपनीं मुक्ति कौं, तप रचहीं बन जाय॥
करत और कौं कार्ज नहिं, लगि निज कार्ज प्रभाय॥ ८५॥
तातैं अग्यांनी जियन, तजि न चहत हौं मुक्ति॥
धरत मुक्ति ईछा सही, सब जीवन संजुक्ति॥ ८६॥
या गृहस्थाश्रम बिषै कौ, सुष जू तुछ दुष सीर॥
षाजि काम रूपी सहै, सोई पुरष सधीर॥ ८७॥
सास्त्र मौंन ब्रत ध्यांन जप, तप सुधर्म अछैंन॥
बसनौं सथल इकंत अैं, साधन मुक्ति सुषैंन॥ ८८॥
अग्यांनी इंद्री अजित, अैसैं करि सुभ काज॥
चाहत है सुष बिषै कौ, तामैं अति दुष साज॥ ८९॥
जिन्हि इंद्री जीती नांहिं, तिह्नैं जीविका हेत॥
जें दंभी मूरष तिनहिं, नांहिं जीविका देत॥ ९०॥
कारिज कारन राबरै, बेद कहत द्वै रूप॥
और तुम्हारौ रूप कहि, सकत न बेद अनूप॥ ९१॥
मुनि इन्हहिं दुहूं रूप तैं, जोग सक्ति अनुसार॥
काढि लैत है तुम्हहिं ज्यौं, अग्नि काष्ट कैं ढार॥ ९२॥
प्रिथ्वी अग्नि जल वायु नभ, हिदै चित्त रु अहंकार॥
इंद्री प्रांन रु पंचतन, मात्रा बुधिहिं बिचार॥ ९३॥
निर्गुन सगुन अरु जो बचन, तैं कहियत है भाषि॥
सो सब तुम्ह तैं जुदौ नहिं, चहूं जुगन इह साषि॥ ९४॥
माया गुन महतत्व लौं, तत्व सुरनि संजुक्त॥
रूप तुम्हारौ जांनत न, जो है भूल संमुक्त॥ ९५॥
तातैं अस्तुति जु रावरी, करि करनौं परिनांम॥
तुम्ह मैं कर्म समर्पि कैं, सेव करैं अभिरांम॥ ९६॥
सुमरन करनौं रावरौ, सुननी कथा सुढार॥
बढै भक्ति यौं कियैं तैं, प्रभु सेवा छ प्रकार॥ ९७॥
छह प्रकार की भक्ति बिनु, कियैं पर्म जे हंस॥
तिन्हकै पाबै जोग्य तुम्ह, कइसैं पावत संस॥ ९८॥
भक्ति सैव बिनु मुक्ति नहिं, प्रथम प्रार्थनां मौर॥
दीजै प्रभु निज दास कौं, दास्य जोग जो तौर॥ ९९॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि यौं अस्तुति, सुनिकैं मुष प्रहलाद॥
प्रसंन होय बोलत भये, श्री नरसिंघ अंनाद॥ १००॥

॥ श्री नरसिंघ उबाच ॥

अहौ पुत्र जु प्रहलाद तौ, अबैं हौहूँ कल्यांन॥
म्हैं तौ परि हुव प्रस्न्न सब, दैंन कांमनां दांन॥१०१॥
जो ह्वै तौ मन चाह सौ, बर मांगहुँ सुषदाय॥
दुर्ल्लभ मो दरसन कियैं, नर संताप न पाय॥१०२॥
भागवती जे हैं बडे, साधु अनन्य सुढार॥
मोकौं करत प्रसंन जे, प्रेम भक्ति अनुसार॥१०३॥

॥ श्री नारद उबाच ॥

दासहि दिषयौ लोभ प्रभु, यौं कहिकैं बर दैंन॥
पर्म भक्त प्रहलाद जू, कछु न चह्यौ बर लैंन॥१०४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽध्यायः ॥

(प्रहलाद जी के राज्याभिषेक और त्रिपुरदहन की कथा)

॥ श्री नारद उबाच ॥

दोहा - नारद कहत बिचार इह, मन मैं किय प्रहलाद॥
बर लैबौ सोइ भक्ति बिच, अंतर ह्वै सबिषाद॥ १ ॥

॥ प्रहलाद उबाच ॥

जातैं इह प्रहलाद जू, बोलै बचन रसाल॥
म्हैं आसक्त जु काम मैं, होय रह्यौ बेहाल॥ २ ॥
ताकौं तुम्ह बर दैंन कहि, मति उपजावौ लोभ॥
डरि बिषैंन तैं मुक्ति चहि, लिय तुम्ह सरन सुसोभ॥ ३ ॥
आप कहत बर दैंन सौ, इहै प्रयोजन जास॥
परषत हौ तुम्ह दासकौं, हे स्वांमी सप्रकास॥ ४ ॥
प्रांनी कै चित कांमनां, सोई मल संसार॥
ह्वै हैं दास सुकांमनां, नहिं करिहैं निरधार॥ ५ ॥
तुम्ह तौ करुनावंत प्रभु, यौं कहिकैं बर दैंन॥
मति बहकावौ दासकौं, देहुँ क्रपा करि चैंन॥ ६ ॥
दास हौय सौ बर कछू, नहिं मांगत किहुँ ढार॥
लैंन परीछा इहि कहत, बर दैंनौं करतार॥ ७ ॥

जो जन करि चित कांमनां, करै तुम्हारी सेव॥
सौ सैवक नहिं रावरौ, है जु बणिक अनभेव॥ ८॥
टहल कियैं ही देत कछु, चाकर कौं जो स्वांमि॥
सौ स्वांमी नहिं जांनियैं, हे करता बहु नांमि॥ ९॥
प्रभू तुम्हारौ भक्त म्हैं, हौ अनन्य निहकांम॥
टहल कियैं ही देत कछु, अैसै तुम्ह नहिं स्वांम॥ १०॥
स्वांमी सेवक और जे, कहियत है जगमांहिं॥
तिनकौं सौ सौभाव प्रभु, तुम्ह मैं मो मैं नांहिं॥ ११॥
अरु जो तुम्ह बर दे तौ, म्हैं मांगत हौं चांहिं॥
म्हैरे मन कछु कांमनां, कबहूं उपजै नांहिं॥ १२॥
इंद्री प्रांन सरीर मन, धीरज लछिमी लाज॥
स्मृति धर्म बुधि तेज सत्य, नष्ट होत यै साज॥ १३॥
जब प्रांनी कै कांमनां, उपजत है चित आय॥
जासौं अति दुष हौत है, सौ बरन्यौ नहिं जाय॥ १४॥
जब याकै मन की सकल, दूरि कामना होत॥
तब प्रांनी साष्यात ह्वै, प्रभूहिं रूप उदोत॥ १५॥
महा पुरष नरसिंघ हरि, परमातम भगवांन॥
पूर्नब्रह्म परिनांम म्हैं, तुम्हहिं करत जुत ध्यांन॥ १६॥

॥ श्री नृसिंघ उबाच॥

इहि सुनिकैं नरसिंघ जू, बोलै बचन सुढार॥
तौसै भक्त नहिं चहत कछु, सुनि प्रहलाद कुमार॥ १७॥
यैक मन्वंतर लौं तऊ, मो आग्या अनुसार॥
राज करहु प्रहलाद तुम्ह, दैत्यन कौं निरधार॥ १८॥
म्हैं ब्यापक सब ठौर तिहिं, पूजन करत सुढार॥
अरु मोह कथा सुनत तुम्ह, राज करौ सुषसार॥ १९॥
टालि पुन्य फल भोग सौं, अघ दल पुन्य प्रभाय॥
करि माया तन त्याग फिरि, मो मैं मिलहौ आय॥ २०॥
तैं किय म्हैरी अस्तुति तिहिं, पाठ करै जो कोय॥
सो छुटि बंधन कर्म तैं, मोकौं प्रापति होय॥ २१॥

॥ प्रहलाद उबाच॥

फिरि बोलै प्रहलाद म्हैं, बर मांगत हौं यैक॥
सौ दीजै मुहि क्रिपा करि, राषि दास की टैक॥ २२॥
जांनत हौं नहिं मो पिता, तुम्हरौ प्रभू प्रभाव॥
निंदा करतौ रावरी, पर्यौ प्रकृति कै दाव॥ २३॥

तुम्ह गुर प्रभु सब जक्त कै, तिनकौं इही अग्यांन॥
जांनत हौ निज भ्रात कै, मारनहार निदांन॥२४॥
तातैं तुम्ह पर क्रोध अति, धरत हुतौ बुधिहीन॥
अरु म्हैं सेवग रावरौ, ताहू कौं दुष दीन॥२५॥
ऐसैं दीरघ पापतैं, पितु पबित्र मोह होय॥
अरु तुम्ह सपरस ही सही, पाप रह्यौ नहिं कोय॥२६॥

॥ श्री भगवानुबाच॥

प्रभु बोलै जाकै भयौ, तोसौं पुत्रहिं सुदेस॥
सौ पीढी इकवीस जुत, भयौ पबित्रहिं बिसेस॥२७॥
सांत दांत समदरस चित्त, ऐसै साधु सुकोय॥
बसही कीकट देस तौ, बहू पबित्र जू होय॥२८॥
मारत नहिं मो भक्त कोउ, प्रांनीं कौं किहुँ ढार॥
सब ठां मोही कौं लषत, ह्वै तनमय निरधार॥२९॥
सब मो भक्तन मध्य तूहि, श्रेष्ठ साध प्रहलाद॥
धन्य धन्य तौ बाल बय, करि न सकूं कछु ज्याद॥३०॥
सपरस करि मो अंग सौं, हुव क्रतार्थ तौ तात॥
तौहु वाकै मृतक कै, तू करि कर्म बिष्यात॥३१॥
बैठि पिता कै सथल पैं, मो मैं चित्तहुं लगाय॥
करहुं कर्म आछै कहै, ब्राह्मण ऐसैं भाय॥३२॥

॥ श्री सुक उबाच॥

नारद कहत कि प्रभू की, आग्या कै अनुसार॥
पिता मरै कैं कर्म सब, किय प्रहलाद कुमार॥३३॥
राजतिलक प्रहलाद कै, बिप्रननि कियौ सुढार॥
तिहूं लौक आनंद हुव, दुंदुभि बजे अपार॥३४॥
लषि प्रसंन श्री नरसिंघ जू, सुरनि सहित मुष च्यार॥
करत भयै प्रभु की अस्तुति, जोरि हाथ उहिं बार॥३५॥
सबकैं प्रभु पालक बडे, देव देव जग तात॥
लोकनि कौं दुषदाय षल, हत्यौ भली किय बात॥३६॥
बर दीनौं हौ याहि म्हैं, म्हैरी श्रष्टि जु मध्य॥
तोकौं काहु भांति कौउ, हति सकि है न प्रसध्य॥३७॥
जोग तपस्या जोरहुं सौं, बद्यौ रह्यौ इह दुष्ट॥
मेटी हुती म्रजाद सबै, आपहिं जांनि संपुष्ट॥३८॥
याकौ सुत बैस्नव महा, तिहूं रछा तुम्ह कीन॥
दास आपनौं जांनिकैं, श्रैष्ठ साधपद दीन॥३९॥

इहै रावरै रूप कौ, जोकौ धरिहैं ध्यांन॥
जांकौं काहूं भांति भय, ह्वै हैं नांहिं निदांन॥४०॥
रूप रावरौ मृत्यु तैं, राषनहार निहार॥
याकौं सुमरन कियैं तैं, मिटै हृदै अंधियार॥४१॥

॥ श्री नृसिंहोवाच॥

फिरि बिधि सौं बोलत भयै, प्रभू नरसिंघ अछैहुँ॥
दुष्ट असुर अैसैंन कौं, अैसौं बर मति दैहुँ॥४२॥
जइसैं सापन कौं सुधा, दीजै कबहूं नांहिं॥
अरु दीनैं पछिताइयैं, फेरि आप मनमांहिं॥४३॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि यौं प्रभू, कहि हुव अंतरध्यांन॥
बिधि पूजा कीनी भलैं, करि प्रनांम बुधिवांन॥४४॥
ब्रह्मासिव अरु प्रजापति, सकल देवतनि आदि॥
करत भयै जिन्हकौं भलैं, नमसकार प्रहलादि॥४५॥
तबै सुक्राचार्ज रु सकल, रिषिन सहित बिधि आपु॥
दैत्य दांनवनि कौं नृपति, किय प्रहलाद सथापु॥४६॥
ब्रह्मादिक सब देवता, गवनै निज निज लौक॥
राज कियौ प्रहलाद जू, रहि प्रभु आश्रय वौक॥४७॥
अैसैं प्रभु कै पार्षद, असुर जनम कौं पाय॥
बैर कियौ भगवांन सौं, महासत्रुताइ भाय॥४८॥
कुंभकर्न रांवन वेई, फिरि त्रेता जुग मांहिं॥
मारै श्री रघुनाथ जू, करी सुरन की चांहिं॥४९॥
रामचंद्र जू ही बिषै, मन कौं राषि निदांन॥
रामबांन सौं षेत मैं, दुहुँनि तजै निज प्रांन॥५०॥
दंतबक्र सिसुपाल वेइ, प्रगट हौहि इहिं ठांहिं॥
बैर राषि प्रभु सौं भयै, लीन प्रभूही मांहिं॥५१॥
पापीहूं श्री कृस्नं कौ, धरि चित्त ध्यांन सुढार॥
कृस्नं रूप ही ह्वै गयै, भृंग कीट अनुसार॥५२॥
जथा जथा भगवांन की, भैद रहत जो भक्ति॥
सिसुपालादिक नृपति जे, चिंतत मिलै सु व्यक्ति॥५३॥
सिसुपालादिक मुक्ति कौं, प्राप्त भयै किहुं भाय॥
सौ तुम्ह हम्ह पूछ्यौ हुतौ, कह्यौ तुम्हैं समझाय॥५४॥

ब्रह्मन देव श्रीकृस्न की, कथा रु दैत्यन बध्य॥
चरित भक्त प्रहलाद कौ, जो तिहुँ लोक प्रसध्य॥५५॥
बर्नन जिन्ह गुन कर्म कौ, बर्नन ग्यांन बैराग॥
उतपति पालन प्रलै कै, करता प्रभू अथाग॥५६॥
लघु दीरघ प्रांनीन कै, समैं पाय है नास॥
धर्म बैस्नव जुक्त अैक, इही बात सुप्रकास॥५७॥
जो कौउ सुनैं चरित्र अैं, आछैं चित्तहिं लगाय॥
ताकै बंधन कर्म सबै, सहजैं ही छुटि जाय॥५८॥
लीला प्रभु नरसिंघ की, दैत्य बध्य संजुक्ति॥
चरित भक्त प्रहलाद कौं, सुनैं सुपावै मुक्ति॥५९॥
नृपति जुधिष्टर तुम्ह बडे, भागवंत जगमांहिं॥
पूर्न ब्रह्म श्री कृस्न जू, बसत गेह तिन ठांहिं॥६०॥
इन्हकैं दरसन कौं सकल, मुनि आवत तुम्ह गेह॥
साध ढूंढहीं इनहिं कौं, कृस्न ब्रह्म अनछेह॥६१॥
तुम्हरै मामा कै सुतन, कृस्न रूप आनंद॥
पूजि आत्म गुर सुहृद प्रिय, करन कार्ज सुषकंद॥६२॥
कहि न सकत जिन रूप कौं, महादेव मुष च्यार॥
इन्हहिं पायबै कौं करत, मौंनि भक्ति निरधार॥६३॥
सौ हम्ह ऊपर प्रसंन्न हौ, अैइ कृस्नं करतार॥
जिन्ह जादव कुल मैं प्रगटि, दूरि कियौ भुव भार॥६४॥
पहलैं सिव जस मय दैत्य, दियौ हुतौ सब षौय॥
तव सिव जस राष्यौ प्रभू, अैइ सहायक हौय॥६५॥

॥ राजोबाच॥

नृप पूछत मय दैत्य सिव, जस षोयौ किहुँ भाय॥
अरु सिव जस श्री कृस्न जू, राष्यौ कौंनु उपाय॥६६॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि इक समैं, सुरनि असुर लिय जीति॥
तबै असुर मय दैत्य कैं, सरन गयै बल बीति॥६७॥
जांनत हौं मय दैत्य बह, माया बहुँत प्रकार॥
तीन बिमांन सु मय दैत्य, रचि दीनैं उहिंबार॥६८॥
रूपैं सोनैं लौह कै, नगर समांन सुढार॥
ताकैं मधि रचना बिबिधि, किय मयनैं निरधार॥६९॥
कबहूं दीसत कबहुँ नहिं, दीसत तिहूँ बिमांन॥
ता परि चढि आसुर करत, लोकनि नास निदांन॥७०॥

तब इंद्रादिक दैवता, सिव कैं सरनैं जाय॥
कही त्रिपुर दैत्यन हतौ, हम्हरी करौ सहाय॥७१॥
समाधान सिव सुरन कौ, करि धनु सर लै पांनि॥
त्रिपुर आसुरन पैं भयै, चलवत त्रय द्रिग बांनि॥७२॥
सिव कै सर अैसै चलै, जिनसौं तिहूं बिमांन॥
रबि किर्नन जुत ढपि गयौ, द्रिष्टि न परत निदांन॥७३॥
जुत बिमांन गिरि दैत्य मरि, गयै सकल उहिं बारि॥
तिह्नैं मय दैत्य कूप इक, बिच देत भयौ डारि॥७४॥
अमृत सम वा कूप कौं, जल तिहँ सपरस भाय॥
अंग बज्र सम ह्वै उठै, असुर महा बल पाय॥७५॥
असुर जियैं लषि कैं भई, चिंता सिवहिं अनपार॥
तबै उपाय इक बिस्नु नैं, कियौ भलौ उहिं बार॥७६॥
ब्रह्मा कौं बछरा कियौ, आपु बिस्नु जु ह्वै गाय॥
पैंठि त्रिपुर मधि कूप जल, पियौ सुधा सम जाय॥७७॥
असुर रहै देषत तऊ, मनैं इह्नैं नहिं कीन॥
लष्यौ दैत्य मय सुधा जल, गाय बछ पीय लीन॥७८॥
तब दैत्यन सौं मय दैत्य, अैसै कह्यौ बिचारि॥
ईस्वर ईछा सुर असुर, नर न सकै कौ टारि॥७९॥
धर्म ग्यांन बैराग्य तप, क्रिया सर्ब यै सक्ति॥
जुध समैंम्ह सिव कौं दई, बिस्नू होय बसि भक्ति॥८०॥
भुजा सारथी अश्व रथ, कवच जुक्त धनुबांन॥
बिस्नु जु अपनीं सक्ति सौं, रचि दिय सिवहिं निदांन॥८१॥
अभिजित नांम महूर्त मधि, सिव निज बांन चलाय॥
तिहुँ पुर असुरन कै सुद्रढ, करै भस्म सुष पाय॥८२॥
बजै नगारै सुरन कैं, बरषै पुहप अपार॥
अमर पितर गंधर्ब किय, जै जै सब्द उचार॥८३॥
निर्त्ति करत भई अपसरा, रचि उत्सव तजि सोक॥
मारि त्रिपुर आसुरन सिव, गवन कियौ निज लोक॥८४॥
लीला अैसी बउत प्रभु, किय धरि धरि अवतार॥
जगतहि करत पबित्र तै, दैंन मुक्ति सुषसार॥८५॥
सौ तुम्ह सौं बर्नन करी, म्हैं निज सक्ति समांन॥
और जु पूछौ सोइ अब, आछैं करूँ बषांन॥८६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते दसमोऽध्यायः ॥ १० ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकादसोऽध्यायः ॥

(मानवधर्म तथा वर्णधर्म एवं स्त्री धर्म का निरुपण)

॥ श्री सुक उबाच ॥

सुक कहत कि नृप जुधिष्टिर, पूरन भक्त पबित्र॥
नारद सौं पूछी बहुरि, सुनि प्रहलाद चरित्र॥ १॥

॥ जुधिष्ठिर उबाच ॥

हे मुनि हम्ह चाहत सुन्यौ, बरनाश्रम कै धर्म॥
जिन धर्मन सौं प्रगट ह्वै, ग्यांन भक्ति सुभ मर्म॥ २॥
बिधि पुत्रन मैं श्रेष्ठ अति, हौ नारद जू आप॥
तुम्ह मधि जोग समाधि सब, दीरघ सक्ति सथाप॥ ३॥
बैस्नव करुणावंत द्विज, तुम्ह से सांत सुभाय॥
जे जांनत हैं गोपि धर्म, सौ न और पैं पाय॥ ४॥

॥ श्री नारद उबाच ॥

इही सुनि नारद जु कहत, करि प्रभु कौ परिनांम॥
जो हरि कैं मुष सुन्यौ सौ, कहौं धर्म अभिरांम॥ ५॥
जे नरनारायन प्रगट, होय धर्म कै गेह॥
तपस्या उत्तर दिसहि कौं, करत भयै अनछेह॥ ६॥
धर्म मूल सब बेदमय, जे हरि पूरन कांम॥
तिनसौं मन क्रम बचन करि, तिनकौं है परनांम॥ ७॥
धर्म बेदपाठी द्विजन, कहै समृतिनि मधि॥
वे ही धर्म प्रमांन प्रभु, जिनसौं प्रसंन प्रसधि॥ ८॥
सत्य दया तप सउच सहि, रहनौं षेद अनेक॥
मन इंद्री बसि राषनौं, जुत संतोष बिबेक॥ ९॥
हिंसा न करणी जीवकी, ब्रह्मचर्य पुनि त्याग॥
पढनौं बेद आर्जव सौं, कोमलता बडभाग॥ १०॥
सब ठां द्रिष्टि समांन तिन, करनी साधन सेव॥
राषै आत्म बिचार रहि, मौंन जुक्त अनभेव॥ ११॥
मग प्रबर्त्त नांहिं राषनौं, चित लगाय निरधार॥
संसारी नर निर्फल क्रिया, ऐसौ करै बिचार॥ १२॥
प्राप्त अन्न जो हौय सौ, बांटि सबन सौं षाय॥
सकल ठौर राषै सही, ईस्वर बुद्धिहिं सदाय॥ १३॥
सुनैं चरित भगवांन कै, किरतन करै उमांहिं॥
सेवा सुमिरन, दास्य सषि, पूजन, बंदन चांहिं॥ १४॥
आत्म समर्पण जुत धर्म अैं, मर्म जो तीस प्रकार॥
सबै बतायै हैं नरनि, प्रसंन हौंन करतार॥ १५॥

जामैं गरभाधांन लौं, आदि सकल संसकार॥
भयै हौंहिं तिनकौं कियौं, अधिकारी मुष च्यार॥१६॥
सौ ब्राह्मन कहियतु सही, ऊंच बर्न चहूं मांहिं॥
ताकौ मुष भगवांन कौ, निश्चै बेद बतांहिं॥१७॥
करनौं बेदाधेन नित, तपस्या जिग्य रु दांन॥
ब्राह्मन छत्री बैस कै, अै हैं धर्म प्रमांन॥१८॥
अरु जा आश्रम मध्य ह्वै, ता आश्रम की रीति॥
क्रिया करै आछैं समझि, बेद बिदित जो नीति॥१९॥
करवावै जिग्य दांन लै, और पढावै बेद॥
अै ब्राह्मन हीं कै सही, जांनहुँ धर्म सुभेद॥२०॥
छित्री बैस्यहिं नाहिं कह्यौ, लैंन दांन अपनाय॥
ब्राह्मण छित्री बैस्य कै, और धर्म इक भाय॥२१॥
रिछा परजान की करै, जो छित्री हो नृपाल॥
प्रजा पास कर लैय द्विज, पैं नहिं लै किहुं काल॥२२॥
बैस्य करै ब्यापार अरु, द्विज बैस्नव की सेव॥
सूद्र सैव द्विज साध की, करै जांनि सुभ भेव॥२३॥
षैती करनी ल्यांवनी, भीष मांगि तजि मांनि॥
ल्याय देय कौउ सहज मैं, लैंनौं सोइ निदांनि॥२४॥
हाट तरै जो बनिक कैं, परै अंन बिषराय॥
बीन लै सौ रु सिलोछंन, सौं ही समैं बिताय॥२५॥
जांनहुँ ब्राह्मन बर्न की, बृति अैं च्यार प्रकार॥
यैक यैक तैं श्रेष्ट हैं, पांचौ बृत्ति निरधार॥२६॥
उत्तम बृत्ति नांहिंन करै, नीच जाति जन कोय॥
अरु जो काहू बेर मैं, करै बिपति जो होय॥२७॥
ज्यौंहिं छित्री आजीवका, काज बिपति कै मांहिं॥
बेद पढाय कराय जिग्य, ब्राह्मन बृत्ति निबांहिं॥२८॥
रित अमृत मृत प्रमृत अरु, सत्यानृत अै नांम॥
पांचौ द्विज बृत्ति कै कहै, सुनहुँ नृपति गुनधांम॥२९॥
पर्यौ षैत कौ अंन कै, ह्वै तर पर्यौ दुकांन॥
बीन लैय सौ रित बृत्ति, कहियत लेहुँ पिछांन॥३०॥
मिलैं बिनां जांचै कछू, अमृत बृत्ति सुकहाय॥
भीष मांगि ल्यावै सोइ, मृत बृति जांनहु राय॥३१॥
षेती करै सु बृत्ति प्रमृत, कहियत है सप्रमांन॥
अरु ब्यापार करै सुबृति, सत्यानृत जु निदांन॥३२॥

करै बिप्र अैंहिं बृत्ति कौं, यैक बृत्य करै नांहिं॥
नीच सैव कौं कहत है, स्वान बृत्ति बेद मांहिं॥३३॥
बिप्र बेदमय रु देवमय, छत्री है जु निरधार॥
तिह्नैं नीच सेवा करन , कह्यौ न काहू बार॥३४॥
सम दम सुचि संतोष तप, षिमा सरलता ग्यांन॥
दया भक्ति सत्य बोलनौं, अैं द्विज लछिन निदांन॥३५॥
तैज सूरता पराक्रम, षिमा सेव द्विज दांन॥
सबनि रछा मन जीतबौ, छित्री लछिन जु प्रमांन॥३६॥
करै भक्ति गुरदेव हरि, पोषै बर्न जु तीन॥
अरु ईस्वर कौ माननौं, उद्दिम मांहिं जु प्रबीन॥३७॥
अै लछिन है बैस्य कै, सुनिअैं नृपति सुजांन॥
अबैहुँ सूद्र लछिननि कौं, आछैं करौं बषांन॥३८॥
सौच नम्रता स्वांमि की, सेव प्रनांम सुढार॥
सत्य बोलनौं पंच जिग्य, करनौं भलैं प्रकार॥३९॥
रछा करनी बिप्र गौ की, चोरी करनी नांहिं।॥
अैंहिं लछिन हैं सूद्र कै, समझि लेहुँ मनमांहिं॥४०॥
साधै पतिब्रत धर्म कौं, करनी पति की सेव॥
पति मनोरथ पूर्न करै, बोलै सत्य सुभेव॥४१॥
इंद्री दमन रु नम्रता, समैं समैं पति सेव॥
प्यारै बचन रु सति लियैं, कहै सबनि अनभेव॥४२॥
पति कै बंधुन की करै, सेवा भलैं प्रकार॥
राषै चित संतोष तजि, चंचलता निरधार॥४३॥
सुथरौ राषैहुं गृह बहु, चित्र बिचित्र जो बनाय॥
जथा जोग्य पहरैं रहै, भूषन अंग सुभाय॥४४॥
बासन राषै ऊजरै रु, रहै पबित्र जु आपु॥
ह्वै अस्त्री धरमातमा, चित चतुराय सथापु॥४५॥
सावधांन पति प्रेम मैं, रहै भलैं अनुसार॥
है अस्त्री पतिब्रता कै, अैंहिं लछिन सुभढार॥४६॥
जा पति कौं लागै न ह्वै, पाप जु पंच प्रकार॥
अस्त्री तिहिं सेवा करै, जांनि प्रभू भरतार॥४७॥
सौ तिय प्रभु कै लोक कौं, प्रापति होय सुजाय॥
पतिहूं कौ उद्धारहुँ पुनि, करै महा सुषदाय॥४८॥
नीच बरन संकर जितै, आदि चंडाल चमार॥
करै आपनैं बरन कौ, धर्म भलैं अनुसार॥४९॥

इक चोरी अरु पापकृत, जोग्य करन है नांहिं॥
उद्यम और अनैंक करि, षाउ जितै कुल मांहिं॥५०॥
जो जाकौ है धर्म सौ, जाकौं श्रेष्ठ निदांन॥
इहै बतावत है निगम, प्रभु आग्यां उनमांन॥५१॥
करैं आपनौं धर्म सौ, निरगुनता कौ पाय॥
जीति लेय गुन प्रकृति कै, त्रिबिधि संताप मिटाय॥५२॥
बहुँत बेर ज्यौं षेत कौं, बाहे फिर वामांहिं॥
अंन बाहीयै तौ कछू, उपजै क्यूंहूं नांहिं॥५३॥
जइसैं ही संसार कै, भोग कियैं बहु बार॥
छूटि जात है कांमनां, सब मनतैं निरधार॥५४॥
थोरै भोग जु कियैं तैं, मिटत कांमनां नांहिं॥
करत कामना ही महा, ष्वारी सब जग मांहिं॥५५॥
जइसैं डारै तैं बहुँत, घी तैं अग्नि बुझ जात॥
बूंद बूंद जो डारियैं, तौ बरि उठै बिष्यात॥५६॥
धर्म सही जा बर्न कौ, जाही बर्ण जु मध्य॥
लषियैं सोही जांनियैं, जाकौ धर्म प्रसध्य॥५७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(ब्रह्मचर्य्य और वानप्रस्थ आश्रमों के नियम)

॥ श्री नारद उबाच॥

दोहा - नारद जू यौं कहत हैं, ब्रह्मचारी जो हौय॥
सौ गुर की सैवा करै, किंकर सम हित गौय॥ १॥
सेवा गुर सुर अग्नि की, करै जु सांझ संबेर॥
अरु गायत्री जपहिं करै, मौंन जुक्त दुहुँ बेर॥ २॥
बहुरि बुलावै गुर जबै, पढै बेद मन लाय॥
आदि अंत लौं नमसक्रत, गुरहिं करै सिर नाय॥ ३॥
बस्त्र चर्म मृग मेषला, जटा कमंडल दंड॥
धरै जनैऊ हाथ कुस, राषै श्रद्धा उमंड॥ ४॥
भिछा जो कछू मांगि कैं, ल्यावै सांझ संवार॥
सो गुर कैं आगैं धरैं, द्रिढ इछा अनुसार॥ ५॥

जो गुर आग्या देय तौ, भोजन करै सुभाय॥
नहिं तौ आप नचिंत ह्वै, ब्रत ही सौं रहि जाय॥ ६॥
सावधांन रहनौं सदा, करनौं अलप अहार॥
निज मन इंद्री जीति कैं, बसि राषै निरधार॥ ७॥
ब्रह्मचारी अस्त्रीन सौं, नहिं बोलै किहुँ हेत॥
इंद्री है बलवंत करि, मन कौं चंचल देत॥ ८॥
उबटन तेल लगांवनौ, स्नांन बार सुरझांन॥
यै गुरु अस्त्रीन सौं न कर, वावै काज निदांन॥ ९॥
पुरष जु घृत कै कुंभ सम, अस्त्री है अग्नि समांन॥
तातैं रहै न ताहुँ कै, निकट अैकंत सथांन॥ १०॥
या सरीर कौ जीव इह, निश्चै झूठ निदांन॥
जबलौं लषै न आपुकौं, ब्रह्मरूप उनमांन॥ ११॥
बिषै भोग की जबहिं लौं, बुधि मिटत है नांहिं॥
तातैं रहनौं जोग्य नित, सावधांनता मांहिं॥ १२॥
संन्यासी अरु गृहस्थ कौ, इही धर्म सुप्रमांन॥
गृहस्थ धर्म इतनौं अधिक, करै प्रगट संतांन॥ १३॥
उबटन सुमन सुगंध मद, मांस आभरण अंग॥
चित्रहूं मैं तिय रूप कौं, दरसन किहूं प्रसंग॥ १४॥
गृहस्थ हु कौ यै कार्ज नहिं, करन कहै ब्रत मांहिं॥
अवर गृहस्थ हु निज धर्म कौ, भलैं निभाहै चांहिं॥ १५॥
ब्रह्मचारी गुरुकुल बिषै, पढै बेद जुत अर्थ॥
गुर कौ राजी करै दै, दछिनां सम सामर्थ॥ १६॥
पुनि गृहस्थ संन्यास लै, वानप्रस्थ कै होय॥
ब्रह्मचारी ही रहै निज, चित्तहिं आत्म बुधि गोय॥ १७॥
अग्नि बिषै गुर कै बिषै, निज बिषै रु सब मध्य॥
प्रभू बिराजत जुदै हूं, अैसो लषै प्रसध्य॥ १८॥
संन्यासी रु गृहस्थ, ब्रह्मचारी वांन प्रहस्थ॥
अैं जो साधै धर्म सौ, पावै प्रभू समस्थ॥ १९॥
बांनप्रस्थ कौ धर्म अब, बर्नन करत बनाय॥
जिन्हकौं साधन कियै तैं, महरलौक कौं जाय॥ २०॥
बाह्यौ अंन्न जु षैत कौ, षाय न कछू प्रकार॥
अरु जो असमैं भयौ है, सौ न षाय निरधार॥ २१॥
बिन बाह्यौ जो षैत कौ, अन्न सवां लैं षाइ॥
कै पावक मैं भूंजि लै, कै बिच घाम सुषाइ॥ २२॥

बनहूं बिषै निमंतहिं सुर, हौम जु करै सदांहिं॥
चालै अंन उत्तम जबै, षाय पुरानौं नांहिं॥२३॥
अग्नि हौत्र की अग्नि कौ, राषन काज बिचारि॥
परबतहिं की कंदरा कै, पर्ण कुटी बिच बारि॥२४॥
सीत घाम बरषा पवन, सहि रहनौं सुष मांनिं॥
करनौं जतन न देहि कौं, काहू भांति निदांन॥२५॥
कच नष बलकल चर्म मृग, दंड कमंडल आदि॥
अै बस्तू जु धारन करै, हिर्दै अधिक अहलादि॥२६॥
अैसै बारह बरष कै, आठ बरष कै च्यार॥
कै इक द्वै सम सक्ति रहै, बानप्रस्थ अनुसार॥२७॥
जब जो बढै सरीर मैं, बृद्ध अवस्था जु आनि॥
साध सकैं नहिं धर्म अरु, प्रगट्यौ होय न ग्यांन॥२८॥
तौ त्यागन करि अंन कौ, अहंता ममता टारि॥
करै सथापन अग्नि कौ, देह बिषै अनुसारि॥२९॥
पुनि सरीर कै कार्न मधि, लय सरीर करि देय॥
नव द्वारनि आकास मैं, स्वास पवन मधि गेय॥३०॥
अग्नि अग्नि मैं लय करै, जल लय जल कैं मांहिं॥
रुधिर राधिक फैनहुं करि, दै लय जलही ठांहिं॥३१॥
अरु सरीर कौ लय करै, प्रिथवी बीच बिचारि॥
इंद्री वाकहि बचन जुत, लय करि अग्नि मंझारि॥३२॥
कार्ज सहित हाथनि करै, लय बासव कै मध्य॥
गति जुत चरननि लय करै, बिस्नु मांहिं सप्रसध्य॥३३॥
करहीं लय इंद्रीन कौ, प्रजापतिन कै मांहिं॥
अरु लय गुद इंद्री करै, निश्चै मृतुही ठांहिं॥३४॥
सब्द सहित श्रवननि करै, लय बिच दसौं दिसान॥
सपरस जुक्त तुचा करै, लय बिच पवन निदांन॥३५॥
रूप सहित नैत्रनि करै, लय रबि बीच सुभाय॥
दसन सहित जीभहिं करै, लय जल मैं सुषपाय॥३६॥
इंद्री घ्राणहिं गंधजुत, भुव मैं लय करि दैय॥
सहित मनौरथ लय करै, मन ससि बीच सुभेय॥३७॥
बुधि ब्रह्मा मैं लय करै, थिर करि भलैं प्रकार॥
रुद्र बीच पुनि लय करै, कर्म सहित अहंकार॥३८॥
जुक्त सत्त्वगुन सुचित्त कौ, लय करि जीवहि मांहिं॥
जीव त्रिगुन जुत लय करै, ब्रह्मतत्व कै ठांहिं॥३९॥

प्रिथवी जल मैं लय करै, जल लय अग्निहिं मांहिं॥
अग्नि बायु मधि लय रु लय, पवन करै नभ ठांहिं॥४०॥
नभ करि लय अहंकार मैं, महतत्व मधि अहंकार॥
महतत्व माया मद्धि लय, माया ब्रह्म मंझार॥४१॥
यौं लय करि तत्वहिं तत्व मैं, निज ईछा अनुभाय॥
बानप्रस्थ अैसै करै, निज तन त्याग उपाय॥४२॥
ब्रह्म रूप निज जांनिकै, छौडि प्रकृति बिबहार॥
मुक्त हौत संसार तैं, लहि आनंद उदार॥४३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादसोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदसोध्यायः ॥

(यतिधर्म का निरुपण और अवधूत प्रहलाद संवाद)

॥ श्री नारद उबाच॥

चोपाई - कहत नारद ग्यांन प्रगटांही। बानप्रहस्थाश्रमहिं जो मांही॥
अरु समझै भलैं करिकैं मर्म। बानप्रहस्थाश्रम के सब धर्म॥ १॥
तौ निज तन कौ त्यागन जु करै। अरु जो ब्रह्म ग्यांनहिं चित्त धरै॥
बानप्रहस्थाश्रम कैहुँ आगैं। लै संन्यास सुभग बड भागैं॥ २॥
अबै धर्म संन्यास बषांनौ। सुनियैं नृपति भलैं उनमांनौं॥
सकल बस्तू कौ त्यागन जु करै। ईछा कछू नांहिनैं जु धरै॥ ३॥
अैक देह मात्रहि रहि जावै। अैसैं प्रथवी बिच भरमावै॥
ग्रांम नगर बिच बहुँत ना रहै। बास रात्रि इक कबहुंक जु चहै॥ ४॥
पहरै इतनौं बस्त्र प्रबीना। जासौं ढकै ठौर कोपीना॥
अैक दंड राषै निज हाथा। और बस्तु कौ करै न साथा॥ ५॥
रहै अकेलौ आत्म बिचारैं। करै न किहुँ आश्रय किहूं बारैं॥
सज्जनता सबहिंन सौं राषै। प्रभु आश्रम निति रहि अभिलाषै॥ ६॥
आत्म जुदौ कारिज कारन तैं। तामैं लषै जक्त सब मन तैं॥
अरु कारिज कारनहिं कैं मध्य। लषै आत्म परब्रह्महिं प्रसध्य॥ ७॥
संधि समैं जागन कै मांहीं। आत्म तत्त्व कौं लषै सचांहीं॥
माया मात्र मोछ बंध जांनै। जीवन मरन मनोर्थ न ठांनैं॥ ८॥
जासौं जग कौ उतपति नासा। अैसौ काल जोरवर भासा॥
जिहँ आधीन सबन कौं जांनैं। काल रूप प्रभु कौं पहचांनैं॥ ९॥
आत्म विचार न है जिन्ह मांहीं। तिन्ह सास्त्रन मैं चित्त न लगांहीं॥

जौतिस आदि सास्त्र नाहिं पढै। अरु काहू सौं बाद नहिं बढै॥ १०॥
सिष्य हूं बउँत नांहिंनै करै। बऊत ग्रंथ पढन न चित्त धरै॥
करै न बउँत बार बाष्यांनहिं। मठ न बनावै बउत सथांनहिं॥ ११॥
अरु जे संन्यासी जुत ग्यांनहिं। परमहंस ह्वै चित्त समांनहिं॥
जिनकौं संन्यासाश्रमहिं धर्म। कियैं अनकियैं नाहिं अघकर्म॥ १२॥
सब ठां आपहिं रहैं छिपायैं। आत्म बिचारहिं चित्त निज छायैं॥
पंडित पैं ऊपर तैं आपहिं। बौरौ बालक रूप सथापहिं॥ १३॥
चित्त त्रिकाल दरस जु उदारा। चुप ह्वै बैठि रहै निरधारा॥
गूंगौ सौ सब लौक सुजांनैं। महापुरस कौ नाहिं पहचांनैं॥ १४॥
तापर कहूं अैक इतिहासहिं। सुनियैं नृपति श्रवन दै जासहिं॥
दत्तात्रेय प्रहलाद संबादू। सुनौं कहत हौं धरि अहिलादू॥ १५॥
सहियाचल सु सिषर पैं सरिता। काबैरी नदि नांम सुधरिता॥
ताकैं निकट भूमि कै ऊपर। दत्तात्रैय है परै भक्त बर॥ १६॥
धूरि अंग मैं लिपटि रहांहीं। तासौं कांति ढपी दरसांहीं॥
मंत्रिन जुत प्रहलाद फिरत हैं। तत्त्व लौक कौ लषि बै जु चहैं॥ १७॥
दत्तात्रैय जू कौ तिन्ह जायी। दरसन कियौ महासुषदायी॥
बचन सरीर बउत बिधि कर्म। रु उन्हकैं बर्णाश्रम सुभधर्म॥ १८॥
इन्ह जतननि कैं करि अनुसारा। कौ नहिं जांन सकत करतारा॥
जा ईस्वर कौ रूप उदारा। है किन दत्तात्रैय निरधारा॥ १९॥
इहै ठीक करबै प्रहलादहिं। गयै उहां अति धरि अहिलादहिं॥
उन्हकी पूजा करि करि बंदनहुँ। कहै बचन प्रहलाद भक्त जनहुँ॥ २०॥
हे मुनि पुष्ट सरीर तिहारौ। बिनां कछू उद्यिम अनुसारौ॥
जे कछु उद्दिम करत सुढारा। तिनकैं द्रिव्य होत अनपारा॥ २१॥
द्रिब्यबंत बहु भोग करत हैं। भोगबंत तन पुष्ट धरत हैं॥
तुम्ह तौ रहत प्रथवी पर परैं। उद्यिम कछू कबहूं नहिं करैं॥ २२॥
तातैं द्रिब्य तुम्हारैं नांहीं। बिनां द्रिब्यनहिं भोग सचांहीं॥
अरु बिन भोग सरीर तुम्हारौ। कइसैं पुष्ट रहत है भारौ॥ २३॥
सौ कहियै मो सौं समझायी। करिकैं क्रिपा भलैं अनुभायी॥
तुम्ह समरथ दरसी जु त्रिकाला। अति प्रबीन जुत ग्यांन रसाला॥ २४॥
तऊ करत कछु उद्यिम नांहीं। और लोक सब उद्यिम मांहीं॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि अैसै भायी। सुनि प्रहलाद बचन सुपदायी॥ २५॥

॥ ब्राह्मण उबाच॥

दत्तात्रैय जू हसि कैं बोलै। बचन सुधा सम सुषद अमोलै॥
हे प्रहलाद अधिक चित्त चांहीं। उत्तम जन तौ करत सरांहीं॥ २६॥

ग्यांन द्रिष्टि सौं तुम्ह सब जांनत। प्रबृति निबृति मग फल पहचांनत॥
हृदै तुम्हारै मधि नारायन। ते प्रभु अपनी भक्ति प्रभायन॥ २७॥
दूरि करत अग्यांन प्रकारा। ज्यूं रबि टारत है अंधियारा॥
तौहू तुम्ह पूछत हौ बाता। सौ मैं बरनि कहूं बिषयाता॥ २८॥
कियौ पबित्र जो आपकौं चहै। बात कहत सौइ तुम्ह सौं रहै॥
पूर्न हौत नाहिं त्रिस्नां मर्म। म्हैं तिहिं त्रिस्नां सौ किये कर्म॥ २९॥
तिन कर्मन सौं बारंबारा। पायैं जनम अनैंक प्रकारा॥
मनुष जनम दुर्लभ इह जांनौ। स्वर्ग मोछि कौ द्वार प्रमांनौ॥ ३०॥
सौ पइयत हैं भाग प्रभाहीं। जाकौं सुरगनहूं तरसाहीं॥
या मानुष्य जनम कैं मांहीं। स्त्री पुरष गृहस्थ सब ठांहीं॥ ३१॥
सुष के निमित्त रु दुषहिं नसांवन। कर्म करत है भलै प्रभांवन॥
पैं उनकौं अति दुषही होतहुँ। इही लषि कैं उलटौ उद्दोतहुं॥ ३२॥
म्हैं चित्त निबृति मार्ग में दीनौं। मग प्रवर्ति तैं न्यारौ कीनौं॥
सुष तौ आत्म रूप कै मांहीं। पईयत है निर्भय अधिकांहीं॥ ३३॥
सौ सुष तौ लहियैं बिन थागहिं। सब कर्मन कौं कीनैं त्यागहिं॥
तातैं झूठै भोग बिडारिहिं। पर्यौ रहत म्हैं भूमि बिचारिहिं॥ ३४॥
अद्भुत आत्म स्वरूप भुलांहीं। चित्त दै झूठै भेदनि मांहीं॥
इह प्रांनी पावत संसारा। तामैं दुष्य अनैंक प्रकारा॥ ३५॥
जइसैं ढक्यौ सिंवारन सौं जल। ताकौं तजि प्यासौ बिन ही कल॥
मृग त्रिस्नांहुँ कौं दौरे पचै। तामैं महा परिश्रमहुँ सचै॥ ३६॥
ज्यौं मूरष आत्म तत्त्व परिहरि। जांनत बस्तु और सांची करि॥
इहै दइब आधीन सरीरा। तासौ चहै लह्यौ सुष सीरा॥ ३७॥
अरु दुष दूरि करन कैं काजैं। प्रांनी क्रिया अनेकनि साजैं॥
तै सब निश्चै निरफल हौतहिं। कर्म सकांमनि दुषहुँ उद्दोतहिं॥ ३८॥
या प्रांनी कौं त्रिबिध दुपन मैं। इक दुष लग्यौ रहत निसदिन मैं॥
बउंत कष्ट सौ द्रिब्य कमाया। भोग कियौ तौ का सुषदाया॥ ३९॥
है लोभी धनवंत अथांहीं। अरु इंद्री जीती है नांहीं॥
डर सौं निसदिन नींद ना परै। तिनकौं नितप्रतहिं दुष अनुसरै॥ ४०॥
नृपति चोर दुसमन बंधुन तैं। समैं पछी पसु जाछिग जन तैं॥
अरु अपनैंहू भोग करन तैं। डरत रहै धनवंत सबन तैं॥ ४१॥
मति म्हैरो धन जात जू रहै। अैसौ चित्तहिं बिचार नित रहै॥
क्रोध मोह भय परिश्रम सोकू। प्रांन द्रिब्य कै डर की वोकू॥ ४२॥
इतनीं बात प्रगट जब होतहिं। प्रांनी कै चित्त सदा उदोतहिं॥
तातैं प्रांन दिब्यहुँ कै बिषै। प्रांनी कबहूं चाह नहिं रषै॥ ४३॥
सर्प सहत की मषी बिचारै। अै दुहुँ गुरु है बडे हम्हारै॥

हम्ह सीष्यौं बैराग्य संतोषा। इन्हीं दुहुँन तैं धरि हित पोषा॥ ४४॥
मषी सहत की तैं बैरागहुँ। हम्ह सीष्यौ सुनियैं बडभागहुँ॥
मषी सहत की सहतहिं जोरैं। उन्हकौं मारि लैत कौ औरैं॥ ४५॥
तइसैं धनहुं जोरिबैं ल्यावै। तौ कौ और मारि लै जावै॥
म्हैं कछु क्रिया करत हौं नांहीं। पर्यौ रहत हौं प्रथवी ठांहीं॥ ४६॥
मिलै सहज मैं जो कछु आयी। ताहि मैं रहौ प्रसंन सुभायी॥
अरु जो कबहुँ मिलै कछु नांहीं। तौ नचिंत सुय रहौ सुठांहीं॥ ४७॥
इह संतोष सर्प अजगर तैं। हम्ह सीष्यौं आछै अवसर तैं॥
कबहुंक वहुँत रु थोरौ कबहूं। कबहुंक बुरौ भलौ जो लहहूं॥ ४८॥
जास अंन्न कौ भोजनहिं करूं। ताही मैं संतोषहिं सुधरूं॥
अंन श्रधा सौं दैही कोई। अरु अपमांन ठौर किहुं होई॥ ४९॥
कबहुँ रात्रि कबहूं दिन मांहीं। मो कौं भोजन अन्न मिलांहीं॥
कबहुँ मिलत है बस्त्र रसाला। कबहूं बलकल अरु मृगछाला॥ ५०॥
मिलत कर्म बस तैं जो आई। सोई पहरत हौं सुषपाई॥
कबहुँ पतउवा रज पाथर त्रिन। इन्हपैं सोवत हौं करि थिर मन॥ ५१॥
कबहूं आछैं महलन मांहीं। कौ मो लीनैं सैज बिछांहीं॥
तौ कबहूं सौवत हौं ता पर। सुष न कछू मानूं हूं जा पर॥ ५२॥
कबहूं सनांन कौ करवावै। चंदन लेप करत तन लावै॥
अदभुत सुंदर बसन बनावत। भूषन पहुप माल पहरावत॥ ५३॥
कबहुं अस्व गज रथ पैं स्वारूं। कबहूं नगन फिरौं निरधारूं॥
म्हैं किहुँ निंदा अस्तुति करूं नहिं। मत्त रहूं चित्तहुँ आत्म तत्व लहिं॥ ५४॥
तरह अनैकन कै स्वाभावा। प्रांनिन कै है प्रगट जनावा॥
म्हैं चाहत सबकौं कल्यांना। किहुं सौं बैर न प्रीत पिछांना॥ ५५॥
भेद होमि दैं बृत्ति कै मांहीं। अरु बृत्ति होमि देय मनमांहीं॥
मन होमैं सात्विक अहंकारा। अहंकार महतत्व मंझारा॥ ५६॥
महतत्व कौ माया मैंहिं धरैं। माया लीन ब्रह्म मैंहिं करैं॥
अैसैं करि परब्रह्म बिचारा। त्याग करै सब क्रिया प्रकारा॥ ५७॥
इहै आपनौं गुप्त बृतांतहिं। तुम्हहिं कह्यौ म्हैं आछीं भांतहिं॥
लोक सास्त्र सौं मो चरित इह। न्यारौ इहि है सौ दीनौं कह॥ ५८॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि या अनुसारा। दत्तात्रेय पैं धर्म सुढारा॥
सुनि उन्हकौं करिकैं परिनांमा। किय प्रहलाद गवन निज धांमा॥ ५९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दसोऽध्यायः ॥

(गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार)

॥ राजोबाच ॥

दोहा - नृपति जुधिष्ठिर कहत है, हे मुनि गृहस्थ जु कौय॥
कहियैं कइसी भांति सौं, प्राप्त मुक्ति कौं हौय॥ १॥
ह्वै रहै हैं आसक्त हम्ह, तौ या गृह कै मांहिं॥
याही कौं समझत भलौ, मुक्ति भेद सुधि नांहिं॥ २॥

॥ श्री नारद उबाच॥

नारद कहत कि गेह मैं, रहिकैं गृहस्थ सुढार॥
उच्च क्रिया जे हौय तै, करि आछैं अनुसार॥ ३॥
करै समर्पन प्रभू मैं, गहि साधुनि कौं संग॥
हरि अवतारन की कथा, सुनैं सहित उछरंग॥ ४॥
श्रद्धा करिकैं समैं नित, सांत पुरष जे संत॥
तिन्हकैं निकट जु बैठिं कैं, आदर सहित सुनंत॥ ५॥
अस्त्री पुत्रन मैं नाहिंन, रहै हौय आसक्त॥
निश्चै स्वपन समांन करि, जांनैं सबही जक्त॥ ६॥
पंडित देह सुगेह मैं, अर्थ मात्र आसक्त॥
बाहरि दीसै स्नेह जुत, भीतरि चितहिं विरक्त॥ ७॥
ग्याति पिता भाई सुहृद, पुत्र आदिक जे होय॥
जो कछु करै सोइ करै, चढै बाद नहिं कोय॥ ८॥
बरिषा सौ अंनादि जो, उपज्यौ होय सुभाय॥
कै प्रिथवी मधिकै कहूं, द्रिबि प्राप्त जो पाय॥ ९॥
अथवा धन कछु सहज मैं, प्राप्त हो जो आय॥
ताही सौं निरवाह निज, करैं भलैं अनुभाय॥ १०॥
पेट भरै या मनुष कौ, जितै द्रिव्य कै मांहिं॥
इतनैं ही की जोग्य है, त्रिस्नां चित्त न रमांहिं॥ ११॥
यातैं त्रिस्नां अधिक जो, करै कौऊ अग्यांन॥
दंड जोग्य है सो सही, लाभ न कछू निदांन॥ १२॥
मर्क्कट मूसा सर्प मृग, षर उष्ट्रर अैतांन॥
पसु पंछी लौं आदि दै, जांनैं पुत्रहिं समांन॥ १३॥
धर्म अर्थ अरु कांम ही, मैं न गृहस्थ रह लागि॥
मुक्ति मार्ग हूं मांहिं मन, अपनौं दै हित पागि॥ १४॥
सर्द्धा नित नव राषि स्वांन, चांडालनि लौं आदि॥
बस्तु हौय निज गेह सौ, बांटि षाय अहिलादि॥ १५॥

मनुषनि कैं अस्त्री बिषै, आग्रह अधिकौ होय॥
टहल ताहि अतिथिनि की, दै लगाय हित गोय॥१६॥
जाकै लीनैं प्रांन दिय, हतै पिता गुर भ्रात॥
तामैं ममता नहिं करै, अैसी तिय बिषयात॥१७॥
तौ बसि हौहि अनादि प्रभु, दै दासित्व अपनाय॥
तातैं अैं बातैं दई, गृहस्थहिं जोग्य बताय॥१८॥
या सरीर की तीन गति, निश्चै है बिषयात॥
कबहूं कछु कबहूं कछु, हौत करम की घात॥१९॥
जारैं तैं ह्वै छार बिनु, जारैं क्रिमि परि जांहिं॥
रु जो कौउ भषि जाय तौ, बिष्टा पद ठहरांहिं॥२०॥
जा सरीर कै सुष निमित, मूरष जन जग मांहिं॥
करत प्रीत अस्त्रीन सौं, ग्यांन धरत जै नांहिं॥२१॥
बचै जिग्य तैं सौ करै, भौजन आपु सुढार॥
फेरि बचै तामैं करै, ममता नहिं निरधार॥२२॥
तौ उत्तम गति प्राप्त ह्वै, प्रांनी कौं सुषदाय॥
जनम मरन संताप तैं, सहजैं ही छुटि जाय॥२३॥
पित्तर दैवता रिषि सकल, प्रांनी अरु निज देह॥
इन्हहिं करै संतुष्ट धन, धर्म जुरन अवरेह॥२४॥
ह्वै संपति अधिकार तौ, जिग्य अग्नि होत्रादि॥
करैं भलैं अनुसार जो, चलि आई मरजादि॥२५॥
अैसौं भोजन करत नहिं, प्रभू अग्नि मुष चांहिं॥
जइसौं द्विज मुष तैं प्रभू, भोजन करत उमांहिं॥२६॥
तातैं ब्राह्मन की करै, पूजा भलैं बनाय॥
ता पाछैं पूजै सबनि, जांनि आत्म अनुभाय॥२७॥
आछै करै बिधांन सौं, कनागतनि मैं श्राद्ध॥
बांधी है मरजाद इह, पूरन ब्रह्म अगाध॥२८॥
उतरायन दछिनान अैं, लागत है दिन जास॥
अवर मेष संक्रांति हूं, लागत जु बैषुभास॥२९॥
बितीपात पर्व अरु अषय, त्रितिया बिच बैसाष॥
कार्तिग मैं नौमी अषय, च्यार अष्टकनि पाष॥३०॥
हैम सिसर रितु मैं सुकल, सप्तमी माघहिं मध्य॥
पूर्न मासि पुनि माघ की, अरु द्वादसी प्रसध्य॥३१॥
अरु जे पूरन मासि है, श्रवन नछत्रनि जुक्त॥
अनुराधा उतरा श्रवन, इकादसी धर मुक्त॥३२॥

करै जु उन्हहीं दिनन मैं, पुन्य भलैं अनुसार॥
तौ मनुष की आयुर्बल, अधिक बढै निरधार॥३३॥
ब्रत स्नांन जप होम द्विज, सुर पूजा सुभ भाय॥
पितर देवतनि दै कछू, ताकौ फल अधिकाय॥३४॥
तिय सुत निज संस्कार कै, समैं रु बीच बिबाह॥
कै पितु मात समैं मरन, दांन करै जुत चाह॥३५॥
तौ अनंत फल होत है, सो कहिंबे नहिं आय॥
अब बरनन करि कहत हौं, देसहुं पबित्र जिताय॥३६॥
भलौ देस सोही सही, जांह बसत सत पात्र॥
दया बिद्या तप जुक्त द्विज, तांह रहत दिन रात्र॥३७॥
थावर जंगम प्रभु बिषैं, ताकी मूरति बिप्र॥
हरि पूजन ता देस मैं, सौ कल्यांन थल क्षिप्र॥३८॥
जांह गंगादिक नदी ह्वै, सरवर पुष्कर आदि॥
अरु बैस्नव बसहीं बहुरि, मूर्ति हौंहि अनादि॥३९॥
पुलहाश्रम कुरषेत्र पुनि, कासी गया प्रयागि॥
मथुरा द्वारावति नैमि, षारन्य प्रभास जागि॥४०॥
पंपा सरवर बिंदुसर, सेतुबंधु गुनफाल॥
गिर महेंद्र पुनि मलय गिरि, श्रमबद्रिका रसाल॥४१॥
आश्रम सिय रघुनाथ कैं, चित्रकूटहुं लौं आदि॥
इन्हीं पबित्र देसनि बसै, सथल थापि अहिलादि॥४२॥
तिन्हमैं कीजे धर्म सौ, सहस गुनौं ह्वै जात॥
पात्रन मैं हरिपात्र है, उत्तम सही बिष्यात॥४३॥
नृपति तुम्हारे जिग्य मैं, बडे बडे जन आय॥
बैठें हैं रिषि देवतां, सबही सभा बनाय॥४४॥
पैं लषि उत्तम पात्र श्री, कृस्न कमल दल नैंन॥
उन्हकीं पूजा पहल कर, वाई सबनि सुषैंन॥४५॥
इहि ब्रह्मांड सरूप तरु, है जीवन सौं पूर॥
हरि की पूजा मद्धि है, सबकी पूजा मूर॥४६॥
बै प्रभु सबकैं मूल हैं, इह मांनहुँ निरधार॥
बेद बिदित इह साषि है, चहूं जुगनि सुभ ढार॥४७॥
पसु रिषि सुर नर सबन कैं, प्रभू सरीर बनाय॥
तिन्हमैं आपु जु बसत है, तातैं पुरष कहाय॥४८॥
जथा जोग्य पूजै सबनि, सकल ठौर भगवांन॥
है बिसेष मधि मनुष कै, कीजै बचन प्रमांन॥४९॥

पैं मनुषन मैं ईरषा, अधिकी रिषिनि निहारि॥
त्रैता जुग तैं मार्ग इह, कियौ सथापि बिचारि॥५०॥
प्रतमा ही मैं जांनि हरि, पूजा करै बनाय॥
जबलौं आतम तत्व कौं, ग्यांन नांहिं उपजाय॥५१॥
जे हरि की पूजा करत, और जियन दुष देत॥
तिन्हकी पूजा सफल नहिं, जांनहुँ काहू बेत॥५२॥
द्विज सुपात्र पुरषनहिं मधि, बिद्या तपस्या जुक्त॥
बेद प्रभू कौ रूप सौ, पढत काज निज मुक्त॥५३॥
करत पबित्र त्रिलोकहिं द्विज, निज पद रेणु प्रभाय॥
द्विजनि देवता करि गनैं, श्री कृस्न पूजत पाय॥५४॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्दसोऽध्यायः ॥ १४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म का वर्णन)

॥ श्री नारद उबाच॥

दोहा - नारद जू यौं कहत है, कौउ इक बिप्र सुजांन॥
अपनैं कर्मनि मध्य है, सावधांन सप्रमांन॥ १ ॥
कौ इक तपस्या करत है, बेद पढत है कौय॥
साधत है कौ जोग बिधि, ध्यांन मद्धि कौ जौय॥ २ ॥
श्राधहिं समैं कै मधि अरु, सुर करमनि कै मांहिं॥
ग्यांनी बिप्रननि दीजियै, भौजन भलैं उमांहिं॥ ३ ॥
अरु जो ग्यांनि बिप्रननिहिं, मिलै आय किहुँ बार॥
तौ द्विज और न मांनियै, ब्राह्मन बंस बिचार॥ ४ ॥
देव कार्ज मैं दौय त्रय, पितर कार्ज कैं ठांहिं॥
कै दोनौं ही ठौर यक, यक ही बिप्र जिमांहिं॥ ५ ॥
द्रिव्यबंत हूं हौय तउ, श्राध बिधांनन मध्य॥
करै बऊत बिस्तार नहिं, है इह रीति प्रसध्य॥ ६ ॥
देस काल सर्द्धा रु द्रिब्य, पूजन पात्र सुढार॥
अैं भलैं न बनि आंवही, जो करही बिसतार॥ ७ ॥
देस काल आछैंन मैं, सवां आदि लौं अन्न॥
सर्द्धा करिहुं दीजै करन, करता पुरस प्रसन्न॥ ८ ॥

तौ अनंत फल हौत है, ताकौ नांहिंन पार॥
कछु दुर्ल्लभ ह्वै नांहिं जब, प्रसंन हौंहिं करतार॥ ९॥
आपस जन सुर रिषि पितर, प्रांनी सकल जितैक॥
इत्ती ठौर दे अंन कौ, भाग जु सहित विवैक॥ १०॥
सकल ठौर भगवांन कौ, देषै करि निरधार॥
कर्म करै सो प्रभू मैं, देय समर्पित सुढार॥ ११॥
करै नांहिं षायहुं नांहिं, मांस स्राध कै मांहिं॥
पितर प्रसंन अति अन्न सौं, जीव हिंसा सौ नांहिं॥ १२॥
मन बच क्रम करिकैं कहूं, प्रांनि न दीजै दंड॥
या समांन नहिं धर्म कछु, और बीच नव षंड॥ १३॥
आत्मा ही कौ करत है, ग्यांनी नित्य बिचार॥
बै जिग्यादिक कर्म नहिं, करिहीं किहूं प्रकार॥ १४॥
अग्यांनी जब जिग्य करत, डरपत जीव अनैंक॥
इह निर्दय अबै मारि हैं, हम्हकौं बिनां बिबैंक॥ १५॥
तातैं अन्नहिं पबित्र जो, मिलै सहज मैं आय॥
ताहीं सौं साधै भलैं, सकल क्रिया सुषदाय॥ १६॥
विधर्म अरु पर धर्म जे, छल उपमा आभास॥
साषा पांच अधर्म की, अैहैं धर्म बिनास॥ १७॥
छौड़ि देत धरमातमा, तिन्हकौं भलैं न जांनि॥
अग्यांनि जन करत हैं, जिन्हकैं बुधि ही हांनि॥ १८॥
धर्म जाय जिन्हकैं कियैं, सोइ बिधर्म कहाय॥
करै परायै धर्म कौं, सौ परधर्म गनाय॥ १९॥
कही बेद मैं दैंन गौ, अैसौं जांनि बिचार॥
मरती हौय गऊ जबै, दांन करै निरधार॥ २०॥
जु कछु धर्म या रीत सौं, कीजै छल सु कहाय॥
अरु कहियत है दंभ कौं, उपमां जांनहुँ राय॥ २१॥
कह्यौ बेद मैं नहिं रु इक, स्वांग इछा अनुसार॥
धरि लैंही आभास सौ, कहियतु सुनौं उदार॥ २२॥
सबकौं आछैं है सही, अपनौं धर्म बिचार॥
अरु मांगै किहुँ सौं न धन, धर्म करन अनुसार॥ २३॥
अजगर ब्रत मैं जो कछु, मिलैं सहज मैं आय॥
ताही सौं निरवाह निज, करै भलैं सुषपाय॥ २४॥
ग्यांनी संतोषीन कौं, जो सुष प्रापति हौत॥
जइसौ धन लोभी भ्रमत, ताकौं नांहिं उदौत॥ २५॥

निति सुष सकल दिसांन मैं, संतोषी कौं हौय॥
ज्यूं चुभै न पदत्रांन तैं, कांटै कंकर कौय॥२६॥
संतोषी जन जे कौउ, कीनैं जलही पांन॥
मांनत है संतोष मन, रहै मुदित बुधिवांन॥२७॥
अरु जो रचना स्वाद जुत, बिषै सुषन कैं मांहिं॥
हौंहि लालची तौ मनष, स्वांन समांन कहांहिं॥२८॥
बिप्र असंतोषीनहिं कैं, नष्ट विद्या तप होत॥
बसि निज इंद्रिन कैं भयै, ग्यांनहुं ह्वै न उदोत॥२९॥
अंत हौत है कांम कौ, भूष प्यास अनुभाय॥
किहुं कौं मारैं दुरबचन, कहै क्रोध मिटि जाय॥३०॥
अैपरि जीत दिसा सकल, भोग करै बहु भाय॥
तौहू लौभ न जात है, सोई अति दुषदाय॥३१॥
बड पंडित संदेह कै, जैं हैं टारन हार॥
नष्ट हौंहिं जुत सभापति, असंतोष अनुसार॥३२॥
त्यागि संकल्प विकल्प कौं, जीति कांम कौं लैय॥
अरु त्यागन करि कांम कौ, जीतै क्रौध सुभैय॥३३॥
जांनि अनर्थ सरूप द्रिव्य, जीतै लौभ प्रकार॥
भय कौं तत्व बिचार सौं, जीति लैहि निरधार॥३४॥
ग्यांन रु सास्त्र बिचार सौं, सौक मोह लै जीति॥
जीति दंभ कौं लैय करि, साध सेव सौं प्रीति॥३५॥
अरु लौकनिकी बात कौं, जीतै मौंन प्रभाय॥
कांम त्याग सौं जीति लैं, हिंसा क्यूं सुषपाय॥३६॥
कौ प्रांनी दुष देत है, तौ ताहू पर आय॥
क्रिपा करै तौ फेर बह, दुष नहिं दैय सदाय॥३७॥
प्रापत हौय बस कर्म कै, कछू दुष्ष जो आय॥
ताकौं जोग समाधि कै, बल सौं दैय गमाय॥३८॥
नींद रजौगुन तमौगुन, जीतै सतगुन भाय॥
अरु जीतै रोगादिकनि, जोग सक्ति सरसाय॥३९॥
उपसम करिकैं सत्वगुन, जीतै भलैं प्रवीन॥
अरु कीनैं गुर भक्ति कैं, जीति सकै सबहीन॥४०॥
है दाता सुभ ग्यांन कै, जै निज गुर भगवांन॥
जिनकौं जांनैं मनुष करि, मूरष कौउ अग्यांन॥४१॥
ताकौ अैसौं धर्म सब, जइसौं गज कौं स्नांन॥
न्हाय बहुरि निज सिर तुरत, डारै धूरि निदांन॥४२॥

चाहत जोगेस्वर जिहै, ह्वै सो गुर भगवांन॥
तिनकौं नांहिंन जांनियैं, करिकैं मनुष प्रमांन॥४३॥
छह इंद्री बसि करन कौं, निगम कहै जम नेम॥
तिन्हहौं कौ फल है इहै, साधै जोग सपेष॥४४॥
जिग्य दांन लौं आदि करि, धर्म मनुष इह फेरि॥
चित न लगावै जोग मैं, तौ न भलौ किहुं बेरि॥४५॥
जो निज चित जीत्यौ चहै, सौ न करै किहुँ संग॥
पास कछू राषै नांहिं, रहै इकंत सुढंग॥४६॥
मांगि भिष्या भौजन करै, लै संन्यास अभंग॥
भलै सथल आसन बिछा, बैठै सथिर सुधंग॥४७॥
रेचक कुंभ कपूर करि, रोकै प्रांन अपांन॥
अग्रनासिका कौं लषै, मन बसि राषि सुजांन॥४८॥
जांह जांह मन जाय निज, तांह तांह तैं फेरि॥
आत्मा मैं लगवै भलैं, सुषदाता प्रभु हेरि॥४९॥
अैसौं करै अभ्यास जो, ताकौ मन बसि होय॥
जात रहै जिहिं कामना, रहै न मन बृति कोय॥५०॥
लगैं ब्रह्म सुष मैं जु मन, और ठौर नहिं जाय॥
तुछ लषै संसारहिं कै, सुष दुष सकल उपाय॥५१॥
संन्यासी संसार तजि, चहै जक्त सुष फेरि॥
जिन मांनौं भौजन बमन, कीनौं कुबुधि अबेरि॥५२॥
भस्म स्वांन भोजन अनित, तन पहलैं कौ जांनि॥
हौय बिरक्त सराहही, बहि फिरि अपनौं मांनि॥५३॥
त्याग करै सब किर्‌या कौ, जो गृहस्थ जन होय॥
अरु त्यागै ब्रह्मचर्ज कौं, ब्रह्मचारी ह्वै कोय॥५४॥
तपसी ह्वै कैं गांव मैं, बसै आपु सुषमांनि॥
संन्यासी बसि नहिं करै, इंद्रीन सत्रु पिछांनि॥५५॥
जे आश्रम मैं जांनियैं, महानीच निरधार॥
स्वांग धरैं माया मुहित, फिरत बीच संसार॥५६॥
जो आत्मा कै रूप कौ, जांनत होय बिचार॥
तौ क्यूं अपनीं देह कौं, करै पुष्ट किहुं ढार॥५७॥
इहि सरीर है रथ रु असु, इंद्री मन जु लगांम॥
विषै पंच सो देसहैं, जै बै कौ जिन ठांम॥५८॥
बुद्धि सारथी होत है, चित्त रथ बंधन ठौर॥
लौधुरि हैं दस प्रांन अघ, धर्म चक्र कै तौर॥५९॥

रथी जांह अभिमांन जुत, जीव जांनियै राय॥
प्रणव मंत्र है धनुष अरु, सुद्ध जीव सरभाय॥६०॥
अरु बेझा परब्रह्म है, सुषदाता भगवांन॥
जिन्हकीं क्रिपा कटाछि तैं, लहियैं मुक्ति सथांन॥६१॥
धनुष षैंचि बेझा ठउर, दीजै बांन लगाय॥
ज्यौं पढि मंत्र प्रणव जियहिं, दै बिच ब्रह्म मिलाय॥६२॥
राग द्वैष भय सोक मद, मोह लौभ अपमांन॥
मांन ईरषा प्रकृति जुत, मत्सरता अग्यांन॥६३॥
रज गुन तम गुन सत्व गुन, कै स्वाभाव प्रमाद॥
भूष प्यास रु निद्रा सहित, सत्रुहिं जीव कै ज्याद॥६४॥
तातैं जबलौं देहरथ, है अपनैं आधीन॥
तब तांई गुर चरन की, ह्वै सैवा मैं लीन॥६५॥
ग्यांन स्वरूपी षडग गहि, सत्रुनि डारेहुं मारि॥
ग्यांन षडगहूं छौडि फिरि, होय मुक्ति सुभ ढारि॥६६॥
अरु जो अैसैं नहिं करैं, तौ असु इंद्री दुष्ट॥
बुद्धि सारथी जुक्त मिलि, करि निज मतौ सु पुष्ट॥६७॥
जीव रथी कौं जांनि बिनु, सावधांन सप्रसध्य॥
पटकि दैहि मग प्रवृत्ति बिच, बिषै तस्करनि मध्य॥६८॥
तब वै तस्कर जीव कौं, अस्व सारथी समेत॥
मृत्यु भय जुत इह कूप जग, तामैं डारि सुदेत॥६९॥
कर्म प्रवृत्ति निवर्ति मग द्वै, कहै बेद कै मांहिं॥
चलि आयै जे सदा तैं, चहूं जुगनि ठहरांहिं॥७०॥
प्रवर्ति कर्म सौं हौत है, प्रांनी कौं संसार॥
निवर्ति कर्म तैं मुक्ति की, प्राप्त हौय सुभ ढार॥७१॥
काम्य कर्म पुनि स्यैनादि, यागकर्म अग्नि हौत्रादि॥
दरस सोम पसु याग चौ, मास पौर्न मासादि॥७२॥
देव बैस्य बलि सहित यै, इष्ट कर्म सुकहाय॥
जक्त बीच प्रांनी कोउ, करत कोउ न जनाय॥७३॥
बाग बावड़ी कूप अरु, मंदिर देव सुढार॥
यै बनावनैं सौं कहत, पूर्त्त कर्म निरधार॥७४॥
सहित कांमनां कर्म यै, करहिं मनुष सुषमांनि॥
तौ यै सकल कहावई, कर्म प्रवर्त्ति जु निदांनि॥७५॥
मगहिं प्रवर्ति वारेन की, अब गति कहत जिताय॥
सौ सुनियैं राजा भलैं, आछैं चितहुं लगाय॥७६॥

इहां तैं इहि सरीर जब, छूटत औसर पाय॥
तबै जिग्यादिक कर्म कौं, फल याकैं संग जाय॥ ७७॥
निस अभिमांनी कृस्न पक्ष, अभिमांनी सुर नांम॥
अरु अभिमांनी धूम सुर, मिलत याहि मग ठांम॥ ७८॥
दछिनहुं मग ह्वै जात है, इहै जीव ससि लोक॥
फेरि वांह तैं गिर परत, बृष्टि बीच कै वोक॥ ७९॥
अंन्न औषधी लता मैं, आवत जीव सुभाय॥
पुरष अंन्न भौजन कियैं, जीव रूप प्रगटाय॥ ८०॥
फिरि अस्त्री कै गर्भ मैं, आवत जीव कुढार॥
यौं प्रवर्ति मगहुँ मध्य जिन, आवगवन बहुबार॥ ८१॥
कर्म जु गरभाधांन तैं, लैकैं मृत्यु परजंत॥
जिहिं बनि आऐं ह्वै भलैं, षोडस कर्म सुतंत॥ ८२॥
तिन जीवन की गति इहै, कीनी हम्ह जु बषांन॥
जे बीचि कर्म निवर्ति कै, जिन गति सुनौं सुजांन॥ ८३॥
जिन्हकै पूरन ग्यांन है, तुछ लषतहिं संसार॥
जें दोनौं मग छोडि कैं, ऐसौं करत बिचार॥ ८४॥
जिग्यादिक कर्मनि करत, इंद्री ही निरधार॥
अरु आत्मा नहिं करत है, कछू कर्म अनुसार॥ ८५॥
मन कै हैं आधीन सब, इंद्री दास समांन॥
अरु मन बांनी बेद मैं, बंध्यौ पर्यौ अग्यांन॥ ८६॥
अछर रूप जांनहुँ निगम, जास रूप ओंकार॥
जीको मूल सुबिंदु तिहिं, मूलनाद निरधार॥ ८७॥
मूलनाद कौ तत्त्व इह, जास प्रकृति है मूल॥
इह बिचार ग्यांनी करत, नहिं कर्मन बिच भूल॥ ८८॥
करत यैक कौं यैक मैं, लय जब तजत सरीर॥
चलत मार्ग नभ तब मिलत, इतै सुरन की भीर॥ ८९॥
दिन अभिमांनी सुल्क पषि, अभिमांनी अहिलादि॥
अभिमांनि पूर्न मासि रवि, अग्नि दिवा बिधि आदि॥ ९०॥
इते देवता मिलत है, उत्तर मग बिच आय॥
तबै जात है जीव इह, ब्रह्म लोक सुषपाय॥ ९१॥
तांह प्राग्य तैजस रु बिस्व, तीन जीव कै नांम॥
सुनौं कहूं इन नांम कैं, अर्थ नृपति अभिरांम॥ ९२॥
साछी जागत समैं कौं, जीव सुबिस्व कहाय॥
जीव अवसथा सपन कौ, साछी तैजस राय॥ ९३॥

प्राग्य सुषोपति अवस्था, कौ साछी है जीव॥
तुरीय समैं जो अवस्था, ता आगैं सुष सीव॥ ९४॥
अैसैं अैं इक जीव कै, च्यारि नांम उहिं ठांम॥
तिनकौं इक इक मध्य लय, करि ग्यांनी अभिरांम॥ ९५॥
आपहिं जांनत है सही, सुद्ध ब्रह्म कौ रूप॥
यौं बसि कैं ब्रह्म लौक मैं, ग्यांनी परम अनूप॥ ९६॥
फिरि आगैं या ग्यांन सौं, पावत मुक्ति सुढार॥
वै आवत है नांहिं पुनि, इहां बीच संसार॥ ९७॥
मग निवर्त्ति मैं जो कोऊ, चलत भलैं अनुसार॥
तिन्हकी इह गति होत है, सुनियैं नृपति उदार॥ ९८॥
सास्त्र द्रिष्टि सौं मार्ग दोउ, जांनैं भलैं प्रकार॥
सौ मोहित नहिं हौत है, मनुष बीच संसार॥ ९९॥
आदि अंत बाहरि रु मध्य, ऊँच नीच गय ग्यांन॥
बचन वाच्य अंधियार पुनि, ह्वै प्रकास जु निदांन॥ १००॥
इतै पदार्थनि आत्म करि, ग्यांनी गनत सुढार॥
जिन्हकैं पूरन ग्यांन है, प्रभू क्रपा अनुसार॥ १०१॥
ज्यौं झूठै प्रतिबिंब अरु, साचौ सौ दरसाय॥
ज्यौं इंद्रीन कौं बस्तु जो, हौत प्रकासक भाय॥ १०२॥
सौ सबै मिथ्या है प्रगट, जांनि परत है साच॥
अैसौं जांनत है सही, ग्यांनी मन क्रम बाच॥ १०३॥
तन जु पंच महाभूत की, नहिं छाया संघात॥
नहिं बिकार न्यारौ नांहि, नांहिं जुक्त दरसात॥ १०४॥
झूठौ है निरधार करि, इह सरीर अनुसार॥
और पंच महाभूतहुं, झूठै हैं निरधार॥ १०५॥
तिन्हकै कारन पंच तन, मात्र तिहुँ नाहिंन नित॥
अरु आत्मा है यैक ही, समझहिं ताहि सुचित॥ १०६॥
जक्त सकल झूठौ सही, भ्रम समांन निरधार॥
चलि आयौ है आदि तैं, समिलित प्रकृति प्रकार॥ १०७॥
जइसैं सुपनैं मैं इहै, प्रांनी करै बिचार॥
म्हैं सौवत जागत जु मैं, म्हैं बहु करत बिहार॥ १०८॥
यौं झूठै संसार मैं, प्रांनी कौं लपटाय॥
बिधि निषैध जो बेद मैं, दीनैं प्रगट बताय॥ १०९॥
बेद पदारथ मध्य अरु, बुधि सौं भांति जु बेह॥
बेद कहे अै कर्म पुनि, ह्वै हैं इन्ह फल येह॥ ११०॥

ऐं तीनौं भ्रम जांहिं मिटि, जो जांनैं निरधार॥
भावाद्वैत द्रब्याद्वैत, क्रिया जु द्वैत बिचार॥ १११॥
सूत्र बस्त्र द्वै यैक हैं, कारिज कारन रूप॥
ज्यूं ही जक्त रु ब्रह्म है, अैक सरूप अनूप॥ ११२॥
अैसौ करै बिचार सौ, भावाद्वैत कहाय॥
अब सुनियैं जो औरहूं, आगैं कहौं सुनाय॥ ११३॥
मन करि तन करि बचन करि, करिकैं कर्म सुढार॥
प्रभू मैं देय समर्पि सौ, क्रियाद्वैत अनुसार॥ ११४॥
निज सुत तिय प्रांनी सकल, जांनैं दृष्टि समांन॥
द्रव्याद्वैत कहाय सौ, जानहुँ नृपति सुजांन॥ ११५॥
अरु जौ अपनैं धर्म सौं, प्राप्त हब्य जो पाय॥
जांहीं सौं निरबाह निज, करै गृहस्थ सुभाय॥ ११६॥
अैसे आछैं कर्म जो, दीनैं बेद बताय॥
जिन्हकौं पालैं भलैं तौ, प्रभु की प्रापति ताय॥ ११७॥
अरु जो प्रगटै भक्ति तौ, केवल भक्ति प्रभाय॥
होत क्रियाद्वैत कर्म सौं, कछु न प्रयौजन ताय॥ ११८॥
भक्तिवंत ज्यौं तुम्ह नृपति, ताही भक्ति प्रभाय॥
विपत्ति तुम्हारी मिटि सकल, सुषसांतिहुं सरसाय॥ ११९॥
प्रभु सेवा परताप सौं, जिग्यहूं बड्डे कीन॥
जस प्रगट्यौ तिहुँ लोक मैं, सत्रुन भये सब छीन॥ १२०॥
महतनि कै अपराध तैं, भक्ति होत है भृष्ट॥
अपनीं बीती ही कहौं, सुनिहौं तोहि सपुष्ट॥ १२१॥
नारद कहत कि म्हैं हुतौ, पहलैं कल्पहीं मांहिं॥
उपबर्हण गंधर्ब अति, सय गर्बहुं सरसांहिं॥ १२२॥
तन सुगंध सुकुमारता, माधुर्ज रु गुनवांन॥
मत्त रहूं लपटैं रहूं, अस्त्रीन कौं प्रिय प्रांन॥ १२३॥
प्रजापतिन इक दिवस अप, सर गंधर्व समाज॥
बुलायै अपनैं जिग्य मैं, हरि गुनगावन काज॥ १२४॥
तब म्हैं हूं अस्त्रीन जुत, गौ जांह जिग्य सथाप॥
कामातुर मुहि जांनिकैं, प्रजापतिन दिय श्राप॥ १२५॥
सूद्र जनम तू पाय है, अैसैं कह्यौ रिसाय॥
तातैं दासी कै उदर, प्रगट भयौ हूं आय॥ १२६॥
तांह ब्रह्म ग्यांनीन की, किय सैवा चित्त लाय॥
फेरि जु भयौ बिधि पुत्रहूं, उन्हकीं क्रिपा प्रभाय॥ १२७॥

धर्म गृहस्थन कौ इहै, तुम्हकौं कह्यौ सुनाय॥
जासौं गृहस्थ क्रितार्थ ह्वै, महामुक्ति सुषपाय॥ १२८॥
नृपति जुधिष्ठिर तुम्ह बडे, भाग्यवंत निरधार॥
बसत सदा जिहि गेह मैं, कुंवर कृस्नं करतार॥ १२९॥
हे नृप अैं श्रीकृस्नं हैं, पूरन ब्रह्म भगवांन॥
मनुष रूप पुनि पुनि धरत, भक्तन काज निदांन॥ १३०॥
जिन्हकै दरसन कै लियैं, मुनि आवत तुम्ह सैह॥
बड़ै बड़ै ढूंढत इहैं, करि करि अधिक सनैह॥ १३१॥
है आनंद परम रूप, अैं भ्राता मामेस॥
प्रिय आत्मा गुर सुहृद अति, पूज्य प्रगट अषिलेस॥ १३२॥
जे आछी बिधि टहलहूं, करत तुम्हारी चांहिं॥
सिव बिधि तत्व जिन रूप कौ, जांनि सकत कौ नांहिं॥ १३३॥
इन्हकी पूजा सब करत, मौंन भक्ति संजुक्ति॥
तैं हम्ह पैंहौं प्रसंन श्री, कृस्नं दैंन सुभ मुक्ति॥ १३४॥
इन्हकी माया सक्ति कौं, किहूं न पायौ पार॥
नेति नेति भाषत निगम, सुषदाता करतार॥ १३५॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि सब धर्म सुनि, नारद जू कै पास॥
किय पूजा श्रीकृस्नं की, राजा सहित हुलास॥ १३६॥
कृस्नं जुधिष्टिर की तांह, नारद आग्या पाय॥
गवन कियौ निज लौक कौं, बीना सुभग बजाय॥ १३७॥
श्रीकृस्नं परब्रह्म जु सुनि, नारद मुष निरधार॥
नृपति जुधिष्टिर कै भयौ, अति आचंभ अपार॥ १३८॥
दछि प्रजापति जु की सुता, जिनकै बंस बषांनि॥
हम्ह तुम्ह सौं बर्नन करै, सुनैं सु तुम्ह बुधिबांनि॥ १३९॥
नर आसुर अरु चर अचर, प्रगट भये तिन बंस॥
जीवन करि ब्रह्मांड इह, पूरन भयौ प्रसंस॥ १४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचदसोध्यायः ॥ १५ ॥)

॥ सप्तम स्कंध संपूर्णम् ॥

(॥ पोथी की सं. १८३४ वि. श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री॥)

(कुल छन्द १०६४ - छन्द योगक्रम ७८२१)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

***

॥ श्री सर्वेश्वरोजयति ॥

॥ श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

(कृष्णगढ़ महाराजाधिराज श्री राजराजेश्वर राजा श्री राजसिंघ जी की महारानी श्रीमती ब्रजकुँवरी जी बांकावती 'श्री ब्रजदासी' जी कृत श्रीमद्भागवत भाषा अष्टम स्कन्ध लिष्यते)

॥ अष्टम स्कंध ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

(मन्वन्तरों का वर्णन)

(मंगलाचरण)

छप्पय - जै जै मो गुरु प्रभू, सरूप (श्री) बृन्दावन जु नांम॥
मन क्रम बचन संजुक्त, नमसकृतं तिन्हिं पद ठांम॥
जै (श्री) बृषभानु कुँवारि, जयति श्री नंद कुँवर वर॥
जै निंबार्क आर्चाज, मम गुरु हरि भक्त रसिक वर॥
अैं करि क्रिपा ब्रजदासी पैं, तिंहिं परताप आनंद भरि॥
अब अष्टम सकंध बरनन करूं, जुगल रूप उर ध्यांन धरि॥ १ ॥

(अथाख्यान)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - या अष्टम जु सकंध मैं, आछी भांति सुनाइ॥
मन्वन्तर चवदहन कौं, बरनन करि हैं राइ॥ २ ॥

॥ राजोवाच ॥

इहि सुनि नृप बोलै कि मनु, स्वायंभुव कौ बंस॥
हम्ह सुन्यौ जिनि पुत्रिकां तैं, बाढी श्रष्टि प्रसंस॥ ३ ॥
और मन्वंतर मध्य जैं, प्रभु लीनैं अवतार॥
पुनि जो लीला उन्हकरी, सौ कहियै सुषसार॥ ४ ॥
अरु जो अब लीला करत, करिहैं फेरि सुढार॥
जैं सब तुम्ह हम्ह सौं कहौ, हे मुनि भलैं प्रकार॥ ५ ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि छह ह्वै चुकै, मनु या बिधि दिन मांहिं॥
तिन्हमैं पहिलैं मनु नृपति, स्वायंभुव परगटाहिं॥ ६ ॥
तिन्हकौं हम्ह बरनन कियौ, सुत सुनांम जुत राय॥
जो तौ सब आछै सुन्यौ, तुम्हहिं निज चित्त लगाय॥ ७ ॥
सुनौ रु मनु स्वायंभुव की, द्वै कन्या बुधिवांन॥
प्रभु कै द्वै अवतार हुव, जिन्हकैं गरभ सथांन॥ ८ ॥
जक्तहिं धरम सिषायबै, परगट भय भगवांन॥
दीनबन्धु असरनसरन, दैंन मुक्ति सुभदांन॥ ९ ॥

देवहुती कैं गरभ तैं, कपिल दैव प्रगटाय॥
जिन्हकौं तौ पहलैं कह्यौ, तुम्ह सौं चरित सुनाय॥१०॥
जाय नांम आकूति कै, उदर भयै अवतार॥
तिन्हकौ अबै चरितहिंहूं, कहिहौं सुनौं सुढार॥११॥
स्वायंभुव मनु यैक समैं, ह्वै बिरक्त तजि राज॥
सतिरूपा तिय संग लै, बन गवनैं तप काज॥१२॥
अैक पांव ठाढै सधैं, तपस्या भलैं प्रकार॥
करत भयै ता समैं यौं, प्रभु अस्तुति सुषसार॥१३॥

॥मनुरुवाच॥

सकल बिस्ब कौ करत हैं, निस्चेतनहिं करतार॥
अरु कर सकत हैं बिस्ब जिहिं, चैयतन किहुँ प्रकार॥१४॥
जो साछी हैं जीव कौ, जांनत सभ इन्ह मांहिं॥
निश्चैतन करि जीव इहि, वाकौ जांनत नांहिं॥१५॥
जु आतम ब्यापी है सहि, या जग मैं सब ठौर॥
उन्ह कछु दियौ सु भोग करि, मत चाहै मन और॥१६॥
बहि दैषत हैं सबनि कौं, लषि न सकत कौं वांहिं॥
ग्यांन द्रिष्टि सौं पूर्न जैं, बिस्ब रूप हैं तांहिं॥१७॥
जिन्हकौ आदि न अंत मध्य, नहिं कौ अपन पराय॥
अैसै हरि की कीजियै, सैवा चित्तहिं लगाय॥१८॥
आदि अंत सब जगत कौ, जांसौं हौत सुढार॥
जैं ब्यापक हैं बिस्ब मैं, सबकै ईस उदार॥१९॥
अरु जिन्हकै बहु नांम हैं, जोति रूप सतरूप॥
जनम करम उन्हकैं नांहिं, पूरन ब्रह्म अनूप॥२०॥
जक्तहिं जनमादिक करत, निज माया अनुसार॥
अरु फिरि न्यारे रहत हैं, आप प्रभू करतार॥२१॥
प्रभू करत हैं करम अरु, न्यारै रहत सदाय॥
ज्युँ रिषि मुनि जक्त कर्म करि, जुदे रहत हैं आय॥२२॥
प्रभु करत सब कर्म कछु पैं, नांहिंन हौत असक्त॥
मगन रहत निज रूप मैं, ज्यूं ही हरि कैं भक्त॥२३॥
करम करत कैईक पैं, ह्वै आसक्त जु नांहिं॥
तैं न बंधत या जगत मैं, महामुक्त सुषपांहिं॥२४॥
बै प्रभु सब कछु करत पैं, नहिं मांनत अहंकार॥
उन्हकैं प्रैरकहुं न कौउ, नहिं कछु चाह बिचार॥२५॥
आप मध्य कछु और कौं, सिषवत पालक धर्म॥
अैसै प्रभु कै सरनहूं, म्हैं करि मन बच कर्म॥२६॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि यौं मंत्र पढि, स्वायंभुव जु मनु राय॥
करत भयै भगवांन की, असतुति अति सुषदाय॥२७॥
राछिस दौरै वा समैं, उन्हैं षायबै काज॥
तब उन्हकीं रिछया करी, जिग्य रूप महाराज॥२८॥
मारि सकल राकसन प्रभु, जिग्य रूप भगवांन॥
यांम नांम सुर सहित हुव, ईहि सुस्वर्ग मथांन॥२९॥
भौ स्वारोचिस नांम मनु, दुतिय अग्नि सुत जांन॥
रोचिसमानहुँ द्युमांन, सुषैंन तिहिं सुत मांन॥३०॥
रोचस नांमा इन्द्र जौ, थिरैं सुवर्ग हीं ठांम॥
तब जिग्य भागहिं लैंन हुव, अमर जू तुसित नांम॥३१॥
ऊर्जस्तंभ लौं आदि रिषि, सात भयै उहिं बार॥
वेद धर्म मर्जादिक कैं, ह्वै हैं राषन हार॥३२॥
वेदसिरा रिषि कैं तिया, तुषिता नांम सुढार॥
तिन्हकैं हुव विभु नांम कौ, प्रभु अवतार उदार॥३३॥
विभु ब्रह्मचारी ही रहै, अरु उन्ह रीति निहारि॥
हुव अठ्यासी हजार मुनि, लिय ब्रह्मचर्य बिचारि॥३४॥
प्रियब्रत कौ सुत तीसरौ, मनु भयौ उत्तम नांम॥
जिग्य हौत्रादि श्रंजय पबन, अैं त्रिय सुत तिहिं धांम॥३५॥
हुव बसिष्ठ सुत सात रिषि, प्रमद आदि उहिं बार॥
सत्य बैदश्रुत भद्र इन, नांम अमर निरधार॥३६॥
अरु बासव भौ जा समैं, नांम सत्यजित तास॥
हुव प्रभु कौ अवतार सत्ति, सैंन नांम जिहिं भास॥३७॥
जछि राछस प्रांनीन कैं, द्रौही बडै लबार॥
तिन्हैं हतै सत्तिसैंन प्रभु, इन्द्र रछ्या अनुसार॥३८॥
उत्तम मनु कौहि भ्रात मनु, चौथौ तामस नांम॥
तिन्हकैं पृथु नर कैतु अरु, ष्याति पुत्र अभिरांम॥३९॥
वीर सत्यक हरि नांम हुव, सुर उहिं ठां अहिलादि॥
त्रिसिष नांम भौ इन्द्र रिष, भयै ज्योति धर्मादि॥४०॥
बैधृत बिधृत कै सुवन, भयै दैवता और॥
जिन रछया किय वेद की, उहिं बैरां सुभ तौर॥४१॥
रिषि हरिमेधा नांम तिहि, अस्त्री हरिणी नांम॥
तांकैं हरि अवतार हुव, पूर्न ब्रह्म अभिरांम॥४२॥
तिन सहाय गज की करी, कियौ ग्राहहिं संहार॥

॥ राजोवाच ॥

इहि सुनि नृप पूछत भयौ, फिरि अैसें अनुसार॥४३॥
हे मुनि हरि गज ग्राह तैं, कइसैं दियौ छुडाय॥
इही चरित्र चाहत सुन्यौं, सौ कहियैं समुझाय॥४४॥
गुन पवित्र जु भगवांन कैं, कहियै भलैं प्रकार॥
जिन्हकौं सुनि आनंद अति, प्रगट हौय अनपार॥४५॥

॥ श्री सूत उबाच ॥

सूत कहत अैसें बचन, नृप कैं सुनि सुक दैव॥
बोलै अैसी भांति सौं, अमृत बचन सुभैव॥४६॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

(ग्राह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा – सुक मुनि कहत त्रिकूट नग, नांम सुभग इक ठौर॥
ऊंचौ जौजन सहस दस, छीर सिंधु चहुँ और॥१॥
है चौडौदस सहसहीं, जौजन नग उनमांन॥
चांदी सौनैं लौह कैं, तीन सिषर उहिं थांन॥२॥
तिन्हसौं सोभित करत हैं, सकल दिसा आकास॥
चित्रत रतननि निधांन तैं, औरहुँ सिषर सुभास॥३॥
सब्द हौत झरनांन कौ, लता रु बृछि अनपार॥
इन्हसौं सौभित रहत है, बह नग सदा सुढार॥४॥
पय तरंग सामुद्र की, तिनसौं रहत सिंचाय॥
नील मणी की भूमि चहुँ, वौर स्याम दरसाय॥५॥
सिध चारण गंधर्ब अरु, किन्नर बिद्याधर नाग॥
अपछरा निर्तत क्रीडहीं, बहिं नग कंदरा जाग॥६॥
अपछरानि संगीत कौ, सब्द गुफानि सथांनि॥
सुनि गर्जत हैं सिंघ कैउ, और सिंघ कौं जांनि॥७॥
पसु अनैंक जामैं रहत, बहु सुर बन बहिं ठांम॥
सब्द करत पंछी बिबिध, लागत हैं अभिरांम॥८॥
निरमल नदी सरोवरनि, मधि जल वां नग ठौर॥
नद नदीनि तट रैनुका, लसत मणिन कैं तौर॥९॥

तिन्हमैं अति आनन्द जुत, अपछर करत सनांन॥
निज कुच कुमकुम गंध लैं, पवन चलत सुषसांन॥ १० ॥
ऐसैं नग पैं बरुण कौं, बन रितुमांन सुढार॥
जामैं अपछर करत हैं, आछी भांति बिहार॥ ११ ॥
नित फल दल जुत रहत जहँ, आछै बृछि अनपार॥
चंपा आंब असौक बट रु, पारिजाति मंदार॥ १२ ॥
पाटल कटहल नारियर, बडहर जामुन बैर॥
मधुक सुपारी जंभीरी, कैरां दाष बहैर॥ १३ ॥
अरजुन असन अरिष्ट अरु, गूलर पिलुषनि साल॥
सांठा साल षजूर तरू, चंदन नींब तमाल॥ १४ ॥
कैंथ भिलावा बेल पुनि, कौंबिदार सुर दारु॥
कैसू ताल कितैक जांह, सौभितहिं बृछि सुढारु॥ १५ ॥
जहँ इक नद तामैं कंवल, कंचन मई अनूप॥
उत्पल कुमुद कल्हार सत, पत्र सु जाति संजूप॥ १६ ॥
जांह प्रफुल्लित हैं कंवल, तिन पैं अलिंन गुंजार॥
पंछीहूं बौलत भलैं, जितनैं बानि सुढार॥ १७ ॥
कारंडव सारस सुभग, चक्रवाक पिक हंस॥
जल कुकुट वन जाति कैं, बौलत पंछी बंस॥ १८ ॥
मच्छ कच्छ जल जंतु बहु, उछलत वा नद मांहिं॥
तासौं कंवल पराग जुत, जल सौभित दरसांहिं॥ १९ ॥
बैंत कदंब असौक नर्कुल, कुर्बक कुंद हर सिरींस॥
स्वर्ण जुथी पाटल कुटिक, जैं तरु अदभुत दींस॥ २० ॥
नाग पुन्नाग रु माधवी, चंबेली सत पत्र॥
ऐसैं तरु प्रफुल्लित सदा, रहत तीर नद तत्र॥ २१ ॥
वां नग कैं बन मैं रहै, इक गज जुत गजनीन॥
बांस बैंत तरु औरहूं, तौरत मत्त आधीन॥ २२ ॥
ताकैं गंध प्रभाव सौं, सिंघ ब्याघ्र पुनि सर्प॥
गैंडा सुरहि गऊ सरभ, जैं पसु भाजत डर्प॥ २३ ॥
सैह स्वान भिडहा रु कपि, भैंसा रीछ बराह॥
हिरण सुसा पावै रहन, लहि गज क्रिपा निबाह॥ २४ ॥
इक दिन गज गजनीन जुत, विकल घांम कैं जौर॥
पुत्रन सहित निजभार सौं, कंपावत नग ठौर॥ २५ ॥
गज कपौल पैं करत हैं, भ्रमर बउत गुंजार॥
नद पंकज सउगंध जुत, पवन गंध अनुसार॥ २६ ॥

सुभग सरोवर कै निकट, गज प्रापति हुव आय॥
बिहरत भौ आनंद सौं, कुटुंब सहित सुष पाय॥२७॥
औरहुँ वांकै संग गज, जल कैं तृषित अनैंक॥
नीर पियौ मंजन कियौ, बिहरत धरि मद टैंक॥२८॥
लै जल गज निज सुंडि सौं, हथनी बचानि आपु॥
मंजन करवावत भलैं, अधिक सनैह सथापु॥२९॥
ता समैं गज चरन यैंक, ग्रस्यौ ग्राह बलबांन॥
तब लहि कष्ट जु गज चरन, षैंच्यौं आपु निदांन॥३०॥
ग्राह ग्रसत गज दैषिकैं, हथनी ब्याकुल हौय॥
रौवन लागि पुकारि कैं, गज न छुडावत कौय॥३१॥
जल मैं षैंचैं ग्राह गज, बाहर षैंचैं पांव॥
सहस बरष बीतै दुहुँनि, करत जुद्ध अधिकाव॥३२॥
अमरनि कैं अचिरज भयौ, इनकौं जुद्ध निहारि॥
फिरि गज मन तन करि भयौ, बल सौं छीन कुढारि॥३३॥
अरु बल जल मैं ग्राहकौ, बढ्यौ अधिक उहिं बार॥
गज कौं संकट प्राण कौ, पर्यौ जु या अनुसार॥३४॥
गज जब आपहिं ग्राह तैं, सक्यौ छुडाय जु नांहिं॥
अपनीं बुधि सौं तब कियौ, इहि बिचार मन मांहिं॥३५॥
मौहि न सकैं छुडाय कौं, बिनां अैंक भगवांन॥
ग्राह नांहिं इहिं हैं कौउ, बिधि कौ पांस निदांन॥३६॥
तासौं म्हैं बंधि दुषित ह्वै, गही सरनहुँ अनादि॥
दीनबंधु असरन सरन, जैं प्रभु सबकैं आदि॥३७॥
सब पर दौरत अतिबली, काल स्वरूपी नाग॥
जांसौं डरप्यौ जीव जौ, सरन गहै बडभाग॥३८॥
ताकी रछया करत हैं, जैं हरि क्रिपा निधांन॥
जिनकैं अब म्हैंहूं सरन, आयौ दीन निदांन॥३९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

(गजेन्द्र के द्वारा भगवान की स्तुति और उसका संकट निवारण)

॥ श्री सुक उबाच ॥

चौपाई - सुक कहत कि अैसो निश्चै करि। अरु मन निज निश्चल करिकैं फिरि ॥
हरि कौ कीनौं पाठ सतोत्रहिं। दीनौं छौडि बिस्बास समोंत्रहिं ॥ १ ॥
इन्द्रद्युमन नृप हौ गज आगैं। पढतौ जबै सतौत्र अथागै ॥
सौइ सतौत्र पढन जब लाग्यौ। प्रभु पद पंकज सौं अनुराग्यौ ॥ २ ॥

॥ गर्जेद्र उबाच ॥

गज कहत कि जाहरि अनुसारा। झूठौ इहै सकल संसारा ॥
आदि बीर्ज जग कै भगवांना। जिन्ह पद बंदित हौं धरि ध्यांना ॥ ३ ॥
जामैं जग अरु जोग स्वरूपहिं। जातैं प्रगट्यौ जक्त अनूपहिं ॥
जा जग तैं आगैं करतारा। म्हैं हूं तिहं आश्रै निरधारा ॥ ४ ॥
जो उतपति अरु समैं प्रलैं कै। ग्यांन द्रिष्टि सौं साछी ह्वै कैं ॥
जग कौं दैषत है बहु नांमी। आप प्रकास रूप जग स्वांमी ॥ ५ ॥
पुनि औरनहूं कौं जु प्रकासक। सौं मो रछया करहुँ सभायक ॥
लौक रू लौकपाल जैंइ सबैं। पावत नास समैं करिहिं तबै ॥ ६ ॥
पसरत है माया अंधियारा। प्रभू बसत है वांकै पारा ॥
सुर मुनिहूं जिहँ रूप न जानैं। औरनि की का गनति निदांनैं ॥ ७ ॥
ज्यौं नट रूप लषै सब कौई। अैं कछु भेद पबर नहिं हौई ॥
बै प्रभु म्हैरी रछयाहुं करौ। मौ इहि मह प्रयाण दुषहिं हरौ ॥ ८ ॥
छौड्यौ जिन्हनि संग संसारा। बैं पुनि लषत ब्रह्म करतारा ॥
ब्रह्मचर्ज लौं आदि करत व्रत। म्हैरी रछया करहु जगतपत ॥ ९ ॥
नांम रूप गुण दोष अरु कर्म। जाकैं नांहिं जनम जुत मर्म ॥
उतपति पालन प्रलैं निमित्तहीं। धरत रूप हैं जै प्रभु नित्तहीं ॥ १० ॥
अनाकार ईस्वर पर ब्रह्म। जिन्हकी सक्ति अनंत असींह्म ॥
जांकैं नांहिंन रूप अकारा। अरु बहुरूप धरत बहु बारा ॥ ११ ॥
तिन्हकैं कर्म सु अचिरज रूपा। जा प्रभु कौ परनांम अनूपा ॥
प्रभू प्रकासक है सब ठौरा। जिनकौं कौ न प्रकासक औरा ॥ १२ ॥
परमातम आछौ सबहिंन कौं। परै रूप मन चित्त तैं जिनकौं ॥
जा प्रभु कौ म्हैरो परिनांमा। है निस बासर आठौ जांमा ॥ १३ ॥
पंडित जन लैकैं संन्यांसहिं। पावत जांहिं भलैं अभ्यासहिं ॥
जैं प्रभु महामुक्ति कै दाता। जिन अनुभव आनंद बिष्याता ॥ १४ ॥
म्हैं जिन्हकौं परिनांम करत हौं। ध्यांन हिर्दै निज मधिहिं धरत हौं ॥
सान्त सुभग अदभुत जु नवीनहिं। प्रभु कै रूप अनूप सरीनहिं ॥ १५ ॥

माया रूप रूप जे ग्यांना। माया कै गुन धारण वांना॥
जीव रूप हैं सबकै साछी। माया कै कारण बिधि आछी॥ १६॥
जिन्हकौ मौ परिनांम सुढारा। बारंबार भलैहिं अनुसारा॥
द्रष्टा इंद्री बिपैंन कै हरि। इंद्रिन ब्रत कैं साछी जगवरि॥ १७॥
अहंकारादिक कै जु प्रकासक। सदा सकल ठौरनि जू भासक॥
सबकै कारन हैं जग मौरा। जिन्हकौं नहिं कारण कौ ठौरा॥ १८॥
अदभुत कारन आगम वेदहिं। तिन्हकौं बतवत हैं सुभ भैदहिं॥
जैं प्रभु हैं सबकैं आधारा। जिन्हकौं मो परिनांम निर्धारा॥ १९॥
माया गुण सौं जिनकौं ग्यांनहिं। प्रगट ह्वैहिं नर हिर्दै सथांनहिं॥
जैं प्रभु आपुन रूप अनैका। गिनै जात नहिं किहूं विवैका॥ २०॥
ग्यांनी विधि निषैधहिंतैं परैं। तिनहिं उर जिन्ह प्रकास अनुसरै॥
उन प्रभु कौ म्हैरौ परिनांमा। महामुक्त सुष निज पद ठांमा॥ २१॥
मौसै पसु जिन सरनै आऐं। तिनकैं पाप जु सबै पलाऐं॥
दयावंत प्रभु अंतरजामी। नमसकार मो जिन पद ठांमी॥ २२॥
तन ग्रह सुत धन मित्तन मांहीं। अैं आसक्त जु रहत सदांहीं॥
जिन्हकौं कठिन प्रभू की प्रापति। जैं प्रभु है सबहिंन की सुभ गति॥ २३॥
जिन्हकौं मुक्त धरत है ध्यांना। ईस्वर तैंइ रूप हैं ग्यांना॥
तिन्हकौं बचन कर्म मन करिकैं। करैं नमस्कृत आनंद भरिकैं॥ २४॥
धर्म अर्थ जु मोछ अरु कांमा। चाहत जैं जन आठौं जांमा॥
तैं वां प्रभु कैं भजन प्रभावहिं। वांछित सुष पावै सुपदायहिं॥ २५॥
बै प्रभु सकल मनोरथ दैता। दयावंत बड सब सुष हैता॥
बै प्रभु अबै छुडावै मौहिंउ। दीन अबल मौकूं अवरोहिंउ॥ २६॥
जिन्हकैं भक्त करत कछु नांहिंन। यैक हरि पद सरनहुँ रहांहिंन॥
प्रभु गुण गाय लहत आनंदा। मगन रहत है तजि दुष दंदा॥ २७॥
ब्रह्म ईस जैंहिं अछर रूपा। है इंद्रिन तैं परैं अनूपा॥
पूरन प्रभू प्रगटत जैं नांहीं। ग्यांन जोग करि बिनुकौं पांहीं॥ २८॥
जैं अनंत प्रभु सबकैं आदी। हौं निज अस्तुति करत अहलादी॥
ब्रह्मादिक सुर औंर चराचरि। प्रगट भयै जो प्रभु अंस करि॥ २९॥
जइसैं अग्नि ज्वाल प्रगटाहीं। जातहिं अग्निहिं मांहिं समाहीं॥
अरु ज्यौं रबि तैं किरन उदौता। फैंरि लीन रबि मैं ही हौता॥ ३०॥
ज्यौं ही प्रभु तैं तत्व चौबीसा। प्रगट लीन ह्वै बिच जगदीसा॥
बहिं प्रभु अमर असुर नर नांहीं। अस्त्री पुरष पसुननि कहांहीं॥ ३१॥
नाहिंन नपुंसक कहु अनुसारौ। गुन कर्मनहूं तैं जें न्यारौ॥
या हाथी कै जनमहिं मांहीं। म्हैं कछु कियौ चहत ही नांहीं॥ ३२॥
इहि गज जनम रूप अग्यांना। आत्म ग्यांनि कौ अंतरवांना॥

ऐसौं जो अग्यांन अंधियारा। तासौं छुट्यौ चहत निरधारा॥ ३३॥
जो बिस्व रूप बिस्ब तैं न्यारौं। सकल बिस्ब कौं सिरजन हारौं॥
आत्म बिस्ब कैं हैं अज ब्रह्महिं। जिन्हैं नवत जुत हित आरंभहिं॥ ३४॥
हुव जिन्ह कर्मनिष्ठत जोग करि। जो जोगैस लषत निज हिय धरि॥
तिन्ह प्रभु कौं म्हैरों परिनांमा। सरनागत पालक अभिरांमा॥ ३५॥
जिन्ह माया कै गुन अनुभाहीं। पदार्थ रागादिक प्रगटाहीं॥
जिन्हनि करी बस इन्द्रिय नांहीं। तैं वा प्रभु कौ मग नहिं पांहीं॥ ३६॥
जाकी माया मोहित प्रांणी। आत्म रूप नहिं परत पिछांणी॥
जाकी महिमा कौ नहिं पारा। नित्य निगम कहि बारंबारा॥ ३७॥
ता प्रभु कै म्हैं सरनै आयौ। पूरन पुण्य कौउ प्रगटायौ॥
ऐसौ जब गज अस्तुति कीनहिं। तब हरि प्रगटे तारन दीनहिं॥ ३८॥
गज कौ दुषित दैष भगवांना। अरु अस्तुति सुनि क्रिपा निधांना॥
गरुड स्वार गज निकट सिधारै। गज दर्सन करि सब दुष टारै॥ ३९॥
लपै गरुड पर चढै क्रिपाला। लियै चक्र कर लसत रसाला॥
तब गज कंवल सुंड कै मांहीं। करिकैं सुंड ऊंची उहिं ठांहीं॥ ४०॥
गज बोल्यौ हे प्रभु नारायण। तुम्हहिं प्रणांम अषिल गुर पायन॥
गज कौ दुषित दैषि वहिं बारा। उतरि गरुड तैं तारनहारा॥ ४१॥
ग्राह ग्रसत गज लियौ निकारी। छूट्यौ गज जौ ग्राह संघारी॥
सकल सुरन कै लपत ग्राह सिर। काटि चक्र सौ दिय सुभ पद फिर॥ ४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कंधे भाषा ब्रजदासी
कृते तृतीयोऽध्याय: ॥ ३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्थोऽध्याय: ॥

(गज और ग्राह का पूर्व चरित्र तथा उनका उद्धार)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - श्री सुक कहत कि ता समैं, सुर रिषि बिधि गंधर्ब॥
सुमन बरषि हरि कर्म कौं, भयै सराहत सर्ब॥ १॥
अमर पुरनि दुंदभि बाजै, भयै उछाह अपार॥
गान करत गंधर्ब मिलि, नृतत अपछर सुढार॥ २॥
सिध चारण रिषि गन करत, भयै अस्तुति इहिं बार॥
कह्यौ कि प्रभु असरनसरन, धन्य धन्य करतार॥ ३॥
हूहू नांम गंधर्ब हौ, पूरब जनम कैं मांहिं॥
दैवल रिषि कौ पग ग्रह्यौ, करत न्हांन जल ठांहिं॥ ४॥

उन्हकैं श्राप प्रभाव सौं, भयौ हुतौ इहि ग्राह॥
फेरि दिव्य निज रूप लहि, सफल करी मन चाह॥५॥
करत भयौ आनंद सौं, बहि प्रभु कौ गुनगांन॥
करि प्रनांम भगवांन कौं, गवन्यौ अपुन सथांन॥६॥
प्रभु हरि कर परसहिं छुटै, गज कौ कर्म बंधांन॥
पीतांबर चव भुज धरैं, लह्यौ रूप भगवांन॥७॥
पूर्ब जनम इहि गज हुतौ, बिस्नु भगत अभिरांम॥
द्रबिड दैस कौं नृपति हौ, इंद्र द्युमन जिहिं नांम॥८॥
इक दिन इहिं नृप मौन जुत, मलयांचल गिरि ठांम॥
रूप तपस्वी कौं धरैं, पूजन हरि अभिरांम॥९॥
तांह अगस्त रिषि सिषिन जुत, सहजहिं निकसै आय॥
उन्हकी उहिं बैरां कछू, पूजा करी न जाय॥१०॥
रिषि अगस्त अैं कौंप करि, श्राप नृपति कौ दीन॥
कह्यौ कि है नृप दुष्ट इहिं, ब्रह्म अवग्यां जु कीन॥११॥
या राजा कैं मद बउत, है गज मत्त जु समांन॥
तातैं अब इह हौहुँ नृप, हाथीहीं जु निदांन॥१२॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं श्राप दैं, रिषि अगस्त किय गौंन॥
इंद्र दुमन सौच्यौ किं मो, कछु अपराध हुतौंन॥१३॥
श्राप लग्यौ बस दइब कैं, ताकौं का उपचार॥
इहि समझ चुप ह्वैहिं रह्यौ, इंद्र द्युमन उहिं बार॥१४॥
नृप जब बांही श्राप सौं, गज तन धार्यौ आप॥
पूर्ब जनम सुधि नहिं भुली, प्रभु सेवा परताप॥१५॥
यौं छुडाय गज ग्राह तैं, दै निज पार्षद रूप॥
संग लै गयौ लौक निज, प्रभु चढ गरुड अनूप॥१६॥
सिद्ध गंधर्ब सुर हरिचरित, गावन लगै सुढार॥
जिन प्रभु की लीलांन कौं, बेदहुँ लहत न पार॥१७॥
गज कौ इहै छुडायबौ, और हुँ कृस्नं चरित्र॥
हम्ह तुम्ह सौं बरनैं जिन्हैं, सुनै जु हौय पवित्र॥१८॥
गज चरित जैहिं सुनै अघ, मिटि जस सुवर्ग सु होय॥
लषै सुपन जो बुरौ तिहिं, दूषण रहै न कोय॥१९॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

गजहिं छुडायौ ग्राह तैं, जिहिं बैरां भगवांन॥
हाथी सौं अैसौं बचन, बौलै क्रिपा निधांन॥२०॥

म्हैरो तेरौ अवर नग, नगकंदरांन ठौर॥
बेंत बांस बृछ जुक्त बन, सरवर इहै सुतौर॥२१॥
या पर्बत कै सिषर मधि, ब्रह्मा बिस्नु रु महैस॥
रहत करत जोइ तिनकौं, सुमिरन भलैं सुदैस॥२२॥
छीर सिंधु मो सथल अरु, स्वैत द्वीप ससि सूर॥
चक्र सुदर्सन पांचजन, संष गरुड गुन पूर॥२३॥
कौस्तुभ मणि श्रीचिन्ह कौ, और गदा बनमाल॥
सैषनांग नारद रमा, बिधि सिव देव बिसाल॥२४॥
मच्छ कच्छ बाराह है, म्है जै करै चरित्र॥
धर्म अगन ऊँकार द्विज, ध्रुव प्रहलाद पवित्र॥२५॥
दछ परजापति की सुता, सकल रूप गुनधांम॥
ससि कस्यप अरु धर्म कौ, जैं ब्याहीं अभिरांम॥२६॥
अैरावत रिषि सप्त गौ, गंगा जमुन सुढार॥
सरस्वति नंदा नांम की, नदी महा सुषसार॥२७॥
औरहूं उत्तम मनुष जन, बड जु सुनिय जग ठांहिं॥
इतननि कौं सुमिरन करत, जैं निसि पिछली मांहिं॥२८॥
दूरि हौत जिनकैं सकल, पाप पुंज निरधार॥
पाप मिटैं तैं हौय फिरि, अति आनंद सुढार॥२९॥
तेरौ कियौ सतौत्र इहीं, पाठ करै जो प्रात॥
ताकौं उत्तमहुं दैहुं गति, अंत समैं बिषयात॥३०॥

॥ श्री सुक उवाच॥

यौं प्रभु गज सौं बचन कहि, संष नाद किय फेरि॥
गरुड सवार हर्षत करन, अमरन कैं जहिं बेरि॥३१॥
गवन कियौ निज लोक कौं, दीन सहायक नाथ॥
जय जय हरि अवतार प्रभु, दैत मुक्ति इहिं गाथ॥३२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ पंचमोऽध्याय: ॥

(देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना और ब्रह्माकृत भगवत् स्तुति)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा- सुक कहत कि ग्राह तैं गज, छुडयौ श्री भगवांन॥
अघ कौं टारनहार है, इहीं चरित्र सुषदांन॥ १॥
सौ तौ हम्ह तुम्ह सौं कह्यौ, आछी भांति सुनाय॥
अब मनु रैवत नांम कौं, बरनन करहिं सुभाय॥ २॥
हुव तामस कौं भ्रात मनु, रैवत पंचम नांम॥
प्रगट भयै बलि बिंध्य लौं, जाकैं सुत अभिरांम॥ ३॥
इंद्र भयौ विभु नांम कौं, सुनियै नृपति सुजांन॥
अमर भूत रिषि आदि हुव, उहिं बैरां बुधिवांन॥ ४॥
हिरण्यरोमा बैदसिरा, ऊर्धबाहु लौं आदि॥
सात भयै रिषि धर्मधर, ईछा वस जु अनादि॥ ५॥
सुभ्र रिषीस्वर की सुता, तिया बिकुंठा नांम॥
ताकै प्रभु अवतार भय, श्री बैकुंठ अभिरांम॥ ६॥
लछमी कौं करिबै प्रसंन, जिननि भलैं अनुसार॥
धाम बैकुंठ जु दूसरौ, दियौ बनाय सुढार॥ ७॥
भुव रज कन जो गिन सकैं, प्राणी या जगमांहिं॥
सौ प्रभु गुन बरनन सकल, करि सकहीं सु अथांहिं॥ ८॥
छठै मनु चपुस अभिरांम, चाषुस जिन सुत नांम॥
तिन्हकै सुत भयै पूरुष, पूरु दुमन भुव ठांम॥ ९॥
इंद्र धरि मंत्रदुम नांम, देवगनि प्रमुष आप्य॥
हविसमांन वीरक जु रिषि, प्रगटै सुधरा धाम्य॥१०॥
जगत पिता कच्छप तन धारि, अजित सुनांम अवतरि॥
बराज तिय संभुति ग्रभाय, सागर मंथन जिनकरि॥११॥
मंदराचल कुँ पीठ धरि, भयै मंथनि आधारि॥
देवतन कुँ अमृत पिवाय, रिषि द्विजन रछा कारि॥१२॥

॥ राजोवाच ॥

सुक कहौ अब समुद मंथन, लीला जू बिसतारि॥
सुन्यौ चह दग्ध मन म्हेरौ, भक्त बछलता सुठारि॥१३॥

॥ श्री सूत उवाच ॥

सूत कहत सुक देव जू , नृपति चाह जु सरांहिं॥
समुद्र मंथन बरनत हैं, हरि क्रिपा करी चांहिं॥१४॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

दुरवासा कैं श्राप सौं, राछस भय बलबांन॥
तिन्हनि हतै सब दैवतां, अपनैं तीछन बांन॥ १५ ॥
हुवै पराजित दैवतां, भाजै अपनैं धांम॥
मारै अवरहुँ दैवता, पैठि देवपुर ठांम॥ १६ ॥
यक समैं मत्त इंद्र चढ्यौ, अैरावत पैं जांहिं॥
जिहिं रिषि दुरवासा मिलै, बैकुंठ जु मगमांहिं॥ १७ ॥
अरु दुरवासा भाव सौं, अपनैं गर की माल॥
इंद्रहिं दीनी प्रीत जुत, रिषि करि क्रिपा विसाल॥ १८ ॥
इंद्र धरी बहि माल लै, अैरावत गज सीस॥
तब गजअपनी सूंड लैं, तौरी बिसबा बीस॥ १९ ॥
तासौं इंद्रहिं श्राप रिस, रिषि दुरवासा दीन॥
तेरौ राज त्रिलौक कौं, हौहुँ छौभ जुत छीन॥ २० ॥
अैसैं सौभ त्रिलौक की, भनी पाय रिषि श्राप॥
अरु जिग्यादिक कर्महूं, कौ नहिं करै सथाप॥ २१ ॥
इंद्र बरुण आदिक अमर, सब दैत्यन सौं हारि॥
करत अनैक बिचार पैं, निश्चै कछु न प्रकारि॥ २२ ॥
तब सुमेर नगवर सभा, बिधि कीन्ही तहिं जाय॥
बिधि सौं सिवही दैवतनि, कही बात समझाय॥ २३ ॥
इंद्रादिक सुर बिधि लषै, सबहीं सौभा हीन॥
जौरावर देषै दइत, लौक जु मंगल छीन॥ २४ ॥
मनहीं सौं बिधि जानि सब, करि हरि ध्यांन सुढार॥
प्रसंन हौय बौलत भयै, अमरनि सौं उहिं बार॥ २५ ॥
जा हरि कैं हैं अंस बिधि, बिधि कै अंस प्रभाय॥
हम्ह सब सुर नर जीव जिन, प्रभु कै कियै सथाय॥ २६ ॥
ताही प्रभु कैं सरन हैं, हम्ह तुम्ह सब संसार॥
जा हरि कैं नाहिं कछू, ईछा किहूं प्रकार॥ २७ ॥
किहूं की रछा कीजियै, करियै किहूं संघार॥
किहुं कौ आदर कीजियै, दीजै किहूं विकार॥ २८ ॥
पै उतपति पालन प्रलैं, करन काज संसार॥
सत रज तम तिहुँ गुणन करि, धरहिं जिननि अवतार॥ २९ ॥
जगकैं पालन करन कौं, हैं इहिं समैं निदांन॥
तातैं रिछया आपनीं, वै करिहैं भगवांन॥ ३० ॥
अब हम्ह तुम्ह मिलिकैं सबै, उन्हकैं सरनैं जांहिं॥
वै करता कल्यांन कैं, सब बिधि सुष सरसांहिं॥ ३१ ॥

यौं कहि सब सुर संग लै, बिधि गवनैं प्रभु पास॥
छीर सिंधु कै मध्य जहिं, है भगवांन निवास॥३२॥
तट समुद्र कै जाय बिधि, सबही सुरनि समैत॥
करत भयै भगवांन की, अस्तुति अधिकारि हैत॥३३॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

जें प्रभु सत्य अनंत हैं, जिन्हमैं नांहिं बिकार॥
जें सर्बहिंन कै हिर्दै मधि, सबही आदि सुढार॥३४॥
जिन्ह प्रभु कौं परिनांम हैं, म्हैरै बारंबार॥
जें मूरति आनंद की, दीन बंधु करतार॥३५॥
जिन्हकैं नांहिं उपाधि कछु, आवत तर्कहिं मांहिं॥
हैं आगै मन बचन तैं, सबसुं श्रैष्ठ कहांहिं॥३६॥
घ्राण बुद्धि अहंकार मन, सबकैं द्रष्टा आंहिं॥
विषै और इंद्रीन कैं, बै हरि रूप सदाहिं॥३७॥
माया कौं न सरीर जिन्ह, जिन्ह मैं नाहिं अग्यांन॥
प्रगट हौत जुग तीन मैं, है आकास समांन॥३८॥
बिद्या रु अबिद्या जीव कौं, लागत जिहिं अनुभाय॥
ईस्वर कौं नहिं लगत हैं, हम्ह तिहिं सरन सदाय॥३९॥
जिनकी माया सौं लग्यौ, या जीवहि इहिं दैह॥
तामैं मन है मुष्य सौं, कहियत बली अछैह॥४०॥
पांच प्राण इंद्री दसौं, आरा हैं जा मांहि॥
सीघ्र चलत है बउत अरु, त्रगुण नाभि उहिं ठांहिं॥४१॥
आठ प्रकृति हैं नैमि जहिं, चंचल तडित समांन॥
अैसौं लग्यौ सरीर या, जीवहिं चित्र जु निदांन॥४२॥
जाकौं जो आधार है, करता पुरुष उदार॥
हम्ह जा प्रभु कैं सरन हैं, मन वच क्रम निरधार॥४३॥
जें न्यारै अग्यांन तैं, ग्यांन रूप करतार॥
प्रगट न अरु छिपै नांहिंन, नहिं जिन्ह प्रभु कौ पार॥४४॥
बसत जीव कै निकट जें, अंतरजामी रूप॥
धीर पुरष करि जोग जिन्ह, गहत उपास अनूप॥४५॥
तरि न सकत कौ जिन प्रकृति, मोहित प्रांनी हौत॥
जांनत है कौ नांहिनैं, आत्मा तत्व उदौत॥४६॥
प्रकृति रु गुण पुनि प्रकृति कै, जें प्रभु जीतनहार॥
है समांन प्रांणीन मैं, जिन्हैं प्रनांम हम्हार॥४७॥
हम्ह सब सुर गुण सत्य सौं, प्रगट कियैं जिन स्वांमि॥
सौऊ हम्ह जानि न सकत, जांन रूप अभिरांमि॥४८॥

रजोगुणी हैं असुर बै, सकैं कहां तैं जांनि॥
नित प्रति जिन्हकैं हिर्दै मधि, है अंधियार अग्यांनि॥४९॥
जा प्रिथवी मैं बसत हैं, प्राणी चार प्रकार॥
स्वेदज·अंडज जराइज, उदभिज चहुं निरधार॥५०॥
ऐसी इहि प्रिथवी प्रगट, निज प्रभु चरननि ठांम॥
जा ईस्वर कौ चाह जुत, है म्हैरौ परिनांम॥५१॥
अपनैं हीं आधीन जें, महापुरुष भगवांन॥
ब्रह्म रूप जिनकौ बडौ, है अैश्वर्ज निधांन॥५२॥
लौकपाल तिहुँ लौक जा, जल सौं जियत बढंत॥
सौ जल जा भगवांन कौ, बीर्ज अनूप लसंत॥५३॥
सौ ईस्वर आनंद कै, दाता अति सुषदाय॥
हम्ह पर हौहुँ प्रसंन अब, अपणी क्रिपा प्रभाय॥५४॥
बल आयुष अमृत तिहूं, है अमरनि ससि दैंन॥
तरु पति पुष्ट प्रजांन कौं, करता प्रगट सुषैंन॥५५॥
है मन जा भगवांन कौ, अैसौं ससि अभिरांम॥
सौ हम्ह ऊपर प्रसंन हौं, करता पूरन कांम॥५६॥
जासौं सबही बेद कैं, करम हौत बिषयात॥
अरु पचाय बिच उदर कैं, ईस भलैं सब धात॥५७॥
सोई अग्नि मुष परगट, है जा प्रभु निरधार॥
जो ईस्वर हौ प्रसंन अति, हम्ह पर भलैं प्रकार॥५८॥
अर्चिरादि मग कौ अमर, बेद मई वपु जुक्ति॥
सथल जु ब्रह्म उपाय कौ, द्वार अमृत मृत्यु मुक्ति॥५९॥
सौभित अैसौ सूर्य है, जिहिं प्रभु नैत्र सुढार॥
सौ हम्ह ऊपर प्रसंन हौं, पूर्न ब्रह्म करतार॥६०॥
स्थावर जंगम जियन कौं, प्रांन रूप बल रूप॥
जिहिं सैवक हम्हसैं अमर, अैसौ पवन अनूप॥६१॥
सोई पूरन ब्रह्म कै, प्रांणन तैं प्रगटाय॥
बै प्रभु हम्ह पर प्रसंन हौं, दीनबंधु सुषदाय॥६२॥
जिनकैं कर्नन तैं दिसा, सबहीं उपजि सुभाय॥
छिद्र इंद्रियन कैं जिनहिं, हिर्दै तैं जु प्रगटाय॥६३॥
जिन्हकी नांभी ठौर तैं, प्रगट भयौ आकास॥
जिन्ह इंद्री मन प्राण कै, जें आधार सभास॥६४॥

जें हम्ह ऊपरि प्रसंन हौं, असरन सरन क्रिपाल॥
उन्हकैं प्रसंन जु हौंन मैं, मिटत महादुष जाल॥६५॥
जिन्ह बल तैं हुव इंद्र अरु, हुव सिव क्रौध प्रभाय॥
जिन्हहीं कै नव द्वार तैं, रिषि रु निगम प्रगटाय॥६६॥
जिहँ प्रसाद तैं सुर भयै, इंद्री तैं मुष च्यार॥
सौ ईस्वर हम्ह परि अबै, हौहुँ प्रसंन निरधार॥६७॥
रमा बछसथल तैं पितर, छाया तैं प्रगटाय॥
धरम हिर्दै तैं प्रगट भौ, अधर्म पीठि प्रगटाय॥६८॥
हुव बिहार तैं अपछरा, सिर तैं स्वर्ग सुढार॥
हम्ह पर हौंहूं प्रसंन अति, बे स्वामी करतार॥६९॥
जिन मुष तैं द्विज प्रगट हुव, छत्री ठौर जु भुजांनि॥
बैस्य जंघन तैं चरन, तैं सुद्र जु भय निदांनि॥७०॥
हम्ह उपरि हौंहुं प्रसंन बै, प्रभू गरीब निबाज॥
नमसकार हम्ह करत हैं, सबहीं दैव समाज॥७१॥
उपजि लौभ जिन अधर तैं, उच्च औष्ट तैं प्रीति॥
अरु पलकनि तैं प्रगट भौ, काल सकल जग जीति॥७२॥
जिन्ह भौंहनि तैं जम प्रगट, सपरस तैं भय कांम॥
बे हम्ह ऊपरि प्रसंन हौं, पूर्न पुरुष अभिरांम॥७३॥
काल पंच महाभूत गुण, कर्म प्रपंच अनंत॥
जिन्ह माया तैं हौत हैं, प्रसंन हौत भगवंत॥७४॥
जिन्हकौं लाभ सरूप कौं, जुदै प्रकृति तैं आप॥
आसक्त न गुण प्रकृति मैं, जे सम पदन सदाय॥७५॥
प्रभू रावरै सरन हम्ह, आयै सहित उमाह॥
अपनैं पंकज वदन कौं, देह दरस जग नाह॥७६॥
जें निज ईछा सौं प्रभू, धरिकैं रूप अनैक॥
करत चरित्र सु कहन नाहिं, आवत किहूं बिबैक॥७७॥
कर्म कांमना जुत करत, जिनकैं कर्मनि पांहिं॥
बउत कलैस रु तुच्छ फल, लहत जबै जग ठांहिं॥७८॥
अरु जें तुम्ह मैं करत हैं, कर्म समर्पित चांहिं॥
सफल कर्म जिनि हौत हैं, पावत सुष अनथांहिं॥७९॥
तुम्ह मैं देत समर्पि जें, कर्म अलपहूं कौंय॥
जिन्हकी है बढवारि अति, अरु निरफल नहिं हौंय॥८०॥
तुम्ह प्रिय आत्मा सबनि कै, हितकर्ता जु करतार॥
हौं अनंत जिन्ह कर्म नहिं, आवत तर्क मझार॥८१॥

जइसैं पानी सींचियै, बृछि मूलहु कैं मांहिं॥
तौ स्कंध साषा सबै, प्रफुल्लितता सरसांहिं॥८२॥
ज्यौं आराधन राबरौ, कीनैं तै भगवांन॥
आराधन सबहीं कौं, हौत भलैं उनमांन॥८३॥
जें त्रिकाल तैं अनंत हैं, सदा इकरस सथाय॥
बादविबादहिं तैं परें, लीला करत अथाय॥८४॥
निरगुण और हरिगुणन कैं, ईस्वर हौ अभिरांम॥
धरैं सत्व कौं हे प्रभू, तुम्हकौं है परिनांम॥८५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते पंचमोऽध्यायः ॥५॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

(देवताओं और दैत्यों का मिलकर समुद्र मंथन के लिए उद्योग करना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि ऐसै जबै, अस्तुति दैवतनि कीनि॥
भयै प्रगट भगवांन तब, दास चाह आधीन॥१॥
रवि अनंत सम कांति जिन, जास कांति कैं नोर॥
नैत्र सुरनि कैं मुंद गयै, बढ चकचौंधि सजोर॥२॥
सकल दिसा आकास कछु, सूझ परत है नांहिं॥
सिव बिधि कौं दर्सन भयौ, पूर्न करत मन चांहिं॥३॥
स्यांम अंग मणि नील सम, कँवल दलन सैं नैंन॥
प्रस्नं बदन बांकी भौंहैं, मंद हास सुषदैंन॥४॥
जिनि तायै सुबर्न सौं सम, पीत बस्त्र अभिरांम॥
अंग अंग सुंदर महा, नौछाहरि बहु कांम॥५॥
क्रीट मुकुट मणि जटित सिर, बाजू बंध भुजांनि॥
सौभित है कुंडलनि सौं, मुष कपौल छबि षांनि॥६॥
नूपुर कंकण कंकणी, हारावलि लौं आदि॥
जथाजोग भूषन बनै, अंग अंग आनादि॥७॥
कौस्तुभ मणि सौभित हिर्दैं, अरु बनमाल नवीन॥
सस्त्र सुदरसन आदि धरि, मूर्ति सैव्य आधीन॥८॥
सिव बिधि ऐसौं रूप लषि, लहि आनंद अपार॥
सब अमरनि संजुत अस्तुति, करत भयै उहिं बार॥९॥

॥ ब्रह्मोवाच॥

जिन्हकौं उतपति प्रलय नहिं, हैं आनंद सरूप॥
सुछम सौं सुछिम बन्यौ अरु, तेज प्रताप अनूप॥१०॥

जिन पद पंकज मुक्ति कैं, दाता है अभिरांम॥
ऐसैं प्रभु कौं प्रीति जुत, हम्ह करहीं परिनांम॥११॥
जे चाहत कल्यांन निज, तें जू भलैं प्रकार॥
बेदत्रयी कै मंत्र करि, पूजत तुम्हहिं अपार॥१२॥
इहै तुम्हारी मूर्ति मधि, हम्ह तिहुँ लौक लषांहिं॥
आदि अंत अरु मध्य या, जग कौ तुम्हहीं मांहिं॥१३॥
आदि अंत मधि मांहि ज्यौं, घट कैं मृतिका आंहिं॥
आधि अंत मधि जगत कौं, ज्यौं प्रभु तुम्हहीं ठांहिं॥१४॥
तुम्ह निज माया करि रच्यौ, इहै सकल संसार॥
तामैं पैंठे हौं तुम्हहिं, ग्यांनी लषत सुढार॥१५॥
सगुन रूप संसार मैं, तुम्ह निरगुण भगवांन॥
जगमगाय रहे जक्तपति, सब ठां भलैं प्रमांन॥१६॥
पय गायन कैं मध्य अरु, अग्न काष्ठ कैं मांहिं॥
उद्यम मैं आजीवका, अन्न सुप्रिथवी ठांहिं॥१७॥
पयई जुत है जतन करि, जइसैं हीं उनमांनि॥
ग्यांनी जन निज बुद्धि सौं, तुम्ह सौं लैंत पिछांनि॥१८॥
प्रापत भय आनंद कौं, तुम्ह दरसन हम्ह पाय॥
ज्यौं गज दुषित दवाग्नि सौं, लहैं गंग जल जाय॥१९॥
लौकपाल हम्ह मिलि सकल, जांनि मित्रयाहि बारि॥
आयैं हैं हम्ह सरन सौं, कार्ज करहुँ करतारि॥२०॥
प्रभु हम्ह बिनती का करैं, अंतरजामी आप॥
तुम्ह तैं छांनी नहिं कछू, हे करता सजाप॥२१॥
सिव सुर दछि अरु प्रजापति, आदि सबै निरधार॥
तुम्ह तैं न्यारै भऐं कछु, करि न सकत किहुँ बार॥२२॥
तातैं तुम्हहीं हे प्रभू, सत्रु जीतबैहुँ काज॥
दैहुँ बताय उपाय अब, हम्हहिं गरीब निवाज॥२३॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि ब्रह्मादिक सुर, जबै अस्तुति यौं कीन॥
जांनि मनोरथ सुरनि कौ, बोलै तारन दीन॥२४॥
पयसागर करियै मंथन, हुव मनोर्थ भगवांन॥
तब वइसी ही रीत सौं, बचन कहै सुप्रमांन॥२५॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

हे ब्रह्मा सिव इंद्र मो, बचन सुनौ चित्तलाय॥
तातैं तुम्हरौ अमरगन, ह्वै कल्यांन सुभाय॥२६॥

जब लौं दानव दैत्यगन, हैहिं अधिक बलवांन॥
तबलौं करहुं मिलाप निज, कार्ज लियै बुधिवांन॥२७॥
करियै अपनैं कार्ज कौं, सत्रु आप महिं मिलाप॥
ताकौ दूषण नांहिं कछु, समझौ निज उर आप॥२८॥
हौय पिटारै मध्य अहि, जइसैं बंदीवांन॥
तब मूसा सौं प्रीत करि, कटै पिटार सयांन॥२९॥
निकसि आप भछ जाय फिरि, मूसाहूं कौं सांप॥
दैत्य दानवन सौं करौ, जइसैं तुम्हहुँ मिलाप॥३०॥
अमृत प्रगट सु हौंन कौं, अब तुम्ह करौ इलाज॥
अमर हौत जिहिं पांन तैं, प्रांनी जिहिं सुषसाज॥३१॥
डारि लता त्रन औषधी, बिच पयसिंधुहिं जागि॥
मंदिर गिरि कौं रई करि, नेतौ बासुगि नागि॥३२॥
मथौ सिंधु सुर असुर मिलि, म्हैं हौं अमर सहाय॥
असुरन कौं श्रम हौयगौ, तुम्हकौं फल सुषदाय॥३३॥
असुर कहैं सौ मांन तुम्ह, लीजौ समैं बिचारि॥
कारज सिधि ह्वै प्रीत सौ, बिगरै बैर प्रकारि॥३४॥
निकसै बिष जो सिंधु तैं, तासौं भय मत पाहुँ॥
अरु निकसै जो बस्तु कछु, जासौं जनि ललचाहुँ॥३५॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि यौं कहि सुरनि, हुवै जु अंतरध्यांन॥
बिधि सिव प्रभुहिं प्रनांम करि, गवनैं आपु सथांन॥३६॥
अरु इंद्रादिक दैवता, गयै नृपति बलि पास॥
करन सिंधु मंथांन की, धरिकैं निज मन आस॥३७॥
उपज्यौ असुरनि क्रौध अति, दैषि अमरहिं इंद्रादि॥
मनैं करत भौ नृपति बलि, लषि असुरनि रिस जादि॥३८॥
दैत्य करत जिहिं सैव अति, सौभावंत लषाय॥
अैसैं नृप बलि पैं अमर, प्रापत हौतहिं जाय॥३९॥
राजा बलि की अस्तुति करि, बचन कहै सुरराय॥
बात कहीही ज्यूं प्रभू, ताही भांति सुभाय॥४०॥
नृप बलि कौं आछी लगी, इहि अमरनि की बात॥
संबर त्रिपुर अरिष्ट अरु, असुरनि भई सुहात॥४१॥
तबै दैवता दैत्य मिलि, करन सिंधु मथांन॥
करत भयै उद्यम भलैं, मिलि सबहीं बुधिवांन॥४२॥
गिरि मंदर निज भुजनि सौं, सुर आसुरनि उठाय॥
छीर सिंधु कैं तट निकट, लै बोलै उमगाय॥४३॥

हार गयै गिरि बौझ तैं, बलि बासब लौं आदि॥
तबै पटक दिय राह मैं, पाय परम श्रमज्याद॥४४॥
मरै असुर सुर दबि बउत, दानव बौझ प्रकार॥
भुजा बंध गरदन तुटी, बहुँतनि की तिहिं बार॥४५॥
अैसौं प्रभुलषि प्रगट हुव, गरुड चढै भगवांन॥
सुंदरस्यांम अनूप छबि, दैंन महासुषदांन॥४६॥
मरै अद्रि सौं दबि कितै, सुर आसुर उहिं बार॥
जिन्हकौं अपनी क्रिपा करि, लिय जिवाय करतार॥४७॥
अैक हाथ सौं गरुॅड परि, धरि भगवांन पहार॥
दैव दैत्यनि संग लैंइ, आयै सिंधु किनार॥४८॥
गिर मंदार भगवांन तब, धरि समुद्र कैं पास॥
निज गरुड कौ करी दियौ, दैषन प्रगट हुलास॥४९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षटोऽध्यायः ॥ ६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

(समुद्र मंथन का प्रारंभ और भगवान संकर का विषपान)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - श्री सुक कहत कि बेर वहिं, बासुकी अहि बुलाय॥
वाकौ अमृत दैंन कहि, दिय गिरि सौं लपटाय॥ १॥
गिरि मंदार कौं रई करि, बासुकि नेतौ कीन॥
सिंधु मंथन आरंभ कियै, मिलि सुर असुर प्रवीन॥ २॥
प्रभु जुत सबहीं देवतां, भयै नागफन वोर॥
अरु आसुर बलवंत जें, कियै पूंछ की ओर॥ ३॥
तब असुर बोलै कि पूछ, अहै अमंगल रूप॥
भलैं हम्हारै कर्म गुण, बेद जु पढै अनूप॥ ४॥
तातैं अहि कौं पूछ इहि, हम्ह पकरेंगै नांहिं॥
इहिं कहिकैं आसुर सबै, रूठ गयै उहिं ठांहिं॥ ५॥
जबैं दैवतां सहित प्रभु, भयै पूछ की ओर॥
तबैं फन दिसि हौत सकल, आसुर महा सजोर॥ ६॥
अैसैं मिलि सुर असुर सब, काढनि सुधा निमंत॥
मथत भयै सामुद्र कौं, प्रभु आग्यां कैं तंत॥ ७॥

गिरि मंदर मथतै समैं, थक्यौ किहूं सौं नांहिं॥
ठहर्यौ नहिं आधार बिन, नग बूड्यौ जल मांहिं॥ ८॥
नग की गति इहि दैव वस, लषिकैं सब उहिं बार॥
सुर असुरनि कैं मलिन मुष, हाथ गहै निरधार॥ ९॥
कीनौं विघन गनैंस कौ, लषि कैं यौं भगवांन॥
धारि कूर्म अवतार निज, पैठिहिं समुद्र सथांन॥ १०॥
पर्बत आपुन पीठि परि, धारि कूर्मावतार॥
लै आयै ऊंचौन गहि, करता पुरष उदार॥ ११॥
लष जौजन की पीठ पैं, राष्यौ नग भगवांन॥
उछल्यौ गिरि लषि सुर असुर, मथत भयै जु निदांन॥ १२॥
अद्री भ्रमायौ सुर असुर, मथवे कैं अनुसार॥
कच्छप जू जान्यौ तबै, षुजत पीठ निरधार॥ १३॥
सुर असुरनि मैं पैठि प्रभु, मथै आप बल देत॥
अरु सर्पहुं कौं आप बल, दयो सुरन कैं हेत॥ १४॥
फुटन लग्यौ नग उपरि तैं, तब धरि नग सम रूप॥
भुजा हजारन सौं नगहिं, थांभ्यौ प्रभू अनूप॥ १५॥
बिधि सिव बासब जुत सबनि, प्रभु की असतुति कीन॥
फूलन की बरषा करी, भयौ सोक सब छीन॥ १६॥
नग बासुक तर उपर सब, ठां बल दिय भगवंत॥
तब सुर असुर लगै मथन, बिकल भयै जल जंत॥ १७॥
बासुकि कै बहु मुषन तैं, निकसि जहरी फुंकार॥
तासौं बलि जुत असुर सब, हुव कारै उहिंबार॥ १८॥
जइसैं ज्वाला अग्नि तैं, जरि तरु कारै हौत॥
तइसैं स्याम असुर भयै, मिटयौ कांति उदौत॥ १९॥
बाही अहिन फुंकार सौं, मिटी सुरनि की कांति॥
बस्त्र माल सब ह्वै गयै, धूवां रंग की भांति॥ २०॥
तब घन बरषै सुरनि पैं, प्रभु की आग्यां पाय॥
सीतल चल्यौ समीर पय, सिंधु तरंगनि भाय॥ २१॥
तासौं सबहीं सुर असुर, लहत भयै आनंद॥
मथन लगै अति हर्ष जुत, मिट्यौ महा दुष दंद॥ २२॥
सुर असुरनि कैं मथनि तैं, अमृत प्रगटयौ नांहिं॥
तबै आप लागै मंथन, जक्त नाथ वां ठांहिं॥ २३॥
घन सैं स्यांम सुबर्न सैं, सौभित बस्त्र अनूप॥
कानन मैं कुंडल सुभग, सौभित बिजुरी रूप॥ २४॥

घुंघरारी अलकैं लसत, उर बनमाल रसाल॥
नैंन कमल दल सौं अधिक, हौय रहे हैं लाल॥२५॥
भुजानि सौं दुहुँ वौर तैं, गहि बासुकि भगवांन॥
मथत समुद्रहिं दिसी परत, अतिही सौभामांन॥२६॥
हलाहल निकस्यौ पहलैं, प्रभु कै मंथन प्रभाय॥
तासौं जल कैं जीव सब, बिकल भयै दुषपाय॥२७॥
फैल चल्यौ बिष दसहुँ दिस, तर ऊपरि सब ठौर॥
तब डर भजि सुर असुर सिव, सरन गयै सुभ तौर॥२८॥
मुक्त देव सिव सिवा जुत, हुतै ठांम कैलास॥
तहँ सुर जाय प्रनांम करि, करी अस्तुति सुषरास॥२९॥

॥ प्रजापतय ऊचुः ॥

दैव दैव महादैव तुम्ह, जगकै पालनहार॥
सरन रावरै हम्ह सकल, आयै हैं या बार॥३०॥
बिष इहि जारन लौक तिहुँ, जासौं करहुँ सहाय॥
बंध मौछ कै हैं सदा, दाता आप सुभाय॥३१॥
सरनागत कैं दुषहरन, हौ तुम्ह सदा क्रपाल॥
तुम्हकौं पूजत हैं भलैं, जिन्हकी बुद्धि रसाल॥३२॥
मायाकार बिधि बिस्नु सिव, तुम्हहीं धरि तिहुँ रूप॥
उतपति पालन अरु प्रलैं, जग की करत अनूप॥३३॥
ब्रह्म रूप हौ आप सब, जग कैं पालन हार॥
अरु तुम्हहीं या जगत कैं, हौ सरूप निरधार॥३४॥
प्राणी द्रव्य स्वभाव गुण, सत्य काल अहंकार॥
इंद्री महतत्व धर्म जिग्य, कैं तुम्ह रूपाकार॥३५॥
तुम्हहीं कर्त्ता बेदहुं कैं, हौ त्रय बेद सुढार॥
अरु इहि माया प्रबल हूं, तुम्हरै ही आधार॥३६॥
अग्नि तुम्हारौ मुष प्रिथवी, चरण रु गति है काल॥
कर्न दिसा रसना बरुन, सूरज नैत्र रसाल॥३७॥
पवन स्वास नभ नाभि जल, बीर्ज सुबर्ग है सीस॥
परबत अस्थी समुंद्र कुंष, है मन रजनी ईस॥३८॥
अहंकार है रावरौ, प्राणिन कौं आधार॥
सात तुम्हारी धात हैं, बेद छन्द आधार॥३९॥
रौम तुम्हारै तरु लता, धर्म ह्दै कौ ठौर॥
पांच उपनिषद रावरै, हैं मुष पांच सुतौर॥४०॥
तिन्हतैं प्रगट जु हौत हैं, मंत्र सुभग अठतीस॥
परमतत्व हैं जोतिमय, रूप रावरौ दीस॥४१॥

अधरम छाया अरु त्रिगुन, नैंत्र तुम्हारै तीन॥
ईछन बेदन रावरौ, सुनियैं परम प्रवीन॥४२॥
अषिल लौकपालक सदा, हे सिव अति सुषधांम॥
जोति रूप इह रावरौ, हे अदभुत अभिरांम॥४३॥
जाकौ बासब प्रजापति, बिधिहू जांनत नांहिं॥
ब्रह्मरूप तिहुँ गुणन तैं, न्यारै भेद बतांहिं॥४४॥
जिग्यहिं प्रजापति दछि कौं, त्रिपुर दैत बिषकाल॥
कांम आदि इतनैंन कौं, सुकिय नास क्रिपाल॥४५॥
सौ नहिं अचिरज रावरौ, नैत्र अग्नि अनुभाय॥
प्रलैं काल कैं समैं मैं, जगत भसम ह्वै जाय॥४६॥
ग्यांनी जन तुम्ह चरन कौ, करत चिंतवन चांहिं॥
अरु मूरष जें रावरी, यौं निंदा सरसांहिं॥४७॥
जु अस्त्री आधीन रहत, रहत मसानन बीच॥
ऐसी भांतिन कहत है, जें कौ मूरष नीच॥४८॥
ब्रह्मादिक हूं जु रावरौ, जांन सकत नहिं रूप॥
हम्ह तौ बिधि कैं हैं रचै, तुम्हरी अस्तुति अनूप॥४९॥
जगकौं पालन करन कौं, तुम्ह इहि धार्यौ रूप॥
सौ पहिचानत नांहिं हम्ह, बिधि बासब संजूप॥५०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं अस्तुति सुनि, कष्ट सुरनि कौं दैष॥
दया धारि सिव सती सौं, बोलै बचन बिसैष॥५१॥

॥ शिव उवाच॥

अहो भवानी सिद्ध तैं, काल कूट बिष नास॥
प्रगट्यौ तातैं सबनि कौं, भौ मृत्यु भय दुषत्रास॥५२॥
करि रछा सुर असुरनकी, दैहूं अभय सुभाय॥
धर्म समर्थन कौ इहै, करहीं दीन सहाय॥५३॥
साध आपनैं प्राणकूं, दै कैं भलैं प्रकार॥
औरन की जु रछा करैं, धरि चित्त दया अपार॥५४॥
दयावंत पर होत हैं, प्रसंन कृस्नं करतार॥
प्रभु कै प्रसंन भयै सकल, हौहिं प्रसंन निरधार॥५५॥
तातैं सकल प्रजांन कौं, हौंहुँ भलैं कल्यांन॥

॥ श्री सुक उवाच॥

म्हैं बिष भोजन करहुँ गौ, धरूँ न लालच प्रांन॥५६॥
यौं कहि बिष भोजन करन, सिव आरंभ जु कीन॥
सिवा महातम संभु कौ, जांन जु आग्यां दीन॥५७॥

सिवधरि आप हथैलि पैं, कियौ हलाहल पांन॥
कंठ स्यांम तातैं भयौ, बढि सोभा अप्रमांन॥ ५८॥
हौहिं और कैं दुष दुषित, है इहि साधु सुभाय॥
सबसौं राषै दया इहि, बड प्रभु सैव उपाय॥ ५९॥
बिस्नु भवानी चतुर्मुष, और सबै उहिं बार॥
अस्तुति करत भय दैंषि कैं, ऐसौं चरित उदार॥ ६०॥
पीवन मैं जो हाथ सैं, बूंदक जहर गिराय॥
सौ विष सर्पन पांन किय, अरु औषध प्रगटाय॥ ६१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कंधे भाषा ब्रजदासी कृते सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

(समुद्र से अमृत का प्रकट होना और भगवान का मोहिनी अवतार लेना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि सिव बिष पियौ, जब सुर असुर सुढार॥
करत भयै सागर मथन, धरि अहिलाद अपार॥ १॥
कामधेनु प्रगटी प्रथम, दैषत सकल समाज॥
रिषिन लई सौ जिग्य हित, दूध दही घृत काज॥ २॥
ससि सम ऊजल अस्वु बहुरि, ऊचश्रवा प्रगटाय॥
सौ बलि राजा लैत भौ, अपनौं जोरि जनाय॥ ३॥
इन्द्र कछू बोल्यौ न प्रभु, दियौ हुतौ समझाय॥
बासब तुम्ह कछु बस्तु पैं, मति परियौं ललचाय॥ ४॥
ता पाछै चवदंत गज, ऐरावत प्रगटाय॥
सौभवंत कैलास तैं, सो अधिकौ दरसाय॥ ५॥
ता पाछै प्रगटत भयौ, पारिजात तरु नांम॥
सुर्ग लोक कौ सौं सही, भूषन है अभिरांम॥ ६॥
अर्थी जन कैं जो करन, पूर्न मनोर्थ सुढार॥
सबकी ईछा पूर्न हौं, ज्यौ नृप तुम्ह निरधार॥ ७॥
पहिरैं भूषन बस्त्र फिरि, प्रगटि अपछरा सुढार॥
गति चितवनि लीलानि करि, जें सुर मन बसिकार॥ ८॥
ता पाछै प्रगटी रमा, तड़ित समान सरीन॥
जिन्ह निज कांति प्रभाय सब, दिसा प्रकासत कीन॥ ९॥

रूप रंग जौवन निरषि, लछमी कौं उहिं बार॥
मोहित ह्वै सुर असुर वहिं, चाहत भयै अपार॥१०॥
बासब सिंघासन सुभग, दिय लछमी कौं ल्याव॥
कनक कलस भरि जल नदी, मूर्ति धारि लै आव॥११॥
स्नान समैं की आषधी, लाइ प्रिथवी सुढार॥
रितु बसंत ल्यावत भई, अदभुत कुसुम अपार॥१२॥
पंच गब्य ल्यावत भई, गाय उमंग सुष पाय॥
करवावत भय स्नांन रिषि, वेद रीति अनुभाय॥१३॥
गान करत गंधर्ब गन, नृतत अपछर सुभाय॥
बजत संष दुंदुभि मृदंग, बीन बैंन सहनाय॥१४॥
दिग्गज सुंड सौं कलस लै, करवावत जु सनांन॥
बडै बडै द्विज बर पढत, बेद भलैं उनमांन॥१५॥
पीत बस्त्र सामुद्र दियै, रंग सुरंग सुढार॥
बनमाला दिय बरन अलि, तापर करत गुंजार॥१६॥
बिस्बकर्मा भूषन दियै, दियौ सरस्वती हार॥
कुंडल दीनैं नाग नैं, पदम दियै मुष च्यार॥१७॥
जा पर अलि गुंजार है, अैसी पंकज माल॥
लज्या जुत कर लैं रमा, चली चालहिं रसाल॥१८॥
कुंकुम चंदन तैं मंडित, सोभित तन जु अनूप॥
होत सब्द नूपुरन कौ, कनकलता कै रूप॥१९॥
जामैं नित नव गुन सुभग, अरु निर्दोष जु हौय॥
अैसैं बर कौं बरन की, चाह आप चित्त गौय॥२०॥
अमर असुर गंधर्ब सिध, चारण रु बिद्याधार॥
सब देषै पैं सकल गुन, जुत न कौउ निरधार॥२१॥
इक इक दोष जु सबनि मैं, देषै रमा बिचार॥
किहुं सौं मन मान्यौं नांहिं, अपनैं सम न निहार॥२२॥
कौ तपस्वी बड लषै पैं, क्रौध अधिक जिन मध्य॥
ज्यौं दुरबासा रिषिसुवर, पुहमी बीच प्रसध्य॥२३॥
कौ बड ग्यांनी पैं बउत, आसक्त बीच संसार॥
नांहिंन संग ज्यूं ब्रहस्पति, सुक्र दुहुँन अनुसार॥२४॥
बडै बडै जन हैं कौउ, पैं कामी अधिकाय॥
जइसी भांतिन चंद्रमा, अरु मुष च्यार कहाय॥२५॥
कौ इक बडौ त्रलोक कौ, ईस्वर लष्यौ सुभाय॥
पैं सौ पर आधीन हैं, जइसै बासब राय॥२६॥

कौउ देषै धरमात्मा, पैं न दया जिन्ह मांहिं॥
कौ देषै दातार तिन, मुक्त निमत दत्त नांहिं॥२७॥
सहित कांमना जें सही, जइसैं सिवि नर पाल॥
अरु कौऊ बलबंतहूं, लषै बधिक बहिं काल॥२८॥
पैं डारत हैं मैंटि उन, बल कौ काल सजौर॥
जइसै सहस्राबाहु नृप, हुतौ बली भुज ठौर॥२९॥
कौउ माया गुणनि जुदै, देषैं ज्यौं सनकादि॥
रहैं ध्यांनहिं समांधि मैं, जें नित प्रति अहलादि॥३०॥
कौइ अैक अैसैं लषै, जिन्हकी दीरघ आयु॥
पैं इंद्री बसकार जैं, मारकंड रिषि भाय॥३१॥
कौउ अैक अैसैं लषैं, जग तैं नांहिं उदास॥
पैं उन आर्बल कौ कछू, षबर परत नहिं भास॥३२॥
कौ देषै स्वभावहिं सुभ, आर्बलहूं अधिकाय॥
पैं अमंगल रूप जेहिं, ज्यौं सिव परत लषाय॥३३॥
अैस सबमैं दोष लषि, फिरि प्रभु ओर चिताय॥
इन्ह भांतिन बौलत भई, सबकौं बचन सुनाय॥३४॥
अैं सब गुग परिपूर्न हैं, दोष न कछु इन्ह मांहिं॥
अैं बर निज चित्त चाह धरि, मौकूं चाहत नांहिं॥३५॥
यौं नृदौष निज जोग लषि, सब गुन पूर्न बिचारि॥
आप भक्त आश्रय रमा, प्रभुहिं बरन चितधारि॥३६॥
धरी कंठ भगवांन कै, कमला कमलनि माल॥
सौ अति छबि पावत भई, सौभा बढी बिसाल॥३७॥
आश्रै आई भक्त है, लछमी लषि भगवांन॥
बसिबैं कौं दीनौं सथल, अपनैं हिर्दै सथांन॥३८॥
कोरी लछमी की कछू, नहिं प्रभु कैं चितचांह॥
आस्रै आई भक्त ह्वै, तब किय बडौ निबांह॥३९॥
रमा मंद मुसिकाय कैं, किय प्रभु कैं उरबास॥
जक्त पिता भगवांन अरु, लछमी मात सभास॥४०॥
लछमी प्रभु कैं हदै बसि, निज चितवनि अनुभाय॥
क्रिपा राषि तिहुँ लौक पैं, पुष्ट करत भई माय॥४१॥
संष नगारै अरु मृदंग, बजै सुरनि कैं धांम॥
गान करत गंधर्ब नृत, करि अपछर अभिरांम॥४२॥
बिधि परजापति रुद्र मिलि, अस्तुति करत सुषपाय॥
सुवर्ग सुमन बरषा करि, अधिक उमंग उपजाय॥४३॥

प्रजापतिन की वोर अरु, देवतांन की वौर॥
क्रिपा द्रिष्टि कीनी रमा, तातैं भयै सजौर॥४४॥
सील आदि सब गुन भयै, हुव आनंद अपार॥
प्रसंन भयै सब दैवता, प्रभु ईछा अनुसार॥४५॥
दैत दानवन परि क्रिपा, भई रमा की नांहिं॥
तातैं उन्ह सामर्थ मिटि, चंचल हुव अधिकांहिं॥४६॥
उद्यम हीन निलज्ज बे, सकल भयै उहिंबार॥
तौहू अपनैं चित्त धरन, अधिक अपुन अधिकार॥४७॥
निकसी मदिरा बारुनी, धरैं कन्यका रूप॥
जाकै पंकज सै नयन, अदभुत सुभग अनूप॥४८॥
ताहिं रीझ कैं लै गयै, असुर धरै हित टैक॥
ता पाछैं सामुद्र तैं, निकस्यौ पुरष जु अैक॥४९॥
दीरघ पुष्ट भुजा सुभग, कंठ संष उनमांन॥
अरुन नैत्र सांवल बरन, सुंदर रूप सुजांन॥५०॥
पीत बस्त्र धारन कियैं, पहिरैं भूषन माल॥
कानन कुंडल मणिन कैं, बछसथल जू बिसाल॥५१॥
सुधा कलस कर मैं लियैं, बिस्नु जु अस साछात॥
बक्ता बेदिक सास्त्र कैं, दलन रोग उतपात॥५२॥
लैंन हार जिग्य भाग कैं, धन्वंतरि जिहिं नांम॥
बडी कांति सौभा सहित, ऊंच पुरष अभिरांम॥५३॥
असुर अमृत घट दैषि कैं, लै गय बैगि छिनांय॥
तबै देवता दुषित ह्वै, गयै बिस्नुं सरनाय॥५४॥
अधिक दीनता सुरनि की, लषिकैं क्रिपा निधांन॥
करता सेवग कार्ज कैं, यौं बोलै भगवांन॥५५॥
अहौ देवता करहुँ मति, षेद आप चित्त मध्य॥
माया करिकैं करहुँगौ, तुम्हरौ कार्ज प्रसध्य॥५६॥
असुर अमृत कै कलस कौ, लै गय हुतै छिनाय॥
कलह करत तैं आप मिलि, पहिलैं इन्ह अनुभाय॥५७॥
युं कह्यौ प्रबल असुरन सौं, निरबल असुरनि अैहुँ॥
कर्यौ बरोबर परिश्रम, सुधा सुरनिहूं दैहुँ॥५८॥
जांनन सर्ब उपाव कैं, बिस्नु समैं तिहिं आप॥
करत भयै अदभुत महा, अस्त्री रूप सथाप॥५९॥
सुंदर स्यांम अनूप छबि, अंग अंग अभिरांम॥
झमझमात जोबन नवल, भयौ मोहनी नांम॥६०॥

छन्द विराज - प्रसंनं वदंनं। सुसोभा सदंनं।
छुटै बार सीसं। महासोभ दीसं।
बडै नैंन बांकै। बज्र दंत वांकै।
चढी ऊँच भौहैं। मनौं चाप सौहैं॥क॥
छबिं धाम नासा। सुगंधाय स्वासा।
अछै दोउ जुल्फैं। बिषै जुक्त हुल्फैं।
ससी अर्ध भालं। कपोलं रसालं।
करैं कंज पंत्रं। हथैली जु तंत्रं॥ख॥
भुजा चंप डारं। अदाहैं अपारं।
उरोजं नवीनं। कटिं ठौर छीनं।
नितंबं सुढारं। उरं ठां उदारं।
जंघं षंभ केरं। पदं मुक्त फेरं॥ग॥
नषं कांति अैसी। मणी औप जैसी।
सजैहैं सिंगारं। अनैकं प्रकारं।
मिहीं पीत सारी। लरी मुक्त वारी।
अलंकार अंगं। जथा जोग बंगं॥घ॥
बन्यौ माल बैनां। द्रिगं चैन दैनां।
फब्यौ फूल सीसं। रबिं जोत दीसं।
लरी मुक्त मांगं। छुटी केस जागं।
बिचं भौंह टींकी। मुक्तं फूल नीकी॥ङ॥
श्रुतं कर्न फूलं। नथं मूल रूपं।
छरा पोति ग्रीवा। सुभं सोभ सींवा।
तरै जास झुंक्तं। लरी दोय मुंक्तं।
कली चंप सोभै। चषैं चाहिं लोभै॥च॥
हराऔ हियै लैं। अनीं मैंन ठेलैं।
भुजा बंध हीरं। फुंदी पूच सीरं।
चुरी नील छाजं। कंकंनं बिराजं।
बिछं और ढारं। झुमंकं बिहारं॥छ॥
पहूंचू अगूंठी। मिहींदी अनूंठी।
कटिं किंकनी है। निबी बंधनी है।
गरैं फूल माला। चलै मंद चाला।
करं कंज फेरै। तिरंछाय हेरै॥ज॥
तुला पाय बाजं। बजै साज बाजं।
झरैं फूल केसं। लंगैहा सुदेसं।
लज्जा जुक्त हासं। भ्रकुंटी बिलासं।

चित्तौनं अनूपं। कटाछं संजूपं॥ झ॥
झुकायै सुनैना। बतायै सुसैना।
भक्ति जुक्त वानी। कहै जू सयानी।
धरैं रूप अैसौ। कहै कौनु जैसौ।
सुमोहं सुरूपं। अनंन्त अनूपं॥ ञ ॥७०॥

छन्दकवित्त- सुन्दर अनूप छबि देष पगि रहै कौं न,
बापुरै असुरन का गनती परत हैं॥
जकै बकै रहै मोहै गयै बिधि आदि दैव,
सांवरै सुजांन कैं अदभुत चरित हैं॥
मंद मुसिक्यांन अंग अंगनि अदाय बांकी,
तिरछी चित्तौन की कटाछै जी हरत हैं॥
मोहन जू मोहनी सरूप बह बाहि धारि,
धीरज हूं देषैं कौ अधीरज धरत हैं॥७१॥

दोहा - अदभूत रूप सु मोहनी, धरि प्रगटै भगवांन॥
ताकौं बरनन करि सकैं, अैसौं कौ बुधिवांन॥७२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

(मोहिनी रूप से भगवान के द्वारा अमृत बाँटा जाना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि आसुर अमृत, कलस परसपर मध्य॥
अैक अैक कै पास तैं, छीनन लगै प्रसध्य॥ १॥
तब आपसहुँ मैं मित्रता, सबहिंन दीनी छौड॥
कलह परसपर करत हैं, मिलि मिलि होडाहौड॥ २॥
ताही समैं सरूप तिय, धरि आयै करतार॥
करत भयै जिन्हकौं असुर, दरसन परम उदार॥ ३॥
दरसन करि लागै कहनि, असुरन मौहित कांम॥
रूप तेज जौबन लष्यौ, या तिय कौ अभिरांम॥ ४॥
अरू पूछन लागै कि तुम्ह, कौनुँ कांहतैं आय॥
का चाहत है नैत्र तव, कमल पत्रनि अनुभाय॥ ५॥
करत हम्हारै चित्तहिं कौ, तूं मौहत है बाल॥
हौ तुम्ह किहिं बडभाग की, अस्त्री परम रसाल॥ ६॥

इहिं हम्ह जांनत हैं कि किहुं, तौ सपरस किय नांहिं॥
सिध चारन गंधर्ब सुर, असुरनि हूं कौ नांहिं॥७॥
अरु हम्ह पहिचांनी इहै, बिधिना दया बिचारि॥
प्रसंन करन प्रांनी सकल, तुव पठवी है नारि॥८॥
अमृत कलस काजै करत, कलह सकल हम्ह आज॥
है हम्हरौ कल्यांन सौ, तू करि बाल इलाज॥९॥
हम्ह कस्यप सुत सुर असुर, मिलि आपस मैं भ्रात॥
जतन जतन अमृत सकल, काढयौ है बिष्यात॥१०॥
जथा जोग जाकौ अबै, तू बांटा करि दैहुं॥
हम्हहिं अधिक इन बांटिनौ, तेरौ जुक्त सनैहुं॥११॥
तब धरि अस्त्री रूप प्रभु, अैसै सुनि बहिंकाल॥
हास कटाछनि सौं चित्तै, बोलै बचन रसाल॥१२॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

हे कस्यप सुत तुम्ह करत, क्यूं म्हेरौ बिसबास॥
अस्त्री जो बिभचारनी, प्रीत न निश्चल जास॥१३॥
तिय विभचारनि कौ करत, नहिं पंडित बिसबास॥
बिभचारनि अस्त्री चहै, नित नव पुरष बिलास॥१४॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि इहिं सुनि असुर, धरि औरहुँ इतबार॥
सुधा पात्र हंसि प्रीत सौं, इन करि दिय मनुहार॥१५॥
लै अमृत घट हाथ मैं, करि कटाछि मुसिक्याय॥
असुरनि सौं बौलत भयै, प्रभु अैसै अनुभाय॥१६॥
म्हैं कम ज्यादा देहुं सौं, अमृत जाहुँ पिवाय॥
ताही मैं सब प्रसंन ह्वै, तौ बँट करूँ सुभाय॥१७॥
बचन मौहनी जू इहै, असुरन कह्यौ सुनाय॥
सौई मान लेतैं भय, हौ मौहित या भाय॥१८॥
करि उपवास सनांन करि, हौमदान दै गाय॥
बिप्रननि कौं संतुष्ट करि, भलैं मंत्र पढवाय॥१९॥
पहिर बस्त्र भूषन सुभग, सुर आसुर बहिं ठौर॥
बैठै कुस आसन उपरि, करि मुष पूरब और॥२०॥
धूप दीप जुत फूल सौं, मंडित हैं सब ठांम॥
उमंग असुर सुर चहत हैं, पियन अमृत अभिरांम॥२१॥
पगनि मंद गति जु घूंघरु, बाजत सब्द रसाल॥
षंजन सम चंचल चपल, मद जुत नैत्र बिसाल॥२२॥

लियैं अमृत घट हाथ मैं, महा मौहनी रूप॥
आनि सबनि कैं बीच मैं, प्रापति भई अनूप॥२३॥
चितवनि हास कटाछ जुत, सुंदरि रूप निहारि॥
सुर असुरनि की पांति किय, जुदी जुदी उहिं बारि॥२४॥
बचन कटाछिन सौं प्रसंन, करि ह्वै दयतन पास॥
दगा दैय प्यावत भई, सुरनि सुधा लषि दास॥२५॥
जरा मृत्यु ह्वै नांहिंनै, जा अमृत अनुभाय॥
सौ अमृत प्यायौ सुरनि, प्रभु निज क्रिपा जिताय॥२६॥
कही हुती इहि मौहनी, जू सौं असुरनि बात॥
तुम्ह बँट देहौ लैं सौई, ह्वै प्रसंन बिष्यात॥२७॥
असुर बंधे या बचन सौं, बौल सकैं कछु नांहिं॥
पुनि बै और बिचार इहिं, करत भयै चित्त मांहिं॥२८॥
बाद करन अस्त्रीन सौं, भलौ कहावत नांहिं॥
बाद कियैं बाढै अनष, तबै सनेह छुटांहिं॥२९॥
इहै समुझि चुप ह्वै रहै, दैत्य कछू बोलैं न॥
प्रभु अमृत प्यायौ सुरनि, करि निज क्रिपा सुषैंन॥३०॥
राहु सुधा पीवत समैं, अमर सरूप बनाय॥
बैठयौ पंगति सुरनि की, रबि ससि दियौ लषाय॥३१॥
तबै मौहनी जू तांह, करि आसुर पर रीस॥
चक्र सुदर्सन सौं प्रगट, काट्यौ वाकौ सीस॥३२॥
अमर भयौ सौ सीस बहि, अमृत कै परताप॥
रवि ससि पर दौरत अबहुं, बैर बढाय अमाप॥३३॥
ससि सूरज लौं आदि ग्रह, जिनकैं मधि मुष च्यार॥
कियौ सथापन राहुहूं, प्रभु ईछा अनुसार॥३४॥
सुर जब अमृत पीय चुकै, तब आसुरनि दिषाय॥
छौड मोहनी रूप प्रभु, निज तन धर्यौ सुभाय॥३५॥
सुर असुरनि मिलि सिंधु मथि, अमृत काढन मांहिं॥
कियौ बराबर परिश्रम, दुहुँ समाज बहिं ठांहिं॥३६॥
अैंपरिं लह्यौ सुधा सुरनि, प्रभु पद आश्रय पाय॥
असुर परिश्रम बृथा करि, थाकि रहै ललचाय॥३७॥
जो कछु तन मन धन बचन, प्राणन कैं अनुसार॥
आपुन लियैं पुत्रनि लियैं, कर्म करत संसार॥३८॥
सौ सबै मिथ्या है सही, कछू लाभ नहिं पाय॥
कर्म करै प्रभु निमित्त सौं, तैंहिं सदा सुषछाय॥३९॥

ज्यूं बृछि जर मैं जल दियैं, डारननि सुष उदौत॥
त्यूं हरि आराधन कियैं, प्रसंन सकल जन हौत॥ ४०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते नवमोऽध्यायः ॥ ९॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ दसमोऽध्यायः ॥

(देवासुर - संग्राम)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि दानव दैत्य, किय सागर मंथान॥
पैं हरि बिमुष प्रभाव हुव, सुधा न पाय निदांन॥ १॥
सुधा प्याय प्रभु सुरनि कौं, ह्वै कैं गरुड सबार॥
भयै पधारत लौक निज, पुर बैकुंठ सुढार॥ २॥
देष सुरनि की बृद्धिता, असुर अधिक दुष पाय॥
सस्त्र हाथ लै सुरनि सौं, जुद्ध करत भयै आय॥ ३॥
अमृत पांन सौं पुष्ट अरु, जे प्रभु सरन निदांन॥
अैसैं सुरगन हूं उमंग, करत भयै घमसांन॥ ४॥
उमंगि सैन्य चहुँ और तैं, बहिं सामुद्र किनार॥
जुद्ध भयंकर सुर असुर, करत भयै निरधार॥ ५॥
बउत क्रौध सौं सुर असुर, निज निज बल अनुसार॥
तुंपक तीर तरवारि सौं, लागैं करन प्रहार॥ ६॥
संष डमरु भेरी मृदंग, बाजन लगै अपार॥
हौत सब्द चतुरंगनी, सैना कौ उहिं बार॥ ७॥
मिलि मिलि रथी रथीन सौं, पैदल पैदल संग॥
गज सौ गज अस्व सौं अस्व, परत सहित उछरंग॥ ८॥

चौपाई - ऊंटन पर असुर सवारहिं। चढै गजन पर कैइ हजारहिं॥
किहुँ किहुँ की गदहा असवारी। तैं बड भागहिं बुधि अधिकारी॥ ९॥
कौ रीछन पर सिंघ पर कौऊ। कौ भैंसा पर स्वार जु हौऊ॥
कौउ कंक बक गीधनि चढै। कौउ गैंडनि बर्धनि चढि कढै॥ १०॥
केउ बाज मच्छ अष्टापद पर। केउ सवार गवय अज सूकर॥
किहुं सवारी अहि मृग नर हंसा। केउ स्वार स्यार नंदित वंसा॥ ११॥
किकट मूसा ससानि सवारा। बीछू कछुबनि चढै अपारा॥
जलथल बासी औरहुँ जंता। जिन्ह सौं स्वार असुर बलबंता॥ १२॥
आयैं जुद्ध करन कैं काजै। बडी सैन बल अतुलित साजै॥
नृप बलि दैत्यन कौ सरदारा। कौऊ यैक विमांन सुढारा॥ १३॥

देत भयौ मय दयत बनायी। सौ नभ मग चाहै जित जायी॥
सकल जुद्ध सामग्रीहिं जामैं। धरि जू राषी अति अभिरांमैं॥ १४॥
जाकै दैषैं अचरज हौता। कहि न जात अचरजहिं उदौता॥
दरसैं कबहुं कबहुँहिं नहि दरसै। स्वार लैंय जिहिं अति सुप सरसैं॥ १५॥
छत्र चंवरहिं राजा पैं फिरैं। ससि की सी सौभा बलि जु धरैं॥
बडै बडै असुर औरहुं सबै। चहुँ दिसिहुँ भयै संग बलि तबै॥ १६॥
संबर नमुचि बिप्रचित रु बांना। हैत प्रहैत सकुनि बुधिवांना॥
इल्वल कपिल अयौमुप नांमा। बज्र मैघ दुंदुभि अघ धामा॥ १७॥
भूत द्विमूर्धा अरु बिरौचन। काल नाभ उत्कल संतापन॥
संकुनि बज्रदंष्ट्र निसुंभ जंभा। चक्रापिक तारक सुंभ रंभा॥ १८॥
त्रिपुराधिपति रु कवंचनि बाता। अरिष्ट अरिष्ट नेम बिष्याता॥
कालैय रु पौलोम समैतहिं। औरहुँ दानव दैत्य बिजैतहिं॥ १९॥
इन सब सिंधु मथन कैं मांहीं। कीनौं हौ परिश्रम अधिकाहीं॥
पैं अमृत कौं लैस न पइयै। तैं सब नृप बलि कैं संग भयै॥ २०॥
जें आगैं अमरनि कैं बारा। जीत रहै हैं बल अनपारा॥
करत भयै आसुर सिंह नादहिं। ठौकि भुजा चढि चढि उन मादहिं॥ २१॥
यौं असुरनि कौं जोर निहारी। इन्द्र कौप करिकैं बहु बारी॥
अैंरावत पर स्वार जू भयौ। ज्यौंहिं उदयाचल रवि प्रगटयौ॥ २२॥
चलै अनैक वाहननि पै चढि। बासव कैं चहुँ दिस सुररिस बढि॥
अग्नि पवन बरुनादि सुढंगा। लौकपाल हुव बासव संगा॥ २३॥
चित्र बिचित्रहिं जू बस्त्र धुजनिकैं। ऊजल सेत छत्रहिं रतननि कैं॥
बिजनां चमरनि मणि डांडी लगि। बीर बस्त्र फहरात पवन लगि॥ २४॥
सस्त्र अस्त्र रवि कांति झमाझम। सैंना भई अैकत्र दुहूं सम॥
करत परस्पर द्वंद जुद्ध मिलि। पगै वीर रस उमंग दुहुं मिलि॥ २५॥
बलि अरु बासव मिलि जुद्ध करैं। तारक स्कंध कुमार जुध लरैं॥
हैत असुर सुर बरुण अरंतहिं। अरु सौमित्र प्रहेत जु लरंतहिं॥ २६॥
काल नाभ यम बिच जुद्ध माच्यौ। बिस्वकर्मा मय सौ जुध राच्यौ॥
लरत बिरौचन रु सविता भलै। तुष्टा संबर रन रसहिं रलै॥ २७॥
नमुचि जु अपराजित दुहुँ भिरहीं। अरुन रु बलि पुत्रबान जु लरहीं॥
बृषपर्वा सौं अस्विनि कुमारा। सुक्र ब्रहस्पति लरत सुढारा॥ २८॥
राहु चंद्रमा सौं संग्रामहिं। पवन पुलौम भिरत बहिं ठामहिं॥
लरहीं दैवी सुंभ निसुंभा। थापि रारि महादेव जंभा॥ २९॥
बलिकैं सौ सुत आदि जुवाना। तिनसौं सूर्ज करैं घमसांना॥
नरकासुर सौं लरत सनिस्चरहिं। मात्रकानि उत्कल मधि समरहिं॥ ३०॥
इल्वलि और असुर वातापी। मिलि बिधि पुत्रननि सु जुद्ध स्थापी॥

लरत अष्ट बसु कालैयन सौं। निवात कवच उंचास पवन सौं॥ ३१॥
अरु बिस्बदैव पौलोमन सौं। ग्यारह रुद्र जु क्रौध बसुन सौं॥
कामदैव दुरमर्ष लराहीं। रचत भयै रिस करि अधिकाहीं॥ ३२॥
दौउ पछ भिरहिं जीति चाह सौं। कियैं द्वंद जुध वीरायन सौं॥
तीछन तौमर पडगबान सौं। भय प्रहार जु करत भालन सौं॥ ३३॥
चक्र भुसुंडी पट्टिस बरछी। गदा पास रु फरसा बहुलछी॥
पडग रिष्टि मुदगर भिंदिपाला। परिघ सस्त्र यै जुक्त विसाला॥ ३४॥
इन्ह सस्त्रन सौं आपस मांहीं। काटन लगै सीस वहिं ठांहीं॥
अस्व गज रथ पैदल अनपारा। पंडन हुव सस्त्रन अनुसारा॥ ३५॥
बाहु चरन सिर गरि जंघनि कटि। धुजा धनुष बषतर तूटै फटि॥
रथ पहिया पायन अनुभायी। उडि रज सौं रबि दिसा ढंपायी॥ ३६॥
फिरि रक्त सौं भिजि रज दबि गई। लौथनि सौं रनभूमि जू छई॥
पर्यौ सीस धर बौलत मारा। जुटत कबंध सस्त्र करधारा॥ ३७॥
बलि बासव कौ सर दस मारै। गज ऊपर त्रय बांन प्रहारै॥
बासव कै चहुँ दिस भट च्यारा। तिन पर किय चवबांन प्रहारा॥ ३८॥
इकसर मार्यौ पीलबान पर। तिंह बीचहिं बासव काटै सर॥
बासव इह पराक्रम कीनां। तब बलि अगनि सक्ति कर लीनां॥ ३९॥
पैं बह सक्यौ चलाय नाहीं। काटी बासब हाथहिं माहीं॥
तब उन दैत्य रीस करि हियै। तौमर फरस सूल कर लियैं॥ ४०॥
बैउ इन्द्र नैं डारैं काटी। बडौ पराक्रम अपनौं थाटी॥
तब असुर भयै अंतरध्यांना। माया प्रगट करी बलबांना॥ ४१॥
पर्बत यैक सुरन सैना पर। प्रापत जु भयौ उहिं अवसर पर॥
जरै दावाग्नि सौं जांह जछ। गिरि गिरि परतहिं जू भयै प्रतछ॥ ४२॥
सिला परत भइ सैपर समेतहिं। तिनसौं सुर बहु भयै सभैतहिं॥
सिंघ ब्याघ्र अहि बिछू वराहीं। मैघ अंगारनि बृष्टि बरसहीं॥ ४३॥
लियै राछसी हाथ त्रिसूला। दीसत महा भयंकर मूला॥
प्रगटै राछस और अनंता। मारौ काटौ बचन कहंता॥ ४४॥
प्रगट काल कौ सौ दावानल। भयौ जरावत दैवन कौं दल॥
बढी तरंग समुद्र बढायी। उमड़त भयौ मर्याद मिटाई॥ ४५॥
यौं दैतन माया प्रगटाई। तातैं सुर हुव बिकल कुदाई॥
तब सब सुरन कियै हरि ध्यांना। तबहीं प्रगट भयै भगवांना॥ ४६॥
गरुड़ स्वार पीतांबर धारै। नैत्र कंवल दल सौभ अपारै॥
उर श्री चिन्ह अष्ट भुज सौहै। क्रीट मुकुट सिर सुर मन मौहै॥ ४७॥
यौं प्रभु प्रगट हौंन कैं मांहीं। मिटी दैत्य माया उहिं ठांहीं॥
जइसै प्रांनी जागि परै जब। सुपन भेद सब जात रहै तब॥ ४८॥

देत भयौ मय दयत बनायी। सौ नभ मग चाहै जित जायी॥
सकल जुद्ध सामग्रीहिं जामैं। धरि जू राषी अति अभिरामैं॥ १४॥
जाकै दैषें अचरज होता। कहि न जात अचरजहिं उदौता॥
दरसैं कबहुँ कबहुँहिं नहि दरसै। स्वार लैंय जिहिं अति सुप सरसैं॥ १५॥
छत्र चंवरहिं राजा पैं फिरैं। ससि की सी सौभा बलि जु धरैं॥
बडे बडे असुर औरहु सबै। चहुँ दिसिहुँ भये संग बलि तबै॥ १६॥
संबर नमुचि बिप्रचित रु बांना। हैत प्रहेत सकुनि बुधिवांना॥
इल्वल कपिल अयौमुप नांमा। बज्र मैघ दुंदुभि अघ धामा॥ १७॥
भूत द्विमूर्धा अरु बिरौचन। काल नाभ उत्कल संतापन॥
संकुनि बज्रदंष्ट्र निसुंभ जंभा। चक्राषिक तारक सुंभ रंभा॥ १८॥
त्रिपुराधिपति रु कवंचनि बाता। अरिष्ट अरिष्ट नेम बिष्याता॥
कालैय रु पौलोम समैतहिं। औरहुँ दानव दैत्य बिजैतहिं॥ १९॥
इन सब सिंधु मथन कैं मांहीं। कीनौं हौ परिश्रम अधिकाहीं॥
पैं अमृत कौं लैस न पइयै। तैं सब नृप बलि कैं संग भयै॥ २०॥
जें आगैं अमरनि कैं बारा। जीत रहै हैं बल अनपारा॥
करत भयै आसुर सिंह नादहिं। ठौकि भुजा चढि चढि उन मादहिं॥ २१॥
यौं असुरनि कौं जोर निहारी। इन्द्र कौप करिकैं बहु बारी॥
अैंरावत पर स्वार जू भयौ। ज्यौंहिं उदयाचल रवि प्रगटयौ॥ २२॥
चलै अनैक वाहननि पै चढि। बासव कैं चहुँ दिस सुररिस बढि॥
अग्नि पवन बरुनादि सुढंगा। लौकपाल हुव बासव संगा॥ २३॥
चित्र बिचित्रहिं जू बस्त्र धुजनिकैं। ऊजल सेत छत्रहिं रतननि कैं॥
बिजनां चमरनि मणि डांडी लगि। बीर बस्त्र फहरात पवन लगि॥ २४॥
सस्त्र अस्त्र रवि कांति झमाझम। सैंना भई अैकत्र दुहूं सम॥
करत परस्पर द्वंद जुद्ध मिलि। पगै वीर रस उमंग दुहुं मिलि॥ २५॥
बलि अरु बासव मिलि जुद्ध करैं। तारक स्कंध कुमार जुध लरैं॥
हैत असुर सुर बरुण अरंतहिं। अरु सौमित्र प्रहेत जु लरंतहिं॥ २६॥
काल नाभ यम बिच जुद्ध माच्यौ। बिस्वकर्मा मय सौ जुध राच्यौ॥
लरत बिरौचन रु सविता भलै। तुष्टा संबर रन रसहिं रलै॥ २७॥
नमुचि जु अपराजित दुहुँ भिरहीं। अरुन रु बलि पुत्रबान जु लरहीं॥
बृषपर्वा सौं अस्विनि कुमारा। सुक्र ब्रहस्पति लरत सुढारा॥ २८॥
राहु चंद्रमा सौं संग्रामहिं। पवन पुलौम भिरत बहिं ठामहिं॥
लरहीं दैवी सुंभ निसुंभा। थापि रारि महादेव जंभा॥ २९॥
बलिकैं सौ सुत आदि जुवाना। तिनसौं सूर्ज करैं घमसांना॥
नरकासुर सौं लरत सनिस्चरहिं। मात्रकानि उत्कल मधि समरहिं॥ ३०॥
इल्वलि और असुर वातापी। मिलि बिधि पुत्रननि सु जुद्ध स्थापी॥

लरत अष्ट बसु कालैयन सौं। निवात कवच उंचास पवन सौं॥ ३१॥
अरु बिस्बदैव पौलोमन सौं। ग्यारह रुद्र जु क्रौध बसुन सौं॥
कामदैव दुरमर्ष लराहीं। रचत भयै रिस करि अधिकाहीं॥ ३२॥
दौउ पछ भिरहिं जीति चाह सौं। कियैं द्वंद जुध वीरायन सौं॥
तीछन तौमर पडगबान सौं। भय प्रहार जु करत भालन सौं॥ ३३॥
चक्र भुसुंडी पट्टिस बरछी। गदा पास रु फरसा बहुलछी॥
पडग रिष्टि मुदगर भिंदिपाला। परिघ सस्त्र यै जुक्त विसाला॥ ३४॥
इन्ह सस्त्रन सौं आपस मांहीं। काटन लगै सीस वहिं ठांहीं॥
अस्व गज रथ पैदल अनपारा। पंडन हुव सस्त्रन अनुसारा॥ ३५॥
बाहु चरन सिर गरि जंघनि कटि। धुजा धनुष बपतर तूटै फटि॥
रथ पहिया पायन अनुभायी। उडि रज सौं रबि दिसा ढंपायी॥ ३६॥
फिरि रक्त सौं भिजि रज दबि गई। लौथनि सौं रनभूमि जू छई॥
पर्यौ सीस धर बौलत मारा। जुटत कबंध सस्त्र करधारा॥ ३७॥
बलि बासव कौ सर दस मारै। गज ऊपर त्रय बांन प्रहारै॥
बासव कै चहुँ दिस भट च्यारा। तिन पर किय चवबांन प्रहारा॥ ३८॥
इकसर मार्यौ पीलबान पर। तिंह बीचहिं बासव काटै सर॥
बासव इह पराक्रम कीनां। तब बलि अगनि सक्ति कर लीनां॥ ३९॥
पैं बह सक्यौ चलाय नाहीं। काटी बासब हाथहिं माहीं॥
तब उन दैत्य रीस करि हियै। तौमर फरस सूल कर लियैं॥ ४०॥
बैउ इन्द्र नैं डारैं काटी। बडौ पराक्रम अपनौं थाटी॥
तब असुर भयै अंतरध्यांना। माया प्रगट करी बलबांना॥ ४१॥
पर्बत यैक सुरन सैना पर। प्रापत जु भयौ उहिं अवसर पर॥
जरै दावाग्नि सौं जांह जछ। गिरि गिरि परतहिं जू भयै प्रतछ॥ ४२॥
सिला परत भइ सैपर समेतहिं। तिनसौं सुर बहु भयै सभैतहिं॥
सिंघ ब्याघ्र अहि बिछू वराहीं। मैघ अंगारनि बृष्टि बरसहीं॥ ४३॥
लियै राछसी हाथ त्रिसूला। दीसत महा भयंकर मूला॥
प्रगटै राछस और अनंता। मारौ काटौ बचन कहंता॥ ४४॥
प्रगट काल कौ सौ दावानल। भयौ जरावत दैवन कौं दल॥
बढी तरंग समुद्र बढायी। उमड़त भयौ मर्याद मिटाई॥ ४५॥
यौं दैतन माया प्रगटाई। तातैं सुर हुव बिकल कुदाई॥
तब सब सुरन कियै हरि ध्यांना। तबहीं प्रगट भयै भगवांना॥ ४६॥
गरुड़ स्वार पीतांबर धारै। नैत्र कंवल दल सौभ अपारै॥
उर श्री चिन्ह अष्ट भुज सौहै। क्रीट मुकुट सिर सुर मन मौहै॥ ४७॥
यौं प्रभु प्रगट हौंन कैं मांहीं। मिटी दैत्य माया उहिं ठांहीं॥
जइसै प्रांनी जागि परै जब। सुपन भेद सब जात रहै तब॥ ४८॥

ज्यूं ही हरि सुमरन अनुभायी। महाविपति सबही मिटि जायी॥
कालनेमि नाहर पर चढयौ। गरुड स्वार हरि लषि सिर मढयौ॥ ४९॥
भय चलावत त्रिसूल भ्रमायी। सौ आयौ दिस गरुड़ कुभायी॥
पकरि सूल बहि श्री भगवांना। चल्यौ वाही पै जू निदांना॥ ५०॥
तासौ वहै असुर जुत बाहन। मार्यौ गयौ दुष्टवाही छिन॥
फेरि सुमाली माली दौहीं। प्रभु सौं जुटै असुर रिस भौंही॥ ५१॥
चक्र सुदर्सन सौं बहिं बारा। उन्हकौं सिर काट्यौ करतारा॥
माल्यवांन तब अतिबल धारी। गरुडहिं चौट गदा की मारी॥ ५२॥
प्रभु तब चक्र सुदर्सन लै कर। काट्यौ बाही पापी कौ सिर॥
माल्यवांन माली रु सुमाली। प्रभु तिहुँ असुर हतै तिहिं काली॥ ५३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते दसमोऽध्यायः ॥ १०॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ औकादसोऽध्यायः ॥

(देवासुर संग्राम की समाप्ति)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि हरि क्रिपा तैं, सावधांन सुर हौय॥
सत्रुननि सौं बरजोरता, करत हिर्दै सुष सौय॥ १॥
इन्द्र पवन सौ आदि सुर, असुरनि करत प्रहार॥
जिन्ह असुरनि दीनी हुती, इन पै सस्त्रनि मार॥ २॥
बज्र उठायौ इंद्र नैं, बलिकैं मारन काज॥
हाहाकार कियौ सबै, जबहीं प्रजा समाज॥ ३॥
राजा बलि निरभै बडौ, जौधा बीच संग्राम॥
जासौं बोल्यौ इन्द्र यौं, धरि अभिमांन असाम॥ ४॥
ज्यौं नट बांधै सबनि कैं, नैत्र मंत्र अनुभाय॥
त्यौं जीत्यौ चाहत हम्हैं, तू माया दिषराय॥ ५॥
पहुँच्यौ चाहै सवर्ग कौं, ज्यौं कपटकार कौय॥
पटक देत नीचै तिन्हैं, उन्हकौं सब सुष षौय॥ ६॥
आज बज्र सौं काटिहौं, हे बलि तेरौ सीस॥
सावधांन अब हौहि तुम्ह, बलि धरि बिसबाबीस॥ ७॥

॥ बलिरुवाच॥

बलि बोल्यौ जे जुध करत, तिन्हैं कर्म अनुसार॥
कीर्ति जय अजय मृत्यु है, प्राप्त समैं कैं ढार॥ ८॥

पंडित तौ जांनै इहै, सबहिं काल आधीन॥
तातैं कबहूं करत नहिं, हर्ष रु सौक प्रबीन॥९॥
तुम्ह सें मूरष भैद इहि, जानि सकत हैं नांहिं॥
कारण सबही बात कौं, आपहिं कौं ठहरांहिं॥१०॥
तातैं तेरै बचन हौं, मन मैं ल्यावत नांहिं॥
ज्यौं तेरै मन आय त्यौ, बौल प्रगट या ठांहिं॥११॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि यौं इंद्र कौं, करिकैं बलि त्रसकार॥
तीछन बांनन सौ तांह, लागौ करन प्रहार॥१२॥
अैसी बिधि जब सत्रु कियै, बासब कौं अपमांन॥
सौ मन मैं ल्यायौ नांहिं, कछू सुरेस निदांन॥१३॥
बासव ब्रज प्रहार किय, जासौं सहित बिमांन॥
बलि असुरैस जु गिरि पर्यौ, बिकल हौय भुव थांन॥१४॥
बलि नृपाल कौं गिर्यौ लषि, जंभ सषा उहिं बार॥
जुद्ध करन आयौ बली, करि पौरुष बिसतार॥१५॥
चढयौ सिंघ पैं सौ असुर, निज करि गदा भ्रमाय॥
अैरावत कै सीस परि, किय प्रहार दुषदाय॥१६॥
अैरावत ब्याकुल भयौ, लगि कैं गदा प्रहार॥
बैठि गयौ अति दुषित ह्वै, घोंटनि बल उहिं बार॥१७॥
मातलि रथ बाही समैं, ल्यायौ बुधिहिं उदार॥
जाकै लगै हजार अस्व, हुव बासब तिहिं स्वार॥१८॥
जंभ असुर रथवांन की, लाग्यौ करन सराह॥
रथ ल्यायौ आछे समैं, धरि स्वांमी की चाह॥१९॥
यौं कहि मातुल पर असुर, कीनौं सूल प्रहार॥
मातुल पीड़ा सहि रह्यौ, निज धीरज अनुसार॥२०॥
जंभ असुर कौं बज्र सौं, बासब काट्यौ सीस॥
हौत भयै सब असुर गन, प्रसंन जु बिस्वाबीस॥२१॥
नारद मुष तैं सुनि मर्यौ, जंभ बीच संग्राम॥
वाकै संगी नमुचि बलि, पाक आय रन ठांम॥२२॥
इंद्रहिं बौलत दुर्बचन, किय सर बरषा धूम॥
ज्यौं घन बरषा करत है, परबत ऊपर झूम॥२३॥
बासब रथ कै अस्व सहस, तिनकौं बांन हजार॥
मारत भय निज बल दइत, चित्त धरि रीस अपार॥२४॥
पाक दैत्य सर दौय सै, मातल ऊपर चलाय॥
रथ तोर्यौ अति सीघ्र ही, मोषै बांण रिसाय॥२५॥

नमुचि दैत्य बासब उपर, मोषै पंद्रह बांन॥
फिरि गर्जत भयौ मेघ सम, धरि अति बल अभिमांन॥२६॥
सर बरषा चहुं और तैं, करि आसुर बलिबंत॥
सहित सारथी इंद्र कौ, छाय लियौ उहि तंत॥२७॥
इन्द्रहिं बाणनि सौं छिप्यौ, लषि सुर ब्याकुल हौय॥
लगै पुकारनि आह करि, नहिं उर धीरज सौय॥२८॥
ज्यौं जहाज के डुबन मैं, बाके बैठन हार॥
सौर करै बस ना चलै, मरै पुकार पुकार॥२९॥
तब निकस्यौ सर जाल तैं, मातुल जुत सुर राय॥
करत प्रकासक नभ प्रिथ्वी, रबि सम सौभ सषाय॥३०॥
इंद्र सुरनि कौं बिकल लषि, असुरन मारन काज॥
बज्र उठायौ रीस करि, दैषत सैंन समाज॥३१॥
काटै बाही बज्र सौं, पाक रु बलि के सीस॥
इन्ह दुहूँन कौ मरै लषि, नमुचि असुर करि रीस॥३२॥
उद्यम इंद्रहिं हतन कौं, करत भयौ निसचार॥
कंचन मंडित घंट जुत, कर लै त्रिसुल सुढार॥३३॥
किय प्रहार बासव उपरि, दौर असुर बलबांन॥
भुजा ठौकि गर्जत भयौ, उहिं ठां सिंघ समांन॥३४॥
सूल असुर कौ आवतौ, लषि बासव नभ ठौर॥
अपनैं बांणन सौ बहे, डार्यौ काटि सजौर॥३५॥
काटन कंठहुँ नमुचि कौं, चलयौ बज्र सुरैस॥
जासौं षालहु ना कटी, हुव न घाव कौं लैस॥३६॥
इहि लषि कै अचिरज भयौ, बासब कौं उहिं बार॥
डरपि कह्यौ कइसीं भई, बात सु कहर गुजार॥३७॥
प्रथम नगन कैं पंषहीं, तिन्हसौं उड़ि उड़ि जाय॥
परत नगन हीं जायतैं, पिसै जनहिं दुषपाय॥३८॥
पंष उन नगन कैं इहीं, बज्र सौं हम्ह हंसि काटि॥
अरु बृत्रासुर बज्रहिं सौं, मार्यौ जुद्धहिं थाटि॥३९॥
या छोटै असुरनि पैं, किय न बज्र कछु कांम॥
तातैं बज्र न राषिहीं, इंद्र चह्यौ चित्त ठांम॥४०॥
आकासी बांणी भई, तब अैसै अनुसार॥
आलै सूषै सस्त्र सौं, इह न मरै निरधार॥४१॥
याकौं इह हम्ह बर दियौ, इंद्र बिचारहुँ और॥
प्रभु बाणी सुनि इन्द्र नैं, कियौ सोच या तौर॥४२॥

नाहिं गीलौ सूषौ नांहिं, कहियत जल कौं फैंन॥
या आसुर कौं काटि हौं, तासौं सीस सुषैंन॥४३॥
इहि बिचार जल फैंन सौं, काट्यौ षल कौं सीस॥
सुजस पराक्रम इंद्र कौं, बाढ्यौ बिसबाबीस॥४४॥
सुमन बरषि कीनी असतुति, दैवतांनि उहिं बार॥
सुर नगरनि दुंदुभि बजै, हुव आनंद अपार॥४५॥
अग्नि पवन अरु बरुन लौं, अमर हौय बर जौर॥
जुद्ध करत हैं असुरन तैं, तंत भयै उहिं ठौर॥४६॥

॥ श्री नारद उवाच॥

बिधि पठयै नारद मुनी, बहि रणभूमिहिं आय॥
मनैं करत भय सुरन कौं, कियौ प्रबौध सुभाय॥४७॥
हे सुर तुम्ह पायौ सुधा, प्रभु आश्रै परताप॥
अबै करहुं मति जुद्ध रिस, कीजै हरि पद जाप॥४८॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि अैसौ बचन, नारद जू कौ मांन॥
छौडि क्रौध सब देवतां, निज निज गयै सथांन॥४९॥
हुतौ नृपति बलि मृतक सौं, ताहि समझि निज स्वांमि॥
बचै असुर तैं लै गयै, नग असतांचल ठांमि॥५०॥
जिन्ह असुरनि कैं सीस नहिं, कटै सस्त्र अनुभाय॥
तिन्हकौं बिद्या संजीवनी, तैं लिय सुक्र जिवाय॥५१॥
सावधांन नृप बलि भयौ, सुक्र जिवाय सुलीन॥
ग्यांनवंत हौ वहै कछु, षेद ना मन सुँ कीन॥५२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकादसोऽध्यायः ॥ ११ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वादसोऽध्यायः ॥

(मोहिनी रूप को देखकर महादेव जी का मोहित होना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि सिव नैं सुन्यौ, धर्यौ मोहनी रूप॥
मौहित कीनै असुर दिय, अमरनि सुधा अनूप॥ १ ॥
सहित भवानी संत गण, सिव ह्वै नंदी सवार॥
जाय प्राप्त प्रभु पास हुव, करि उछरंग अपार॥ २ ॥

आदर दिय भगवांन अति, सिव बोलै या भाय ॥

॥ श्री महादेव उवाच ॥

दैव दैव हौ जगत मैं, तुम्ह ब्यापक सुषदाय ॥ ३ ॥
आत्मा कारण सबनि कैं, जगत ईस्वर अनादि ॥
तुम्हहीं हौ संसार कैं, अन्त मध्य औ आदि ॥ ४ ॥
ब्रह्म रूप हौ आपकै, आदि मध्य है नांहिं ॥
नेति नेति भाषत निगम, तबहुँ पार नहिं पांहिं ॥ ५ ॥
छौडि संग संसार कौ, मुनि जन ह्वै निहकांम ॥
हौत आप कल्यांन तुम्ह, पद सेवन अभिरांम ॥ ६ ॥
पूर्ण ब्रह्म निर्गुन प्रभू, सौं कर हित अविकार ॥
परमानन्द सरूप हौ, तुम्ह स्वांमीं करतार ॥ ७ ॥
उतपति अरु पालन प्रलै, करनहार संसार ॥
आत्मा ईस्वर सबनि कैं, हौ अनादि अनपार ॥ ८ ॥
कारज कारण रूप तुम्ह, हौ अैकहिं भगवांन ॥
ज्यौं सुवर्ण आभरन कौ, सही अैक अनुमांन ॥ ९ ॥
जक्त रु तुम्ह हौ अैकही, भेद करै अग्यांन ॥
पूर्न प्रकृति तैं जगतपति, समझत साधु सुजांन ॥ १० ॥
बेद ग्यांनी तुम्हीं कहत, पूरन ब्रह्म अनूप ॥
अरु मीमांसक कहत है, महाधर्म का रूप ॥ ११ ॥
सांष्य सास्त्र तुम्ह कौ कहत, जे हैं साध सुजांन ॥
कारज कारन तैं परैं, मानत तपह निदांन ॥ १२ ॥
तुम्हहिं सक्ति नौ जुक्त मन, पंचरात्र पतवार ॥
मानत पातंजल मतो, महापुरुष सुषसार ॥ १३ ॥
हम्ह अरु बिधि मारीचादि, रिषि सब गुणहिं संजूप ॥
तउ आछै जांनत न जग, अपुन परायौ रूप ॥ १४ ॥
तौ सरूप प्रभु रावरौ, कइसैं सकैं पिछांनि ॥
अरु सुर दैत्य रजोगुनी, तिन्ह का गनति निदांनि ॥ १५ ॥
जग कौ आदि रु अन्त बंध, मौष इछा प्राणीन ॥
तुम्ह सब जांनत पवन सम, व्यापक विस्व प्रवीन ॥ १६ ॥
आत्मा ग्यांन सरूप हौ, तुम्ह अनादि करतार ॥
सब अवतार जु रावरै, हम्ह देषै बहुबार ॥ १७ ॥
अब अस्त्री अवतार तुम्ह, धर्यौ मोहनी रूप ॥
सौ नहिं देष्यौ दैषिबै, आयै परम अनूप ॥ १८ ॥
रूप सुधरि मोहे असुर, सुरन सुधा दिय प्याय ॥
सौ सरूप देषन भयौ, हम्ह मनोर्थ अधिकाय ॥ १९ ॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि अैसै बचन, सिव कै सुनि करतार॥
हँस कैं फिरि बौलत भयै, प्रभु कौतुकी सुढार॥ २० ॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

असुर लै गयै सुधा घट, भयै सुरनि नहिं देत॥
तब धार्यौ तिय रूप हम्ह, असुरनि मोहन हेत॥ २१ ॥
तुम्हकौं अबै दिषाय हौं, म्हैरौ अस्त्री रूप॥
जासौं कांमी जनन कैं, प्रगटत कांम अनूप॥ २२ ॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सिव कहत कि अैं बचन कहि, प्रभु हुव अंतरध्यांन॥
सिवा सहित चितवत भयै, चहुँ दिस सिव बुधिवांन॥ २३ ॥
चित्र बिचित्रहिं लगै पहुप, पल्लव सौभित लाल॥
अैसैं बन मैं अैंक बांह, सिव तिय लषी रसाल॥ २४ ॥
अदभुत सुंदर रूप तिय, नषसिष सौभ अपार॥
भूषन बस्त्र रसाल अति, पहिरैं भलैं प्रकार॥ २५ ॥
क्रीडा करत जु गैंद सौं, कटि किंकणि झंकार॥
गैंद षैलनै सौं स्तन, चंचल हौत सुढार॥ २६ ॥
जलजहार कै भार सौं, लचकत है कटि लंक॥
नैत्र कंवल दल सै लसैं, भौंह ऊंच चढि बंक॥ २७ ॥
गैंदहिं देत उछाल जितु, तित बौरै मुसिक्याय॥
चितवत चंचल द्रिगनि सौं, बढत सौभ अधिकाय॥ २८ ॥
पल्लव सौं सुकुमार पद, तिन सौं दौर चलंत॥
अंग अंग छबि माधुरी, रति कौ सौभ दलंत॥ २९ ॥
मंडित करनाभरन सौं, सुंदर गोल कपोल॥
स्यांम अलक मुष पैं छुटी, नहिं उपमा जिहिं तौल॥ ३० ॥
बस्त्र रहै ह्वै सिथिल अरु, षुली बैंनि छुटि बार॥
कैस सुधारस अैंक कर, इकतैं गैंद बिहार॥ ३१ ॥
चितवनि हांसी लाज जुत, अंग अदाय कटाछि॥
चटक चलनि मुरि देषनौं, मंत्र मोहनी भाछि॥ ३२ ॥
इनसौं सिव मौहित भयै, लषि बहि तिया रसाल॥
संक भवानी गणन की, नहिं राषी बहि काल॥ ३३ ॥
उहिं अस्त्री कैं हाथ सौं, गैंद दूर रहि जात॥
ताकौं लैन चली चपल, बस्त्र उडयौ लगि वात॥ ३४ ॥
मगन भई सिव लषत तिय, पवन परस अनुभाय॥
सौ लज्जा जुत छिपी गई, बीच बृछि मुसिक्याय॥ ३५ ॥

ऐसी तिय लषि कैं भयै, सिव मौहित गमि ग्यांन॥
बिकल कांम सौं ह्वै चलै, अस्त्री संग निदांन॥ ३६॥
सिवकौं आवत दैषिकैं, वह तिय लज्जित हौय॥
हँसि कैं छिप गई बृछनि मैं, दै सिव सिन्कारि गौय॥ ३७॥
भाजत तिय कै कैस गहि, सिव आलिंगनहिं कीन॥
निकसि गई सिव भुजनि तैं, बहिं तिय परम प्रवीन॥ ३८॥
सिव तिय कैं पाछै चलै, ज्यौं गज गजीनि लार॥
अरु ज्यौं दौरत हैं बृषभ, गौ पाछै किहुँ बार॥ ३९॥
जीतै बैरी कांम नै, सिव लागै तिय संग॥
दौरत दौरत थकि गयै, कीनौं जौर अनंग॥ ४०॥
बीर्ज गिर्यौ सिव कौ जबै, पर्यौ ठौर जहँ जाय॥
तहँ तहँ सुबरन की भई, उतपति षानि सुभाय॥ ४१॥
बन उपबन नग नद नदी, रिषीन तपस्या ठांम॥
तहँ तहँ सिव दौरत फिरैं, तिया संग बसि कांम॥ ४२॥
बीर्ज गिर्यौ जब हौय कैं, सावधांन त्रिय नैंन॥
तिय कै पाछै तैं फिरै, लज्जित हौय सुषैंन॥ ४३॥
सिव अचरिज मांनत भयै, प्रभू महातम जांन॥
धारि रूप निज हरि दियौ, दर्सन सिवहिं निदांन॥ ४४॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

प्रसंन हौय बौलत भयै, यौं सिव सौं भगवांन॥
धन्य धन्य महादेव तुम्ह, धन्य तुम्हारौ ग्यांन॥ ४५॥
म्हेरै अस्त्री रूप कौ, लषि कैं मोहित होय॥
सावधांन बहुर्यौ भयै, तुम्ह सम समर्थ न कोय॥ ४६॥
हे सिव म्हैरी प्रकृति कौं, तुम्ह बिनु तरैं सुकौंनु॥
माया फंदैं जिन्हिं यै, मौहक महा सुठौंनु॥ ४७॥
इह मो माया अति बली, है म्हैरै आधीन॥
सौ तुम्ह कौं करिहै नांहिं, मोहित तुम्हहिं प्रवीन॥ ४८॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि जब यौं प्रभू, सिव कौ आदर दीन॥
सिव प्रनांम करि हुकम लै, भवन आय ग्रह कीन॥ ४९॥
सिव यौं बोलै सिवा सौं, रिषि गन सुनि उहिं बार॥
प्रभु की माया दैषि तू, अहो प्रिये निरधार॥ ५०॥
जासौं म्हैं मोहित भयौ, औरनि कहा बसाय॥
सौ माया प्रभु सामुहैं, नांहिंन सकत चिताय॥ ५१॥

म्हें समाधि तैं उठयौ तब, सहस बरष करि ध्यांन॥
तबतैं मुहि पूछी धरत, किहुं कौ ध्यांन सुजांन॥५२॥
सौ बै प्रभु साछात हैं, दीनबंधु करतार॥
तिन्ह पर चलत न काल कौ, कछु सामर्थ बिचार॥५३॥
अैसैं कहत भलैं बचन, सिव जु सिवाहिं सुनाय॥
सिवा गणन जुत लोक निज, प्राप्त हौत भय जाय॥५४॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि इह प्रभु चरित, तुम्हकौं दियौ सुनाय॥
समुद्र मथतै समैं धर्यौ, मंदर पीठि सुभाय॥५५॥
या चरित कौ जो कौऊ, कहै सुनै चित लाय॥
जाकौ उदिम हौत नाहिं, निरफल किहूं उपाय॥५६॥
प्रभु गुण बर्नन जगत कैं, दुष कौं टारनहार॥
दुष्टन दुर्लभ भक्त सौं, सुलभ हौत करतार॥५७॥
अैसै प्रभु पद कमल कैं, आश्रै दास जु देव॥
जिन्हकौं प्यायौ अमृत हरि, आप क्रिपा कैं भेव॥५८॥
मौहित कीनैं असुर सब, धारि मोहनी रूप॥
सरनागति पालन प्रभु, तिन्हं प्रनांम अनूप॥५९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वादसोऽध्यायः ॥ १२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रयोदसोऽध्यायः ॥

(आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि छह मनुन कौं, हम्हहिं कीनौं बषांन॥
सौं तुम्ह आछैं सुन्यौ हे, नृपति परमहिं सुजांन॥ १ ॥
स्राध्यदेव रबि कौ जु सुत, मनु सप्तम या बार॥
ताकै जो संतान हुवै, सौं सुनि बुद्धि उदार॥ २॥
नभग धृष्ट इष्वाकु दिष्ट, नाभाग नरिष्यन्त॥
करूष पृषध्र बसुमांन, सर्याति जू बिष्यात॥ ३॥
बिस्वेदेवा रुद्र बसु, आदि अस्विनी कुमार॥
रिभु मरुतगण आदित अैं, भयै अमर या बार॥ ४॥
कस्यप अत्रि वसिष्ठ जमदग्नि, अरु जू बिस्बामित्र॥
गौतमं भारद्वाज रु अत्रि, रिषि हुव सात पबित्र॥ ५॥

आदित कस्यंप कैं भयौ, वामन प्रभु अवतार ॥
नाम पुरन्दर इन्द्र भौ, इन्द्रलौकं आधार ॥ ६ ॥
बरनैं हम्ह संतोष सौं, अैं मनु सात सुनाय ॥
अब ह्वै हैं मनु सात तैं, सुनियैं कहूं गनाय ॥ ७ ॥
विस्वकर्मा की सुता द्वै, छाया संग्या नांम ॥
तैं दोनौं ब्याही हुती, सूरज कौ अभिरांम ॥ ८ ॥
अरु सूरज कै तीसरी, अस्त्री बडवा जांनि ॥
बडवां तैं जमुना भई, संग्या तैं साव्रानि ॥ ९ ॥
तैपती कन्या सनीश्चर, मनु संविरण जू तीन ॥
छाया कै सन्तान हुव, सुनियै नृपति प्रवीन ॥ १० ॥
बडवा कै संतान इक, उपज्यौ अस्विनि कुमार ॥
अबै आठवौ होयगौ, मनु सावर्णि सुढार ॥ ११ ॥
बिरजस्क रु निरमोक लौं, आदिक पुत्र जिहिं जांनि ॥
सुतपा विरजा अमृत प्रभ, सुरवा समैं प्रभांनि ॥ १२ ॥
इन्द्र हौयगौ वां समै, परम भक्त बलिराय ॥
जिन वामन जू कौ दई, प्रिथवी दांन सुभाय ॥ १३ ॥
इन्द्र हौय कैं पाय है, फिरि बलि मुक्ति सुढार ॥
जाहिं परीछा लैंन कौ, बांध्यौ हौ करतार ॥ १४ ॥
अबै सुतल मैं बसत है, बलि राजा सुषपाय ॥
तांह आनंद अपार है, स्वर्गहुँ तैं अधिकाय ॥ १५ ॥
गालव दीपति कृपी रिषि, श्रृंगय ब्यासजु उदार ॥
राम अस्वथामा जबै, ह्वै हैं रिषि त्रय च्यार ॥ १६ ॥
देव गुह्य सरस्वती कैं, साव्रभौम मनु नाम ॥
ह्वै हैं प्रभु अवतार बहिं, बैरां अति अभिरांम ॥ १७ ॥
इंद्र लौक याई तैं, लै छिनाय भगवांन ॥
बलिराजा कौं दैहिंगौ, पूरन क्रिपा निधांन ॥ १८ ॥
पुत्र बरुनहुँ कौ नवुम मनु, ह्वै है दछि सावर्णि ॥
पार मरीचि गर्भ आदि, भयै अमर सुषकर्न ॥ १९ ॥
भूत केतु दीप केतु जु, ह्वै हैं पुत्रहिं सुढार ॥
उपजैंगी हरि भक्ति चित, करि हैं कर्म उदार ॥ २० ॥
बासव अदभुत नाम कैं, ह्वै हैं वाही बार ॥
दुतिमान जू आदिक रिषि, ह्वै हैं सात सुढार ॥ २१ ॥
नांम अंबुधारा तिया, आयुष मांन कैं गेह ॥
जांकै प्रभु अवतार हुव, नांम रिषभ अनुछेह ॥ २२ ॥

बासव अदभुत नांम कै, बैइ रिषभ भगवांन॥
रछा करि हैं दास लषि, जे हरि क्रिपा निधांन॥ २३॥
उपश्लोक कौ पुत्र जो ब्रह्म, सावर्णिय जू नांम॥
सौं दसवौं मनु हौहिंगौ, प्रगट सु प्रिथवी ठांम॥ २४॥
भूरिषेण लौं आदि सुत, जिहिं ह्वै हैं बिषयात॥
हविष्मान लौं आदि रिषि, ह्वै हैं जबहीं सात॥ २५॥
प्रभु अवतार जु हौहिंगौ, विस्वसृजन कैं धांम॥
अदभुत सुन्दर रूप जिनि, विष्वकसेन जू नांम॥ २६॥
हविष्मान जय मूर्ति सत्य, सुकृत जन लौ आदि॥
वा समैं अैं रिषि होगैं, वा प्रभु इछा अनादि॥ २७॥
बिरुद्ध सुवासन नाम कैं, ह्वै हैं सुर बिहिं बार॥
संभु नांम कौ हौहिंगौ, इंद्र भलैं अनुसार॥ २८॥
संयमी धर्मसावर्णि ह्वैहिं, मनु जु ग्यारवैं जांनि॥
सत्य धर्म आदिक दससुत, ह्वै है जु क्रिपा मांनि॥ २९॥
रुचि निर्वाण जु कामगम, और बिहंगम जांनि॥
ह्वै हैं अैसैं देवता, सुनि वा समैं निदांनि॥ ३०॥
अरुन आदि रिषि हौंहिंगै, बासव ह्वै बुधिवांन॥
बासव बैधृत नांम कौं, ह्वै हैं समवर्ग सथांन॥ ३१॥
ह्वै हैं रिषि आरियक कैं, ग्रेह प्रभू अवतार॥
धर्म सेतु या सवर्णि कह्यौ, त्रिलौक पालनहार॥ ३२॥
पुनि ह्वै हैं मनु बारवैं, रुद्र सावर्णि जू नांम॥
पुत्र देववान उपदेव, सुरश्रेष्ठ जिहिं नांम॥ ३३॥
रितधामा सुरराज हुव, हरित आदि सुर सुनांम॥
तपोमूर्ति आग्नी ध्रकहिं, आदि सप्तर्षि सुधांम॥ ३४॥
सत्यसहस कौ सुत हुवै, सुनृता कैं सु गर्भ॥
नांम स्वधामा हौहिंगौं, प्रभु अवतार सुसर्ब॥ ३५॥
अरु मनु ह्वै हैं तैरवैं, देव सावर्णि जु नांम॥
अरु चित्रसैनहिं बिचित्र लौं, आदि पुत्र जिहिं जुधांम॥ ३६॥
सुकरमहिं अरु सुत्राम लौं, आदि अमर उहिं बार॥
इंद्र दिवस्पति नांम कौं, ह्वै हैं सवर्ग मझार॥ ३७॥
तत्वुदरस निरमोक लौं, आदि जु रिषि उहिं बार॥
प्रगट हौंहिगैं करन कौं, बेद क्रिया अधिकार॥ ३८॥
देवहोत कैं बृहत तिय, ताकै प्रभु अवतार॥
जे उपहर्ता नांम कैं, प्रगटयौ जु उहिं बार॥ ३९॥

अरु मनु ह्वै हैं चौदहौं, इन्द्र सावर्णि जु नांम॥
उर गंभीर बुधि आदि सुत, प्रगटेंगै वहिं धांम॥ ४० ॥
ह्वै हैं चाषुक जु पवित्रहिं, आदि अमरनि सुठार॥
अरु बासब सुचि नांम कौ, प्रगटैंगें निरधार॥ ४१ ॥
सुध मागध अग्नि बाहु सुचि, रिषि ह्वै हैं जुत धर्म॥
सावधांन जै रहत हैं, कियै नेम जु सुकर्म॥ ४२ ॥
सत्रायण रिषि की तिया, बिताना जु सुषधांम॥
जाकै प्रभु अवतार हुव, बृहद भान जिन नांम॥ ४३ ॥
वै करि हैं सब जक्त मैं, धर्म प्रबृर्ति सुभाय॥
जांसौं ह्वै हैं सकल जन, आनंद अति अधिकाय॥ ४४ ॥
अैं चौदह मनु हम्ह कहि, भूत भविष्य ब्रतमांन॥
सौ सब तुम्ह आछै सुन्यौ, है राजा बुधिवांन॥ ४५ ॥
बर्नि अैं मनुहिं चतुर्दस, प्रगटै प्रलय उदोत॥
तब हजार युग चौगणौ, बिधि कौ इक दिन होत॥ ४६ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते त्रयोदसोऽध्यायः ॥ १३ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्दसोऽध्यायः ॥

(मनु आदि के पृथक पृथक कर्मो का निरुपण)

॥ श्री परीछित उबाच॥

दोहा - राजा पूछत है कि मनु, मनु सुत प्रभु अवतार॥
इंद्र अमर रिषइ समैं, छह प्रगटाय सुढार॥ १ ॥
करत भयै का कार्ज सौं, कहियै मनु समुझाय॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि सबही रहत, प्रभु आग्या अनुभाय॥ २ ॥
जो प्रभु कौ अवतार ह्वै, जिहिं आग्यां अनुसार॥
कार्ज करै मनु आदि सब, प्रसंन हौय निरधार॥ ३ ॥
चार जुगन कैं अन्त मैं, नष्ट हौत हैं बेद॥
तिन्हकौं फेरि करैं प्रगट, रिषिवर समझ सुभेद॥ ४ ॥
मनु चारौं पग धर्म कैं, करैं सथापन फैरि॥
अरु पालन सब प्रजा कौं, करैं धर्म निज हेरि॥ ५ ॥

सवर्ग राज बासब करत, जिग्य भाग सुर लेत॥
अरु प्रभु कौ अवतार ह्वै, राज इंद्र कौ देत॥६॥
बरषा रछा त्रिलौक की, इंद्र करत उहिं बार॥
पुनि उपदैस जु ग्यांन कौ, करत प्रभू अवतार॥७॥
अरु प्रभु जु प्रगट है, जोग सास्त्र अनुसार॥
धारि प्रजापति रूप कौ, बढवत सृष्टि अपार॥८॥
करिकैं रूप नृपाल कौ, मारत है अरि चोर॥
कालरूप है सबनि कौं, करत नांम बर जोर॥९॥
सास्त्र अनैकनि रीत सौं, प्रभु की अस्तुति करंत॥
पैं अपार प्रभु कौ कोऊ, तत्व न जांनि सकंत॥१०॥
अै ब्रह्मा कैं कल्प कौ, बरन्यौ भेद उदौत॥
मनु चौदह लौं आदि छह, अैंक कल्प सै हौत॥११॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते चतुर्दसोऽध्यायः ॥१४॥)

॥ अथ पंचदसोऽध्यायः ॥

(राजा बलि की स्वर्ग पर विजय)

॥ परीछित उबाच ॥

दोहा - राजा पूछत है कि बलि, पैं ईस्वर भगवांन॥
तीन पैंड प्रिथवी अलप, क्यूं मांगी सुनिदांन॥१॥
अरु बलि पैं लैं प्रिथ्वी क्यूं, बांध्यौ बिनु अपराध॥
इहि कारण हम्ह सौं कही, है हरि चरित अगाध॥२॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि इंद्र नैं, बलि की लछमी छीन॥
हत मार्यौ रनबीच सौं, जिवायौ सुक्र प्रबीन॥३॥
निज गुरु सुक्राचार्ज की, तब बलि सेवा कीन॥
बिप्र प्रसंन ह्वै कैं भयै, नृप सनेह आधीन॥४॥
करवावत भयै बिस्वजित, जिग्य नृपति बलि पास॥
किय जिग्यांत सनांन बलि, हिय धरि परम हुलास॥५॥
तब कंचन मय रथ रु अस्व, बासब अस्व समांन॥
सिंघ धुजा जुत अग्नि तैं, निकसत भयौ निदांन॥६॥
कंचन धनु तरकस अछय, दिव्य कवच सुषदाय॥
सबै सामग्री जुद्ध की, पावक तैं प्रगटाय॥७॥

अरु बलि कौं प्रहलाद जू, दई फूल की माल॥
दीनौं जु सुक्राचार्ज गुर, बलि कौ संष रसाल॥ ८॥
अैसें बलि द्विज क्रिपा तैं, पायौ सब जुद्ध साज॥
बिप्रनि स्वस्ति बाचन कियौ, जीत हौंन कै काज॥ ९॥
बलि विप्रननि दै प्रदछिना, करत भयौ परनांम॥
अरु वंदन प्रहलाद जु तै, कियौ तबै उहिं ठांम॥ १०॥
स्वार भयौ रथ बलि पहरि, कवच पहुप की माल॥
धनुष षडग लै हाथि कटि, तरकस बांधि रसाल॥ ११॥
पहिरैं भूषन रतन मय, बलि सौभित रथ स्वार॥
झलमलात ज्यौं कुंड मैं, पावक भलैं प्रकार॥ १२॥
जिन्हमैं निज सम अैस्वरज, बल लछमी सरसाय॥
मनु पीजैहिं हैं नभ रिष, नैत्र सौं जक्त जराय॥ १३॥
अैसै दैत्य बडैन की, लैंकैं सैन्य समाज॥
भुज कंपावत इंद्रपुर, प्राप्त भयौ दित राज॥ १४॥
बन हैं नंदन आदि बहु, बा बासबपुर ठांम॥
सब्द करत पंछी बिबिध, गुंजत अलि अभिरांम॥ १५॥
लगै तरुन मैं फल पुहुप, पल्लव परम सुढार॥
भरै नीर सौं नद नदी, सुरगन करत बिहार॥ १६॥
चहुँ दिस षाई घैरहिं ज्युं, गंगा अरु आकास॥
ऊंचा बूरज कौट का, अग्नि समान प्रकास॥ १७॥
दरबाजैं मणि फटिक कैं, कंचन मयी किंवार॥
हैं अनैक बाजार तहँ, चौहट गली सुढार॥ १८॥
दस करोरि बिमान जाँह, रतननि जटित रसाल॥
रची बिस्व करमा पुरी, जाकी सौभ बिसाल॥ १९॥
नित नव जौबन रूप जिन, भूषन बस्त्र अनूप॥
सौभित जहँ अैसीं तिया, सकल गुननि संजूप॥ २०॥
अपसरांन कैं सीस तैं, फूल परत हैं भूमि॥
चलत पवन जिन सपर्स सौं, अति सुगंध की धूमि॥ २१॥
और झरोषनि अमर कौ, निकसत धुवां सुभाय॥
तिन्ह मग आवत जात है, अपछर द्रगनि सुहाय॥ २२॥
मोतिन कैं चंदवा तनैं, मणिमय धुजा बिसाल॥
गान करत गंधर्ब गन, नृतत अपछर रसाल॥ २३॥
संष नगारै ताल अरु, बीणा बैण मृदंग॥
रु बाजत हैं बाजित्र बहु, सुनि उपजत उछरंग॥ २४॥

ऐसी अदभुत बहि पुरी, धर्म धार जांह जांहिं॥
कांमी लौभी दुष्ट जांह, जाय सकत हैं नांहिं॥२५॥
बहि नगरी चहुँ वोर तैं, घैरी बलि जुत सैंन॥
भय उपजायौ सुर तियन, संष बजाय सुषैंन॥२६॥
इंद्र दैषि बलि जोर कौं, सबहीं सुरन समैंत॥
बृहस्पति सौं पूछत भयौ, बलि बढवनिकैं हैंत॥२७॥
नृप बलि बड जोरी गह्यौ, हम्ह पैं सह्यौ न जाय॥
कौनूं तपस्यां सौं इहै, अैसौं भयौ लषाय॥२८॥
यांहि कौउ जीत न सकैं, अैसौ लषि बिषयात॥
दसौं दिसन आसुर नृपति, मानहुँ निकलैं जात॥२९॥
मनौं प्रलै की अग्नि सौं, बिर्स्वहिं जारैं जु दैत॥
काहे तैं अैसौं भयौ, सौ मो कहियैं हैत॥३०॥

॥ देवगुरुरुवाच ॥

बृहस्पति बोल्यौ इहिं सौं, बद्यौ जांनत भैव॥
गुरु बंसी द्विज बरन की, इन्ह कीनी हैं सैव॥३१॥
कीनौ सुक्राचार्ज नैं, यांकौ सरस प्रताप॥
तासौं या बैरां बढयौ, बलि कैं बल अनमाप॥३२॥
रहि न सकैं ठाढौ कौउ, या आगैं बिनु ईस॥
ज्यौं जम आगैं नहिं रुपैं, कौ पग बिसबाबीस॥३३॥
तातैं तुम्ह तजि स्वर्ग कौ, भाज जाहुँ लै प्रांन॥
नष्ट हौहिंगौं इहि जबै, करिहैं द्विज अपमांन॥३४॥
इंद्र सुरनि संजुत सुनै, अैं निज गुरु कैं बैंन॥
भाजि गये निज स्वर्ग कौं, अति चित पाय अचैंन॥३५॥
राजा बलि बासबपुरी, मधि बैठत भय जाय॥
तीन लौक निज बस कियैं, महापराक्रम पाय॥३६॥
जू बसी सुक्राचार्ज कैं, बलि पै भलै प्रकार॥
सौ अस्वमेधारंभ कौ, करबायौ उहिं बार॥३७॥
तासौं नृप बलि की भई, बडी कीर्ति जग मांहिं॥
ससि सनांन सौभित भयौ, इन्द्रपुरी कै मांहिं॥३८॥
राज करत भयौ नृप बलि, बिप्र क्रिपा कैं जौर॥
कृत कृत मांनत आपुकौं, आपहिं आछै तौर॥३९॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते पंचदसोऽध्यायः ॥ १५ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ षोडसोऽध्यायः ॥

(कश्यप जी द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि जब देवता, नष्ट भयै या भाय॥
दैत्य हौय बरजोर अति, लीनौं सवर्ग छिनाय॥ १॥
अदिति मात जब सुरनि की, भई दुषित उहिं बार॥
निज पुत्रननि कैं कष्ट सौं, सही न सकि निरधार॥ २॥
कस्यप उठि हरि ध्यांन तैं, बउत दिनन कैं मांहिं॥
अैक दिनां आवत भयै, आदित कैं घर ठांहिं॥ ३॥
आनंद उछब नहिं लष्यौ, कस्यप आदित गैह॥
पति कौं अति आदर कियौ, अदित अधिक धरि नैह॥ ४॥
देष अदिति कौ मुष मलिन, कस्यप बोलै बैंन॥
अहो अदिति तौ कुसल है, जुत संतान सुषैंन॥ ५॥
मंगल नित ही चाहियै, बिप्रननि घर निरधार॥
बरनत है इहिहै धरम, बीच सकल संसार॥ ६॥
प्राणिन कौं इक मृत्यु कौं, रहै जु भय अधिकाय॥
सकल मृत्यु आधीन हैं, सुर नर असुर सदाय॥ ७॥
ग्रहास्थाश्रम मैहिं सधत, धरम अरथ अरु कांम॥
तौ अैसी क्यूं दुषित अति, हौय रही है भांम॥ ८॥
तातैं पूछत फैरि म्हैं, कौउ अतिथि तौ धांम॥
तिन्हकौं आदर तैं न किय, लगी रही कछु कांम॥ ९॥
अैसौं षोटौ कांम तौ, तूं कीनौं है नांहिं॥
तूं अैसीं क्यूं ह्वै रही, महा मलिन मनमांहिं॥ १०॥
जा ग्रहस्थ ग्रह तैं अतिथि, बिनु आदर उहीं जांहिं॥
तैं घर स्वान श्रृगांल कैं, कहियत हैं जगमांहिं॥ ११॥
हौम समैं जू अग्नि मैं, हौम कियौ कैं नांहिं॥
म्हैं हौ प्रभु कै ध्यांन मैं, तूही कार्जहिं मांहिं॥ १२॥
पूजा कीजै अग्नि की, पैहैं उत्तम जु लौक॥
प्रभु कौं मुष द्विज अग्नि इहि, जेंवत मुष की औक॥ १३॥
क्यूं चिंतामय लषत हौ, सौ कारण कहि मोहि॥
है न्यारौ दुष जू कहा, कौंनु बात कौ तोहि॥ १४॥

॥ अदितिरुवाच॥

इहि सुनि अदिति बौलि कि द्विज, गाय धर्म कुसलात॥
अरु सबही प्रांणीन कैं, हैं आनंद बिषयात॥ १५॥

अरु ग्रहस्थाश्रम मध्य है, धर्म अर्थ अरु कांम॥
भली भांति सौं सधत हैं, सुनियैं पति सुषधांम॥ १६॥
अग्नि भिषारी सैबग रु, अतिथि बिरक्तहिं आदि॥
सबनि करैं संतुष्ट म्हैं, निज चित्त नित अहलादि॥ १७॥
क्रिपा रावरी तैं कछू, म्हैरै हीनत नांहिं॥
जाकैं पति तुम्ह सारिषै, कहा दुर्लभ है तांहिं॥ १८॥
पूरन हौय नांहिं सु मो, मन मनोर्थ अस कौंनु॥
तुम्ह उपदेस जु धर्म कौं, मोसौं करत सुठौंनु॥ १९॥
प्रजा सतरज तमो गुणी, सुर नर असुर अपार॥
सकल सम हैं रु सुषी हैं, सब समांन निरधार॥ २०॥
अैसें है पति रावरै, आइहुं सरन उमांहिं॥
तातैं म्हैरौ कार्ज करि, पुरबौ म्हैरी चांहिं॥ २१॥
याही तैं म्हैं रावरौ, भजन करत सुभढार॥
जांसौं मो कल्यांन हौ, सोई करत बिचार॥ २२॥
म्हेरे पुत्रननि कौ सकल, लछमी राज्य सथांन॥
दैत्यन छीन लियौ करहुँ, रिछया क्रिपा निधांन॥ २३॥
सत्रुननि दई निकारि मुहि, भई महा दुष लीन॥
धन अैस्वरज सबनि हम्ह, सत्रुननि लीनौं छीन॥ २४॥
तातैं म्हैरै पुत्रहिं सुर, पावैं अपनौं राज॥
म्हैरी दया बिचारि कैं, अैसौं करौं इलाज॥ २५॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि अैसें अदिति, जब प्रारथना कीन॥
तब कस्यप हँसिकैं कह्यौ, बचन महाहित लीन॥ २६॥

॥ कस्यप उवाच॥

पुत्रकादिकन सनेह मैं, बंध्यौ जक्त चित्त गौय॥
मोहि अचिरज है बावरि, तुहि बंधी है सौय॥ २७॥
पंचभूत की देह तैं, आत्मा जुदौ अछैह॥
पति सुत आदि न किहूं कैं, झूंठौ बंध्यौ सनैह॥ २८॥
प्रभु भगवांन जर्नादन, बसै सबै हिय मांहिं॥
बासुदेव गुरु जक्त कैं, जिन्ह सेवा करि चांहिं॥ २९॥
करिहैं पूर्न मनोर्थ तौ, दयाबंत भगवांन॥
निरफल कबहूं हौय नहिं, हरि की भक्ति निदांन॥ ३०॥

॥ अदितिरुवाच॥

अदिति कहत म्हैं कौनुं बिधि, करौं प्रभू की सेव॥
जांसौ पूर्न मनोर्थ मो, करौ देवपति देव॥ ३१॥

म्हैं पुत्रन जुतहि अति दुषित, ऐसौ कहौ उपाय॥
जासौं बै प्रसंन ह्वै प्रभु, मो पैं करै सहाय॥ ३२॥

॥ कस्यप उवाच॥

कस्यप रिषि बोलै कि मुहि, हुती चाह संतान॥
बिधि सौं म्हैं बिनती करी, तब आछै उनमांन॥ ३३॥
जबै बतायौ मोहि ब्रत, हौय प्रसंन मुष च्यार॥
सौ म्हैं तौसौ कहत हौं, तू सुनि भलैं प्रकार॥ ३४॥
फागुनि कैं पछ सुकल मैं, बारह दिन लौं चांहिं॥
दुग्ध षीर पी भक्ति सौं, पूजै प्रभुहिं उमांहिं॥ ३५॥
षोद गयौ है बन सुअर, तहिं की मृतिका लाय॥
दिवस अमावस स्नांन करि, इहै मंत्र या भाय॥ ३६॥
हे भुव तोहि बराह जू, निज दंष्ट्रा पर धारि॥
ल्याय रसातल तैं प्रिथ्वी, तू म्हैरै अघ टारि॥ ३७॥
यौं सनांन नित नेम करि, पूजै श्री भगवांन॥
थिर करि राषै आप मन, हरि पद कंवल सथांन॥ ३८॥
प्रिथ्वी सूर्ज जल अग्नि गुरु, इन्ह ठां मधि इक ठौर॥
पूजा करि प्रभु की पढै, ऐसौं मंत्र सुतौर॥ ३९॥
सबकैं साछि महापुरुष, बासुदैव भगवांन॥
बसत सकल प्रांणीन मैं, बंदन नित पद ठांम॥ ४०॥
सूछम है परगट नांहिं, प्रकृति पुरुष कैं रूप॥
ग्याता तत्व चौबीस कैं, अपरंपार अनूप॥ ४१॥
सास्त्र कै जें प्रभु कर्ता, धर्ता है जु सुषदाय॥
जिन्ह चरनन कौं करत हौं, म्हैं प्रनांम चित लाय॥ ४२॥
दोय सीस त्रय चरन जिन, चार श्रृंग कर सात॥
जिग्य रूप मय बेद प्रभु, जिन्हैं प्रनांम बिष्यात॥ ४३॥
धरनहार जे सक्ति कैं, प्रभु सिव रुद्र सरूप॥
बिद्याहुं कैं पति भूत पति, जिन्हैं प्रनांम अनूप॥ ४४॥
प्राण रूप जग जोगेसु, आत्म रूप अभिरांम॥
बिधि सरूप प्रभु जोग कै, कारण तिन्हैं प्रणांम॥ ४५॥
आदि देव साछी जु हरि, नर नारायण रूप॥
जिन्हकौं मो परिनांम है, महा सनेह संजूप॥ ४६॥
स्याम बरन मणि नील सम, रमा चिन्ह हिय ठांम॥
पीतांबर धारैं प्रभू, केसव तिन्हैं प्रणांम॥ ४७॥
तुम्ह सबही प्रांणीन कैं, बरदाता भगवांन॥
सैवत हैं ग्यांनी तुम्हहिं, निमित आप कल्यांन॥ ४८॥

जिन्हकै चरनन की करत, रमा दैवता सैब॥
वै मोपर हौ प्रसंन प्रभु, श्री भगवांन अजैब॥ ४९॥
इन्ह मंत्रन करिकैं जु बिधि, षोडस सौं चित्तलाय॥
प्रभु पद कौं पूजन करैं, जो हैं सब सुषदाय॥ ५०॥
पूजै फूल सुगंध सौं अरु, पय सनांन करवाय॥
बस्त्र जनैऊ आभरन, पहिरावैं चित चाय॥ ५१॥
मंत्र जु द्वादस अछर कौं, जपै माल अनुभाय॥
भौजन षीर मिष्टांन कौ, धरै सवाद बनाय॥ ५२॥
मंत्र वादन सअछर सौं, करिकैं हौम सुफेर॥
महाप्रसाद दे द्विजननि, भौजन दै बिन झेर॥ ५३॥
प्रभु कौं अरु बैस्नवन कौं, फिरि अचमन करवाय॥
मुष सुगंध तांबूल अरु, करैं समर्पण ल्याय॥ ५४॥
अष्टोत्तरहिं बैंर बहिं हरि, जपै मंत्र अभिरांम॥
फेरि अस्तुति परिक्रमन करि, प्रभुहिं करैं परिनांम॥ ५५॥
परसादी तुलसी पहुप, निज सिर धरै सुढार॥
फेरि बिसर्जन प्रभू कौं, करै रीत अनुसार॥ ५६॥
षीर षांड भोजन द्विजन, करबावै हित थाटि॥
अरु ब्राह्मणनि जिमाइयै, सु न हौ दो तैं घाटि॥ ५७॥
दै भौजन ब्राह्मणन कौं, लैं उन्ह आग्यां आप॥
करैं सु भौजन दूध कौं, चित्त संतोष सथाप॥ ५८॥
ब्रह्मचर्ज सौं रात बहि, रहै भलैं अनुभाय॥
दिवस अमावस कौं करै, अैं सब बिधि चितलाय॥ ५९॥
फिरि परबा कैं दिवस कौं, बिधि सौं करै सनांन॥
सुद्ध हौय ब्रत कौं करै, राषै जुक्त बिधांन॥ ६०॥
द्वादस दिन पूजे प्रभू, पय सनांन करवाय॥
नांम पयौब्रत है इहै, करैं भलैं चित्तलाय॥ ६१॥
परबा तैं तेरस तांइ, अैसैं बारह द्यौंस॥
धारैं ब्रत जिमा नैंम जुत, कही रीत जिहिं रौस॥ ६२॥
ब्रह्मचर्ज सौ रहैं अरु, करैं त्रिकाल सनांन॥
झूंठ न बोलै सुचि रहे, लै आसन भुवि थांन॥ ६३॥
बिषै भोग त्यागै सकल, करै जीव बध नांहिं॥
प्रभु कैं आश्रै है रहैं, धरि हरि पद हिय ठांहिं॥ ६४॥
तेरस क दिन प्रातहि बिधि, सास्त्रनहिं उनमांन॥
प्रभु कौं पंचामृत सौं, करवावै असनांन॥ ६५॥

बिधि सौं प्रभु पूजा करै, लोभ करै कछु नांहिं॥
चित सौं अति हर्ष रहै, पूरै चितवत चांहिं॥ ६६॥
धरै भलौ नैवैद्य अरु, सबनि दछिनां दैय॥
भौजन करवावै द्विजनि, आप आसिसां लैय॥ ६७॥
जिग्य हौम करतानि अरु, आचारिजन सुढार॥
अति संतुष्ट करैं सु दै, भूषन बस्त्र अपार॥ ६८॥
चांडालनि तांई सबनि, दैय अंन सुषपाय॥
अंध बधिर अरु दीन लौं, भौजन भलैं कराय॥ ६९॥
फैरि आप भौजन करै, निज बंधवनि समेत॥
यांतैं प्रभू प्रसंन ह्वै, निगम कहत जिहिं नेत॥ ७०॥
नृत्यहिं गीत बाजित्र अरु, स्वस्तिवाचनहिं आदि॥
श्री हरि की पूजा करै, हिर्दै अधिक अहलादि॥ ७१॥
इहै पयौव्रत मोहि बिधि, दीनौं हुतौ बताय॥
तोहि कह्यौ है म्हैं सोइ, कीजै भलैं बनाय॥ ७२॥
महासुद्ध मन आपनौं, करिकैं ब्रत अनुभाय॥
सैवन करि भगवांन कौ, जें सबही सुषदाय॥ ७३॥
बडौ जिग्य तप दान है, ब्रत इहि सुषकुँ आधार॥
सौ तू अब करिहैं प्रियै, मन बच क्रम निरधार॥ ७४॥
जम नैम तप दान रु ब्रत, आछौ बही कहाय॥
जांसौं प्रभू प्रसंन ह्वै, पूरन ब्रह्म सुषदाय॥ ७५॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते षोडसोऽध्यायः ॥ १६ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ सप्तदसोऽध्यायः ॥

(भगवान् का प्रकट होकर अदिति को वर देना)

॥ श्री सुक उबाच॥

दोहा - सुक कहत कि जब अदिति सौं, कहै कस्यप यौं बैंन॥
तबैं अदिति किय पयौब्रत, बारह दिवस सुषैंन॥ १॥
निश्चल बुधि सौं अदिति नैं, कीनौं हरि कौं ध्यांन॥
मन तैं इंद्रिय दुष्ट सब, बस किय तिय बुधिवांन॥ २॥
मन कौं प्रभु मैं राषिकैं, अदिति पयौब्रत कीन॥
तबै अदिति कौं क्रिपा करि, श्री हरि दरसन दीन॥ ३॥

संष चक्र नीरज गदा, आयुध लियैं रसाल॥
धरैं पीत पट चतुर्भुज, प्रभु की सौभ बिसाल॥ ४॥
अदिति देषि भगवांन कौं, उठि ठाढी ह्वै आप॥
करि प्रनांम कर जोरि बिव, अधिक सनैह सथाप॥ ५॥
विह्वल ह्वै गई प्रेम सौं, आनंद जल द्रिग छाय॥
ज्यौं ज्यौं गदगद कंठ सौं, करी अस्तुति सुषपाय॥ ६॥
प्रभु कौ दरसन प्रीत सौं, करत भई उहिं बार॥
अरु अैसैं करती अस्तुति, बौली बचन सुढार॥ ७॥

॥ अदितिरुवाच॥

जिग्य ईस हैं जग पुरुष, तुम्ह जस कीरत रूप॥
अच्युत तीरथ रावरै, पायन बसत अनूप॥ ८॥
हौत महा मंगल उदित, सुनैं तुम्हारौ नांम॥
सरनागति कै पाप तुम्ह, दूर करत सुषधांम॥ ९॥
हौ दीनन कैं नाथ तुम्ह, कीजै अस कल्यांन॥
उतपति पालन प्रलै जग, करता हौ भगवांन॥ १०॥
तुम्ह माया कौं गुणन कौं, करत जु अंगीकार॥
रूप रावरौ ही इहै, प्रगट सकल संसार॥ ११॥
ग्यांन रूप हौ तुम्ह प्रभू, दूर करत अग्यांन॥
क्रिपा रावरी सौं लहत, सुषद पदार्थ निदांन॥ १२॥
ग्यांन मुक्ति आर्बल रमा, धर्म अर्थ अरु कांम॥
उत्तम गुण तिहूँ लौक कौं, राज महा अभिरांम॥ १३॥
पदारथ सबै पाइयै, क्रिपा रावरी पाय॥
तुम्ह दाता आनंद कै, हे स्वामी सुषदाय॥ १४॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि यौं अदिति जब, असतुति प्रभु की कीन॥
कंवल नैंन अैसैं जबै, बोलै तारन दीन॥ १५॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

तौहि मनोर्थ जांनत सब, म्हैं अैहौ सुर माय॥
रमा राज्य तौ सुतन सौं, असुरनि लियौं छिनाय॥ १६॥
जीत दुष्ट दैत्यन करैं, मो सुत म्हैरी सैंव॥
तू निज चित्त चाहत इहै, सौ हम्ह समझयौ भैंव॥ १७॥
इन्द्रादिक सुरनि आसुरनि, मारै बली सुहाय॥
असुर तिया रोवै सु तूं, लष्यौ चहत जुत चाय॥ १८॥
म्हेरै सुत धनवंत ह्वै, उन्हकौं जस बढि जाय॥
करैं बिलास जु स्वर्ग कौं, म्हैं देषूं सुषपाय॥ १९॥

तेरौ इहै मनोर्थ सब, समझत हौं मन मांहिं॥
पैं अबहीं तौ असुर नहिं, जीतै किहुँ सौ जांहिं॥ २०॥
जिन्ह पैं बिप्रननि की क्रिपा, हौय भलैं अनुसार॥
तिन्हकौं कौं जीत न सकैं, कियैं अनैक बिचार॥ २१॥
उन्ह परि ब्राह्मण प्रसंन हैं, हित चित करि या बार॥
तातैं असुरनि कैं अधिक, बल बाढ्यौ निरधार॥ २२॥
तैं मुहि कीनौं प्रसंन करि, इहै पयौब्रत चांहिं॥
तातैं करिहौं जतन मौं, सैव नृफल ह्वै नांहिं॥ २३॥
तैं पुत्रन की रिछयां कौं, म्हैरौ पूजन कीन॥
तातैं तौ सुतहीं करौं, म्हैं सुर रिछा प्रबीन॥ २४॥
म्हैरौ रूप सुजांनि कैं, तू करि पति की सैंव॥
तौ मनोर्थ पूरन सबै, ह्वै हैं भलैं सुभैंव॥ २५॥
तू मति करि यौं बात इहि, पूछै हूं जो कौय॥
गौय बात मो रषै तैं, सकल मनोरथ हौय॥ २६॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि यौं कहि प्रभू, भयै जु अंतरध्यांन॥
दुर्ल्लभ बर पायौ अदिति, ह्वै हैं सुत भगवांन॥ २७॥
तबैं अदिति लागी करन, पति की सैव सुढार॥
आयौ कस्यप कैं तियां, प्रभू अंस सुषसार॥ २८॥
जांनि गयै सौ कस्यप रिषि, भैदि आपु मनमांहिं॥
आयौ प्रभु कौ अंस फिरि, अदिति गर्भ की ठांहिं॥ २९॥
अदिति गर्भ कैं मध्य हरि, आयै लषि मुष च्यार॥
आयै अदिति ग्रह प्रभु भय, करत अस्तुति उहिं बार॥ ३०॥
बिधिहुँ बोलै बडै तुम्हहिं, गावत हैं भगवांन॥
ब्रह्मनि देव हौ आपु अरु, त्रिगुण रूप उनमांन॥ ३१॥
अदभुत बांवन रूप हौ, तुम्ह कौं मो परिनांम॥
पृस्नी गर्भ हौ आपु प्रभु, बेद गरभ अभिरांम॥ ३२॥
ऊपरि हौ तिहुँ लौक कैं, अंतरजामी रूप॥
आदि अंत मधि जक्त कैं, तुम्ह हौं प्रभू अनप ३३॥
बढी सक्ति तुम्ह सौं प्रभू, पुरुष सरीर सजाप॥
काल रूप ह्वै जगत कौं, षैंच लैत हौ आप॥ ३४॥
षैंचिं तिनकादिक ज्यौं जल, प्रबाह बाढै जोर॥
त्यौं ही षैंचत जगत कौं, तुम्ह निज ईछा ओर॥ ३५॥
जीव सथावर जंगम मो, प्रजापतिन लौं आदि॥
तुम्ह उपाय जो सबनि कैं, हे स्वामी जु अनादि॥ ३६॥

स्वर्ग लोक तैं देवता, जांनि रहै बलिहार॥
जिन्हकैं तुम्ह पद कंवल कौ, है आश्रै निरधार॥ ३७॥
जल बूडन तारैंन कौं, ज्यूं हैं आश्रै नांव॥
त्यूंही आश्रै रावरौ, अमरनि कौं दरसांव॥ ३८॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते सप्तदसोऽध्यायः ॥ १७॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ अष्टदसोऽध्यायः ॥

(वामन भगवान का प्रकट होकर राजा बलि की यज्ञशाला में पधारना)

॥ श्री सुक उवाच॥

दोहा - सुक कहत कि ऐसै जबै, असतुति करि मुष च्यार॥
तबैं अदिति कैं गर्भ तैं, प्रगट भयै करतार॥ १॥
धरैं पीत पट चतुर्भुज, पंकज नैंन अनूप॥
संषचक्र नीरज गदा, चहुँ आयुधनि संजूप॥ २॥
मकराकृत कुंडलनि सौं, सौभित गोल कपौल॥
सुंदर स्याम अनूप छबि, पंकज बदन सुडौल॥ ३॥
कौस्तुभ मणि श्री चिन्ह उर, भूषण बस्त्र रसाल॥
जापर अलि गुंजार ह्वै, ऐसी गर बनमाल॥ ४॥
कस्यप रिषि कैं गेह कौ, दूर कियौ अंधियार॥
दिसा सरोवर ता समैं, निरमल भयै सुढार॥ ५॥
प्रजा सबै आनंदित भइ, प्रगटी छह रितु मास॥
प्रसंन्न भयै तरु नग प्रिथ्वी, सुर गौ द्विज आकास॥ ६॥
अभिजित महुरत श्रवण जुक्त, बिजयातिथि मध्यांन॥
सुल्क द्वादसी भाद्र की, ग्रह नछत्र सुभ जांन॥ ७॥
प्रगट भयै ऐसैं समैं, प्रभु बांवन बुधिवांन॥
बाजत बाजा बिबिध तब, नभहुं मधि सथित भांन॥ ८॥
अग्नि पितर मनु देवता, सबै रिषिस्वर जु आय॥
कीनी असतुति मिलि सबनि, अपसर नृततहिं चाय॥ ९॥
सिद्ध विद्याधर किंपुरुष, किन्नर चारण जछ॥
राछस अहि गरुड सेवग, सुर, डारि सुमन प्रतछ॥ १०॥
भयै पुत्र प्रभू अदिति लषि, भय अचिरज आनंद॥
कस्यप सब्द जय जय कियौ, मिट्यौ सकल दुष दंद॥ ११॥

धार्यौ बांवन रूप प्रभु, ताही समैं उदार॥
ज्यौं नट धरही स्वांग कौ, अद्‌भुत भांति सुढार॥ १२॥
हरि कौ बांवन रूप लषि, प्रसंन रिषिस्वर होय॥
जग्योपवीत विधांन किय, अति हित प्रभु सौं गोय॥ १३॥
जग्योपवीत मैंहुँ अधिक, प्रभु सौं प्रीत लगाय॥
बांवन जू कौ रवि दई, गायत्री जू सिषाय॥ १४॥
दई जनेऊ बृहस्पति, कस्यप मेषला दीन॥
प्रिथवी दई मृग चर्म अरु, मात अदिति कोपीन॥ १५॥
दंड चन्द्रमा दिय देव, स्वर्ग छत्र दियै आय॥
बिधि दिय कमंडलु सप्त रिषि, कुस पुनि कटिबस्त्र माय॥ १६॥
माला दियै रुद्राछ की, सरस्वति परम प्रवीन॥
पात्र भिछा कौ बरुण दिय, भीष भवानी दीन॥ १७॥
यौं सबहिन आदर दियौ, आछी बिधि बहिं बार॥
सबै देव रिषि प्रसंन हुव, प्रगट्यौ सुष अनपार॥ १८॥
ब्रह्म रिषिन की सभा कौं, बांवन जू दिय सोभ॥
दीनबंधु असरन सरन, जें टारन अघ ओघ॥ १९॥
अग्नि मांझ परिसमूहण, करिकैं भलैं प्रकार॥
करत भयै समिधान सौं, हौम रीत अनुसार॥ २०॥
राजा बलि अस्वमेध जग्य, करत सुन्यौ करतार॥
बांवन जू बहिं ठां गयै, इंद्र रछा अनुसार॥ २१॥
पुरी नर्मदा उत्तर तट, भृगुकुछ तीरथ नांम॥
करवावत जिग्य भृगु कैं, बंसी द्विज उहिं ठांम॥ २२॥
तिन्ह बांवन जू कौ कियौ, दरसन महा उदार॥
उदित भयौ सूरज मनौं, सकल लष्यौ उहिं बार॥ २३॥
जिग्य करावनहार अरु, सभा सहित बलि राय॥
बांवन जू कैं तैज दिय, सबकौं तेज दबाय॥ २४॥
कैं सूरज कै अग्नि कै, संनत कुमार जु श्रींन॥
आवन दैषन जिग्यकौं, इहिं जानी सबहींन॥ २५॥
ताही समैं जु कर लियैं, दंड कमंडल छत्र॥
आन प्रकंट हुवै जिग्य मैं, बांवन पुरुष पवित्र॥ २६॥
मुंजी मेषला चर्म मृग, जटा जनेऊ धारि॥
प्रगटै बांमन रूप प्रभु, माया कैं निरधारि॥ २७॥
तिन्हकौं लषि द्विज भृगबंसी, सिषन सहित जुत अग्न॥
बांवन तेज प्रभाव दबि, हुव ढाढै है मग्न॥ २८॥

ल्यायै आगै जायकैं, बांवन रूप निहारि ॥
राजा बलि अति प्रसंन ह्वै, दियौ आसन सुढारि ॥ २९ ॥
कुसल पूछि पूजे चरन, बांवन जू कै राय ॥
बांवन जू कैं चरन कौं, जल अघ देत मिटाय ॥ ३० ॥
सौ जल बलि निज सीस पैं, राषत भयौ उमांहिं ॥
जौ जल सिव राष्यौ भलैं, आप सीस धरि चांहिं ॥ ३१ ॥
राजा बलि बोलै कि तुम्ह, भली करी द्विज बाल ॥
इहां आय दरसन दियौ, हम्हकूं परम क्रपाल ॥ ३२ ॥
आग्यां देहुँ सुँ हम्ह करैं, तुम्हकौं है परिनांम ॥
ब्रह्मा सिव तेज कै, तुम्ह सरूप अभिरांम ॥ ३३ ॥
पितर हम्हारै नृपति अरु, कुल पबित्र भयौ आज ॥
जिग्य सफल भौ आप इहँ, धरै चर्न महाराज ॥ ३४ ॥
तुम्ह चरनोदक सौं सकल, दूर भयै मो पाप ॥
होमहु सुफल भयौ इहै, महापुरुष हौ आप ॥ ३५ ॥
प्रिथवी भई पबित्र इहीं, तुम्ह पद परसहिं पाय ॥
तुम्ह अर्थी हौ द्विज सुवन, मुहि इह परत लषाय ॥ ३६ ॥
जो चहियैं सौ लैहिं तुम्ह, घर सुबरन गज गाय ॥
कन्या अस्व रथ भाव जुत, जो ईछा चित चाय ॥ ३७ ॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अष्टदसोऽध्यायः ॥ १८ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ ऐकोंनविंसोऽध्यायः ॥

(भगवान वामन का बलि से तीन पग पृथ्वी मांगना, बलि का बचन
देना तथा शुक्राचार्य द्वारा रोकना)

॥ श्री सुक उंबाच ॥

दोहा - सुक कहत कि ऐं धर्म जुत, राजा बलि कैं बैंन ॥
सुनि बांवन जू बहुरि यौं, बौलत भये सुषैंन ॥ १ ॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

बचन तुम्हारौ है अतिहि, कुल जोगहीं सुढार ॥
जस बढावनौ रु धर्मजुत, तुम्हहिं कहन अनुसार ॥ २ ॥
क्यौं न कहौ ऐसै बचन, कछु अचरिज है नांहिं ॥
भलैं द्विजन कौ संग बंस, प्रहलादहिं प्रगटांहिं ॥ ३ ॥
जो बिप्रननि कौं दैंन कहि, दैं न सकैं नट जांहिं ॥
अरु ऐसौहुँ नाहिं भयौ, बंस तुम्हारै मांहिं ॥ ४ ॥

जो दान न दै द्विजन कौं, सत्रुन कौं जुध नांहिं॥
अधीरजवान अरु कृपण, तुम्हरै बंस हुव नांहिं॥ ५॥
बडै भाग तैं भयै नृप, परम भक्त प्रहलाद॥
जिन्हकौं उज्वल जस प्रगट, हुवै ससिहुँ तैं ज्याद॥ ६॥
अरु आगै तुम्हरै बडै, भयै बली हिरनाछ॥
गदा लियै सब प्रिथ्वी मैं, फिर्यै जुद्ध काज प्रतछ॥ ७॥
पै वासौं कौउ जुध करि, सक्यौ पुहमि बिच नांहिं॥
बउत कष्ट करिकैं हत्यौ, जल मध्य श्री बराहिं॥ ८॥
दैषि पराक्रम अधिक जिहिं, करी अस्तुति सब आय॥
थपी रसातल मधि जिन्हीं, प्रिथवी कौं लै जाय॥ ९॥
हिरनकस्यप निज भ्रात कौं, बध सुनि पलटौ लैंन॥
बिस्नुहिं मारन कौं गयौ, पुर बैकुंठ सुषैंन॥ १०॥
त्रिसूल लिय निज हाथ मैं, हिरनकस्यप कौं दैषि॥
बडै मायावी बिस्नु कैं, चित्त बिचार अवरैषि॥ ११॥
म्हैं जांह भाजूंगौ तहँ, इहि आसुर बलबांन॥
निश्चै मो पाछे लग्यौ, चलैहैं मृत्यु समांन॥ १२॥
तांतैं याकैं हिर्दै मैं, पैठ जाउ इहिं बार॥
अैसी बिधि निज चित्तहिं मैं, करिकैं बिस्नु बिचार॥ १३॥
स्वांस लैत हौ असुर जिहि, संग हिर्दै उहिं ठांमिं॥
सूछिम धारि सरीर हरि, पैंठ गयै जिग्य स्वांमिं॥ १४॥
बिनां बिस्नु बैकुंठ लषि, हिरन कसिप सुद मांनि॥
सिंहनाद कीनौ गरज, हेरै सकल सथांनि॥ १५॥
प्रिथ्वी सुर्ग पाताल नभ, जुत समुद्र सब ठौर॥
आयौ ढूंढन नहिं लषै, बिस्नु सकल जग मौर॥ १६॥
हिरन कस्यप तब यौं कह्यौ, भ्रातहिं मारन हार॥
बिस्नु प्रापति उहिं थल भयौ, वाहि न लौटन हार॥ १७॥
बैर करैं जो कौउ तौ, अैसौ करि निरबाह॥
धर्म जु राषनहार देह, मिटै तबै मिट जाह॥ १८॥
पुत्रहिं हुतौ प्रहलाद कैं, नांम बिरोचन राय॥
पिता तुम्हारौ सौ प्रगट, दांनी बडौ कहाय॥ १९॥
आयै तांकै पास सुर, धरि ब्राह्मन कौ रूप॥
अरु अैसै बौलत भयै, बचन कहैहुँ संजूप॥ २०॥
हे राजा निज आयु बलु, हम्हहिं देहु करिदांन॥
जांनि गयौ तब बिरोचन, अैहैं अमर निदांन॥ २१॥
जांनि गयौ तउ दै चुक्यौ, निज जीवन निरधार॥
तौ पुरषा अैसै भयै, दानी बीच संसार॥ २२॥

या ग्रहस्थाश्रम मध्य अब, साधत तुम्ह वहि धर्म॥
ज्यौं आगैं साध्यौ बडन, महा धर्म कौ मर्म॥२३॥
तातैं हम्ह मांगत प्रिथ्वी, तीन पैंड तुम्ह पास॥
सोऊ लहै निज धामहूं, माप जु प्रिथी निवास॥२४॥
तू बड दानी पैं नहिंन, अधिक चहतहूं आपु॥
जितौ प्रयौजन है तितौ, दांन लियै नहिं पापु॥२५॥

॥ बलिरुवाच॥

इह सुनि बलि बोल्यौ कि तू, है द्विज बालक आंहिं॥
अरु बालक तौ बुद्धिहूं, सही परत है चांहिं॥२६॥
अरु बांणी अैसै मुषै, बृद्ध सराहै जांहिं॥
दीरघ दानी पाय कछु, अलप मांगियै नांहिं॥२७॥
म्हैं त्रयलोकन कौ प्रभू, सकौं दीप ही दैय॥
तीन पांव तांपै प्रिथ्वी, कहा मांगि तू लैय॥२८॥
मौहि पै भिछुक आय फिरि, औरहिं जांचै नांहिं॥
तातैं जितनी चाहियै, प्रिथ्वी सु लेहु उमांहिं॥२९॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

इहि सुनि प्रभु बोलै कि जिन, इंद्रीन जीती नांहिं॥
हौय नाहिं संतुष्ट जो, मिलै त्रिलौकी तांहिं॥३०॥
तीन पांव ही प्रिथ्वी पै, जो संतोष न हौय॥
तौ सातौ दीपहिं मिलैं, ह्वै संतोष न कौय॥३१॥
उपजै मन तृस्ना इहै, सप्त दीप कौ राज॥
म्हैं ही पाऊँ अैकलौ, और न लै कछु साज॥३२॥
राजा पृथु गय दहुँ हुतै, सप्त दीप कै ईस॥
तिन्हहूँ की तृस्ना न हुइ, पूरी बिसबाबीस॥३३॥
जाकै ह्वै संतौष जिहिं, मिलैं सहज कछु आय॥
ताही मैं संतोष लहि, पावै सुष अधिकाय॥३४॥
विषै भौग अरु द्रव्य मैं, धरै नांहिंन संतोष॥
इही मूल संसार कौ, जांसौ लहै न मोष॥३५॥
अरु थौरै ही मांहिं लै, संतोष जु मन मान॥
सौ प्रांनी आनंद जुत, पावै मुक्ति निदांन॥३६॥
मान लैय संतोष जो, मिलै सहज मैं आय॥
वा ब्राह्मण कौं तेज अति, बढै भलैं अनुभाय॥३७॥
असंतोष सौं जात है, बिप्रन तेज निरधार॥
जइसैं जल कैं संग सौं, अग्नि हौत बुझ छार॥३८॥
तांतै म्हैं मांगत प्रिथ्वी, तीन चरनहीं चांहिं॥
इतनैं ही मैं सिद्धता, मो कारज कौ आंहिं॥३९॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि बलि सुनि इहै, कह्यौ लेहुँ जो चांहिं॥
इहि कहि करन संकल्प जल, पात्र लियौ कर ठांहिं॥ ४० ॥
सुक्राचारजहुँ तिहिं समैं, जानि गयै सब बात॥
धरिकैं बांवन रूप यै, आऔ बिस्नु बिष्यात॥ ४१ ॥

॥ शुक्र उवाच ॥

सुक्र कह्यौ बलि सौं इहै, यै जु बिस्नु भगवांन॥
देव कार्ज करता भयै, कस्यप अदिति संतांन॥ ४२ ॥
दैंन कही इन्हैं भुव सौ, है बड़ी ही अनीति॥
दैत्यन कौ है सुभ नांहि, करनै मैं इहि रीति॥ ४३ ॥
तैज लछमी अैसूर्जहिं, तैरै सकल संजूप॥
छीन इंद्र कौं देहिंगैं, यै हरि बालक रूप॥ ४४ ॥
तीन लौक सब लैहिंगै, तीन चरन कैं मांहिं॥
तू कइसैं फिरि बर्तहैं, बिस्नुहिं दैं भुव ठांहिं॥ ४५ ॥
प्रिथ्वी लैहिंगै माप सब, यक पग कैं अनुसार॥
स्वर्ग मापि पुनि बीय सौं, अैं लैं हैं करतार॥ ४६ ॥
तू तितिय चरन कौं ठौर, कहीं देहिंगौ तिनिन॥
भुव पग तीन नहिं दै सकि, जैंहैं नरक सरीन॥ ४७ ॥
अैसौ दानहुँ कछु नांहिं, जासौं ह्वै निज हांनि॥
जो अपनी हानि नहिं ह्वै, सौही दांन प्रमांनि॥ ४८ ॥
जो कछु जाकै पास धन, हौय कहूं अनुभाय॥
तौ तइसौ जिग्य दान तप, कर्म सबै बनि आय॥ ४९ ॥
विषै भौग निज धर्म जस, बंधु प्रयौजन कौय॥
षरचै धन इन पंच ठां, तौ ग्रहस्थ गति हौय॥ ५० ॥
कह्यौ झूठ अरु सत्य कौ, लछिन बेद अनुसार॥
सत्य कहि जो वस्तु देन कौं, न दै सु झूठ नकार॥ ५१ ॥
है तरु रूप सरीर तिहिं, लगै सत्य फल फूल॥
अरु या बृछ की जांनियैं, झूठ सही जर मूल॥ ५२ ॥
रहै नांहिं इह देह तौ, रहै सत्य किहिं भाय॥
ज्यौं न भयै तरु फूल फल , लगै न कहँ तैं पाय॥ ५३ ॥
ज्यौं तरु रहै न जर बिनां, अैसै ही उनमांन॥
झूठ बिनां बोलै न रहि, सकै सरीर निदांन॥ ५४ ॥
ना अछरहिं ओंकार कौ, है इहै अर्थ सुषैंन॥
जो कौऊ कछु मांगही, लै न कहै पुनि दैंन॥ ५५ ॥
सौ दैनौं अैसौ कि जो, दैंन नाहिं निरधार॥
सब जात रहै नांहिं तौ, प्रगट द्रव्य अधिकार॥ ५६ ॥

पावत है परलौक मैं, जाकै फल किहिं बार॥
षौय जात या जन्म कै, मधि कहि दैन कुढार॥५७॥
भिछुकहूँ कौ देय द्रव्य, रहै न 'अपनै काज॥
तौ इहि द्रव्य सौं होत नहिं, रहै न कछु सुष साज॥५८॥
अरु नांहिंन कहि नट जाय, तौ अैसौ सुनि राय॥
जासौ पूरन द्रव्य ह्वै, भोग करै सुष पाय॥५९॥
पै नित ही नाहीं कहै, तौ जाकै जस जाय॥
तातै देवै किहुँ समैं, नटै सु औसर पाय॥६०॥
बात तिया सौं कान मैं, अरु हांसी के मांहिं॥
ब्याह समैं निज धीय कौ, प्राणन संकट जांहिं॥६१॥
गौ द्विज कै लीनै रु पर, जीव बचावन काज॥
ताकौ असत्य नांहिं दोष, कछु नहिं पावत लाज॥६२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते अैकोंनबिंसोऽध्यायः ॥ १९ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ बिंसोऽध्यायः ॥

(भगवान वामन का विराट रूप में होकर दो ही पग में पृथ्वी और
स्वर्ग को नाप लेना)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक कहत कि गुरु कैं बचन, अैसैं सुनि बलि राय॥
करि बिचार छिन अैंक मैं, बौलत भयै सुभाय॥ १॥

॥ बलिरुवाच ॥

सत्य कह्यौ तुम्हहिं धनि गुरु, है ग्रहस्थ कौ जौय॥
जासौं जस ब्रत कांम अरु, अर्थ निबाह जू हौय॥ २॥
पैं प्रभु म्हैं प्रहलाद कैं, बंस प्रगट हुव आंन॥
दैंनौं कहिकैं बिप्रन कौं, कइसैं नटौं निदांन॥ ३॥
प्रिथवीहूं इह कहत है, सत्य सम धर्म न कौय॥
और झूठ कैं सम कछू, पाप न देष्यौ सौय॥ ४॥
बोझ और सबहींन कौं, म्हैं सहि रहत सुढार॥
झूठ बचन बक्तान कौं, सहि न सकत हौं भार॥ ५॥
बलि कहत कि धन हीनता, मृत्यु तैं डरपत नांहिं॥
डरपत है इक विप्रन कौं, दगा दैंन कैं मांहिं॥ ६॥
जब इह प्राणी मरत है, तब सब धन कछु आदि॥
छौड चलत है धरि सबै, बसि है इछा अनादि॥ ७॥

तातैं दीजै बिप्रन कौं, ऐसौं दान बिचार॥
जासौ द्विज संतुष्ट है, चैन आप चित धार॥ ८॥
साध प्रांनहीं दैहि कैं, करत जू पर कल्यांन॥
जिन्हकैं काहू बात कौ, लालच नांहिं निदांन॥ ९॥
सिव दधीचि निज प्राणहूं, मांगे तैं दिय दांन॥
यौ प्रिथवी कौ है भलौ, हुव ऐसै बुधिवांन॥ १०॥
आगै बडे जु आसुरनि, किय प्रिथवी कौ भोगु॥
तेउ काल कैं बसि भयै, जस न गयौ किहुँ जोगु॥ ११॥
हुव बउत अहंकार सौं, मरनहार जुध मांहिं॥
दान पात्र कौं दै चुकै, तैं दुर्लभ भुवि ठांहिं॥ १२॥
दयावंत दाता चुकै, हैं करि सर्बस दांन॥
वाके हौय दरिद्र तऊ, भलै लषै बुधिवांन॥ १३॥
तातैं म्हैं या बिप्रनकौं, दैहौं दांन उमांहिं॥
तुम्ह जांनत सब बेद बिधि, नहिं छानौं कछु आंहिं॥ १४॥
जिग्य करत हौं बिस्नु हित, सौ ऐं बांवन रूप॥
आयैं तौ बलि अति भलौ, म्हैं भुवि उपरि अनूप॥ १५॥
जो मोकौ अपराध बिनु, बांधैंगै भगवांन॥
तौ बांधौ तौ बांधि यौ, मन नहिं डरौं निदांन॥ १६॥
बिस्नु जू ऐसौं सत्रु हैं, म्हैं जांनत निरधार॥
ऐंपरि ब्राह्मण रूप धरि, ऐं आयै या बार॥ १७॥
जौ ऐ मो सौं करहिंगै, बल धरिकैं घमसांन॥
तौ म्हैं जुद्ध कर लैहुँगौं, जीत छिनैं भुवथांन॥ १८॥
यौं सत्य बक्ता बचन बलि, गुरु के मानैं नांहिं॥
तबै सुक्र रिस करि दयौ, नृपहि श्राप उहिं ठांहिं॥ १९॥
सुक्र कह्यौ मूरष निजहिं, मांनत पंडित आप॥
मो आग्यां मांनत न तौ, हौहुँ नष्ट धन धाप॥ २०॥
यौं दीनौं गुरु श्राप पैं, बलि सत्य तैं न डिगाय॥
बांवन जू कैं पूजि पद, दिय भुवदांन सुभाय॥ २१॥
बिंध्यावलि रानी पहरि, गहनौं जातिक ठांम॥
लै आई जल कौं कलस, रूप रु गुण जुतवांम॥ २२॥
बांवन जू कैं बिचित्र रुचि, धोऐ बलि अवनीस॥
चरनौदक अति पांवन जु, राषत भौ निज सीस॥ २३॥
ता समैं गंधर्व सिद्ध, सुर चारण बिद्याधार॥
भयै सराहत बलि नृपति, बरषै सुमन अपार॥ २४॥
किन्नर अपसर रु किंपुरुष, करत भयै सब गांन॥
प्रसंन हौय बौलत भयै, सबही या उनमांन॥ २५॥

कठिन कर्म इन बलि नृपति, किय दीरघ अप्रमांन॥
बिस्नुहिं सत्रुहुँ पिछांनि कैं, दियौ त्रिलोक सुदांन॥ २६॥
दांन दैत हौ बा समैं, बांवन जू कौ रूप॥
बढत भयौ तहँ त्रिगुणमय, अदभुत भाय अनूप॥ २७॥
प्रिथवी दिसा पताल नभ, रिषि सुर सिद्ध समेत॥
रित्वज सभी बिप्रननि अरु, आचारज जग हेत॥ २८॥
इंद्री अंतह करन जीव, बिषै पंच महाभूत॥
अैं पदारथ प्रभु अंगहीं, मैं बलि लषै सु सूत॥ २९॥
चरनतल मैंहुँ रसातल, प्रिथवी चरननि मांहिं॥
घौंटनि मैं पंछी लषै, परबत जंघनि ठांहिं॥ ३०॥
लषै पवन गन उरुन मैं, संध्या बस्त्रनि मध्य॥
गुहिय सथल मैं प्रजापति, नभ बिच नगनि प्रसध्य॥ ३१॥
जंघ सथल मैं असुर हैं, सिंधु कुषहिं मैं सात॥
अरु बछसथलहिं मैं लषै, पति नछत्रनि बिष्यात॥ ३२॥
धरम हिर्दै कैं मांहिं अरु, रित सत्य स्तन कैं ठांम॥
मन मैं ससि कर मैं कंवल, रमा हिर्दै अभिरांम॥ ३३॥
साम सब्द दुहुँ कंठ मैं, दिसा सुकर्मनि मांहिं॥
सुर इंद्रादिक भुजनि मैं, स्वर्ग जु मस्तक ठांहिं॥ ३४॥
पवन नासिका मांहिं अरु, कैसन मैं घनमाल॥
है नैंत्रन मैं सूर्ज अरु, मुष मैं अग्नि कराल॥ ३५॥
बाणी मैं सौभित निगम, बरुन जिभ्या कैं ठौर॥
पलकनि मैं निसिदिन रु रिस, बीच ललाट सु वौर॥ ३६॥
बिधि निषैध है भौंह मैं, लोभ जु अधरनि मांहिं॥
अरु सपरस मैं काम है, जल जु बीर्ज की ठांहिं॥ ३७॥
अधरम जानहुँ पीठ ठां, जिग्य तलबैंहिं मध्य॥
है छाया मैं मृत्यु प्रकृति, हंसि मायाहिं प्रसिद्ध॥ ३८॥
रोमनि कैं मधि औषधी, नदी सुनाडी ठांम॥
सिला नषनि मैं रु बुधि मैं, है ब्रह्माजु अभिरांम॥ ३९॥
प्रांनन मैं सब देवता, रिषि गन गात्र मझार॥
थावर जंगम यौं लषै, प्रभु मैं बलि निरधार॥ ४०॥
असुर भयै ब्याकुल सबै, अैसौ रूप निहार॥
जकैं थकैं सै रहि गयै, अधिक सोच अनुसार॥ ४१॥
चक्र सुदरसन पांचजन्य, संष धनुष सारंग॥
षडग बिद्याधर नांमकी, बाण अषै द्व निषंग॥ ४२॥
फूल सहित कौमोद की, सोभित गदा सुढार॥
लौकपाल पार्षद सबै, करत सैव करतार॥ ४३॥

कौस्तुभ मणि श्रीचिन्ह उर, लसत सुभग तन माल॥
जथा जोग्य भूषण बनैं, प्रभु कैं अंग रसाल॥ ४४॥
इक पग सौं भुवि नांपि लिय, अरु तन सौं आकास॥
दिसा भुजनि नांपि पग दुव, सौं सवर्गहुं निवास॥ ४५॥
लागि दूसरौ जू चरन, सवर्ग लोक सौं जाय॥
महर लौक जन लौक अरु, तपौ लौक लंघाय॥ ४६॥
ब्रह्मलोक मैं प्राप्त हुव, प्रभु चरन सुषदाय॥
तृतीय चरन कै ठौरहुँ, कौउ नांहिंन लषाय॥ ४७॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते बिंसोऽध्यायः ॥ २०॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ औकबिंसोऽध्यायः ॥

(बलि का बंधन)

॥ श्री सुक उवाच॥

दोहा - सुक कहत कि प्रभु चरन नष, कान्ति सुचंद समांन॥
छीन भयौ जिन तेज सौं, बिधि कौं तेज निदांन॥ १॥
तब रिषि मारीचादि बिधि, सनकादिक जोगैस॥
बेद और उपबेद सब, नैम पुराण सुदैस॥ २॥
जें कर्मनि तैं हैं जुदे, जोगवंत जुत ग्यांन॥
सहित तर्क इतिहास अै, मिलि सबही गुनवांन॥ ३॥
बांवन जू कैं चरन कौं, धोवन जल लै जाय॥
करत भयै पूजा अस्तुति, ब्रह्मा भलैं बनाय॥ ४॥
बिधि कमंडल तैं जल गिर्यौ, प्रभु पद धोवन मांहि॥
सोई गंगा जू भई, अतिहि पबित्र भुवि ठांहिं॥ ५॥
सबकौ करत पबित्र सौ, मनु प्रभु कीर्ति सुढार॥
ब्रह्मादिक सब देवता, उमगि उमगि उहिं बार॥ ६॥
बांमन जू कौ भैंट बहु, धरत भयै सब ल्याय॥
यौं बांमन जू निज रूप, लघु किनौं इछा भाय॥ ७॥
धूप दीप चंदन अछित, फल जल अंकुर मूल॥
सुभ सामग्रीन अैं सबै, संजुत माला फूल॥ ८॥
लै ब्रह्मादिक देवता, पूजत भयै सुढार॥
जै जै सब्द सतोत्र धुनि, बजिहिं बाजित्र अपार॥ ९॥

जांबवान चित्त हरषि कैं, सब दिस भेरि बजाय॥
बांवन जु कौ बिजय महा, उत्सव कह्यौ जु सुनाय॥ १०॥
तीन पांव सौं सब प्रिथ्वी, छल करि प्रभु हर लीन॥
अैसौं लषि बोलै असुर, आपस मांहिं प्रवीन॥ ११॥
अै माया बिस्नु है नांहिं, ब्राह्मण जू निरधार॥
आयै हैं द्विज रूप धरि, कार्ज करन अनुसार॥ १२॥
इन्ह जाचन्या कपट करि, धरि द्विज रूप सुदीन॥
प्रभू हम्हारै कौ सबै, सरबस लीनौं छीन॥ १३॥
प्रभू हम्हारौ जिग्य करत, तातैं दंड न दैत॥
सत्य बक्ता है इहि नृपति, दानी धर्म बिजैत॥ १४॥
अब लीनी है जिग्य की, दिछया समुझि सुढौल॥
दयावंत ब्राह्मण है, सकत झूठ नहिं बौल॥ १५॥
तातैं अपनैं नृपति की, इही टहल निरधार॥
बांवन जू कौ मारियै, रावरौ मंगल सार॥ १६॥
अैसै कहि सब आसुरनि, लीनैं सस्त्र संभारि॥
दौरे बालक तनकहूं, बांवन घात जुधारि॥ १७॥
दैत्य दौरत दैषि कै, महा रौष चित्त लाय॥
प्रभु कै पार्षद अति बली, दियै सब सत्रु भगाय॥ १८॥
नंद सुनंद रु जय बिजय, प्रबल कुमुद श्रुति दैव॥
विस्वकसेन कुमुदाछ बल, गरुड जयंत सुभैव॥ १९॥
पुष्पदंत सारस्वत अै, प्रभु पार्षद सुभ रूप॥
दस दस सहसहिं गजनि कौ, जे बल धरत अनूप॥ २०॥
तिन सब असुरनि सैंन कौं, दीनौं मारि भगाय॥
फतै पाय संग्राम मैं, अस्तुति सुरनि किय आय॥ २१॥
असुरनि कौ क्रोधित देषि, बलि मनै करत जुद्ध॥
कह्यौ समैं इहि नांहिंनै, है करिबैं कौ जुद्ध॥ २२॥
अरु गुरु सुक्राचार्ज की, आय गयी सुधि श्राप॥
तब अैसै सबै असुरनि, कहत भयौ बलि आप॥ २३॥
हे बिप्रचित्त हे राहु हे, नेमि सुनौ मौ बैंन॥
जुद्ध करहुँ मति या समैं, आछी कछू बनैंन॥ २४॥
सब सुष दुष जो जो प्रभू, दाता है सुभ रीति॥
जे ईस्वर कैं पराक्रम, कौंनुँ सकैं कौ जीति॥ २५॥
हम्हहिं जितायै जिन प्रभू, दीनैं सुरनि हराय॥
बै हीं प्रभु अब सुरनि कौं, धारैं हैं सुषदाय॥ २६॥
बल बुधि मंत्री जोरवांन, औषध मंत्र इलाज॥
साम जु आदि सु उपाय हूं, करैं कुपित जु समाज॥ २७॥

इन्ह प्रभु काल सरूप कौं, जीतहिं सकैं न कौय॥
निश्चै करि जो होत हैं, ईस्वर ईछा सौय॥ २८॥
हुतै पारषद बारनहुँ, तुम्ह जीतै कइ रीति॥
अब ऐसौं ही समैं इह, गरजित तुम्ह कौ जीति॥ २९॥
इंद्र जीति है हम्हहु जब, ह्वै हैं प्रसंन जु दैव॥
करौ प्रतीछा काल की, बात समझिहुँ सुभैव॥ ३०॥

॥ श्री सुक उबाच॥

सुक कहत कि सब असुर सुनि, बलि कैं ऐसैं बैंन॥
मार षाय सैनापति जु, गयै रसातल ऐंन॥ ३१॥
जानि मनोरथ प्रभू कौं, बरुण पास सौ धाय॥
बलि राजा कौ जब गरुड, बांधत भयै रिसाय॥ ३२॥
जिग्य बीच भगवांन नैं, बलि बांध्यौ निरधार॥
तब भुव सवर्ग दिसान मैं, हुव अति हाहाकार॥ ३३॥
बलि की लछमी नष्ट हुव, बुद्धि रही थिर दैषि॥
बोलै बांवन जू बचन, जानि इछा अवरैषि॥ ३४॥
तुम्ह हम्ह कौं दैनी कही, हुती प्रिथी पग तीन॥
दोय चरन हौं मापि सौ, मापि सबै हम्ह लीन॥ ३५॥
तृतीय चरन कौ ठौर नहिं, सौ अब दैहुँ बताय॥
कह्यौ सु दैनौं है सही, अब कइसै नटि जाय॥ ३६॥
जहँ तांई रबि चंद्रमा, है जू नछत्र प्रकास॥
घन बरषत तहँ लौ सकल, तेरौ प्रिथी निवास॥ ३७॥
म्हैं सरीर सौं माप कैं, लयै दिसा आकास॥
मापि भूलोक पाताल, अरु द्यूलोकहिं जास॥ ३८॥
दुतिय पांव सौं मापि कैं, लीनौं सवर्ग सथांन॥
ऐसैं हम्ह सब ठौर तौ, लीनी माप निदांन॥ ३९॥
तांतै जितनैं दांन कौं, तैं संकल्प जो कीन॥
सौ दै सक्यौं न देत जिहिं, तू जान कैं सरीन॥ ४०॥
दैंन कहै जो बिप्रन कौं, फिरि दैत जोइ नांहिं॥
झूठ मनोरथ जिनि सकल, जात नरक हीं मांहिं॥ ४१॥
तूं नै मोकौ ठग्यौ है, दियौ न पूरौ दांन॥
नरक झूठ कौ फल सु तू, भुक्तहूं नृप अग्यांन॥ ४२॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते ऐकबिंसोऽध्यायः॥ २१॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ द्वाबिंसोऽध्यायः ॥

(बलि द्वारा भगवान की स्तुति और भगवान का उस पर प्रसन्न होना)

॥ श्री सुक उवाच ॥

दोहा - सुक कहत कि अैसैं जबैं, बचन कहै भगवांन॥
तब बलि बोल्यौ अरु डिग्यौ, नहिं सत तैं बुधिवांन॥ १ ॥

॥ बलिरुवाच ॥

हे प्रभु म्हैं झूठौ बचन, कबहूं बौलत नांहिं॥
चरन तीसरौ राषियै, म्हैरे मसतक ठांहिं॥ २ ॥
हे प्रभु नरकहिं परनि तैं, हौं डरपतहू नांहिं॥
अरु डरपत हूं हौंन म्हैं, अपकीरति जग मांहिं॥ ३ ॥
बडै दैहिं जो दंड तौ, वामैं जस निरधार॥
तुम्ह म्हेरौ हित हीं कियौ, मैटि दियौ अहंकार॥ ४ ॥
मात पिता भाई सुहृद, अैसौं दंड न दैत॥
जइसौं स्वांमी तुम्ह दियौ, ग्यांनहिं अनुग्रह हैत॥ ५ ॥
तुम्हतौ उपरि तैं सत्रु हौ, असुरनि कैं करतार॥
गुरु हित कौ अैहौ सदा, भीतर तैं निरधार॥ ६ ॥
हम्ह अनैंक मद भेद सौं, हौय रहे हैं अंध॥
तिन्हकौं तुम्ह फिरि दैत द्रिग, टारि राज दुष दंद॥ ७ ॥
तुम्ह सौं करि करि बैर बह, असुरप्रगट जग मांहिं॥
पाई जोगेस्वर चरन, गति जो दुर्ल्लभ ठांहिं॥ ८ ॥
बरुण पास सौं बांधि मुहिं, तुम्ह दीनौं है दंड॥
ताकी मुहिं लज्या नांहिंन, और बिथा न घमंड॥ ९ ॥
म्हेरै पितामह तुम्ह भक्त, हुव प्रगटहुं प्रहलाद॥
हिरन कस्यप जिन्हकौं दियौ, दुष आप धरि प्रमाद॥ १० ॥
पैं आश्रय प्रभु रावरौ, नाहिं तज्यौ प्रहलाद॥
तुम्हहिं परायण हुवै रहि, सुष मान्यौ अहलाद॥ ११ ॥
मो लछमी हुव नष्ट जब, म्हेरै भाग्य प्रभाय॥
प्रभू रावरै निकटहूं, प्राप्त भयौ हौं आय॥ १२ ॥
गर्ब हौंन प्राणीन कौं, लछमी कै अनुसार॥
अंत निकट ही रहत सौ, नहिं जानत निरधार॥ १३ ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि याही समैं, ससि समांन प्रहलाद॥
बहां आन प्रापत भयै, हियै हैति हरि ज्याद॥ १४ ॥
धरै पीत जो बस्त्र तन, अद्भुत सुंदर स्यांम॥
कंवल दलन से नैत्र अरु, बडी भुजा अभिरांम॥ १५ ॥

अैसैं श्री प्रहलाद कौ, दरसन किय बलि राय॥
बंध्यौ बरुण कौ पास सौ, पूजा करि न सकाय॥१६॥
नैत्रन तैं आंसू चलै, लज्जित मुषनिहुँ राय॥
करत भयौ प्रहलाद कौं, बलि प्रणाम सुषपाय॥१७॥
सुनंद नंदादि पारषद, जुत दैषिहुँ करतार॥
प्रेम सहित प्रहलाद जू , कियौ प्रणाम सुढार॥१८॥

॥ प्रहलाद उवाच॥

पुनि बोलै प्रहलाद जू, प्रभु सैवा अनुसार॥
तुम्हहीं यांकौं इंद्रकौ, राज दियौ करतार॥१९॥
तुम्हहीं लछमी छीन लइ, करी क्रिपा हौ नाथ॥
लछमी मोहित जक्त कौ, बेद बिदित इहि गाथ॥२०॥
लछमी सौं मोहित प्रगट, पंडित हूं ह्वै जात॥
आत्म तत्व सुध हौत नहिं, अैसी रमा बिष्यात॥२१॥
नारायण जगदीस हौ, सबकैं साछी स्वांमि॥
दीन बंधु असरन सरन, तुम्ह कौं हैं परिनांमि॥२२॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि प्रहलाद कै, सुनिबैंहौं वां बार॥
ब्रह्मा सौं बोलत भयै, श्री बांमन अवतार॥२३॥
इतनैं मैं बंध्यौ पति कुं, दैषि अधिक भय पाय॥
रानी बिंध्याबलि प्रभुहिं, बंदन कीनौं आय॥२४॥
हाथ जौरि बिनयत भई, प्रभु सुं भलैं अनुसार॥
तब चुप हौय रहत तांह, नहिं बोलै मुष च्यार॥२५॥

॥ बिंध्यावलिरुवाच॥

बिंध्याबलि बौली कि हे, प्रभू गरीब निवाज॥
रच्यौ इहै त्रिलोकहुँ तुम्ह, निज क्रीड़ा कैं काज॥२६॥
कर्ता भर्ता संहर्ता जक्त, कै तुम्हहीं हौ स्वांमि॥
माया मौहित अग्यांनी, मानत निज कौं स्वांमि॥२७॥
तुम्हहिं का बैहि दैहिंगौ, सबै तुम्हारौ माल॥
बिंध्याबलि चुप ह्वै रही, यौं कहि बचन रसाल॥२८॥

॥ ब्रह्मोवाच॥

तब बिधि बोलै हे प्रभू, जक्तहिं पालनहार॥
देव देव याकौ लीनू, तुम्ह सरबस निरधार॥२९॥
अब इहि बलि है नाहिंनै, दंड जोग्य भगवांनि॥
याकौं दीजै छौडि अब, सीस धरहुँ निज पांनि॥३०॥
इन्हनैं संपूरन प्रिथ्वी, इंद्रलोक लौं आदि॥
आत्मा जुत सब दई तुम्ह, थिर मन धीरज बादि॥३१॥

जल तृन अंकुर फूल फल, करै निज बंदन कोय॥
सौ उत्तमहिं गति कौ सही, प्रांणी प्राप्त होय॥ ३२॥
इन्हनैं दियौ त्रिलौक सब, जुक्त अपनपौं चांहि॥
दुष पावन कै जोग्य इहि, है राजा बलि नांहिं॥ ३३॥

॥ श्री भगवानुवाच॥

अैसै सुनि बोलत भयै, ब्रह्मा सौं भगवांन॥
म्हैं जापर अनुग्रह करत, जिहिं धन हरत निदांन॥ ३४॥
धन मद सौं प्रांनी जगहिं, अरु मुहि मांनत नांहिं॥
करत सबै अपमान चित, धारि गर्ब अधिकांहिं॥ ३५॥
इहि प्रांणी बस कर्म तैं, जोंनि अनैकनि मांहिं॥
उपजत भौ मानुष जनम, निज भागनि सौं पांहिं॥ ३६॥
जनम कर्म अैस्वर्ज धन, विद्या जौवनहुँ रूप॥
अै लहिहैं बिनु अहं तौ, म्हैरी क्रिपा अनूप॥ ३७॥
जौबन उत्तम जनम रु धन, विद्या रूप जु पाय॥
गर्ब करै सौ भक्त मो, कबहूँ नांहिं कहाय॥ ३८॥
अरु इन बातनि सौं न ह्वै, मोहित म्हेरौ भक्त॥
जांनै अैसौ न कर्महूं, तैं तिहूँ मुक्ति न सक्त॥ ३९॥
इह राजा बलि मुष्य है, दानव दइतनि मांहिं॥
बढवन म्हैरि कीरति कौ, भलैं सकल जग ठांहिं॥ ४०॥
इहै बिपत्तिहूं कैं समैं, मोहित नांहिंन हौत॥
जीति गयौ मो प्रकृति कौ, हिर्दै सुग्यांन उदौत॥ ४१॥
जांकौ धनहूं छीन भौ, गयौ राजहूँ छूटि॥
बंधन कौं थापन भयौ, गयै असुरहूं तुटि॥ ४२॥
श्राप दियौ गुरु क्रौध तउ, सत्य छोड्यौ नांहि॥
धन्य धन्य इहि नृपति बलि, सकल जगत हूं मांहिं॥ ४३॥
ह्वै हैं मनु जो आठवौं, जिहिं सावर्णि जु नांम॥
व्है होयगौ इंद्र बलि, लहि हैं सुष अभिरांम॥ ४४॥
तब तांई या सुतल मैं, बास करी सुषपाय॥
जो बिस्वकर्मा नैं रच्यौं, भक्ति सोभि सरसाय॥ ४५॥
आधि ब्याधि आलस नांहिं, नहिं कलेस उहिं ठांम॥
सांति सहित वा सुतल में, जू बसि बलि अभिरांम॥ ४६॥
वांह सुवर्ग तैं अधिक सुष, हौ नृप तैं कल्यांन॥
तौकौं दै सकैं हैं नहिं, दुष कौ करहुँ निदांन॥ ४७॥
तौ आग्यां नहिं मांनि हैं, जो कौ किहीं प्रकार॥
चक्र सुदरसन मारि हैं, बाकौं तौ निरधार॥ ४८॥

बहँ बसि जुत सैवग सकल, सथिर हौहि बलिराय॥
म्हैं तौ रिछ्या करहूंगौ, अधिक क्रिपा अनुभाय॥४९॥
मौहित ह्वै कैं जक्तपतिकुं, दैषिगौं चहूं ठौर॥
तासौं उपजैगी नांहिं, तौहि असुर बुधि और॥५०॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी
कृते द्वाबिंसोऽध्यायः ॥ २२ ॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ त्रियोबिंसोऽध्यायः ॥

(बलि का बंधन मुक्त हो सुतल लोक को प्रस्थान)

॥ श्री सुक उबाच ॥

दोहा - सुक कहत कि अैसै जबै, बचन कहै भगवांन॥
तब बोल्यौ बलि नृपति यौं, जोरि आपु बिबि पांन॥ १ ॥

॥ बलिरुवाच ॥

साध सराहै जा बलिहिं, ताकौं बडौ प्रतापु॥
गदगद कंठ रोमांच तन, ह्वै बोल्यौ बलि आपु॥ २ ॥
चहत रह्यौहुं करि जोरन, प्रभु तुम्हकौं परिनांम॥
ताही समैं जु आपु मुहि, दीनौं अैसौं ठांम॥ ३ ॥
सौ सथांन दुर्ल्लभ महा, अमरनि जू निरधार॥
म्हैं तुम्हकौं परिनांमहूं, कर न सक्यौं उहिं बार॥ ४ ॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

सुक कहत कि अैसैं नृपति, बलि करि प्रभुहिं प्रनांम॥
फिरि प्रनांम बिधि सिवहिं करि, गवन्यौ सुतल जु ठांम॥ ५ ॥
अैसैं प्रभु बलि पास लैं, स्वर्ग इंद्र कौ दींन॥
अदिति मनोरथ पूर्न करि, रछा त्रिलोकहिं कींन॥ ६ ॥
बलि पैं अतिहि प्यार लषि, प्रभु कौं यौं प्रहलाद॥
बसि भयै जु अैसी तरह, बोलै धरि अहलाद॥ ७ ॥

॥ प्रहलाद उवाच ॥

जइसी हम्ह परि तुम्ह करी, पूर्न क्रिपा भगवांन॥
तइसी सिव बिधि रमाहूं, पाई नांहिं निदांन॥ ८ ॥
तुम्ह हम्ह सै आसुरन कैं, दुर्ग पालक करतार॥
ब्रह्मादिकहूं तुम्ह चरन, सैवत भलैं प्रकार॥ ९ ॥
प्रभू तुम्हारै पद कंवल, जिम्हकौ करिकैं सैव॥
ब्रह्मादिक हूं लहत हैं, संपति सुषहुं सुभैव॥ १० ॥

हम्ह तौ आसुर नीच हैं, अैंपरि तुम्ह का जांनि॥
क्रिपा करी हम्ह हींन तुम्ह, क्रिपा जोग्य उनमांनि॥११॥
प्रभु तुम्ह माया जोग सौं, जगत रचत हौ आप॥
अदभूत चरित सुहावनौ, हे स्वांमी अनमाप॥१२॥
प्रभु तुम्हकौं प्रिय भक्त हैं, हो सर्वग्य सममान॥
कल्प बृछि सम रावरौ, है सुभाव भगवांन॥१३॥

॥श्री भगवानुवाच॥

इहि सुनि प्रभु बोलै अहौ, सुनहूं पुत्र प्रहलाद॥
बांह पौत्र हित नित हौहिं, सुतल धारि अहलाद॥१४॥
वां ठां नित प्रति रहूंगौ, गदा धारि तौ पास॥
मो दरसन मत्त रहैंगौ, अति आनंद प्रकास॥१५॥
तेरै कर्म बन्धन सब, मिटि जै हैं निरधार॥
तौकौं रहि हैं नांहिनै, सौक काम अहंकार॥१६॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि प्रहलाद जू, पौता जुत उहिं बार॥
धरत भयै निज सीस पैं, प्रभु आग्यां सुषसार॥१७॥
परिकरमा भगवांन की, दै उन आग्यां पाय॥
असुरनि जुत प्रहलाद जू, गयै सुतल सुष छाय॥१८॥
सुक्राचारज जिग्य कै, करता बिप्रननि मध्य॥
बैठै हैं तिन्हसौं प्रभू, बौलत भयै प्रसध्य॥१९॥
हम्ह. कीनौं है जिग्य मैं, बिघन ठौर या आय॥
सौ तुम्ह पूरन करहुँ अब, आछी भांति बनाय॥२०॥

॥ शुक्र उवाच॥

बोलै जु सुक्राचार्ज तुम्ह, प्रभु कर्मन कैं ईस॥
इहिं पूजन हुव रावरौ, जिग्य पुरुष जगदीस॥२१॥
तासौं जिग्य भयौ पूर्न, हौ घटतौ कछु हीन॥
पूर्न करताबांन सबहिं, कैं तुम्ह तारन दीन॥२२॥
मंत्र तंत्र सब बस्त तुम्ह, देस काल उनमांन॥
आछै बनि आवै नांहिं, तौहू सुनौ निदांन॥२३॥
नांम तुम्हारौ लैय जौ, करन कर्म किहुँ मांहिं॥
तौ बह निश्चै जांनियैं, पूरन हौ जगठांहिं॥२४॥
तउ म्हैं आग्यां रावरी, करिहौं टारौं नांहिं॥
प्राणी कौं कल्यांन तुम्ह, आग्यां मानन मांहिं॥२५॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि अैं बचन कहि, हरि की आग्यां पांहिं॥
सुक्राचारज पूर्न जिग्य, लागैं करन सुभांहिं॥२६॥

अैंसै नृप बलि पास तैं, लैं प्रिथवी भगवांन॥
सुवर्ग लोक कौं इंद्र कौं, दीनौं राज सथांन॥ २७॥
पति बिधि परजापतिन कैं, सिव रिषि सनत कुमार॥
पितर अमर कौं जुत सबैं, करि सुभ भैंट बिचार॥ २८॥
कस्यप अदिति करिबैं प्रसंन, अरु जगकैं हित काज॥
लौकपालनि पति जु कियै, बांमनहिं महाराज॥ २९॥
सुवर्ग अमर ब्रत धर्म जस, लछमी मंगल बेद॥
मोष आदि सबकैं भयै, पति बांमन अनभेद॥ ३०॥
बांवन जू कौ उहिं समैं, भयौ उपेंद्र जु नांम॥
पुनि सब ही प्रांनीन कौं, हुव आनंद अभिरांम॥ ३१॥
बांवन जू कौं वा समैं, इंद्र बिमान चढाय॥
स्वर्ग ले गयौ सुरनि जुत, बिधि की आग्यां पाय॥ ३२॥
लछमी जुत त्रिलोकनि कौं, इंद्र राज द्रिढ पाय॥
निरभै ह्वै आनंद कौ, प्राप्त भयौ सुरराय॥ ३३॥
बांवन जू बासब रछा, करत रहै उहिं बार॥
दास आपनौं जानिकैं, पूर्न ब्रह्म करतार॥ ३४॥
सिव भृगु आदि जु रिषि सबै, ब्रह्मा सनत कुमार॥
पितर सिद्ध प्रांनी सबै, मिलि मिलि भलैं प्रकार॥ ३५॥
बांवन जू कैं चरित कौ, गावत भयै सुजांन॥
मनमैं अतिही हर्ष जुत, निज निज गयै सथांन॥ ३६॥
इहि चरित प्रभू कौ कह्यौ, तुम्ह सौं भलैं प्रकार॥
जांसौ सबही जाय मिटि, पाप पुंज कैं भार॥ ३७॥
जो प्रिथवी रजकन गिनैं, सौ प्रभु गुननि गनाय॥
अैसौ भयौ न हौयगौ, नहिं अब परत लषाय॥ ३८॥
तातैं प्रभु गुण कौं कौउ, पार लहत है नांहिं॥
यौं बसिष्ठ लौं आदि रिषि, कहत सकल समझांहिं॥ ३९॥
जो प्रभु कौ इहि चरित सुभ, सुनैं भलैं चित्त लाय॥
सोई परमगति कौ प्रगट, प्रापत हौय सुजाय॥ ४०॥
हौहिं पबित्र मानुष कौउ, किहूं करम कै मांहिं॥
पढै चरित इहि तौ सफल, सोइ करम ह्वै जांहिं॥ ४१॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते त्रियोबिंसोऽध्यायः ॥ २३॥)

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

॥ अथ चतुर्बिंसोऽध्यायः ॥

(भगवान के मत्स्यावतार की कथा)

॥ श्री परीछित उवाच ॥

दोहा - नृप पूछत सुकदैव जू, कहियै भलैं प्रकार॥
चहत मच्छ अवतार की, लीला सुन्यौ सुढार॥ १॥
किहिं कारन भगवांन नैं, धार्यौ इहिं अवतार॥
मच्छ तमोगुन जाति है, सर्व रूप करतार॥ २॥
सब लोकनि कौ है सही, प्रभू चरित सुषदाय॥
सब हम्हसौं आछै कहौ, हे सुक मुनि समझाय॥ ३॥

॥ सूत उवाच ॥

सूत कहत यौं नृप जबै, कीनौं प्रस्न सुभाय॥
कहत भयै सुकदेव जू, लीला मच्छ सुनाय॥ ४॥

॥ श्री सुक उवाच ॥

गाय बेद द्विज साध सुर, धर्म अरु प्रांनी दीन॥
इन सहाय कौं लैंत हैं, प्रभु अवतार प्रवीन॥ ५॥
नीच ऊंच सब जोनि मैं, धरत आपु अवतार॥
है निर्लैप प्रभु पवन सम, जगत ईस निरधार॥ ६॥
हौत कल्प कै मध्य जब, प्रलै भयौ आबांनि॥
प्रिथवी आदिक समुद मैं, बूडै सकल सथांनि॥ ७॥
बिधि सोयै जिन्ह मुषहिं तैं, निकसैं बेदहिं चारि॥
तिन्हैं असुर हयग्रीव लै, गयौ चोरि उहिं बारि॥ ८॥
इहै जांनि भगवांन नैं, धार्यौ मच्छ सरूप॥
ल्याय दैंन मुष च्यार कौं, चारौं बेद अनूप॥ ९॥
नांम सत्यब्रत तिहिं समैं, द्रबिड दैस कौ राय॥
करत भयौ जल तपस्या, भलि अपनौं चितलाय॥ १०॥
सौ स्वायंभुव मनु भयौ, अबैं जनम या मध्य॥
इहि सत्यब्रत राजा रह्यौ, पहली बार प्रसध्य॥ ११॥
सौ कृतमाला नदी मैं, सुभै सनांन सुढार॥
करत रह्यौ तर्पन नृपति, बेद रीत अनुसार॥ १२॥
छोटौ सौं इक मच्छ पर्यौ, तिहिं अंगुरि बिच आय॥
ताकौं जलहीं मांहिं लैं, डारि दैत भय राय॥ १३॥
तब मच्छ बोल्यौ नृपति सौ, बहिं बेरां या भाय॥
हे नृप मोकौं मच्छ बडै, इहिं जायैंगें षाय॥ १४॥
मच्छ रूप भगवांन कौं, सुनिकैं बचन नृपाल॥
दया आप रछया करन, किय मनोर्थ उहिं काल॥ १५॥
डारि कलस मैं मच्छ नृपति, निज आश्रम लै आय॥
राति समैं मैं मच्छ यौं, नृप सौं कह्यौ सुनाय॥ १६॥

म्हैं आछै या कलस मैं, रहि न सकत हौं राय॥
और ठौर लै राषियैं, जाहँ रहौं सुषपाय॥ १७॥
इहि सुनि राजा नैं धर्यौ, बडै पात्र कैं मांहिं॥
तीन हाथ फिरि बढि गयौ, पात्रहूं कैं जु ठांहिं॥ १८॥
अरु मच्छ बोल्यौ म्हैं न या, पात्र कैं बिच समात॥
राषहुं बडै सथांन मैं, जांह हौय सुषगात॥ १९॥
इहि सुनि नृप राषत भयौ, लैंहिं सरोवर मांहिं॥
मच्छ बढ्यौ वा ठौरहूं, सकत माय जू नांहिं॥ २०॥
अरु बोल्यौ मुहिं राषियैं, बडै सरौबर ठौर॥
या सरबर कैं बीचि मैं, रहीं न सकत सुतौर॥ २१॥
बडै सरोवर बीचहूं, मच्छ समानै नांहिं॥
तब लैंकैं नृप सत्यब्रत, धर्यौ सरोवर मांहिं॥ २२॥
तब बोलै यौं मच्छ जू, सुनहुँ सत्यब्रत राय॥
बडै मच्छ या ठौर मैं, मोकौ जै हैं षाय॥ २३॥
इहि सुनि बोल्यौ नृपति तुम्ह, मच्छ रूप हौ कौनु॥
ऐसौं जल कौं जीवहीं, हम्हहिं कबहूं लष्यौनु॥ २४॥
सौ जोजन तुम्ह बढि गयै, इक दिवसहिं ही मांहिं॥
ऐसौ तौ जलजंतु की, सक्ति हौत है नांहिं॥ २५॥
म्हैं इहिं जांनत हौं कि तुम्ह, नारायण करतार॥
करि अनुग्रह मौ पैं इहै, धर्यौ रूप इहिं बार॥ २६॥
उतपति पालन प्रलै कै, हौ करता प्रभु आप॥
प्रिय बैस्नबन कैं तुम्हैं, परिनांम मम सजाप॥ २७॥
तुम्हहिं जग रछाकैं निमित, धरत अनंत अवतार॥
किहुं कारन अवतार इह, धार्यौ जू या बार॥ २८॥
सेवा तुव पद कंवल की, निरफल हौतु जु नांहिं॥
सौ हम्हहिंहूं जु तुम्ह दियौ, दरसन अनुग्रह चांहि॥ २९॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत कि नृप बचन सुनि, बोल्यौ मच्छ करतार॥
नीर प्रलय कैं मध्य हम्ह, चाहत कियौं बिहार॥ ३०॥

॥ श्री भगवांनुवाच॥

दिवस सातवैं आज तैं, प्रलय सिंधु कैं मांहिं॥
बूडि जाहिंगैं लौक तिहुँ, कछु रहैंगौंहिं नांहिं॥ ३१॥
बूडिजैहैं जल प्रलै मैं, जबै त्रिलौक निवास॥
म्हैरी पठई नांव तब, ऐहैं तैरै पास॥ ३२॥
अन्य औषधी ता समैं, लैं रिषि सप्त समैत॥
करिहैं नीर बिहार तू, चढि वा नांव बिजैत॥ ३३॥

रिषिन तैंज सौं नीर मैं, करिहैं तैं जल बिहार॥
कछू न प्रापति हौहिंगौ, तोकौं डर उहिं बार॥ ३४॥
कांपैंगीं बहि नांव जल, प्रलै पवन कैं जौर॥
तब म्हैं प्रापति हौहुँगौ, तौ पै आनि सुतौर॥ ३५॥
तब तुम्ह म्हैरै सींग सौं, बांध दीजियौ नांव॥
लियैं फिरौंगौं तौहि म्हैं, रिषिन समैत सुदांव॥ ३६॥
जब तांई रहिहैं इहै, ब्रह्म रात्रि उनमांन॥
तब लौं तोहि बिहार जल, करिबैं हौं जलयान॥ ३७॥
मौ महिमा अरु तत्व सबै, तू नृप लैं हैं जांनि॥
तौकूं म्हैं उपदेसहीं, करिहौं भलै बिधांनि॥ ३८॥
हौत भयै कहिकैं इतौ, श्री हरि अंतरध्यांन॥
करत प्रतिछा नृपति प्रभू, आबै की बुधिवांन॥ ३९॥
उत्तर मुष बैठ्यौ नृपति, कुस आसन कैं ठांम॥
मच्छ रूप भगवांन कौं, धरैं ध्यांन अभिरांम॥ ४०॥
उमडि समुद वाही समै, आवत भयौ अछेह॥
बौरन लग्यौ प्रिथवी कौं, बरसनि लाग्यौ मेह॥ ४१॥
आय गई बाही समैं, नौका राजा पास॥
रिषिन सहित लै औषधी, किय नृप नौका वास॥ ४२॥
रिषि बोलै ताही समैं, नृप करि हरि कौं ध्यांन॥
या संकट तैं दैहिंगैं, वैं छुडाय भगवांन॥ ४३॥
राज हरि कौं ध्यांन किय, ताही समैं सुभाय॥
मच्छ रूप भगवांन तांह, प्रगट हौत भय आय॥ ४४॥
श्रृंग धरै निज सीस पैं, रंग सुबरणाकार॥
अैक लाषि जौजन प्रगट, प्रभू अंग बिसतार॥ ४५॥
नृपति नांव जिन श्रृंग सौं, बांधी अहि करि डोरि॥
अरु कीनी हरि की अस्तुति, ह्वै प्रभु सरनि अकोरि॥ ४६॥

॥ राजोवाच॥

चोपाई - मोहित जीव अबिद्या मांहीं। आत्मग्यांन कछु समझत नाहीं॥
ब्याकुल मही बीच संसारा। तैं लहि मनुष जनम निरधारा॥ ४७॥
जें प्रभु सरन रावरै आवै। तौ अदभुत उत्तमहिं गति पावै॥
अैसैं प्रभू भक्ति कैं दाता। आपु हम्हारै गुरु बिपयाता॥ ४८॥
इह मूरष जन निज कर्मनि सौं। बंध्यौ रहत निज मर्मनि सौं॥
करत अनैक कर्म सुष काजा। तिन्ह सौं लहत महा दुप साजा॥ ४९॥
जाति कुबुधि किनौं न हरि सेवा। जें मेंटहुँ अग्यांन करि भेवा॥
जिन्ह सेवा सूं ढरि जू हौता। मन कौं मैंल ग्यांनहिं उदौता॥ ५०॥

ज्यूं सुबर्ण कैं मधि जो मैलहिं। निकसत है पावक कैं फैलहिं॥
जिन्हकी क्रिपा अंस सम औरा। करि न सकैं कौऊ किहुँ तौरा॥५१॥
अैसैं जग ईस्वर भगवांना। म्हैं हूं तिन्हकैं सरन निदांना॥
ज्यौं अंधै कौ नैंनन बारौ। करैं सहाय भलैं अनुसारौ॥५२॥
ज्यूं ही मूरप कैं गुरु पंडिता। कियै संग हौय सुद्ध चित्ता॥
सब इंद्रिन कै तुम्ह जु प्रकासक। हम्ह तुम्हकौं गुरु लपत जु भासक॥५३॥
मनुष मनुष कौं दै बुधि अैसौ। जासौं मिटै कुबुद्धि अैंन सौं॥
अरु तुम्ह अैसौ देत जु ग्यांना। जासौं लहैं परम पद थाना॥५४॥
तुम्हसबकैं सुहृद प्रिय ईस्वर। आतम सिधि दाता रु ग्यांन गुर॥
सरन रावरै म्हैं बिषयाता। तुम्ह बिच सुरनि श्रेष्ठ बरदाता॥५५॥
अपनैं तुम्ह परमेसर सारा। मैटहुँगौ अग्यांन अंधारा॥
हौं आयौ प्रभु सरन तिहारी। काटि गांठ हिय ग्यांन प्रसारी॥५६॥
मच्छ रूप परम पुरुष भारी। जल प्रलै बिहारहुँ अनुसारी॥
नृप कुं स्वरूप अपनौं बताई। भक्ति ग्यांन कर्म जोग समझाई॥५७॥

॥ श्री सुक उवाच॥

सुक कहत नृप बंदन कीनौ। मच्छ जु तबै आत्म तत्व दीनौं॥
जामैं बेद रु जोग बिचारा। जो बचन मच्छ पुराण सुढारा॥५८॥
ल्याय बेद ब्रह्मा कौं दीनैं। बिधि कै पूर्न मनोरथ कीनैं॥
सोई सत्य ब्रत आय नृपाला। पाय प्रभू की क्रिपा बिसाला॥५९॥
अब या कल्प माहिं निरधारा। प्रगटै मनु वैवस्त सुढारा॥
नृप सत्यब्रत मच्छ संवादा। सुनैं कौउ जें धरि अहलादा॥६०॥
ताकैं पाप दूर ह्वै जाहीं। अति आनंद हिदैं सरसाहीं॥
लैहि कोउ मच्छ जू कौ नांमा। पूर्न मनोरथ लैहिं सुधामा॥६१॥

दोहा - मारि असुर हयग्रीव कौं, बिधिहिं बेद दिय ल्याय॥
कियौ ग्यांन उपदैस जिन्ह, सत्यब्रत कौं समझाय॥६२॥
अैसै मच्छ भगवांन कौं, है म्हैरौ परिनांम॥
धन्य धन्य करता पुरुष, जे सब सुष कैं धांम॥६३॥

(इति श्री भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भाषा ब्रजदासी कृते चतुर्बिसोऽध्याय ॥ २४॥)

(इति श्री अष्टम स्कंध संपूर्णम्)

(॥ पोथी को सं. १८३४ वि. ॥ श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ॥)

कुल छंद ११८१ ॥ छंद योगक्रम ९००२॥

☆ ☆ ☆ ☆ ☆

* * *